Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आदिपर्व

महाभारत

सम्पादक
डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाभारत

आदिपर्व

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहाय्यक सम्पादक

श्री श्रुतिशील शर्मा, एम. ए., शास्त्री

शिक्षामंत्रालय भारत सरकारके द्वारा दिए गए आर्थिक अनुदानसे मुद्रित—

स्वाध्याय मण्डल

पारडी [जिला बलसाड]

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर,
स्वाध्याय मंडल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)'
पारडी [जि. बलसाड]

*

संवत् २०२५, शक १८९०, सन् १९६८

*

प्रथम आवृत्ति

*

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर,
भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)'
पारडी [जि. बलसाड]

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भूमिका

वैदिक साहित्य एवं संस्कृतिके कारण भारतकी अक्षुण्णता विद्यमान है। इसमें सन्देह नहीं, कि वेदों एवं तद्गत साहित्यके कारण भारतका यश काफी फैला है, पर समयके साथ साथ वेदोंका अध्ययन क्रमशः क्षीण होता गया और एक दिन वह आया कि जब वेद नाममात्रके लिए रह गए और उनका अध्ययन लुप्तप्रायः हो गया। ऐसे गाढे समयमें भी भारतीयसंस्कृतिने अपनी अक्षुण्णता टिकाये रखी। इसका कारण था इतिहास और पुराण। इन इतिहासों और पुराणोंने लोगोंको अपनी आकर्षक एवं मनोरञ्जक कथाओं द्वारा फिर वेदोंकी तरफ प्रेरित किया। सर्वथा मूर्ख राजपुत्रोंको अपने "पंचतंत्र" की कथाओंके द्वारा राजनीतिमें कुशल बना देनेवाले विष्णुशर्माकी कथा संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध ही है। उसी तरह इन इतिहासों और पुराणोंने अपनी कथाओंके द्वारा लोगोंके हृदयोंमें वैदिक सिद्धान्तोंको जागृत किया। इसीलिए इन इतिहास और पुराणको वेदोंके अर्थ करनेके कार्यमें अनिवार्य तत्त्व माना गया है। १

पुराण ग्रंथोंमें सम्पूर्ण प्राचीनतम कथाओंका संग्रह है और उन्हींको आधार बनाकर रामायण, महाभारत आदि इतिहासोंमें अर्वाचीन ऐतिहासिक कथाओंका संग्रह किया गया है। रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्य अमूल्य हैं। संग्रहकी दृष्टिसे पुराणोंमें "अग्नि पुराण" तथा इतिहासमें "महाभारत" श्रेष्ठ ग्रंथ हैं।

महाभारत—एक एनसाइक्लोपीडिया

महाभारत वस्तुतः न महाकाव्य है और न इतिहास ग्रंथ, यह तो एक विश्वकोष है; जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्य सभी पहलुओंपर प्रकाश डालनेवाले सभी विचारोंके दर्शन किए जा सकते हैं। सभी तरहका ज्ञान महाभारतमें मिल सकता है। महाभारतसे पूर्वके ग्रंथोंमें जिन जिन विषयोंका विवेचन किया गया है उन सबका सूक्ष्मदर्शन इस ग्रंथमें किया जा सकता है। स्वयं महर्षि द्वैपायन कहते हैं—

भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत्।
वेदा योगः सविज्ञानो धर्मार्थः काम एव च ॥ ४८ ॥
धर्मार्थकामयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च।
लोकयात्राविधानं च सर्वं तद्दृष्टवानृषिः ॥ ४९ ॥
इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रंथस्य लक्षणम् ॥ ५० ॥ २

सभी प्राणियोंके स्थान, सभी रहस्य, वेद, योगशास्त्र, विज्ञान, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, धर्म, अर्थ और कामके वर्णन करनेवाले ग्रंथोंका सार, इस संसारमें रहकर सुखपूर्वक जीना इन सभी बातोंका वर्णन इस महाग्रंथमें ग्रंथकारने किया है। इस ग्रंथको सांसारिकशास्त्र और मोक्षशास्त्र दोनों कहा जा सकता है। इसमें अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों मार्गोंका अपूर्व वर्णन है। अतः यह एकांगी नहीं है।

१ इतिहासपुराणाभ्यां वेदान् समुपबृंहयेत्।
२ महाभारत आदिपर्व अध्याय १

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इस अपूर्व ग्रंथमें किन किन विषयोंका वर्णन है, इस विषयमें स्वयं ग्रंथकारका कथन द्रष्टव्य है—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम् ।
ब्रह्मन्वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया ।
सांगोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ॥
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ॥
जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयम् ।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रयाणां च लक्षणम् ॥
चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च सर्वशः ।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः ॥
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह ।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च ॥
न्यायः शिक्षा चिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा ।
हेतुनैव समं जन्म दिव्यमानुषसंज्ञितम् ॥
तीर्थानां चैव पुण्यानां दिशानां चैव कीर्तनम् ।
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च ॥
पुराणां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम् ।
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः ॥
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम् ॥ ३

"मैंने इस भारतरूपी अपूर्व काव्यकी रचना की है। इसमें निम्न लिखित विषयोंका समावेश होता है– वेदोंका रहस्य, उपनिषदोंका तत्त्वज्ञान, अंग-उपांगोंकी व्याख्या, इतिहास और पुराणका विकास, त्रिकालका निरूपण, जरा-मृत्यु, भय, व्याधि, भाव अभावका विचार, त्रिविध धर्म और आश्रमका विवेचन, वर्णधर्म आदि।

व्यासके इस कथनसे प्रतीत होता है कि महाभारतको रचनेमें व्यासका उद्देश्य राजाओंके इतिहासका वर्णन करना नहीं था, अपितु मनोरंजक कथाके माध्यमसे लोगोंको धर्म समझाना ही था। व्यासका यह निश्चित मत था कि यदि लोग धर्मका आचरण करें, तो मनुष्योंको अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति आसानीसे हो सकती है—

ऊर्ध्वबाहुः विरोम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम् ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते ॥

"मैं हाथ उठा उठाकर चिल्ला रहा हूँ, पर कोई भी मेरी बात नहीं सुनता, धर्मसे ही अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, फिर धर्मका ही आचरण क्यों न किया जाए?"

उपर्युक्त श्लोकके उत्तरार्धसे महाभारत रचनाका व्यासका उद्देश्य स्पष्ट होता जाता है। महाभारतके द्वारा वे एक ऐसे कृष्णका वर्णन करना चाहते थे, जो "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां धर्मसंस्थापनार्थाय।" इस संसारमें बार बार जन्म लेना चाहता हो, वे ऐसे युधिष्ठिरका वर्णन करना चाहते थे, जो धर्मकी रक्षाके लिए कठिनसे कठिन संकटोंको भी झेल सके। इस प्रकार—

(१) महाभारत एक अपूर्व काव्य ग्रन्थ है।

(२) कौरव-पाण्डवोंके इतिहासके माध्यमसे उसमें विविध शास्त्रोंका वर्णन है।

(३) महाभारतकालमें विद्यमान शास्त्रोंका संग्रह इस महाभारतमें किया गया है।

इस प्रकार यह ग्रंथ वस्तुतः एक विश्वकोश है। श्रीभागवतमें स्पष्ट कहा है कि– "भारतके माध्यमसे व्यासने वेदोंका अर्थ ही प्रदर्शित किया है।"

"स्त्री, शूद्र और मूर्ख द्विज श्रुतिका अर्थ नहीं समझ सकते, इसलिए इन्हें श्रेयः प्राप्तिका मार्ग बतानेके लिए व्यासने महाभारतकी रचना की।" ४

यह महाभारत अज्ञानी लोगोंके लिए अंजनकी एक शलाका है, जिसे आंखोंमें लगाकर अज्ञानी भी हर तरहसे ज्ञानवान् हो जाता है। महाभारतकी यह प्रशंसा कोई अत्युक्ति नहीं है। इन्हीं विशेषताओंके कारण महाभारतको पांचवा वेद कहा गया है। इतिहास है कि पूर्वकालमें देवताओंने तराजूकी एक तरफ चारों वेदोंको और दूसरी तरफ केवल महाभारतको रखकर तोला, तो महाभारत ही वजनदार निकला। वस्तुतः इसका तात्पर्य यह नहीं कि तत्त्वज्ञानमें महाभारत वेदसे बढ चढकर है। इसका तात्पर्य यही है कि वैदिकतत्त्वज्ञानको ही महाभारतमें इस रूपमें प्रस्तुत किया गया है, कि सर्व साधारणके लिए आसान हो गया। वेदोंके द्वारा तत्त्वज्ञानको समझना हरएकके बूतेकी बात नहीं है, पर उसी तत्त्वज्ञानको महाभारतकी कथाके माध्यमसे मनुष्य

३ महाभारत आदिपर्व १।६१–६९

४ भागवत १. ४. १८, २५.

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आसानीसे समझ जाता है। दूसरा कारण यह भी है– उपनिषदोंमें मुख्य विषय अध्यात्मका ही होनेसे मनुष्य उनके अध्ययनसे अत्याध्मशास्त्रमें तो परिपूर्ण हो जाता है, पर सांसारिक व्यवहारशास्त्रमें अधूरा ही रह जाता है। पर महाभारत एक ऐसा ग्रंथ है कि जिसमें अध्यात्म और व्यवहार दोनों पक्षोंका समावेश हो जाता है, अतः महाभारतका अध्ययन करनेवाला दोनों दृष्टियोंसे योग्य बन जाता है। स्वयं व्यासका कथन है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
न चाख्यानमिदं विद्यान्नैष स स्याद्विचक्षणः॥ ५

"जो विद्वान् अंगों सहित चार वेद और सम्पूर्ण उपनिषद् जानता हो, परन्तु उसने महाभारतका अध्ययन न किया हो तो वह विचक्षण या बुद्धिमान् नहीं हो सकता। क्योंकि–

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामित बुद्धिना॥ ६

"इसमें अत्यन्त बुद्धिमान् व्यासने अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और कामशास्त्रका पूरा पूरा विवेचन किया है।" इसलिए बिना महाभारतको पढे वेदोंका अर्थ समझना बडा कठिन है। कहा भी है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति॥ ७

"इतिहास और पुराणोंसे वेदार्थका विचार किया जाए, क्योंकि अधूरे ज्ञानवालेसे वेद बहुत डरते हैं कि कहीं यह अर्थका अनर्थ न कर डाले।"

कथा है कि एक बार विद्या ब्रह्मज्ञानियोंके पास पहुंची और उनसे बोली कि हे ब्राह्मणो! मैं तुम्हारा खजाना हूँ, तुम मेरी रक्षा करो। ये अल्पज्ञानी मेरा रूप विकृत कर रहे हैं। वस्तुतः वेदोंके अर्थका अनर्थ करना ही उसके रूपको विकृत करना है। पर महाभारत आदि ग्रंथोंके अध्ययनसे मनुष्यको वेदार्थका परिज्ञान हो सकता है।

ऐसा कोई भी विद्याका पक्ष नहीं, जिसे व्यासने स्पर्श न किया हो। सभी शास्त्रोंका सार इस महाभारतमें आ गया है। वस्तुतः 'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वं' यह सारा जगत् और सारे तद्गत शास्त्र व्यासके द्वारा उच्छिष्ट हो चुके हैं, अर्थात् ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं जिस पर व्यासने अपने विचार व्यक्त न किए हों।

महाभारतके संस्करण

महाभारतका वर्तमानरूप अनेकों परिवर्धनोंका संस्करण है। स्वयं महाभारतमें इसका प्रमाण है। मूल महाभारतके प्रणेता श्री व्यासने अपने पांच शिष्योंको महाभारत सिखाया। उन पांच शिष्योंमें वैशम्पायन एक थे। वैशम्पायनने सर्पसत्रके समय जनमेजयके सामने महाभारतकी कथा सुनाई। वैशम्पायनका यह आख्यान वस्तुतः प्रश्नोत्तरके रूपमें है। जनमेजय प्रश्न पूछता है और वैशम्पायन उन प्रश्नोंका उत्तर देते जाते हैं। इस रूपमें महाभारतकी कथा आगे बढती जाती है। इस प्रकार व्यासके मूल महाभारतमें वैशम्पायन द्वारा परिवर्धन होता गया। इसके बाद दूसरा परिवर्धन सौतिके द्वारा होता है। शौनकके द्वादशवर्षीय यज्ञके अन्तमें नैमिषारण्यमें आकर सौति महाभारतकी कथा सुनाते हैं। इस प्रकार वर्तमान महाभारतके संग्रहकर्ताके रूपमें हमारे सामने व्यास, वैशम्पायन और सौति ये तीन उपस्थित होते हैं। इसी दृष्टिसे महाभारतके तीन नाम सुने जाते हैं। व्यासने महाभारतको जय नामसे पुकारा है। महाभारतके प्रथम श्लोकमें ही इस नामकी चर्चा है—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
दैवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

इसके बाद जब इसमें परिवर्धन हो गया, तब इसका नाम भारत पड गया, अन्तमें जब दूसरी बार फिर परिवर्धन हुआ, तब इसका नाम महाभारत पडा। अनुमानके आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यासका जय ही वैशम्पायनके परिवर्धित संस्करणके कारण भारत और सौतिके परिवर्धित संस्करणके कारण महाभारत बन गया। भारत और महाभारतका नाम आश्वलायन गृह्यसूत्रके समय प्रचलित था। उस सूत्रकी तर्पण विधिमें एक सूत्र आया है, जो इस प्रकार है–

सुमन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैल-सूत्रभाष्य-
भारत-महाभारत-धर्माचार्यास्तृप्यन्तु।

५ महाभारत आदिपर्व. २।३८२
६ महाभारत आदि २।३८३
७ महाभारत आदिपर्व १।२६७

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पडेगा। इस प्रकार सौ डेढ सौ वर्षके बाद जयका दूसरा संस्करण भारतके रूपमें अस्तित्वमें आया।

तीसरा संस्करण– यह संस्करण सूतपुत्र उग्रश्रवाका है। वैशम्पायनके बाद थोडे बहुत परिवर्धनके साथ इन्होंने तीसरा संस्करण तैय्यार किया। इस अन्तिम संस्करणमें एक लाख श्लोक थे। सौति स्वयं कहते हैं—

अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत॥

इस प्रकार प्रतीत होता है कि इस अन्तिम संस्करणमें श्लोकोंकी संख्या एक लाख तक पहुंच गई थी।

इस संस्करणकी शुरुआत मनुसे मानते हैं। यूं तो महाभारतमें मनु शब्दसे शुरु होनेवाला कोई श्लोक नहीं है, पर वैवस्वत शब्दको ही मनुका पर्यायवाची मानकर उस श्लोकसे ही इस संस्करणकी शुरुआत मानते हैं। यही तीसरा संस्करण आज महाभारतके रूपमें हमारे सामने उपलब्ध है। पर आज जो महाभारत उपलब्ध है, उसमें भी एक लाख श्लोक नहीं हैं, वरन् कम ही हैं। इस सौतिका काल लोकमान्य तिलकने २५० ईसापूर्व माना है।

महाभारत–एक अद्वितीय महाकाव्य

महाभारतकी अद्वितीयता विवादातीत है। हर दृष्टिसे यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। स्वयंमें तो एक महाकाव्य है ही, पर साथ ही यह अनेक महाकाव्योंका प्रेरणास्रोत रहा है। महाकवि कालिदासकी "अभिज्ञान शाकुन्तलं", भारविका "किरातार्जुनीयम्", माघका "शिशुपालवध" आदि अनेकों काव्योंकी कथायें महाभारतसे ही ली गई हैं। इस महाकाव्यकी महत्ता उसके उद्देश्यसे और बढ जाती है। यह महाकाव्य वस्तुतः स्वांतःसुखायके लिए व्यासने नहीं लिखा, अपितु उनका उद्देश्य लोगोंको धर्मकी तरफ प्रेरित करना ही था। महाभारतको यदि हम एक राष्ट्रीय काव्य कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

महाभारतके नायक और नायिकाको निश्चित करना एक असाध्य कार्य है। क्योंकि इसमें अनेकों पात्रोंका जमघट है, जिनमें सभी नायक प्रतीत होते हैं। दुर्योधन तो सारे महाभारत पर छाया रहता है, पर अन्तमें वह मारे जानेके कारण उसे राज्यपदकी प्राप्ति नहीं होती, अतः उसे नायक कहना असंगत होगा। इसी प्रकार महाभारतके अध्ययन करनेवालेको युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन, कर्ण आदि सभी नायक प्रतीत होते हैं।

महाभारतमें पात्रोंकी अत्यधिकता होनेपर भी महाभारतकारने सभीके साथ न्याय किया है। हर पात्रको पाठकके सामने आनेका यथायोग्य अवसर प्रदान किया है। महाभारतकारने महाभारतके सर्वोत्कृष्ट पात्र श्रीकृष्णको नारायणका अवतार मानकर ही उनका वर्णन किया है।

महाभारतकी द्रौपदी एक आदर्श नारी है। वह एक सती साध्वी और पतिव्रता है। द्रौपदीके चित्रणके द्वारा व्यासने स्त्रियोंके सामने एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। वनपर्वमें द्रौपदीके गुणोंका बडा सुन्दर वर्णन व्यासने किया है। वनमें रहते हुए द्रौपदीसे जब सत्यभामा मिलने जाती है, तब बातों ही बातोंमें वह द्रौपदीसे पूछती है कि उसके पांचों पति उसके वशमें किस तरह रहते हैं, तब वह जो वर्णन करती है, वह बडा मार्मिक है। वह कहती है—

"मैं अहंकार और काम–क्रोधको छोडकर पाण्डवोंकी सेवा करती हूँ। मैं कभी अपने मुंहसे बुरी बात नहीं निकालती। असभ्यकी भांति व्यवहार नहीं करती। पतियोंके अभिप्रायपूर्ण संकेतका सदैव अनुसरण करती हूं। देवता, मनुष्य, गंधर्व या कितना भी रूपवान् संपन्न भी मेरे सामने आजाए, फिर भी मेरा मन पाण्डवोंको नहीं छोडता। पतियों और उनके सेवकोंको भोजन कराये बिना मैं कभी भोजन नहीं करती। उनके सोनेके बाद ही मैं सोती हूं। बाहरसे जब मेरे पति आते हैं, तब मैं मुस्कराकर उनका स्वागत करती हूँ। मेरे पति जिस पदार्थको पसन्द नहीं करते, उसे मैं भी त्याग देती हूँ। हे सत्यभामे! गुरुजनोंकी सेवा शुश्रूषासे ही मेरे पति मेरे अनुकूल रहते हैं।"

द्रौपदीके इन वाक्योंमें ही उसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है। वह अपने पतियोंके सुख दुःखमें सहभागिनी रहती है। एक साधारण मानवी होनेके कारण वह भी कभी धर्मराजसे भला बुरा कह डालती है। पर इससे व्यासके ऊपर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। क्योंकि व्यासने द्रौपदीको मानवीके रूपमें ही प्रस्तुत किया है, किसी अलौकिक देवीके रूपमें नहीं। यदि व्यास द्रौपदीमें दोष न दिखाकर केवल गुण ही गुण दिखाते, तो उन पर आक्षेप किया जा सकता था। व्यास द्रौपदीके चित्रण द्वारा सभी स्त्रियोंको ऐसी ही साध्वी और पतिव्रता बनाना चाहते थे।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इसी प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरका चित्रण भी आकर्षक है। धर्मके रूपमें युधिष्ठिरने अपने कर्तव्यका पूर्णरूपेण पालन किया। वनवासका दुःसह कष्ट सहनेके बावजूद भी वे धर्मसे च्युत नहीं हुए। उनके सामने धर्मका पालन ही एक मात्र लक्ष्य था। वे सारे महाभारतमें एक सत्यवादीके रूपमें ही पाठकोंके सामने आते हैं। किंवदन्ती है कि हमेशा सत्य बोलनेके कारण उनका रथ हमेशा जमीनको न छूता हुआ चलता था। पर द्रोण वधके समय "नरो वा कुंजरो वा" के कथनके साथ ही उनका रथ पृथ्वीको छूकर दौडने लग गया। संभव है कि इस किंवदन्तीमें अतिशयोक्ति हो, पर इतना अवश्य सच है कि युधिष्ठिरकी सत्यवादिता अतुलनीय थी। धर्मराज सभी पाण्डवोंमें विशेष बुद्धिमान् थे। उनकी बुद्धिमत्ता वनपर्वके अन्तर्गत यक्ष द्वारा पूछे गए प्रश्नोंके उत्तरोंमें स्पष्ट झलकती है। इस प्रकार युधिष्ठिरमें धर्म एवं बुद्धिमत्ता, भीममें बल, अर्जुनमें कुशलता एवं वीरता, नकुल और सहदेवमें आज्ञाकारिता, द्रौपदीमें पातिव्रत्यधर्मका अद्भुत सम्मिश्रण व्यासकी अनोखी प्रतिभाका परिचायक है।

दूसरी तरफ खलनायक दुर्योधन और उसके प्रेरणास्रोत शकुनि, दुःशासन और कर्ण आदियोंका भी बडा याथातथ्य वर्णन है। दुर्योधनमें भी वीरता, शौर्य और अभिमानके भावोंका अच्छा सम्मिश्रण है।

इस प्रकार महाभारत एक सुन्दर महाकाव्य है। पर कुछ विद्वान् इसे महाकाव्य माननेसे इन्कार करते हैं। वे इसे एक इतिहासग्रंथ मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि व्यासने स्वयं इस ग्रंथको एक इतिहास ही माना है। पर जब उसमें महाकाव्यके अंग उपलब्ध होते हैं, तब उसे महाकाव्य माननेमें क्या आपत्ति हो सकती है? यों तो रामायण भी एक इतिहास ही है, पर प्रायः सभी पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वान् उसे संस्कृत भाषाका आदि महाकाव्य मानते हैं। उसी तरह महाभारत भी इतिहास ग्रंथ होते हुए भी एक महाकाव्य ही है। यह ठीक है कि व्यासने महाकाव्यकी दृष्टिसे इस ग्रंथका प्रणयन नहीं किया, क्योंकि उस समयतक लक्षण ग्रंथोंकी रचना नहीं हो पाई थी। पर उसके बाद जो लक्षण ग्रंथ बने और उन ग्रंथोंमें महाकाव्यकी जो परिभाषा या उसके लक्षण निश्चित किए गए, प्रायः वे भी लक्षण महाभारतमें दृष्टिगोचर होते हैं। इस ग्रंथका प्रधान रस वीर है, पर कहीं कहीं श्रृंगार एवं शान्त भी उसके अंग रूपमें आ जाते हैं। प्रकृति वर्णन भी अनेक स्थलों पर आया है। इस दृष्टिसे महाभारतको एक ऐतिहासिक महाकाव्य मानना अनुचित न होगा।

महाभारतमें श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण महाभारतके उन मुख्य पात्रोंमेंसे एक हैं, कि जिनको यदि निकाल दिया जाए, तो सारा महाभारत एक सारहीन ग्रंथ बन जाए। श्रीकृष्णका वास्तविक दर्शन महाभारतमें ही होता है। श्रीकृष्ण एक चन्द्रवंशी राजा थे। ययाति राजाकी दो रानियां थीं, एक असुरोंके गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दूसरी असुरराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा। देवयानीसे यदु और तुर्वशु और शर्मिष्ठासे द्रुह्यु, अनु और पुरु इस प्रकार पांच पुत्र पैदा हुए। उनमें यदुसे यादववंशकी परम्परा चली और पुरुसे पौरववंशकी। यादववंशमें श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए और पौरववंशमें कौरव और पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई। श्रीकृष्णकी बुआ कुन्तीसे पांच पाण्डव पैदा हुए, इस रीतिसे पाण्डव श्रीकृष्णके फुफेरे भाई थे। यद्यपि यादवकी दृष्टिमें कौरव और पाण्डव समान थे। पर पाण्डवोंने श्रीकृष्णको हमेशा अपने सहायकके रूपमें देखा।

महाभारतकार अवतारवादके समर्थक थे। महाभारतमें ही कथा आती है कि जब पृथ्वी अधर्मके बोझसे बडी आर्त हो गई, तब वह नारायणकी शरणमें गई और उसने अपना दुःख उन्हें सुनाया, तब उन्होंने नरको अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण होनेका आदेश देकर स्वयं कृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए।

श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण होकर उन्होंने अनेक मानवी कर्म किए, पर साथ ही अनेक अलौकिक कर्म भी किए। श्रीकृष्णका मुख्य उद्देश्य था धर्मकी संस्थापना। वे स्वयं कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

× × ×

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"मैं सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंके विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिए प्रत्येक युगमें जन्म लेता हूँ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जब जब धर्मकी हानि होती और अधर्मकी उन्नति होती है, तब तब मैं उत्पन्न होता हूँ।"

इन दो श्लोकोंमें श्रीकृष्णने अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है। कई लोग महाभारत युद्धका प्रणेता श्रीकृष्णको ही ठहराते हैं, उनके इस कथनमें थोडी सचाई भी है। यदि वे चाहते तो महाभारतका युद्ध टल सकता था। पर कृष्णकी दूर-दृष्टिने देख लिया था कि यदि यह युद्ध न हुआ तो धर्म हमेशाके लिए रसातल चला जाएगा। महाभारतमें ही एक प्रसंग है, भीष्मने एक बार श्रीकृष्णसे पूछा— "भगवन्! जब आप जानते थे कि इस युद्धमें महाविनाश उपस्थित होनेवाला है, तब आपने इस युद्धको रुकवा क्यों नहीं दिया?" उत्तरमें भगवान् बोले– "यदि मैं यह युद्ध न करवाता तो सर्वत्र अधर्मका साम्राज्य छा जाता और धर्म बिल्कुल नष्ट हो जाता।" श्रीकृष्ण यह जान गए थे कि धर्मकी स्थापनाके लिए यह युद्ध अनिवार्य था। यद्यपि पहले उन्होंने भी बडे प्रयत्न किए, पर जब दुर्योधन "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव" के दुराग्रहसे राईभर भी नहीं हटा, तब श्रीकृष्णने दुर्योधनकी सभामें यह घोषणा कर दी कि– "दुर्योधन! सुन लो, अब तुम्हारा विनाशकाल उपस्थित हो गया है। तुम्हारे इस दुराग्रहके कारण यह युद्ध अब अनिवार्य है। इसमें जो मानवीसंहार होगा, उसकी जिम्मेदारी तुम पर होगी।" अन्ततक भगवान् इस बातके लिए प्रयत्नशील रहे कि यह युद्ध न हो और दोनों पक्षोंमें सुलह हो जाए।

पर प्रतीत ऐसा होता है कि उनका यह प्रयत्न बाह्यरूप था, अन्दरसे तो वे यही चाहते थे कि यह युद्ध हो अवश्य। वे भारत अखण्ड देखना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि अखण्ड आर्यावर्तमें आर्योंका ही साम्राज्य हो, विदेशियोंका नहीं। महाभारतके समय पूरा आर्यावर्त अनेक खण्डोंमें विभक्त हो चुका था। सभी राजा स्वयंको स्वतंत्र घोषित कर चुके थे और वे सभी राजा अपने अत्याचारोंके लिए विख्यात हो चुके थे। मगधका राजा जरासंध बडा ही अत्याचारी था। उसने अनेकों राजाओंको कैद कर रखा था। दूसरी तरफ हस्तिनापुरका शासन भी बडा कमजोर हो चुका था। उसकी सत्ता अन्य प्रान्तोंके राजाओंपर बडी अप्रभावी सिद्ध हो रही थी। धृतराष्ट्र केवल नाममात्रके लिए राजा रह गया था, सारी शासन सत्ता उसके पुत्र दुर्योधनके हाथमें आ चुकी थी। पर वह भी गांधारके राजा शकुनिके हाथका कठपुतली मात्र था। शकुनि जैसा चाहता, वैसा दुर्योधन करता जाता था। इस प्रकार दुर्योधन की आडमें शकुनि ही राज्य कर रहा था। या कहा जा सकता है कि उस समय आर्यावर्त पर गांधार देशका एक विदेशी राजा ही शासन कर रहा था। यदि युद्ध न होता और सारे भारतकी सत्ता दुर्योधनके हाथमें चली जाती, तो एक दिन ऐसा आता कि जब सम्पूर्ण आर्यावर्त गांधार राज्यका एक अंग बन जाता। दूरदर्शी श्रीकृष्ण इस बातको जान गए थे। इसलिए इस युद्धके द्वारा सभी देशी विदेशी राजाओंका संहार करवा कर आर्यावर्तमें आर्योंके चक्रवर्ती साम्राज्यकी स्थापना की। इस प्रकार श्रीकृष्णके सामने भारतके अखण्ड-ताकी कल्पना थी। वे हर दृष्टिसे भारतकी अखण्डताके अभिलाषी थे। महाभारत युद्धके बाद श्रीकृष्णका जीवन अज्ञातसा है। उस समयके जीवनपर प्रकाश डालते हुए गुजराती कवि श्री दलपतरामने "हरिसंहिता" के नामसे एक काव्यकी रचना शुरु की, पर बीचमें ही उनकी मृत्यु हो जानेके कारण वह रचना अधूरी ही रह गई। उसमें कविने लिखा है, (संभव है कि कविकल्पना इसमें अधिक रही हो) कि युद्धके बाद श्रीकृष्णने शस्त्रसंन्यास ले लिया और तीर्थयात्राके लिए चल पडे। सभी तीर्थोंकी यात्रा करनेके बाद वे प्रभासपत्तन पहुंचे, जहां एक व्याधके बाणसे उनकी मृत्यु हो गई। वहां कवि यह निष्कर्ष निकालता है कि युद्धके बाद राजनैतिक दृष्टया सारा आर्यावर्त अखण्ड हो चुका था, पर सांस्कृतिक दृष्टया अभी नहीं हो पाया था। इसलिए श्रीकृष्णने सारे भारतको सांस्कृतिक दृष्टिसे भी अखण्ड बना-नेके लिए तीर्थयात्रा की थी। इस काममें वे सफल भी हुए। यही कारण था कि राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे यह भारत अनेक सदियोंतक अखण्ड रहा।

महाभारतका रत्न-गीता

महाभारतका मूल्य यद्यपि सर्वत्र ही देखा जा सकता है, पर श्रीकृष्णकी गीताने इस महाकाव्यको देशों विदेशोंमें अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। सभी यह स्वीकार करते हैं कि गीता एक अद्वितीय ग्रंथ है। यही ग्रंथ है कि जिसका अनेकों विदेशी भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। संभवतः सर्वाधिक साहित्य भी इसी पर लिखा गया है।

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाभारतमें श्रीकृष्ण सर्वत्र एक राजनीतिज्ञके रूपमें सामने आते हैं, पर गीतामें वे एक सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकमें रूपमें दिखाई देते हैं। गीता एक कर्मयोगीके द्वारा अपने कर्तव्यसे विस्मृत या विमुख एक कर्मयोगीको कर्मयोगका उपदेश है। गीताको केवल एक अध्यात्मग्रंथ मानना उस ग्रंथके, श्रीकृष्णके और व्यासके साथ अन्याय करना है। गीताके द्वारा कृष्णने एक संसारसे दूर भागनेवाले कर्तव्यपराङ्मुख वीरको इसी संसारमें रहकर कार्य करनेकी प्रेरणा दी। वह गीता मनुष्यको जंगलमें जाकर तपस्या करनेके लिए नहीं कहती, अपितु उसे इसी संसारमें रहकर अपने कर्तव्य करनेकी शिक्षा देती है! अतः उसे एक अध्यात्मशास्त्र कहनेकी अपेक्षा एक कर्तव्यशास्त्र या नीतिशास्त्र (An ethical treatise) कहना अधिक उपयुक्त होगा। कहना अनुचित न होगा कि यदि भगवान्‌ने अर्जुनको गीता न सुनाई होती, तो संभवतः महाभारत युद्ध होता ही नहीं और यदि होता भी तो कुछ और ही परिणाम आता।

श्रीकृष्णको पता था कि पाण्डवोंकी विजय निश्चित है, क्योंकि वे जानते थे कि "यतो धर्मः ततो जयः" जहाँ धर्म होता है, वहीं विजय होती है। इसीलिए उन्होंने पाण्डव अर्जुनको युद्धके लिए प्रेरित किया। महाभारतकार व्यास भी इस तथ्यसे भली भांति परिचित थे। इसीलिए वे गीताके अन्तमें कहते हैं–

यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

अर्थात् "जिस पक्षमें योगेश्वर कृष्ण हैं और महा धनुर्धारी अर्जुन हैं, उसी पक्षमें श्री, विजय और ऐश्वर्यकी प्रतिष्ठा रहेगी, यह मेरा निश्चित मत है।"

महाभारतमें श्रीकृष्ण बुद्धि एवं अर्जुन शक्तिके प्रतीक हैं। जिस राष्ट्रमें बुद्धि और शक्ति होगी, वह राष्ट्र हमेशा उन्नत रहेगा। इन्हीं दोनों शक्तियोंके लिए वेदोंमें ब्रह्म और क्षत्र शब्द आए हैं। वेदका मंत्र है–

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
(यजु. २०।२५)

"जिस देशमें ब्रह्मशक्ति अर्थात् बुद्धिशक्ति और क्षात्रशक्ति अर्थात् शारीरिकशक्ति दोनों साथ साथ उत्तम रीतिसे चलते हैं, वही देश पुण्यशाली होता है।"

इस बातको महाभारतकार भी जान गए थे। इस प्रकार महाभारतमें श्रीकृष्ण राजनीतिज्ञ, योगेश्वर, दार्शनिक आदि अनेकों रूपोंमें दृष्टिगोचर होते हैं।

क्या महाभारत काल्पनिक है?

महाभारतके सम्बन्धके अनेक विचारोंमें एक विचार यह भी है कि महाभारत एक कवि कल्पना है। इस विचारका मुख्य आधार है पात्रोंके नाम। महाभारतमें नाम मुख्यतया वैय्यक्तिक न होकर देशके ऊपर रखे गए हैं, उदाहरणार्थ-गांधारी गांधारदेशके राजाकी पुत्री होनेके कारण उसका नाम था। दूसरेका राज्य हर लेनेके कारण धृतराष्ट्र था। दुःशासन, दुर्योधन, दुःशला आदि नाम भी सार्थक नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार पांचाल देशके राजा द्रुपदकी पुत्री होनेके कारण द्रौपदी (द्रुपदस्यापत्यं द्रौपदी), आदि नाम कुछ अजीबसे लगते हैं। इसलिए लोगोंका विचार है कि यह महाभारत एक कवि कल्पना है। पर उनका यह विचार निराधार ही प्रतीत होता है। क्योंकि व्यवहारमें ऐसा भी देखा जाता है कि कई महापुरुष अपने उपनामसे ही ऐसे प्रसिद्ध हो गए हैं कि उनके मूल नामका ही पता नहीं लगता।

महाराष्ट्रमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे लोकमान्य तिलक, इनका पूरा नाम बाल गंगाधर तिलक, होते हुए भी ये इतिहासमें तिलकके नामसे ज्यादा प्रसिद्ध हैं। वीर सावरकर भी अपने गांव सावरके नामसे ज्यादा प्रसिद्ध हैं। पर इन नामोंके आधार पर इन व्यक्तियोंको काल्पनिक सिद्ध करना बड़ा कठिन काम है। इसी तरह महाभारत कालमें भी देशके नाम पर व्यक्तियोंके नाम रखने की प्रथा थी।

इसके अलावा महाभारत इतिहासके रूपमें ज्यादा प्रसिद्ध है। इसमें काव्यत्व है अवश्य, पर काव्यत्व गौण है और इतिहासत्व प्रधान। इतिहास घटना प्रधान होता है, कल्पना प्रधान नहीं। महाभारतका इतिहासत्व स्वयं महाभारतमें प्रतिपादित है—

जयो नामेतिहासोऽयम् (स्वर्गारोहणपर्व)

इतिहासका अर्थ ही "इति ह आस" है, अर्थात् भूत कालमें ऐसा हुआ था। अतीतकालमें हुई घटनाओंका वर्णन महाभारतमें है। डॉ. सी. वी. वैद्यने अपने ग्रन्थ 'महाभारत ऍ क्रिटिसिज्म' में महाभारतको काव्य और इतिहास दोनों सिद्ध किया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाभारतके रचयिता एवं रचनाकाल

महाभारतकी घटना भारतीय इतिहासमें एक अद्वितीय घटना है। या यह भी कहा जा सकता है कि यहींसे भारतीय इतिहासकी अखण्ड परम्परा चली आती है। महाभारतके कालको निश्चित करना बडी टेढी खीर है। क्योंकि महाभारतके आजतक तीन संस्करण हो चुके हैं (जैसा कि हम पूर्व पृष्ठोंमें बता आए हैं) इन तीन संस्करणोंमें प्रथम संस्करण स्वयं व्यासका था और ये व्यास स्वयं महाभारतके समय मौजूद थे।

व्यासका मूल नाम कृष्ण था। इनके पिता महर्षि पराशर थे। इनके जन्मका वृत्तान्त महाभारतके आदि पर्वमें ही आया है। महर्षि पराशर तीर्थयात्रा करते हुए यमुना नदीके किनारे आये। वहां उस समय धीवरोंके राजा दाशराजकी कन्या सत्यवती नाव खे रही थी। महर्षि उस पर बैठे। नावमें सत्यवतीकी सुन्दरता पर मोहित होकर उन्होंने उसकी कामना की। चूंकि सत्यवती धीवरकी कन्या थी, अतः उसके शरीरसे हमेशा मछलीकी दुर्गन्ध निकला करती थी, इसलिए उसे मत्स्यगंधा भी कहते थे। महर्षिकी अभिलाषा जानकर वह संकोचमें पडी। वह बोली कि नदीके दोनों तरफ महर्षि गण स्नान आदि कर रहे हैं, इस स्थितिमें यह कैसे संभव है? तब पराशरने अपनी तपस्याके प्रभावसे चारों ओर कोहरा पैदा कर दिया और उससे चारों ओर अन्धकार सा छा गया। फिर महर्षिने उसे यह भी वरदान दिया कि पुत्रोत्पत्तिके बाद वह फिरसे कन्या बन जाएगी और उसके शरीरसे दुर्गन्धीके बजाए सुगंधी निकला करेगी। यह सुगंध एक योजन १२ से भी अनुभव की जा सकती थी। इसीलिए सत्यवतीका नाम योजनगंधा भी पड गया। इस सत्यवतीसे पराशरने यमुनाके एक द्वीपपर एक पुत्र पैदा किया। घने अन्धकारमें वीर्याधान करनेके कारण यह पुत्र एकदम कृष्ण वर्णका हुआ, इसलिए इसका नाम कृष्ण पडा, और चूंकि यमुनाके एक द्वीप पर जन्म हुआ, इसलिए ये द्वैपायनके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने वेदोंकी व्यवस्था की अर्थात् विषयके अनुसार वेदोंको अलग अलग किया, इसलिए इनका नाम व्यास पडा। १३ ये ही महाभारतके मूल रचयिता माने जाते हैं। कई विद्वान् इनके अस्तित्वमें भी सन्देह उपस्थित करते हैं। पर प्राचीन परम्पराके अनुसार ये महाभारत कालमें थे और इन्होंने ही मूल महाभारतकी रचना की थी। इसी प्राचीन परम्पराको हम भी स्वीकार करते हैं।

महाभारत युद्धके एवं ग्रंथके रचना कालमें बडी अटकल बाजियां हैं। सौति द्वारा किए गए महाभारतके तीसरे संस्करणका काल लगभग निश्चित ही है। लोकमान्य तिलकने इसका काल ईसापूर्व २५० का माना है। इसका अर्थ यह है कि सौतिका काल २५० से १०० ईसा पूर्वके मध्यमें माना जा सकता है।

वैशम्पायनका काल जनमेजयका काल ही है। क्योंकि वैशम्पायनने ही यह महाभारत जनमेजयको सुनाया था। जनमेजयका काल ईसा पूर्व ३००० के आसपास माना जा सकता है। पर कई विद्वान् वैशम्पायनका काल १४०० ईसापूर्वके आसपास मानते हैं।

महाभारत युद्धका काल प्राचीन भारतीय परम्पराके अनुसार द्वापर और कलियुगका सन्धिकाल है। भारतीय गणनाके अनुसार कलियुगको शुरु हुए आज करीब ५००० वर्ष हो चुके हैं। इसका अर्थ यह है कि महाभारत युद्धको भी करीब इतने ही वर्ष हो गए होंगे। कतिपय भारतीय विद्वानोंके अनुसार ईसापूर्व ३१०० के आसपास यह युद्ध हुआ था। रायबहादुर सी. वी. वैद्यने भी इसी कालको प्रामाणिक माना है। इस प्रकार ईसा पूर्वके ३१०० और ईसा बादके १९६७ बरस मिलाकर करीब ५००० वर्षोंकी हमारी काल गणना ठीक बैठती है।

इसके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाभारतका युद्ध ईसापूर्व ३१०० के आसपास हुआ और उस युद्धका और कौरव पाण्डवोंका आंखों देखा इतिहास व्यासने जय नामक एक छोटेसे ग्रंथमें किया। जिसे ईसा पूर्व ३००० के आसपास वैशम्पायनने परिवर्धित करके सर्पसत्रके अवसर पर राजा जनमेजयको सुनाया। तत्पश्चात् उसके अनेक वर्षोंके बाद ईसापूर्व २५० या ३०० के आसपास सौतिने फिर उसमें परिवर्धन करके नैमिषारण्यमें यज्ञके अवसरपर शौनकको सुनाया।

---

१२ चार कोसका एक योजन और २ मीलका एक कोस = ८ मीलका एक योजन.

१३ वेदं विव्यास यस्मात्तु व्यास इत्यभिधीयते।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाभारतके पर्वविभाग एवं श्लोक संख्या

हो सकता है कि सौतिके संस्करणतक अनेक श्लोक मिला दिए गए हों, पर सौतिके बाद उसमें प्रक्षेप करना असंभवसा हो गया। क्योंकि सौतिने अपने अनुक्रमणिका अध्यायमें पर्व और प्रत्येक पर्वके अन्तर्गत अध्याय एवं श्लोकोंकी संख्या भी दे दी है। इसलिए उसके बाद प्रक्षिप्त श्लोकोंकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आज महाभारतके नीलकण्ठ, कुम्भकोणं और भाण्डारकर पूनाके संस्करण मिलते हैं इन संस्करणोंमें भाण्डारकर ऑरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूटका संस्करण सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। इन तीनों संस्करणोंमें उपलब्ध अध्यायों एवं श्लोकोंकी संख्याकी तालिका इस प्रकार है।

पर्व	अनुक्रमणिकोक्त प्रति		नीलकण्ठकी प्रति		कुम्भकोणंकी प्रति		भाण्डारकर ऑरियण्टल रिसर्च इंस्टी० प्रति	
	अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक
आदिपर्व	२२७	८८८४	२३४	८४६६	२६०	१०९९८	२१८	७९८४
सभा०	७८	२५११	८१	२७०२	१०२	४३७७	७२	२५११
वन०	२६९	११६६४	३१५	११८५४	३१५	१४०८१	२६९	११६६४
विराट्०	६७	२०५०	७२	२३२७	७८	३५७५	६७	२०५०
उद्योग०	१८६	६६९८	१९६	६६१८	१९६	६७५२	१८६	६६९८
भीष्म०	११७	५८८४	१२२	५८१७	१२२	५९०८	११७	५५८४
द्रोण०	१७०	८९०९	२०२	९५९३	२०३	१०१२७	१७०	८९०९
कर्ण०	६९	४९६४	६६	४९८७	१०१	४९८६	६९	४९००
शल्य०	५९	३२२०	६५	३६०८	६६	३५९४	५९	३२२०
सौप्तिक०	१८	८७०	१८	८१०	१८	८१५	१८	८७०
स्त्री०	२७	७७५	२७	८२६	२७	८०७	२७	७७५
शान्ति०	३२९	१४७३९	३६६	१३७३२	३७५	१५१५३	३३९	१४५२५
अनुशासन०	१४६	८०००	१६९	७८३९	२७४	१०९८३	१४६	६७२०
आश्वमेधिक०	१०३	३३२०	९२	२८५२	११८	४५४३	१३३	३३२०
आश्रमवासिक०	४२	१५०६	३९	१०८५	४१	१०९८	४२	१५०६
मौसल०	८	३२०	८	२८७	९	३००	८	३००
महाप्रास्थानिक०	३	१२०	३	१०९	३	१११	३	१२०
स्वर्गारोहण०	५	२०९	६	३०७	६	३३७	५	२००
हरिवंश० ×	२६३	१२०००	—	१२०००	—	१२०००	—	१२०००
योग	२३७२	९६८३६		९५८२६		९८५५५		९४२४६

× हरिवंशकी संख्या स्वतंत्र है। यद्यपि यह हमेशा महाभारतमें गिना जाता है, पर वह महाभारतके परिशिष्टके समान होनेके कारण वह हमेशा पृथक् ही रहता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इन उपर्युक्त तीनों संस्करणोंमें भाण्डारकर ऑरियण्टल रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना द्वारा सम्पादित संस्करण ही सर्वाधिक प्रामाणिक एवं प्रक्षेपरहित माना जाता है। इसीलिए हमने इसी संस्करणपर अनुवाद करना उचित समझा। इस संस्करणकी विशेषता यह है कि इसमें शुद्ध पाठके साथ साथ पाठभेद भी फुटनोटमें दे दिए हैं। हमारी भी यही अभिलाषा थी कि हम भी फुटनोटमें पाठभेद देते, पर स्थानाभावके कारण हम वैसा न कर सके, तदर्थ हमें खेद है।

आदिपर्वका सांराश

यह प्रथम पर्व है। इसमें प्रस्तुत संस्करणके अनुसार २१८ अध्याय और ७९८४ श्लोक हैं। इस पर्वमें अनेक उपपर्व हैं। अनुक्रमणिका एवं पर्वकी गणनाके बाद इसकी कथा जनमेजयके सर्पसत्रमें जनमेजयके भाईयोंके द्वारा मारे गए कुत्तेकी माता सरमासे शुरु होती है। तदनन्तर धौम्यके तीन शिष्य अरुण, उपमन्यु और वेदकी कथायें हैं। अपने गुरुकी आज्ञानुसार अरुण खेत पर पानी रोकनेके लिए जाता है और जब वह रुकता नहीं, तब उस जगह स्वयं लेट जाता है। उपमन्यु भी गायोंको चराता है, पर जब गुरुके द्वारा हरएक चीज खानेसे निषिद्ध कर दिया जाता है, तब आकके पत्ते खाकर वह अन्धा होकर एक कुंएमें गिर पडता है, तब अश्विनी आकर उसे दृष्टिदान करते हैं।

वेदका शिष्य उत्तंक अपनी गुरुभार्याके लिए राजा पौष्यसे उसकी स्त्रीसे कंगन मांगने जाता है। लाते समय वह कंगन सर्पराज तक्षकके द्वारा चुरा लिया जाता है। वह फिर नागलोक जाकर उन कंगनोंको प्राप्त करता है और ले जाकर गुरुभार्याको दे देता है। तक्षकके इस कार्यसे असन्तुष्ट होकर उत्तंक सर्पनाश करनेके अभिप्रायसे जनमेजयके पास जाकर उसे सर्पयज्ञ करनेकी प्रेरणा देता है। यहां पौष्यपर्व समाप्त होता है।

इसके बाद पौलोमपर्वमें भृगुपत्नी पुलोमाका राक्षसके द्वारा अपहरण, भृगुका अग्निको शाप, विश्वावसु गन्धर्वके द्वारा मेनकामें उत्पन्न प्रमद्वराका राजा प्रमतिके द्वारा घृताची में उत्पन्न रुरुका विवाह, प्रमद्वराका सांपसे काटे जाकर मर जाना, रुरुका विलाप एवं अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित करना, रुरुके द्वारा सर्पनाशकी प्रतिज्ञा, डुण्डुभकी कथाका वर्णन है।

×

आस्तीक पर्वमें जरत्कारुका गर्तमें अधोमुख अपने पितरोंको देखना, उनके उद्धारके लिए वासुकीकी बहिन जरत्कारुसे विवाह करना, उससे आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न करना, फिर क्रुद्ध होकर अपनी पत्नीको छोड जाना, विनता और कद्रुकी कथा, सर्पों एवं गरुडकी उत्पत्ति, समुद्र मंथनकी कथा, गरुडका स्वर्गसे अमृत लाना, जनमेजयका सर्पयज्ञ और आस्तीकके द्वारा सर्पयज्ञको रोककर वासुकी एवं तक्षककी रक्षाका वर्णन है।

आदिवंशावतरणपर्वमें कृष्ण द्वैपायन व्यासकी उत्पत्ति, शन्तनुकी कथा, शन्तनुसे सत्यवतीका विवाह, भीष्मप्रतिज्ञा, विचित्रवीर्यका विवाह एवं मरण, उसकी रानियां अम्बालिका एवं अम्बिका तथा दासीसे व्यास द्वारा पाण्डु, धृतराष्ट्र एवं विदुरकी उत्पत्ति, पाण्डुका कुन्ती एवं माद्री तथा धृतराष्ट्रका गांधारीसे विवाह, पाण्डुकी प्रार्थना पर कुन्तिसे धर्म, वायु, इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा अश्विनीके द्वारा माद्रीमें नकुल और सहदेवकी उत्पत्ति, धृतराष्ट्रके द्वारा गांधारीसे दुर्योधनादि सौ पुत्रोंकी उत्पत्ति, आदिका वर्णन है,

शकुन्तलोपाख्यानमें दुष्यन्तका कण्वके तपोवनमें जाना, वहां विश्वामित्रसे मेनकामें उत्पन्न शकुन्तलासे दुष्यन्तका गान्धर्व विवाह, कण्वका शकुन्तलाको दुष्यन्तके पास भेजना, दुष्यन्तका अस्वीकार करना, शकुन्तलासे भरतकी उत्पत्ति तथा शकुन्तला–दुष्यन्तका मिलन आदिका वर्णन है।

ययाति उपाख्यानमें ययातिका असुरगुरु शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी एवं असुरराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठासे विवाह, देवयानीसे युद्ध और तुर्वशुकी तथा शर्मिष्ठासे द्रुह्यु, अनु और पुरुकी उत्पत्ति, ययातिका अपने पुत्रोंसे युवावस्था मांगना, सबके मना कर देने पर शाप देना, पुरुके युवावस्था देने पर उसे राज्याधिकारी बनाना, अन्तमें विषयभोगमें तृप्ति न देखकर पुरुको राज्य देकर ययातिका तपस्याके लिए वन चले जानेका वर्णन है।

संभवपर्वमें पाण्डुके पांच पुत्रों एवं धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। इन सबमें बलवान् भीमका अन्य कौरवोंको सताना, भीमको मारनेके लिए दुर्योधन और शकुनिके द्वारा उपाय, पाण्डुकी मृत्यु, माद्रीका सती होना, द्रोणाचार्यकी कथा, एकलव्यकी कथा, अर्जुनकी प्रशंसा, अर्जुनके द्वारा गुरुदक्षिणाके रूपमें द्रुपदको पकडकर लाना, द्रुपदका संताप, आदिका वर्णन है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जातुगृहदाहपर्वमें पाण्डवोंकी वारणावत यात्रा, वहां दुर्योधनका अपने मंत्री पुरोचनको भेजकर लाक्षागृह बनवाना, उसमें पाण्डवोंको ठहराना, विदुर द्वारा पहले ही पाण्डवोंको सावधान कर देना, सुरंग खोदकर उसमेंसे बच निकलना, आदि बातोंका वर्णन है।

हिडिम्ब वधपर्वमें वारणावतके लाक्षागृहसे बचकर निकलने पर सभी पाण्डवों और कुन्तीका एक वनमें रहना, वहां अपने भाई हिडिम्बके भेजे जानेपर हिडिम्बाका आना, भीमसेन पर उसका मोहित होना, तब स्वयं हिडिम्बका आना, भीमका उससे युद्ध होकर उसका मारा जाना, हिडिम्बाकी भीमसे विवाहकी प्रार्थना, कुन्तीकी आज्ञा पर भीमका हिडिम्बाके साथ विवाह और घटोत्कचकी उत्पत्तिका वर्णन है।

बकवधपर्वमें पाण्डवों और कुन्तीका घूमते घामते एकचक्रा नगरीमें जाना, वहां एक ब्राह्मणके यहां छिपकर रहना, एक दिन उस ब्राह्मण परिवारका रोदन सुनकर कुन्तीका जाकर पूछना, ब्राह्मणीके द्वारा बकासुरके भोजनादिका वर्णन, कुन्तीका भीमको भेजनेका आग्रह करना, भीमका भोजनसामग्री लेकर बकासुरके पास जाना, बकासुरके साथ भीमका युद्ध और बकासुरके मारे जानेका वर्णन है।

चैत्ररथपर्वमें मार्गमें जाते हुए पाण्डवोंको जलमें गन्धर्वियोंके साथ विहार करते हुए गन्धर्वराज चित्ररथका देखकर क्रोधित होना, अर्जुनसे युद्ध और चित्ररथका प्रसन्न होकर अर्जुनको शस्त्रास्त्र देना आदिका वर्णन है।

वासिष्ठोपाख्यानमें राजा विश्वामित्रका ससैन्य वसिष्ठके आश्रममें आना, वसिष्ठका आदर सत्कार करना, आश्रममें विश्वामित्रका कामधेनुको देखकर उसे मांगना, वसिष्ठका इन्कार कर देना, क्रुद्ध होकर विश्वामित्रका आश्रमपर आक्रमण करके उसे उजाड देना, गायका जबर्दस्ती लेजानेका प्रयास, गायके द्वारा सेनाकी उत्पत्ति, विश्वामित्रकी सेनासे युद्ध और विश्वामित्रका पराभव, ब्रह्मतेज देखकर विश्वामित्रका शस्त्रत्याग करके तपस्या करके ब्रह्मर्षिपदकी प्राप्ति करना आदिका वर्णन है।

द्रौपदी स्वयंवर पर्वमें एकचक्रा नगरीमें पाण्डवोंके सामने एक ब्राह्मणके द्वारा द्रौपदी और उसके भाई धृष्टद्युम्नका यज्ञसे उत्पत्तिकी कथा सुनाना, धृष्टद्युम्नको प्राप्त करनेके पीछे राजा द्रुपदका उद्देश्य, द्रोणाचार्यको मारनेवाले पुत्रको पानेकी इच्छासे द्रुपदका यज्ञ करना, द्रौपदीकी सुन्दरताका वर्णन, उसके स्वयंवरकी सूचना देकर पाण्डवोंको उस स्वयंवरमें जानेकी सलाह देना, पांचाल नगरमें जाकर पाण्डवोंका एक कुम्हारके घर जाकर ब्राह्मणके छद्मवेषमें रहना, स्वयंवरमें अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध, द्रौपदीका अर्जुनको वरमाला पहनाते देखकर राजाओंका क्रोधित होकर द्रुपदपर आक्रमण, भीम अर्जुनसे दुर्योधन, कर्ण आदिका युद्ध एवं कर्णका पराभव, अर्जुनका द्रौपदीके साथ अपने घर आना, कुन्तीको भिक्षाकी सूचना देना, कुन्तीके द्वारा पांचों पाण्डवोंके द्वारा भोगनेकी आज्ञा, धृष्टद्युम्नके द्वारा पाण्डवोंकी पहचान, द्रुपदका प्रसन्न होना, व्यास द्वारा द्रौपदीको पांच पतियोंके विधानकी कहानी सुनाना और पांचों पाण्डवोंसे द्रौपदीके विवाहका वर्णन है।

विदुरागमनपर्वमें पाण्डवोंको जीवित दशामें जानकर धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदिका दुःखी होना, विदुरका प्रसन्न होना, वृद्धोंके समझानेपर धृतराष्ट्रको इन्द्रप्रस्थका प्रदेश देना स्वीकार करना, पाण्डवोंको बुला लानेके लिए विदुरको भेजना, पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आनेका वर्णन है।

राज्यलम्भपर्वमें धृतराष्ट्रके द्वारा इन्द्रप्रस्थका प्रदेश देना, युधिष्ठिरके द्वारा स्वीकार करके इन्द्रप्रस्थको अपनी राजधानी बनानेका वर्णन है।

सुन्दोपसुन्दोपाख्यानमें नारदका आकर पांचों भाईयोंको व्यवहारकी बातें बताना, सुन्द उपसुन्द दो असुर भाइयोंका वर पाकर लोकोंको सताना, डर कर देवोंका ब्रह्माकी शरणमें जाना, ब्रह्माके आदेशपर विश्वकर्माका तिलोत्तमा नामक एक सुन्दरीका निर्माण, सुन्दरीको देखकर सुन्दउपसुन्दका परस्पर युद्ध एवं दोनोंके मारे जानेका वर्णन है।

अर्जुन वनवासपर्वमें नारदके समझानेपर पांचों पाण्डवोंमें शर्त निश्चित करना कि यदि द्रौपदी किसी साथ बैठी हो और उस समय यदि कोई दूसरा पाण्डव उनके सामने चला जाए, तो वह प्रायश्चित्तके रूपमें बारह वर्षके लिए वनवास करे, युधिष्ठिरका द्रौपदीके साथ बैठना, ब्राह्मणकी गायको चुराया जाना, गाय छुडानेके लिए अर्जुनका शस्त्र लेनेके लिए युधिष्ठिरके कमरेमें घुसना, चोरोंसे गाय छुडा लाना और प्रायश्चित्तके रूपमें युधिष्ठिरकी आज्ञासे वनके लिए अर्जुनका प्रस्थान, वनमें अर्जुनका नागलोककी कन्या उलूपीसे समागम, चित्रांगदासे समागम, बभ्रुवाहनकी उत्पत्ति और शापके कारण जलचर योनिको प्राप्त हुए पांच अप्सराओंका उद्धार आदिका वर्णन है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुभद्राहरणपर्वमें घूमते घामते अर्जुनका प्रभासतीर्थमें गमन, श्रीकृष्णका वहां जाकर अर्जुनसे मिलना, उन्हें द्वारकामें लाना, रैवतक पर्वतपर यादवोंका उत्सव, उत्सवमें अर्जुनका कृष्णकी बहिन सुभद्राको देखकर उसपर मोहित होना, कृष्ण और युधिष्ठिरकी सहमतिसे अर्जुनका सुभद्राको हर ले जाना, बलराम आदि वृष्णियोंका क्रुद्ध होना, कृष्णका उन्हें समझाकर शान्त करना, फिर बलराम आदिका दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थको जाना आदिका वर्णन है।

खाण्डवदाहपर्वमें कृष्ण और अर्जुनके पास अग्निका आना, और खाण्डववनको जलानेके लिए उसकी अर्जुन एवं कृष्णसे प्रार्थना एवं अग्निका अर्जुनको गाण्डीव धनुष, तूणीर और रथ तथा श्रीकृष्णको पांचजन्य शंख एवं चक्र प्रदान करना, अर्जुन एवं कृष्णका खाण्डवको जलाना, देवों और इन्द्रके साथ कृष्ण और अर्जुनका युद्ध, देवों एवं इन्द्रका पराभव, मयकी प्रार्थनापर अर्जुनने द्वारा उसे जीवन दान और अग्निका प्रसन्न होकर कृष्ण अर्जुनको वर देनेका वर्णन है।

इस प्रकार आदिपर्व समाप्त होता है।

आभार प्रदर्शन

आदिपर्वका हिन्दी अनुवाद पाठकोंके सामने प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इसके प्रकाशनके लिए भारतसरकारके शिक्षा मंत्रालयने आर्थिक सहायता प्रदान करके जो महान् कार्य किया है, उसके लिए हम हृदयसे आभारी हैं।

इस प्रकाशनके लिए हम श्री सेठ गंगाप्रसादजी बिरला का भी उपकार नहीं भूल सकते। उन्होंने कागज देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

यह अनुवाद हम भाण्डारकर प्राच्यविद्याशोध संस्थान पूनाके द्वारा प्रकाशित महाभारतके संस्करणके आधार पर छाप रहे हैं इसके लिए उस संस्थाके अधिकारियोंकी अनुमति आवश्यक थी। उस संस्थाके डाइरेक्टर डॉ. रा. ना. दाण्डेकरसे हमने प्रार्थना की। उन्होंने भी हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करके अपनी अनुमति देकर जो महान् उपकार किया उसके लिए हम डॉ. रा. ना. दाण्डेकर तथा उस संस्थाके अन्य अधिकारियोंके अत्यन्त आभारी हैं एवं अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कार्यमें अन्योंके भी, जिन्होंने हमारी सहायता की, हम आभारी हैं।

अन्तमें, प्रकाशनके दौरान अत्यधिक सावधानी रखनेके बावजूद भी ग्रंथमें जो त्रुटियां रह गई हों, तदर्थ हम पाठकोंसे सहानुभूतिकी कामना करते हैं।

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी
[जि. बलसाड] (गुजरात)

पं. श्री. दा. सातवलेकर
प्रधान सम्पादक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आदिपर्व

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाभारत

आदिपर्व।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिये नमस्कार हो ।
ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिये ॥

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सूतः पौराणिको
नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ॥ १ ॥

एक समय लोमहर्षणके पुत्र सूतवंशी, पौराणिक उग्रश्रवा नैमिषारण्यमें कुलके स्वामी श्री शौनकजीके द्वादशवार्षिक–यज्ञमें दीक्षित ॥ १ ॥

समासीनानभ्यगच्छद्ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान् ।
विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः ॥ २ ॥

परम सुखसे बैठे हुए तथा व्रतसे तपे हुए बडे बडे ऋषियोंके पास विनयसे नम्र होकर जा पहुंचे ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनः।
चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥ ३ ॥

नैमिषारण्यमें रहनेवाले उन ऋषियोंके आश्रममें उग्रश्रवाके पहुंचनेपर, तपस्वी लोग अद्भुत कथा सुननेके लिये वहां आकर उनको चारों ओरसे घेरकर बैठ गए ॥ ३ ॥

अभिवाद्य मुनींस्तांस्तु सर्वानेव कृताञ्जलिः।
अपृच्छत्स तपोवृद्धिं सद्भिश्चैवाभिनन्दितः ॥ ४ ॥

सज्जनों द्वारा पूजित होकर सूत-पुत्रने उन सब मुनि और तपस्वियोंको प्रणाम करके दोनों हाथ जोडकर उनकी तपोवृद्धिका समाचार पूछा ॥ ४ ॥

अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव तपस्विषु।
निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लोमहर्षणिः ॥ ५ ॥

उसके बाद उन सब तपस्वियोंके बैठनेके पश्चात् लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा नम्रभावसे अपने लिये बताए गए आसनपर जा विराजे ॥ ५ ॥

सुखासीनं ततस्तं तु विश्रान्तमुपलक्ष्य च।
अथापृच्छदृषिस्तत्र कश्चित्प्रस्तावयन्कथाः ॥ ६ ॥

उन्हें सुखसे बैठे हुए और स्वस्थचित्त देखकर किसी ऋषिने कथाका प्रस्ताव करते हुए पूछा ॥ ६ ॥

कुत आगम्यते सौते क्व चायं विहृतस्त्वया।
कालः कमलपत्राक्ष शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ ७ ॥

हे कमलकी पंखुडियोंके समान आंखोंवाले सूत-पुत्र! इस समय आपका आना कहांसे हुआ और अबतक आप कहां कहां घूमे? यह सब वृत्तान्त पूछनेवाले मुझसे कहिए ॥ ७ ॥

सूत उवाच

जनमेजयस्य राजर्षेः सर्पसत्रे महात्मनः।
समीपे पार्थिवेन्द्रस्य सम्यक्पारिक्षितस्य च ॥ ८ ॥

सूत बोले- हे चिरञ्जीव महर्षियो! महात्मा, राजर्षि, राजाओंमें इन्द्रके सदृश तथा परीक्षितके पुत्र जनमेजयके सर्पयज्ञमें ॥ ८ ॥

कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः।
कथिताश्चापि विधिवद्या वैशंपायनेन वै ॥ ९ ॥

वैशंपायन मुनिने वेदव्यास महाराजके द्वारा कही गई जो भांति-भांतिकी मनोहर पुण्य-कथायें विधिपूर्वक सुनाई थीं ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः ।
बहूनि संपरिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च ॥ १० ॥

अपूर्व अर्थोंसे भरी हुई उन सब महाभारतीय कथाओंको सुन लेनेके पश्चात् नाना तीर्थ और अनेक देशोंमें घूमघाम कर मैं ॥ १० ॥

समन्तपञ्चकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम् ।
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत्पुरा ।
पाण्डवानां कुरूणां च सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ ११ ॥

उस समन्तपञ्चक नामक पवित्र स्थानपर पहुंचा, जहां ब्राह्मण लोग रहते हैं और जहां पहिले कौरव, पाण्डव और दूसरे सब राजाओंमें लडाई हुई थी ॥ ११ ॥

दिदृक्षुरागतस्तस्मात्समीपं भवतामिह ।
आयुष्मन्तः सर्व एव ब्रह्मभूता हि मे मताः ॥ १२ ॥

वहांसे आप लोगोंको देखनेकी इच्छासे आपके पास यहां आया हूं । हे दीर्घायुवाले ऋषियो ! मैं आप सब लोगोंको ब्रह्म ही मानता हूं ॥ १२ ॥

अस्मिन्यज्ञे महाभागाः सूर्यपावकवर्चसः ।
कृताभिषेकाः शुचयः कृतजप्या हुताग्नयः ।
भवन्त आसते स्वस्था ब्रवीमि किमहं द्विजाः ॥ १३ ॥

सूर्य और अग्निके समान तेजोमय, महान् भाग्यवाले आप लोग इस यज्ञमें अभिषिक्त हुए हैं और नहा धोकर शुद्ध होकरके, जप करके तथा अग्नियोंमें आहुति देकर आसनोंपर सुखसे बैठे हैं; अतः हे ब्राह्मणो ! क्या मैं ॥ १३ ॥

पुराणसंश्रिताः पुण्याः कथा वा धर्मसंश्रिताः ।
इतिवृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम् ॥ १४ ॥

इसी समय पुराणोंकी धर्मयुक्त पवित्र कथा और नरेशों और महात्मा ऋषियोंका इतिहास सुनाऊं ॥ १४ ॥

ऋषय ऊचुः

द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा ।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम् ॥ १५ ॥

ऋषियोंने कहा– महर्षि द्वैपायन जो पुराण कह गये हैं, जिसको सुनकर देवता और ब्रह्मर्षियोंने भी बडी प्रशंसा की है ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थन्यायुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च ॥ १६ ॥

उस कथाओंमें श्रेष्ठ, विचित्रपद और पर्वयुक्त, सूक्ष्मार्थ न्यायसे युक्त तथा वेदार्थसे सुशोभित ॥ १६ ॥

भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम् ॥ १७ ॥

महाभारतके इतिहासकी पुण्यदायक, अनेक ग्रंथोंके अर्थसे युक्त, उत्तम संस्कारोंसे युक्त, ब्रह्म द्वारा कही गई तथा अनेक शास्त्रोंके सारसे युक्त कथाको ॥ १७ ॥

जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशंपायन उक्तवान्।
यथावत्स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया ॥ १८ ॥

राजा जनमेजयके यज्ञमें महर्षि द्वैपायनकी आज्ञासे ऋषि वैशम्पायनने प्रसन्न मनसे ठीक ठीक कह सुनाया था ॥ १८ ॥

वेदैश्चतुर्भिः समितां व्यासस्याद्भुतकर्मणः।
संहितां श्रोतुमिच्छामो धर्म्यां पापभयापहाम् ॥ १९ ॥

अद्भुत कर्म करनेवाले महाराज वेदव्यासकी रची हुई उस चारों वेदोंसे सम्मत पापभय-हारी, धर्मसे युक्त संहिताको हम सुनना चाहते हैं ॥ १९ ॥

सूत उवाच

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ २० ॥

सूत बोले— विश्वके आदि पुरुष, ईश्वर, बहुतों द्वारा बुलाए जानेवाले तथा अनेकों प्राणियों द्वारा स्तुत्य, सत्य, अद्वितीय, अविनाशी, महान्, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन ॥ २० ॥

असच्च सच्चैव च यद्विश्वं सदसतः परम्।
परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥ २१ ॥

जिसका रचा हुआ विश्व असत्, सत् और सदसत्से भिन्न है; सब स्थूल और सूक्ष्म वस्तु रचनेवाले परम पुराण, अविनाशी ॥ २१ ॥

मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ २२ ॥

मंगलके देनेवाले और मंगलरूप, विश्वभरमें व्याप्त, उपासनायोग्य, पापरहित, शुद्ध, इन्द्रियोंके अधीश और चराचरके गुरु हरिको प्रणाम करके ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महर्षेः पूजितस्येह सर्वलोके महात्मनः ।
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यामिततेजसः ॥ २३ ॥

सब लोगोंके पूजनीय, महात्मा और अत्यधिक तेजस्वी महाराज महर्षि वेदव्यासका सम्पूर्ण मत कहूंगा ॥ २३ ॥

आचख्युः कवयः केचित्संप्रत्याचक्षते परे ।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ॥ २४ ॥

किन्हीं किन्हीं कवियोंने भूमण्डलमें पहिले भी इस इतिहासको कहा है, अब भी कोई इसको कहते हैं, और आगे भी बहुतेरे कहेंगे ॥ २४ ॥

इदं तु त्रिषु लोकेषु महज्ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ।
विस्तरैश्च समासैश्च धार्यते यद्द्विजातिभिः ॥ २५ ॥

अनन्त ज्ञानका देनेवाला यह इतिहास तीनों लोकोंमें प्रशंसित हुआ है, द्विजातियोंके लोग इसको संक्षेपमें और विस्तारपूर्वक धारण करते हैं ॥ २५ ॥

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः ।
छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम् ॥ २६ ॥

यह महाभारत ग्रन्थ अच्छे सुललित शब्द और दिव्य श्रेष्ठ मनुष्योंके सदाचारोंसे सुशोभित तथा अनेक सुन्दर सुन्दर छन्द और वृत्तोंसे युक्त है, इसीलिये विद्वान् लोगोंको यह बहुत प्रिय है ॥ २६ ॥

निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते ।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमक्षयम् ॥ २७ ॥

प्रारंभमें घोर अंधेरेसे घिरे हुए और उजाला तथा ज्योतिसे बिलकुल रहित इस लोकमें जीवोंका बीजरूप अविनाशी एक बडा अण्डा उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥

युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते ।
यस्मिंस्तच्छ्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम् ॥ २८ ॥

सृष्टिके आदिमें वह कारण रूप था, पण्डित लोग उसीको महान् और दिव्य कहते हैं । सुना जाता है कि जिसमें प्रकाशमान् अविनाशी सनातन ॥ २८ ॥

अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम् ।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत्तत्सदसदात्मकम् ॥ २९ ॥

अद्भुत, अचिन्त्य, सर्वत्र व्याप्त, अव्यक्त, कारणरूप, सूक्ष्म, सत् और असत् रूप ब्रह्म रहता है ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यस्मात्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः।
ब्रह्मा सुरगुरुः स्थाणुर्मनुः कः परमेष्ठ्यथ ॥ ३० ॥

जिससे सब लोकोंके एक पितामह, प्रभु, प्रजापति, ब्रह्मा, देवगुरु, स्थाणु, मनु, परमेष्ठी उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥

प्राचेतसस्तथा दक्षो दक्षपुत्राश्च सप्त ये।
ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥ ३१ ॥

साथ ही प्राचेतस, दक्ष और दक्षके सात पुत्र उनके पश्चात् इक्कीस प्रजापतिओंने जन्म लिया ॥ ३१ ॥

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा यं सर्वमृषयो विदुः।
विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि ॥ ३२ ॥

वह अतर्क्य पुरुष जिसको सब ऋषि जानते हैं और विश्वेदेव, आदित्य, वसु, दो अश्विनी-कुमार ॥ ३२ ॥

यक्षाः साध्याः पिशाचाश्च गुह्यकाः पितरस्तथा।
ततः प्रसूता विद्वांसः शिष्टा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३३ ॥

यक्ष, साध्य, पिशाच, गुह्यक और पितर, विद्वान् तथा पवित्र ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए ॥ ३३॥

राजर्षयश्च बहवः सर्वैः समुदिता गुणैः।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥ ३४ ॥

पश्चात् सब गुणोंसे सुशोभित, बहुतसे राजर्षि, जल, द्यु, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशा ॥ ३४ ॥

संवत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात्।
यच्चान्यदपि तत्सर्वं संभूतं लोकसाक्षिकम् ॥ ३५ ॥

वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि और सब दूसरे लौकिक पदार्थ क्रमसे रचे गये ॥ ३५ ॥

यदिदं दृश्यते किंचिद्भूतं स्थावरजंगमम्।
पुनः संक्षिप्यते सर्वं जगत्प्राप्ते युगक्षये ॥ ३६ ॥

स्थावर और जंगम और यह दृश्यमान् जगत् प्रलयकालके प्राप्त होनेपर फिर लुप्त हो जायगा ॥ ३६ ॥

यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ ३७ ॥

जैसे वसन्त आदि हर ऋतुमें ऋतुओंके चिह्न प्रकट करनेवाले फूल आदि फूल कर, दिन पूरे होने पर फिर गायब हो जाते हैं; वैसे ही युगके आरम्भमें सब पदार्थ रचे जाकर प्रलयकालमें फिर नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमेतदनाद्यन्तं भूतसंहारकारकम् ।
अनादिनिधनं लोके चक्रं संपरिवर्तते ॥ ३८ ॥

इसी भांति सब प्राणियोंको रचने और नाश करनेवाला अनादि अनन्त संसारचक्र विश्वमें सदा बदलता रहता है ॥ ३८ ॥

त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ।
त्रयस्त्रिंशच्च देवानां सृष्टिः संक्षेपलक्षणा ॥ ३९ ॥

तैंतीस सहस्र, तैंतीस सौ और तैंतीस देवताओंकी संक्षेपसे यह सृष्टि है ॥ ३९ ॥

दिवस्पुत्रो बृहद्भानुश्चक्षुरात्मा विभावसुः ।
सविता स ऋचीकोऽर्को भानुराशावहो रविः ॥ ४० ॥

दिवस्पुत्र बृहद्भानु, चक्षुः, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह रवि ॥ ४० ॥

पुत्रा विवस्वतः सर्वे मह्यस्तेषां तथावरः ।
देवभ्राट् तनयस्तस्य तस्मात्सुभ्राडिति स्मृतः ॥ ४१ ॥

विवस्वान्, मह्य यह सब अदितिके पुत्र हुए । इनमें मह्य सबसे छोटे, उनके पुत्र देवभ्राट् और देवभ्राट्के पुत्र सुभ्राट् हुए ॥ ४१ ॥

सुभ्राजस्तु त्रयः पुत्राः प्रजावन्तो बहुश्रुताः ।
दशज्योतिः शतज्योतिः सहस्रज्योतिरात्मवान् ॥४२॥

सुभ्राट्के महाविद्वान् और अनेक पुत्रोंके जन्मदाता दशज्योति, शतज्योति और सहस्रज्योति नामक तीन पुत्र हुए ॥ ४२ ॥

दश पुत्रसहस्राणि दशज्योतेर्महात्मनः ।
ततो दशगुणाश्चान्ये शतज्योतेरिहात्मजाः ॥ ४३ ॥

महात्मा दशज्योतिके दश सहस्र, शतज्योतिके उससे भी दस गुना अर्थात् एक लक्ष ॥४३॥

भूयस्ततो दशगुणाः सहस्रज्योतिषः सुताः ।
तेभ्योऽयं कुरुवंशश्च यदूनां भरतस्य च ॥ ४४ ॥

और सहस्रज्योतिके उससे भी दस गुना अर्थात् दशलक्ष पुत्र उत्पन्न हुए; उन्हीं लोगोंसे कुरुवंश, यदुवंश, भरतवंश उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥

ययातीक्ष्वाकुवंशश्च राजर्षीणां च सर्वशः ।
संभूता बहवो वंशा भूतसर्गाः सविस्तराः ॥ ४५ ॥

ययातिवंश, इक्ष्वाकुवंश और दूसरे अनेक राजर्षिवंश उपजे और वे सब उपजे हुए वंश इस कालमें बहुत फैल गये हैं ॥ ४५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं विविधं च यत्।
वेदयोगं सविज्ञानं धर्मोऽर्थः काम एव च ॥ ४६ ॥

सब भूतमात्रोंके स्थान, धर्म, अर्थ और कामके अनेक तरहके रहस्य, चारों वेद, योगशास्त्र, विज्ञानशास्त्र ॥ ४६ ॥

धर्मकामार्थशास्त्राणि शास्त्राणि विविधानि च।
लोकयात्राविधानं च संभूतं दृष्टवानृषिः ॥ ४७ ॥

धर्म–काम–अर्थके शास्त्र तथा अन्य अनेक शास्त्र, लोगोंके व्यवहार चलानेके उपयोगी अनेक शास्त्र महाराज वेदव्यास ऋषि जानते थे ॥ ४७ ॥

इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥

वह संपूर्ण विषय, व्याख्यासहित सब इतिहास और अनेक भांतिकी कथाएं इस ग्रंथमें कही हैं; सो वही सब विषय इस ग्रंथके लक्षण हैं ॥ ४८ ॥

विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षेपमब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम् ॥ ४९ ॥

इस संसारमें विद्वान् संक्षेप और विस्तार दोनोंको पसन्द करते हैं, इसलिये महाराज वेद-व्यासने इस महान् ज्ञानको संक्षेपमें और विस्तारपूर्वक दोनों तरहसे कहा है ॥ ४९ ॥

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते ॥ ५० ॥

भिन्न भिन्न पण्डित भिन्न भिन्न स्थानसे इस संहिताका आरंभ समझते हैं; कोई कोई विद्वान् इस महाभारतको मनुसे लेकर, कोई कोई आस्तीक पर्वसे और कोई कोई राजा उपरिचरकी कथासे इसका आरंभ समझकर पढने लगते हैं ॥ ५० ॥

विविधं संहिताज्ञानं दीपयन्ति मनीषिणः।
व्याख्यातुं कुशलाः केचिद्ग्रन्थं धारयितुं परे ॥ ५१ ॥

ज्ञानी लोग अनेक उपायोंसे इस संहिताका ज्ञान प्रकाशित करते हैं। उनमें कोई कोई तो इसकी सुन्दर व्याख्या करते हैं और दूसरे कंठस्थ करके धारण करते हैं ॥ ५१ ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥ ५२ ॥

सत्यवतीपुत्र विद्वान् ब्रह्मर्षि व्यासने अपनी तपस्या और ब्रह्मचर्यके प्रभावसे सनातन वेदका विभाग कर इस पवित्र इतिहासको रचा है ॥ ५२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पराशरात्मजो विद्वान्ब्रह्मर्षिः संशितव्रतः ।
मातुर्नियोगाद्धर्मात्मा गांगेयस्य च धीमतः ॥ ५३ ॥

अपनी माता और बुद्धिमान् गंगानन्दन भीष्मकी आज्ञासे पराशरके पुत्र, विद्वान्, ब्रह्मर्षि, धर्मात्मा और व्रतशील ॥ ५३ ॥

क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा ।
त्रीनग्नीनिव कौरव्यांस्त्रयनयामास वीर्यवान् ॥ ५४ ॥

वीर्यवान् कृष्ण द्वैपायनजीने पूर्वकालमें विचित्रवीर्यके क्षेत्र (पत्नी) में तीनों अग्निके समान तेजस्वी तीन कुरुवंशके पुत्र उपजाये थे ॥ ५४ ॥

उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च ।
जगाम तपसे धीमान्पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ ५५ ॥

बुद्धिमान् वेदव्यास महाराज इस प्रकारसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर इन तीन सन्तानोंको जन्म देकर तपस्याके लिये फिर आश्रमको चले गये ॥ ५५ ॥

तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् ।
अब्रवीद्भारतं लोके मानुषेऽस्मिन्महानृषिः ॥ ५६ ॥

आगे उन पुत्रोंके वृद्ध होकर परलोक सिधार जाने पर, महान् ऋषि वेदव्यासजीने मनुष्य लोकमें महाभारतको प्रकट किया ॥ ५६ ॥

जनमेजयेन पृष्टः सन्ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ।
शशास शिष्यमासीनं वैशंपायनमन्तिके ॥ ५७ ॥

अनन्तर (जनमेजयके सर्पयज्ञके समयमें) सहस्रों ब्राह्मण और स्वयं जनमेजयके बडी चाहके साथ महाभारत सुननेकी इच्छा दिखाने पर, श्री वेदव्यासजीने पासहीमें बैठे हुए अपने शिष्य श्री वैशम्पायनको ग्रन्थ सुनानेकी आज्ञा दी ॥ ५७ ॥

स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम् ।
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

नित्य यज्ञके कर्म पूरे होनेके बाद वैशम्पायन मुनि बार बार प्रेरित किए जानेपर सभामें सभ्योंके साथ बैठकर महाभारत सुनाने लगे ॥ ५८ ॥

विस्तरं कुरुवंशस्य गान्धार्या धर्मशीलताम् ।
क्षत्तुः प्रज्ञां धृतिं कुन्त्याः सम्यग्द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥५९॥

भगवान् द्वैपायन ऋषिने इस महाभारत ग्रन्थमें कुरुवंशके विस्तारका, गान्धारीकी धर्मशीलताका, विदुरकी प्रज्ञाका और कुन्तीके धैर्यका सम्यक् रीतिसे वर्णन किया है ॥ ५९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम्।
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान्भगवानृषिः ॥ ६० ॥

भगवान् ऋषिने श्रीकृष्णका माहात्म्य, पाण्डवोंकी सत्यनिष्ठा और धृतराष्ट्रपुत्रोंकी दुष्टता वर्णन की है ॥ ६० ॥

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥ ६१ ॥

चौबीस सहस्र श्लोकोंमें भारत संहिता रची थी; पंडितगण उपाख्यानसे रहित उन्हीं चौबीस सहस्र श्लोकों ही को 'भारत' कहा करते हैं ॥ ६१ ॥

ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः।
अनुक्रमणिमध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम् ॥ ६२ ॥

आगे वेदव्यासजीने संपूर्ण पर्व और वृत्तांतोंको संक्षेप कर डेढ सौ श्लोकोंमें अनुक्रमणिका अध्यायको रचा ॥ ६२ ॥

इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम्।
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ प्रभुः ॥ ६३ ॥

भगवान् द्वैपायनने पहिले इस भारतको अपने पुत्र शुकदेवको पढाया और उसके बाद दूसरे योग्य शिष्योंको भी प्रदान किया ॥ ६३ ॥

नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन्।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ॥ ६४ ॥

इसके बाद नारदजीने देवताओंको, असित देवलने पितरोंको और शुकदेवजीने गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंको वे सब श्लोक सुनाये थे ॥ ६४ ॥

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥ ६५ ॥

दुर्योधन मन्युमय अर्थात् अहंकारसे भरा पूरा महावृक्ष है; कर्ण उसका तना, शकुनी उसकी शाखा, दुःशासन उसके बढे चढे फल–फूल; और अज्ञानसे अन्धे, प्रज्ञा–रहित धृतराष्ट्र उसकी जड हैं ॥ ६५ ॥

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥ ६६ ॥

युधिष्ठिर धर्ममय महावृक्ष है; अर्जुन उसका तना, भीमसेन उसकी शाखा, नकुल और सहदेव उसके बढे–चढे फल–फूल और श्रीकृष्ण, देव और ब्राह्मण उसकी जडें हैं ॥ ६६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाण्डुर्जित्वा बहून् देशान् युधा विक्रमणेन च ।
अरण्ये मृगयाशीलो न्यवसत्सजनस्तदा ॥ ६७ ॥

राजा पाण्डु युद्ध और विक्रमसे बहुत देश जीतकर अंतमें शिकार खेलते हुए वनमें ही जाकर अपने आदमियोंके साथ बस गए ॥ ६७ ॥

मृगव्यवायनिधने कृच्छ्रां प्राप स आपदम् ।
जन्मप्रभृति पार्थानां तत्राचारविधिक्रमः ॥ ६८ ॥

भोगमें आसक्त मृगके मर जाने पर वे घोर विपत्तिमें पड गए थे। वनमें ही पाण्डवोंकी जन्मसे लेकर सब आचार विधियां क्रमसे की गईं ॥ ६८ ॥

मात्रोरभ्युपपत्तिश्च धर्मोपनिषदं प्रति ।
धर्मस्य वायोः शक्रस्य देवयोश्च तथाश्विनोः ॥ ६९ ॥

उस वनमें आपद्धर्मके अनुसार कुन्ती और माद्रीके गर्भमें धर्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमार इन पांच देवताओंके वीर्यसे पाण्डवोंका जन्म हुआ ॥ ६९ ॥

तापसैः सह संवृद्धा मातृभ्यां परिरक्षिताः ।
मेध्यारण्येषु पुण्येषु महतामाश्रमेषु च ॥ ७० ॥

पाण्डव लोग पवित्र वनके भीतर बडे बडे तपस्वियोंके पुण्याश्रममें साधुओंके सहित कुन्ती और माद्रीसे रक्षित होने और बढने लगे ॥ ७० ॥

ऋषिभिश्च तदानीता धार्तराष्ट्रान् प्रति स्वयम् ।
शिशवश्चाभिरूपाश्च जटिला ब्रह्मचारिणः ॥ ७१ ॥

कुछ कालके बाद ऋषि लोग उन राजलक्षणोंसे सुशोभित जटाधारी, ब्रह्मचारी शिशुओंको स्वेच्छासे धृतराष्ट्र और उसके पुत्रोंके पास ले गये ॥ ७१ ॥

पुत्राश्च भ्रातरश्चेमे शिष्याश्च सुहृदश्च वः ।
पाण्डवा एत इत्युक्त्वा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः ॥ ७२ ॥

उसके बाद "ये पाण्डुपुत्रगण तुम्हारे पुत्र, भ्राता, शिष्य और सुहृत् हैं।" यह कहकर मुनिगण वहांसे लौट गए ॥ ७२ ॥

तांस्तैर्निवेदितान्दृष्ट्वा पाण्डवान् कौरवास्तदा ।
शिष्टाश्च वर्णाः पौरा ये ते हर्षाच्चुक्रुशुर्भृशम् ॥ ७३ ॥

इस प्रकारसे पाण्डवोंको अर्पण कर मुनियोंके चले जाने पर, उन्हें देख देख कर साधु कौरव लोग और नाना जातिके पुरवासी हर्षसे बहुत कोलाहल करने लगे ॥ ७३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आहुः केचिन्न तस्यैते तस्यैत इति चापरे।
यदा चिरमृतः पाण्डुः कथं तस्येति चापरे ॥ ७४ ॥

कोई कोई बोले "यह पांडुके पुत्र नहीं हैं।" कोई कोई बोले "ये ही पाण्डुकी सन्तानें हैं" दूसरे लोग बोले "राजा पाण्डुको परलोक गये तो जब बहुत दिन हो चुके, तब उनके पुत्र कहांसे उपजे?" ॥ ७४ ॥

स्वागतं सर्वथा दिष्ट्या पाण्डोः पश्याम संततिम्।
उच्यतां स्वागतमिति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥ ७५ ॥

उस समय सर्वत्र पुरवासियोंका यही शब्द सुनाई देने लगा; कि "आज हमारा आना सब प्रकार शुभ निकला; क्योंकि सौभाग्यवश पाण्डुपुत्रोंका दर्शन हुआ; अतः उनका स्वागत करो" ॥ ७५ ॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे दिशः सर्वा विनादयन्।
अन्तर्हितानां भूतानां निस्वनस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७६ ॥

यह शब्द बन्द होजानेपर सभी दिशाओंको गुंजाती हुई हृदयके अन्दर स्थित प्राणियों अर्थात् देवोंकी महान् आवाज हुई ॥ ७६ ॥

पुष्पवृष्टिः शुभा गन्धाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः।
आसन् प्रवेशे पार्थानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७७ ॥

पृथाके पुत्र अर्थात् पाण्डवोंके नगरमें पहुंचते ही फूलोंकी वृष्टि, सुगंधका संचार, शंख और नगाडोंकी ध्वनि होने लगी। यह सब बातें आश्चर्योत्पादक थीं ॥ ७७ ॥

तत्प्रीत्या चैव सर्वेषां पौराणां हर्षसंभवः।
शब्द आसीन्महांस्तत्र दिवस्पृक्कीर्तिवर्धनः ॥ ७८ ॥

उस आनंदसे सभी पुरवासियोंकी कीर्ति बढानेवाली और आकाशतक पहुंचती हुई हर्षध्वनि उत्पन्न हुई ॥ ७८ ॥

तेऽप्यधीत्याखिलान्वेदाञ्शास्त्राणि विविधानि च।
न्यवसन्पाण्डवास्तत्र पूजिता अकुतोभयाः ॥ ७९ ॥

पाण्डव भी नाना शास्त्र और संपूर्ण वेद पढ कर तथा सब तरहसे निर्भय होकर बडे आदर सन्मानसे वहां रहने लगे ॥ ७९ ॥

युधिष्ठिरस्य शौचेन प्रीताः प्रकृतयोऽभवन्।
धृत्या च भीमसेनस्य विक्रमेणार्जुनस्य च ॥ ८० ॥ [illegible]ल और

प्रजा युधिष्ठिरके शुद्ध आचार, भीमसेनके धैर्य और अर्जुनके विक्रमसे बहुत प्रसन्न हुई ॥ ६६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गुरुशुश्रूषया कुन्त्या यमयोर्विनयेन च ।
तुतोष लोकः सकलस्तेषां शौर्यगुणेन च ॥ ८१ ॥

नकुल और सहदेवकी नम्रता और कुन्तीकी गुरुसेवासे विशेष कर पांचों भाईकी शूरतासे सब लोगोंको प्रसन्नता हुई ॥ ८१ ॥

समवाये ततो राज्ञां कन्यां भर्तृस्वयंवराम् ।
प्राप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ८२ ॥

बादमें पतिके लिए होनेवाले स्वयंवर स्थलमें अगणित राजाओंके एकत्रित होने पर अर्जुनने कठिन कर्मको करके उस राजपुत्री कृष्णाको जीत लिया ॥ ८२ ॥

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्पूज्यः सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरेष्वपि चाभवत् ॥ ८३ ॥

उसी समयसे वह अर्जुन इस लोकमें सभी धनुषधारियोंके लिए पूज्य हो गया और रणक्षेत्रमें भी वह सूर्यकी भांति कठिनतासे देखने योग्य हो गया ॥ ८३ ॥

स सर्वान्पार्थिवाञ्जित्वा सर्वांश्च महतो गणान् ।
आजहारार्जुनो राज्ञे राजसूयं महाक्रतुम् ॥ ८४ ॥

आगे उस अर्जुनने सब राजाओं और बडे बडे शूरवीरोंको जीतकर राजा युधिष्ठिरके लिए राजसूय महायज्ञका आयोजन किया ॥ ८४ ॥

अन्नवान्दक्षिणावांश्च सर्वैः समुदितो गुणैः ।
युधिष्ठिरेण संप्राप्तो राजसूयो महाक्रतुः ॥ ८५ ॥

महाराज युधिष्ठिरने अपरिमित अन्न और दक्षिणा दान कर सब प्रकारके गुणोंसे युक्त श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ किया ॥ ८५ ॥

सुनयाद्वासुदेवस्य भीमार्जुनबलेन च ।
घातयित्वा जरासंधं चैद्यं च बलगर्वितम् ॥ ८६ ॥

उस यज्ञमें कृष्णकी उत्तम नीति और भीम तथा अर्जुनके बलके सहारे बलगर्वित जरासन्ध और अहंकारी शिशुपालका विनाश हुआ ॥ ८६ ॥

दुर्योधनं समागच्छन्नर्हणानि ततस्ततः ।
मणिकांचनरत्नानि गोहस्त्यश्वधनानि च ॥ ८७ ॥

इस [illegible]के पास नाना स्थानोंसे बहुमूल्य मणि, सुवर्ण, रत्न, गौ, हाथी, घोडे और धन लोग आ[illegible] ॥ ८७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समृद्धां तां तथा दृष्ट्वा पाण्डवानां तदा श्रियम्।
ईर्ष्यासमुत्थः सुमहांस्तस्य मन्युरजायत ॥ ८८ ॥

तब पाण्डवोंका वह बढा चढा ऐश्वर्य देखकर दुर्योधनके हृदयमें ईर्ष्याजनित महान् क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ८८ ॥

विमानप्रतिमां चापि मयेन सुकृतां सभाम्।
पाण्डवानामुपहृतां स दृष्ट्वा पर्यतप्यत ॥ ८९ ॥

उस यज्ञमें मयदानवके द्वारा उत्तम प्रकारसे बनाये गए विमानके आकारवाली अपूर्व सभाको पाण्डवोंके हाथोंमें देखकर वह दुःखसे जलने लगा ॥ ८९ ॥

तत्रावहसितश्चासीत् प्रस्कन्दन्निव संभ्रमात्।
प्रत्यक्षं वासुदेवस्य भीमेनानभिजातवत् ॥ ९० ॥

उस सभामें दुर्योधनको चलते समय भ्रमवश गिरते देखकर भीमसेनने श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख छोटे मनुष्यके समान अपमान करके उसकी बडी हंसी उडाई ॥ ९० ॥

स भोगान्विविधान्भुञ्जन्रत्नानि विविधानि च।
कथितो धृतराष्ट्रस्य विवर्णो हरिणः कृशः ॥ ९१ ॥

नाना प्रकारके रत्न और भांति भांतिके भोग भोगने पर भी दुर्योधन चित्त–पीडासे मलिन, पीला और दुबला होने लगा। धृतराष्ट्रके निकट यह बात कही जाने पर ॥ ९१ ॥

अन्वजानात्ततो द्यूतं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य कोपः समभवन्महान् ॥ ९२ ॥

उस पुत्र प्रेमी राजा धृतराष्ट्रने जुआ खेलनेकी आज्ञा दी। यह सुनकर श्री वासुदेव कृष्णको बडा क्रोध हो आया ॥ ९२ ॥

नातिप्रीतमनांश्चासीद्विवादांश्चान्वमोदत।
द्यूतादीननयान्घोरान्प्रवृद्धांश्चाप्युपैक्षत ॥ ९३ ॥

उन्होंने बडे असन्तोषके साथ उस झगडेमें अपनी संमति दी और जुआ आदि भयावनी और बढी हुई कुनीतियोंकी उपेक्षा कर दी ॥ ९३ ॥

निरस्य विदुरं द्रोणं भीष्मं शारद्वतं कृपम्।
विग्रहे तुमुले तस्मिन्नहन्क्षत्रं परस्परम् ॥ ९४ ॥

विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म और शरद्वतके पुत्र कृपाचार्यकी बात न मानकर आपसकी उस घोर लडाईमें भिडे हुए क्षत्रियोंने आपसमें ही एक दूसरेको मार दिया ॥ ९४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयत्सु पाण्डुपुत्रेषु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
दुर्योधनमतं ज्ञात्वा कर्णस्य शकुनेस्तदा ।
धृतराष्ट्रश्चिरं ध्यात्वा संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ ९५ ॥

पाण्डवोंके जीत जानेके बाद उस अति अप्रिय वाणीको सुनकर और दुर्योधन कर्ण और शकुनिके मतको जानकर देर तक सोचने समझनेके पश्चात् धृतराष्ट्रने संजयसे कहा ॥ ९५ ॥

शृणु संजय मे सर्वं न मेऽसूयितुमर्हसि ।
श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान्प्राज्ञसम्मतः ॥ ९६ ॥

" हे संजय ! मैं सब वृत्तान्त कहता हूं, सुनो। तुम शास्त्रके ज्ञाता, मेधावी, बुद्धिमान् और पण्डितमण्डलीमें महाभाग्य हो; अतः मुझपर व्यर्थ दोष न लगाओ ॥ ९६ ॥

न विग्रहे मम मतिर्न च प्रीये कुरुक्षये ।
न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पाण्डुसुतेषु च ॥ ९७ ॥

युद्ध करनेके लिए कुछ मेरी सम्मति नहीं थी, और न मैं कुरुओंके क्षय होनेसे सन्तुष्ट हूं, अपने पुत्रों और पाण्डुके पुत्रोंमें मैंने कुछ भी भेद नहीं किया है ॥ ९७ ॥

वृद्धं मामभ्यसूयन्ति पुत्रा मन्युपरायणाः ।
अहं त्वचक्षुः कार्पण्यात् पुत्रप्रीत्या सहामि तत् ।
मुह्यन्तं चानुमुह्यामि दुर्योधनमचेतनम् ॥ ९८ ॥

मेरे ईर्ष्या और क्रोधसे भरे पुत्रगण मुझको वृद्ध जानकर मेरी बात मानते ही नहीं; मैं अंधा और दीन हूं; अतः पुत्र–स्नेहसे सब सह लेता हूं, अज्ञानी दुर्योधनके मोहयुक्त होनेसे मैं भी मोहमें पडा हुआ हूं ॥ ९८ ॥

राजसूये श्रियं दृष्ट्वा पाण्डवस्य महौजसः ।
तच्चावहसनं प्राप्य सभारोहणदर्शने ॥ ९९ ॥

राजसूय यज्ञमें महा प्रभावशाली युधिष्ठिरका अपार ऐश्वर्य देखकर और सभामें जानेके समय उस हंसीको देखकर ॥ ९९ ॥

अमर्षितः स्वयं जेतुमशक्तः पाण्डवान्रणे ।
निरुत्साहश्च सम्प्राप्तुं श्रियमक्षत्रियो यथा ।
गान्धारराजसहितश्छद्मद्यूतममन्त्रयत् ॥ १०० ॥

उसे सह न सकनेके कारण और युद्धमें स्वयं पाण्डवोंको जीतनेमें असमर्थ होकर तथा अक्षत्रियके समान राजलक्ष्मीको पाने उत्साहरहित होकर दुर्योधनने गान्धारके राजा शकुनीकी सहायतासे कपट जुएके लिए आमंत्रण दिया ॥ १०० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र यद्यथा ज्ञातं मया संजय तच्छृणु।
श्रुत्वा हि मम वाक्यानि बुद्ध्या युक्तानि तत्त्वतः।
ततो ज्ञास्यसि मां सौते प्रज्ञाचक्षुषमित्युत ॥ १०१ ॥

उस कालमें मैं जो कुछ जान सका था; हे संजय! वह सुनो। हे सूत-पुत्र! मेरे वह सब बुद्धियुक्त वचनोंको तत्त्वपूर्वक सुनकर मुझे सच्चा प्रज्ञाचक्षु जानोगे ॥ १०१ ॥

यदाश्रौषं धनुरायम्य चित्रं विद्धं लक्ष्यं पातितं वै पृथिव्याम्।
कृष्णां हृतां पश्यतां सर्वराज्ञां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०२ ॥

"जब मैंने सुना, कि अर्जुनने विचित्र धनु चढाकर लक्ष्यका भेद करके उसे धरती पर गिरा दिया है, और वह सब राजाओंके देखते देखते द्रौपदीको हर लाया है, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १०२ ॥

यदाश्रौषं द्वारकायां सुभद्रां प्रसह्योढां माधवीमर्जुनेन।
इन्द्रप्रस्थं वृष्णिवीरौ च यातौ तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०३ ॥

जब मैंने सुना, कि अर्जुनने द्वारकामें जाकर माधव-कृष्णकी छोटी बहिन सुभद्रासे बलपूर्वक विवाह किया और उसपर भी श्री बलराम और श्रीकृष्णचंद्र दोनों इन्द्रप्रस्थमें आये हैं, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १०३ ॥

यदाश्रौषं देवराजं प्रवृष्टं शरैर्दिव्यैर्वारितं चार्जुनेन।
अग्निं तथा तर्पितं खाण्डवे च तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०४ ॥

जब मैंने सुना, कि खाण्डव दाहके समय देवराज इन्द्रके जल बरसाने पर अर्जुनने दिव्य बाणोंसे वृष्टिको रोककर अग्निको प्रसन्न किया, तो हे संजय! तभीसे मैंने जयकी आशा नहीं की ॥ १०४ ॥

यदाश्रौषं हृतराज्यं युधिष्ठिरं पराजितं सौबलेनाक्षवत्याम्।
अन्वागतं भ्रातृभिरप्रमेयैस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०५ ॥

जब मैंने सुना, कि सुबलपुत्र शकुनिने युधिष्ठिरको जुएमें हराकर उसका राज्य हर लिया है, और उस पर भी, बडे प्रतापी भाई लोग युधिष्ठिरके आज्ञाधीन बनकर उसके पीछे चल रहे हैं, हे संजय! तो भी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १०५ ॥

यदाश्रौषं द्रौपदीमश्रुकण्ठीं सभां नीतां दुःखितामेकवस्त्राम्।
रजस्वलां नाथवतीमनाथवत्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०६ ॥

जब मैंने सुना, कि रोती-पीटती; एक-वस्त्र-पहिने हुई, दुःखमें डूबी, रजस्वला, द्रौपदी अनाथकी भांति सभामें ले जाई गई, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर ज[illegible]सकी उम[illegible] नहीं की ॥ १०६ ॥ [illegible]४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं विविधास्तात चेष्टा धर्मात्मनां प्रस्थितानां वनाय।
ज्येष्ठप्रीत्या क्लिश्यतां पाण्डवानां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०७ ॥

जब मैंने सुना, कि धार्मिक पाण्डव लोग वनमें जाकर बडे भाईको प्रसन्न रखनेके लिये अनेक कष्ट उठाते हुए बडी बडी चेष्टा कर रहें हैं, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा छोड दी ॥ १०७ ॥

यदाश्रौषं स्नातकानां सहस्रैरन्वागतं धर्मराजं वनस्थम्।
भिक्षाभुजां ब्राह्मणानां महात्मनां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०८ ॥

जब मैंने सुना, कि सहस्रों स्नातक और भिक्षासे जीविका चलानेवाले ब्राह्मणगण और अन्य महात्मा वनमें धर्मराजके पीछे चले गए हैं, तो हे संजय! तभीसे मैंने जयकी आशा छोड दी ॥ १०८ ॥

यदाश्रौषमर्जुनो देवदेवं किरातरूपं त्र्यम्बकं तोष्य युद्धे।
अवाप तत् पाशुपतं महास्त्रं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०९ ॥

जब मैंने सुना, कि अर्जुनने किरात–रूप–धारी देवाधिदेव महादेवको युद्धमें प्रसन्न कर पाशुपत नामक महा अस्त्र पा लिया है; तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १०९ ॥

यदाश्रौषं त्रिदिवस्थं धनंजयं शक्रात्साक्षाद्दिव्यमस्त्रं यथावत्।
अधीयानं शंसितं सत्यसंधं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११० ॥

जब मैंने सुना, कि प्रशंसा योग्य और सत्यप्रेमी धनंजय देवलोकमें जाकर साक्षात् इन्द्रसे विधिपूर्वक दिव्य अस्त्र सीख रहा है, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११० ॥

यदाश्रौषं वैश्रवणेन सार्धं समागतं भीममन्यांश्च पार्थान्।
तस्मिन्देशे मानुषाणामगम्ये तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १११ ॥

जब मैंने सुना, कि भीम और दूसरे पांडुपुत्रोंने मनुष्योंके न जाने योग्य देशमें जाकर कुबेरसे भेंट की; तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १११ ॥

यदाश्रौषं घोषयात्रागतानां बन्धं गन्धर्वैर्मोक्षणं चाऽर्जुनेन।
स्वेषां सुतानां कर्णबुद्धौ रतानां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११२ ॥

जब मैंने सुना, कि कर्णकी बुद्धिके अनुसार चलनेवाले मेरे पुत्रगण घोष यात्रामें जाकर गंधर्वोंके द्वारा पकडे जाकर फिर अर्जुनके द्वारा मुक्त कराए गए, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं यक्षरूपेण धर्मं समागतं धर्मराजेन सूत।
प्रश्नानुक्तान्विब्रुवन्तं च सम्यक् तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११३ ॥

हे सूत! जब मैंने सुना, कि धर्मने यक्षका स्वरूप धारण करके युधिष्ठिरके समीप आकर कुछ प्रश्न पूछे हैं और उसने ठीक ठीक उत्तर दे दिये, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११३ ॥

यदाश्रौषं मामकानां वरिष्ठान्धनंजयेनैकरथेन भग्नान्।
विराटराष्ट्रे वसता महात्मना तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११४ ॥

जब मैंने सुना, कि महात्मा पाण्डवोंके विराट-नगरमें रहते हुए एकरथी धनंजयने हमारी ओरके बडे बडे योद्धाओंको परास्त कर दिया, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११४ ॥

यदाश्रौषं सत्कृतां मत्स्यराज्ञा सुतां दत्तामुत्तरामर्जुनाय।
तां चार्जुनः प्रत्यगृह्णात्सुतार्थे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११५ ॥

जब मैंने सुना, कि मत्स्य-राजने अर्जुनको नाना अलंकारोंसे अलंकृत अपनी उत्तरा नामकी कन्या अर्पित की और अर्जुनने उस कन्याको अपने पुत्र अभिमन्युके निमित्त ग्रहण किया, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११५ ॥

यदाश्रौषं निर्जितस्याधनस्य प्रव्राजितस्य स्वजनात्प्रच्युतस्य।
अक्षौहिणीः सप्त युधिष्ठिरस्य तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११६ ॥

जब मैंने सुना, कि युधिष्ठिरने जीते जाने, निर्धन होने, देशसे निकाले जाने और अपने जनोंसे बिछुड जानेके बावजूद भी सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित कर ली है, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११६ ॥

यदाश्रौषं नरनारायणौ तौ कृष्णार्जुनौ वदतो नारदस्य।
अहं द्रष्टा ब्रह्मलोके सदेति तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११७ ॥

जब नारदसे मैंने सुना, कि श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन नरनारायणके अवतार हैं और मैंने (नारदने) उनका ब्रह्मलोकमें भलीभांति दर्शन किया है, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११७ ॥

यदाश्रौषं माधवं वासुदेवं सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टम्।
यस्येमां गां विक्रममेकमाहुस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११८ ॥

जब मैंने सुना, कि यह भूलोक जिनके एक पदके समान है, वही मधुवंशी वासुदेव [illegible] प्रकारसे पाण्डवोंके हित साधनेकी चेष्टा कर रहे हैं, तो हे संजय! तभीसे मैंने [illegible]की उस आशा नहीं की ॥ ११८ ॥ [illegible] ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं कर्णदुर्योधनाभ्यां बुद्धिं कृतां निग्रहे केशवस्य ।
तं चात्मानं बहुधा दर्शयानं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११९ ॥

जब मैंने सुना, कि कर्ण और दुर्योधनने श्रीकृष्णचन्द्रको पकडनेका विचार किया, पर उन्होंने उनको अपना विश्वरूप दिखाया, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ ११९ ॥

यदाश्रौषं वासुदेवे प्रयाते रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठमानाम् ।
आर्तां पृथां सान्त्वितां केशवेन तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२० ॥

जब मैंने सुना, कि वासुदेवके जाते हुए अपने रथके सामने खडी हुई दुःखिता कुन्तीको उन्होंने अनेक प्रकारसे समझाया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२० ॥

यदाश्रौषं मंत्रिणं वासुदेवं तथा भीष्मं शान्तनवं च तेषाम् ।
भारद्वाजं चाशिषोऽनुब्रवाणं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२१ ॥

जब मैंने सुना, कि वासुदेव और शान्तनु-पुत्र भीष्म दोनों उन पाण्डवोंके मंत्री बन गए हैं और भारद्वाज द्रोण उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२१ ॥

यदाश्रौषं कर्ण उवाच भीष्मं नाहं योत्स्ये युध्यमाने त्वयीति ।
हित्वा सेनामपचक्राम चैव तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२२ ॥

जब मैंने सुना, कि कर्ण भीष्मसे यह कहकर, कि "तुम युद्ध करोगे, तो मैं नहीं लडूंगा" सेनाको छोड कर चला गया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२२ ॥

यदाश्रौषं वासुदेवार्जुनौ तौ तथा धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
त्रीण्युग्रवीर्याणि समागतानि तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२३ ॥

जब मैंने सुना, कि वे दोनों श्रीकृष्ण, अर्जुन और अप्रमेय गाण्डीव धनुष्य, यह तीनों अत्यधिक वीर्यशाली पदार्थ एकसाथ मिल गये हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२३ ॥

यदाश्रौषं कश्मलेनाभिपन्ने रथोपस्थे सीदमानेऽर्जुने वै ।
कृष्णं लोकान्दर्शयानं शरीरे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२४ ॥

जब मैंने सुना, कि रथारूढ अर्जुनके मोहयुक्त और विकल हो जानेपर श्रीकृष्णने उसको अपने शरीरमें चौदहों लोक दिखाये हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं भीष्ममामित्रकर्शनं निघ्नन्तमाजावयुतं रथानाम्।
नैषां कश्चिद्बुध्यते दृश्यरूपस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२५ ॥

जब मैंने सुना, कि शत्रुनाशी भीष्म रणभूमिमें नित्य दश सहस्र रथियोंको नष्ट करके भी शत्रुओंमेंसे एक भी प्रसिद्ध पुरुषको मार नहीं सके, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२५ ॥

यदाश्रौषं भीष्ममत्यंतशूरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम्।
शिखण्डिनं पुरतः स्थापयित्वा तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२६ ॥

जब मैंने सुना, कि अर्जुनने शिखण्डीको सामने खडाकर युद्धमें अपराजित महाशूरवीर भीष्म को मार दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२६ ॥

यदाश्रौषं शरतल्पे शयानं वृद्धं वीरं सादितं चित्रपुङ्खैः।
भीष्मं कृत्वा सोमकानल्पशेषांस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२७ ॥

जब मैंने सुना, कि वृद्धवीर भीष्म सोमक सेनाओंको प्रायः नष्ट होनेकी दशामें पहुंचा कर स्वयं बाणोंसे छेदे भेदे जाकर शरशय्यापर सो गए हैं, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२७ ॥

यदाश्रौषं शान्तनवे शयाने पानीयार्थे चोदितेनार्जुनेन।
भूमिं भित्त्वा तर्पितं तत्र भीष्मं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२८ ॥

जब मैंने सुना, कि भीष्मदेवके शरशय्यापर सोनेके बाद उनके द्वारा पीनेके जलके लिए प्रेरित किए जानेपर अर्जुनने धरतीसे जल निकाल कर उनको प्रसन्न किया, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२८ ॥

यदाश्रौषं शुक्रसूर्यौ च युक्तौ कौन्तेयानामनुलोमौ जयाय।
नित्यं चास्माञ्श्वापदा व्याभषन्तस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२९ ॥

जब मैंने सुना, कि इन्द्र और सूर्य पाण्डवोंको जय देनेके निमित्त उनके सहायक बन गए हैं और हिंसक जन्तुगण हमें देखकर चिल्लाते हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १२९ ॥

यदा द्रोणो विविधानस्त्रमार्गाविदर्शयन् समरे चित्रयोधी।
न पाण्डवाञ्छ्रेष्ठतमान्निहन्ति तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३० ॥

जब मैंने सुना, कि आश्चर्यरूपसे युद्ध करनेवाले द्रोणाचार्य रणभूमिमें अस्त्र चलानेके अनेक तरहके निपुणताके प्रकार दिखा करके भी पाण्डवपक्षके किसी भी श्रेष्ठ पुरुषको नहीं मारते, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं चास्मदीयान्महारथान्व्यवस्थितानर्जुनस्यान्तकाय ।
संशप्तकान्निहतानर्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३१ ॥

जब मैंने सुना कि हमारी ओरकी संशप्तक नामक सेनाके द्वारा अर्जुनको मारनेके लिये व्यूह रचने पर भी वह आप ही अर्जुनसे मारी गई है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३१ ॥

यदाश्रौषं व्यूहमभेद्यमन्यैर्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम् ।
भित्त्वा सौभद्रं वीरमेकं प्रविष्टं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३२ ॥

जब मैंने सुना, कि अद्वितीय वीर अभिमन्यु, शस्त्रधारी द्रोणाचार्यसे रक्षित और दूसरोंसे न भेदे–जानेवाले चक्रव्यूहको भेदकर अकेला ही उसमें प्रवेश कर गया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३२ ॥

यदाभिमन्युं परिवार्य बालं सर्वे हत्वा हृष्टरूपा बभूवुः ।
महारथाः पार्थमशक्नुवन्त तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३३ ॥

जब मैंने सुना, कि अर्जुनका वध करनेमें अशक्त होकर महारथी योद्धा बालक अभिमन्युको चारों ओरसे घेर करके मारकर आनन्दित हो रहे हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३३ ॥

यदाश्रौषमभिमन्युं निहत्य हर्षान्मूढान् क्रोशतो धार्तराष्ट्रान् ।
क्रोधं मुक्तं सैंधवे चार्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३४ ॥

जब मैंने सुना, कि अभिमन्युको मारकर हर्षसे मोहित हो शोर मचानेवाले धृतराष्ट्र पुत्रोंको देखकर अर्जुनने अपना क्रोध सिन्धुराज जयद्रथ पर निकाला है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३४ ॥

यदाश्रौषं सैन्धवार्थे प्रतिज्ञां प्रतिज्ञातां तद्वधायार्जुनेन ।
सत्यां निस्तीर्णां शत्रुमध्ये च तेन तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥१३५॥

जब मैंने सुना, कि अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा की है, और वह जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञा करके शत्रुओंके बीचमें भी उस अपनी सत्य–प्रतिज्ञामें उत्तीर्ण हुआ है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३५ ॥

यदाश्रौषं श्रान्तहये धनंजये मुक्त्वा हयान्पाययित्वोपवृत्तान् ।
पुनर्युक्त्वा वासुदेवं प्रयातं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३६ ॥

जब मैंने सुना, कि अर्जुनके घोडोंके थकने पर श्रीकृष्ण उनको बंधनसे मुक्तकर जल पिला लेनेके पश्चात् फिर उन्हें जोत कर रथको हांक ले गये हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं वाहनेष्वाश्वसत्सु रथोपस्थे तिष्ठता गाण्डिवेन।
सर्वान्योधान्वारितानर्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३७ ॥

जब मैंने सुना, कि घोडोंके अशक्त होने पर भी गाण्डीवधारी अर्जुनने अकेले रथपर रहकर संपूर्ण वीरोंको हरा दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३७ ॥

यदाश्रौषं नागबलैर्दुरुत्सहं द्रोणानीकं युयुधानं प्रमथ्य।
यातं वार्ष्णेयं यत्र तौ कृष्णपार्थौ तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३८ ॥

जब मैंने सुना, कि वृष्णिवंशी सात्यकि हाथियोंकी सेनाओंसे भी अपराजेय ऐसी द्रोणाचार्यकी सेनाको भी मथकर श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास जा पहुंचा है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३८ ॥

यदाश्रौषं कर्णमासाद्य मुक्तं वधाद्भीमं कुत्सयित्वा वचोभिः।
धनुष्कोट्या तुद्य कर्णेन वीरं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३९ ॥

जब मैंने सुना, कि कर्णने भीमको पाकर भी उसका वध न कर धनुषकी नोकसे सता करके तथा बुरे शब्दोंसे उसे झिडक कर ही लांछनपूर्वक छोड दिया, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १३९ ॥

यदा द्रोणः कृतवर्मा कृपश्च कर्णो द्रौणिर्मद्रराजश्च शूरः।
अमर्षयन्सैन्धवं वध्यमानं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४० ॥

जब मैंने सुना, कि द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और वीरवर मद्रराजशल्यने बदला लेनेमें अशक्त होकर सिन्धुराज जयद्रथके वधके दुःखको चुपचाप सह लिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४० ॥

यदाश्रौषं देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिं व्यंसितां माधवेन।
घटोत्कचे राक्षसे घोररूपे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४१ ॥

जब मैंने सुना, कि कृष्णने भयंकर रूपवाले घटोत्कच राक्षसपर देवराज इन्द्र द्वारा दी हुई दिव्य शक्तिको चलवा कर उसको व्यर्थ कर दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४१ ॥

यदाश्रौषं कर्णघटोत्कचाभ्यां युद्धे मुक्तां सूतपुत्रेण शक्तिम्।
यया वध्यः समरे सव्यसाची तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४२ ॥

जब मैंने सुना, कि कर्ण और घटोत्कचके युद्धमें सूत-पुत्र कर्णने, जिससे युद्धमें अर्जुन मारा जानेवाला था, उसी दिव्य शक्तिको घटोत्कच पर चला दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं द्रोणमाचार्यमेकं धृष्टद्युम्नेनाभ्यतिक्रम्य धर्मम् ।
रथोपस्थे प्रायगतं विशस्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४३ ॥

जब मैंने सुना, कि अस्त्र छोडकर अनशन–मृत्युकी इच्छासे अकेले रथपर बैठे हुए द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नने धर्मका उल्लंघन करके मारा है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४३ ॥

यदाश्रौषं द्रौणिना द्वैरथस्थं माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये ।
समं युद्धे पाण्डवं युध्यमानं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४४ ॥

सब लोगोंके सामने अश्वत्थामाके साथ समान–भावसे द्वैरथ युद्ध करते हुए माद्री पुत्र नकुलको जब मैंने सुना तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥१४४॥

यदा द्रोणे निहते द्रोणपुत्रो नारायणं दिव्यमस्त्रं विकुर्वन् ।
नैषामन्तं गतवान्पाण्डवानां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४५ ॥

जब मैंने सुना, कि द्रोणाचार्यके मारे जानेपर अश्वत्थामा दिव्य नारायण अस्त्र मारकर भी पाण्डवोंको मार नहीं सका, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥१४५॥

यदाश्रौषं कर्णमत्यंतशूरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम् ।
तस्मिन्भ्रातॄणां विग्रहे देवगुह्ये तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४६ ॥

जब मैंने सुना, कि देव द्वारा छिपाए गए दोनों भाईयोंके युद्धमें अर्जुनने रणमें अत्यन्त शूर वीर और युद्धोंमें अपराजित महावीर कर्णको नष्ट कर दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा छोड दी ॥ १४६ ॥

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रं कृपं च दुःशासनं कृतवर्माणमुग्रम् ।
युधिष्ठिरं शून्यमधर्षयन्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४७ ॥

जब मैंने सुना, कि युधिष्ठिरने वीरवर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुःशासन और उग्र स्वभावी कृतवर्माको जीत लिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४७ ॥

यदाश्रौषं निहतं मद्रराजं रणे शूरं धर्मराजेन सूत ।
सदा संग्रामे स्पर्धते य स कृष्णं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४८ ॥

हे सूत ! जब मैंने सुना, कि युद्धमें जो श्रीकृष्णचन्द्रसे भी सदा मुकाबला करते हैं ऐसे मद्रराज शल्य भी रणवीर युधिष्ठिरके द्वारा मार दिये गये हैं, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं कलहद्यूतमूलं मायाबलं सौबलं पाण्डवेन।
हतं संग्रामे सहदेवेन पापं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४९ ॥

जब मैंने सुना, कि पाण्डुपुत्र सहदेवने जुए और झगडेकी जड, पापिष्ठ और छली सुबल पुत्र शकुनिको लडाईमें मार दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १४९ ॥

यदाश्रौषं श्रान्तमेकं शयानं ह्रदं गत्वा स्तम्भयित्वा तदम्भः।
दुर्योधनं विरथं भग्नदर्पं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५० ॥

जब मैंने सुना, कि अकेला, टूटे हुए घमंडवाला रथरहित, थका-मांदा दुर्योधन तालाबमें जाकर जल रोककर उसीमें छिप गया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५० ॥

यदाश्रौषं पांडवांस्तिष्ठमानान्गंगाह्रदे वासुदेवेन सार्धम्।
अमर्षणं धर्षयतः सुतं मे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५१ ॥

जब मैंने सुना, कि पाण्डवगण श्रीकृष्णचंद्रके संग गंगाके तालाबके निकट खडे होकर असहनशील मेरे पुत्र दुर्योधनको लाञ्छन दे रहे हैं, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५१ ॥

यदाश्रौषं विविधांस्तात मार्गान्गदायुद्धे मण्डलं संचरन्तम्।
मिथ्या हतं वासुदेवस्य बुद्ध्या तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५२ ॥

जब मैंने सुना, कि गदायुद्धमें नाना तरहके आश्चर्यकारक कौशल दिखाने-वाला दुर्योधन मण्डलाकारमें घूमते समय वासुदेवके परामर्शसे अन्याय रूपसे मार दिया गया, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५२ ॥

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रादिभिस्तैर्हतान्पांचालान्द्रौपदेयांश्च सुप्तान्।
कृतं बीभत्समयशस्यं च कर्म तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५३ ॥

जब मैंने सुना, कि अश्वत्थामा आदिने रात्रिमें सोये हुए पांचालों और द्रौपदीके पुत्रोंको मारकर अति घृणित और अयशका कार्य किया है, तो हे संजय! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५३ ॥

यदाश्रौषं भीमसेनानुयातेनाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम्।
क्रुद्धेनैषीकमवधीद्येन गर्भं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५४ ॥

जब मैंने सुना, कि भीमको पुत्र-वधके कारण क्रोधसे अन्धे बनकर अपने पीछे दौडते हुए देखकर अश्वत्थामाने ऐषीक नामक परमास्त्र मारकर उत्तराका गर्भ नष्ट कर दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदाश्रौषं ब्रह्मशिरोऽर्जुनेन मुक्तं स्वस्तीत्यस्त्रमस्त्रेण शान्तम् ।
अश्वत्थाम्ना मणिरत्नं च दत्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५५ ॥

जब मैंने सुना, कि अश्वत्थामाके द्वारा छोडे गए अर्जुनवधके निमित्त ब्रह्मशिरः नामक अस्त्रको अर्जुनने "स्वस्ति" अस्त्रसे रोक दिया है और अश्वत्थामाने उसको मणिरत्न दे दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५५ ॥

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रेण गर्भे वैराट्या वै पात्यमाने महास्त्रे ।
द्वैपायनः केशवो द्रोणपुत्रं परस्परेणाभिशापैः शशाप ॥ १५६ ॥

जब मैंने सुना कि महास्त्रसे विराट–पुत्रीके गर्भको नष्ट करनेपर अश्वत्थामाको द्वैपायन और श्रीकृष्णचंद्र दोनोंने परस्पर विचार करके शाप दे दिया है, तो हे संजय ! तभीसे मैंने फिर जयकी आशा नहीं की ॥ १५६ ॥

शोच्या गान्धारी पुत्रपौत्रैर्विहीना तथा बध्वः पितृभिर्भ्रातृभिश्च ।
कृतं कार्यं दुष्करं पाण्डवेयैः प्राप्तं राज्यमसपत्नं पुनस्तैः ॥ १५७ ॥

इस समय पुत्र, पौत्र, बधू, पिता, माता और भाइयोंको खोकर गांधारी बडी विकल है। पाण्डवोंने यह दुष्कर कर्म किया है और उन्होंने फिर अपने शत्रुरहित राज्यको प्राप्त कर लिया है ॥ १५७ ॥

कष्टं युद्धे दश शेषाः श्रुता मे त्रयोऽस्माकं पाण्डवानां च सप्त ।
द्व्यूना विंशतिराहताक्षौहिणीनां तस्मिन्संग्रामे विग्रहे क्षत्रियाणाम् ॥ १५८ ॥

हा ! बहुत दुःखकी बात है कि हमारी ओरके तीन और पाण्डव-पक्षके सात, केवल येही दस मनुष्य रणसे बचे हैं, इस युद्धमें क्षत्रियोंकी बीसमें दो कम अर्थात् अट्ठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट भ्रष्ट हो गई है ॥ १५८ ॥

तमसा त्वभ्यवस्तीर्णो मोह आविशतीव माम् ।
संज्ञां नोपलभे सूत मनो विह्वलतीव मे ॥ १५९ ॥

हे सूत ! चारों ओर अंधेरेसे घिरा हुआ मैं मोहसे विकल हो रहा हूं, चेतना मुझे छोडकर भागी जा रही है, चित्त बडा उदास हो रहा है ॥ १५९ ॥

इत्युक्त्वा धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः ।
मूर्च्छितः पुनराश्वस्तः संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६० ॥

इस प्रकार कह कर राजा धृतराष्ट्र बहुत दुःखी होकर और बहुत विलाप करके मूर्छित हो गये । फिर चेतना आनेपर संजयसे यह बोले ॥ १६० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संजयैवंगते प्राणांस्त्यक्तुमिच्छामि मा चिरम्।
स्तोकं ह्यपि न पश्यामि फलं जीवितधारणे ॥ १६१ ॥

'हे संजय! ऐसी दशामें मैं इसी समय विना विलम्ब किए प्राण छोड देना चाहता हूं, अपने इस जीवनको धारण करनेमें मैं कुछ भी फल नहीं देखता ॥ १६१ ॥

तं तथा वादिनं दीनं विलपन्तं महीपतिम्।
गावल्गणिरिदं धीमान् महार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६२ ॥

इस प्रकार कहनेवाले तथा दीनभावसे विलाप करनेवाले उस राजा धृतराष्ट्रसे बुद्धिमान् संजय अर्थयुक्त यह वचन बोले ॥ १६२ ॥

श्रुतवानसि वै राज्ञो महोत्साहान् महाबलान्।
द्वैपायनस्य वदतो नारदस्य च धीमतः ॥ १६३ ॥

महाराज! आपने बुद्धिमान् नारद और वाग्मी वेदव्यासजीके मुखसे महान् उत्साहसे युक्त तथा महाबलशाली राजाओंके चरित्र सुने ही होंगे ॥ १६३ ॥

महत्सु राजवंशेषु गुणैः समुदितेषु च।
जातान्दिव्यास्त्रविदुषः शक्रप्रतिमतेजसः ॥ १६४ ॥

जो उत्तम राजवंशोंमें उत्पन्न, उत्तम गुणोंके कारण उन्नत, दिव्य दिव्य शस्त्रास्त्रोंको जाननेवाले और इन्द्रके समान अत्यधिक तेजवाले थे ॥ १६४ ॥

धर्मेण पृथिवीं जित्वा यज्ञैरिष्ट्वाप्तदक्षिणैः।
अस्मिँल्लोके यशः प्राप्य ततः कालवशं गताः ॥ १६५ ॥

जो धर्मसे पृथ्वीको जीतकर, दक्षिणावाले महान् महान् यज्ञ करके तथा इस संसारमें महान् यश प्राप्त कर कालके गालमें समा गए ॥ १६५ ॥

वैन्यं महारथं वीरं संजयं जयतां वरम्।
सुहोत्रं रन्तिदेवं च कक्षीवन्तं तथौशिजम् ॥ १६६ ॥

इनमेंसे महारथी वीर वैन्य, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ संजय, सुहोत्र और रंतिदेव, कक्षीवान्, औशिज ॥ १६६ ॥

बाह्लीकं दमनं शैब्यं शर्यातिमजितं जितम्।
विश्वामित्रममित्रघ्नमम्बरीषं महाबलम् ॥ १६७ ॥

बाल्हीक और दमन, शैब्य, शत्रुनाशी शर्याति, अजित, जित और विश्वामित्र, शत्रुनाशक महाबली अंबरीष ॥ १६७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मरुत्तं मनुमिक्ष्वाकुं गयं भरतमेव च ।
रामं दाशरथिं चैव शशाबिन्दुं भगीरथम् ॥ १६८ ॥

मरुत्त, मनु, इक्ष्वाकु, गय, भरत, परशुराम, दशरथपुत्र राम, शशबिन्दु, भगीरथ ॥१६८॥

ययातिं शुभकर्माणं देवैर्यो याजितः स्वयम् ।
चैत्ययूपांकिता भूमिर्यस्येयं सवनाकरा ॥ १६९ ॥

स्वयं देवताओंने जिनका यज्ञ कराया था और जिनके यज्ञीय यूपसमूहसे अंकित महीमण्डल यज्ञोंका घर बन गया था ऐसे शुभ कर्मशील ययाति ॥ १६९ ॥

इति राज्ञां चतुर्विंशन्नारदेन सुरर्षिणा ।
पुत्रशोकाभितप्ताय पुरा शैब्याय कीर्तिताः ॥ १७० ॥

इन चौबीस राजाओंका वर्णन पूर्वकालमें राजा शैब्यके पुत्रशोकसे विकल होनेपर देवर्षि नारदने किया था ॥ १७० ॥

तेभ्यश्चान्ये गताः पूर्वं राजानो बलवत्तराः ।
महारथा महात्मानः सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ १७१ ॥

इनके अतिरिक्त इनसे भी पहले और भी बहुतेरे अतिबलशाली महारथी, सर्व गुणशाली महात्मा राजा कालके गर्भमें चले गये ॥ १७१ ॥

पूरुः कुरुर्यदुः शूरो विष्वगश्वो महाधृतिः ।
अनेना युवनाश्वश्च ककुत्स्थो विक्रमी रघुः ॥ १७२ ॥

जैसे पुरु, कुरु, यदु, शूर विष्वगश्व, महाधृति, अनेना, युवनाश्व, ककुत्स्थ, विक्रमी रघु ॥१७२॥

विजिती वीतिहोत्रश्च भवः श्वेतो बृहद्गुरुः ।
उशीनरः शतरथः कङ्को दुलिदुहो, द्रुमः ॥ १७३ ॥

विजिती, वीतिहोत्र, भव, श्वेत, बृहद्गुरु, उशीनर, शतरथ, कंक, दुलिदह, द्रुम ॥१७३॥

दंभोद्भवः परो वेनः सगरः संकृतिर्निमिः ।
अजेयः परशुः पुण्ड्रः शम्भुर्देवावृधोऽनघः ॥ १७४ ॥

दंभोद्भव, पर, वेन, सगर, संकृति, निमि, अजेय, परशु, पुण्ड्र, शंभु और निष्पाप देवावृध ॥ १७४ ॥

देवाह्वयः सुप्रतिमः सुप्रतीको बृहद्रथः ।
महोत्साहो विनीतात्मा सुक्रतुर्नैषधो नलः ॥ १७५ ॥

देवाह्वय, सुप्रतिम, सुप्रतीक, बृहद्रथ, महोत्साह, विनीतात्मा, सुक्रतु, निषधदेशका राजा नल ॥ १७५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्यव्रतः शान्तभयः सुमित्रः सुबलः प्रभुः।
जानुजङ्घोऽनरण्योऽर्कः प्रियभृत्यः शुभव्रतः ॥ १७६ ॥

सत्यव्रत, शांतभय, सुमित्र, सुबल, प्रभु, जानुजंघ, अनरण्य, अर्क, प्रियभृत्य, शुभव्रत ॥ १७६ ॥

बलबन्धुर्निरामर्दः केतुशृंगो बृहद्बलः।
धृष्टकेतुर्बृहत्केतुर्दीप्तकेतुर्निरामयः ॥ १७७ ॥

बलबन्धु, निरामर्द, केतुशृंग, बृहद्बल, धृष्टकेतु, बृहत्केतु, दीप्तकेतु, निरामय ॥ १७७ ॥

अविक्षित्प्रबलो धूर्तः कृतबन्धुर्दृढेषुधिः।
महापुराणः संभाव्यः प्रत्यंगः परहा श्रुतिः ॥ १७८ ॥

अविक्षित्, प्रबल, धूर्त, कृतबन्धु, दृढेषुधि, महापुराण, संभाव्य, प्रत्यंग, परहा, श्रुति ॥१७८॥

एते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः।
श्रूयन्तेऽयुतशश्चान्ये संख्याताश्चापि पद्मशः ॥ १७९ ॥

ये सब राजा और दूसरे सैंकडों, सहस्रों, पद्म संख्या तकके सुने जाते हैं ॥ १७९ ॥

हित्वा सुविपुलान्भोगान्बुद्धिमन्तो महाबलाः।
राजानो निधनं प्राप्तास्तव पुत्रैर्महत्तमाः ॥ १८० ॥

ये सब आपके पुत्रोंसे भी अधिक बुद्धिमान्, अतिबलवान्, प्रतापवान् राजागण अपार ऐश्वर्य छोडकर मृत्युको प्राप्त होकर परलोकको चले गये ॥ १८० ॥

येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यता शौचमार्जवम् ॥ १८१ ॥

जिनके अलौकिक कार्य, विक्रम, त्याग, माहात्म्य, आस्तिकता, सत्य-निष्ठा, शौच, सरलता ॥ १८१ ॥

विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणैः कविसत्तमैः।
सर्वर्द्धिगुणसम्पन्नास्ते चापि निधनं गताः ॥ १८२ ॥

आदि उत्तम गुणोंका वर्णन प्राचीन श्रेष्ठ कवियों और विद्वानोंने किया है, वे सभी गुण और ऐश्वर्यसे सम्पन्न महापुरुष भी मृत्युके मुखमें चले गए ॥ १८२ ॥

तव पुत्रा दुरात्मानः प्रतप्ताश्चैव मन्युना।
लुब्धा दुर्वृत्तभूयिष्ठा न ताञ्शोचितुमर्हसि ॥ १८३ ॥

आपके पुत्रगण दुरात्मा, क्रोधसे संतप्त, लोभी और बडे दुराचारी थे, अत एव आपको उनके लिए शोक नहीं करना चाहिये ॥ १८३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान्प्राज्ञसंमतः ।
येषां शास्त्रानुगा बुद्धिर्न ते मुह्यन्ति भारत ॥ १८४ ॥

आप शास्त्रज्ञ, मेधावान्, धीमान् और पंडित समाजमें अतिसंमानित हैं; हे भारत! जिनकी बुद्धि शास्त्रोंके अनुसार काम करनेवाली होती है, वे कभी मोहवश नहीं होते ॥ १८४ ॥

निग्रहानुग्रहौ चापि विदितौ ते नराधिप ।
नात्यन्तमेवानुवृत्तिः श्रूयते पुत्ररक्षणे ॥ १८५ ॥

हे राजन्! आप तो जानते ही होंगे कि, आपने पांडवोंके प्रति निर्दयता और अपने पुत्रोंके प्रति दया दिखाई थी। अपनी संतानकी रक्षाके निमित्त अत्यन्त प्रेम नहीं सुना जाता ॥१८५॥

भवितव्यं तथा तच्च नातः शोचितुमर्हसि ।
दैवं प्रज्ञाविशेषेण को निवर्तितुमर्हति ॥ १८६ ॥

वह वैसा होना ही था अतः अब उस बारेमें खेद करना ठीक नहीं, भाग्यको अपनी बुद्धिके कौशलसे भी कौन अन्यथा कर सकता है? ॥ १८६ ॥

विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते ।
कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे ॥ १८७ ॥

विधाताके द्वारा निर्णीत पथका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता। भाव, अभाव, सुख, दुःख, सबके जडमें काल ही कार्य करता है ॥ १८७ ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।
निर्दहन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः ॥ १८८ ॥

काल ही प्राणियोंको परिपक्व अर्थात् पुष्ट करता है, फिर काल ही उन प्रजाओंका संहार करता है, काल ही प्रजाओंको जलाता है, फिर प्रजाओंको जलाते हुए कालको महाकाल ही शांत करता है ॥ १८८ ॥

कालो वि कुरुते भावान्सर्वाँल्लोके शुभाशुभान् ।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः ।
कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविधृतः समः ॥ १८९ ॥

सारे भुवन मंडलके शुभाशुभ संपूर्ण पदार्थ कालहीसे बन रहे हैं, कालहीमें लय होते हैं और कालहीसे फिर प्रजाएं उत्पन्न होती हैं। काल विना बाधा सब भूतोंमें तुल्यभावसे विचर रहा है ॥ १८९ ॥

अतीतानागता भावा ये च वर्तन्ति साम्प्रतम् ।
तान्कालनिर्मितान्बुद्ध्वा न संज्ञां हातुमर्हसि ॥ १९० ॥

भूत, भविष्यत् तथा इस समय जो विद्यमान हैं वे सभी वस्तुएं कालसे रची हुई हैं, यह सब जानकर आपको अपना विवेक छोडना कदापि उचित नहीं है ॥ १९० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

अत्रोपनिषदं पुण्यां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
भारताध्ययनात्पुण्यादपि पादमधीयतः।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥ १९१ ॥

सूत बोले– श्रीकृष्ण द्वैपायन महाराज इस विषयमें परम पवित्र उपनिषत् रूपी महाभारत कह गये हैं, यदि कोई पुण्यदायक महाभारतका एक चरण भी श्रद्धासहित पढे तो उस अध्ययनसे उस श्रद्धालुके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १९१ ॥

देवर्षयो ह्यत्र पुण्या ब्रह्मराजर्षयस्तथा।
कीर्त्यन्ते शुभकर्माणस्तथा यक्षमहोरगाः ॥ १९२ ॥

इस भारतमें निष्पाप और उत्तम कर्मशील देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, महोरग और यक्षोंका वर्णन है ॥ १९२ ॥

भगवान्वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च ॥ १९३ ॥

इस ग्रंथमें विशेषकर सनातन भगवान् कृष्णका वर्णन है, वे ही सत्य और ऋत स्वरूप, पवित्र और पवित्रकारी हैं ॥ १९३ ॥

शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः ॥ १९४ ॥

वे ही शाश्वत ब्रह्म और पवित्र और सनातन ज्योति हैं; पण्डितगण जिनके लोकातीत दिव्य कार्योंका कीर्तन करते हैं ॥ १९४ ॥

असत्सत्सदसच्चैव यस्माद्देवात्प्रवर्तते।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्म मृत्युः पुनर्भवः ॥ १९५ ॥

जिस देवसे सत्, असत् और सदसत् यह विश्व, प्रजा, यागादि कर्मकी प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म हो रहे हैं ॥ १९५ ॥

अध्यात्मं श्रूयते यच्च पञ्चभूतगुणात्मकम्।
अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते ॥ १९६ ॥

जो अध्यात्मरूप है तथा जो पंचभूतात्मा है तथा जो अव्यक्तादि संपूर्ण वस्तुओंसे भी परे जिसका वेदमें वर्णन है ॥ १९६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यत्तद्यतिवरा युक्ता ध्यानयोगबलान्विताः ।
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ॥ १९७ ॥

और जिसको योगी तथा ध्यान और योगके बलसे युक्त यतिश्रेष्ठ आइनेमें स्थित प्रतिबिम्बके सदृश अपनी आत्मामें देखते हैं, उसी सनातन भगवान् वासुदेवका वर्णन इस ग्रंथमें है ॥१९७॥

श्रद्दधानः सदोद्युक्तः सत्यधर्मपरायणः ।
आसेवन्निममध्यायं नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ १९८ ॥

सत्य और धर्मशील तथा सदा प्रयत्नशील रहनेवाला नर, नियम और श्रद्धाके साथ इस अध्यायका पाठ करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है ॥ १९८ ॥

अनुक्रमणिमध्यायं भारतस्येममादितः ।
आस्तिकः सततं शृण्वन्न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥ १९९ ॥

आस्तिक पुरुष भारत ग्रंथके इस अनुक्रमणिका—अध्यायको प्रथमसे सदा सुनता हुआ कठिनसे कठिन क्लेशमें भी दुःखी नहीं होता ॥ १९९ ॥

उभे संध्ये जपन् किंचित् सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ।
अनुक्रमण्या यावत्स्यादह्ना रात्र्या च संचितम् ॥ २०० ॥

सन्ध्या और प्रातःकालमें इस अनुक्रमणिका-अध्यायका थोडा थोडा पाठ करनेसे दिन और रात्रिके समय इकट्ठे किए गए सब पाप उसी समय छूट जाते हैं ॥ २०० ॥

भारतस्य वपुर्ह्येतत्सत्यं चामृतमेव च ।
नवनीतं यथा दध्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ २०१ ॥

यह अनुक्रमणिका अध्याय महाभारतकी सत्य और अमृतसे भरी देहके सदृश है । जैसे दहीमें मक्खन, मनुष्योंमें ब्राह्मण ॥ २०१ ॥

ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।
यथैतानि वरिष्ठानि तथा भारतमुच्यते ॥ २०२ ॥

जलाशयोंमें समुद्र और चतुष्पदों—चौपायोंमें गौ श्रेष्ठ है, वैसे ही इतिहासोंमें यह महाभारत श्रेष्ठ है ॥ २०२ ॥

यश्चैनं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठति ॥ २०३ ॥

जो पुरुष श्राद्धकालमें इसका एक चरण भी ब्राह्मणोंको सुनाता है, उससे पितरोंको अक्षय अन्न और पानकी प्राप्ति होती है ॥ २०३ ॥

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥ २०४ ॥

इतिहास और पुराणसे वेदके अर्थका स्पष्टीकरण करें, क्योंकि थोडी विद्या पढे हुए मनुष्यसे वेदको यह भय लगता है कि वह मुझे बिगाड देगा ॥ २०४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्श्रावयित्वार्थमश्नुते।
भ्रूणहत्याकृतं चापि पापं जह्यान्न संशयः ॥ २०५ ॥

श्री कृष्णद्वैपायनके कथित इस वेदको सुनाकर पण्डित धन पाता है और निश्चय ही भ्रूण-हत्यादि पापोंसे भी वह मुक्त हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २०५ ॥

य इमं शुचिरध्यायं पठेत् पर्वणि पर्वणि।
अधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः ॥ २०६ ॥

जो पुरुष शुद्ध हो करके इस अध्यायका हर पर्वोंमें पाठ करता है, उसको संपूर्ण भारतको पढनेका फल मिलता है ऐसा मेरा मत है ॥ २०६ ॥

यश्चैमं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धासमन्वितः।
स दीर्घमायुः कीर्तिं च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः ॥ २०७ ॥

जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर ऋषि-सेवित इस अध्यायको नित्य सुनता है, वह दीर्घायु हो और कीर्ति लाभ कर अन्तमें देवलोक प्राप्त करता है ॥ २०७ ॥

चत्वार एकतो वेदा भारतं चैकमेकतः।
समागतैः सुरर्षिभिस्तुलामारोपितं पुरा।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं ततोऽधिकम् ॥ २०८ ॥

पूर्वकालमें सब देवताओं और ऋषियोंने मिलकर तराजूके एक ओर चारों वेद और दूसरी ओर केवल इस भारतको तराजूपर तौला, तो महत्त्व और भारीपनमें यही भारत भारी निकला ॥ २०८ ॥

महत्त्वाद्भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०९ ॥

महत्त्वपूर्ण और भारी होनेके कारण ही इसे महाभारत कहते हैं। जो पुरुष महाभारत शब्दके सत्यार्थको जानता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २०९ ॥

तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः स्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कस्तान्येव भावोपहतानि कल्कः ॥ २१० ॥

तपस्या अशुद्ध नहीं है, पठन अशुद्ध नहीं है, संपूर्ण स्वाभाविक वेद-विधि अशुद्ध नहीं है और जबर्दस्तीसे द्रव्य छीन लेना इत्यादि भी कदापि पापजनक नहीं हो सकते; पर असद् अभिप्रायसे दूषित हो जानेपर वे ही निःसंदेह पापजनक हो जाते हैं ॥ २१० ॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि अनुक्रमणी नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार महाभारतमें आदिपर्वका प्रथम अध्याय और अनुक्रमणिका पर्व समाप्त हुआ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २ :

ऋषय ऊचुः

समन्तपञ्चकमिति यदुक्तं सूतनन्दन ।
एतत्सर्वं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १ ॥

ऋषिगण बोले— हे सूतनन्दन ! तुमने जिस समन्तपंचक देशका नाम लिया हम उसके सब सत्यवृत्तांतोंको सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥

सूत उवाच

शुश्रूषा यदि वो विप्रा ब्रुवतश्च कथाः शुभाः ।
समन्तपञ्चकाख्यं च श्रोतुमर्हथ सत्तमाः ॥ २ ॥

सूत बोले— हे श्रेष्ठ ऋषिगण ! शुभ कथाओंको कहते हुए मुझसे यदि समन्तपंचकके बारेमें सुननेकी आपकी इच्छा है तो श्रवण कीजिये ॥ २ ॥

त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥ ३ ॥

त्रेता और द्वापर युगोंके सन्धिकालमें शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भगवान् परशुरामने क्रोधके वशमें होकर क्षत्रिय राजाओंका बार बार विनाश किया था ॥ ३ ॥

स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्वबीर्येणानलद्युतिः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान् ॥ ४ ॥

उस अग्नितुल्य तेजस्वी रामने अपने भुजवीर्यके बलसे क्षत्रिय कुलका सत्यानाश कर उनके शोणितसे समंतपंचकमें पांच तालाब बनाये थे ॥ ४ ॥

स तेषु रुधिराम्भस्सु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः ।
पितॄन्संतर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥ ५ ॥

हमने सुना है, कि क्रोधयुक्त होकर उन रक्तरूपी जलसे भरे ह्रदोंके किनारे उन्होंने रक्तसे पितरोंका तर्पण किया था ॥ ५ ॥

अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो ब्राह्मणर्षभम् ।
तं क्षमस्वेति सिषिधुस्ततः स विरराम ह ॥ ६ ॥

अनन्तर ऋचीक आदि पितृलोगोंने आकर उन ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी परशुरामको 'क्षत्रियोंको क्षमा करो' यह कहकर क्षत्रियकुलके उच्छेद करनेके कार्यसे निवृत्त किया और वह भी उस कार्यसे शान्त हो गये ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम्।
समन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥

रक्तरूपी जलसे युक्त इन पांच ह्रदोंके आसपासका जो देश है वह पवित्र 'समन्तपंचक' नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ७ ॥

येन लिङ्गेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते
तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥

क्योंकि जिस चिन्हसे जो देश युक्त देखा जाता है, पण्डितगण उन्हींके अनुसार उस देशका नाम निश्चित करते हैं ॥ ८ ॥

अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरु-पाण्डव-सेनयोः ॥ ९ ॥

द्वापर और कलियुगके सन्धिकालके प्राप्त होने पर उस समंतपंचक देशमें कुरुपांडवोंकी सेनाओंमें संग्राम हुवा ॥ ९ ॥

तस्मिन्परमधर्मिष्ठे देशे भूदोषवर्जिते।
अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया ॥ १० ॥

उस भूदोषसे वर्जित और अत्यन्त धार्मिक देशमें अट्ठारह अक्षौहिणी सेनायें युद्ध करनेकी कामनासे इकट्ठी हुई थीं ॥ १० ॥

एवं नामाभिनिर्वृत्तं तस्य देशस्य वै द्विजाः।
पुण्यश्च रमणीयश्च स देशो वः प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥

हे ब्राह्मणो! उस प्रदेशका यह नाम इसी प्रकार पडा है। मैंने उस रमणीय और पवित्र प्रदेशका वर्णन तुम्हारे सामने कर दिया है ॥ ११ ॥

तदेतत्कथितं सर्वं मया वो मुनिसत्तमाः।
यथा देशः स विख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो! जिस कारण वह प्रदेश तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है उसकी वह सब कथा मैंने तुमसे कह दी है ॥ १२ ॥

ऋषय ऊचुः

अक्षौहिण्य इति प्रोक्तं यत्त्वया सूतनन्दन।
एतदिच्छामहे श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥ १३ ॥

ऋषिगण बोले— हे सूतनन्दन! आपने जो अक्षौहिणी शब्द कहा, हम उस सबका ठीक ठीक अर्थ सुनना चाहते हैं ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अक्षौहिण्याः परीमाणं रथाश्वनरदन्तिनाम् ।
यथावच्चैव नो ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥ १४ ॥

एक अक्षौहिणीके परिमाणमें कितने रथ, कितने घोडे कितने पैदल मनुष्य और कितने हाथी रहते हैं, आप सब कुछ जानते हैं, अतः हमें ठीक ठीक बताइए ॥ १४ ॥

सूत उवाच

एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥ १५ ॥

श्री सूत बोले– उस परिमाणको जाननेवाले एक रथ, एक हाथी, पांच पैदल मनुष्य और तीन घोडोंको मिलाकर एक पत्ति कहते हैं ॥ १५ ॥

पत्तिं तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः ।
त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥ १६ ॥

तीन गुना पत्तिओंको विद्वान् एक सेनामुख कहते हैं और तीन सेनामुखोंको एक गुल्म कहते हैं ॥ १६ ॥

त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः ।
स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ॥ १७ ॥

तीन गुल्मोंसे एक गण; तीन गणोंसे एक वाहिनी; तीन वाहिनियोंकी सम्मिलित सेनाको बुद्धिमान् पृतना कहते हैं ॥ १७ ॥

चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चम्वस्त्वनीकिनी ।
अनीकिनीं दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः ॥ १८ ॥

और तीन पृतनाओंसे एक चमू होती है; तीन चमुओंसे एक अनीकिनी होती है; दश अनीकिनियोंके एकत्र मिलने पर उसे पण्डित लोग एक अक्षौहिणी कहते हैं ॥ १८ ॥

अक्षौहिण्याः प्रसंख्यानं रथानां द्विजसत्तमाः ।
संख्यागणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ १९ ॥
शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः ।
गजानां तु परीमाणमेतदेवात्र निर्दिशेत् ॥ २० ॥

हे द्विजश्रेष्ठगण ! संख्या गिननेके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषोंने अक्षौहिणी सेनाकी यह संख्या लगाई है, कि रथोंकी संख्या (२१, ८, ७०) इक्कीस सहस्र, आठसौ, सत्तर और गजोंकी संख्या भी इतनी ही अर्थात् अश्वोंके बराबर ही है ॥ १९–२० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि तथा नव।
नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः ॥ २१ ॥

(१, ०९, ३, ५०) एक लक्ष, नौ सहस्र, तीनसौ, पचास पैदल मनुष्य ॥ २१ ॥

पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च।
दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥ २२ ॥

(६५,६,१०) और पैंसठ हजार, छःसौ, दस घोडे इस प्रकार विद्वान् संख्यासे कहते हैं ॥ २२ ॥

एतामक्षौहिणीं प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः।
यां वः कथितवानस्मि विस्तरेण द्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥

इसीको संख्यातत्त्वको जाननेवाले विद्वान् अक्षौहिणी कहते हैं, जिसको हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! मैंने तुमसे विस्तारसे कह दिया है ॥ २३ ॥

एतया संख्यया ह्यासन्कुरुपाण्डवसेनयोः।
अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठाः पिण्डेनाष्टादशैव ताः ॥ २४ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! कौरव पाण्डवोंकी सेनायें इसी संख्याके आधार पर अट्ठारह अक्षौहिणी सम्मिलित हुई थीं ॥ २४ ॥

समेतास्तत्र वै देशे तत्रैव निधनं गताः।
कौरवान्कारणं कृत्वा कालेनाद्भुतकर्मणा ॥ २५ ॥

हे द्विजश्रेष्ठगण ! वे सेनायें कौरवोंको कारण बनाकर आश्चर्यकार्यकारी कालके आ जाने पर उसी देशमें सम्मिलित हुई और वहींपर नष्ट हो गईं ॥ २५ ॥

अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्।
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम् ॥ २६ ॥

परमास्त्रोंके जाननेवाले भीष्मने दश दिनतक युद्ध किया। द्रोणाचार्यने पांच दिवसतक कौरवोंके सेनाकी रक्षा की ॥ २६ ॥

अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः।
शल्योऽर्धदिवसं त्वासीत् गदायुद्धमतः परम् ॥ २७ ॥

शत्रुसेनाका नाश करनेवाले कर्णने दो दिन और शल्यने आधा दिन युद्ध किया था, अनंतर आधा दिन भीम और दुर्योधनमें गदायुद्ध हुआ था ॥ २७ ॥

तस्यैव तु दिनस्यान्ते हार्दिक्यद्रौणिगौतमाः।
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २८ ॥

उसी दिन रात्रिको कृतवर्मा, अश्वत्थामा और कृपाचार्य इन तीनोंने युधिष्ठिरकी ठीक ठीक होकर निद्रित सेनाओंपर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यत्तु शौनकसत्रे ते भारताख्यानविस्तरम् ।
आख्यास्ये तत्र पौलोममाख्यानं चादितः परम् ॥ २९ ॥

मैं शौनकके यज्ञमें जो सुन्दर विस्तृत भारतोपाख्यानका आख्यान करूंगा । उसमें शुरुमें सबसे पहले पौलोमका आख्यान है ॥ २९ ॥

विचित्रार्थपदाख्यानमनेकसमयान्वितम् ।
अभिपन्नं नरैः प्राज्ञैर्वैराग्यमिव मोक्षिभिः ॥ ३० ॥

यह भारत अनेक विचित्र पदों, अनेक आख्यानों और नाना प्रकारके आचारादियोंसे युक्त है, मोक्षार्थी जन जैसे वैराग्यका आश्रय लेते हैं, वैसे ही प्राज्ञलोग इस भारतकी शरण लिये रहते हैं ॥ ३० ॥

आत्मेव वेदितव्येषु प्रियेष्विव च जीवितम् ।
इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम् ॥ ३१ ॥

जैसे जानने योग्य वस्तुओंमें आत्मा और प्यारी वस्तुओंमें जीवन प्रधान है, वैसे ही श्रेष्ठ विषयोंसे भरा हुआ यह इतिहास संपूर्ण आगमोंमें श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥

इतिहासोत्तमे ह्यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा ।
स्वरव्यञ्जनयोः कृत्स्ना लोकवेदाश्रयेव वाक् ॥ ३२ ॥

जैसे सब लौकिक और वैदिक वाणी, स्वर और व्यंजनरूप वर्णोंमें समायी रहती है, उसी प्रकार इस उत्तम इतिहासमें श्रेष्ठ बुद्धि भरी पडी है ॥ ३२ ॥

अस्य प्रज्ञाभिपन्नस्य विचित्रपदपर्वणः ।
भारतस्येतिहासस्य श्रूयतां पर्वसंग्रहः ॥ ३३ ॥

इस समय आप लोग अनन्त प्रज्ञाके आधार, विचित्र पद और पर्वसे युक्त, भारत इतिहासका पर्वसंग्रह सुनिए ॥ ३३ ॥

पर्वानुक्रमणी पूर्वं द्वितीयं पर्वसंग्रहः ।
पौष्यं[3] पौलोममास्तीकमादिवंशावतारणम् ॥ ३४ ॥

प्रथम अनुक्रमणिका[1] पर्व, द्वितीय पर्व—संग्रह[2] पर्व, आगे पौष्य[3] पर्व, पौलोम[4] पर्व, आस्तीक[5] पर्व, और आदिवंशावतारण[6] पर्व है ॥ ३४ ॥

ततः संभवपर्वोक्तमद्भुतं देवनिर्मितम् ।
दाहो[7] जतुगृहस्यात्र हैडिम्बं[8] पर्व चोच्यते ॥ ३५ ॥

अनन्तर देवों द्वारा निर्मित विचित्र संभव[9] पर्व, इसके बाद जतुगृह[10]—दाह पर्व, इसके बाद हिडिम्ब पर्वका वर्णन है ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो बकवधः पर्व पर्व चैत्ररथं ततः।
ततः स्वयंवरं देव्याः पाञ्चाल्याः पर्व चोच्यते ॥ ३६ ॥

अनन्तर बकवध पर्व, उसके बाद चैत्ररथ पर्व, पश्चात् देवी पांचाली द्रौपदीका स्वयंवर पर्व कहा जाता है ॥ ३६ ॥

क्षत्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम्।
विदुरागमनं पर्व राज्यलम्भस्तथैव च ॥ ३७ ॥

उसके बाद क्षत्रिय-धर्मसे जयलाभके पश्चात् पाण्डवोंका विवाह पर्व, अनन्तर विदुरागमन पर्व, उसके बाद राज्यप्राप्ति पर्व ॥ ३७ ॥

अर्जुनस्य वने वासः सुभद्राहरणं ततः।
सुभद्राहरणादूर्ध्वं ज्ञेयं हरणहारिकम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद अर्जुनका वनवास पर्व, पश्चात् सुभद्राहरण पर्व और सुभद्राहरण पर्वके बाद हरणाहरण पर्व जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

ततः खाण्डवदाहाख्यं तत्रैव मयदर्शनम्।
सभापर्व ततः प्रोक्तं मन्त्रपर्व ततः परम् ॥ ३९ ॥

अनंतर खाण्डवदाह पर्व, वहीं पर मयदानवका दर्शन हुआ, उसके बाद सभा पर्व कहा गया है और तब उसके बाद मन्त्रणा पर्व है ॥ ३९ ॥

जरासन्धवधः पर्व पर्व दिग्विजयस्तथा।
पर्व दिग्विजयादूर्ध्वं राजसूयिकमुच्यते ॥ ४० ॥

मंत्रपर्वके बाद जरासंधवध पर्व, जिसके अनन्तर दिग्विजय पर्व, दिग्विजयके बाद राजसूयिक पर्व कहा है ॥ ४० ॥

ततश्चार्घाभिहरणं शिशुपालवधस्ततः।
द्यूतपर्व ततः प्रोक्तमनुद्यूतमतः परम् ॥ ४१ ॥

पश्चात् अर्घाभिहरण पर्व, उसके बाद शिशुपालवध पर्व, अनन्तर द्यूत पर्व, पश्चात् अनुद्यूत पर्व कहा है ॥ ४१ ॥

तत आरण्यकं पर्व किर्मीरवध एव च।
ईश्वरार्जुनयोर्युद्धं पर्व कैरातसंज्ञितम् ॥ ४२ ॥

अनंतर अरण्य-यात्रा-पर्व, उसके बाद किर्मीर वध पर्वका वर्णन है, तब ईश्वरार्जुनके युद्ध-संबंधी किरात नामका पर्व है ॥ ४२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इन्द्रलोकाभिगमनं[32] पर्व ज्ञेयमतः परम् ।
तीर्थयात्रा[33] ततः पर्व कुरुराजस्य धीमतः ॥ ४३ ॥

इस किरात पर्वके बाद इंद्रलोकाभिगमन[32] पर्वको जानना चाहिए, उसके बाद कुरुराज युधिष्ठिरका तीर्थयात्रा[33] पर्व है ॥ ४३ ॥

जटासुरवधः[34] पर्व यक्षयुद्धमतः[35] परम् ।
तथैवाजगरं[36] पर्व विज्ञेयं तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

तब जटासुरवध[34], फिर यक्षयुद्ध[35] पर्व, उसके बाद अजगर[36] पर्व जानना चाहिए ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयसमस्या[37] च पर्वोक्तं तदनन्तरम् ।
संवादश्च[38] ततः पर्व द्रौपदीसत्यभामयोः ॥ ४५ ॥

उसके बाद मार्कण्डेय[37]-समस्या पर्वका वर्णन है, उसके बाद द्रौपदी–सत्यभामा[38]–संवाद पर्व है ॥ ४५ ॥

घोषयात्रा[39] ततः पर्व मृगस्वप्नभयं[40] ततः ।
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानं[41] ततोऽनन्तरमुच्यते ॥ ४६ ॥

उसके बाद घोषयात्रा[39] पर्व है, उसीमें मृगस्वप्नभय[40] और तदनन्तर व्रीहि[41] द्रौणिक उपाख्यान कहा गया है ॥ ४६ ॥

द्रौपदीहरणं[42] पर्व सैन्धवेन वनात्ततः ।
कुण्डलाहरणं[43] पर्व ततः परमिहोच्यते ॥ ४७ ॥

तब उसी वनसे जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण[42] पर्व, आगे कुंडल[43] हरण पर्व कहा जाता है ॥ ४७ ॥

आरणेयं[44] ततः पर्व वैराटं[45] तदनन्तरम् ।
कीचकानां[46] वधः पर्व पर्व गोग्रहणं[47] ततः ॥ ४८ ॥

उसके बाद आरणेय[44] पर्व, अनन्तर विराट[45] पर्व, आगे कीचकवध[46] पर्व, अनन्तर गोग्रहण[47] पर्व ॥ ४८ ॥

अभिमन्युना च वैराट्याः पर्व वैवाहिकं[48] स्मृतम् ।
उद्योगपर्व[49] विज्ञेयमत ऊर्ध्वं महाद्भुतम् ॥ ४९ ॥

तब अभिमन्यु और विराट पुत्री उत्तराका विवाह[48] पर्व कहा गया है, अनन्तर अति आश्चर्यकारक सैन्योद्योग[49] पर्व जानना चाहिए ॥ ४९ ॥

ततः संजययानाख्यं[50] पर्व ज्ञेयमतः परम् ।
प्रजागरं[51] ततः पर्व धृतराष्ट्रस्य चिन्तया ॥ ५० ॥

उसके बाद संजययान[50] पर्व जानना चाहिए, उसके पश्चात् धृतराष्ट्रकी चिंताका प्रजागर[51] पर्व समझना चाहिए ॥ ५० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पर्व सानत्सुजातं च गुह्यमध्यात्मदर्शनम्।
यानसंधिस्ततः पर्व भगवद्यानमेव च ॥ ५१ ॥

अनन्तर गुह्यात्मक अध्यात्मज्ञानसंबंधी सनत्सुजात पर्व, उसके बाद यानसंधि पर्व और तदनन्तर भगवद्यान पर्व है ॥ ५१ ॥

ज्ञेयं विवादद्वैपर्वात्र कर्णस्यापि महात्मनः।
निर्याणं पर्व च ततः कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ५२ ॥

महात्मा श्रीकृष्णचंद्र और कर्णका वादविवाद पर्व, उसके पश्चात् कुरुपाण्डवोंका सैन्य निर्याण पर्व जानना चाहिए ॥ ५२ ॥

रथातिरथसंख्या च पर्वोक्तं तदनन्तरम्।
उलूकदूतागमनं पर्वामर्षविवर्धनम् ॥ ५३ ॥

इसके अनंतर रथातिरथ संख्या पर्व कहा गया है इसके बाद क्रोधवृद्धि करनेवाला उलूक दूताभिगमन पर्व है ॥ ५३ ॥

अम्बोपाख्यानमपि च पर्व ज्ञेयमतः परम्।
भीष्माभिषेचनं पर्व ज्ञेयमद्भुतकारणम् ॥ ५४ ॥

उसके पश्चात् अंबोपाख्यान पर्व समझना चाहिए। अनंतर आश्चर्यकारक भीष्माभिषेक पर्व जानना चाहिए ॥ ५४ ॥

जम्बूखण्डविनिर्माणं पर्वोक्तं तदनन्तरम्।
भूमिपर्व ततो ज्ञेयं द्वीपविस्तरकीर्तनम् ॥ ५५ ॥

तदनंतर जम्बुद्वीपके निर्माणका पर्व है, अनंतर द्वीप विस्तारके कीर्तनसे युक्त भूमि पर्व है ॥५५॥

पर्वोक्तं भगवद्गीता पर्व भीष्मवधस्ततः।
द्रोणाभिषेकः पर्वोक्तं संशप्तकवधस्ततः ॥ ५६ ॥

तब भगवद्गीता पर्व, इसके पश्चात् भीष्मवध पर्व, अनन्तर द्रोणाभिषेक पर्व और तब संशप्तकवध पर्व है ॥ ५६ ॥

अभिमन्युवधः पर्व प्रतिज्ञापर्व चोच्यते।
जयद्रथवधः पर्व घटोत्कचवधस्ततः ॥ ५७ ॥

आगे अभिमन्यु वध पर्व, अनन्तर प्रतिज्ञा पर्व कहा गया है तब जयद्रथ वध पर्व, इसके पश्चात् घटोत्कचवध पर्व है ॥ ५७ ॥

ततो द्रोणवधः पर्व विज्ञेयं लोमहर्षणम्।
मोक्षो नारायणास्त्रस्य पर्वानन्तरमुच्यते ॥ ५८ ॥

अनन्तर रोंगटे खडे करनेवाला द्रोणवध पर्व जानना चाहिए, आगे नारायणास्त्रत्याग पर्व कहा गया है ॥ ५८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कर्णपर्व ततो ज्ञेयं शल्यपर्व ततः परम् ।
ह्रदप्रवेशनं पर्व गदायुद्धमतः परम् ॥ ५९ ॥

इसके पश्चात् कर्ण पर्व जानना चाहिए, अनन्तर शल्यवध पर्व, तब ह्रदप्रवेश और उसके पश्चात् गदायुद्धपर्व है ॥ ५९ ॥

सारस्वतं ततः पर्व तीर्थवंशगुणान्वितम् ।
अत ऊर्ध्वं तु बीभत्सं पर्व सौप्तिकमुच्यते ॥ ६० ॥

अनन्तर वंशानुकीर्तनपूर्वक सारस्वत तीर्थ पर्व, उसके पश्चात् अतिबीभत्स सौप्तिकपर्व कहा है ॥ ६० ॥

ऐषीकं पर्व निर्दिष्टमत ऊर्ध्वं सुदारुणम् ।
जलप्रदानिकं पर्व स्त्रीपर्व च ततः परम् ॥ ६१ ॥

आगे अति कष्टदायी ऐषीकपर्व कहा है, उसके पश्चात् जलप्रादानिक पर्व और उसके अनन्तर स्त्री पर्व है ॥ ६१ ॥

श्राद्धपर्व ततो ज्ञेयं कुरूणामौर्ध्वदेहिकम् ।
आभिषेचनिकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः ॥ ६२ ॥

तब कौरवोंका और्ध्वदेहिक श्राद्धपर्व अनन्तर धीमान् धर्मराजका अभिषेचनिक पर्व है ॥ ६२ ॥

चार्वाकनिग्रहः पर्व रक्षसो ब्रह्मरूपिणः ।
प्रविभागो गृहाणां च पर्वोक्तं तदनन्तरम् ॥ ६३ ॥

उसके पश्चात् ब्राह्मणवेशधारी चार्वाक राक्षसका निग्रहपर्व और तब गृहविभागपर्व कहा है ॥ ६३ ॥

शान्तिपर्व ततो यत्र राजधर्मानुकीर्तनम् ।
आपद्धर्मश्च पर्वोक्तं मोक्षधर्मस्ततः परम् ॥ ६४ ॥

उसके पश्चात् राजधर्मोंको बतलानेवाला शान्ति पर्व, अनंतर आपद्धर्म पर्व, उसके बाद मोक्षधर्म पर्व है ॥ ६४ ॥

ततः पर्व परिज्ञेयमानुशासनिकं परम् ।
स्वर्गारोहणिकं पर्व ततो भीष्मस्य धीमतः ॥ ६५ ॥

उसके पश्चात् आनुशासनिक पर्व, उसके बाद धीमान् भीष्मजीका स्वर्गारोहण पर्व जानना चाहिए ॥ ६५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततोऽश्वमेधिकं[६५] पर्व सर्वपापप्रणाशनम्।
अनुगीता[६६] ततः पर्व ज्ञेयमध्यात्मवाचकम् ॥ ६६ ॥

तब सर्व पापनाशी आश्वमेधिक[६५] पर्व उसके पश्चात् अध्यात्मसंबंधी अनुगीता[६६] पर्व समझना चाहिए ॥ ६६ ॥

पर्व चाश्रमवासाख्यं[६७] पुत्रदर्शनमेव[६८] च।
नारदागमनं[६९] पर्व ततः परमिहोच्यते ॥ ६७ ॥

अनन्तर आश्रमवासिक[६७] पर्व और तब पुत्रदर्शन[६८] पर्व, उसके पश्चात् श्रेष्ठ नारदागमन[६९] पर्व कहा है ॥ ६७ ॥

मौसलं[७०] पर्व च ततो घोरं समनुवर्ण्यते।
महाप्रस्थानिकं[७१] पर्व स्वर्गारोहणिकं[७२] ततः ॥ ६८ ॥

अनन्तर अतिकष्टदायी मौसल[७०] पर्वका वर्णन है, उसके बाद महाप्रस्थानिक[७१] पर्व, उसके पश्चात् स्वर्गारोहणिक[७२] पर्व है ॥ ६८ ॥

हरिवंशस्ततः[७३] पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।
भविष्यत्पर्व[७४] चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् ॥ ६९ ॥

अनंतर खिल नामक पुराना हरिवंश[७३] पर्व, तब खिलोंमें अति आश्चर्यकारक भविष्य[७४] पर्व भी कहा गया है ॥ ६९ ॥

एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।
यथावत्सूतपुत्रेण लोमहर्षणिना पुनः ॥ ७० ॥

इन सौ पर्वोंको महात्मा व्यासदेव पूर्ण रूपसे कह गये हैं। सूत पुत्र लोमहर्षणके द्वारा फिर यथावत् ॥ ७० ॥

कथितं नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु।
समासो भारतस्यायं तत्रोक्तः पर्वसंग्रहः ॥ ७१ ॥

नैमिषारण्यमें संक्षेप क्रमानुसार जो अठारह पर्व कह गये हैं, भारतके वही संक्षिप्त पर्वसंग्रह कहे जाते हैं ॥ ७१ ॥

पौष्ये पर्वणि माहात्म्यमुत्तङ्कस्योपवर्णितम्।
पौलोमे भृगुवंशस्य विस्तारः परिकीर्तितः ॥ ७२ ॥

पौष्य पर्वमें उत्तङ्क मुनिके महात्म्यका वर्णन और पोलोमपर्वमें भृगुवंशका विस्तार वर्णित है ॥ ७२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आस्तीके सर्वनागानां गरुडस्य च संभवः ।
क्षीरोदमथनं चैव जन्मोच्चैःश्रवसस्तथा ॥ ७३ ॥

आस्तीक पर्वमें गरुड और संपूर्ण सर्पोंकी उत्पत्ति, क्षीर समुद्रका मंथन, उच्चैःश्रवाकी उत्पत्ति ॥ ७३ ॥

यजतः सर्पसत्रेण राज्ञः पारीक्षितस्य च ।
कथेयमभिनिर्वृत्ता भारतानां महात्मनाम् ॥ ७४ ॥

और महाराज परीक्षितके पुत्र जनमेजयके सर्पयज्ञके कालमें भरतवंशी महात्मावर्गसे संबंधित महाभारतकी कथा वर्णित हुई है ॥ ७४ ॥

विविधाः संभवा राज्ञामुक्ताः संभवपर्वणि ।
अन्येषां चैव विप्राणामृषेर्द्वैपायनस्य च ॥ ७५ ॥

संभवपर्वमें राजगण तथा दूसरे विप्रगण और महर्षि द्वैपायनकी भिन्न भिन्न प्रकारकी उत्पत्ति कही है ॥ ७५ ॥

अंशावतरणं चात्र देवानां परिकीर्तितम् ।
दैत्यानां दानवानां च यक्षाणां च महौजसाम् ॥ ७६ ॥

महान् तेजवाले देवताओंका अंशावतार; दैत्य, दानव, यक्ष ॥ ७६ ॥

नागानामथ सर्पाणां गन्धर्वाणां पतत्रिणाम् ।
अन्येषां चैव भूतानां विविधानां समुद्भवः ॥ ७७ ॥

नाग, सर्प, गंधर्व, पक्षी और दूसरे नाना प्राणियोंकी उत्पत्ति कही है ॥ ७७ ॥

वसूनां पुनरुत्पत्तिर्भागीरथ्यां महात्मनाम् ।
शंतनोर्वेश्मनि पुनस्तेषां चारोहणं दिवि ॥ ७८ ॥

राजा शन्तनुके गृहमें गंगाके गर्भसे महानुभाव वसुओंकी उत्पत्ति, पुनः उनका स्वर्गारोहण ॥ ७८ ॥

तेजोंशानां च संघाताद् भीष्मस्याप्यत्र संभवः ।
राज्यान्निवर्तनं चैव ब्रह्मचर्यव्रते स्थितिः ॥ ७९ ॥

और तेजोंके संगठनसे भीष्मका जन्म और उनका राज्यत्याग, ब्रह्मचर्यव्रतका अवलंबन ॥७९॥

प्रतिज्ञापालनं चैव रक्षा चित्राङ्गदस्य च ।
हते चित्रांङ्गदे चैव रक्षा भ्रातुर्यवीयसः ॥ ८० ॥

तथा प्रतिज्ञा पालन; भीष्मके द्वारा चित्रांगदकी रक्षा और चित्रांगदके मारे जाने पर उसके कनिष्ठ सहोदर ॥ ८० ॥

❀

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विचित्रवीर्यस्य तथा राज्ये संप्रतिपादनम् ।
धर्मस्य नृषु संभूतिरणीमाण्डव्यशापजा ॥ ८१ ॥

विचित्रवीर्यकी रक्षा और उसकी राज्यमें स्थापना; अणीमाण्डव्यके शापसे धर्मकी नर-योनिमें उत्पत्ति ॥ ८१ ॥

कृष्णद्वैपायनाच्चैव प्रसूतिर्वरदानजा ।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च पाण्डवानां च संभवः ॥ ८२ ॥

वरदानके बलसे कृष्णद्वैपायनसे धृतराष्ट्र और पाण्डुका जन्म और पाण्डवोंकी उत्पत्ति ॥८२॥

वारणावतयात्रा च मन्त्रो दुर्योधनस्य च ।
विदुरस्य च वाक्येन सुरङ्गोपक्रमक्रिया ॥ ८३ ॥

पाण्डवोंकी वारणावतकी यात्रा और दुर्योधनकी मंत्रणा और विदुरके वाक्यसे सुरङ्गका खोदा जाना ॥ ८३ ॥

पाण्डवानां वने घोरे हिडिम्बायाश्च दर्शनम् ।
घटोत्कचस्य चोत्पत्तिरत्रैव परिकीर्तिता ॥ ८४ ॥

घने वनमें पाण्डवोंकी राक्षसी हिडिम्बासे भेंट और घटोत्कचकी उत्पत्ति यहीं बताई है ॥ ८४ ॥

अज्ञातचर्या पाण्डूनां वासो ब्राह्मणवेश्मनि ।
बकस्य निधनं चैव नागराणां च विस्मयः ॥ ८५ ॥

ब्राह्मणके घर पाण्डवोंका अज्ञातवास, राक्षस बकका वध और यह देखकर नगरवासियों-का विस्मय आदि सब वर्णित है ॥ ८५ ॥

अङ्गारपर्णं निर्जित्य गङ्गाकूलेऽर्जुनस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पाञ्चालानभितो ययौ ॥ ८६ ॥

गंगाके किनारे अंगारपर्ण गंधर्वको जीत कर अर्जुन सभी भाइयोंके साथ पांचाल नगरमें गए ॥ ८६ ॥

तापत्यमथ वासिष्ठमौर्वं चाख्यानमुत्तमम् ।
पञ्चेन्द्राणामुपाख्यानमत्रैवाद्भुतमुच्यते ॥ ८७ ॥

तापत्य, वासिष्ठ, और और्वकी उत्तम कथाएं तथा पांच इन्द्रोंकी अति अद्भुत कथा इसी स्थल पर कही गई हैं ॥ ८७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पञ्चानामेकपत्नीत्वे विमर्शो द्रुपदस्य च ।
द्रौपद्या देवविहितो विवाहश्चाप्यमानुषः ॥ ८८ ॥

द्रौपदीके पांच पतिके होनेकी बात सुन कर राजा द्रुपदका विचार करना, द्रौपदीका दैवके द्वारा निश्चित अमानवी विवाह ॥ ८८ ॥

विदुरस्य च संप्राप्तिर्दर्शनं केशवस्य च ।
खाण्डवप्रस्थवासश्च तथा राज्यार्धशासनम् ॥ ८९ ॥

पाण्डवोंके पास विदुरका पहुंचना और श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन, पाण्डवोंका खाण्डवप्रस्थमें बसना और आधे राज्यके शासनका पाना ॥ ८९ ॥

नारदस्याज्ञया चैव द्रौपद्याः समयक्रिया ।
सुन्दोपसुन्दयोस्तत्र उपाख्यानं प्रकीर्तितम् ॥ ९० ॥

श्री नारदजीकी आज्ञासे पांचों भाइयोंका द्रौपदीके साथ रहनेके नियम निश्चित करना; और वहीं सुन्द और उपसुन्दका उपाख्यान आदि सब कहा है ॥ ९० ॥

पार्थस्य वनवासश्च उलूप्या पथि संगमः ।
पुण्यतीर्थानुसंयानं बभ्रुवाहनजन्म च ॥ ९१ ॥

पार्थका वनवास और पथमें उलूपीसे संगम और पुण्यतीर्थको जाना; बभ्रुवाहनका जन्म ॥ ९१ ॥

द्वारकायां सुभद्रा च कामयानेन कामिनी ।
वासुदेवस्यानुमते प्राप्ता चैव किरीटिना ॥ ९२ ॥

द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रकी संमतिसे काम–यानकी सहायतासे अर्जुनके द्वारा कामिनी सुभद्रा की प्राप्ति ॥ ९२ ॥

हरणं गृह्य संप्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ।
संप्राप्तिश्चक्रधनुषोः खाण्डवस्य च दाहनम् ॥ ९३ ॥

देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका दहेजसहित खाण्डव–प्रस्थमें गमन; चक्र और धनुषकी प्राप्ति और खाण्डववनका दाह ॥ ९३ ॥

अभिमन्योः सुभद्रायां जन्म चोत्तमतेजसः ।
मयस्य मोक्षो ज्वलनाद्भुजंगस्य च मोक्षणम् ।
महर्षेर्मन्दपालस्य शार्ङ्ग्यां तनयसंभवः ॥ ९४ ॥

उत्तम तेजस्वी अभिमन्युका सुभद्रासे जन्म, मय–दानव और सर्पकी अग्निसे रक्षा; शार्ङ्गीके गर्भमें मन्दपाल नामक महर्षिके पुत्रकी उत्पत्ति ॥ ९४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विचित्रवीर्यस्य तथा राज्ये संप्रतिपादनम् ।
धर्मस्य नृषु संभूतिरणीमाण्डव्यशापजा ॥ ८१ ॥

विचित्रवीर्यकी रक्षा और उसकी राज्यमें स्थापना; अणीमाण्डव्यके शापसे धर्मकी नर-योनिमें उत्पत्ति ॥ ८१ ॥

कृष्णद्वैपायनाच्चैव प्रसूतिर्वरदानजा ।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च पाण्डवानां च संभवः ॥ ८२ ॥

वरदानके बलसे कृष्णद्वैपायनसे धृतराष्ट्र और पाण्डुका जन्म और पाण्डवोंकी उत्पत्ति ॥८२॥

वारणावतयात्रा च मन्त्रो दुर्योधनस्य च ।
विदुरस्य च वाक्येन सुरङ्गोपक्रमक्रिया ॥ ८३ ॥

पाण्डवोंकी वारणावतकी यात्रा और दुर्योधनकी मंत्रणा और विदुरके वाक्यसे सुरङ्गका खोदा जाना ॥ ८३ ॥

पाण्डवानां वने घोरे हिडिम्बायाश्च दर्शनम् ।
घटोत्कचस्य चोत्पत्तिरत्रैव परिकीर्तिता ॥ ८४ ॥

घने वनमें पाण्डवोंकी राक्षसी हिडिम्बासे भेंट और घटोत्कचकी उत्पत्ति यहीं बताई है ॥ ८४ ॥

अज्ञातचर्या पाण्डूनां वासो ब्राह्मणवेश्मनि ।
बकस्य निधनं चैव नागराणां च विस्मयः ॥ ८५ ॥

ब्राह्मणके घर पाण्डवोंका अज्ञातवास, राक्षस बकका वध और यह देखकर नगरवासियों-का विस्मय आदि सब वर्णित है ॥ ८५ ॥

अङ्गारपर्णं निर्जित्य गङ्गाकूलेऽर्जुनस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पाञ्चालानभितो ययौ ॥ ८६ ॥

गंगाके किनारे अंगारपर्ण गंधर्वको जीत कर अर्जुन सभी भाइयोंके साथ पांचाल नगरमें गए ॥ ८६ ॥

तापत्यमथ वासिष्ठमौर्वं चाख्यानमुत्तमम् ।
पञ्चेन्द्राणामुपाख्यानमत्रैवाद्भुतमुच्यते ॥ ८७ ॥

तापत्य, वासिष्ठ, और और्वकी उत्तम कथाएं तथा पांच इन्द्रोंकी अति अद्भुत कथा इसी स्थल पर कही गई हैं ॥ ८७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पञ्चानामेकपत्नीत्वे विमर्शो द्रुपदस्य च ।
द्रौपद्या देवविहितो विवाहश्चाप्यमानुषः ॥ ८८ ॥

द्रौपदीके पांच पतिके होनेकी बात सुन कर राजा द्रुपदका विचार करना, द्रौपदीका दैवके द्वारा निश्चित अमानवी विवाह ॥ ८८ ॥

विदुरस्य च संप्राप्तिर्दर्शनं केशवस्य च ।
खाण्डवप्रस्थवासश्च तथा राज्यार्धशासनम् ॥ ८९ ॥

पाण्डवोंके पास विदुरका पहुंचना और श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन, पाण्डवोंका खाण्डवप्रस्थमें बसना और आधे राज्यके शासनका पाना ॥ ८९ ॥

नारदस्याज्ञया चैव द्रौपद्याः समयक्रिया ।
सुन्दोपसुन्दयोस्तत्र उपाख्यानं प्रकीर्तितम् ॥ ९० ॥

श्री नारदजीकी आज्ञासे पांचों भाइयोंका द्रौपदीके साथ रहनेके नियम निश्चित करना; और वहीं सुन्द और उपसुन्दका उपाख्यान आदि सब कहा है ॥ ९० ॥

पार्थस्य वनवासश्च उलूप्या पथि संगमः ।
पुण्यतीर्थानुसंयानं बभ्रुवाहनजन्म च ॥ ९१ ॥

पार्थका वनवास और पथमें उलूपीसे संगम और पुण्यतीर्थको जाना; बभ्रुवाहनका जन्म ॥ ९१ ॥

द्वारकायां सुभद्रा च कामयानेन कामिनी ।
वासुदेवस्यानुमते प्राप्ता चैव किरीटिना ॥ ९२ ॥

द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रकी संमतिसे काम–यानकी सहायतासे अर्जुनके द्वारा कामिनी सुभद्रा की प्राप्ति ॥ ९२ ॥

हरणं गृह्य संप्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ।
संप्राप्तिश्चक्रधनुषोः खाण्डवस्य च दाहनम् ॥ ९३ ॥

देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका दहेजसहित खाण्डव–प्रस्थमें गमन; चक्र और धनुषकी प्राप्ति और खाण्डववनका दाह ॥ ९३ ॥

अभिमन्योः सुभद्रायां जन्म चोत्तमतेजसः ।
मयस्य मोक्षो ज्वलनाद्भुजंगस्य च मोक्षणम् ।
महर्षेर्मन्दपालस्य शार्ङ्ग्यां तनयसंभवः ॥ ९४ ॥

उत्तम तेजस्वी अभिमन्युका सुभद्रासे जन्म, मय–दानव और सर्पकी अग्निसे रक्षा; शार्ङ्गीके गर्भमें मन्दपाल नामक महर्षिके पुत्रकी उत्पत्ति ॥ ९४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्येतदादिपर्वोक्तं प्रथमं बहुविस्तरम्।
अध्यायानां शते द्वे तु संख्याते परमर्षिणा।
अष्टादशैव चाध्याया व्यासेनोत्तमतेजसा ॥ ९५ ॥

यह सब वृत्तान्त विस्तारसे प्रथमपर्व आदिपर्वमें कहा गया है। भगवान् तेजोवान् महात्मा महर्षि वेदव्यासने इस पर्वमें दो सौ अट्ठारह अध्यायोंकी गिनती की है ॥ ९५ ॥

सप्त श्लोकसहस्राणि तथा नव शतानि च।
श्लोकाश्च चतुराशीतिर्ग्रन्थो महात्मना ॥ ९६ ॥

और इसमें सात हजार नौ सौ चौरासी श्लोक महात्मा व्यास द्वारा रचे गये हैं ॥ ९६ ॥

द्वितीयं तु सभापर्व बहुवृत्तान्तमुच्यते।
सभाक्रिया पाण्डवानां किंकराणां च दर्शनम् ॥ ९७ ॥

अनेक वृत्तांतवाले दूसरे पर्वका नाम सभापर्व कहा जाता है; पाण्डवोंका सभा—निर्माण; और किङ्करोंका दर्शन ॥ ९७ ॥

लोकपालसभाख्यानं नारदाद्देवदर्शनात्।
राजसूयस्य चारम्भो जरासंधवधस्तथा ॥ ९८ ॥

देवलोक देखनेवाले श्रीनारदजीका लोकपालोंकी सभाका वर्णन; राजसूय यज्ञका प्रारंभ तथा जरासंधका वध ॥ ९८ ॥

गिरिव्रजे निरुद्धानां राज्ञां कृष्णेन मोक्षणम्।
राजसूयेऽर्घसंवादे शिशुपालवधस्तथा ॥ ९९ ॥

गिरिदुर्गमें कैद भोगते हुए राजाओंका श्रीकृष्णके द्वारा छुडाया जाना, राजसूय यज्ञके प्रसंग में अर्घ—पूजा देनेके बारेमें वाद विवाद होनेके बाद शिशुपालका वध ॥ ९९ ॥

यज्ञे विभूतिं तां दृष्ट्वा दुःखामर्षान्वितस्य च।
दुर्योधनस्यावहासो भीमेन च सभातले ॥ १०० ॥

यज्ञके उस ऐश्वर्यको देखकर दुःख और द्वेष—युक्त दुर्योधनकी भीमके द्वारा सभाके बीचमें हंसीका उडाया जाना आदि कथाओंका वर्णन है ॥ १०० ॥

यत्रास्य मन्युरुद्भूतो येन द्यूतमकारयत्।
यत्र धर्मसुतं द्यूते शकुनिः कितवोऽजयत् ॥ १०१ ॥

उससे दुर्योधनमें क्रोध उत्पन्न हुआ और उसने जुआ खेलनेका निमंत्रण दिया, जहां कपटी शकुनिने द्यूतमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरको जीत लिया ॥ ॥१०१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यत्र द्यूतार्णवे मग्नान्द्रौपदी नौरिवार्णवात् ।
तारयामास तांस्तीर्णाञ्ज्ञात्वा दुर्योधनो नृपः ।
पुनरेव ततो द्यूते समाह्वयत पाण्डवान् ॥ १०२ ॥

समुद्रमें डूबी हुई नावकी भांति द्यूतरूपी समुद्रमें डूबे हुए पाण्डवोंको द्रौपदीने बचा लिया, फिर उनको बचा हुआ देखकर राजा दुर्योधनने फिर पाण्डवोंको जुआ खेलनेके लिए बुलाया ॥ १०२ ॥

एतत्सर्वं सभापर्व समाख्यातं महात्मना ।
अध्यायाः सप्ततिर्ज्ञेयास्तथा द्वौ चात्र संख्यया ॥ १०३ ॥

महात्मा व्यासने सभापर्वमें इन सब विषयोंका वर्णन किया है। इस पर्वमें बहत्तर संख्यावाले अध्याय जानने चाहिए ॥ १०३ ॥

श्लोकानां द्वे सहस्रे तु पञ्च श्लोकशतानि च ।
श्लोकाश्चैकादश ज्ञेयाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ॥ १०४ ॥

तथा इस पर्वमें दो हजार, पांच सौ, ग्यारह श्लोक सुनाए गए हैं ॥ १०४ ॥

अतः परं तृतीयं तु ज्ञेयमारण्यकं महत् ।
पौरानुगमनं चैव धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥ १०५ ॥

इसके पश्चात् आरण्यक नामक बडा भारी तीसरा पर्व है। धीमान् धर्मपुत्रके पीछे नगरवासियोंका जाना ॥ १०५ ॥

वृष्णीनामागमो यत्र पाञ्चालानां च सर्वशः ।
यत्र सौभवधाख्यानं किर्मीरवध एव च ।
अस्त्रहेतोर्विवासश्च पार्थस्यामिततेजसः ॥ १०६ ॥

जिसमें सभी वृष्णि और पांचालोंका युधिष्ठिरके निकट जाना; और सौभवधका तथा किर्मीरके वधका उपाख्यान, दिव्यास्त्र लाभ करनेकी चेष्टामें अपरिमित तेजस्वी अर्जुनका प्रवास॥१०६॥

महादेवेन युद्धं च किरातवपुषा सह ।
दर्शनं लोकपालानां स्वर्गारोहणमेव च ॥ १०७ ॥

किरातके शरीरको धारण किए हुए महादेवके साथ अर्जुनका युद्ध, अर्जुनके द्वारा लोकपालोंका दर्शन और स्वर्गपर चढना ॥ १०७ ॥

दर्शनं बृहदश्वस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
युधिष्ठिरस्य चार्तस्य व्यसने परिदेवनम् ॥ १०८ ॥

युधिष्ठिरके द्वारा परमार्थ ज्ञानी बृहदश्व नामक महर्षिका दर्शन और उनके समीप अतिकातर होकर युधिष्ठिरका परिताप और विलाप ॥ १०८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नलोपाख्यानमत्रैव धर्मिष्ठं करुणोदयम् ।
दमयन्त्याः स्थितिर्यत्र नलस्य व्यसनागमे ॥ १०९ ॥

इसी स्थल पर धर्म और करुणरससे भरा नलोपाख्यानका वर्णन, जिसमें नलके विपत्कालमें दमयंतीकी स्थितिकी कथा कही गई है ॥ १०९ ॥

वनवासगतानां च पाण्डवानां महात्मनाम् ।
स्वर्गे प्रवृत्तिराख्याता लोमशेनार्जुनस्य वै ॥ ११० ॥

महर्षि लोमशका वनवासी महात्मा पाण्डवोंको स्वर्गमें विराजते हुए अर्जुनका समाचार सुनाना ॥ ११० ॥

तीर्थयात्रा तथैवात्र पाण्डवानां महात्मनाम् ।
जटासुरस्य तत्रैव वधः समुपवर्ण्यते ॥ १११ ॥

और उसी प्रकार महात्मा पाण्डवोंका भी तीर्थमें जानेका वर्णन है और उसी पर्वमें जटासुरके वधका भी वर्णन है ॥ १११ ॥

नियुक्तो भीमसेनश्च द्रौपद्या गन्धमादने ।
यत्र मन्दारपुष्पार्थं नलिनीं तामधर्षयत् ॥ ११२ ॥

गन्धमादन पर्वतपर द्रौपदीसे नियुक्त होकर महाबली भीमसेनने मन्दार पुष्पके लिए उस कमलको तोड डाला ॥ ११२ ॥

यत्रास्य सुमहद्युद्धमभवत्सह राक्षसैः ।
यक्षैश्चापि महावीर्यैर्मणिमत्प्रमुखैस्तथा ॥ ११३ ॥

और वहां महान् राक्षसों और मणिमत् आदि महापराक्रमशाली मुख्य मुख्य यक्षोंके साथ भीमका घोर युद्ध हुआ ॥ ११३ ॥

आगस्त्यमपि चाख्यानं यत्र वातापिभक्षणम् ।
लोपामुद्राभिगमनमपत्यार्थमृषेरपि ॥ ११४ ॥

इस पर्वमें ऋषि अगस्त्यका उपाख्यान और इनका वातापि भक्षण तथा सन्तानके निमित्त लोपामुद्रा नामकी कन्यासे समागमका वर्णन है ॥ ११४ ॥

ततः श्येनकपोतीयमुपाख्यानमनन्तरम् ।
इन्द्रोऽग्निर्यत्र धर्मश्च अजिज्ञासञ्छिबिं नृपम् ॥ ११५ ॥

उसके बाद यहीं पर श्येन (बाज) और कपोत (कबूतर) का अत्यन्त उत्तम उपाख्यान है, जिसमें इन्द्र, अग्नि और धर्मने शिबिराजाकी परीक्षा ली है ॥ ११५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऋश्यशृङ्गस्य चरितं कौमारब्रह्मचारिणः ।
जामदग्न्यस्य रामस्य चरितं भूरितेजसः ॥ ११६ ॥

इसके बाद कौमार ब्रह्मचारी ऋश्य–शृंगका चरित्र तथा जमदग्निपुत्र महापराक्रमशाली परशुरामजीका चरित्र है ॥ ११६ ॥

कार्तवीर्यवधो यत्र हैहयानां च वर्ण्यते ।
सौकन्यमपि चाख्यानं च्यवनो यत्र भार्गवः ॥ ११७ ॥

इसीमें कार्तवीर्य वध तथा हैहयवंशी राजाओंके वधका वर्णन है इसीमें सुकन्याका अति सुंदर उपाख्यान है जिसमें भृगुवंशी च्यवन मुनिने ॥ ११७ ॥

शर्यातियज्ञे नासत्यौ कृतवान्सोमपीथिनौ
ताभ्यां च यत्र स मुनिर्यौवनं प्रतिपादितः ॥ ११८ ॥

शर्यातिके यज्ञमें दोनों अश्विनी कुमारोंको यज्ञीय सोमरसका अधिकारी बनाया तथा जिसमें अश्विनीकुमारोंने च्यवनमुनिको यौवनावस्था प्रदान की ॥ ११८ ॥

जन्तूपाख्यानमत्रैव यत्र पुत्रेण सोमकः ।
पुत्रार्थमयजद्राजा लेभे पुत्रशतं च सः ॥ ११९ ॥

यहीं जन्तु नामक राजपुत्रका उपाख्यान है । इसीमें सोमकराजने अनेक पुत्र पानेके लिये एक पुत्रको मारकर याग किया और सौ पुत्र पाये ॥ ११९ ॥

अष्टावक्रीयमत्रैव विवादे यत्र बन्दिनम् ।
विजित्य सागरं प्राप्तं पितरं लब्धवानृषिः ॥ १२० ॥

इसीमें अष्टावक्रके शास्त्रार्थका उपाख्यान है । जिसमें बन्दीको जीत करके अष्टावक्रने समुद्रमें डूबे हुए कहोड नामक निज पिताका उद्धार किया ॥ १२० ॥

अवाप्य दिव्यान्यस्त्राणि गुर्वर्थे सव्यसाचिना ।
निवातकवचैर्युद्धं हिरण्यपुरवासिभिः ॥ १२१ ॥

दिव्यास्त्र पाकर सव्यसाची अर्जुनने इन्द्रके कार्यके लिये हिरण्यपुरवासी निवात और कवचोंके साथ युद्ध किया ॥ १२१ ॥

समागमश्च पार्थस्य भ्रातृभिर्गन्धमादने ।
घोषयात्रा च गन्धर्वैर्यत्र युद्धं किरीटिनः ॥ १२२ ॥

उसके बाद गंधमादन पर्वतपर अर्जुनका अपने भाइयोंके साथ मिलाप, फिर किरीटि अर्जुनके द्वारा घोषयात्रा तथा गंधर्वोंके साथ हुए युद्धका वर्णन है ॥ १२२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुनरागमनं चैव तेषां द्वैतवनं सहः।
जयद्रथेनापहारो द्रौपद्याश्चाश्रमान्तरात् ॥ १२३ ॥

फिर पाण्डवोंके द्वैतवनके तालाबपर आने और जयद्रथके द्वारा आश्रमके अन्दरसे द्रौपदीको हरे जानेका वर्णन है ॥ १२३ ॥

यत्रैनमन्वयाद्भीमो वायुवेगसमो जवे।
मार्कण्डेयसमस्यायामुपाख्यानानि भागशः ॥ १२४ ॥

और फिर गतिमें वायुके समान वेगवाले भीमसेनका उसके पीछे जानेका तथा मार्कण्डेयके समागम होनेपर अंशरूपसे कई उपाख्यानोंका वर्णन है ॥ १२४ ॥

संदर्शनं च कृष्णस्य संवादश्चैव सत्यया।
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमैन्द्रद्युम्नं तथैव च ॥ १२५ ॥

फिर कृष्णका दर्शन तथा सत्यभामाके साथ संवाद, व्रीणि, द्रौहिक तथा इन्द्रद्युम्न आदिके उपाख्यानोंका वर्णन है ॥ १२५ ॥

सावित्र्यौद्दालकीयं च वैन्योपाख्यानमेव च।
रामायणमुपाख्यानमत्रैव बहुविस्तरम् ॥ १२६ ॥

सावित्री, उद्दालक तथा वैन्यके उपाख्यानके बाद यहींपर महाराज रामचन्द्रकी बडी विस्तृत कथा कही है ॥ १२६ ॥

कर्णस्य परिमोषोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरन्दरात्।
आरणेयमुपाख्यानं यत्र धर्मोऽन्वशात्सुतम्।
जग्मुर्लब्धवरा यत्र पाण्डवाः पश्चिमां दिशम् ॥ १२७ ॥

इन्द्रके द्वारा कर्णको दोनों कुण्डलसे वंचित कर देना तदनन्तर आरणेय उपाख्यान है, जिसमें धर्मद्वारा निज पुत्रका अनुशासन करनेका वर्णन है इन सबके वर्णनके बाद वर लाभके पश्चात् पाण्डव पश्चिम दिशाको गए इसका भी वर्णन है ॥ १२७ ॥

एतदारण्यकं पर्व तृतीयं परिकीर्तितम्।
अत्राध्यायशते द्वे तु संख्याते परमर्षिणा।
एकोनसप्ततिश्चैव तथाध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ १२८ ॥

यह सब विषय युक्त आरण्यक नामक तीसरा पर्व वर्णित है। इसमें महर्षिने दो सौ उनहत्तर अध्याय गिनाए हैं ॥ १२८ ॥

एकादश सहस्राणि श्लोकानां षट्शतानि च।
चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वैतत्परिकीर्तितम् ॥ १२९ ॥

और ग्यारह हजार, छः सौ, चौसठ श्लोकोंसे युक्त यह पर्व बताया जाता है ॥ १२९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अतः परं निबोधेदं वैराटं पर्वविस्तरम् ।
विराटनगरं गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम् ।
दृष्ट्वा संनिदधुस्तत्र पाण्डवा आयुधान्युत ॥ १३० ॥

इसके पश्चात् विराट पर्वका विस्तृत व्योरा सुनो, विराट नगरमें जाकर श्मशानके बीचमें बडे भारी शमीवृक्षको देख करके उसपर पाण्डवोंने अस्त्र-शस्त्र रख दिए ॥ १३० ॥

यत्र प्रविश्य नगरं छन्नभिन्न्यवसन्त ते ।
दुरात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात् ॥ १३१ ॥

पुरमें प्रवेश करके पाण्डव गुप्तभावसे रहे । वहीं दुराचारी कामी कीचकका भीमके द्वारा वध हुआ ॥ १३१ ॥

गोग्रहे यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरवो युधि ।
गोधनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवैः ॥ १३२ ॥

इसी विराट पर्वमें अर्जुनने गौओंका हरण करनेपर युद्धमें कौरवोंको जीता और इस प्रकार पाण्डवोंने विराटके गौधनको छुडाया ॥ १३२ ॥

विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिनः ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य सौभद्रमरिघातिनम् ॥ १३३ ॥

सुभद्राके पुत्र शत्रुनाशी अभिमन्युकी पत्नी और पार्थकी पुत्रवधू बनानेकी इच्छासे विराटने अपनी उत्तरा नामकी कन्याका दान किया ॥ १३३ ॥

चतुर्थमेतद्विपुलं वैराटं पर्व वर्णितम् ।
अत्रापि परिसंख्यातमध्यायानां महात्मना ॥ १३४ ॥

इन सब विषय युक्त और विस्तारवाला विराट पर्व चौथा पर्व कहा गया है । इस पर्वमें महात्मा व्यासने अध्यायोंकी संख्या इस प्रकार गिनाई है ॥ १३४ ॥

सप्तषष्टिरथो पूर्णा श्लोकाग्रमपि मे शृणु ।
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु श्लोकाः पञ्चाशदेव तु ।
पर्वण्यस्मिन्समाख्याताः संख्यया परमर्षिणा ॥ १३५ ॥

इस पर्वमें सडसठ अध्याय मुझसे सुनो । तथा इस पर्वमें परम ऋषि व्यासने दो हजार पचासकी संख्यामें श्लोक गिनाए हैं ॥ १३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उद्योगपर्व विज्ञेयं पञ्चमं शृण्वतः परम् ।
उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु जिगीषया ।
दुर्योधनोऽर्जुनश्चैव वासुदेवमुपस्थितौ ॥ १३६ ॥

इसके अनंतर विशेष रूपसे जानने योग्य उद्योग नामक पांचवा पर्व सुनो। पांडवोंके जयकी इच्छासे उपप्लव्य नाम स्थानमें रहनेपर दुर्योधन और अर्जुन वासुदेवके पास जाकर उपस्थित हुए ॥ १३६ ॥

साहाय्यमस्मिन्समरे भवान्नौ कर्तुमर्हति ।
इत्युक्ते वचने कृष्णो यत्रोवाच महामतिः ॥ १३७ ॥

और "आप उपस्थित युद्धमें हमारी सहायता कीजिये," इस प्रकार कहनेपर कृष्णने कहा ॥ १३७ ॥

अयुध्यमानमात्मानं मन्त्रिणं पुरुषर्षभौ ।
अक्षौहिणीं वा सैन्यस्य कस्य वा किं ददाम्यहम् ॥ १३८ ॥

"हे श्रेष्ठ पुरुष युगल ! एक तरफ युद्ध न करके केवल सलाहमात्र देनेवाला मैं और दूसरी तरफ मेरी एक अक्षौहिणी सेना, इन दोनोंमें किसको क्या दूं ?" ॥ १३८ ॥

वव्रे दुर्योधनः सैन्यं मन्दात्मा यत्र दुर्मतिः ।
अयुध्यमानं सचिवं व्रवे कृष्णं धनंजयः ॥ १३९ ॥

अज्ञानी और दुर्बुद्धिवाले दुर्योधनने सेनाका वरण किया और अर्जुनने युद्धसे दूर रहनेवाले पर मंत्रणा देनेवाले कृष्णको चुना ॥ १३९ ॥

संजयं प्रेषयामास शमार्थं पाण्डवान्प्रति ।
यत्र दूतं महाराजो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १४० ॥

जिस पर्वमें प्रतापी महाराज धृतराष्ट्रने शान्तिके लिए पाण्डवोंकी ओर संजय नामक दूतको भेजा ॥ १४० ॥

श्रुत्वा च पाण्डवान्यत्र वासुदेवपुरःगमान् ।
प्रजागरः संप्रजज्ञे धृतराष्ट्रस्य चिन्तया ॥ १४१ ॥

वासुदेवकृष्णको आगे करके चलनेवाले अर्थात् कार्य करनेवाले पाण्डवोंका वृत्तांत सुनकर चिन्तासे धृतराष्ट्रने निद्रा त्याग दी ॥ १४१ ॥

विदुरो यत्र वाक्यानि विचित्राणि हितानि च ।
श्रावयामास राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ॥ १४२ ॥

विदुरने जहां बुद्धिमान् धृतराष्ट्र राजाको विचित्र और हितकारी वाक्य सुनाये ॥ १४२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथा सनत्सुजातेन यत्राध्यात्ममनुत्तमम् ।
मनस्तापान्वितो राजा श्रावितः शोकलालसः ॥ १४३ ॥

मनःपीडासे पीसे जाते हुए शोकाकुल राजा धृतराष्ट्रने सनत्सुजात ऋषिसे अति उत्तम अध्यात्म संबंधी शास्त्र सुना ॥ १४३ ॥

प्रभाते राजसमितौ संजयो यत्र चाभिभोः ।
ऐकात्म्यं वासुदेवस्य प्रोक्तवानर्जुनस्य च ॥ १४४ ॥

प्रातःकालमें संजयने राजाओंकी सभामें अत्यन्त तेजस्वी वासुदेव और अर्जुनके ऐकात्मभाव-का विषय कहा ॥ १४४ ॥

यत्र कृष्णो दयापन्नः संधिमिच्छन्महायशाः ।
स्वयमागाच्छमं कर्तुं नगरं नागसाह्वयम् ॥ १४५ ॥

महायशवाले और कृपावान् श्रीकृष्ण दोनों पक्षोंमें संधि कराकर शांति स्थापन करनेके लिए स्वयं हस्तिनापुर नगर आए ॥ १४५ ॥

प्रत्याख्यानं च कृष्णस्य राज्ञा दुर्योधनेन वै ।
शमार्थं याचमानस्य पक्षयोरुभयोर्हितम् ॥ १४६ ॥

दोनों पक्षकी हितेच्छासे शान्तिकी याचना करनेवाले श्रीकृष्णचंद्रका सन्धि-स्थापनका प्रस्ताव करनेपर राजा दुर्योधनने उस बातको टाल दिया ॥ १४६ ॥

कर्णदुर्योधनादीनां दुष्टं विज्ञाय मन्त्रितम् ।
योगेश्वरत्वं कृष्णेन यत्र राजसु दर्शितम् ॥ १४७ ॥

जिस पर्वमें कर्ण, दुर्योधन आदिकी दुष्ट मंत्रणाको समझकर राजाओंमें श्रीकृष्णने अपना योगेश्वर भाव दिखाया ॥ १४७ ॥

रथमारोप्य कृष्णेन यत्र कर्णोऽनुमन्त्रितः ।
उपायपूर्वं शौण्डीर्यात्प्रत्याख्यातश्च तेन सः ॥ १४८ ॥

श्रीकृष्णने कर्णको अपने रथ पर चढाया और हितकारी बातोंको समझाया, पर कर्णने कुशलता-पूर्वक श्रीकृष्णकी हितकारी बातको अस्वीकार कर दिया ॥ १४८ ॥

ततश्चाप्यभिनिर्यात्रा रथाश्वनरदन्तिनाम् ।
नगराद्धास्तिनपुराद्बलसंख्यानमेव च ॥ १४९ ॥

इसके बाद हस्तिनापुर नगरसे बहुतसी संख्यामें रथ, घोडे, पैदल और हाथियोंकी सेनाओंकी यात्रा शुरु हुई ॥ १४९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यत्र राज्ञा उलूकस्य प्रेषणं पाण्डवान्प्रति।
श्वोभाविनि महायुद्धे दूत्येन क्रूरवादिना।
रथातिरथसंख्यानमम्बोपाख्यानमेव च ॥ १५० ॥

घोर युद्धके पूर्व दिन कठोर बोलनेवाले दुर्योधनने उलूक नामक मनुष्यको दूत नियुक्त कर पाण्डवोंकी सेवामें भेजा, इसी पर्वमें रथ और अतिरथकी संख्या; अम्बोपाख्यान भी वर्णित है ॥ १५० ॥

एतत्सुबहुवृत्तान्तं पञ्चमं पर्व भारते।
उद्योगपर्व निर्दिष्टं सधिविग्रहसंश्रितम् ॥ १५१ ॥

इस प्रकार महाभारतके उद्योग नामक पांचवें पर्वमें संधि विग्रहकी बातोंमें मिले हुए ये सब वृत्तान्त वर्णित हुए हैं ॥ १५१ ॥

अध्यायाः संख्यया त्वत्र षडशीतिशतं स्मृतम्।
श्लोकानां षट् सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ॥ १५२ ॥
श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथैवाष्टौ महात्मना।
व्यासेनोदारमतिना पर्वण्यस्मिंस्तपोधनाः ॥ १५३ ॥

इस पर्वमें एकसौ छियासी अध्यायोंकी संख्या है, तथा छ हजार, छसौ, अठानवे श्लोक हे तपोधन ऋषियो ! उदारमति महात्मा व्यासने इस पर्वमें रचे हैं ॥ १५२–१५३ ॥

अत ऊर्ध्वं विचित्रार्थं भीष्मपर्व प्रचक्षते।
जम्बूखण्डविनिर्माणं यत्रोक्तं संजयेन ह ॥ १५४ ॥

इसके बाद अत्याश्चर्य अर्थवाले भीष्मपर्वकी कथा कही गई है जिसमें संजयने जम्बूखण्ड निर्माण करनेकी कथा कही है ॥ १५४ ॥

यत्र युद्धमभूद्घोरं दशाहान्यतिदारुणम्।
यत्र यौधिष्ठिरं सैन्यं विषादमगमत्परम् ॥ १५५ ॥

जिसमें कहा है कि दश दिनोंतक बहुत भयंकर लडाई हुई, लिहाजा युधिष्ठिरकी सेनामें बडी उदासी छा गई ॥ १५५ ॥

कश्मलं यत्र पार्थस्य वासुदेवो महामतिः।
मोहजं नाशयामास हेतुभिर्मोक्षदर्शनैः ॥ १५६ ॥

उसी समय अनेक मोक्षदर्शक हेतुओंको दिखाकर महामति वासुदेवने अर्जुनकी मोहसे उत्पन्न उदासीको दूर किया ॥ १५६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य यत्र पार्थो महाधनुः ।
विनिघ्नन्निशितैर्बाणै रथाद्भीष्ममपातयत् ॥ १५७ ॥

इसी पर्वमें महा धनुर्धारी पृथा पुत्र अर्जुनके द्वारा शिखंडीको सामने रखकर तेजबाणोंके आघातसे भीष्मको रथसे भूमिपर गिराये जानेका वर्णन है ॥ १५७ ॥

षष्ठमेतन्महापर्व भारते परिकीर्तितम् ।
अध्यायानां शतं प्रोक्तं सप्तदश तथापरे ॥ १५८ ॥

इन सब वृत्तान्तोंसे भरा हुआ भीष्मपर्व भारतका छठवां और महा पर्व है । इस पर्वमें एक सौ सत्रह अध्याय हैं ॥ १५८ ॥

पञ्च श्लोकसहस्राणि संख्ययाष्टौ शतानि च ।
श्लोकाश्च चतुराशीतिः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ।
व्यासेन वेदविदुषा संख्याता भीष्मपर्वणि ॥ १५९ ॥

तथा पांच हजार आठ सौ चौरासी श्लोक इस भीष्मपर्वमें वेदविद्वान् व्यासने गिनाए हैं ॥ १५९ ॥

द्रोणपर्व ततश्चित्रं बहुवृत्तान्तमुच्यते ।
यत्र संशप्तकाः पार्थमपनिन्यू रणाजिरात् ॥ १६० ॥

अनन्तर बहु वृत्तांत युक्त अति आश्चर्यकारक द्रोण-पर्व है; इसमें संशप्तक युद्ध स्थलसे अर्जुनको दूर ले गए ॥ १६० ॥

भगदत्तो महाराजो यत्र शक्रसमो युधि
सुप्रतीकेन नागेन सह शस्तः किरीटिना ॥ १६१ ॥

युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी महाराज भगदत्त अपने सुप्रतीक नामक हाथीके साथ किरीटी अर्जुनके द्वारा मारे गए ॥ १६१ ॥

यत्राभिमन्युं बहवो जघ्नुर्लोकमहारथाः ।
जयद्रथमुखा बालं शूरमप्राप्तयौवनम् ॥ १६२ ॥

जयद्रथ आदि महारथी योद्धाओंके द्वारा महाबली अप्राप्त-यौवन अकेले बालक अभिमन्युका वध किया गया ॥ १६२ ॥

हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन यत्र पार्थेन संयुगे ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ।
संशप्तकावशेषं च कृतं निःशेषमाहवे ॥ १६३ ॥

अभिमन्युके मारे जाने पर क्रुद्ध हुए अर्जुनने रणभूमिमें सात अक्षौहिणी सेनाओंको मार कर मद्रराज जयद्रथको मार डाला; संशप्तकोंका युद्धमें पूरीतरह नाश किया ॥ १६३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अलम्बुसः श्रुतायुश्च जलसंधश्च वीर्यवान्।
सौमदत्तिर्विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।
घटोत्कचादयश्चान्ये निहता द्रोणपर्वणि ॥ १६४ ॥

अलम्बुस, श्रुतायु, जलसन्ध, वीर्यशाली भूरिश्रवा, विराट, महारथी द्रुपद और घटोत्कच आदि अनेक वीरोंका द्रोणपर्वमें नाश हुआ ॥ १६४ ॥

अश्वत्थामापि चात्रैव द्रोणे युधि निपातिते।
अस्त्रं प्रादुश्चकारोग्रं नारायणममर्षितः ॥ १६५ ॥

युद्धमें द्रोणाचार्यके मार दिए जानेपर क्रोधसे जले हुए अश्वत्थामाने भयानक नारायण अस्त्रको प्रकट किया ॥ १६५ ॥

सप्तमं भारते पर्व महदेतदुदाहृतम्।
अत्र ते पृथिवीपालाः प्रायशो निधनं गताः।
द्रोणपर्वणि ये शूरा निर्दिष्टाः पुरुषर्षभाः ॥ १६६ ॥

यही सब विषय सविस्तृत सातवें पर्वमें कहे गये हैं। महाभारतमें यह सातवां और महान् पर्व है। द्रोणपर्वमें जिन सब पुरुष श्रेष्ठ भूपालोंका निर्देश है, प्रायः सभीके मृत्युवृत्तान्त इस पर्वमें वर्णित हुए हैं ॥ १६६ ॥

अध्यायानां शतं प्रोक्तमध्यायाः सप्ततिस्तथा।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा नव शतानि च ॥ १६७ ॥
श्लोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।
पाराशर्येण मुनिना संचिन्त्य द्रोणपर्वणि ॥ १६८ ॥

एक सौ सत्तर अध्याय और आठ सहस्र, नौ सौ तथा नौ श्लोक इस द्रोण पर्वमें तत्त्वदर्शी मुनि पराशर पुत्र व्यासने सोच विचार कर रखे हैं ॥ १६७–१६८ ॥

अतः परं कर्णपर्व प्रोच्यते परमाद्भुतम्।
सारथ्ये विनियोगश्च मद्रराजस्य धीमतः।
आख्यातं यत्र पौराणं त्रिपुरस्य निपातनम् ॥ १६९ ॥

इसके पश्चात् परम अद्भुत कर्णपर्व कहा है। धीमान्मद्रराजा शल्यका सारथीके कार्यमें नियुक्त होने तथा पुराण प्रसिद्ध त्रिपुरासुरके वधका वर्णन इस पर्वमें है ॥ १६९ ॥

प्रयाणे परुषश्चात्र संवादः कर्णशल्ययोः।
हंसकाकीयमाख्यानमत्रैवाक्षेपसंहितम् ॥ १७० ॥

युद्धार्थ यात्रा करनेके कालमें कर्ण और मद्रराजके बीचमें परस्पर वाक्य युद्ध, कर्णके तिरस्कारार्थ शल्यका हंस और काककी कथा कहनेका वर्णन भी इसी पर्वमें है ॥ १७० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अन्योन्यं प्रति च क्रोधो युधिष्ठिरकिरीटिनोः ।
द्वैरथे यत्र पार्थेन हतः कर्णो महारथः ॥ १७१ ॥

युधिष्ठिर और अर्जुनका आपसमें क्रोधित होने; द्वैरथ युद्धमें अर्जुनसे महारथी कर्णके मारे जानेका वर्णन ॥ १७१ ॥

अष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद्भारतचिन्तकैः ।
एकोनसप्ततिः प्रोक्ता अध्यायाः कर्णपर्वणि ।
चत्वार्येव सहस्राणि नव श्लोकशतानि च ॥ १७२ ॥

यही सब विषय भारतके रचयिता महाराज व्यासजीने आठवें पर्वमें कहे हैं। वेदव्यासजीने इस कर्ण पर्वमें उनहत्तर अध्याय और चार सहस्र, नौ सौ श्लोक कीर्तन किये हैं ॥१७२॥

अतः परं विचित्रार्थं शल्यपर्व प्रकीर्तितम् ।
हतप्रवीरे सैन्ये तु नेता मद्रेश्वरोऽभवत् ॥ १७३ ॥

इसके अनन्तर विचित्र अर्थयुक्त शल्यपर्व कहा है । कर्ण तथा सेनाओंमें मुख्य मुख्य वीरोंके मारे जानेपर मद्रेश्वर शल्य सेनापतिके पदपर नियुक्त हुए ॥ १७३ ॥

वृत्तानि रथयुद्धानि कीर्त्यन्ते यत्र भागशः ।
विनाशः कुरुमुख्यानां शल्यपर्वणि कीर्त्यते ॥ १७४ ॥

नाना रथियोंके पृथक् रूपसे रथयुद्धोंका वर्णन; कौरव-पक्षके प्रधान प्रधान योद्धाओंके मारे जानेका वर्णन इसी शल्य पर्वमें है ॥ १७४ ॥

शल्यस्य निधनं चात्र धर्मराजान्महारथात् ।
गदायुद्धं तु तुमुलमत्रैव परिकीर्तितम् ।
सरस्वत्याश्च तीर्थानां पुण्यता परिकीर्तिता ॥ १७५ ॥

और इसी पर्वमें महारथी धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा शल्यके वधका वर्णन, तथा उस रण-भूमिमें भीमके साथ दुर्योधनका घोर गदायुद्ध और सरस्वती तीर्थ और दूसरे नाना तीर्थोंका माहात्म्य कीर्तन ॥ १७५ ॥

नवमं पर्व निर्दिष्टमेतदद्भुतमर्थवत् ।
एकोनषष्टिरध्यायास्तत्र संख्याविशारदैः ॥ १७६ ॥

यह सब विषय आश्चर्य अर्थयुक्त नवें पर्वमें वर्णित हुए हैं । इस पर्वमें गणना करनेमें कुशल लोगोंने उनसठ अध्याय गिनायें हैं ॥ १७६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संख्याता बहुवृत्तान्ताः श्लोकाग्रं चात्र शस्यते।
त्रीणि श्लोकसहस्राणि द्वे शते विंशतिस्तथा।
मुनिना संप्रणीतानि कौरवाणां यशोभृताम् ॥ १७७ ॥

कौरवोंके यशःकीर्तन करनेवाले व्यासमुनिने इसमें नाना वृत्तांतयुक्त तीन सहस्र, दौ सौ, बीस श्लोक रचे हैं। इन श्लोकोंमें व्यासमुनिने कौरवोंका यशःकीर्तन करनेवाले बहुतसे वृत्तान्त कहे हैं ॥ १७७ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सौप्तिकं पर्व दारुणम्।
भग्नोरुं यत्र राजानं दुर्योधनममर्षणम् ॥ १७८ ॥
व्यपयातेषु पार्थेषु त्रयस्तेऽभ्याययू रथाः।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ १७९ ॥

इसके पश्चात् दुःखदायी सौप्तिक पर्व कहता हूं। टूटी जांघ वाला क्रोधी दुर्योधन जिस स्थानमें पडा हुआ था, वहां पाण्डवोंके रणस्थलसे चले जानेपर संध्याके समय रक्तसे सने हुए कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ये तीनों रथी गए ॥ १७८– १७९ ॥

प्रतिजज्ञे दृढक्रोधो द्रौणिर्यत्र महारथः।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान्धृष्टद्युम्नपुरोगमान्।
पाण्डवांश्च सहामात्यान्न विमोक्ष्यामि दंशनम् ॥ १८० ॥

यहीं महा–रथी तथा दृढ क्रोधी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने यह प्रतिज्ञा की कि, "धृष्टद्युम्न आदि पांचाल और सहचर समेत पाण्डवोंको जबतक नहीं मार दूंगा, तबतक कवच नहीं उतारूंगा" ॥ १८० ॥

प्रसुप्तान्निशि विश्वस्तान्यत्र ते पुरुषर्षभाः।
पाञ्चालान्सपरीवाराञ्जघ्नुर्द्रौणिपुरोगमाः ॥ १८१ ॥

उसके बाद रातमें विश्वासपूर्वक सोते हुए पांचालवीरोंको परिवार सहित अश्वत्थामाके नेतृत्वमें उन कृपाचार्य आदि पुरुष श्रेष्ठोंने मार डाला ॥ १८१ ॥

यत्रामुच्यन्त पार्थास्ते पञ्च कृष्णबलाश्रयात्।
सात्यकिश्च महेष्वासः शेषाश्च निधनं गताः ॥ १८२ ॥

श्रीकृष्णके बलके कौशलसे इस प्रकार केवल महा धनुषधारी सात्यकि और पांच पाण्डव बचे, शेष सब मारे गये ॥ १८२ ॥

द्रौपदी पुत्रशोकार्ता पितृभ्रातृवधार्दिता।
कृतानशनसंकल्पा यत्र भर्तॄनुपाविशत् ॥ १८३ ॥

पुत्र वधके शोक और पितृ-भ्रातृ-वधसे कातर द्रौपदी भूखी रहकर प्राण त्यागनेका निश्चय कर पतिओंके पास आकर बैठ गई ॥ १८३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्रौपदीवचनाद्यत्र भीमो भीमपराक्रमः ।
अन्वधावत संक्रुद्धो भारद्वाजं गुरोः सुतम् ॥ १८४ ॥

भयंकर पराक्रम करनेवाले भीमसेन द्रौपदीके वचनसे क्रोधित होकर अपने गुरुके पुत्र तथा भरद्वाजवंशीय अश्वत्थामाके पीछे दौडे ॥ १८४ ॥

भीमसेनभयाद्यत्र दैवेनाभिप्रचोदितः ।
अपाण्डवायेति रुषा द्रौणिरस्त्रमवासृजत् ॥ १८५ ॥

द्रोण पुत्रने भीमके भयसे और दैव प्रेरणासे क्रोधपूर्वक " पृथ्वी पाण्डवोंसे रहित हो जाये " ऐसा कहकर अस्त्र छोडा ॥ १८५ ॥

मैवमित्यब्रवीत्कृष्णः शमयंस्तस्य तद्वचः ।
यत्रास्त्रमस्त्रेण च तच्छमयामास फाल्गुनः ॥ १८६ ॥

इस पर श्रीकृष्ण चंद्रने " ऐसा न हो " कहा और अश्वत्थामाके वचनोंको शान्त कर दिया और अर्जुनने अस्त्र द्वारा उस अस्त्रका निवारण किया ॥ १८६ ॥

द्रौणिद्वैपायनादीनां शापाश्चान्योन्यकारिताः ।
तोयकर्मणि सर्वेषां राज्ञामुदकदानिके ॥ १८७ ॥
गूढोत्पन्नस्य चाख्यानं कर्णस्य पृथयात्मनः ।
सुतस्यैतदिह प्रोक्तं दशमं पर्व सौप्तिकम् ॥ १८८ ॥

अश्वत्थामा और द्वैपायन आदिने परस्पर एक दूसरेको शाप दिया तथा सब राजाओंको जल देकर तर्पण करनेका काम प्रारम्भ होने पर कुन्तीने अपने पुत्र कर्णके जन्मकी गुप्त कथा कह सुनाई, यह सब इस दसवें सौप्तिक पर्वमें है॥ १८७–१८८ ॥

अष्टादशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्युक्ता महात्मना ।
श्लोकाग्रमत्र कथितं शतान्यष्टौ तथैव च ॥ १८९ ॥
श्लोकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता यथावदभिसंख्यया ।
सौप्तिकैषीकसंबन्धे पर्वण्यमितबुद्धिना ॥ १९० ॥

वेदवक्ता महात्मा व्यास मुनिने इसमें अठारह अध्याय कीर्तन किये और उसी प्रकार आठ सौ सत्तर श्लोक रचे हैं। अमित बुद्धिमान् व्यासने ऐषिक पर्वको इस पर्वके अन्तर्गत किया है ॥ १८९–१९० ॥

अत ऊर्ध्वमिदं प्राहुः स्त्रीपर्व करुणोदयम् ।
विलापो वीरपत्नीनां यत्रातिकरुणः स्मृतः ।
क्रोधावेशः प्रसादश्च गांधारीधृतराष्ट्रयोः ॥ १९१ ॥

इसके अनन्तर करुणरसयुक्त स्त्रीपर्व कहा जाता है। इस पर्वमें वीरोंकी स्त्रियोंका अति करुण-स्वरसे विलाप करना बताया है। गांधारी और धृतराष्ट्रके क्रोधित होकर शान्त होनेका भी वर्णन इसी पर्वमें है ॥ १९१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यत्र तान्क्षत्रियाञ्शूरान्दिष्टान्ताननिवर्तिनः।
पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄंश्चैव ददृशुर्निहतान्रणे ॥ १९२ ॥

क्षत्रिय नारियोंने युद्धमें पीठ न दिखानेवाले अपने शूरवीर पिता, भ्राता और पतियोंको रणमें मरा हुआ देखा ॥ १९२ ॥

यत्र राजा महाप्राज्ञः सर्वधर्मभृतां वरः।
राज्ञां तानि शरीराणि दाहयामास शास्त्रतः ॥ १९३ ॥

सब धार्मिकोंमें श्रेष्ठ महा बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मरे हुए राजाओंके उन शरीरों-का शास्त्रानुसार दाह कर्म इसी पर्वमें किया ॥ १९३ ॥

एतदेकादशं प्रोक्तं पर्वातिकरुणं महत्।
सप्तविंशतिरध्यायाः पर्वण्यस्मिन्नुदाहृताः ॥ १९४ ॥

इसी भारतमें अति करुणाका उत्पादक यह ग्यारहवां पर्व है। इस पर्वमें सत्ताइस अध्याय रचे गए हैं ॥ १९४ ॥

श्लोकाः सप्तशतं चात्र पञ्चसप्ततिरुच्यते।
संख्यया भारताख्यानं कर्त्रा ह्यत्र महात्मना।
प्रणीतं सज्जनमनोवैक्लव्याश्रुप्रवर्तकम् ॥ १९५ ॥

तथा सज्जनोंके मनोंको करुणायुक्त करनेवाले तथा आंखोंमें आंसू लानेवाले सात सौ पचहत्तर संख्यासे युक्त श्लोक महाभारतके रचयिता महात्माने रचे हैं ॥ १९५ ॥

अतः परं शान्तिपर्व द्वादशं बुद्धिवर्धनम्।
यत्र निर्वेदमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
घातयित्वा पितॄन्भ्रातॄन्पुत्रान्संबन्धिबान्धवान् ॥ १९६ ॥

इसके पश्चात् बुद्धिको बढानेवाला शान्तिपर्व नामक बारहवां पर्व है। इस पर्वमें धर्मराज युधिष्ठिर पिता, भ्राता, पुत्र तथा सम्बन्धियों आदि सबको मरवा डालनेके कारण बडे दुःखी हुए ॥ १९६ ॥

शान्तिपर्वणि धर्माश्च व्याख्याताः शरतल्पिकाः।
राजभिर्वेदितव्या ये सम्यङ्नयबुभुत्सुभिः ॥ १९७ ॥

शरशय्या पर पडे हुए भीष्मदेवने युधिष्ठिरको उत्तम नीति चाहनेवाले राजाओंके द्वारा अवश्य जानने योग्य राजधर्म इस पर्वमें सुनाया है ॥ १९७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आपद्धर्माश्च तत्रैव कालहेतुप्रदर्शकाः।
यान्बुद्ध्वा पुरुषः सम्यक्सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात्।
मोक्षधर्माश्च कथिता विचित्रा बहुविस्तराः ॥ १९८ ॥

और इस पर्वमें कालके हेतु दर्शानेवाला आपद्धर्म भी बताया है। जिसे जानकर मानव सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है, इसी प्रकार इस पर्वमें बहु विस्तृत मोक्ष-धर्म भी बताया गया है ॥ १९८ ॥

द्वादशं पर्व निर्दिष्टमेतत्प्राज्ञजनप्रियम्।
पर्वण्यत्र परिज्ञेयमध्यायानां शतत्रयम्।
त्रिंशच्चैव तथाध्याया नव चैव तपोधनाः ॥ १९९ ॥

ज्ञानियोंके लिए प्रिय इस बारहवें पर्वका नाम शांति पर्व है, हे तपोधनो! इसमें तीन सौ उन्तालीस अध्याय हैं ॥ १९९ ॥

श्लोकानां तु सहस्राणि कीर्तितानि चतुर्दश।
पञ्च चैव शतान्याहुः पञ्चविंशतिसंख्यया ॥ २०० ॥

तथा व्यासने इस पर्वमें चौदह हजार पांच सौ पच्चीस श्लोक रचे हैं ॥ २०० ॥

अत ऊर्ध्वं तु विज्ञेयमानुशासनमुत्तमम्।
यत्र प्रकृतिमापन्नः श्रुत्वा धर्मविनिश्चयम्।
भीष्माद्भागीरथीपुत्रात्कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ २०१ ॥

इसके पश्चात् उत्तम अनुशासन पर्व जानना चाहिए। जिसमें कुरुराज युधिष्ठिरने भागीरथीके पुत्र भीष्मका धर्मनिर्णय सुन करके अपने स्वाभाविक भावको प्राप्त कर लिया ॥ २०१ ॥

व्यवहारोऽत्र कार्त्स्न्येन धर्मार्थीयो निदर्शितः।
विविधानां च दानानां फलयोगाः पृथग्विधाः ॥ २०२ ॥

इस पर्वमें धर्म और अर्थ संबंधी व्यवहार तथा विविध दानोंके भिन्न भिन्न फलोंको पूर्ण रूपसे बताया है ॥ २०२ ॥

तथा पात्रविशेषाश्च दानानां च परो विधिः।
आचारविधियोगश्च सत्यस्य च परा गतिः ॥ २०३ ॥

दान लेनेवाले पात्रोंकी योग्यता, दानकी उत्तम विधि, आचार—व्यवहारके प्रकार व उनकी विधि तथा सत्यकी पराकाष्ठा भी इस पर्वमें बताई है ॥ २०३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतत्सुबहुवृत्तान्तमुत्तमं चानुशासनम्।
भीष्मस्यात्रैव संप्राप्तिः स्वर्गस्य परिकीर्तिता ॥ २०४ ॥

ये सब उत्तम और विस्तृत वृत्तान्त इस अनुशासन पर्वमें हैं। और इसी पर्वमें भीष्मके स्वर्गप्राप्तिका भी वर्णन है ॥ २०४ ॥

एतत्त्रयोदशं पर्व धर्मनिश्चयकारकम्।
अध्यायानां शतं चात्र षट्चत्वारिंशदेव च।
श्लोकानां तु सहस्राणि षट् सप्तैव शतानि च ॥ २०५ ॥

यह धर्म–निर्णयकारी तेरहवां पर्व है इस पर्वमें एक सौ छियालीस अध्याय और छै हजार सातसौ श्लोक रचे गये हैं ॥ २०५ ॥

ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम्।
तत्संवर्तमरुत्तीयं यत्राख्यानमनुत्तमम् ॥ २०६ ॥

इसके पश्चात् आश्वमेधिक नामक चौदहवां पर्व कथित हुआ है। इसमें संवर्त और मरुतका सुन्दर उपाख्यान है ॥ २०६ ॥

सुवर्णकोशसंप्राप्तिर्जन्म चोक्तं परीक्षितः।
दग्धस्यास्त्राग्निना पूर्वं कृष्णात्संजीवनं पुनः ॥ २०७ ॥

इस पर्वमें सुवर्ण कोषके पाने और परीक्षितके जन्मका वर्णन है। पहिले जो अस्त्राग्निसे जला दिया गया था और फिर बादमें श्रीकृष्णसे पुनः जिलाया गया ॥ २०७ ॥

चर्यायां हयमुत्सृष्टं पाण्डवस्यानुगच्छतः।
तत्र तत्र च युद्धानि राजपुत्रैरमर्षणैः ॥ २०८ ॥

यज्ञके घोडेको छोडनेपर उसके पीछे चलनेवाले अर्जुनसे स्थान स्थानमें क्रोधी राजाओंका युद्ध ॥ २०८ ॥

चित्राङ्गदायाः पुत्रेण पुत्रिकाया धनंजयः।
संग्रामे बभ्रुवाहेन संशयं चात्र दर्शितः।
अश्वमेधे महायज्ञे नकुलाख्यानमेव च ॥ २०९ ॥

(चित्रवाहन राजाकी पुत्री) चित्रांगदाके गर्भसे उत्पन्न (निज) पुत्र बभ्रुवाहनके साथ होनेवाले संग्राममें अर्जुनके प्राणों पर बन आना तथा अश्वमेध महायज्ञके कालमें नेवलेकी कथा ॥ २०९ ॥

इत्याश्वमेधिकं पर्व प्रोक्तमेतन्महाद्भुतम्।
अत्राध्यायशतं त्रिंशत्त्रयोऽध्यायाश्च शब्दिताः ॥ २१० ॥

ये सब विषय अति अद्भुत आश्वमेधिक पर्वमें वर्णित हुए हैं। इस पर्वमें एक सौ तैतीस अध्याय कीर्तन किये हैं ॥ २१० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्रीणि श्लोकसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥ २११ ॥

और तीन हजार तीन सौ बीस श्लोक तत्त्वदर्शी व्यासने गिनाए हैं ॥ २११ ॥

तत आश्रमवासाख्यं पर्व पञ्चदशं स्मृतम् ।
यत्र राज्यं परित्यज्य गांधारीसहितो नृपः ।
धृतराष्ट्राश्रमपदं विदुरश्च जगाम ह ॥ २१२ ॥

इसके अनन्तर आश्रमवासिक नामक पन्द्रहवां पर्व कहा जाता है। इस पर्वमें गान्धारी सहित राजा धृतराष्ट्रके राज्यको छोडकर विदुरके साथ आश्रमवासके लिये वनको चले जानेका वर्णन है ॥ २१२ ॥

यं दृष्ट्वा प्रस्थितं साध्वी पृथाप्यनुययौ तदा ।
पुत्रराज्यं परित्यज्य गुरुशुश्रूषणे रता ॥ २१३ ॥

अपनेसे वृद्ध आदमियोंकी सेवामें तत्पर कुन्ती भी उनको जाता हुआ देखकर पुत्रोंके राज्य-को छोडकर उनके पीछे चली गई ॥ २१३ ॥

यत्र राजा हतान्पुत्रान्पौत्रानन्यांश्च पार्थिवान् ।
लोकान्तरगतान्वीरानपश्यत्पुनरागतान् ॥ २१४ ॥

इसी पर्वमें राजा धृतराष्ट्रने युद्धमें मरे और परलोकको सिधारे हुए पुत्र, पौत्र और दूसरे वीर राजाओंको फिर आया हुआ देखा ॥ २१४ ॥

ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् ।
त्यक्त्वा शोकं सदारश्च सिद्धिं परमिकां गतः ॥ २१५ ॥

उन्होंने कृष्णद्वैपायनकी कृपासे यह उत्तम और अत्याश्चर्य व्यापार देख कर गान्धारीके साथ शोकका परित्याग करके परम सिद्धि प्राप्त की ॥ २१५ ॥

यत्र धर्मं समाश्रित्य विदुरः सुगतिं गतः ।
संजयश्च महामात्रो विद्वान्गावल्गणिर्वशी ॥ २१६ ॥

जितेन्द्रिय विद्वान् गावल्गणके पुत्र महामात्य संजय और विदुरने धर्मका आश्रय कर सुगति प्राप्त की ॥ २१६ ॥

ददर्श नारदं यत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नारदाच्चैव शुश्राव वृष्णीनां कदनं महत् ॥ २१७ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने नारदजीके दर्शन किए और उन्हीं नारदके मुखसे वृष्णियोंके महान् कुलक्षय होनेकी वार्ता सुनी ॥ २१७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतदाश्रमवासाख्यं पर्वोक्तं सुमहाद्भुतम्।
द्विचत्वारिंशदध्यायाः पर्वैतदभिसंख्यया ॥ २१८ ॥

यह सब वृत्तांत अति अद्भुत आश्रमवासिक पर्वमें कहे गये हैं। यह पर्व बयालीसकी संख्या वाले अध्यायोंसे युक्त है ॥ २१८ ॥

सहस्रमेकं श्लोकानां पञ्च श्लोकशतानि च।
षडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥ २१९ ॥

और एक हजार, पांच सौ, छः श्लोक इसमें तत्त्वदर्शी व्यासने गिनाए हैं ॥ २१९ ॥

अतः परं निबोधेदं मौसलं पर्व दारुणं।
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शस्त्रस्पर्शसहा युधि।
ब्रह्मदण्डविनिष्पिष्टाः समीपे लवणाम्भसः ॥ २२० ॥

इसके अनंतर दुःखदायी मौसल—पर्वको श्रवण कीजिये। जो लोग रणभूमिमें सहज ही में अस्त्रके आघात सह लेते थे, उन सर्व पुरुषोंमें श्रेष्ठ यादवगणोंने ब्रह्मशापरूपी दण्डसे पीडित होकर समुद्र—तटके पास ॥ २२० ॥

आपाने पानगलिता दैवेनाभिप्रचोदिताः।
एरकारूपिभिर्वज्रैर्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ २२१ ॥

मदिरा पीनेकी सभामें पीकर तथा दैवसे प्रेरित होकर एरका तृणरूपी वज्राघातसे एक दूसरेको मार दिया ॥ २२१ ॥

यत्र सर्वक्षयं कृत्वा तावुभौ रामकेशवौ।
नातिचक्रमतुः कालं प्राप्तं सर्वहरं समम् ॥ २२२ ॥

इस प्रकार बलराम, कृष्ण, दोनोंने संपूर्ण यदुवंशका नाश कर स्वयं भी सर्वसंहारी समदर्शी कालका उल्लंघन नहीं कर पाये ॥ २२२ ॥

यत्रार्जुनो द्वारवतीमेत्य वृष्णिविनाकृताम्।
दृष्ट्वा विषादमगमत्परां चार्तिं नरर्षभः ॥ २२३ ॥

नरश्रेष्ठ अर्जुन द्वारकामें आकर और उसे यादवोंसे खाली पाकर बडी मनःपीडासे दुःखको प्राप्त हुए ॥ २२३ ॥

स सत्कृत्य यदुश्रेष्ठं मातुलं शौरिमात्मनः।
ददर्श यदुवीराणामापाने वैशसं महत् ॥ २२४ ॥

उन्होंने अपने मामा यदुकुलमें श्रेष्ठ वसुदेवका सत्कार करके सुरापान सभामें यदुवंशी वीरोंका भयंकर विनाश देखा ॥ २२४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शरीरं वासुदेवस्य रामस्य च महात्मनः।
संस्कारं लम्भयामास वृष्णीनां च प्रधानतः ॥ २२५ ॥

फिर उन्होंने महात्मा बलराम, श्री कृष्णचन्द्र और प्रधान प्रधान यदुवंशियोंके शरीरोंका दाह संस्कार किया ॥ २२५ ॥

स वृद्धबालमादाय द्वारवत्यास्ततो जनम्।
ददर्शापदि कष्टायां गाण्डीवस्य पराभवम् ॥ २२६ ॥

और द्वारकासे बाल, वृद्ध आदि सभी जनोंको लाते समय पथमें घोर आपत्तिसे घेर लिये जाने पर निज गाण्डीव धनुषकी पराजय देखी ॥ २२६ ॥

सर्वेषां चैव दिव्यानामस्त्राणामप्रसन्नताम्।
नाशं वृष्णिकलत्राणां प्रभावानामनित्यताम् ॥ २२७ ॥

और सभी दिव्यास्त्रोंकी प्रतिकूलता देखी। तथा उन्होंने यादव-नारियोंका नाश और विक्रमकी अनित्यता देखकर ॥ २२७ ॥

दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नो व्यासवाक्यप्रचोदितः।
धर्मराजं समासाद्य संन्यासं समरोचयत् ॥ २२८ ॥

बडे उदास होकर तथा व्यासके वचनोंसे प्रेरित होकर युधिष्ठिरके निकट लौट करके संन्यास-आश्रमकी शरण लेनेकी अभिलाषा प्रकट की ॥ २२८ ॥

इत्येतन्मौसलं पर्व षोडशं परिकीर्तितम्।
अध्यायाष्टौ समाख्याताः श्लोकानां च शतत्रयम् ॥ २२९ ॥

यह सोलहवां पर्व मौसल पर्व कहा गया है। इस पर्वमें आठ अध्याय और तीन सौ श्लोक रचे गये हैं ॥ २२९ ॥

महाप्रस्थानिकं तस्मादूर्ध्वं सप्तदशं स्मृतम्।
यत्र राज्यं परित्यज्य पाण्डवाः पुरुषर्षभाः।
द्रौपद्या सहिता देव्या सिद्धिं परमिकां गताः ॥ २३० ॥

इसके पश्चात् महाप्रस्थानिक नामक सत्रहवां पर्व है। जिस पर्वमें पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवोंने देवी द्रौपदीके साथ राज्य छोडकर परम सिद्धिको प्राप्त किया ॥ २३० ॥

अत्राध्यायास्त्रयः प्रोक्ताः श्लोकानां च शतं तथा।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥ २३१ ॥

इस पर्वमें तत्त्वदर्शी महर्षिने तीन अध्याय और एक सौ बीस श्लोक कीर्तन किये हैं ॥ २३१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वर्गपर्व ततो ज्ञेयं दिव्यं यत्तदमानुषम् ।
अध्यायाः पञ्च संख्याताः पर्वैतदभिसंख्यया ।
श्लोकानां द्वे शते चैव प्रसंख्याते तपोधनाः ॥ २३२ ॥

अनन्तर अमानुषी आश्चर्यवाला स्वर्गारोहण पर्व जानना चाहिए । हे तपोधनो ! संख्याकी दृष्टिसे इस पर्वमें पांच अध्याय और दो सौ श्लोक गिनाए हैं ॥ २३२ ॥

अष्टादशैवमेतानि पर्वाण्युक्तान्यशेषतः ।
खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यच्च प्रकीर्तितम् ॥ २३३ ॥

इस प्रकारसे संपूर्ण अट्ठारह पर्व कहे गये हैं। इसके पश्चात् खिल (परिशिष्ट) भागमें हरिवंश और भविष्य पर्वोंका वर्णन है ॥ २३३ ॥

एतदखिलमाख्यातं भारतं पर्वसंग्रहात् ।
अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया ।
तन्महद्दारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत् ॥ २३४ ॥

इन सब पर्वोंसे युक्त महाभारत कहा है। अट्ठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करनेके निमित्त इकट्ठी हुई और यह भयंकर युद्ध अट्ठारह दिनोंतक चला ॥ २३४ ॥

यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदान्द्विजः ।
न चाख्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥ २३५ ॥

जो ब्राह्मण चतुर्वेद, वेदांग और संपूर्ण उपनिषद् भी पढा हो, पर महाभारतीय उपाख्यान न जानता हो, वह बुद्धिमान् नहीं हो सकता ॥ २३५ ॥

श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते ।
पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव ॥ २३६ ॥

जैसे कोयलका मधुर कूजन सुन कर फिर कौवेकी कर्कश बोली सुननेकी इच्छा नहीं होती, वैसे ही इस उपाख्यानको सुननेके बाद और कुछ सुननेकी अभिलाषा नहीं रहती ॥ २३६ ॥

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः ।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः ॥ २३७ ॥

जैसे पंच भूतोंसे तीनों प्रकारके लोकोंकी उत्पत्ति होती है वैसे ही इस सर्व श्रेष्ठ इतिहाससे कवित्व बुद्धि उपजती है ॥ २३७ ॥

अस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्तते द्विजाः ।
अन्तरिक्षस्य विषये प्रजा इव चतुर्विधाः ॥ २३८ ॥

हे ब्राह्मणो ! जैसे (जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज यह) चारों प्रकारकी प्रजाएं आकाशमें ही रहती हैं, वैसे ही सम्पूर्ण पुराण इस उपाख्यानमें हैं ॥ २३८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्रियागुणानां सर्वेषामिदमाख्यानमाश्रयः ।
इन्द्रियाणां समस्तानां चित्रा इव मनःक्रियाः ॥ २३९ ॥

जैसे विचित्र विचित्र चित्तक्रियायें सब इन्द्रियोंको आश्रय देनेवाली हैं वैसे ही यह उपाख्यान (दान, अध्ययन आदि) क्रिया और (शम, दम आदि) गुणोंका आश्रय है ॥ २३९ ॥

अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते ।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम् ॥ २४० ॥

जैसे भोजनके विना शरीरका धारण नहीं हो सकता, वैसे ही इस उपाख्यानके आश्रयके बिना भूमण्डलमें कोई भी आख्यान विद्यमान नहीं है ॥ २४० ॥

इदं सर्वैः कविवरैराख्यानमुपजीव्यते ।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥ २४१ ॥

जैसे उन्नति चाहनेवाले भृत्य कुलीन राजाकी शरण लेते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ कविकुल (कवित्व शक्तिकी उन्नतिके लिये) इस महाभारतका आश्रय लेते हैं ॥ २४१ ॥

द्वैपायनौष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥२४२॥

महाभाग्यवान् द्वैपायनके दोनों होठोंसे निकले हुए, अप्रमेय, पुण्यदायक, परम पवित्र, पाप-विनाशी, परम कल्याणकारक इस महाभारतके पाठको पढे जाते हुए जो सुनते हैं उनको पुष्करतीर्थके जलमें नहानेकी क्या जरुरत ? ॥ २४२ ॥

आख्यानं तदिदमनुत्तमं महार्थं विन्यस्तं महदिह पर्वसंग्रहेण ।
श्रुत्वादौ भवति नृणां सुखावगाहं विस्तीर्णं लवणजलं यथा प्लवेन ॥ २४३ ॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ समाप्तं पर्वसंग्रहपर्व ॥ ४५३ ॥

जैसे मनुष्यगण नाव द्वारा परम सुखसे खारे जलवाले विस्तीर्ण समुद्रको पार कर जाते हैं, वैसे ही पहिले इस पर्वसंग्रहको सुननेसे इसके द्वारा अतिश्रेष्ठ गंभीर अर्थवाले इस महत् आख्यानरूपी सागरको सुखसे पार कर सकते हैं ॥ २४३ ॥

इस प्रकार महाभारतके आदिपर्वमें दूसरा अध्याय और पर्वसंग्रह पर्व समाप्त हुआ ॥ ४५३ ॥

---

*

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३ :

सूत उवाच

जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते। तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेन इति॥ १॥ तेषु तत्सत्रमुपासीनेषु तत्र श्वाभ्यागच्छत्सारमेयः। स जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतो रोरूयमाणो मातुः समीपमुपागच्छत्॥ २॥ तं माता रोरूयमाणमुवाच। किं रोदिषि। केनास्यभिहत इति॥ ३॥ स एवमुक्तो मातरं प्रत्युवाच। जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतोऽस्मीति॥ ४॥

सूत बोले— परीक्षितके पुत्र महाराज जनमेजयने अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें दीर्घ यज्ञका अनुष्ठान किया। उस जनमेजयके श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन ये तीन भाई थे॥ १॥ यज्ञ करते हुए उनके उस यज्ञानुष्ठानके कालमें वहां सरमाका पुत्र कुत्ता आकर उपस्थित हुआ। जनमेजयके भाइयोंके द्वारा मारे जाने पर वह बहुत रोता हुआ अपनी माताके पास जा पहुंचा॥ २॥ उसे बुरी तरह रोते हुए देखकर माताने पूछा "तुम क्यों रो रहे हो? किसने तुमको मारा है?"॥ ३॥ इस प्रकार पूछे जानेपर कुत्तेने मातासे कहा कि "जनमेजयके भाइयोंने मुझे मारा है।"॥ ४॥

तं माता प्रत्युवाच। व्यक्तं त्वया तत्रापराद्धं येनास्यभिहत इति॥ ५॥ स तां पुनरुवाच। नापराध्यामि किंचित्। नावेक्षे हवींषि नावलिह इति॥ ६॥ तच्छ्रुत्वा तस्य माता सरमा पुत्रशोकार्ता तत्सत्रमुपागच्छद्यत्र स जनमेजयः सह भ्रातृभिर्दीर्घसत्रमुपास्ते॥ ७॥ स तया क्रुद्धया तत्रोक्तः। अयं मे पुत्रो न किंचिदपराध्यति। किमर्थमभिहत इति। यस्माच्चायमभिहतोऽनपकारी तस्माददृष्टं त्वां भयमागमिष्यतीति॥ ८॥

उसकी माताने उत्तर दिया "स्पष्ट है कि तुमने वहां कोई अपराध किया होगा जिसके कारण उन्होंने तुमको मारा है।"॥ ५॥ कुत्तेने मातासे फिर कहा "नहीं, मैंने कोई अपराध नहीं किया। यज्ञका घृत भी नहीं चाटा और न उसकी तरफ देखा ही।"॥ ६॥ यह सुन कर पुत्रके दुःखसे दुःखी उसकी माता सरमा उस यज्ञस्थल पर गई, जहां जनमेजय अपने भाइयोंके साथ दीर्घयज्ञ कर रहे थे॥ ७॥ वहां जाकर क्रोधसे उसने जनमेजयसे कहा, "मेरे इस पुत्रने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। फिर तुम लोगोंने उसको क्यों मारा? अतः चूंकि तुमने मेरे निर्दोषी पुत्रको मारा है, इसलिए तुमको अलक्षित भय आकर घेर लेगा।"॥ ८॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स जनमेजय एवमुक्तो देवशुन्या सरमया दृढं संभ्रान्तो विषण्णश्चासीत् ॥ ९ ॥ स तस्मिन्सत्रे समाप्ते हास्तिनपुरं प्रत्येत्य पुरोहितमनुरूपमन्विच्छमानः परं यत्नमकरोद्यो मे पापकृत्यां शमयेदिति ॥ १० ॥ स कदाचिन्मृगयां यातः पारिक्षितो जनमेजयः कस्मिंश्चित्स्वविषयोद्देशे आश्रममपश्यत् ॥ ११ ॥ तत्र कश्चिदृषिरासांचक्रे श्रुतश्रवा नाम । तस्याभिमतः पुत्र आस्ते सोमश्रवा नाम ॥ १२ ॥

देवोंकी कुतिया सरमाके द्वारा इस प्रकारसे शाप देनेपर जनमेजय घबरा गया और बहुत दुःखी हुआ ॥ ९ ॥ उस यज्ञके समाप्त होनेपर महाराज जनमेजयने हस्तिनापुरमें आकर किसी ऐसे योग्य पुरोहितको ढूंढनेके लिये बडा प्रयत्न किया कि जो मेरे इस पापकर्मको शान्त कर सके ॥ १० ॥ एक दिन शिकार पर निकले हुए परीक्षितके पुत्र जनमेजयने अपने राज्य ही के किसी एक प्रदेशमें एक आश्रम देखा ॥ ११ ॥ उस आश्रममें श्रुतश्रवा नामक कोई ऋषि रहते थे । उनका सोमश्रवा नामक एक परम प्रिय पुत्र था ॥ १२ ॥

तस्य तं पुत्रमभिगम्य जनमेजयः पारिक्षितः पौरोहित्याय वव्रे ॥ १३ ॥ स नमस्कृत्य तमृषिमुवाच । भगवन्नयं तव पुत्रो मम पुरोहितोऽस्त्विति ॥ १४ ॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच । भो जनमेजय पुत्रोऽयं मम सर्प्यां जातः । महातपस्वी स्वाध्यायसंपन्नो मत्तपोवीर्यसंभृतो मच्छुक्रं पीतवत्यास्तस्याः कुक्षौ संवृद्धः । समर्थोऽयं भवतः सर्वाः पापकृत्याः शमयितुमन्तरेण महादेवकृत्याम् । अस्य त्वेकमुपांशुव्रतम् । यदेनं कश्चिद्ब्राह्मणः कंचिदर्थमभियाचेत्तं तस्मै दद्यादयम् । यद्येतदुत्सहसे ततो

परीक्षितके पुत्र जनमेजयने उस ऋषिपुत्रके पास जाकर पुरोहितके कर्मके लिए उसका वरण किया ॥ १३ ॥ और उसके पिताको प्रणाम कर बोला "हे भगवन् ! आपका यह पुत्र मेरे पुरोहित होवे ।" ॥ १४ ॥ जनमेजयके ऐसी प्रार्थना करनेपर ऋषिवर बोले "हे जनमेजय ! मेरा यह पुत्र एक सांपिन से उत्पन्न हुआ है । महातपस्वी, स्वाध्याय युक्त और मेरा तपोवीर्यसे युक्त यह पुत्र मेरे वीर्यको पी जानेवाली एक सांपिनके गर्भमें बढा है । यह महादेवके द्वारा प्रेरित पाप कृत्याको छोडकर तुम्हारे अन्य सब पापकृत्याओंको शान्त करनेमें समर्थ है । इसका एक गूढ नियम है । कि कोई ब्राह्मण इससे जो कुछ मांगेगा यह उसको वही दान दे देगा । यदि तुम इस बातका साहस कर सको तो मेरे इस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नयस्वैनमिति ॥ १५ ॥ तेनैवमुक्तो जनमेजयस्तं प्रत्युवाच। भगवंस्तथा भविष्यतीति ॥ १६ ॥

पुत्रको ले जाओ।" ॥ १५ ॥ ऋषिके ऐसा कहने पर जनमेजय उससे बोले "भगवन्! आप जो कहते हैं, वही होगा।" ॥ १६ ॥

स तं पुरोहितमुपादायोपावृत्तो भ्रातॄनुवाच। मयायं वृत उपाध्यायः। यदयं ब्रूयात्तत्कार्यमविचारयद्भिरिति ॥ १७ ॥ तेनैवमुक्ता भ्रातरस्तस्य तथा चक्रुः। स तथा भ्रातॄन्संदिश्य तक्षशिलां प्रत्यभिप्रतस्थे। तं च देशं वशे स्थापयामास ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदृषिर्धौम्यो नामायोदः। तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुरुपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति ॥ १९ ॥ स एकं शिष्यमारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास। गच्छ केदारखण्डं बधानेति ॥ २० ॥

वह पुरोहितको साथमें लेकर राजधानीमें आकर भाइयोंसे बोला "इस ऋषिकुमारका मैंने पुरोहितके रूपमें वरण किया है। यह जो कुछ कहे, तुम उसे विना विचारे पूरा करो।' ॥ १७ ॥ जनमेजयके भ्रातृगण इस प्रकार आदिष्ट होकर ऋषिकुमारकी आज्ञाका पालन करने लगे। महाराज जनमेजय भाइयोंको वैसी आज्ञा देकर तक्षशिला देशको जीतने चले गये और उस देशको उन्होंने अपने वशमें कर लिया ॥ १८ ॥ इसी बीच उस समय लोहेके दांतवाले धौम्य नामक एक ऋषि रहते थे। उनके उपमन्यु, आरुणि और वेद नामके तीन शिष्य थे ॥ १९ ॥ ऋषिने एक बार पांचालदेशीय शिष्य आरुणिको (यह आज्ञा देकर) भेजा कि "तुम खेतमें जाकर क्यारियोंके बांध बांधो" ॥ २० ॥

स उपाध्यायेन संदिष्ट आरुणिः पाञ्चाल्यस्तत्र गत्वा तत्केदारखण्डं बद्धुं नाशक्नोत् ॥ २१ ॥ स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायम्। भवत्वेवं करिष्यामीति ॥ २२ ॥ स तत्र संविवेश केदारखण्डे। शयाने तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ ॥ २३ ॥ ततः कदाचिदुपाध्याय आयोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत्। क्व आरुणिः पाञ्चाल्यो गत इति ॥ २४ ॥

पाञ्चालदेशीय आरुणि गुरुसे आदिष्ट होकरके वहां जाकर (बडे बडे कष्ट उठाने पर भी) बांधको बांध नहीं सका, ॥ २१ ॥ बहुत परिश्रम करनेके बाद उसने एक उपाय देखा और बोला कि– "ठीक है अब ऐसा ही करूंगा।" ॥ २२ ॥ और यह कहकर वह वहीं एक क्यारीमें लेट गया। उसके लेट जानेपर वह जल भी रुक गया ॥ २३ ॥ इसके बाद एकदिन उपाध्याय अयोदधौम्यने शिष्योंसे पूछा "पाञ्चालदेशीय आरुणि कहां गया है?" ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ते प्रत्यूचुः । भगवतैव प्रेषितो गच्छ केदारखण्डं बधानेति ॥ २५ ॥ स एवमुक्तस्ताञ्शिष्यान्प्रत्युवाच । तस्मात्सर्वे तत्र गच्छामो यत्र स इति ॥ २६ ॥ स तत्र गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार । भो आरुणे पाञ्चाल्य क्वासि । वत्सैहीति ॥२७॥ स तच्छ्रुत्वा आरुणिरुपाध्यायवाक्यं तस्मात्केदारखण्डात्सहसोत्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे । प्रोवाच चैनम् । अयमस्म्यत्र केदारखण्डे निःसरमाणमुदकमवारणीयं संरोद्धुं संविष्टो भगवच्छब्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्य केदारखण्डं भवन्तमुपस्थितः । तदभिवादये भगवन्तम् । आज्ञापयतु भवान् । किं करवाणीति ॥ २८ ॥

शिष्योंने उत्तर दिया, भगवन्! आपहीने उसको यह कहकर भेजा है कि– "जाओ खेतका बांध बांध दो ।" ॥ २५ ॥ इस प्रकार कहे जाने पर धौम्यने शिष्योंसे कहा, "चलो, जहां आरुणि गया है, हम सब वहीं चलें ।" ॥२६॥ वह बांधके पास पहुंचकर चिल्लाकरके पुकारने लगे "पांचाल्य आरुणे ! कहां हो ? हे पुत्र! चले आओ ।" ॥ २७ ॥ आरुणि उपाध्यायकी आवाज सुनकर उस बांधसे एकाएक उठकर उनके निकट उपस्थित हुआ और उनसे बोला "भगवन् ! मैं यहां हूं; आपके खेतमेंसे निकलनेवाले तथा न रुकनेवाले जलको रोकनेके लिए वहीं पर लेटे हुए मैंने आपका शब्द सुना, इसीसे एकाएक खेतको तोड कर आपके पास आ पहुंचा हूं । आपको प्रणाम करता हूं । आप आज्ञा दीजिये । इस समय कौनसा कार्य करूं ।" ॥ २८ ॥

तमुपाध्यायोऽब्रवीत् । यस्माद्भवान्केदारखण्डमवदार्योत्थितस्तस्माद्भवानुद्दालक एव नाम्ना भविष्यतीति ॥२९॥ स उपाध्यायेनानुगृहीतः । यस्मात्त्वया मद्वचोऽनुष्ठितं तस्माच्छ्रेयोऽवाप्स्यसीति । सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्म-

(आरुणिकी बात पूरी होने पर) उपाध्यायने उससे कहा, "बेटा। चूंकि तुम बांधको बिना तोडे ही निकलकर आये हो, सो तुम उद्दालक नामसे प्रसिद्ध होगे।" ॥ २९ ॥ उस पर उपाध्यायने कृपा की । "क्योंकि तुमने मेरी आज्ञाका पालन किया है, सो तुम कल्याणको प्राप्त करोगे और सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारे मनमें प्रकाशित रहेंगे" ॥ ३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शास्त्राणीति ॥ ३० ॥ स एवमुक्त उपाध्यायेनेष्टं देशं जगाम ॥ ३१ ॥ अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदस्य धौम्यस्योपमन्युर्नाम ॥ ३२ ॥

आगे आरुणि उपाध्यायकी आज्ञासे अपने इष्ट देशको पधारा ॥ ३१ ॥ उसी अयोदधौम्यके दूसरे शिष्यका नाम उपमन्यु था ॥ ३२ ॥

तमुपाध्यायः प्रेषयामास। वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति ॥३३॥ स उपाध्यायवचनादरक्षद्गाः। स चाहनि गा रक्षित्वा दिवसक्षयेऽभ्यागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ३४ ॥ तमुपाध्यायः पीवानमपश्यत्। उवाच चैनम्। वत्सोपमन्यो केन वृत्तिं कल्पयसि। पीवानसि दृढमिति ॥ ३५ ॥ स उपाध्यायं प्रत्युवाच। भैक्षेण वृत्तिं कल्पयामीति ॥ ३६ ॥

उपाध्यायने उसको भेजा "बेटा! तुम गोरक्षा करो" ॥ ३३ ॥ उपमन्यु उपाध्यायकी आज्ञानुसार गोरक्षा करने लगा। दिनभर गायकी रक्षा करके संध्याको वापस आता और गुरुके सामने आकर नमन किया करता था ॥ ३४ ॥ एक दिन उपाध्यायने उसको पुष्ट देखा और इससे बोले, "बेटा उपमन्यो! तुम किससे अपनी जीविका चलाते हो। तुमको बहुत पुष्ट देखता हूं" ॥ ३५ ॥ उपमन्यु उपाध्यायसे बोला, "मैं भिक्षासे अपनी जीविकाका निर्वाह कर लेता हूं।" ॥ ३६ ॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच। ममानिवेद्य भैक्षं नोपयोक्तव्यमिति ॥ ३७ ॥ स तथेत्युक्त्वा पुनररक्षद्गाः। रक्षित्वा चागम्य तथैवोपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ३८ ॥ तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वोवाच। वत्सोपमन्यो सर्वमशेषतस्ते भैक्षं गृह्णामि। केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसीति ॥ ३९ ॥ स एवमुक्त उपाध्यायेन प्रत्युवाच। भगवते निवेद्य पूर्वमपरं चरामि। तेन वृत्तिं कल्पयामीति ॥ ४० ॥

उपाध्याय बोले कि, "मेरी आज्ञाके विना भिक्षाके अन्नका भोजन नहीं करना चाहिए।" ॥ ३७ ॥ "ऐसा ही होगा" कहकर वह फिर गौ की रक्षा करने लगा। इस प्रकार गोरक्षा कर उपाध्यायके समक्ष जाकर उन्हें नमस्कार किया करता था ॥ ३८ ॥ उस पर भी उसको पुष्ट देखकर उपाध्याय बोले, "बेटा उपमन्यो! तुम्हारा सब भिक्षान्न तो मैं ले लेता हूं। अब तुम किस प्रकारसे भोजन कार्यका निर्वाह करते हो?" ॥ ३९ ॥ उपाध्यायसे इस प्रकार पूछे जाने पर उपमन्यु बोला, "पहिली बारकी भिक्षा आपको दे कर मैं फिर दूसरी बार भिक्षा मांगता हूं। उसीसे मेरी जीविकाका निर्वाह होता है।" ॥४०॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच । नैषा न्याय्या गुरुवृत्तिः । अन्येषामपि वृत्त्युपरोधं करोष्येवं वर्तमानः । लुब्धोऽसीति ॥ ४१ ॥ स तथेत्युक्त्वा गा अरक्षत् । रक्षित्वा च पुनरुपाध्यायगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ४२ ॥ तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वा पुनरुवाच । अहं ते सर्वं भैक्षं गृह्णामि न चान्यच्चरसि । पीवानसि । केन वृत्तिं कल्पयसीति ॥ ४३ ॥ स उपाध्यायं प्रत्युवाच । भो एतासां गवां पयसा वृत्तिं कल्पयामीति ॥ ४४ ॥

उपाध्याय उससे बोले, " ऐसा करना गुरुकुलमें रहनेवालेको उचित नहीं है । ऐसा करते हुए तुम दूसरे भिक्षार्थियोंकी वृत्तिको मार देते हो । तुम लोभी हो ॥ ४१ ॥ उपमन्यु यह कह कर कि " फिर ऐसा न करूंगा " पूर्ववत् गोरक्षा करने लगा । गो–रक्षा करके गुरुके घरमें आकर पूर्ववत् गुरुके सामने खडा होकर नमस्कार किया करता था ॥ ४२ ॥ उपाध्यायने उस पर भी उसको पूर्ववत् पुष्ट देखकर फिर पूछा । " बेटा उपमन्यो ! तुम्हारी सब भिक्षा तो मैं ले लेता हूं, फिर दूसरी बार तुम भिक्षा भी नहीं मांगते हो । उस पर भी तुमको बहुत पुष्ट देखता हूं । इन दिनों तुम क्या खाते हो ? " ॥ ४३ ॥ उपमन्यु उपाध्यायसे बोला " इन गौओंका दूध पीकर जीवननिर्वाह करता हूं ॥ ४४ ॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच । नैतन्न्याय्यं पय उपयोक्तुं भवतो मयाननुज्ञातमिति ॥ ४५ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय गा रक्षित्वा पुनरुपाध्यायगृहानेत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ४६ ॥ तमुपाध्यायः पीवानमेवापश्यत् । उवाच चैनम् । भैक्षं नाश्नासि न चान्यच्चरसि । पयो न पिबसि । पीवानसि । केन वृत्तिं कल्पयसीति ॥ ४७ ॥ स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच । भोः फेनं पिबामि यमिमे वत्सा मातॄणां स्तनं पिबन्त उद्गिरन्तीति ॥ ४८ ॥

उपाध्याय उससे बोले, " मेरी आज्ञाके बिना तुम्हारा दूध पीना उचित नहीं है " ॥ ४५ ॥ उपमन्यु तथास्तु कहकर प्रतिज्ञापूर्वक गोरक्षा करके फिर गुरुके घरमें आकर पूर्ववत् नमस्कार कर खडा हुआ ॥ ४६ ॥ उपाध्यायने उसको पूर्ववत् पुष्ट देखा और इससे कहा, " भिक्षान्नका भोजन नहीं करते, दूसरी बार भिक्षा भी नहीं मांगते । दूध भी नहीं पीते, तो भी पुष्ट हो, अब किस प्रकारसे भूख मिटाते हो ? " ॥ ४७ ॥ उपाध्यायके ऐसा कहनेपर उपमन्यु उपाध्यायसे बोला, " बछडे अपनी अपनी माताओंके स्तन पीते हुए जो फेन (झाग) गिराते हैं, मैं उसीको पीकर प्राण बचाता हूं " ॥ ४८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच। एते त्वदनुकम्पया गुणवन्तो वत्साः प्रभूततरं फेनमुद्गिरन्ति। तदेवमपि वत्सानां वृत्त्युपरोधं करोष्येवं वर्तमानः। फेनमपि भवान्न पातुमर्हतीति ॥ ४९ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय निराहारस्ता गा अरक्षत्। तथा प्रतिषिद्धो भैक्षं नाश्नाति न चान्यच्चरति। पयो न पिबति। फेनं नोपयुंक्ते ॥ ५० ॥ स कदाचिदरण्ये क्षुधार्तोऽर्कपत्राण्यभक्षयत् ॥५१॥ स तैरर्कपत्रैर्भक्षितैः क्षारकटूष्णविपाकिभिश्चक्षुष्युपहतोऽन्धोऽभवत्। सोऽन्धोऽपि चङ्क्रम्यमाणः कूपेऽपपतत् ॥ ५२ ॥

सुनकर उपाध्याय उससे बोले, "यह सब गुणवान् बछडे तुमपर दया करके बहुत अधिक फेन गिराते हैं। इस प्रकार तुम उसी फेनको पीकर बछडोंकी वृत्तिका लोप करते हो। सो फेन पीना भी तुम्हारे लिए अनुचित है ॥४९॥ उपमन्यु तथास्तु कह कर अंगीकार करके निराहार होकर गोरक्षा करने लगा। पर गुरुके मना करनेके कारण उसने न तो भिक्षान्न खाया, न दूसरी बार भिक्षा मांगी, न दूध पिया और न उगला हुआ फेन ही पिया ॥५०॥ अतः एक दिन वनमें भूखसे अति कातर होकर उसने मदार (आक—अकौव्वा) का पत्ता खा लिया ॥ ५१ ॥ खारे, कडुए तथा उष्णता पैदा करनेवाले उन पत्तोंको खानेके कारण वह अपनी आंखोंको खोकर अन्धा हो गया। वह अन्धा होकर भी वनमें घूमता हुआ एक कुंएमें गिर पडा ॥ ५२ ॥

अथ तस्मिन्ननागच्छत्युपाध्यायः शिष्यानवोचत्। मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिषिद्धः। स नियतं कुपितः। ततो नागच्छति चिरगतश्चेति ॥ ५३ ॥ स एवमुक्त्वा गत्वारण्यमुपमन्योराह्वानं चक्रे। भो उपमन्यो क्वासि। वत्सैहीति ॥५४॥ स तदाह्वानमुपाध्यायाच्छ्रुत्वा प्रत्युवाचोच्चैः। अयमस्मि भो उपाध्याय कूपे पतित इति ॥ ५५ ॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच। कथमसि कूपे पतित इति ॥ ५६ ॥

इसके बाद उपमन्युके न लौटने पर उपाध्याय शिष्योंसे बोले—"मैंने उसको सब प्रकारके भोजन करनेसे मना कर दिया था। इससे वह निःसंदेह क्रोधित हो गया होगा। अतः बहुत देरसे गया हुआ वह अब तक लौटकर नहीं आया ॥५३॥ यह कहकर शिष्योंके संग वनमें जाकर उपमन्युको पुकारने लगे, "हे उपमन्यो! कहां हो? हे पुत्र! आओ ॥५४॥ उपमन्यु गुरुकी पुकार सुनकर जोरसे चिल्लाकर बोला, "हे उपाध्याय! मैं इस कूपमें पडा हुआ हूं।" ॥ ५५ ॥ उपाध्यायने पूछा, "तुम कूपमें कैसे जा गिरे?" ॥ ५६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स तं प्रत्युवाच । अर्कपत्राणि भक्षयित्वान्धीभूतोऽस्मि । अतः कूपे पतित इति ॥ ५७ ॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच । अश्विनौ स्तुहि । तौ त्वां चक्षुष्मन्तं करिष्यतो देवभिषजाविति ॥ ५८ ॥ स एवमुक्त उपाध्यायेन स्तोतुं प्रचक्रमे देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः ॥ ५९ ॥

उपमन्यु उससे बोला– " मदार (आक) का पत्ता खाकर मैं अंधा हो गया हूं, अतः कूपमें गिर गया " ॥ ५७ ॥ उपाध्याय उससे बोले— " दोनों अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करो । वे देवताओंके चिकित्सक तुम्हें आंखोंवाला बना देंगे ॥ ५८ ॥ उपाध्यायकी ऐसी आज्ञा पाकर उपमन्यु ऋग्वेद–विहित वाक्योंसे दोनों अश्विनीकुमारोंका स्तवन करने लगा ॥ ५९ ॥

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू गिरा वा शंसामि तपनावनन्तौ ।
दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमानावधिक्षियन्तौ भुवनानि विश्वा ॥ ६० ॥

हे अश्विनी देवो ! तुम सृष्टिके पूर्व भी विद्यमान थे, तुम (हिरण्यगर्भके रूपमें) सबसे पहले उत्पन्न हुए । तुम अनेक तरहके प्रपंचकी सहायतासे सर्वत्र प्रकाशित होते हो । तुम दोनों अत्यन्त तेजस्वी हो, तुम्हारे अन्तको कोई नहीं पा सकता अर्थात् तुम अनन्त हो । मैं वाणीसे तुम दोनोंकी स्तुति करता हूं । तुम दो विराट्रूपी वृक्षके अलौकिक और उत्तम पंखोंसे युक्त पक्षी हो । आपको रजोगुण छू भी नहीं सकता (अर्थात् सदा सत्वगुणमें ही रहते हो), आपके स्वरूपको कोई माप नहीं सकता । इन सब भुवनोंके ऊपर आपका शासन चल रहा है ॥ ६० ॥

हिरण्मयौ शकुनी सांपरायौ नासत्यदस्रौ सुनसौ वैजयन्तौ ।
शुक्रं वयन्तौ तरसा सुवेमावभि व्ययन्तावसितं विवस्वत् ॥ ६१ ॥

आप सुन्दर और आसक्तिरहित हिरण्मयपक्षी हैं, आप ही इस जगत्के संहारके कारण हैं । असत्य और नश्वरसे आप दोनों परे हैं । आप दोनों सुन्दर आकृतिवाले, सुन्दर नाकवाले और काल पर भी विजय प्राप्त करनेवाले हैं । आप दोनों स्वयं सूर्यरूप धारण करके दिन और रातरूपी सफेद और काले धागोंके तानों बानोंसे संवत्सररूपी कपडा इस जगत्रूपी खड्डी पर बडे वेगसे बुन रहे हैं ॥ ६१ ॥

ग्रस्तां सुपर्णस्य बलेन वर्तिकाममुञ्चतामश्विनौ सौभगाय ।
तावत्सुवृत्तावनमन्त मायया सत्तमा गा अरुणा उदावहन् ॥ ६२ ॥

जीवरूपी बटेर पक्षीके सुपर्णरूपी परमात्माकी कालशक्तिसे ग्रसित होने पर उसको महत् सौभाग्यके लिए तुमने उसे छुडाया । मायामें आसक्त; रागादिविषयोंसे जकडे हुए बडे मूर्ख जनोंको तथा इन्द्रियोंके अधीन फंसे रहनेवालेको भी शरीरसे काम करनेकी अनुमति देते हो ॥ ६२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्च धेनव एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति।
नानागोष्ठा विहिता एकदोहनास्तावश्विनौ दुहतो धर्ममुक्थ्यम् ॥ ६३ ॥

दिन और रातरूपी तीन सौ साठ गायें संवत्सररूपी एक बछडेको उत्पन्न करती हैं, परम-तत्त्वको जाननेकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् इस बछडेकी सहायतासे अनेक फल देने-वाले तत्त्वशोधनरूपी दूधको दुहते हैं। इन गायोंके रहनेके स्थान—गोष्ठ यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, तथापि इनको दुहनेका साधनरूप बछडा एक ही है। उससे हे अश्विनौ! तुम दोनों उक्थ्य धर्म अर्थात् प्रशंसनीय सारतत्त्व दुहते हो ॥ ६३ ॥

एकां नाभिं सप्तशता अराः श्रिताः प्रधिष्वन्या विंशतिरर्पिता अराः।
अनेमि चक्रं परिवर्तते ऽजरं मायाश्विनौ समनक्ति चर्षणी ॥ ६४ ॥

कालरूपी चक्रमें संवत्सर बीचकी नाभि अर्थात् केन्द्र स्थान है। इस नाभिमें दिन रातरूपी सातसौ बीस डण्डे लगे हुए हैं। बारह महिने इन डण्डोंके प्रधि अर्थात् बाहरकी लकडियां हैं। पर यह चक्र नेमि अर्थात् गतिरहित होते हुए भी अपने स्थान पर ही घूमता रहता है। तथापि कभी न टूटनेवाला तथा हमेशा घूमते रहनेवाला मायारूपी यह अक्षय काल-चक्र हे अश्विनी देवो! तुम्हारे द्वारा चलाया जाकर इस लोक और परलोक दोनों लोकों-को व्यापता है अर्थात् इस कालचक्रसे अप्रभावित कोई भी लोक नहीं है ॥ ६४ ॥

एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं प्रधिषण्णाभिमेकाक्षममृतस्य धारणम्।
यस्मिन्देवा अधि विश्वे विषक्तास्तावश्विनौ मुञ्चतं मा विषीदतम् ॥६५॥

(मेषादि राशिरूपी) बारह आरे (ऋतुरूपी) छः धुरे (वर्षरूपी) एक अक्षवाला तथा अमृतको धारण करनेवाला एक चक्र है, देवगण भी जिसमें स्थित हैं, तुम दुःखी मुझे उस कालचक्रसे मुक्त करो ॥ ६५ ॥

अश्विनाविन्द्रममृतं वृत्तभूयौ निरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी।
भित्त्वा गिरिमश्विनौ गामुदाचरन्तौ तद्वृष्टमह्ना प्रथिना बलस्य ॥६६॥

हे अश्विनौ! तुम सदाचारी हो, तुम अपने यशसे इन्द्र, अमृत और जलोंको भी तिरस्कृत करते हो, पर्वतको फोडकर तुम सानन्द पृथ्वी पर घूमते हो तथा आनन्द और बलकी वर्षा करते हो ॥ ६६ ॥

युवां दिशो जनयथो दशाग्रे समानं मूर्ध्नि रथया वियन्ति।
तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ॥ ६७ ॥

हे अश्विनौ! सृष्टिके आरंभमें सर्वप्रथम दसों दिशायें तुम्हींने निर्माण कीं। इसके बाद रथसे जानेवाले तथा सबके लिए समान रूपसे दीखनेवाले सूर्य व उसके घूमनेके लिए अनेक मार्गों अर्थात् आकाशोंको बनाया। सूर्यकी गतिको ध्यानमें रखकर ऋषिगण यथोचित काम करते हैं, उसी प्रकार देव तथा मनुष्य अपने अपने अधिकारके अनुसार पृथ्वी अर्थात् सुखोंका उपभोग करते हैं ॥ ६७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

युवां वर्णान्विकुरुथो विश्वरूपांस्तेऽधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ॥ ६८ ॥

तुमने नाना प्रकारके रूप व वर्णवाले पदार्थ उपजाये हैं और उन्हींमें सारे भुवन रहते हैं ! वे तेजस्वी पदार्थ आपके पीछे पीछे चलते हैं और देवता, मनुष्य अपने अधिकारानुसार इस पृथ्वी अर्थात् सुखको भोगते हैं ॥ ६८ ॥

तौ नासत्यावश्विनावामहे वां स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य ।
तौ नासत्यावमृतावृतावृधावृते देवास्तत्प्रपदेन सूते ॥ ६९ ॥

हे नासत्यके नामसे प्रसिद्ध दोनों अश्विनीकुमार ! मैं तुम्हारी तथा तुम जो आकाशरूप ब्रह्मसे उत्पन्न ब्रह्माण्डकी माला धारण करते हो, उसकी भी पूजा करता हूं । आप अमर हैं और अमृत तथा सत्यकी वृद्धि करनेवाले हैं, आपकी कृपाके बिना देव भी विषयोंका उपभोग नहीं कर सकते ॥ ६९ ॥

मुखेन गर्भं लभतां युवानौ गतासुरेतत्प्रपदेन सूते ।
सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भस्तावश्विनौ मुंचथो जीवसे गाः ॥ ७० ॥

सर्व प्रथम युवा स्त्री और पुरुष मुखके द्वारा अन्नके रूपमें गर्भको प्राप्त करते हैं (अन्न खानेसे वह अन्न ही स्त्रीमें रजके रूपमें और पुरुषमें वीर्यके रूपमें परिणित हो जाता है, और यह रज और वीर्य ही स्त्रीमें गर्भका कारण होता है। अतः युवा स्त्री पुरुष मानों अन्नके रूपमें गर्भको ही अपने अन्दर स्थापित करते हैं) गर्भाधानके बाद यह अचेतन देह या शरीर माताकी योनिसे प्रसूत होता है (शरीरमें चैतन्यता आत्माके कारण है, पर शरीर स्वयंमें अचेतन है) वह गर्भ प्रसूत होते ही माताको खाने लगता है अर्थात् दूध पीने लगता है (मातृत्व दूधका प्रतीक है, बिना माता बने स्त्रीके स्तनोंमें दूध नहीं उतरता, अतः यहां माताको खानेका अर्थ दूध पीना ही है), हे अश्विनौ ! गर्भस्थापन, गर्भप्रसूति, गर्भका दुग्धपान आदि सब कार्य आपकी कृपासे ही होता है, अतः जीवनके लिए आप मेरी चक्षु इन्द्रियको उत्तम कीजिए ॥ ७० ॥

एवं तेनाभिष्टुतावश्विनावाजग्मतुः । आहतुश्चैनम् । प्रीतौ स्वः ।
एष तेऽपूपः । अशानैममिति ॥ ७१ ॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच ।
नानृतमूचतुर्भवन्तौ । न त्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुत्सहे अनि-

उपमन्युके इस प्रकार स्तवन करने पर दोनों अश्विनीकुमार (उस स्थानमें) आ गए। और इससे बोले— कि " हम तुम्हारे स्तवन सुनकर प्रसन्न हैं यह पुआ लो और खाओ " ॥७१॥ अश्विनीकुमारों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उपमन्यु बोला, " तुम कभी मिथ्या नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वेद्य गुरव इति ॥७२॥ ततस्तमश्विनावूचतुः। आवाभ्यां पुरस्ताद्भवत उपाध्यायेनैवमेवाभिष्टुताभ्यामपूपः प्रीताभ्यां दत्तः। उपयुक्तश्च स तेनाविवेद्य गुरवे। त्वमपि तथैव कुरुष्व यथा कृतमुपाध्यायेनेति ॥ ७३ ॥ स एवमुक्तः पुनरेव प्रत्युवाचैतौ। प्रत्यनुनये भवन्तावश्विनौ। नोत्सहेऽहमनिवेद्योपाध्यायायोपयोक्तुमिति ॥ ७४ ॥

बोलते, पर मैं गुरुको विना समर्पित किये यह पुआ नहीं खा सकता" ॥ ७२ ॥ तब अश्विनीकुमारोंने उससे कहा, "पहिले तुम्हारे उपाध्यायने हमारा स्तवन किया था। हमारे प्रसन्न होकर ऐसा पुआ देनेपर उन्होंने गुरुको विना समर्पित किये ही खा लिया था। अतः तुम्हारे उपाध्यायने जैसा किया था, तुम भी वैसा ही करो" ॥ ७३ ॥ यह सुनकर उपमन्युने उत्तर दिया– "हे अश्विनीकुमारो! फिर मैं तुमसे विनय करके कहता हूं, कि मैं गुरुको विना समर्पित किये यह पुआ खा नहीं सकूंगा" ॥ ७४ ॥

तमश्विनावाहतुः। प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुवृत्त्या। उपाध्यायस्य ते कार्ष्णायसा दन्ताः। भवतो हिरण्मया भविष्यन्ति। चक्षुष्मांश्च भविष्यसि। श्रेयश्चावाप्स्यसीति ॥ ७५ ॥ स एवमुक्तोऽश्विभ्यां लब्धचक्षुरुपाध्यायसकाशमागम्योपाध्यायमभिवाद्याचचक्षे। स चास्य प्रीतिमानभूत् ॥७६॥ आह चैनम्। यथाश्विनावाहतुस्तथा त्वं श्रेयोऽवाप्स्यसीति। सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्तीति ॥ ७७ ॥ एषा तस्यापि परीक्षोपमन्योः ॥ ७८ ॥

दोनों अश्विनीकुमार उससे बोले, "तुम्हारी ऐसी अटल गुरुभक्ति देखकर हम बडे प्रसन्न हुए। तुम्हारे गुरुके काले लोहेके दांत हैं, पर तुम्हारे सोनेके दांत होंगे (अर्थात् तुझे तेरे गुरुकी अपेक्षा भी अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। तेरे गुरु कर्ममार्गी हैं अतः उन्हें कर्मसे मिलनेवाले फलोंको भोगना ही पडेगा, पर तू ज्ञानमार्गी होनेके कारण सकामकर्मोंसे परे है, अतः कर्मोंके फल तेरा स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे) तुम आंखोंवाले हो जाओगे और तुम मंगल प्राप्त करोगे" ॥ ७५ ॥ अश्विनीकुमारोंके इस प्रकार कहनेसे आंखोंको पाकर उपमन्युने उपाध्यायके सम्मुख आकर नमस्कार किया और प्रारंभसे अन्ततक सम्पूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। उपाध्याय वह सुनकर प्रसन्न हुए ॥ ७६ ॥ और इससे बोले– "अश्विनीकुमारोंने जैसा कहा है, उसी प्रकार तुमको मंगल प्राप्त होगा, सम्पूर्ण वेद तुम पर प्रकाशित होंगे" ॥ ७७ ॥ गुरुभक्त उपमन्युकी यह परीक्षा हुई ॥ ७८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदस्य धौम्यस्य वेदो नाम ॥ ७९ ॥ तमुपाध्यायः संदिदेश । वत्स वेद इहास्यताम्। भवता मद्गृहे कंचित्कालं शुश्रूषमाणेन भवितव्यम् । श्रेयस्ते भविष्यतीति ॥ ८० ॥ स तथेत्युक्त्वा गुरुकुले दीर्घकालं गुरुशुश्रूषणपरोऽवसत् । गौरिव नित्यं गुरुषु धूर्षु नियुज्यमानः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादुःखसहः सर्वत्राप्रतिकूलः ॥ ८१ ॥ तस्य महता कालेन गुरुः परितोषं जगाम । तत्परितोषाच्च श्रेयः सर्वज्ञतां चावाप । एषा तस्यापि परीक्षा वेदस्य ॥ ८२ ॥

उसी अयोद धौम्यके तीसरे शिष्यका नाम वेद था ॥ ७९ ॥ उपाध्यायने उसको आज्ञा दी, " वत्स वेद ! तुम यहीं रहो । तुम कुछ दिन मेरे घरमें रहकर गुरु–सेवा करो । तुम्हारा मंगल होगा " ॥ ८० ॥ वेद तथास्तु कहकर बहुकालतक गुरुकुलमें रहकर गुरु–सेवा करने लगा । बैलके समान नित्य नाना तरहके कठिन कठिन कार्यरूपी जुअेमें जुत कर भी अर्थात् भार सहकर भी, शीत, ग्रीष्म, क्षुधा, प्यास आदि सब दुःख सह कर और किसी बातमें प्रतिकूल न होकर उसने बहुत कालतक गुरुसेवा की ॥ ८१ ॥ बहुत कालके पश्चात् उपाध्याय प्रसन्न हुए, उसके प्रसन्न होनेपर वेदने कल्याण और सर्वज्ञता प्राप्त की । इस प्रकार उस वेदकी भी परीक्षा हुई ॥ ८२ ॥

स उपाध्यायेनानुज्ञातः समावृत्तस्तस्माद्गुरुकुलवासाद्गृहाश्रमं प्रत्यपद्यत । तस्यापि स्वगृहे वसतस्त्रयः शिष्या बभूवुः ॥ ८३ ॥ स शिष्यान्न किंचिदुवाच । कर्म वा क्रियतां गुरुशुश्रूषा वेति । दुःखाभिज्ञो हि गुरुकुलवासस्य शिष्यान्परिक्लेशेन योजयितुं नेयेष ॥ ८४ ॥ अथ कस्यचित्कालस्य वेदं ब्राह्मणं जनमेजयः पौष्यश्च क्षत्रियावुपेत्योपाध्यायं

इस प्रकार उपाध्यायसे आज्ञा पाकर समावर्तनके बाद उस गुरुकुलसे लौटकर वेदने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया । उस वेदके गृहस्थाश्रममें रहते हुए उसके भी तीन शिष्य थे ॥ ८३ ॥ वह शिष्योंसे कुछ कहता नहीं था कि " कर्म करो वा गुरुसेवा करो " । क्यों कि वह गुरुकुलमें बसनेका दुःख जानता था, अतः वह अपने शिष्योंको कष्ट देना नहीं चाहता था ॥ ८४ ॥ एक समय जनमेजय और पौष्य इन दो क्षत्रियोंने आकर ब्राह्मण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वरयांचक्रतुः ॥८५॥ स कदाचिद्याज्यकार्येणाभिप्रस्थित उत्तङ्कं नाम शिष्यं नियोजयामास। भो उत्तङ्क यत्किंचिदस्मद्गृहे परिहीयते तदिच्छाम्यहमपरिहीणं भवता क्रियमाणमिति ॥ ८६ ॥

वेदका उपाध्यायके पदके लिए वरण किया ॥ ८५ ॥ एक दिन वेदने याजन कार्यके लिए जानेके समय उत्तङ्क नामक शिष्यको आज्ञा दी, "हे उत्तङ्क! मैं चाहता हूं, कि मेरी अनुपस्थितिमें गृहमें जो अभाव हो, तुम उनको पूरा करो ॥ ८६ ॥

स एवं प्रतिसमादिश्योत्तङ्कं वेदः प्रवासं जगाम ॥ ८७ ॥ अथोत्तङ्को गुरुशुश्रूषुर्गुरुनियोगमनुतिष्ठमानस्तत्र गुरुकुले वसति स्म ॥ ८८ ॥ स वसंस्तत्रोपाध्यायस्त्रीभिः सहिताभिराहूयोक्तः। उपाध्यायिनी ते ऋतुमती। उपाध्यायश्च प्रोषितः। अस्या यथायमृतुर्वन्ध्यो न भवति तथा क्रियताम्। एतद्धि षीदतीति ॥ ८९ ॥ स एवमुक्तस्ताः स्त्रियः प्रत्युवाच। न मया स्त्रीणां वचनादिदमकार्यं कार्यम्। न ह्यहमुपाध्यायेन संदिष्टः। अकार्यमपि त्वया कार्यमिति ॥ ९० ॥

उत्तङ्कको यह आज्ञा देकर वेद प्रवास पर चले गये ॥ ८७ ॥ गुरुसेवामें प्रवीण उत्तङ्क गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए गुरुकुलमें रहने लगा ॥८८॥ उसके वहां रहते हुए एक दिन उपाध्यायके घरकी स्त्रियां एकत्र होकर उत्तङ्कको बुलाकर बोलीं— "उत्तङ्क! तुम्हारे उपाध्यायकी स्त्री ऋतुमती हुई है। तुम्हारे उपाध्याय भी परदेश चले गये हैं। अतः जिससे उनकी ऋतु खाली न जाय, वैसा कार्य तुम करो। क्योंकि वह बडी उदास हुई हैं" ॥ ८९ ॥ उत्तङ्क यह सुनकर उन स्त्रियोंसे बोला, मैं स्त्रियोंकी बात सुनकर ऐसा कुकर्म नहीं कर सकूंगा "तुम (मेरी अनुपस्थितिमें) न करने योग्य कार्यको भी करना" ऐसी आज्ञा उपाध्याय मुझे नहीं दे गए हैं ॥ ९० ॥

तस्य पुनरुपाध्यायः कालान्तरेण गृहानुपजगाम तस्मात्प्रवासात्। स तद्वृत्तं तस्याशेषमुपलभ्य प्रीतिमानभूत् ॥९१॥ उवाच चैनम्। वत्सोत्तङ्क किं ते प्रियं करवाणीति। धर्मतो हि शुश्रूषितोऽस्मि भवता। तेन प्रीतिः परस्परेण नौ संवृद्धा।

कुछ समयके बाद उसके उपाध्याय परदेशसे घर लौट आये। यह सब वृत्तान्त जान कर उत्तंक पर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ९१ ॥ और इससे बोले, "बेटा उत्तंक! तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूं? तुमने धर्मानुसार मेरी सेवा की है। अतः परस्पर हम दोनोंमें प्रीति बढी है

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तदनुजाने भवन्तम्। सर्वामेव सिद्धिं प्राप्स्यसि। गम्यतामिति ॥ ९२ ॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच। किं ते प्रियं करवाणीति। एवं ह्याहुः ॥ ९३ ॥

है। अब तुम्हें मैं अनुमति देता हूं। तुम्हारी संपूर्ण अभिलाषा पूर्ण होगी। तुम घर लौट जाओ" ॥ ९२ ॥ उपाध्यायके ऐसा कहने पर उत्तंक बोला, "मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं? कहा है" ॥ ९३ ॥

यश्चाधर्मेण विब्रूयाद्यश्चाधर्मेण पृच्छति।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ९४ ॥

जो अधर्मसे बोलता है और जो अधर्मपूर्वक पूछता है उन दोनोंमेंसे एक मर जाता है और द्वेषभावको प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

सोऽहमनुज्ञातो भवता इच्छामीष्टं तं गुर्वर्थमुपहर्तुमिति ॥९५॥ तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच। वत्सोत्तङ्क उष्यतां तावदिति ॥ ९६ ॥ स कदाचित्तमुपाध्यायमाहोत्तंकः। आज्ञापयतु भवान्। किं ते प्रियमुपहरामि गुर्वर्थमिति ॥ ९७ ॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच। वत्सोत्तंक बहुशो मां चोदयसि गुर्वर्थमुपहरेयमिति। तद्गच्छ। एनां प्रविश्योपाध्यायिनीं पृच्छ किमुपहरामीति। एषा यद्ब्रवीति तदुपहरस्वेति ॥ ९८ ॥

अतः आपकी आज्ञा पाकर मैं आपके इच्छित पदार्थको लानेकी इच्छा करता हूं ॥ ९५ ॥ उसके इस प्रकार कहने पर उपाध्याय बोले, "वत्स उत्तङ्क! तब तुम और कुछ दिन मेरे घर रहो" ॥ ९६ ॥ कुछ दिनोंके पश्चात् उत्तङ्क उपाध्यायसे बोला– "आप आज्ञा कीजिये। मैं आपकी गुरुदक्षिणाके लिए कौनसी प्रिय चीज लाऊं" ॥ ९७ ॥ उपाध्याय उत्तङ्कसे बोले, "वत्स उत्तङ्क! तुम बार बार मुझे कह रहे हो गुरुदक्षिणा दूंगा। सो तुम जाओ। गृहके भीतर जाकर उपाध्यायनीसे पूछो, कि गुरुदक्षिणाके निमित्त क्या लाऊं? वह जो कहें वही ले आओ" ॥ ९८ ॥

स एवमुक्त उपाध्यायेनोपाध्यायिनीमपृच्छत्। भवत्युपाध्यायेनास्म्यनुज्ञातो गृहं गन्तुम्। तदिच्छामीष्टं ते गुर्वर्थमुपहृत्यानृणो गन्तुम्। तदाज्ञापयतु भवती। किमुपहरामि गुर्वर्थमिति ॥ ९९ ॥ सैवमुक्तोपाध्यायिन्युत्तङ्कं प्रत्युवाच।

उपाध्यायके ऐसा कहने पर उत्तंकने उपाध्यायनीसे पूछा– "भवति! उपाध्यायने मुझे घर जानेकी आज्ञा दी है। पर मैं आपकी इच्छित गुरुदक्षिणा लाकर गुरुऋणसे मुक्त होकर घर जाना चाहता हूं। अतः आप आज्ञा कीजिये, कि गुरुदक्षिणाके निमित्त क्या

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गच्छ पौष्यं राजानम्। भिक्षस्व तस्य क्षत्रियया पिनद्धे कुण्डले। ते आनयस्व। इतश्चतुर्थेऽहनि पुण्यकं भविता। ताभ्यामाबद्धाभ्यां ब्राह्मणान्परिवेष्टुमिच्छामि। शोभमाना यथा ताभ्यां कुण्डलाभ्यां तस्मिन्नहनि संपादयस्व। श्रेयो हि ते स्यात्क्षणं कुर्वत इति॥ १००॥ स एवमुक्त उपाध्यायिन्या प्रातिष्ठतोत्तङ्कः। स पथि गच्छन्नपश्यदृषभमतिप्रमाणं तमधिरूढं च पुरुषमतिप्रमाणमेव॥ १०१॥ स पुरुष उत्तङ्कमभ्यभाषत। उत्तङ्कैतत्पुरीषमस्य ऋषभस्य भक्षयस्वेति॥१०२॥

लाऊं ?" ॥ ९९ ॥ उत्तंकके ऐसी प्रार्थना करने पर उपाध्यायनी बोली– "हे उत्तंक ! राजा पौष्यके निकट जाओ। उसकी स्त्रीके द्वारा धारण किये हुए दोनों कुण्डल मांगो और उन्हें ले लाओ। आजसे चौथे दिन पुण्यक नामक व्रतका उत्सव होगा। मैं (उस दिन) उन दोनों कुण्डलोंसे सजधज कर ब्राह्मणोंको अन्न परोसना चाहती हूं। अतः तुम ऐसा करो कि मैं उस दिन उन कुण्डलोंसे सुशोभित हो सकूं। ऐसा करने अर्थात् मेरी बातको पूरा करनेवाले तुम्हारा मंगल होगा ॥ १०० ॥ उपाध्यायनीके ऐसा कहने पर उत्तङ्क चल दिया। चलते हुए रास्तेमें उसने एक बृहदाकारवाले बैलको और उस पर चढे हुए एक बृहदाकारवाले पुरुषको देखा ॥ १०१ ॥ उस पुरुषने उत्तङ्कसे कहा– "ऐ उत्तङ्क ! इस बैलका यह गोबर खाओ ॥ १०२ ॥

स एवमुक्तो नैच्छत्॥१०३॥ तमाह पुरुषो भूयः। भक्षयस्वोत्तङ्क। मा विचारय। उपाध्यायेनापि ते भक्षितं पूर्वमिति॥ १०४॥ स एवमुक्तो बाढमित्युक्त्वा तदा तदृषभस्य पुरीषं मूत्रं च भक्षयित्वोत्तङ्कः प्रतस्थे यत्र स क्षत्रियः पौष्यः॥ १०५॥ तमुपेत्यापश्यदुत्तङ्क आसीनम्। स तमुपेत्याशीर्भिरभिनन्द्योवाच। अर्थी भवन्तमुपगतोऽस्मीति॥ १०६॥

यह सुनकर उत्तङ्कने गोबर खानेकी इच्छा नहीं की ॥ १०३ ॥ इस पर उस पुरुषने फिर उससे कहा– "उत्तङ्क ! खा जाओ। सोच विचार मत करो। पहिले तुम्हारे उपाध्यायने भी यह खाया था।" ॥ १०४ ॥ उसके इस प्रकार कहने पर, "अच्छा" कह कर उत्तङ्क बैलका गोबर और मूत्र खा पीकरके आगे चल दिया, जहां वह क्षत्रिय पौष्य था ॥१०५॥ उत्तङ्कने उसके निकट जाकर उसको बैठे हुए देखा। उत्तङ्क उसके पास जाकर आशीर्वादोंसे अभिनन्दन करके बोला– "मैं कुछ भिक्षाके निमित्त याचक होकर आपके पास आया हूं ॥ १०६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स एनमभिवाद्योवाच । भगवन्पौष्यः खल्वहम् । किं करवाणीति ॥ १०७ ॥ तमुवाचोत्तङ्कः । गुर्वर्थे कुण्डलाभ्यामर्थ्यागतोऽस्मीति ये ते क्षत्रियया पिनद्धे कुण्डले ते भवान्दातुमर्हतीति ॥ १०८ ॥ तं पौष्यः प्रत्युवाच । प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रिया याच्यतामिति ॥ १०९ ॥ स तेनैवमुक्तः प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रियां नापश्यत् ॥ ११० ॥

पौष्यने इस उत्तङ्कको प्रणाम कर कहा, "हे भगवन् ! मैं पौष्य हूं । कहिये क्या करूं" ॥ १०७ ॥ उत्तङ्क उससे बोला, "मैं गुरुदक्षिणा देनेके लिये दो कुण्डल मांगने आया हूं । आपकी धर्मपत्नीके द्वारा पहने हुए उन दोनों कुण्डलोंको आप देनेमें समर्थ हैं ॥१०८॥ पौष्य उससे बोला, "भीतर अन्तःपुरमें जाकर मेरी स्त्रीसे मांगिये" ॥१०९॥ इस प्रकार पौष्यके द्वारा कहे जाने पर वह भीतर गया पर वहां उसने पौष्यकी स्त्रीको नहीं देखा ॥ ११० ॥

स पौष्यं पुनरुवाच । न युक्तं भवता वयमनृतेनोपचरितुम् । न हि ते क्षत्रियान्तःपुरे संनिहिता । नैनां पश्यामीति ॥१११॥ स एवमुक्तः पौष्यस्तं प्रत्युवाच । संप्रति भवानुच्छिष्टः । स्मर तावत् । न हि सा क्षत्रिया उच्छिष्टेनाशुचिना वा शक्या द्रष्टुम् । पतिव्रतात्वादेषा नाशुचेर्दर्शनमुपैतीति ॥ ११२ ॥ अथैवमुक्त उत्तङ्कः स्मृत्वोवाच । अस्ति खलु मयोच्छिष्टेनोपस्पृष्टं शीघ्रं गच्छता चेति ॥ ११३ ॥ तं पौष्यः प्रत्युवाच । एतत्तदेवं हि । न गच्छतोपस्पृष्टं भवति न स्थितेनेति ॥११४॥

तब वह पौष्यके निकट लौट कर फिर बोला, "मुझे इस प्रकार झूठ मूठ ठगना आपके लिए उचित नहीं है । भीतर अन्तःपुरमें आपकी धर्मपत्नी नहीं हैं । मैं उन्हें नहीं देखता ॥१११॥ इस प्रकार उसके कहने पर पौष्य बोला– "भगवन् ! इस समय आप उच्छिष्ट हैं स्मरण कीजिए । उच्छिष्टसे अपवित्र मनुष्य द्वारा वह क्षत्रिया नहीं देखी जा सकती । वह पतिव्रता है, अतः वह अशुचि जनको दिखाई नहीं देती" ॥११२॥ पौष्यके ऐसा कहने पर उत्तङ्कने स्मरण कर कहा,-- "हां मैंने जल्दीमें आते समय उच्छिष्टका स्पर्श किया था ॥ ११३ ॥ पौष्य उससे बोले "यही बात है । चलते हुए वा खडे होकर आचमन करना ठीक नहीं है ।" ॥ ११४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथोत्तङ्कस्तथेत्युक्त्वा प्राङ्मुख उपविश्य सुप्रक्षालितपाणिपादवदनोऽशब्दाभिर्हृदयंगमाभिरद्भिरुपस्पृश्य त्रिः पीत्वा द्विः परिमृज्य खान्यद्भिरुपस्पृश्यान्तःपुरं प्रविश्य तां क्षत्रियामपश्यत् ॥ ११५ ॥ सा च दृष्ट्वैवोत्तंकमभ्युत्थायाभिवाद्योवाच। स्वागतं ते भगवन्। आज्ञापय किं करवाणीति ॥११६॥ स तामुवाच। एते कुण्डले गुर्वर्थं मे भिक्षिते दातुमर्हसीति ॥ ११७ ॥ सा प्रीता तेन तस्य सद्भावेन पात्रमयमनतिक्रमणीयश्चेति मत्वा ते कुण्डले अवमुच्यास्मै प्रायच्छत् ॥ ११८ ॥

उत्तङ्कने "ठीक है" यह कह कर पूर्व ओर मुंह करके बैठकर हाथ, पांव, मुंह धोकर निःशब्द होकर तीन बार हृदयतक पहुंचने योग्य जल तीनबार पीकर दोबार मलकर और इन्द्रियोंको जलसे छू करके अन्तःपुरमें प्रवेश कर वहां क्षत्राणीको देखा ॥ ११५ ॥ वह (पौष्यकी स्त्री) उत्तङ्कको देख करके उठकर नमस्कार करके बोली, "भगवन्! आपका स्वागत हो। आज्ञा कीजिये, क्या करूं?" ॥ ११६ ॥ उत्तङ्क उससे बोला, "गुरुदक्षिणा देनेके लिए मैं आपके दोनों कुण्डल मांगता हूं, मुझे दान दें।" ॥ ११७ ॥ उसकी इस सद्भावनासे पौष्यपत्नी अति प्रसन्न हुई और "यह सुपात्र है, इसकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करनी चाहिये" ऐसा विचार कर कानोंसे कुण्डल खोलकर उसको दे दिये ॥ ११८ ॥

आह चैनम्। एते कुण्डले तक्षको नागराजः प्रार्थयति। अप्रमत्तो नेतुमर्हसीति ॥ ११९ ॥ स एवमुक्तस्तां क्षत्रियां प्रत्युवाच। भवति सुनिर्वृता भव। न मां शक्तस्तक्षको नागराजो धर्षयितुमिति ॥ १२० ॥ स एवमुक्त्वा तां क्षत्रियामामन्त्र्य पौष्यसकाशमागच्छत् ॥ १२१ ॥ स तं दृष्ट्वोवाच। भोः पौष्य प्रीतोऽस्मीति ॥ १२२ ॥

और इससे कि कहा– "नागराज तक्षक इन कुण्डलोंको बहुत चाहते हैं। अतः बडी सावधानतासे ले जाइये।" ॥ ११९ ॥ यह सुनकर उत्तङ्क उस क्षत्रियासे बोला, "भगवति! निश्चिन्त रहिए। नागराज तक्षक मुझे हरानेमें समर्थ नहीं है ॥ १२० ॥ वह उत्तंक यह कर पौष्यकी स्त्रीसे विदा होकर पौष्यके पास आ पहुंचा ॥ १२१ ॥ वह उसे (पौष्यको) देखकर बोला कि, "हे पौष्य! मैं बहुत प्रसन्न हूँ" ॥ १२२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं पौष्यः प्रत्युवाच। भगवंश्चिरस्य पात्रमासाद्यते। भवांश्च गुणवानतिथिः। तत्करिष्ये श्राद्धम्। क्षणः क्रियतामिति ॥१२३॥ तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच। कृतक्षण एवास्मि। शीघ्रमिच्छामि यथोपपन्नमन्नमुपहृतं भवतेति ॥१२४॥ स तथेत्युक्त्वा यथोपपन्नेनान्नेनैनं भोजयामास ॥१२५॥ अथोत्तङ्कः शीतमन्नं सकेशं दृष्ट्वा अशुच्येतदिति मत्वा पौष्यमुवाच। यस्मान्मे अशुच्यन्नं ददासि तस्मादन्धो भविष्यसीति ॥१२६॥

पौष्यने उससे कहा, "भगवन्! सत्पात्र बहुत कालके बाद मिलते हैं आप भी सर्व गुणशील अतिथि उपस्थित हैं। अतः श्राद्ध करना चाहता हूं। आप क्षण भर ठहरिये।" ॥ १२३ ॥ उत्तङ्क उससे बोला, "थोडी देरके लिए ठहर सकता हूँ। जो अन्न उपस्थित हो आप वही शीघ्र लाइये यही मैं चाहता हूँ" ॥ १२४॥ पौष्यने "ठीक है" यह कह कह जो अन्न उपस्थित था, वही लाकर उन्हें खिलाया ॥ १२५ ॥ उत्तङ्कने केशयुक्त और शीतल अन्न देखकर "यह अपवित्र है" ऐसा समझ करके पौष्यसे कहा– "क्योंकि तुमने मुझको अपवित्र अन्न दिया है, अतः तुम अन्धे हो जाओगे ॥ १२६ ॥

तं पौष्यः प्रत्युवाच। यस्मात्त्वमप्यदुष्टमन्नं दूषयसि तस्मादनपत्यो भविष्यसीति ॥१२७॥ सोऽथ पौष्यस्तस्याशुचिभावमन्नस्यागमयामास ॥१२८॥ अथ तदन्नं मुक्तकेश्या स्त्रियोपहृतं सकेशमशुचि मत्वोत्तङ्कं प्रसादयामास। भगवन्नज्ञानादेतदन्नं सकेशमुपहृतं शीतं च। तत्क्षामये भवन्तम्। न भवेयमन्ध इति ॥१२९॥ तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच। न मृषा ब्रवीमि। भूत्वा त्वमन्धो नचिरादनन्धो भविष्यसीति। ममापि शापो न भवेद्भवता दत्त इति ॥१३०॥

पौष्य उससे बोला "क्योंकि तुम दोषसे रहित होने पर भी अन्नको दोष देते हो, अतः तुम्हारे सन्तान नहीं होगी ॥ १२७ ॥ इसके बाद पौष्यने उसकी परीक्षा कर उसकी अपवित्रता प्रत्यक्ष की ॥ १२८ ॥ तब अन्नको खोले हुए बालवाली स्त्रीके द्वारा लाया हुआ होनेके कारण केशयुक्त और अपवित्र जानकर राजा पौष्य उत्तङ्क ऋषिको प्रसन्न करने लगे "भगवन्! अज्ञानसे ही यह शीतल और केशयुक्त अन्न लाया गया है। अब आपसे क्षमा मांगता हूं। ताकि मुझे अन्धा होना न पडे" ॥ १२९ ॥ उत्तङ्क उससे बोला। "मेरी बात मिथ्या नहीं होती। आप अन्धे होकर फिर अति शीघ्र नेत्रवाले हो जाएंगे। आपने मुझको जो शाप दिया है, वह भी न फलने पावे।" ॥ १३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं पौष्यः प्रत्युवाच। नाहं शक्तः शापं प्रत्यादातुम्। न हि मे मन्युरद्याप्युपशमं गच्छति। किं चैतद्भवता न ज्ञायते यथा ॥ १३१ ॥

पौष्यने उसे उत्तर दिया "शाप लौटानेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मेरा क्रोध अभीतक शांत नहीं हुआ है। क्या आप नहीं जानते, कि ॥ १३१ ॥

नावनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य वाचि क्षुरो निहितस्तीक्ष्णधारः।
विपरीतमेतदुभयं क्षत्रियस्य वाङ्नावनीती हृदयं तीक्ष्णधारम् ॥ १३२ ॥ इति।

ब्राह्मणका हृदय मक्खनके समान होता है, (थोडे ही में दयासे पिघलता है) और उनकी वाणीमें बहुत तेज धारवाला छुरा रखा हुआ होता है (अर्थात् उनकी वाणी बडी तीक्ष्ण होती है;) पर क्षत्रियोंमें यह दोनों ही बातें विपरीत होती हैं अर्थात् वाणी उनकी मक्खन—तुल्य और हृदय तेज धारवाले उस्तुरेके सदृश होता है ॥ १३२ ॥

तदेवं गते न शक्तोऽहं तीक्ष्णहृदयत्वात्तं शापमन्यथा कर्तुम्। गम्यतामिति ॥१३३॥ तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच। भवताहमन्नस्याशुचिभावमागमय्य प्रत्यनुनीतः। प्राक्च तेऽभिहितम् यस्माददुष्टमन्नं दूषयसि तस्मादनपत्यो भविष्यसीति। दुष्टे चान्ने नैष मम शापो भविष्यतीति ॥ १३४ ॥ साधयामस्तावदित्युक्त्वा प्रातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुण्डले गृहीत्वा ॥ १३५ ॥ सोऽपश्यत्पथि नग्नं श्रमणमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च अथोत्तङ्कस्ते कुण्डले भूमौ निक्षिप्योदकार्थं प्रचक्रमे ॥ १३६ ॥

अतः इस कारण तीक्ष्ण हृदयवाला होनेके कारण मैं उस शापको लौटा नहीं सकूंगा। आप जाइये।" ॥ १३३ ॥ उत्तङ्क बोला, "आपने अन्नकी अपवित्रता प्रत्यक्ष करके मुझसे प्रार्थना की है। पहिले आपने कहा था, कि चूंकि तुम "दोषरहित अन्न पर अपवित्र होनेका दोष लगाते हो, अतः तुम्हारे सन्तान नहीं होगी।" अब जब अन्नमें दोष प्रत्यक्ष हो गया है, तब फिर वह शाप मुझ पर कार्य नहीं करेगा" ॥ १३४ ॥ "अब मैं चलता हूं," यह कह कर उत्तङ्क दोनों कुण्डल लेकर चला गया ॥ १३५ ॥ उसने रास्तेमें क्षणमें दीखनेवाले और क्षणमें न दीखनेवाले एक नंगे संन्यासीको आते हुए देखा। इसके बाद उत्तङ्क धरतीपर दोनों कुण्डल रखकर पेशाब करने लगा ॥ १३६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतस्मिन्नन्तरे स श्रमणस्त्वरमाण उपसृत्य ते कुण्डले गृहीत्वा प्राद्रवत् । तमुत्तङ्कोऽभिसृत्य जग्राह । स तद्रूपं विहाय तक्षकरूपं कृत्वा सहसा धरण्यां विवृतं महाबिलं विवेश ॥ १३७॥ प्रविश्य च नागलोकं स्वभवनमगच्छत् । तमुत्तङ्कोऽन्वाविवेश तेनैव बिलेन । प्रविश्य च नागानस्तुवदेभिः श्लोकैः ॥ १३८ ॥

इसी बीच वह संन्यासी शीघ्रतासे आकर दोनों कुण्डल लेकर भाग गया। उत्तंकने दौडकर उसको पकड लिया । तब वह संन्यासीका रूप छोडकर तथा तक्षकका रूप धरकर अचानक पृथ्वीके एक चौडे बिलके भीतर जा घुसा ॥ १३७ ॥ और नागलोकमें प्रविष्ट होकर अपने घरमें जा पहुंचा । तब उत्तंक भी उसी बिलसे उसके पीछे प्रविष्ट हुआ । और घुसकर उसने इन श्लोकोंसे नागोंकी स्तुति की ॥ १३८ ॥

य ऐरावतराजानः सर्पाः समितिशोभनाः ।
वर्षन्त इव जीमूताः सविद्युत्पवनेरिताः ॥ १३९ ॥

ऐरावत जिन सर्पोंके राजा हैं, जो रणभूमिमें सुशोभित होते हैं और जो बिजली तथा पवनसे प्रेरित होकर जल बरसानेवाले मेघोंके समान अस्त्र वर्षाने लगते हैं ॥ १३९ ॥

सुरूपाश्च विरूपाश्च तथा कल्माषकुण्डलाः ।
आदित्यवन्नाकपृष्ठे रेजुरैरावतोद्भवाः ॥ १४० ॥

ऐसे सुन्दर और विचित्र रूपवाले कुण्डलधारी ऐरावतवंशी नागगण देवलोकमें सूर्यकी भांति प्रकाशित होते हैं ॥ १४० ॥

बहूनि नागवर्त्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे ।
इच्छेत्कोऽर्कांशुसेनायां चर्तुमैरावतं विना ॥ १४१ ॥

गंगाके उत्तरी किनारे सर्पोंके अनेक मार्ग हैं । ऐरावतके विना कौन जन सूर्य किरणरूपी सेनामें घूमनेकी इच्छा करता है ? ॥ १४१ ॥

शतान्यशीतिरष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः ।
सर्पाणां प्रग्रहा यान्ति धृतराष्ट्रो यदेजति ॥ १४२ ॥

जब धृतराष्ट्र सांप चलता है, तब उसके पीछे बीस हजार अस्सी सौ प्रग्रह नाग दल बांधकर चलते है ॥ १४२ ॥

ये चैनमुपसर्पन्ति ये च दूरंपरं गताः ।
अहमैरावतज्येष्ठभ्रातृभ्योऽकरवं नमः ॥ १४३ ॥

ऐरावतके उन सब ज्येष्ठ भाइयोंको भी, जो धृतराष्ट्रके आगे पीछे चलते हैं, मैं नमस्कार करता हूं ॥ १४३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चाभवत्सदा।
तं काद्रवेयमस्तौषं कुण्डलार्थाय तक्षकम् ॥ १४४ ॥

जिसका निवास पहिले कुरुक्षेत्र और खाण्डवप्रस्थमें होता था, उन कद्रुके पुत्र तक्षककी मैं कुण्डल पानेके निमित्त स्तुति करता हूं ॥ १४४ ॥

तक्षकश्चाश्वसेनश्च नित्यं सहचरावुभौ।
कुरुक्षेत्रे निवसतां नदीमिक्षुमतीमनु ॥ १४५ ॥

तक्षक और अश्वसेन यह दोनों नित्यके साथी होकर कुरुक्षेत्रमें इक्षुमती-नदीके तट पर रहते हैं ॥ १४५ ॥

जघन्यजस्तक्षकस्य श्रुतसेनेति यः श्रुतः।
अवसद्यो महद्द्युम्नि प्रार्थयन्नागमुख्यताम्।
करवाणि सदा चाहं नमस्तस्मै महात्मने ॥ १४६ ॥

तक्षकके छोटा भाई जो श्रुतसेनाके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा महाद्युम्नतीर्थ पर नागोंमें श्रेष्ठत्व प्राप्त करनेके लिए प्रार्थना करते हुए जो निवास करते थे, उन महात्माको भी मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ १४६ ॥

एवं स्तुवन्नपि नागान्यदा ते कुण्डले नालभत्तथापश्यत्स्त्रियौ तन्त्रे अधिरोप्य पटं वयन्त्यौ ॥ १४७ ॥ तस्मिंश्च तन्त्रे कृष्णाः सिताश्च तन्तवः। चक्रं चापश्यद्षड्भिः कुमारैः परिवर्त्यमानम्। पुरुषं चापश्यद्दर्शनीयम् ॥ १४८ ॥ स तान्सर्वांस्तुष्टाव एभिर्मन्त्रवादश्लोकैः ॥ १४९ ॥

जब नागोंकी स्तुति करने पर भी कुण्डल न मिले, तब उन्होंने दो स्त्रियोंको खड्डी पर चढाकर वस्त्र बनाते हुए देखा ॥ १४७ ॥ उस खड्डी पर सफेद और काले रंगके धागे लगे हुए थे। और छः बालकोंके द्वारा घुमाये जाते हुए एक चक्रको देखा। एक सुन्दर पुरुष भी देखा ॥ १४८ ॥ उत्तंकने इन प्रशंसापरक श्लोकोंसे उनकी स्तुति की ॥ १४९ ॥

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानि मध्ये षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेऽस्मिन्।
चक्रे चतुर्विंशतिपर्वयोगे षडयत्कुमाराः परिवर्तयन्ति ॥ १५० ॥

चौबीस पर्वयुक्त तथा हमेशा चलनेवाले इस सनातन चक्रमें तीन सौ साठ अरे लगे हुए हैं और छः कुमार इसको घुमा रहे हैं ॥ १५० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तन्त्रं चेदं विश्वरूपं युवत्यौ वयतस्तन्तून्सततं वर्तयन्त्यौ।
कृष्णान्सितांश्चैव विवर्तयन्त्यौ भूतान्यजस्रं भुवनानि चैव ॥ १५१ ॥

दो युवतियां अनेकों रूपोंवाले इस चक्रको घुमाती हुई इसपर हमेशा काले और सफेद धागोंको बुनती रहती है और सम्पूर्ण भुवनोंको और भूतोंको हमेशा घुमाती रहती हैं ॥ १५१ ॥

वज्रस्य भर्ता भुवनस्य गोप्ता वृत्रस्य हन्ता नमुचेर्निहन्ता।
कृष्णे वसानो वसने महात्मा सत्यानृते यो विविनक्ति लोके ॥ १५२ ॥

वज्रधारी, जगत्का रक्षक, नमुचिका वध करनेवाला और वृत्रासुरको मारनेवाला तथा दो काले कपडोंको पहने हुआ एक महात्मा है, जो लोगोंमें सत्य और असत्यको पृथक् पृथक् करता है ॥ १५२ ॥

यो वाजिनं गर्भमपां पुराणं वैश्वानरं वाहनमभ्युपेतः।
नमः सदास्मै जगदीश्वराय लोकत्रयेशाय पुरंदराय ॥ १५३ ॥

जिन्होंने वैश्वानरके समान तेजोवान् समृद्ध जलसे उत्पन्न प्राचीन घोडेको प्राप्त किया है, उन त्रिलोकीनाथ विश्वेश्वर पुरन्दर इन्द्रको सदा नमस्कार हो ॥ १५३ ॥

ततः स एनं पुरुषः प्राह। प्रीतोऽस्मि तेऽहमनेन स्तोत्रेण। किं ते प्रियं करवाणीति ॥ १५४ ॥ स तमुवाच। नागा मे वशमीयुरिति ॥१५५॥ स एनं पुरुषः पुनरुवाच। एतमश्वमपाने धमस्वेति ॥ १५६ ॥ स तमश्वमपानेऽधमत्। अथाश्वाद्धम्यमानात्सर्वस्रोतोभ्यः सधूमा अर्चिषोऽग्नेर्निष्पेतुः ॥ १५७ ॥

(उत्तङ्कके ऐसे स्तवन करनेपर) वह पुरुष उससे बोला– तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं प्रसन्न हुआ हूं। तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूं ॥ १५४ ॥ उत्तङ्क उससे बोला, "संपूर्ण सर्प मेरे वशमें आजावें" ॥ १५५ ॥ उस पुरुषने फिर उत्तङ्कसे कहा कि, "इस घोडेके मलद्वारमें फूंको" ॥ १५६ ॥ उत्तंकने (उस पुरुषकी आज्ञासे) घोडेके मलद्वारमें फूंक मारी; इससे फूंकनेपर घोडेके शरीरके सब छिद्रोंसे धुंआसहित अग्निकी ज्वालायें निकलने लगीं ॥ १५७ ॥

ताभिर्नागलोको धूपितः ॥ १५८ ॥ अथ ससंभ्रमस्तक्षकोऽग्नितेजोभयविषण्णस्ते कुण्डले गृहीत्वा सहसा स्वभवना-

उन अग्नि–ज्वालाओंसे नागलोक गर्म हो गया ॥ १५८ ॥ तब संभ्रम सहित तक्षकने अग्निके तेजके भयसे दुःखी होकर उन दोनों कुण्डलोंके साथ अपने गृहसे एकाएक निकल कर उत्तंकसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निष्क्रम्योत्तङ्कमुवाच। एते कुण्डले प्रतिगृह्णातु भवानिति ॥ १५९ ॥ स ते प्रतिजग्राहोत्तङ्कः। कुण्डले प्रतिगृह्याचिन्तयत्। अद्य तत्पुण्यकमुपाध्यायिन्याः। दूरं चाहमभ्यागतः। कथं नु खलु संभावयेयमिति ॥ १६० ॥ तत एनं चिन्तयानमेव स पुरुष उवाच। उत्तङ्क एनमश्वमधिरोह। एष त्वां क्षणादेवोपाध्यायकुलं प्रापयिष्यति ॥ १६१ ॥

कहा, "आप इन दोनों कुण्डलोंको लें लें" ॥ १५९ ॥ उत्तंकने कुण्डलोंको ले लिया। कुण्डलोंको लेकर उत्तंक सोचने लगा, "आज ही तो उपाध्यायिनीका पुण्यक-व्रत होनेवाला है। मैं भी बडी दूर आ गया हूं। कैसे (उचित समय पर वहां पहुंच करके) कार्य पूरा कर सकूंगा" ॥ १६० ॥ तब ऐसे सोचमें पडे हुए उस उत्तंकसे वह पुरुष बोला— "उत्तंक! इस घोडे पर चढ जाओ। यह क्षणभरमें ही तुम्हें गुरुके घर पहुंचा देगा" ॥ १६१ ॥

स तथेत्युक्त्वा तमश्वमधिरुह्य प्रत्याजगामोपाध्यायकुलम्। उपाध्यायिनी च स्नाता केशानावपयन्त्युपविष्टोत्तङ्को नागच्छतीति शापायास्य मनो दधे ॥ १६२ ॥ अथोत्तङ्कः प्रविश्य उपाध्यायिनीमभ्यवादयत्। ते चास्यै कुंडले प्रायच्छत् ॥ १६३ ॥ सा चैनं प्रत्युवाच। उत्तङ्क देशे कालेऽभ्यागतः। स्वागतं ते वत्स। मनागसि मया न शप्तः। श्रेयस्तवोपस्थितम्। सिद्धिमाप्नुहीति ॥ १६४ ॥ अथोत्तङ्क उपाध्यायमभ्यवादयत्। तमुपाध्यायः प्रत्युवाच। वत्सोत्तङ्क स्वागतं ते। किं चिरं कृतमिति ॥ १६५ ॥

उत्तंक "तथास्तु" कहके उस घोडेपर चढकर उपाध्यायकुलमें लौट आया। इधर उपाध्यायिनी स्नान करके बैठ कर केश साफ करती हुई "उत्तंक अभीतक नहीं आया" यह सोचकर शाप देनेका विचार कर रही थी ॥ १६२ ॥ इतनेमें ही उत्तंकने प्रवेश करके उस उपाध्यायिनीको प्रणाम किया। और उसे दोनों कुण्डल दे दिये ॥ १६३ ॥ उपाध्यायिनी उत्तंकसे बोली, "हे उत्तंक! तुम ठीक समय और ठीक स्थानपर आ गए हो। हे वत्स! तुम्हारा स्वागत हो। अच्छा हुआ, कि मैंने निरपराधी तुमको शाप नहीं दिया। अब तुम्हारे मंगलका अवसर आ पहुंचा है। तुम सिद्धिलाभ करो" ॥ १६४ ॥ इसके बाद उत्तंकने उपाध्यायको प्रणाम किया। उपाध्याय उससे बोले, "बेटा उत्तंक! तुम्हारा स्वागत हो। तुमको आनेमें इतनी देर क्यों हुई?" ॥ १६५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमुत्तङ्क उपाध्यायं प्रत्युवाच । भोस्तक्षकेण नागराजेन विघ्नः कृतोऽस्मिन्कर्मणि । तेनास्मि नागलोकं नीतः ॥१६६॥ तत्र च मया दृष्टे स्त्रियौ तन्त्रेऽधिरोप्य पटं वयन्त्यौ । तस्मिंश्च-तन्त्रे कृष्णाः सिताश्च तन्तवः । किं तत् ॥ १६७ ॥ तत्र च मया चक्रं दृष्टं द्वादशारम् । षट्चैनं कुमाराः परिवर्तयन्ति । तदपि किम् ॥ १६८ ॥ पुरुषश्चापि मया दृष्टः । स पुनः कः ॥ १६९ ॥

उत्तंकने उपाध्यायको उत्तर दिया, " नागराज तक्षकने इस कार्यमें विघ्न डाल दिया था, अतः मैं नागलोक गया था ॥ १६६ ॥ वहां मैंने खड्डीपर चढाकर कपडा बुनते हुए दो स्त्रियोंको देखा । उस खड्डीमें सफेद और काले रंगके सूत थे । वह क्या थे ? ॥१६७॥ वहां मैंने बारह आरेवाला एक पहिया देखा, छै कुमार इस चक्रको घुमा रहे थे । वह भी क्या था ? ॥ १६८ ॥ एक पुरुषको भी मैंने देखा । वह कौन था ॥ १६९ ॥

अश्वश्चातिप्रमाणयुक्तः । स चापि कः ॥ १७० ॥ पथि गच्छता मया ऋषभो दृष्टः । तं च पुरुषोऽधिरूढः । तेनास्मि सोपचार-मुक्तः । उत्तङ्कास्य ऋषभस्य पुरीषं भक्षय । उपाध्यायेनापि ते भक्षितमिति । ततस्तद्वचनान्मया तदृषभस्य पुरीषमुप-युक्तम् । तदिच्छामि भवतोपदिष्टं किं तदिति ॥ १७१ ॥ तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच । ये ते स्त्रियौ धाता विधाता च । ये च ते कृष्णाः सिताश्च तन्तवस्ते रात्र्यहनी ॥ १७२ ॥ यदपि तच्चक्रं द्वादशारं षट्कुमाराः परिवर्तयन्ति ते ऋतवः षट् संवत्सरश्चक्रम् । यः पुरुषः स पर्जन्यः । योऽश्वः सोऽग्निः ॥ १७३ ॥

बडे भारी एक घोडेको देखा, वह भी कौन था ? ॥ १७० ॥ पथमें जाते हुए मैंने एक बैलको देखा था । उसपर एक पुरुष चढा हुआ था । उसने विनयपूर्वक मुझसे कहा, " हे उत्तंक ! तुम इस बैलका गोबर खा लो । पहिले तुम्हारे उपाध्यायने भी खाया था " । मैंने उसका वचन सुनकर उस बैलका गोबर खा लिया था । वह सब क्या था, यह सब आपके मुंहसे सुनना चाहता हूं ॥ १७१ ॥ उत्तंकके यह सब पूछनेपर उपाध्याय बोले, " हे उत्तंक ! तुमने जिन दो स्त्रियोंको देखा, वे धाता और विधाता थीं । जिन सफेद और काले धागोंको देखा, वे सब दिन और रात थे ॥ १७२ ॥ जिस चक्रको देखा, वह वर्ष था; जिन छः कुमारोंको उस बारह आरेवाले चक्रको घुमाते देखा, वे छः ऋतु थे । जिस पुरुषको देखा वह मेघ था । जिस अश्वको देखा, वह अग्नि था ॥ १७३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

य ऋषभस्त्वया पथि गच्छता दृष्टः स ऐरावतो नागराजः। यश्चैनमधिरूढः पुरुषः स इन्द्रः। यदपि ते पुरीषं भक्षितं तस्य ऋषभस्य तदमृतम् ॥ १७४॥ तेन खल्वसि न व्यापन्नस्तस्मिन्नागभवने। स मम सखा इन्द्रः ॥ १७५॥ तदनुग्रहात्कुण्डले गृहीत्वा पुनरभ्यागतोऽसि। तत्सौम्य गम्यताम्। अनुजाने भवन्तम्। श्रेयोऽवाप्स्यसीति ॥ १७६॥ स उपाध्यायेनानुज्ञात उत्तङ्कः क्रुद्धस्तक्षकस्य प्रतिचिकीर्षमाणो हास्तिनपुरं प्रतस्थे ॥ १७७॥

पथमें जाते हुए जिस बैलको तुमने देखा, वह नागराज ऐरावत था। उसपर जो पुरुष चढा हुआ था वह इन्द्र था और तुमने जो उस बैलका गोबर खाया वह अमृत था ॥ १७४॥ उसी अमृतको खानेके कारण तुम नागलोकमें जानेपर भी नष्ट नहीं हुए। वही इन्द्र मेरा मित्र है ॥ १७५ ॥ उसी इन्द्रकी कृपासे कुण्डल लेकर लौटकर आ सके हो। अत एव हे सुशील ! अब तुम अपने घर जाओ। मैं तुमको अनुमति देता हूं। तुम श्रेयको प्राप्त करो ॥ १७६ ॥ वह उत्तंक उपाध्यायसे आज्ञा लेकर तक्षकपर नाराज होकर उससे बदला लेनेकी इच्छासे हस्तिनापुरको चला गया ॥ १७७ ॥

स हास्तिनपुरं प्राप्य नचिराद्द्विजसत्तमः।
समागच्छत राजानमुत्तङ्को जनमेजयम् ॥ १७८ ॥

विप्रोंमें श्रेष्ठ उत्तङ्क विना विलम्ब हस्तिनापुर जाकर महाराज जनमेजयके निकट उपस्थित हुए ॥ १७८ ॥

पुरा तक्षशिलातस्तं निवृत्तमपराजितम्।
सम्यग्विजयिनं दृष्ट्वा समन्तान्मन्त्रिभिर्वृतम् ॥ १७९ ॥
तस्मै जयाशिषः पूर्वं यथान्यायं प्रयुज्य सः।
उवाचैनं वचः काले शब्दसंपन्नया गिरा ॥ १८० ॥

इससे पहले तक्षशिलाके प्रदेशको जीतकर लौटकर आए हुए, शत्रुओंपर अच्छी तरह जय प्राप्त करनेवाले होने पर भी स्वयं शत्रुओंसे अपराजित उस जनमेजयको मंत्रियोंके द्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ देखकर उत्तंकने पहले उनको यथाविधि जयप्राप्त करनेके लिए शुभाशीर्वाद दिए, और फिर उत्तम शब्दोंसे युक्त वाणीसे समयके अनुसार वाक्य जनमेजयसे कहे ॥ १७९–१८० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अन्यस्मिन्करणीये त्वं कार्ये पार्थिवसत्तम ।
बाल्यादिवान्यदेव त्वं कुरुषे नृपसत्तम ॥ १८१ ॥

" हे श्रेष्ठ राजन् ! इस करने योग्य कार्यमें अपने कर्तव्यका पालन न करके तुम बालकके समान दूसरे कार्योंमें लगे हुए हो ॥ १८१ ॥

एवमुक्तस्तु विप्रेण स राजा प्रत्युवाच ह ।
जनमेजयः प्रसन्नात्मा सम्यक्संपूज्य तं मुनिम् ॥ १८२ ॥

उत्तंकसे इस प्रकार कहे जानेपर प्रसन्न आत्मावाले महाराज जनमेजय विधिपूर्वक उसकी पूजा करके उस मुनिसे बोले ॥ १८२ ॥

आसां प्रजानां परिपालनेन स्वं क्षत्रधर्मं परिपालयामि ।
प्रब्रूहि वा किं क्रियतां द्विजेन्द्र शुश्रूषुरस्म्यद्य वचस्त्वदीयम् ॥ १८३ ॥

" मैं इन प्रजाओंका पालन करके मैं अपने क्षत्रियधर्मका पालन कर रहा हूं । हे द्विजेन्द्र मुझे बताओ मैं क्या करूं । मैं आज तुम्हारे वचनोंको सुनना चाहता हूँ ॥ १८३ ॥

स एवमुक्तस्तु नृपोत्तमेन द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः ।
उवाच राजानमदीनसत्त्वं स्वमेव कार्यं नृपतेश्च यत्तत् ॥ १८४ ॥

नृपश्रेष्ठ जनमेजयके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पुण्यशीलोंमें श्रेष्ठ द्विजोत्तम उत्तंकने उन अन्यून बलवाले महाराज जनमेजयको राजाके द्वारा जो कुछ किया जाना चाहिए, उन कार्योंको बताया ॥ १८४ ॥

तक्षकेण नरेन्द्रेन्द्र येन ते हिंसितः पिता ।
तस्मै प्रतिकुरुष्व त्वं पन्नगाय दुरात्मने ॥ १८५ ॥

हे श्रेष्ठ महीपाल ! जिस तक्षकके, द्वारा तुम्हारे पिताकी हिंसाकर दी गई थी, उस दुष्टात्मा सर्पको उचित प्रति फल दो ॥ १८५ ॥

कार्यकालं च मन्येऽहं विधिदृष्टस्य कर्मणः ।
तद्गच्छापचितिं राजन्पितुस्तस्य महात्मनः ॥ १८६ ॥

राजन् ! इस विधिदर्शित कार्यको करनेका काल आ पहुंचा है ऐसा मैं मानता हूं, अतः तुम्हारे उन महानुभाव जन्मदाता पिताका जो अनिष्ट हुआ है, उसका बदला लो ॥ १८६ ॥

तेन ह्यनपराधी स दष्टो दुष्टान्तरात्मना ।
पञ्चत्वमगमद्राजा वज्राहत इव द्रुमः ॥ १८७ ॥

उस दुष्ट अन्तरात्मावाले तक्षकके द्वारा तुम्हारे निरपराधी राजा काटे जाकर वज्रसे मारे गए वृक्षके समान मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ १८७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बलदर्पसमुत्सिक्तस्तक्षकः पन्नगाधमः।
अकार्यं कृतवान्पापो योऽदशत्पितरं तव ॥ १८८ ॥

जिस सर्पोंमें अत्यंत नीच तक्षकने बल और अहंकारमें भरकर जो तुम्हारे पिताको काट लिया था, वह उसने बडा ही अनुचित और पापका कार्य किया ॥ १८८ ॥

राजर्षिवंशगोप्तारममरप्रतिमं नृपम्।
जघान काश्यपं चैव न्यवर्तयत पापकृत् ॥ १८९ ॥

और राजर्षिवंशके रक्षक, देवोंके समान अद्वितीय महाराज परीक्षितको मार डाला तथा उस पापीने (तुम्हारे पिताके प्राणोंको बचानेके लिए आते हुए) काश्यपको भी (बीच रास्तमेंसे ही) लौटा दिया ॥ १८९ ॥

दग्धुमर्हसि तं पापं ज्वलिते हव्यवाहने।
सर्पसत्रे महाराज त्वयि तद्धि विधीयते ॥ १९० ॥

हे महाराज ! सर्पयज्ञका अनुष्ठान कर प्रज्ज्वलित अग्निमें उस पापात्माको तुम जला सकते हो, अतः तुम शीघ्र उसका अनुष्ठान करो ॥ १९० ॥

एवं पितुश्चापचितिं गुतवांस्त्वं भविष्यसि।
मम प्रियं च सुमहत्कृतं राजन्भविष्यति ॥ १९१ ॥

ऐसा करनेसे हे राजन् ! अपने पिताका बदला तुम ले लोगे (और पिताके ऋणसे तुम उऋण हो जाओगे।) और मेरा भी अति प्रिय कार्य पूर्ण हो जाएगा ॥ १९१ ॥

कर्मणः पृथिवीपाल मम येन दुरात्मना।
विघ्नः कृतो महाराज गुर्वर्थं चरतोऽनघ ॥ १९२ ॥

हे निष्पाप महाराज पृथ्वीनाथ ! मैं गुरुके लिये धन लाने गया था, तब उस दुरात्माने मेरे इस कर्ममें बडा विघ्न डाला था ॥ १९२ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु नृपतिस्तक्षकस्य चुकोप ह।
उत्तङ्कवाक्यहविषा दीप्तोऽग्निर्हविषा यथा ॥ १९३ ॥

तक्षककी यह बात सुन कर महाराज जनमेजय बहुत क्रोधित हुए, और जिस प्रकार घृतसे अग्नि जल उठती है, वैसे ही उत्तङ्कके वाक्यरूपी घृतसे उनकी क्रोधरूपी अग्नि जल उठी ॥ १९३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपृच्छच्च तदा राजा मन्त्रिणः स्वान्सुदुःखितः ।
उत्तङ्कस्यैव सान्निध्ये पितुः स्वर्गगतिं प्रति ॥ १९४ ॥

तब अति दुःखित होकर राजाने उत्तङ्कके सामने ही अपने मंत्रियोंसे पिताके परलोक सिधारनेका वृत्तान्त पूछा ॥ १९४ ॥

तदैव हि स राजेन्द्रो दुःखशोकाप्लुतोऽभवत् ।
यदैव पितरं वृत्तमुत्तङ्कादशृणोत्तदा ॥ १९५ ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ समाप्तं पौष्यपर्व ॥ ६४८ ॥

जब राजाने उत्तङ्कसे पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुना तो नृपश्रेष्ठ जनमेजय दुःख और शोकसे विकल हो गए ॥ १९५ ॥

इस प्रकार महाभारतके आदिपर्वमें तीसरा अध्याय और पौष्यपर्व समाप्त हुआ ॥ ६४८ ॥

: ४ :

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सूतः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ऋषीनभ्यागतानुपतस्थे ॥१॥ पौराणिकः पुराणे कृतश्रमः स तान्कृताञ्जलिरुवाच। किं भवन्तः श्रोतुमिच्छन्ति। किमहं ब्रवाणीति ॥ २ ॥ तमृषय ऊचुः। परमं लोमहर्षणे प्रक्ष्यामस्त्वां वक्ष्यसि च नः शुश्रूषतां कथायोगम् । तद्भगवांस्तु तावच्छौनकोऽग्निशरणमध्यास्ते ॥३॥

लोमहर्षणके पुत्र सूत पौराणिक उग्रश्रवा नैमिषारण्यमें कुलपति शौनकके बारह वर्षतक चलनेवाले यज्ञमें आये हुए ऋषियोंके समीप उपस्थित हुए ॥ १ ॥ पुराणोंका स्वाध्याय किए हुए वह पौराणिक दोनों हाथ जोडकर बोले, "आप लोग इस समय क्या सुनना चाहते हैं ? मैं इस समय क्या कहूँ ?" ॥ २ ॥ ऋषिलोग उससे बोले, "हे लोमहर्षणके पुत्र ! हम लोग विविध कथा सुननेके अभिलाषी होकर तुमसे जो जो पूछें, तुम वह सब वर्णन करना । परंतु भगवान् शौनक इस समय अग्निगृहमें बैठे हुए हैं ॥ ३ ॥

योऽसौ दिव्याः कथा वेद देवतासुरसंकथाः ।
मनुष्योरगगन्धर्वकथा वेद च सर्वशः ॥ ४ ॥

जो देवासुर संबंधी सम्पूर्ण कथायें जानते हैं और जो मनुष्य, सांप तथा गन्धर्वोंके संपूर्ण कथाओंको आप जानते हैं ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बलदर्पसमुत्सिक्तस्तक्षकः पन्नगाधमः।
अकार्यं कृतवान्पापो योऽदशत्पितरं तव ॥ १८८ ॥

जिस सर्पोंमें अत्यंत नीच तक्षकने बल और अहंकारमें भरकर जो तुम्हारे पिताको काट लिया था, वह उसने बडा ही अनुचित और पापका कार्य किया ॥ १८८ ॥

राजर्षिवंशगोप्तारममरप्रतिमं नृपम्।
जघान काश्यपं चैव न्यवर्तयत पापकृत् ॥ १८९ ॥

और राजर्षिवंशके रक्षक, देवोंके समान अद्वितीय महाराज परीक्षितको मार डाला तथा उस पापीने (तुम्हारे पिताके प्राणोंको बचानेके लिए आते हुए) काश्यपको भी (बीच रास्तमेंसे ही) लौटा दिया ॥ १८९ ॥

दग्धुमर्हसि तं पापं ज्वलिते हव्यवाहने।
सर्पसत्रे महाराज त्वयि तद्धि विधीयते ॥ १९० ॥

हे महाराज ! सर्पयज्ञका अनुष्ठान कर प्रज्ज्वलित अग्निमें उस पापात्माको तुम जला सकते हो, अतः तुम शीघ्र उसका अनुष्ठान करो ॥ १९० ॥

एवं पितुश्चापचितिं गुतवांस्त्वं भविष्यसि।
मम प्रियं च सुमहत्कृतं राजन्भविष्यति ॥ १९१ ॥

ऐसा करनेसे हे राजन् ! अपने पिताका बदला तुम ले लोगे (और पिताके ऋणसे तुम उऋण हो जाओगे।) और मेरा भी अति प्रिय कार्य पूर्ण हो जाएगा ॥ १९१ ॥

कर्मणः पृथिवीपाल मम येन दुरात्मना।
विघ्नः कृतो महाराज गुर्वर्थं चरतोऽनघ ॥ १९२ ॥

हे निष्पाप महाराज पृथ्वीनाथ ! मैं गुरुके लिये धन लाने गया था, तब उस दुरात्माने मेरे इस कर्ममें बडा विघ्न डाला था ॥ १९२ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु नृपतिस्तक्षकस्य चुकोप ह।
उत्तङ्कवाक्यहविषा दीप्तोऽग्निर्हविषा यथा ॥ १९३ ॥

तक्षककी यह बात सुन कर महाराज जनमेजय बहुत क्रोधित हुए, और जिस प्रकार घृतसे अग्नि जल उठती है, वैसे ही उत्तङ्कके वाक्यरूपी घृतसे उनकी क्रोधरूपी अग्नि जल उठी ॥ १९३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपृच्छच्च तदा राजा मन्त्रिणः स्वान्सुदुःखितः ।
उत्तङ्कस्यैव सान्निध्ये पितुः स्वर्गगतिं प्रति ॥ १९४ ॥

तब अति दुःखित होकर राजाने उत्तङ्कके सामने ही अपने मंत्रियोंसे पिताके परलोक सिधारनेका वृत्तान्त पूछा ॥ १९४ ॥

तदैव हि स राजेन्द्रो दुःखशोकाप्लुतोऽभवत् ।
यदैव पितरं वृत्तमुत्तङ्कादशृणोत्तदा ॥ १९५ ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ समाप्तं पौष्यपर्व ॥ ६४८ ॥

जब राजाने उत्तङ्कसे पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुना तो नृपश्रेष्ठ जनमेजय दुःख और शोकसे विकल हो गए ॥ १९५ ॥

इस प्रकार महाभारतके आदिपर्वमें तीसरा अध्याय और पौष्यपर्व समाप्त हुआ ॥ ६४८ ॥

: ४ :

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सूतः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ऋषीनभ्यागतानुपतस्थे ॥१॥ पौराणिकः पुराणे कृतश्रमः स तान्कृताञ्जलिरुवाच। किं भवन्तः श्रोतुमिच्छन्ति। किमहं ब्रवाणीति ॥ २॥ तमृषय ऊचुः। परमं लोमहर्षणे प्रक्ष्यामस्त्वां वक्ष्यसि च नः शुश्रूषतां कथायोगम्। तद्भगवांस्तु तावच्छौनकोऽग्निशरणमध्यास्ते ॥३॥

लोमहर्षणके पुत्र सूत पौराणिक उग्रश्रवा नैमिषारण्यमें कुलपति शौनकके बारह वर्षतक चलनेवाले यज्ञमें आये हुए ऋषियोंके समीप उपस्थित हुए ॥ १ ॥ पुराणोंका स्वाध्याय किए हुए वह पौराणिक दोनों हाथ जोडकर बोले, "आप लोग इस समय क्या सुनना चाहते हैं ? मैं इस समय क्या कहूँ ?" ॥ २ ॥ ऋषिलोग उससे बोले, "हे लोमहर्षणके पुत्र ! हम लोग विविध कथा सुननेके अभिलाषी होकर तुमसे जो जो पूछें, तुम वह सब वर्णन करना । परंतु भगवान् शौनक इस समय अग्निगृहमें बैठे हुए हैं ॥ ३ ॥

योऽसौ दिव्याः कथा वेद देवतासुरसंकथाः ।
मनुष्योरगगन्धर्वकथा वेद च सर्वशः ॥ ४ ॥

जो देवासुर संबंधी सम्पूर्ण कथायें जानते हैं और जो मनुष्य, सांप तथा गन्धर्वोंके संपूर्ण कथाओंको आप जानते हैं ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स चाप्यस्मिन्मखे सौते विद्वान्कुलपतिर्द्विजः।
दक्षो धृतव्रतो धीमाञ्शास्त्रे चारण्यके गुरुः ॥ ५ ॥

हे सूत! विशेष करके जो इस यज्ञके कुलपति और विद्वान्, कार्यकुशल, व्रतशील, बुद्धिमान्, कर्मकाण्ड संबंधी शास्त्र और उपनिषद् सिखानेमें अद्वितीय गुरु हैं ॥ ५ ॥

सत्यवादी शमपरस्तपस्वी नियतव्रतः।
सर्वेषामेव नो मान्यः स तावत्प्रतिपाल्यताम् ॥ ६ ॥

तथा सत्यवादी, शान्तिमें रत, तपस्वी और व्रतशील हैं; अतः वह हम सबहीके लिए माननीय हैं अतएव उनके लिये कुछ देर ठहर जाओ ॥ ६ ॥

तस्मिन्नध्यासति गुरावासनं परमार्चितम्।
ततो वक्ष्यसि यत्त्वां स प्रक्ष्यति द्विजसत्तमः ॥ ७ ॥

अत्यंत पूजित श्रेष्ठासन पर बैठकर वह द्विजश्रेष्ठ जो कुछ भी प्रश्न करें, तुम उसीका उत्तर देना ॥ ७ ॥

सूत उवाच

एवमस्तु गुरौ तस्मिन्नुपविष्टे महात्मनि।
तेन पृष्टः कथाः पुण्या वक्ष्यामि विविधाश्रयाः ॥ ८ ॥

सूत बोले, "वही होवे; महात्मा गुरुशौनकके बैठकर उनके द्वारा पूछे गए नाना विषयोंसे सम्बन्धित पुण्यकथायें मैं तुम्हें सुनाऊंगा।" ॥ ८ ॥

सोऽथ विप्रर्षभः कार्यं कृत्वा सर्वं यथाक्रमम्।
देवान्वारिभिः पितॄनद्भिस्तर्पयित्वाजगाम ह ॥ ९ ॥
यत्र ब्रह्मर्षयः सिद्धास्त आसीना यतव्रताः।
यज्ञायतनमाश्रित्य सूतपुत्रपुरःसराः ॥ १० ॥

जिस यज्ञस्थानपर व्रतोंका आचरण करनेवाले ब्रह्मर्षि और सिद्ध मुनिगण सूतके पुत्र उग्रश्रवाको अग्रस्थान देकर बैठे हुए थे, उसी यज्ञस्थान पर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ शौनक मंत्रों द्वारा देवोंको और जलद्वारा पितरोंको तृप्त करके तथा अन्य भी सब कार्योंको क्रमपूर्वक समाप्त करके आकर बैठ गए ॥ ९–१० ॥

ऋत्विक्ष्वथ सदस्येषु स वै गृहपतिस्ततः।
उपविष्टेषूपविष्टः शौनकोऽथाब्रवीदिदम् ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ६५९ ॥

बादमें ऋत्विक् और सभासदोंके बैठनेपर कुलपति शौनक स्वयं बैठ कर यह बोले ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार महाभारतके आदिपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६५९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ५ :

शौनक उवाच

पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान्पुरा।
कच्चित्त्वमपि तत्सर्वमधीषे लोमहर्षणे ॥ १ ॥

शौनक बोले-- "हे तात लोमहर्षणके पुत्र ! पहिले तुम्हारे पिताने सम्पूर्ण पुराण पढे थे, क्या तुमने भी उन सबोंको पढ लिया है ? ॥ १ ॥

पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ताः पुरास्माभिः श्रुताः पूर्वं पितुस्तव ॥ २ ॥

पुराणोंमें देवताओंके चरित्र और महानुभाव पुरुषोंके आदिवंशवृत्तान्त कथित हुए हैं; पहिले वे वृत्तान्त तुम्हारे पिताके द्वारा कहे जाते थे, हम लोग वह सब कथायें सुन चुके हैं ॥२॥

तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।
कथयस्व कथामेतां कल्याः स्म श्रवणे तव ॥ ३ ॥

इस समय उनमें सबसे प्रधान भृगुवंशका वृत्तान्त सुनना चाहता हूं, तुम इस कथाको सुनाओ । हम लोग एकचित्त होकर तुम्हारी बात सुननेके लिए तैय्यार हैं ॥ ३ ॥

सूत उवाच

यदधीतं पुरा सम्यग्द्विजश्रेष्ठ महात्मभिः।
वैशंपायनविप्राद्यैस्तैश्चापि कथितं पुरा ॥ ४ ॥

सूत बोले– "हे द्विजश्रेष्ठ ! आप महात्माओंने जिन विषयोंको पुराणोंमें पढा है, और वैशम्पायन आदि द्विजवरोंने भी पहले कहा है ॥ ४ ॥

यदधीतं च पित्रा मे सम्यक्चैव ततो मया।
तत्तावच्छृणु यो देवैः सेन्द्रैः साग्निमरुद्गणैः।
पूजितः प्रवरो वंशो भृगूणां भृगुनन्दन ॥ ५ ॥

और मेरे पिताने जिन विषयोंको पढा है, मैंने भी उन सब विषयोंको पितासे भलीभांति पढ लिया है; हे भृगुनन्दन ! इन्द्र, अग्नि और मरुतोंके साथ देवोंद्वारा पूजित उस श्रेष्ठ प्रवरवाले भृगुवंशको आप सुनिये ॥ ५ ॥

इमं वंशमहं ब्रह्मन्भार्गवं ते महामुने।
निगदामि कथायुक्तं पुराणाश्रयसंयुतम् ॥ ६ ॥

हे महामुने ब्रह्मन् ! मैं पहिले उस भृगु सम्बन्धी वंशहीका पुराणके आधारपर कथाओंसे युक्त यथावत् वर्णन करता हूं ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भृगोः सुदयितः पुत्रश्च्यवनो नाम भार्गवः।
च्यवनस्यापि दायादः प्रमतिर्नाम धार्मिकः।
प्रमतेरप्यभूत्पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत ॥ ७ ॥

भृगुके बडे स्नेहपात्र पुत्र च्यवन नामके भृगुवंशमें उत्पन्न हुए। च्यवनके भी परम धार्मिक पुत्र प्रमति हुए; प्रमतिके भी घृताचीके गर्भसे औरस पुत्र रुरु उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥

रुरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः।
प्रमद्वरायां धर्मात्मा तव पूर्वपितामहात् ॥ ८ ॥

आपके पूर्व पितामह रुरुके प्रमद्वराके गर्भसे वेदज्ञ, धर्मज्ञ, शुनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

तपस्वी च यशस्वी च श्रुतवान्ब्रह्मवित्तमः।
धर्मिष्ठः सत्यवादी च नियतो नियतेन्द्रियः ॥ ९ ॥

वे तपस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ, ब्रह्मज्ञ, परमधर्मशील, सत्यशील, जितेन्द्रिय थे ॥ ९ ॥

शौनक उवाच

सूतपुत्र यथा तस्य भार्गवस्य महात्मनः।
च्यवनत्वं परिख्यातं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १० ॥

शौनक बोले– हे सूतपुत्र! जिस कारण महात्मा भृगुनन्दनकी च्यवनके नामसे प्रसिद्धि हुई, वह कारण पूछनेवाले मुझे आप बताइए ॥ १० ॥

सूत उवाच

भृगोः सुदयिता भार्या पुलोमेत्यभिविश्रुता।
तस्यां गर्भः समभवद्भृगोर्वीर्यसमुद्भवः ॥ ११ ॥

सूत बोले– महर्षि भृगुजीकी उत्तम, परमप्रिय सुप्रसिद्ध पुलोमा नामकी एक स्त्री थी। उसमें भृगुके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला गर्भ स्थिर हुआ ॥ ११ ॥

तस्मिन्गर्भे संभृतेऽथ पुलोमायां भृगूद्वह।
समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः ॥ १२ ॥
अभिषेकाय निष्क्रान्ते भृगौ धर्मभृतां वरे।
आश्रमं तस्य रक्षोऽथ पुलोमाभ्याजगाम ह ॥ १३ ॥

हे भृगुनंदन! उस यशस्वी भृगुसे उस समान शील स्वभावशाली धर्मपत्नी पुलोमामें यथा समय गर्भ स्थिर होने पर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भृगुके एक दिन नहानेके लिए चले जानेपर पुलोम नामक राक्षस उनके आश्रमके पास आया ॥ १२–१३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं प्रविश्याश्रमं दृष्ट्वा भृगोर्भार्यामनिन्दिताम् ।
हृच्छयेन समाविष्टो विचेताः समपद्यत ॥ १४ ॥

आश्रमके भीतर घुसकर वह राक्षस अनिन्दित भृगुपत्नीको देखकर हृदयमें कामके प्रविष्ट हो जानेके कारण कामपीडासे व्याकुल होकर अचेतनसा हो गया ॥ १४ ॥

अभ्यागतं तु तद्रक्षः पुलोमा चारुदर्शना ।
न्यमन्त्रयत वन्येन फलमूलादिना तदा ॥ १५ ॥

सुदर्शना पुलोमाने आश्रममें आए हुए उस राक्षसको वनके फलमूलोंसे सत्कार करनेके लिए आमंत्रण दिया ॥ १५ ॥

तां तु रक्षस्तदा ब्रह्मन्हृच्छयेनाभिपीडितम् ।
दृष्ट्वा हृष्टमभूत्तत्र जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम् ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मन् ! तब हृदयमें रहनेवाले कामसे पीडित तथा उसे हरनेकी इच्छा करनेवाला वह राक्षस उस अनिन्दित परम रूपमयी रमणीको वहां देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥

अथाग्निशरणेऽपश्यज्ज्वलितं जातवेदसम् ।
तमपृच्छत्ततो रक्षः पावकं ज्वलितं तदा ॥ १७ ॥

अनन्तर उस राक्षसने अग्निगृहमें प्रज्ज्वलित जातवेदा अग्निदेवको देखा और तब उस जलते हुए अग्नि देवसे पूछा ॥ १७ ॥

शंस मे कस्य भार्येयमग्ने पृष्ट ऋतेन वै ।
सत्यस्त्वमसि सत्यं मे वद पावक पृच्छते ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! तुम सत्यभाषी हो मैं तुमसे सत्य बात पूछता हूं, सत्य बोलो कि यह किसकी स्त्री है । हे अग्ने ! पूछनेवाले मुझसे सच बोलो ॥ १८ ॥

मया हीयं पूर्ववृता भार्यार्थे वरवर्णिनी ।
पश्चात्त्विमां पिता प्रादाद्भृगवेऽनृतकारिणे ॥ १९ ॥

मैंने पहिले इस सुन्दरी नारीको पत्नीरूपमें वरण किया था, पर बादमें इसके पिताने इसे असत्यभाषी भृगुको दे दिया ॥ १९ ॥

सेयं यदि वरारोहा भृगोर्भार्या रहोगता ।
तथा सत्यं समाख्याहि जिहीर्षाम्याश्रमादिमाम् ॥ २० ॥

तुम सच बोलो, यह एकान्तवासिनी, कमलके समान सुन्दर रूपवाली भृगुपत्नी है कि नहीं ? मैं आश्रमसे इसे हर ले जाना चाहता हूं ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भृगोः सुदयितः पुत्रश्च्यवनो नाम भार्गवः।
च्यवनस्यापि दायादः प्रमतिर्नाम धार्मिकः।
प्रमतेरप्यभूत्पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत ॥ ७ ॥

भृगुके बडे स्नेहपात्र पुत्र च्यवन नामके भृगुवंशमें उत्पन्न हुए। च्यवनके भी परम धार्मिक पुत्र प्रमति हुए; प्रमतिके भी घृताचीके गर्भसे औरस पुत्र रुरु उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥

रुरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः।
प्रमद्वरायां धर्मात्मा तव पूर्वपितामहात् ॥ ८ ॥

आपके पूर्व पितामह रुरुके प्रमद्वराके गर्भसे वेदज्ञ, धर्मज्ञ, शुनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

तपस्वी च यशस्वी च श्रुतवान्ब्रह्मवित्तमः।
धर्मिष्ठः सत्यवादी च नियतो नियतेन्द्रियः ॥ ९ ॥

वे तपस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ, ब्रह्मज्ञ, परमधर्मशील, सत्यशील, जितेन्द्रिय थे ॥ ९ ॥

शौनक उवाच

सूतपुत्र यथा तस्य भार्गवस्य महात्मनः।
च्यवनत्वं परिख्यातं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १० ॥

शौनक बोले- हे सूतपुत्र! जिस कारण महात्मा भृगुनन्दनकी च्यवनके नामसे प्रसिद्धि हुई, वह कारण पूछनेवाले मुझे आप बताइए ॥ १० ॥

सूत उवाच

भृगोः सुदयिता भार्या पुलोमेत्यभिविश्रुता।
तस्यां गर्भः समभवद्भृगोर्वीर्यसमुद्भवः ॥ ११ ॥

सूत बोले- महर्षि भृगुजीकी उत्तम, परमप्रिय सुप्रसिद्ध पुलोमा नामकी एक स्त्री थी। उसमें भृगुके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला गर्भ स्थिर हुआ ॥ ११ ॥

तस्मिन्गर्भे संभृतेऽथ पुलोमायां भृगूद्वह।
समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः ॥ १२ ॥
अभिषेकाय निष्क्रान्ते भृगौ धर्मभृतां वरे।
आश्रमं तस्य रक्षोऽथ पुलोमाभ्याजगाम ह ॥ १३ ॥

हे भृगुनंदन! उस यशस्वी भृगुसे उस समान शील स्वभावशाली धर्मपत्नी पुलोमामें यथा समय गर्भ स्थिर होने पर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भृगुके एक दिन नहानेके लिए चले जानेपर पुलोम नामक राक्षस उनके आश्रमके पास आया ॥ १२-१३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं प्रविश्याश्रमं दृष्ट्वा भृगोर्भार्यामनिन्दिताम् ।
हृच्छयेन समाविष्टो विचेताः समपद्यत ॥ १४ ॥

आश्रमके भीतर घुसकर वह राक्षस अनिन्दित भृगुपत्नीको देखकर हृदयमें कामके प्रविष्ट हो जानेके कारण कामपीडासे व्याकुल होकर अचेतनसा हो गया ॥ १४ ॥

अभ्यागतं तु तद्रक्षः पुलोमा चारुदर्शना ।
न्यमन्त्रयत वन्येन फलमूलादिना तदा ॥ १५ ॥

सुदर्शना पुलोमाने आश्रममें आए हुए उस राक्षसको वनके फलमूलोंसे सत्कार करनेके लिए आमंत्रण दिया ॥ १५ ॥

तां तु रक्षस्तदा ब्रह्मन्हृच्छयेनाभिपीडितम् ।
दृष्ट्वा हृष्टमभूत्तत्र जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम् ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मन् ! तब हृदयमें रहनेवाले कामसे पीडित तथा उसे हरनेकी इच्छा करनेवाला वह राक्षस उस अनिन्दित परम रूपमयी रमणीको वहां देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥

अथाग्निशरणेऽपश्यज्ज्वलितं जातवेदसम् ।
तमपृच्छत्ततो रक्षः पावकं ज्वलितं तदा ॥ १७ ॥

अनन्तर उस राक्षसने अग्निगृहमें प्रज्ज्वलित जातवेदा अग्निदेवको देखा और तब उस जलते हुए अग्नि देवसे पूछा ॥ १७ ॥

शंस मे कस्य भार्येयमग्ने पृष्ट ऋतेन वै ।
सत्यस्त्वमसि सत्यं मे वद पावक पृच्छते ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! तुम सत्यभाषी हो मैं तुमसे सत्य बात पूछता हूं, सत्य बोलो कि यह किसकी स्त्री है । हे अग्ने ! पूछनेवाले मुझसे सच बोलो ॥ १८ ॥

मया हीयं पूर्ववृता भार्यार्थे वरवर्णिनी ।
पश्चात्त्विमां पिता प्रादाद्भृगवेऽनृतकारिणे ॥ १९ ॥

मैंने पहिले इस सुन्दरी नारीको पत्नीरूपमें वरण किया था, पर बादमें इसके पिताने इसे असत्यभाषी भृगुको दे दिया ॥ १९ ॥

सेयं यदि वरारोहा भृगोर्भार्या रहोगता ।
तथा सत्यं समाख्याहि जिहीर्षाम्याश्रमादिमाम् ॥ २० ॥

तुम सच बोलो, यह एकान्तवासिनी, कमलके समान सुन्दर रूपवाली भृगुपत्नी है कि नहीं ? मैं आश्रमसे इसे हर ले जाना चाहता हूं ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मन्युर्हि हृदयं मेऽद्य प्रदहन्निव तिष्ठति।
मत्पूर्वभार्यां यदिमां भृगुः प्राप सुमध्यमाम् ॥ २१ ॥

क्योंकि सुन्दर मध्यम भागसे युक्त शरीरवाली इस सुन्दरीको, जो पहले मेरी पत्नीके रूपमें थी, भृगुने प्राप्त कर लिया। इससे उत्पन्न हुआ तबका क्रोध मेरा हृदय जलाता हुआ आजतक बना हुआ है ॥ २१ ॥

तद्रक्ष एवमामन्त्र्य ज्वलितं जातवेदसम्।
शङ्कमानो भृगोर्भार्यां पुनः पुनरपृच्छत ॥ २२ ॥

इस प्रकारसे पूछकर वह राक्षस भृगुकी पत्नी पर शंका करते हुए जलते हुए अग्निको सम्बोधित करके उससे बार बार पूछने लगा ॥ २२ ॥

त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यदा।
साक्षिवत्पुण्यपापेषु सत्यं ब्रूहि कवे वचः ॥ २३ ॥

हे अग्नि ! तुम सदा सर्व भूतोंके हृदयमें विचरते हो और पाप और पुण्यके साक्षी हो, अतः हे दूरदर्शी विद्वान् ! तुम सच्ची बात कहो ॥ २३ ॥

मत्पूर्वभार्यापहृता भृगुणानृतकारिणा।
सेयं यदि तथा मे त्वं सत्यमाख्यातुमर्हसि ॥ २४ ॥

मेरे द्वारा पहिलेकी वरण की हुई जिस मेरी ही पत्नीको अन्याय करनेवाले भृगुने हर लिया है, वह यही नारी है या नहीं ? हे अग्ने ! तुम यह बात मुझसे सच बोलो ॥ २४ ॥

श्रुत्वा त्वत्तो भृगोर्भार्यां हरिष्याम्यहमाश्रमात्।
जातवेदः पश्यतस्ते वद सत्यां गिरं मम ॥ २५ ॥

मैं तुमसे सच्ची बात सुनकर हे जातवेद अग्ने ! तुम्हारे देखते देखते ही इस भृगुपत्नीको इस आश्रमसे हर ले जाना चाहता हूं अतः मुझे सच्ची बात बताओ ॥ २५ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सप्तार्चिर्दुःखितो भृशम्।
भीतोऽनृताच्च शापाच्च भृगोरित्यब्रवीच्छनैः ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ (६८५)

" उस राक्षसकी ऐसी बात सुनकर सात ज्वालाओंवाला अग्नि एक ओर मिथ्या बोलनेके डरसे और दूसरी ओर भृगुके शापके डरसे अति दुःखी होकर धीरेसे यह पुलोमा भृगुकी ही पत्नी है " इस प्रकार बोला ॥ २६ ॥

॥ श्री महाभारतमें आदिपर्वमें पांचवां अध्याय समाप्त ॥ (६८५)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ६ :

सूत उवाच

अग्नेरथ वचः श्रुत्वा तद्रक्षः प्रजहार ताम् ।
ब्रह्मन्वराहरूपेण मनोमारुतरंहसा ॥ १ ॥

सूत बोले– हे ब्रह्मन् ! इसके बाद वह राक्षस अग्निकी बात सुनकर शूकरका रूप धरके वायु और मनके समान तेजीसे उस पुलोमाको हर ले गया ॥ १ ॥

ततः स गर्भो निवसन्कुक्षौ भृगुकुलोद्वह ।
रोषान्मातुश्च्युतः कुक्षेश्च्यवनस्तेन सोऽभवत् ॥ २ ॥

हे भृगुकुलके तिलक ! ऐसे समयमें पुलोमाके कोखमें स्थित वह गर्भ क्रोधसे माताकी कोखसे च्युत हो गया अर्थात् गिर गया । इसी कारण उसका नाम च्यवन पडा ॥ २ ॥

तं दृष्ट्वा मातुरुदराच्च्युतमादित्यवर्चसम् ।
तद्रक्षो भस्मसाद्भूतं पपात परिमुच्य ताम् ॥ ३ ॥

माताके गर्भसे गिरे हुए उस सूर्यके समान तेजस्वी बालकको देखते ही राक्षस पुलोमाको छोडकर भस्म बनकर पृथ्वी पर गिर पडा ॥ ३ ॥

सा तमादाय सुश्रोणी ससार भृगुनन्दनम् ।
च्यवनं भार्गवं ब्रह्मन्पुलोमा दुःखमूर्च्छिता ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! दुःखसे मूर्च्छित हुई हुई वह उत्तम जघन प्रदेशवाली पुलोमा भृगुके पुत्र उस च्यवनको लेकर भृगुकी ओर चली ॥ ४ ॥

तां ददर्श स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
रुदतीं बाष्पपूर्णाक्षीं भृगोर्भार्यामनिन्दिताम् ।
सान्त्वयामास भगवान्वधूं ब्रह्मा पितामहः ॥ ५ ॥

तब सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने उस अनिन्दित रूपवती भृगुपत्नीको रोती और नेत्रोंसे आंसू गिराती हुई देखा और पितामह भगवान् ब्रह्माने अपनी वधूको सान्त्वना दी ॥ ५ ॥

अश्रुबिन्दूद्भवा तस्याः प्रावर्तत महानदी ।
अनुवर्तती सृतिं तस्या भृगोः पत्न्या यशस्विनः ॥ ६ ॥

उस पुलोमाके आंसुओंसे निकली हुई महानदी वहां बहने लगी और वह नदी उस यशस्वी भृगुपत्नीके मार्गका अनुसरण करने लगी ॥ ६ ॥

तस्या मार्गं सृतवतीं दृष्ट्वा तु सरितं तदा ।
नाम तस्यास्तदा नद्याश्चक्रे लोकपितामहः ।
वधूसरेति भगवांश्च्यवनस्याश्रमं प्रति ॥ ७ ॥

तब अश्रुसे निकली हुई उस नदीको वधूके साथ भगवान् च्यवनके आश्रमकी ओर बहते हुए देख कर सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने उसका नाम " वधूसरा " रखा ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स एवं च्यवनो जज्ञे भृगोः पुत्रः प्रतापवान्।
तं ददर्श पिता तत्र च्यवनं तां च भामिनीम् ॥ ८ ॥

भृगुके पुत्र प्रतापी च्यवन इस प्रकारसे उत्पन्न हुए थे। तब पिता महर्षि भृगुने उस दशामें अपने पुत्र च्यवन और पत्नीको देखा ॥ ८ ॥

स पुलोमां ततो भार्यां पप्रच्छ कुपितो भृगुः।
केनासि रक्षसे तस्मै कथितेह जिहीर्षवे।
न हि त्वां वेद तद्रक्षो मद्भार्यां चारुहासिनीम् ॥ ९ ॥

और बहुत क्रोधित होकर इस भृगुने अपनी स्त्री पुलोमासे पूछा, तुम्हें हरकर ले जानेकी इच्छावाले उस राक्षसको किसने तुम्हारा परिचय दिया ? क्योंकि वह राक्षस तो सुन्दर हंसीवाली मेरी पत्नी तुमको नहीं जानता ॥ ९ ॥

तत्त्वमाख्याहि तं ह्यद्य शप्तुमिच्छाम्यहं रुषा।
बिभेति को न शापान्मे कस्य चायं व्यतिक्रमः ॥ १० ॥

तुम सच सच बोलो, मैं क्रोधसे उसको आज शाप देना चाहता हूं। किसने यह अनिष्ट किया ? कौन मेरे शापसे भय नहीं खाता ? ॥ १० ॥

पुलोमोवाच

अग्निना भगवंस्तस्मै रक्षसेऽहं निवेदिता।
ततो मामनयद्रक्षः क्रोशन्तीं कुररीमिव ॥ ११ ॥

पुलोमा बोली– हे भगवन् ! अग्निने उस राक्षसको मेरा परिचय दिया था, इसीसे राक्षस कुरङ्गीके समान रोती हुई मुझको ले भागा ॥ ११ ॥

साहं तव सुतस्यास्य तेजसा परिमोक्षिता।
भस्मीभूतं च तद्रक्षो मामुत्सृज्य पपात वै ॥ १२ ॥

अन्तमें तुम्हारे इस पुत्रके तेजके प्रभावने मुझे छुडाया। और वह राक्षस मुझको छोडकर भस्म होकर भूमिपर गिर पडा ॥ १२ ॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा पुलोमाया भृगुः परममन्युमान्।
शशापाग्निमभिक्रुद्धः सर्वभक्षो भविष्यसि ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ (६९८)

सूत बोले– अतिक्रोधी भृगुने पुलोमाकी यह बात सुनकर बहुत क्रोधित होकर अग्निको यह शाप दिया कि "तुम सर्वभक्षी अर्थात् सबको खा जानेवाले हो जाओगे" ॥ १३ ॥

॥ श्री महाभारतमें आदिपर्वमें छठवां अध्याय समाप्त ॥ ६९८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७ :

सूत उवाच

शप्तस्तु भृगुणा वह्निः क्रुद्धो वाक्यमथाब्रवीत् ।
किमिदं साहसं ब्रह्मन्कृतवानसि सांप्रतम् ॥ १ ॥

सूत बोले-- भृगुके द्वारा शाप देने पर अग्निने क्रोधित होकर यह वाक्य कहा, "हे ब्रह्मन्! तुमने इस समय यह क्या साहस कर डाला? ॥ १ ॥

धर्मे प्रयतमानस्य सत्यं च वदतः समम् ।
पृष्टो यदब्रुवं सत्यं व्यभिचारोऽत्र को मम ॥ २ ॥

पूछे जानेपर जो मैंने सत्य बात कही, तो उसमें धर्मका आचरण करनेवाले, सदा सत्य बोलनेवाले, और पक्षपात न करनेवाले मेरा क्या दोष है? अर्थात् पुलोमाके बारेमें सच्ची बात बताकर मैंने क्या अपराध किया? ॥ २ ॥

पृष्टो हि साक्षी यः साक्ष्यं जानमानोऽन्यथा वदेत् ।
स पूर्वानात्मनः सप्त कुले हन्यात्तथा परान् ॥ ३ ॥

जो साक्षी सच्ची बात जाननेपर भी पूछे जानेपर झूठी गवाही देता है, वह अपने पहलेके सात कुल और आगे आनेवाली सात पीढियोंको मार देता है ॥ ३ ॥

यश्च कार्यार्थतत्त्वज्ञो जानमानो न भाषते ।
सोऽपि तेनैव पापेन लिप्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥

जो जन गूढतत्त्व और सच्ची बात भी जानकर गवाही नहीं देता, वह भी उसी उक्त पापसे लिप्त होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥

शक्तोऽहमपि शप्तुं त्वां मान्यास्तु ब्राह्मणा मम ।
जानतोऽपि च ते व्यक्तं कथयिष्ये निबोध तत् ॥ ५ ॥

मैं भी तुमको शाप दे सकता हूं, पर मेरे लिए ब्राह्मण आदरके योग्य हैं, (इसी कारण तुम्हें भी ब्राह्मण समझकर तुम्हारे प्रति आदरभाव रखनेके कारण तुम्हें शाप नहीं देता हूं) तुम सब जानते हो तो भी स्पष्ट करके करता हूं, सुनो ॥ ५ ॥

योगेन बहुधात्मानं कृत्वा तिष्ठामि मूर्तिषु ।
अग्निहोत्रेषु सत्रेषु क्रियास्वथ मखेषु च ॥ ६ ॥

मैं योगबलसे अपनेको अनेक भागोंमें बांटकर मूर्तियोंमें, अग्निहोत्रोंमें, सत्रों, यज्ञ और सम्पूर्ण क्रियाओंमें विराजता हूं ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वेदोक्तेन विधानेन मयि यद्धूयते हविः।
देवताः पितरश्चैव तेन तृप्ता भवन्ति वै ॥ ७ ॥

वेदोक्त विधानसे मुझमें जो हविर्द्रव्य चढाया जाता है, उससे देवगण और पितर तृप्त होते हैं ॥ ७ ॥

आपो देवगणाः सर्वे आपः पितृगणास्तथा।
दर्शश्च पौर्णमासश्च देवानां पितृभिः सह ॥ ८ ॥

जल ही सब देवता हैं और जल ही पितर हैं। देवता और पितरोंके निमित्त दर्श और पौर्णमास यज्ञ किये जाते हैं ॥ ८ ॥

देवताः पितरस्तस्मात्पितरश्चापि देवताः।
एकीभूताश्च पूज्यन्ते पृथक्त्वेन च पर्वसु ॥ ९ ॥

अतः देवता ही पितर हैं और पितर ही देवता हैं। वे पर्वोंमें कभी एक रूपसे और कभी पृथक् रूपसे पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

देवताः पितरश्चैव जुह्वते मयि यत्सदा।
त्रिदशानां पितॄणां च मुखमेवमहं स्मृतः ॥ १० ॥

देवगण और पितृगण भी मुझमें हमेशा हवि डाला करते हैं। अतः मैं ही उन देवताओं और पितरोंका मुख माना गया हूं ॥ १० ॥

अमावास्यां च पितरः पौर्णमास्यां च देवताः।
मन्मुखेनैव हूयन्ते भुञ्जते च हुतं हविः।
सर्वभक्षः कथं तेषां भविष्यामि मुखं त्वहम् ॥ ११ ॥

अमावास्यामें पितरलोग और पौर्णमासीमें देवलोग आहुति पाते हैं और मेरे मुखसे ही डाली गई हवि खाते हैं, अतः मैं उन (देवताओं और पितरों) का मुखरूप हो करके सर्वभक्षक कैसे बनूं? ॥ ११ ॥

चिन्तयित्वा ततो वह्निश्चक्रे संहारमात्मनः।
द्विजानामग्निहोत्रेषु यज्ञसत्रक्रियासु च ॥ १२ ॥

इसके बाद अग्निने कुछ काल सोचकर ब्राह्मणोंके अग्निहोत्र, सत्र, यज्ञ और दूसरी क्रियाओंसे अपनेको समेट लिया अर्थात् उनसे अपनेको अलग कर लिया ॥ १२ ॥

निरोङ्कारवषट्काराः स्वधास्वाहाविवर्जिताः।
विनाग्निना प्रजाः सर्वास्तत आसन्सुदुःखिताः ॥ १३ ॥

तब सब प्रजायें अग्निके विना, ओंकार, वषट्कार, स्वधा और स्वाहादिसे वर्जित होकर अति दुःखी हो गईं ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथर्षयः समुद्विग्ना देवान्गत्वाब्रुवन्वचः ।
अग्निनाशात्क्रियाभ्रंशाद्भ्रान्ता लोकास्त्रयोऽनघाः ।
विधध्वमत्र यत्कार्यं न स्यात्कालात्ययो यथा ॥ १४ ॥

इस पर ऋषिलोग अति व्याकुल होकर देवताओंके समीप जाकर यह वचन बोले, "हे निष्पाप देवगण ! अग्निके नष्ट होनेके कारण तीनों लोक (अग्निहोत्रादि) क्रियाओंसे वर्जित होकर भ्रान्त हो गए हैं इस समय जो करना उचित समझें, करें, जिससे समय बरबाद न हो ॥ १४ ॥

अथर्षयश्च देवाश्च ब्रह्माणमुपगम्य तु ।
अग्नेराचेदयञ्शापं क्रियासंहारमेव च ॥ १५ ॥

इसके बाद देवता और ऋषिलोग ब्रह्माके समीप जाकर अग्निके शाप और इससे ब्रह्माणोंकी क्रियादिके लोप होनेका समाचार बताया ॥ १५ ॥

भृगुणा वै महाभाग शप्तोऽग्निः कारणान्तरे ।
कथं देवमुखो भूत्वा यज्ञभागाग्रभुक्तथा ।
हुतभुक्सर्वलोकेषु सर्वभक्षत्वमेष्यति ॥ १६ ॥

"हे महाभाग ! किसी कारणसे भृगुने अग्निको शाप दिया है । यज्ञमें दिए जानेवाले भागका सर्व प्रथम भोजन करनेवाले तथा तीनों लोकोंमें दी हुई आहुतियोंको खानेवाले अग्नि देवताओंके मुखरूप होकर सर्व भक्षक कैसे हो सकते हैं ?" ॥ १६ ॥

श्रुत्वा तु तद्वचस्तेषामग्निमाहूय लोककृत् ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं भूतभावनमव्ययम् ॥ १७ ॥

सब लोकोंकी रचना करनेवाले ब्रह्मा उनकी वह बात सुनकर अव्यय अर्थात् कभी नष्ट न होनेवाले और भूतभावन (प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले) अग्निको बुला करके बडे मीठे वचन बोले ॥ १७ ॥

लोकानामिह सर्वेषां त्वं कर्ता चान्त एव च ।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रीन्क्रियाणां च प्रवर्तकः ।
स तथा कुरु लोकेश नोच्छिद्येरन्क्रिया यथा ॥ १८ ॥

"हे अग्ने ! तुम सब लोकोंके कर्ता और संहर्ता हो, तुमही तीनों लोकोंको धारण करते हो और तुम्ही सब अग्निहोत्रादि क्रियाओंके करानेवाले हो, अतएव हे सब लोकोंके ईश्वर अग्ने ! ऐसा करो कि जिससे अग्निहोत्रादि क्रियाओंका लोप न हो ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कस्मादेवं विमूढस्त्वमीश्वरः सन्हुताशनः।
त्वं पवित्रं यदा लोके सर्वभूतगतश्च ह ॥ १९ ॥

तुम आहुतियोंको खानेवाले और लोकपाल होने पर भी क्यों ऐसे मुग्ध हो रहे हो ? तुम इसलोकमें पवित्र और सभी लोकोंकी गति हो ॥ १९ ॥

न त्वं सर्वशरीरेण सर्वभक्षत्वमेष्यसि।
उपादानेऽर्चिषो यास्ते सर्वं धक्ष्यन्ति ताः शिखिन् ॥ २० ॥

अतः तुम सब शरीरसे सर्वभक्षक नहीं होगे। हे ज्वालावाले अग्ने ! जो तुम्हारी ज्वालाएं हैं, वे ग्रहण करने पर (अर्थात् उनके सम्पर्कमें आने पर) ही सर्वभक्षक होंगी ॥ २० ॥

यथा सूर्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि विभाव्यते।
तथा त्वदर्चिर्निर्दग्धं सर्वं शुचि भविष्यति ॥ २१ ॥

जैसे सूर्यकिरणके स्पर्शसे हरेक वस्तु शुद्ध होती है, वैसेही तुम्हारी ज्वालासे जल कर सब वस्तुएँ पवित्र हो जायेंगी ॥ २१ ॥

तदग्ने त्वं महत्तेजः स्वप्रभावाद्विनिर्गतम्।
स्वतेजसैव तं शापं कुरु सत्यमृषेर्विभो।
देवानां चात्मनो भागं गृहाण त्वं मुखे हुतम् ॥ २२ ॥

अतः हे व्यापक अग्ने ! तुम महातेजस्वी हो, इसलिए ऋषि भृगुके अपने ही तेजसे निकले उस शापको अपने ही तेजसे सच करके दिखाओ। और अपने मुखमें आहुतिके रूपमें दिए गए देवोंके और अपने हविके भागको स्वीकार करो ॥ २२ ॥

एवमस्त्विति तं वह्निः प्रत्युवाच पितामहम्।
जगाम शासनं कर्तुं देवस्य परमेष्ठिनः ॥ २३ ॥

अग्निने उस पितामह ब्रह्मासे कहा " एवमस्तु " और परमेष्ठी देवकी आज्ञाका पालन करनेके लिए चले गये ॥ २३ ॥

देवर्षयश्च मुदितास्ततो जग्मुर्यथागतम्।
ऋषयश्च यथापूर्वं क्रियाः सर्वाः प्रचक्रिरे ॥ २४ ॥

देवता और ऋषिलोग भी हर्षित होकर जहांसे जिस प्रकार आए थे, उसी प्रकार वहीं चले गए और ऋषिगण भी पूर्ववत् सब क्रियायें करने लगे ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दिवि देवा मुमुदिरे भूतसंघाश्च लौकिकाः ।
अग्निश्च परमां प्रीतिमवाप हतकल्मषः ॥ २५ ॥

देवलोकमें सम्पूर्ण देव और पृथ्वी पर सब प्राणी बहुत खुश हुए । अग्नि भी शापसे मुक्त होकर अति प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥

एवमेष पुरावृत्त इतिहासोऽग्निशापजः ।
पुलोमस्य विनाशश्च च्यवनस्य च संभवः ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ (६९८)

यह अग्निके शाप–सम्बन्धी पुराना इतिहास, पुलोम राक्षसका नाश और च्यवनकी उत्पत्ति कही गई ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ॥ ६९८ ॥

: ८ :

सूत उवाच

स चापि च्यवनो ब्रह्मन्भार्गवोऽजनयत्सुतम् ।
सुकन्यायां महात्मानं प्रमतिं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि हे ब्रह्मन् ! भृगुनन्दन उन च्यवनने भी सुकन्याके गर्भमें प्रमति नामक एक अत्यन्त तेजस्वी महात्मा पुत्र उत्पन्न किया ॥ १ ॥

प्रमतिस्तु रुरुं नाम घृताच्यां समजीजनत् ।
रुरुः प्रमद्वरायां तु शुनकं समजीजनत् ॥ २ ॥

प्रमतिने भी घृताची (एक अप्सरा) के गर्भसे रुरु नामक पुत्र उत्पन्न किया, रुरुने प्रमद्वरासे शुनकको उत्पन्न किया ॥ २ ॥

तस्य ब्रह्मन्रुरोः सर्वं चरितं भूरितेजसः ।
विस्तरेण प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वमशेषतः ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं उस अति तेजस्वी रुरुके सम्पूर्ण चरित्रको विस्तारसे कहता हूं, तुम उसे पूरी तरह सुनो ॥ ३ ॥

ऋषिरासीन्महान्पूर्वं तपोविद्यासमन्वितः ।
स्थूलकेश इति ख्यातः सर्वभूतहिते रतः ॥ ४ ॥

हे विप्रर्षि ! पहिले तप और विद्यासे युक्त और सर्व भूतोंके हितैषी स्थूलकेशके नामसे प्रसिद्ध एक महान् महर्षि हो गए हैं ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतस्मिन्नेव काले तु मेनकायां प्रजज्ञिवान्।
गन्धर्वराजो विप्रर्षे विश्वावसुरिति श्रुतः ॥ ५ ॥
अथाप्सरा मेनका सा तं गर्भं भृगुनन्दन।
उत्ससर्ज यथाकालं स्थूलकेशाश्रमं प्रति ॥ ६ ॥

हे विप्रर्षे ! उसी समय विश्वावसुके नामसे प्रसिद्ध एक गन्धर्वराजने मेनका अप्सरामें एक सन्तान उत्पन्न की। बादमें हे भृगुनन्दन ! उस अप्सरा मेनकाने यथासमय उस गर्भको स्थूलकेश ऋषिवरके आश्रमके निकट छोड दिया ॥ ५–६ ॥

उत्सृज्य चैव तं गर्भं नद्यास्तीरे जगाम ह।
कन्याममरगर्भाभां ज्वलन्तीमिव च श्रिया ॥ ७ ॥
तां ददर्श समुत्सृष्टां नदीतीरे महानृषिः।
स्थूलकेशः स तेजस्वी विजने बन्धुवर्जिताम् ॥ ८ ॥

और नदीतट पर उस गर्भको छोडकर चली गई। बादमें अमर देवकी कन्याके समान तेजस्वी तथा तेजसे जलती हुई की तरह, जनरहित नदीके किनारे छोडी गई, तथा भाई बन्धुओंसे रहित उस कन्याको उस तेजस्वी महान् ऋषि स्थूलकेशने देखा ॥ ७–८ ॥

स तां दृष्ट्वा तदा कन्यां स्थूलकेशो द्विजोत्तमः।
जग्राहाथ मुनिश्रेष्ठः कृपाविष्टः पुपोष च।
ववृधे सा वरारोहा तस्याश्रमपदे शुभा ॥ ९ ॥

ब्राह्मणों और मुनियोंमें श्रेष्ठ स्थूलकेशने तब उस कन्याको देखकर दयावश हो करके उठा लिया और वे उसे पालने लगे। वह कमलके समान सुन्दर और कल्याणी कन्या ऋषिके पवित्र आश्रममें बढने लगी ॥ ९ ॥

प्रमदाभ्यो वरा सा तु सत्त्वरूपगुणान्विता।
ततः प्रमद्वरेत्यस्या नाम चक्रे महानृषिः ॥ १० ॥

रूप, सत्त्व तथा गुणादिसे युक्त वह कन्या संपूर्ण प्रमदाओं (स्त्रियोंमें) से अच्छी थी, इस कारण महर्षिने उस कन्याका नाम प्रमद्वरा रख दिया ॥ १० ॥

तामाश्रमपदे तस्य रुरुर्दृष्ट्वा प्रमद्वराम्।
बभूव किल धर्मात्मा मदनानुगतात्मवान् ॥ ११ ॥

धर्मात्मा आत्मशक्तिवाले रुरु उस ऋषिके आश्रममें उस प्रमद्वराको देखकर कामसे पीडित हो गए ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पितरं सखिभिः सोऽथ वाचयामास भार्गवः ।
प्रमतिश्चाभ्ययाच्छ्रुत्वा स्थूलकेशं यशस्विनम् ॥ १२ ॥

भृगुवंशीय रुरुने अपने प्यारे साथियोंसे पिताके समीप अपना अभिप्राय प्रगट करवाया। (रुरुके पिता) प्रमति भी यह सुनकर यशस्वी स्थूलकेशके पास गये ॥ १२ ॥

ततः प्रादात्पिता कन्यां रुरवे तां प्रमद्वराम् ।
विवाहं स्थापयित्वाग्रे नक्षत्रे भगदैवते ॥ १३ ॥

प्रमद्वराके पिता स्थूलकेशने रुरुके लिए वह कन्या प्रमद्वरा देदी । उत्तर फाल्गुनी नक्षत्रमें उनके विवाहका दिन भी निश्चित कर दिया ॥ १३ ॥

ततः कतिपयाहस्य विवाहे समुपस्थिते ।
सखीभिः क्रीडती सार्धं सा कन्या वरवर्णिनी ॥ १४ ॥
नापश्यत प्रसुप्तं वै भुजगं तिर्यगायतम् ।
पदा चैनं समाक्रामन्मुमूर्षुः कालचोदिता ॥ १५ ॥

इसके बाद विवाहके कुछ दिन पहिले अलौकिक रूपवती उस कन्याने सहेलियोंके संग खेलते हुए तिरछे लेटे हुए एक लंबे सर्पको नहीं देखा और मरनेकी इच्छावाली उसने कालसे प्रेरित होकर उस सर्प पर पैर रख दिया ॥ १४–१५ ॥

स तस्याः संप्रमत्तायाश्चोदितः कालधर्मणा ।
विषोपलिप्तान्दशनान्भृशमङ्गे न्यपातयत् ॥ १६ ॥

कालधर्मसे प्रेरित होकर सर्पने भी प्रमत्त उस बालाकी देहमें विषैले दांतोंको बुरी तरह गडा दिया ॥ १६ ॥

सा दष्टा सहसा भूमौ पतिता गतचेतना ।
व्यसुरप्रेक्षणीयापि प्रेक्षणीयतमाकृतिः ॥ १७ ॥

सर्पसे काटी जाकर वह प्रमद्वरा निष्प्राण होकर भूमिपर अचानक गिर पडी और जो प्राण रहित होनेके कारण देखने योग्य होकर भी देखनेके अयोग्य हो गई ॥ १७ ॥

प्रसुप्तेवाभवच्चापि भुवि सर्पविषार्दिता ।
भूयो मनोहरतरा बभूव तनुमध्यमा ॥ १८ ॥

उसका रंग बदला जान पडने लगा, कि मानों वह सर्प-विषसे जली धरती पर सो रही है; अतः मरनेपर भी वह पतली कमरवाली प्रमद्वरा और ज्यादा सुन्दर हो गई ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ददर्श तां पिता चैव ते चैवान्ये तपस्विनः।
विचेष्टमानां पतितां भूतले पद्मवर्चसम् ॥ १९ ॥

उसके पिता स्थूलकेश और दूसरे तपस्वियोंने कमलके समान तेजवाली तथा भूमिपर पडी उस अचेत कन्याको देखा ॥ १९ ॥

ततः सर्वे द्विजवराः समाजग्मुः कृपान्विताः।
स्वस्त्यात्रेयो महाजानुः कुशिकः शङ्खमेखलः ॥ २० ॥

तब सब ब्राह्मणश्रेष्ठ दयायुक्त होकर (उसे देखनेको) उपस्थित हुए। स्वस्त्यात्रेय, महाजानु, कुशिक, शङ्खमेखल, ॥ २० ॥

भारद्वाजः कौणकुत्स आर्ष्टिषेणोऽथ गौतमः।
प्रमतिः सह पुत्रेण तथान्ये वनवासिनः ॥ २१ ॥
तां ते कन्यां व्यसुं दृष्ट्वा भुजङ्गस्य विषार्दिताम्।
रुरुदुः कृपयाविष्टा रुरुस्त्वार्तो बहिर्ययौ ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ (७२०)

भरद्वाज, कौणकुत्स, आर्ष्टिषेण और गौतम, प्रमति, उनके पुत्र रुरु और दूसरे वनवासी लोग उस कन्याको सर्पविषसे जली हुई और प्राणरहित देखकर रोने लगे। रुरु तो शोकाकुल हो और करुणासे भरकर बाहर चले गये ॥ २१—२२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें आठवां अध्याय समाप्त ॥ ७२० ॥

: ९ :

सूत उवाच

तेषु तत्रोपविष्टेषु ब्राह्मणेषु समन्ततः।
रुरुश्चुक्रोश गहनं वनं गत्वा सुदुःखितः ॥ १ ॥

सूत बोले— कि ब्राह्मणोंके उस स्थानमें चारों ओर बैठ जाने पर रुरु अति दुःखी होकरके घने वनमें जाकर रोने लगे ॥ १ ॥

शोकेनाभिहतः सोऽथ विलपन्करुणं बहु।
अब्रवीद्वचनं शोचन्प्रियां चिन्त्य प्रमद्वराम् ॥ २ ॥

और अति शोकसे विवश होकर उसने करुण स्वरसे बहुत विलाप करते हुए अपनी प्रिया प्रमद्वराकी चिन्ता करके शोकसे ये वचन कहे ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शेते सा भुवि तन्वङ्गी मम शोकविवर्धिनी।
बान्धवानां च सर्वेषां किं नु दुःखमतः परम् ॥ ३ ॥

" मेरा शोक बढानेवाली वह पतले अंगोंवाली प्रमद्वरा धरती पर सो रही है, मेरे और बांधवोंके लिये इससे अधिक दुःख और क्या होगा ॥ ३ ॥

यदि दत्तं तपस्तप्तं गुरवो वा मया यदि।
सम्यगाराधितास्तेन संजीवतु मम प्रिया ॥ ४ ॥

यदि मैंने दान दिया हो, तप किया हो या गुरुजनोंकी अच्छी सेवा की हो, तो इससे मेरी प्रिया जी उठे ॥ ४ ॥

यथा जन्मप्रभृति वै यतात्माहं धृतव्रतः।
प्रमद्वरा तथाद्यैव समुत्तिष्ठतु भामिनी ॥ ५ ॥

और यदि मैं जन्मसे व्रतशील और जितेंद्रिय रहा हूं, तो आज ही यह सुन्दरी प्रमद्वरा उठ खडी हो ॥ ५ ॥

देवदूत उवाच

अभिधत्से ह यद्वाचा रुरो दुःखेन तन्मृषा।
न तु मर्त्यस्य धर्मात्मन्नायुरस्ति गतायुषः ॥ ६ ॥

देवदूत बोले-- " हे रुरो ! तुम दुःखी होकर वाणीसे जो कुछ कह रहे हो, सब व्यर्थ है, क्योंकि हे धर्मात्मन् ! जिसकी आयु पूरी हो गई है, उसे फिर आयु नहीं मिल सकती ॥ ६ ॥

गतायुरेषा कृपणा गन्धर्वाप्सरसोः सुता।
तस्माच्छोके मनस्तात मा कृथास्त्वं कथंचन ॥ ७ ॥

उस बेचारी अप्सरा और गंधर्वकी कन्याकी आयु पूरी हो चुकी है, अत एव तात ! तुम शोकसे चित्तको किसी प्रकार भी विकल मत करो ॥ ७ ॥

उपायश्चात्र विहितः पूर्वं देवैर्महात्मभिः।
तं यदीच्छसि कर्तुं त्वं प्राप्स्यसीमां प्रमद्वराम् ॥ ८ ॥

परन्तु महात्मा देवताओंने पहले इसके लिये एक उपाय बताया है, यदि तुम वह करना चाहो, तो इस प्रमद्वराको पा सकोगे " ॥ ८ ॥

रुरुरुवाच

क उपायः कृतो देवैर्ब्रूहि तत्त्वेन खेचर।
करिष्ये तं तथा श्रुत्वा त्रातुमर्हति मां भवान् ॥ ९ ॥

रुरु बोले-- " हे आकाशमें विचरनेवाले देवदूत ! देवताओंने क्या उपाय बताया है, उसे ठीक ठीक बताओ; उसे सुनकर उसके अनुसार कार्य करूंगा, तुम मुझे बचाओ । " ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देवदूत उवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छस्व कन्यायै भृगुनन्दन।
एवमुत्थास्यति रुरो तव भार्या प्रमद्वरा ॥ १० ॥

देवदूत बोले-- " हे भृगुनन्दन रुरो! तुम उस कन्याको अपनी आयुका आधाभाग दे दो, ऐसा करने ही से तुम्हारी पत्नी प्रमद्वरा जी उठेगी" ॥ १० ॥

रुरुरुवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै खेचरोत्तम।
शृङ्गाररूपाभरणा उत्तिष्ठतु मम प्रिया ॥ ११ ॥

रुरु बोले " आकाशमें विचरनेवालोंमें उत्तम देवदूत! मैं इस कन्याको अपनी आयुका अर्द्ध-भाग देता हूं, शृंगार, रूप और आभूषणोंसे सुशोभिता मेरी प्रिया प्रमद्वरा फिर जी उठे।" ॥ ११ ॥

सूत उवाच

ततो गन्धर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमौ।
धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम् ॥ १२ ॥

सूत बोले-- कि अनन्तर श्रेष्ठ देवदूत और गंधर्वराज दोनों धर्मराजके समीप जाकर यह वचन बोले ॥ १२ ॥

धर्मराजायुषोऽर्धेन रुरोर्भार्या प्रमद्वरा।
समुत्तिष्ठतु कल्याणी मृतैव यदि मन्यसे ॥ १३ ॥

" हे धर्मराज! यदि आप अनुमति दें, तो रुरुकी मरी हुई स्त्री कल्याणी प्रमद्वरा रुरुकी आधी आयुसे जी जाए।" ॥ १३ ॥

धर्मराज उवाच

प्रमद्वरा रुरोर्भार्या देवदूत यदीच्छसि।
उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरोरेव समन्विता ॥ १४ ॥

धर्मराज बोले- " हे देवदूत! यदि तुम ऐसा ही चाहते हो, तो रुरुकी पत्नी प्रमद्वरा रुरुकी आधी आयु पाकर फिर जी जाये।" ॥ १४ ॥

सूत उवाच

एवमुक्ते ततः कन्या सोदतिष्ठत्प्रमद्वरा।
रुरोस्तस्यायुषोऽर्धेन सुप्तेव वरवर्णिनी ॥ १५ ॥

सूत बोले-- धर्मराजके ऐसा कहनेपर वरवर्णिनी कन्या प्रमद्वरा उस रुरुकी आधी आयु पाकर मानों निद्रासे जगनेके समान उठ बैठी ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतद्दृष्टं भविष्ये हि रुरोरुत्तमतेजसः ।
आयुषोऽतिप्रवृद्धस्य भार्यार्थेऽर्धं हृसात्विति ॥ १६ ॥

भविष्यत्में भी यह देखनेमें आवेगा, कि उत्तम तेजस्वी रुरुकी दीर्घ आयुका आधा अंश भार्याके निमित्त क्षय हुआ था ॥ १६ ॥

तत इष्टेऽहनि तयोः पितरौ चक्रतुर्मुदा ।
विवाहं तौ च रेमाते परस्परहितैषिणौ ॥ १७ ॥

अनन्तर रुरु और प्रमद्वराके पिताओं (प्रमति तथा स्थूलकेश) ने अति आनन्दसे उत्तम दिनमें उनका विवाह कर दिया । वे दोनों परस्परके हितकी इच्छा करते हुए क्रीडा करने लगे ॥ १७ ॥

स लब्ध्वा दुर्लभां भार्यां पद्मकिंजल्कसप्रभाम् ।
व्रतं चक्रे विनाशाय जिह्मगानां धृतव्रतः ॥ १८ ॥

कमलतन्तुके समान रूपवती दुर्लभा भार्याको पाकर उस व्रतशील रुरुने सर्पोंको नष्ट करनेका प्रण ठाना ॥ १८ ॥

स दृष्ट्वा जिह्मगान्सर्वांस्तीव्रकोपसमन्वितः ।
अभिहन्ति यथासन्नं गृह्य प्रहरणं सदा ॥ १९ ॥

सर्प देखते ही वह अति क्रोधवश होकर लाठीसे अपनी शक्तिके अनुसार उसे नष्ट कर देता था ॥ १९ ॥

स कदाचिद्वनं विप्रो रुरुरभ्यगमन्महत् ।
शयानं तत्र चापश्यड्डुण्डुभं वयसान्वितम् ॥ २० ॥

एक दिन वह ज्ञानी रुरु घने वनमें गया और उसने एक बूढे दुमुंही सांपको वहां सोते हुए देखा ॥ २० ॥

तत उद्यम्य दण्डं स कालदण्डोपमं तदा ।
अभ्यघ्नद्रुषितो विप्रस्तमुवाचाथ डुण्डुभः ॥ २१ ॥

(उसे देखकर) क्रोधित होकर यमदण्डके समान लकडी उठा करके वह ज्ञानी रुरु उसको नष्ट करनेको चले तो दुमुंही सांप बोला ॥ २१ ॥

नापराध्यामि ते किंचिदहमद्य तपोधन ।
संरम्भात्तत्किमर्थं मामभिहंसि रुषान्वितः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ७६८ ॥

"हे तपोधन! आज मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, तो भी क्रोधवश होकर मुझको क्यों मारते हो ?" ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें नौवां अध्याय समाप्त ॥ ७६८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १० :

रुरुरुवाच

मम प्राणसमा भार्या दष्टासीद्भुजगेन ह।
तत्र मे समयो घोर आत्मनोरग वै कृतः ॥ १ ॥

रुरु बोला– "हे भुजंग! एक सर्पने मेरी प्राण प्यारी भार्याको डस लिया था, इससे मैंने यह अपना भयानक नियम बना लिया है ॥ १ ॥

हन्यां सदैव भुजगं यं यं पश्येयमित्युत।
ततोऽहं त्वां जिघांसामि जीवितेन विमोक्ष्यसे ॥ २ ॥

कि जब जिस जिस सर्पको देखूंगा, तभी उसको नष्ट कर दूंगा, इसलिये मैं तुम्हें मारनेकी इच्छा करता हूँ, आज तुम जिन्दगीसे छूट जाओगे ॥ २ ॥

डुण्डुभ उवाच

अन्ये ते भुजगा विप्र ये दशन्तीह मानवान्।
डुण्डुभानहिगन्धेन न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥

सांप बोला– "हे ज्ञानी! जो सर्प मनुष्योंको डंसते हैं, वे दूसरी जातिके होते हैं, अत एव सर्प नामकी गन्ध पाते ही विषरहित दुमुंहीकी हिंसा करना आपको उचित नहीं है ॥ ३ ॥

एकानर्थान्पृथगर्थानेकदुःखान्पृथक्सुखान्।
डुण्डुभान्धर्मविद्भूत्वा न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥ ४ ॥

दुमुंही सर्प जाति अनर्थ भोगनेमें सब सर्पोंके समान है, पर स्वभावमें उनसे पृथक् है। अमंगल और दुःख भोगनेके कालमें दोनों समान हैं, किन्तु सुख सबका अलग अलग है, अत एव धर्मशास्त्रमें पण्डित होकर आपको दुमुंही जातिकी हिंसा नहीं करना चाहिये ॥४॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भुजगस्य रुरुस्तदा।
नावधीद्भयसंविग्न ऋषिं मत्वाथ डुण्डुभम् ॥ ५ ॥

सूत बोले– कि तब भयसे जकडे हुए रुरुने उस सर्पकी ऐसी बात सुनकर उस दुमुंही को ऋषि मानकर नहीं मारा ॥ ५ ॥

उवाच चैनं भगवन्रुरुः संशमयन्निव।
कामया भुजग ब्रूहि कोऽसीमां विक्रियां गतः ॥ ६ ॥

रुरु उसको ढांढस देकर बोले– "हे भगवन् भुजंग! मुझसे बोलो, कि ऐसी दशाको प्राप्त हुए हुए तुम कौन हो" ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

डुण्डुभ उवाच

अहं पुरा रुरो नाम्ना ऋषिरासं सहस्रपात् ।
सोऽहं शापेन विप्रस्य भुजगत्वमुपागतः ॥ ७ ॥

दुमुंही बोला– "हे रुरो ! मैं पहिले सहस्रपात् नामका एक ऋषि था, बादमें वह मैं ब्राह्मणके शापसे सर्पत्वको प्राप्त हो गया । " ॥ ७ ॥

रुरुरुवाच

किमर्थं शप्तवान्क्रुद्धो द्विजस्त्वां भुजगोत्तम ।
कियन्तं चैव कालं ते वपुरेतद्भविष्यति ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ७७३ ॥

रुरु बोले– "हे सर्पश्रेष्ठ ! ब्राह्मणने क्रोधित होकर किस हेतु तुमको शाप दिया था ? और कितने समयतक तुम्हारा यह सर्प-शरीर रहेगा ? " ॥ ८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें दसवां अध्याय समाप्त ॥ ७७६ ॥

: ११ :

डुण्डुभ उवाच

सखा बभूव मे पूर्वं खगमो नाम वै द्विजः ।
भृशं संशितवाक्तात तपोबलसमन्वितः ॥ १ ॥

दुमुंही बोला– "पहिले खगम नामक बहुत सत्यवादी, तपोबलसे युक्त ब्राह्मण मेरा मित्र था ॥ १ ॥

स मया क्रीडता बाल्ये कृत्वा तार्णमथोरगम् ।
अग्निहोत्रे प्रसक्तः सन्भीषितः प्रमुमोह वै ॥ २ ॥

एक दिन बालस्वभावसे खेलते हुए मैंने तृणका सर्प बनाकर अग्निहोत्रमें लगे हुए उसको डराया, इससे वह मूर्च्छित हो गया ॥ २ ॥

लब्ध्वा च स पुनः संज्ञां मामुवाच तपोधनः ।
निर्दहन्निव कोपेन सत्यवाक्संशितव्रतः ॥ ३ ॥

बादमें वह व्रतशील, सत्यवादी तपोधन होशमें आकर, मानो मुझको कोपाग्निसे जलाते हुए बोले ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यथावीर्यस्त्वया सर्पः कृतोऽयं मद्विभीषया।
तथावीर्यो भुजङ्गस्त्वं मम कोपाद्भविष्यसि ॥ ४ ॥

" तुमने जिस प्रकार मुझको भारी भयमें डालनेके निमित्त वीर्यरहित तृणका यह सर्प बनाया है, उसी प्रकार मेरे कोपसे तुम भी वीर्यरहित सर्प होगे ॥ ४ ॥

तस्याहं तपसो वीर्यं जानमानस्तपोधन।
भृशमुद्विग्नहृदयस्तमवोचं वनौकसम् ॥ ५ ॥

हे तपोधन! मैं उनकी तपस्याके सामर्थ्यसे परिचित था, इस हेतु मैं अति चिन्तित चित्तसे उस वनवासी ऋषिसे बोला ॥ ५ ॥

प्रयतः संभ्रमाच्चैव प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः।
सखेति हसतेदं ते नर्मार्थं वै कृतं मया ॥ ६ ॥

वेगसे और संभ्रमपूर्वक चरणोंमें प्रणाम कर तथा हाथ जोड सामने खडा होकर बोला– " हंसते हुए मैंने मित्र कह कर खेलके निमित्त हंसीमें ऐसा किया है ॥ ६ ॥

क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्शापोऽयं विनिवर्त्यताम्।
सोऽथ मामब्रवीद्दृष्ट्वा भृशमुद्विग्नचेतसम् ॥ ७ ॥

अतः हे ब्रह्मन्! मुझे क्षमा करें और यह शाप लौटा लें, अनंतर वह मुझे अति उदास चित्तवाला देखकर बोला ॥ ७ ॥

मुहुरुष्णं विनिःश्वस्य सुसंभ्रान्तस्तपोधनः।
नानृतं वै मया प्रोक्तं भविनेदं कथंचन ॥ ८ ॥

व्यथित होकर बारबार गर्म सांस लेते हुए वह तपोधन बोले– मैंने जो बात कही है, वह कभी झूठी नहीं हो सकती ॥ ८ ॥

यत्तु वक्ष्यामि ते वाक्यं शृणु तन्मे धृतव्रत।
श्रुत्वा च हृदि ते वाक्यमिदमस्तु तपोधन ॥ ९ ॥

अतएव हे व्रतशील! तुमसे जो कहता हूं, वह मेरी बात सुनो। हे तपोधन! मेरी यह बात सुनकर सदा तुम्हारे हृदयमें रहे अर्थात् मेरी बात हमेशा ध्यानमें रखना ॥ ९ ॥

उत्पत्स्यति रुरुर्नाम प्रमतेरात्मजः शुचिः।
तं दृष्ट्वा शापमोक्षस्ते भविता नचिरादिव ॥ १० ॥

प्रमतिके रुरु नामक शुद्धाचारी एक पुत्र उत्पन्न होगा, उनको देखकर शीघ्र ही तुम्हारा शाप छूट जाएगा ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स त्वं रुरुरिति ख्यातः प्रमतेरात्मजः शुचिः ।
स्वरूपं प्रतिलभ्याहमद्य वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ११ ॥

तुम ही वह प्रमतिके पुत्र प्रसिद्ध पवित्र रुरु हो, अतएव मैं इस समय अपना स्वरूप पाकर तुमको कुछ हितोपदेश करूंगा ॥ ११ ॥

अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतां स्मृतः ।
तस्मात्प्राणभृतः सर्वान्न हिंस्याद्ब्राह्मणः क्वचित् ॥ १२ ॥

अहिंसा ही सब जीवोंका परम धर्म माना गया है, अतएव ब्राह्मण सब प्राणियोंमें किसी जीवकी हिंसा न करे ॥ १२ ॥

ब्राह्मणः सौम्य एवेह जायतेति परा श्रुतिः ।
वेदवेदाङ्गवित्तात सर्वभूताभयप्रदः ॥ १३ ॥

हे तात ! पहलेकी यह श्रुति है कि ब्राह्मण शान्तचित्त, वेद-वेदांगविद् और सर्वभूतोंका अभयदाता होकर ही उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥

अहिंसा सत्यवचनं क्षमा चेति विनिश्चितम् ।
ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणादपि ॥ १४ ॥

अहिंसा, सत्यवचन, क्षमा ये वेदाभ्यासकी अपेक्षा भी ब्राह्मणके परम धर्म माने गए हैं ॥ १४ ॥

क्षत्रियस्य तु यो धर्मः स नेहेष्यति वै तव ।
दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम् ॥ १५ ॥

दण्डधारण, उग्रता और प्रजापालन रूपी जो क्षत्रियके धर्म हैं, वह आपके लिये मंगलदायी नहीं हैं ॥ १५ ॥

तदिदं क्षत्रियस्यासीत्कर्म वै शृणु मे रुरो ।
जनमेजयस्य धर्मात्मन्सर्पाणां हिंसनं पुरा ॥ १६ ॥
परित्राणं च भीतानां सर्पाणां ब्राह्मणादपि ।
तपोवीर्यबलोपेताद्वेदवेदाङ्गपारगात् ।
आस्तीकाद्द्विजमुख्याद्वै सर्पसत्रे द्विजोत्तम ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ (७९३)

वह क्षत्रिय ही के कार्य हैं, हे द्विजोत्तम रुरो ! तुम मुझसे सुनो । हे धर्मात्मा ! पूर्वकालमें राजा जनमेजयका सर्पयज्ञमें सर्पोंकी हिंसा करना, पर तपोवीर्य और बलसे युक्त, वेद-वेदांगविद्, द्विजश्रेष्ठ आस्तीक मुनिके द्वारा उस सर्पयज्ञमें भयार्त सर्पोंकी रक्षा आदि सब वृत्तान्त सुनो ॥ १६-१७ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ७९३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२ :

रुरुरुवाच

कथं हिंसितवान्सर्पान्क्षत्रियो जनमेजयः।
सर्पा वा हिंसितास्तात किमर्थं द्विजसत्तम ॥ १ ॥

रुरु बोला-- " हे द्विजश्रेष्ठ तात! राजा जनमेजयने किस प्रकार सर्पोंको मारा और उसने किस कारण सर्पोंको नष्ट किया था ? ॥ १ ॥

किमर्थं मोक्षिताश्चैव पन्नगास्तेन शंस मे।
आस्तीकेन तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥

उस आस्तीक मुनिने फिर किस हेतु उनको उस हिंसासे मुक्त किया ? मैं वह सब सुनना चाहता हूं। " अतः मुझसे कहो ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

श्रोष्यसि त्वं रुरो सर्वमास्तीकचरितं महत्।
ब्राह्मणानां कथयतामित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ३ ॥

ऋषिवर बोले— " हे रुरो ! तुम ब्राह्मणोंके द्वारा कहे जाते हुए आस्तीकका बहुत बडा चरित्र सुनोगे। " यह कह कर वह ऋषि गायब हो गए ॥ ३ ॥

सूत उवाच

रुरुश्चापि वनं सर्वं पर्यधावत्समन्ततः।
तमृषिं द्रष्टुमन्विच्छन्संश्रान्तो न्यपतद्भुवि ॥ ४ ॥

सूत बोले— रुरु उस ऋषिको देखनेकी इच्छासे उस वनमें चारों ओर दौडने लगा, अन्तमें थक कर धरती पर गिर गया ॥ ४ ॥

लब्धसंज्ञो रुरुश्चायात्तच्चाचख्यौ पितुस्तदा।
पिता चास्य तदाख्यानं पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वाणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ समाप्तं पौलोमपर्व ॥ (७९८)

बादमें उन्होंने चेतना पाकर पिताके समीप आ करके सम्पूर्ण वृत्तांत कहा और पूछे जानेपर उसके पिताने भी सब कथा प्रारम्भसे अन्ततक संपूर्ण कह सुनाई ॥ ५ ॥

॥ महाभारत आदिपर्वमें बारहवां अध्याय और पौलोमपर्व समाप्त ॥ (७९८)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १३ :

शौनक उवाच

किमर्थं राजशार्दूलः स राजा जनमेजयः ।
सर्पसत्रेण सर्पाणां गतोऽन्तं तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

शौनक बोले– " हे सूत ! भूपालोंमें सिंहरूपी उस राजा जनमेजयने किस हेतु सर्पयज्ञका अनुष्ठान कर सर्पोंको नष्ट किया था; मुझे बताओ ॥ १ ॥

आस्तीकश्च द्विजश्रेष्ठः किमर्थं जपतां वरः ।
मोक्षयामास भुजगान्दीप्तात्तस्माद्धुताशनात् ॥ २ ॥

और जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ द्विजश्रेष्ठ तपस्वी आस्तीक मुनिने किस कारणसे उस प्रज्ज्वलित अग्निसे सर्पोंकी रक्षा की यह भी बताओ ॥ २ ॥

कस्य पुत्रः स राजासीत्सर्पसत्रं य आहरत् ।
स च द्विजातिप्रवरः कस्य पुत्रो वदस्व मे ॥ ३ ॥

जिस राजाने सर्पयज्ञका अनुष्ठान किया था, वह किसका पुत्र था ? और वह द्विजवर आस्तीक किसका पुत्र था ? यह मुझे बताओ " ॥ ३ ॥

सूत उवाच

महदाख्यानमास्तीकं यत्रैतत्प्रोच्यते द्विज ।
सर्वमेतदशेषेण शृणु मे वदतां वर ॥ ४ ॥

सूत बोले– " हे द्विज और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, मैं अति बृहत् आस्तीक-वृत्तान्तको, जो मुनियों द्वारा कहा जाता है, संपूर्ण कहता हूं, सुनो । " ॥ ४ ॥

शौनक उवाच

श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण कथामेतां मनोरमाम् ।
आस्तीकस्य पुराणस्य ब्राह्मणस्य यशस्विनः ॥ ५ ॥

शौनक बोले-- " पुरातन और यशस्वी ब्राह्मण आस्तीककी यह मनोहरणी कथा विस्तृत रूपसे सुनना चाहता हूं " ॥ ५ ॥

सूत उवाच

इतिहासमिमं वृद्धाः पुराणं परिचक्षते ।
कृष्णद्वैपायनप्रोक्तं नैमिषारण्यवासिनः ॥ ६ ॥

सूत बोले-- " हे नैमिषारण्यमें रहनेवालो ! कृष्ण द्वैपायन द्वारा कहे गए इस इतिहासको ब्राह्मण गण पुराण कहते हैं । " ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पूर्वं प्रचोदितः सूतः पिता मे लोमहर्षणः।
शिष्यो व्यासस्य मेधावी ब्राह्मणैरिदमुक्तवान् ॥ ७ ॥

पहिले व्यासदेवके शिष्य बुद्धिमान् सूतकुलोद्भव मेरे पिता लोमहर्षणने ब्राह्मणोंसे पूछे जाकर यह उपाख्यान कह सुनाया था ॥ ७ ॥

तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवक्ष्यामि यथातथम्।
इदमास्तीकमाख्यानं तुभ्यं शौनक पृच्छते ॥ ८ ॥

मैं उनके मुखसे सुन कर हे शौनक! यह आस्तीक कथा मैं पूछनेवाले तुम्हें यथार्थरूपसे कहूंगा ॥ ८ ॥

आस्तीकस्य पिता ह्यासीत्प्रजापतिसमः प्रभुः।
ब्रह्मचारी यताहारस्तपस्युग्रे रतः सदा ॥ ९ ॥

आस्तीकके पिता ब्रह्माके समान प्रभावी, ब्रह्मचारी, नियमित भोजी, महातपस्वी, सदा कठोर तपमें नियुक्त थे, ॥ ९ ॥

जरत्कारुरिति ख्यात ऊर्ध्वरेता महानृषिः।
यायावराणां धर्मज्ञः प्रवरः संशितव्रतः ॥ १० ॥

वे ऊर्ध्वरेता, यायावरवंशतिलक, धर्मज्ञ, व्रतशील जरत्कारुके नामसे प्रसिद्ध महान् ऋषि थे ॥ १० ॥

अटमानः कदाचित्स स्वान्ददर्श पितामहान्।
लम्बमानान्महागर्ते पादैरूर्ध्वैरधोमुखान् ॥ ११ ॥

एक दिन भ्रमण करते हुए उसने एक बडे गड्ढेमें पैर ऊपर और मुंह नीचेकी ओर करके लटके हुए अपने पितामहोंको देखा ॥ ११ ॥

तानब्रवीत्स दृष्ट्वैव जरत्कारुः पितामहान्।
के भवन्तोऽवलम्बन्ते गर्तेऽस्मिन्वा अधोमुखाः ॥ १२ ॥

जरत्कारुने यह देखकर उन पितामहोंसे पूछा—"तुम कौन हो? और किस हेतु इस गड्ढेमें औंधे मुंह लटक रहे हो ॥ १२ ॥

वीरणस्तम्बके लग्नाः सर्वतः परिभक्षिते।
मूषकेन निगूढेन गर्तेऽस्मिन्नित्यवासिना ॥ १३ ॥

इस गड्ढेमें सदा छिप कर रहनेवाले चूहेके द्वारा चारों ओरसे काटे हुए खसखसके गुच्छेमें लटके हुए हो" ॥ १३ ॥

पितर ऊचुः

यायावरा नाम वयमृषयः संशितव्रताः।
संतानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्नधो गच्छाम मेदिनीम् ॥ १४ ॥

पितरोंने कहा—"हम यायावर नामक व्रतशील ऋषि हैं। हे ब्रह्मन्! वंशके लोप हो जानेसे हम अधोभूमिको जा रहे हैं" ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अस्माकं संततिस्त्वेको जरत्कारुरिति श्रुतः ।
मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां तप एव समास्थितः ॥ १५ ॥

पर हम बुरे भाग्यवालोंकी जरत्कारु नामक एक दुर्भाग्यशाली सन्तान है। वह केवल तपमें ही रमा करता है ॥ १५ ॥

न स पुत्राञ्जनयितुं दारान्मूढश्चिकीर्षति ।
तेन लम्बामहे गर्ते सन्तानप्रक्षयादिह ॥ १६ ॥

पुत्रोत्पादनके निमित्त वह मूर्ख विवाह भी करना नहीं चाहता । अत एव वंशलोप होनेके कारण हम इस गड्ढेमें लटके हुए हैं ॥ १६ ॥

अनाथास्तेन नाथेन यथा दुष्कृतिनस्तथा ।
कस्त्वं बन्धुरिवास्माकमनुशोचसि सत्तम ॥ १७ ॥

हम लोग उसके कारण सनाथ रहने पर भी पापिष्ठोंके समान अनाथसे हो गए हैं । साधु शिरोमणि ! तुम कौन हो, कि हमारे मित्रके सदृश हमारे लिए चिन्ता करते हो ॥ १७ ॥

ज्ञातुमिच्छामहे ब्रह्मन्को भवानिह धिष्ठितः ।
किमर्थं चैव नः शोच्याननुकम्पितुमर्हसि ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! हम जानना चाहते हैं, कि तुम कौन हो और किस हेतु हमारी शोचनीय दशा देखकरके यहां खडे होकर शोक प्रकाश कर रहे हो ? " ॥ १८ ॥

जरत्कारुरुवाच

मम पूर्वे भवन्तो वै पितरः सपितामहाः ।
ब्रूत किं करवाण्यद्य जरत्कारुरहं स्वयम् ॥ १९ ॥

जरत्कारु बोला– " मैं ही स्वयं जरत्कारु हूं, आप लोग मेरे ही पितृपितामहादि पूर्व पुरुष हैं; अब आज्ञा कीजिये, कि मैं क्या करूं " ॥ १९ ॥

पितर ऊचुः

यतस्व यत्नवांस्तात संतानाय कुलस्य नः ।
आत्मनोऽर्थेऽस्मदर्थे च धर्म इत्येव चाभिभो ॥ २० ॥

पितृगण बोले " बेटा ! तुम हमको, अपनेको और धर्मको बचानेके निमित्त सचेष्ट हो करके हमारे वंशको बढानेके लिए यत्न करो ॥ २० ॥

न हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसंचितैः ।
तां गतिं प्राप्नुवन्तीह पुत्रिणो यां व्रजन्ति ह ॥ २१ ॥

हे तात ! पुत्रवान् पुरुष जैसी सद्गति प्राप्त करते हैं वैसी सद्गति बहुदिनोंके बटोरे हुए तप अथवा दूसरे पुण्यफलसे भी लोग प्राप्त नहीं करते ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तद्दारग्रहणे यत्नं संतत्यां च मनः कुरु।
पुत्रकास्मन्नियोगात्त्वमेतन्नः परमं हितम् ॥ २२ ॥

हे पुत्र! इस हेतु तुम हमारी आज्ञासे स्त्रीग्रहण और सन्तानोत्पादनमें चित्त लगाओ, इससे हमारा परम कल्याण होगा" ॥ २२ ॥

जरत्कारुरुवाच

न दारान्वै करिष्यामि सदा मे भावितं मनः।
भवतां तु हितार्थाय करिष्ये दारसंग्रहम् ॥ २३ ॥

जरत्कारु बोले– "मैंने मनमें संकल्प कर लिया था कि मैं स्त्रीग्रहण नहीं करूंगा, पर अब आपके हितानुष्ठानके लिये विवाह करूंगा ॥ २३ ॥

समयेन च कर्ताहमनेन विधिपूर्वकम्।
तथा यद्युपलप्स्यामि करिष्ये नान्यथा त्वहम् ॥ २४ ॥

पर मैं एक शर्तपर विधिपूर्वक विवाह करूंगा, यदि उस शर्तके अनुसार कन्या मिलेगी तो विवाह करूंगा, अन्यथा नहीं ॥ २४ ॥

सनाम्नी या भवित्री मे दित्सिता चैव बन्धुभिः।
भैक्ष्यवत्तामहं कन्यामुपयंस्ये विधानतः ॥ २५ ॥

कन्या यदि मेरे नामकी हो और उसके बंधुवर्ग उसे स्वेच्छापूर्वक दान करें, तो उस कन्याको भिक्षाके समान ग्रहण कर विधिपूर्वक उससे विवाह करूंगा ॥ २५ ॥

दरिद्राय हि मे भार्यां को दास्यति विशेषतः।
प्रतिग्रहीष्ये भिक्षां तु यदि कश्चित्प्रदास्यति ॥ २६ ॥

विशेष बात तो यह है कि मैं दरिद्र हूं, कौन मुझे कन्यादान करेगा? परंतु यदि कोई दान करेगा, तो मैं अवश्य ही उस भिक्षाको ग्रहण करूंगा ॥ २६ ॥

एवं दारक्रियाहेतोः प्रयतिष्ये पितामहाः।
अनेन विधिना शश्वन्न करिष्येऽहमन्यथा ॥ २७ ॥

इस प्रकार हे पितामहो! इसी विधिसे विवाहके लिए मैं सदा प्रयत्न करता रहूंगा, अन्यथा मैं विवाह ही नहीं करूंगा ॥ २७ ॥

तत्र चोत्पत्स्यते जन्तुर्भवतां तारणाय वै।
शाश्वतं स्थानमासाद्य मोदन्तां पितरो मम ॥ २८ ॥

उससे आपके उद्धारके लिये पुत्र उत्पन्न होगा। जिससे मेरे पितर गण आप लोग भी शाश्वत-स्वर्ग प्राप्त कर परम आनन्दसे समय बितावें" ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

ततो निवेशाय तदा स विप्रः संशितव्रतः ।
महीं चचार दारार्थी न च दारानविन्दत ॥ २९ ॥

सूत बोले– कि अनन्तर वह ब्रह्मचारी व्रतशील जरत्कारु, संसार–आश्रममें प्रवेश करनेके लिए स्त्री पानेके अभिलाषी होकर सारी भूमि घूम आये, पर उन्होंने कहीं भी योग्य पत्नी प्राप्त नहीं की ॥ २९ ॥

स कदाचिद्वनं गत्वा विप्रः पितृवचः स्मरन् ।
चुक्रोश कन्याभिक्षार्थी तिस्रो वाचः शनैरिव ॥ ३० ॥

एक समय उन्होंने कन्याकी भिक्षा पानेकी इच्छासे वनमें प्रवेश करके पितृवाक्यका स्मरण करके धीरेसे चिल्लाकर तीन बार बातें कहीं ॥ ३० ॥

तं वासुकिः प्रत्यगृह्णादुद्यम्य भगिनीं तदा ।
न स तां प्रतिजग्राह न सनाम्नीति चिन्तयन् ॥ ३१ ॥

उस समय उनकी आवाज सुनकर नागराज वासुकि उनको अपनी भगिनी दान करनेको उद्यत हुए । पर उस कन्याको अपने नामकी नहीं है यह सोच कर महात्मा जरत्कारुने तत्काल ग्रहण नहीं किया ॥ ३१ ॥

सनाम्नीमुद्यतां भार्यां गृह्णीयामिति तस्य हि ।
मनो निविष्टमभवज्जरत्कारोर्महात्मनः ॥ ३२ ॥

महात्मा जरत्कारुका मन इस बात पर स्थिर हो गया था कि मैं अपने नामवाली तथा स्वयं दी गई स्त्रीके साथ ही विवाह करूंगा ॥ ३२ ॥

तमुवाच महाप्राज्ञो जरत्कारुर्महातपाः ।
किंनाम्नी भगिनीयं ते ब्रूहि सत्यं भुजङ्गम ॥ ३३ ॥

यह सोच कर वह महाप्राज्ञ महातपस्वी जरत्कारु उस वासुकिसे बोले, "हे भुजंग ! सच बोलो तुम्हारी इस बहिनका क्या नाम है ?" ॥ ३३ ॥

वासुकिरुवाच

जरत्कारो जरत्कारुः स्वसेयमनुजा मम ।
त्वदर्थं रक्षिता पूर्वं प्रतीच्छेम द्विजोत्तम ॥ ३४ ॥

वासुकि बोले– "हे जरत्कारो ! मेरी इस छोटी बहिनका नाम जरत्कारु है, हे द्विजोत्तम ! मैंने इस भगिनीको तुम्हारे निमित्त रख छोडा है, अतः इसे स्वीकार करो" ॥ ३४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

मात्रा हि भुजगाः शप्ताः पूर्वं ब्रह्मविदां वर।
जनमेजयस्य वो यज्ञे धक्ष्यत्यनिलसारथिः ॥ ३५ ॥

सूत बोले– हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शौनक! पहिले सर्पमाताने सर्पोंको यह शाप दिया था कि जनमेजयके यज्ञमें वायुकी सहायतासे अग्नि तुमको जला डालेगी ॥ ३५ ॥

तस्य शापस्य शान्त्यर्थं प्रददौ पन्नगोत्तमः।
स्वसारमृषये तस्मै सुव्रताय तपस्विने ॥ ३६ ॥

नागोंमें उत्तम वासुकिने उस शापको शान्त करनेके निमित्त व्रतशील और तपस्वी उस जरत्कारु ऋषिको अपनी बहिन दी ॥ ३६ ॥

स च तां प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा।
आस्तीको नाम पुत्रश्च तस्यां जज्ञे महात्मनः ॥ ३७ ॥

जरत्कारुने भी विधि द्वारा निश्चित किए गए कर्मके अनुसार उससे विवाह किया। उस कन्याके गर्भसे उस महात्मासे आस्तीक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥

तपस्वी च महात्मा च वेदवेदांगपारगः।
समः सर्वस्य लोकस्य पितृमातृभयापहः ॥ ३८ ॥

वह आस्तीक वेदवेदांगमें पण्डित, तपस्वी, महात्मा, सब भूतोंको समान दृष्टिसे देखनेवाला और पिता तथा माताके कुलोंके भयको नष्ट करनेवाला हुआ ॥ ३८ ॥

अथ कालस्य महतः पाण्डवेयो नराधिपः।
आजहार महायज्ञं सर्पसत्रमिति श्रुतिः ॥ ३९ ॥

अनन्तर बहुत कालके पश्चात्, पाण्डवनन्दन नरेश जनमेजयने सर्पयज्ञ नामक एक महायज्ञ-का प्रारंभ किया, ऐसा सुना जाता है ॥ ३९ ॥

तस्मिन्प्रवृत्ते सत्रे तु सर्पाणामन्तकाय वै।
मोचयामास तं शापमास्तीकः सुमहायशाः ॥ ४० ॥

सर्पकुलके नाश करनेके निमित्त उस यज्ञके आरंभ होने पर महायशस्वी आस्तीकने उस शापको छुडाया ॥ ४० ॥

नागांश्च मातुलांश्चैव तथा चान्यान्स बान्धवान्।
पितॄंश्च तारयामास संतत्या तपसा तथा।
व्रतैश्च विविधैर्ब्रह्मन्स्वाध्यायैश्चाऽनृणोऽभवत् ॥ ४१ ॥

उसने नागों अपने मामाओं और दूसरे भाइयों तथा पितरोंका सन्तानोंके द्वारा तथा तपस्यासे उद्धार किया और हे ब्रह्मन्! वह अनेक व्रतों और स्वाध्यायोंसे उऋण हो गया ॥ ४१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देवांश्च तर्पयामास यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
ऋषींश्च ब्रह्मचर्येण संतत्या च पितामहान् ॥ ४२ ॥

एवं भांतिभांतिके दक्षिणायुक्त यागोंसे देवताओंको उसने तृप्त किया और ब्रह्मचर्यसे ऋषियोंको तथा संततिसे अपने पितामहोंको तृप्त किया ॥ ४२ ॥

अपहृत्य गुरुं भारं पितॄणां संशितव्रतः ।
जरत्कारुर्गतः स्वर्गं सहितः स्वैः पितामहैः ॥ ४३ ॥

व्रतका बडी कठोरतासे पालन करनेवाला जरत्कारु इस प्रकारसे पितरोंके कठिनभारको उतार कर अपने पितामहोंके साथ स्वर्ग गए ॥ ४३ ॥

आस्तीकं च सुतं प्राप्य धर्मं चानुत्तमं मुनिः ।
जरत्कारुः सुमहता कालेन स्वर्गमीयिवान् ॥ ४४ ॥

और आस्तीक नामक पुत्र तथा अत्यन्त श्रेष्ठ धर्म पा करके बहुत समयके बाद उस मुनि जरत्कारुने स्वर्ग प्राप्त किया ॥ ४४ ॥

एतदाख्यानमास्तीकं यथावत्कीर्तितं मया ।
प्रब्रूहि भृगुशार्दूल किं भूयः कथ्यतामिति ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ (८४३)

यह आस्तीकका आख्यान मैंने ठीक ठीक कह दिया; हे भृगुवंशियोंमें सिंह सदृश शौनक ! अब आज्ञा कीजिये, कि फिर क्या कहूं ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ८४३ ॥

: १४ :

शौनक उवाच

सौते कथय तामेतां विस्तरेण कथां पुनः ।
आस्तीकस्य कवेः साधोः शुश्रूषा परमा हि नः ॥ १ ॥

शौनक बोले– " हे सूतनन्दन ! साधु स्वभाववाले ज्ञानी आस्तीक ऋषिकी इस कथाको फिर विस्तृत रूपसे कहो; उसे सुननेकी हमारी बडी इच्छा है ॥ १ ॥

मधुरं कथ्यते सौम्य श्लक्ष्णाक्षरपदं त्वया ।
प्रयामहे भृशं तात पितेवेदं प्रभाषसे ॥ २ ॥

विशेष करके तुम जो कुछ कहते हो, वह बडी मीठी और सुन्दर अक्षरोंवाली होती है । तुम अपने पिताके समान ही कहते हो, उससे हे तात ! हम लोग बडी प्रसन्नता पा रहे हैं ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अस्मच्छुश्रूषणे नित्यं पिता हि निरतस्तव।
आचष्टैतद्यथाख्यानं पिता ते त्वं तथा वद ॥ ३ ॥

तुम्हारे पिता हमारी सेवामें सदा लगे रहते थे। तुम्हारे पिताने इस कथाको जिसप्रकार कहा था, उसी प्रकार तुम भी कहो ॥ ३ ॥

सूत उवाच

आयुष्यमिदमाख्यानमास्तीकं कथयामि ते।
यथा श्रुतं कथयतः सकाशाद्वै पितुर्मया ॥ ४ ॥

सूत बोले– कि मैंने दीर्घायु प्रदान करनेवाली यह आस्तीककी कथा कहते हुए पितासे जैसे सुनी, ठीक वैसे ही तुमसे कहता हूं ॥ ४ ॥

पुरा देवयुगे ब्रह्मन्प्रजापतिसुते शुभे।
आस्तां भगिन्यौ रूपेण समुपेतेऽद्भुतेऽनघे ॥ ५ ॥

हे ब्रह्मन्! पहिले सत्ययुगमें प्रजापतिकी दो पुत्रियां थीं वे दोनों बहिनें आश्चर्य रूपवती, सुन्दर लक्षणोंसे युक्त तथा सर्वथा दोषरहित थीं ॥ ५ ॥

ते भार्ये कश्यपस्यास्तां कद्रूश्च विनता च ह।
प्रादात्ताभ्यां वरं प्रीतः प्रजापतिसमः पतिः।
कश्यपो धर्मपत्नीभ्यां मुदा परमया युतः ॥ ६ ॥

वे कद्रू और विनता कश्यप मुनिकी स्त्री थीं। प्रसन्न मनवाले उस प्रजापति सदृश पति कश्यपने उन दोनों धर्मपत्नियोंपर अति प्रसन्न होकर उनको वर दिया ॥ ६ ॥

वरातिसर्गं श्रुत्वैव कश्यपादुत्तमं च ते।
हर्षादप्रतिमां प्रीतिं प्रापतुः स्म वरस्त्रियौ ॥ ७ ॥

उनकी श्रेष्ठ स्त्रियोंने भी कश्यपसे अभीष्ट वर पानेकी बात सुनकर हर्षसे अति प्रसन्नता प्राप्त की ॥ ७ ॥

वव्रे कद्रूः सुतान्नागान्सहस्रं तुल्यतेजसः।
द्वौ पुत्रौ विनता वव्रे कद्रूपुत्राधिकौ बले।
ओजसा तेजसा चैव विक्रमेणाधिकौ सुतौ ॥ ८ ॥

पहिले कद्रूने समान तेजवाले हजार नाग पुत्ररूपमें मांगे। विनताने बल, ओज, तेज तथा पराक्रममें कद्रूके पुत्रोंसे श्रेष्ठ केवल दोही पुत्र मांगे ॥ ८ ॥

तस्यै भर्ता वरं प्रादादध्यर्धं पुत्रमीप्सितम्।
एवमस्त्विति तं चाह कश्यपं विनता तदा ॥ ९ ॥

विनताको उसके पतिने दो पुत्रोंके होनेका अभिलषित वर दे दिया, तो विनताने कश्यपसे "एवमस्तु" कहा ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कृतकृत्या तु विनता लब्ध्वा वीर्याधिकौ सुतौ ।
कद्रूश्च लब्ध्वा पुत्राणां सहस्रं तुल्यतेजसाम् ॥ १० ॥

बडे पराक्रमशाली दो पुत्रोंको पाकर विनता कृतकृत्य हो गई । कद्रुने भी समान तेजस्वी एक हजार पुत्रोंकी प्राप्तिका वर पाकर अपनेको कृतार्थ समझा ॥ १० ॥

धार्यौ प्रयत्नतो गर्भावित्युक्त्वा स महातपाः ।
ते भार्ये वरसंहृष्टे कश्यपो वनमाविशत् ॥ ११ ॥

बादमें वर पानेसे सन्तुष्ट हुई हुई उन दोनों पत्नियोंको यह कर कि "तुम अति यत्नसे गर्भ धारण किये रहना" वह महातपस्वी कश्यप वनको चले गए ॥ ११ ॥

कालेन महता कद्रूरण्डानां दशतीर्दश ।
जनयामास विप्रेन्द्र द्वे अण्डे विनता तदा ॥ १२ ॥

हे विप्रश्रेष्ठ ! बहुत समयके पश्चात् कद्रुने दस सौ अर्थात् एक हजार अण्डे पैदा किए और विनताने दो अण्डे उत्पन्न किये ॥ १२ ॥

तयोरण्डानि निदधुः प्रहृष्टाः परिचारकाः ।
सोपस्वेदेषु भाण्डेषु पञ्च वर्षशतानि च ॥ १३ ॥

तब सेविकाओंने प्रफुल्ल हृदयसे उन दोनोंके अण्डोंको गर्म बर्तनोंमें पांच सौ वर्षोंतक रखा ॥ १३ ॥

ततः पञ्चशते काले कद्रूपुत्रा विनिःसृताः ।
अण्डाभ्यां विनतायास्तु मिथुनं न व्यदृश्यत ॥ १४ ॥

तब पांच सौवें वर्ष कद्रुके अण्डोंसे एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए, परन्तु विनताके अण्डेसे दो जुडवें नहीं दिखाई दिए ॥ १४ ॥

ततः पुत्रार्थिनी देवी व्रीडिता च तपस्विनी ।
अण्डं बिभेद विनता तत्र पुत्रमदृक्षत ॥ १५ ॥

इससे पुत्रकी इच्छा करनेवाली तपस्विनी देवी विनताने लज्जित होकर एक अण्डेको तोड दिया और उसमें पुत्र देखा ॥ १५ ॥

पूर्वार्धकायसंपन्नमितरेणाप्रकाशता ।
स पुत्रो रोषसंपन्नः शशापैनामिति श्रुतिः ॥ १६ ॥

उस पुत्रका पूर्वार्ध शरीरमात्र उत्पन्न हुआ था, शेषार्ध अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ था। सुना जाता है, कि उस पुत्रने क्रोधित होकर इस विनताको यह शाप दिया ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

योऽहमेवं कृतो मातस्त्वया लोभपरीतया।
शरीरेणासमग्रोऽद्य तस्माद्दासी भविष्यसि ॥ १७ ॥

कि हे माता ! तुम्हारे द्वारा पुत्र देखनेके लोभसे आज जो मैं इस प्रकार शरीरसे आधा बना दिया गया हूं, अतः तुम दासी होओगी ॥ १७ ॥

पञ्च वर्षशतान्यस्या यया विस्पर्धसे सह।
एष च त्वां सुतो मातर्दास्यत्वान्मोक्षयिष्यति ॥ १८ ॥

इस प्रकार तुम जिससे स्पर्धा कर रही हो, उसीकी तुम पांच सौ वर्षतक दासी रहोगी, और हे माता ! यह पुत्र तुम्हें दासीपनसे छुडाएगा ॥ १८ ॥

यद्येनमपि मातस्त्वं मामिवाण्डविभेदनात्।
न करिष्यस्यदेहं वा व्यङ्गं वापि तपस्विनम् ॥ १९ ॥

माता ! यदि तुम इस दूसरे अण्डेको भी फोड कर उस तपस्वी पुत्रको भी मेरी तरह देह-हीन वा विकलांग न करो, तो वह होनेवाला पुत्र तुमको दासीपनसे मुक्त करेगा ॥१९॥

प्रतिपालयितव्यस्ते जन्मकालोऽस्य धीरया।
विशिष्टबलमीप्सन्त्या पञ्चवर्षशतात्परः ॥ २० ॥

हे माता ! विशेष बलशाली पुत्र चाहनेवाली तुम्हें धैर्यके साथ पांच सौ वर्षोंतक उसके जन्मके समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए ॥ २० ॥

एवं शप्त्वा ततः पुत्रो विनतामन्तरिक्षगः।
अरुणो दृश्यते ब्रह्मन्प्रभातसमये सदा ॥ २१ ॥

तब विनताको इस प्रकार शाप देकर वह पुत्र आकाशमें उड गया और हे ब्रह्मन् ! सदा प्रातःकालमें वह अरुणके रूपमें दिखाई देता है ॥ २१ ॥

गरुडोऽपि यथाकालं जज्ञे पन्नगसूदनः।
स जातमात्रो विनतां परित्यज्य खमाविशत् ॥ २२ ॥
आदास्यन्नात्मनो भोज्यमन्नं विहितमस्य यत्।
विधात्रा भृगुशार्दूल क्षुधितस्य बुभुक्षतः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ (८६६)

इसके बाद यथा समय नागोंका विनाशक गरुड उत्पन्न हुआ। और उत्पन्न होते ही वह गरुड, हे भृगुओंमें सिंह सदृश शौनक ! विनताको छोडकर तथा इस भूखे गरुडके खानेके लिए जो अन्न विधाताने निश्चित कर दिया था, उस खाने योग्य अन्नको खाकर आकाशमें उड गया ॥ २२–२३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ (८६६)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १५ :

सूत उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु भगिन्यौ ते तपोधन ।
अपश्यतां समायान्तमुच्चैःश्रवसमन्तिकात् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि हे तपोधन ! उस कालमें एक दिन कद्रू और विनता दोनों बहिनोंने पासमें आए हुए उच्चैःश्रवा घोडेको देखा ॥ १ ॥

यं तं देवगणाः सर्वे हृष्टरूपा अपूजयन् ।
मथ्यमानेऽमृते जातमश्वरत्नमनुत्तमम् ॥ २ ॥
महौघबलमश्वानामुत्तमं जवतां वरम् ।
श्रीमन्तमजरं दिव्यं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ३ ॥

सब सुन्दर रूपवाले देवोंने उस अमृतको मथनेके समय उत्पन्न हुए, अत्यन्त बलशाली, वेगवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, सब उत्तम लक्षणोंसे युक्त, दिव्य, लक्ष्मीवान्, अजर, सब अश्वोंमें उत्तम ऐसे अद्वितीय अश्वरत्न इस उच्चैःश्रवाकी पूजा की ॥ २–३ ॥

शौनक उवाच

कथं तदमृतं देवैर्मथितं क्व च शंस मे ।
यत्र जज्ञे महावीर्यः सोऽश्वराजो महाद्युतिः ॥ ४ ॥

शौनक बोले– हे सूत ! देवताओंने कहां और कैसे समुद्रका मंथन किया था, जिससे वह महावीर्यवान् और अति तेजस्वी अश्वराज उच्चैःश्रवा उत्पन्न हुआ, यह हमसे कहो ॥ ४ ॥

सूत उवाच

ज्वलन्तमचलं मेरुं तेजोराशिमनुत्तमम् ।
आक्षिपन्तं प्रभां भानोः स्वशृङ्गैः काञ्चनोज्ज्वलैः ॥ ५ ॥
काञ्चनाभरणं चित्रं देवगन्धर्वसेवितम् ।
अप्रमेयमनाधृष्यमधर्मबहुलैर्जनैः ॥ ६ ॥

सूत बोले-- अपने तेजसे जलते हुए, अत्यन्त श्रेष्ठ तेजके समूह, सोनेके समान कान्तिवाली अपनी चोटियोंसे सूर्यके तेजको भी फीका करनेवाले, सोनेके आभूषणोंसे बहुत सुहावने अर्थात् सोनेकी कांतिको धारण करनेके कारण अति सुन्दर, देव और गन्धर्व जिस पर रहते हैं ऐसे अद्वितीय, और अधर्मका आचरण करनेवालोंके द्वारा न जीते जाने योग्य ॥ ५–६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

व्यालैराचरितं घोरैर्दिव्यौषधिविदीपितम्।
नाकमावृत्य तिष्ठन्तमुच्छ्रयेण महागिरिम् ॥ ७ ॥
अगम्यं मनसाप्यन्यैर्नदीवृक्षसमन्वितम्।
नानापतगसङ्घैश्च नादितं सुमनोहरैः ॥ ८ ॥

भयंकरसे भयंकर सांप जिस पर घूमते हैं ऐसे, अनेक अलौकिक औषधियोंसे प्रकाशित, अपनी ऊंचाईसे स्वर्गको भी घेर कर खडे रहनेवाले, अत्यधिक उन्नत, दूसरोंके द्वारा मनसे भी न जाने जा सकने योग्य, नदियों और वृक्षोंसे युक्त, अनेक तरहके मनको हरनेवाले सुन्दर सुन्दर पक्षियोंके समूहोंके कलरवसे शब्दायमान ॥ ७–८ ॥

तस्य पृष्ठमुपारुह्य बहुरत्नाचितं शुभम्।
अनन्तकल्पमुद्विद्धं सुराः सर्वे महौजसः ॥ ९ ॥

अनन्तकल्प अर्थात् आकाशके समान उद्विद्ध अर्थात् ऊंचे, अनेक रत्नोंसे सुशोभित, अत्यंत कल्याणकारक ऐसे मेरु पर्वतकी पीठ पर सभी महा तेजस्वी देव चढ गए ॥ ९ ॥

ते मन्त्रयितुमारब्धास्तत्रासीना दिवौकसः।
अमृतार्थे समागम्य तपोनियमसंस्थिताः ॥ १० ॥

तप और नियमोंमें रहनेवाले, स्वर्गके घरोंमें निवास करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी वे सभी देवगण अमृतको प्राप्त करनेके लिए इकट्ठे होकर उस मेरु पर्वत पर बैठकर आपसमें विचार करने लगे ॥ १० ॥

तत्र नारायणो देवो ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।
चिन्तयत्सु सुरेष्वेवं मन्त्रयत्सु च सर्वशः ॥ ११ ॥

इस तरह हर प्रकारसे विचार करनेवाले देवतागणोंके चिन्तायुक्त होने पर वहां भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे यह बात कही, ॥ ११ ॥

देवैरसुरसङ्घैश्च मथ्यतां कलशोदधिः।
भविष्यत्यमृतं तत्र मथ्यमाने महोदधौ ॥ १२ ॥

सुर और असुरलोग मिलकर महासागरको कलसेके समान करके मथन करें, इस प्रकार उस महासमुद्रको मथनेसे अवश्य ही अमृत निकलेगा ॥ १२ ॥

सर्वौषधीः समावाप्य सर्वरत्नानि चैव हि।
मन्थध्वमुदधिं देवा वेत्स्यध्वममृतं ततः ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ (८७९)

हे देवो ! सब औषधियां और सब रत्न पानेपर भी समुद्रका मंथन करते जाओ, तो अन्तमें अमृत प्राप्त करोगे ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ८७९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १६ :

सूत उवाच

ततोऽभ्रशिखराकारैर्गिरिशृङ्गैरलंकृतम् ।
मन्दरं पर्वतवरं लताजालसमावृतम् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि अनन्तर (समुद्रमंथनके लिए मंथन–दण्ड करनेके निमित्त सब देवताओंने मिलकर) श्वेत मेघकी चोटियोंके समान प्रतीत होनेवाले गगन चुम्बी बडी ऊंची ऊंची चोटियोंसे सुशोभित, लताजालसे आच्छादित, पर्वतश्रेष्ठ ॥ १ ॥

नानाविहगसंघुष्टं नानादंष्ट्रिसमाकुलम् ।
किंनरैरप्सरोभिश्च देवैरपि च सेवितम् ॥ २ ॥

विविध पक्षियोंसे युक्त, कराल सिंह आदि जन्तुओंसे व्याप्त, किन्नर, देव, अप्सराओंसे सेवित ॥ २ ॥

एकादश सहस्राणि योजनानां समुच्छ्रितम् ।
अधो भूमेः सहस्रेषु तावत्स्वेव प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥
तमुद्धर्तुं न शक्ता वै सर्वे देवगणास्तदा ।
विष्णुमासीनमभ्येत्य ब्रह्माणं चेदमब्रुवन् ॥ ४ ॥

ऊंचाईमें ग्यारह हजार योजन और ग्यारह हजार ही जमीनके नीचे गडे हुए ऐसे उस मन्दर पहाडको उखाडनेमें असमर्थ होकर सब देवगण तब बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुके समीप जाकर बोले ॥ ३–४ ॥

भवन्तावत्र कुरुतां बुद्धिं नैःश्रेयसीं पराम् ।
मन्दरोद्धरणे यत्नः क्रियतां च हिताय नः ॥ ५ ॥

आप इस विषयमें अत्यन्त कल्याणमयी बुद्धिका उपयोग करें और हमारे हित करनेके लिए मन्दर पर्वतको उखाडनेका प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

तथेति चाब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्मणा सह भार्गव ।
ततोऽनन्तः समुत्थाय ब्रह्मणा परिचोदितः ।
नारायणेन चाप्युक्तस्तस्मिन्कर्मणि वीर्यवान् ॥ ६ ॥

हे भृगुकुलोत्पन्न शौनक ! तब ब्रह्मदेवके साथ विष्णुने ' ठीक है ' ऐसा कहा, तब ब्रह्मसे प्रेरित होकर तथा उस काममें विष्णु द्वारा कहे जानेपर महाबली अनन्त उठकर खडे हो गए ॥६॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथ पर्वतराजानं तमनन्तो महाबलः।
उज्जहार बलाद्ब्रह्मन्सवनं सवनौकसम् ॥ ७ ॥

और हे ब्रह्मन् ! उस महाबलशाली अनन्तने उस पर्वतराज मन्दरको वनों और उन वनोंमें रहनेवाले वनवासियों सहित बलपूर्वक उखाड दिया ॥ ७ ॥

ततस्तेन सुराः सार्धं समुद्रमुपतस्थिरे।
तमूचुरमृतार्थाय निर्मथिष्यामहे जलम् ॥ ८ ॥

उसके बाद देवगण उस पर्वतके साथ समुद्रतट पर उपस्थित हुए और उस समुद्रसे कहा, कि " हम अमृतके निमित्त तुम्हारे जलका मंथन करेंगे " ॥ ८ ॥

अपांपतिरथोवाच ममाप्यंशो भवेत्ततः।
सोढास्मि विपुलं मर्दं मन्दरभ्रमणादिति ॥ ९ ॥

तब समुद्रने कहा– " तब तो उस अमृतमें मेरा भी अंश होगा, क्योंकि मुझे मन्दरपर्वतके घूमनेके कारण होनेवाली उस कठिन रगडको सहना पडेगा ॥ ९ ॥

ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारं सुरासुराः।
गिरेरधिष्ठानमस्य भवान्भवितुमर्हति ॥ १० ॥

समुद्रकी इस बात पर संमत होकर वे सुरासुर लोग समुद्रस्तलमें स्थित कूर्मराजसे बोले, " हे कूर्मराज! तुम इस मन्दर पर्वतका आधार बनो " ॥ १० ॥

कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समर्पितम्।
तस्य शैलस्य चाग्रं वै यन्त्रेणेन्द्रोऽभ्यपीडयत् ॥ ११ ॥

कूर्मराजने " तथास्तु " कह कर पीठ पर मन्दर पर्वतको रख लिया। इन्द्र कूर्मके पीठ पर स्थित उस मन्दर पर्वतके आगेके भागको यंत्रसे घुमाने लगे ॥ ११ ॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम्।
देवा मथितुमारब्धाः समुद्रं निधिमम्भसाम्।
अमृतार्थिनस्ततो ब्रह्मन्सहिता दैत्यदानवाः ॥ १२ ॥

हे ब्रह्मन् ! देवताओं और असुरोंने अमृत प्राप्तिके निमित्त मन्दरको मंथनदण्ड और वासुकिको डोरी बना कर जलके भंडार समुद्रको मथना आरंभ किया ॥ १२ ॥

एकमन्तमुपाश्लिष्टा नागराज्ञो महासुराः।
विबुधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः स्थिताः ॥ १३ ॥

जिस ओर नागराज वासुकिका मुख था, उधर दानव और जिस ओर उसकी पूंछ थी उधर देवता लोग खडे हो गए ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनन्तो भगवान्देवो यतो नारायणस्ततः ।
शिर उद्यम्य नागस्य पुनः पुनरवाक्षिपत् ॥ १४ ॥

भगवान् अनन्तदेव उधर ही खडे थे, जिधर नारायण खडे थे, नारायण वासुकिनागका मुख उठाकर बार बार झटकते थे ॥ १४ ॥

वासुकेरथ नागस्य सहसाक्षिप्यतः सुरैः ।
सधूमाः सार्चिषो वाता निष्पेतुरसकृन्मुखात् ॥ १५ ॥

तब सुरोंने नागराज वासुकिके फनको उठाकर अचानक पटक दिया, इससे उसके मुखसे धुंवे और अग्निज्वालासे युक्त श्वासवायु बार बार निकलने लगी ॥ १५ ॥

ते धूमसङ्घाः संभूता मेघसंघाः सविद्युतः ।
अभ्यवर्षन्सुरगणाञ्श्रमसंतापकर्शितान् ॥ १६ ॥

वह धुंओंके समूह बिजलीयुक्त मेघोंके समूह बनकर परिश्रमके दुःखसे क्षीण हुए हुए देवताओंपर बरसने लगे ॥ १६ ॥

तस्माच्च गिरिकूटाग्रात्प्रच्युताः पुष्पवृष्टयः ।
सुरासुरगणान्माल्यैः सर्वतः समवाकिरन् ॥ १७ ॥

और उस पहाड मन्दरपरसे गिरनेवाली फूलोंकी बरसात सुरों और असुरोंके चारों ओर फैल गई ॥ १७ ॥

बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः ।
उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥ १८ ॥

देवदानवोंके द्वारा मन्दरकी सहायतासे मथे जाते हुए समुद्रसे बादलकी ध्वनिके सदृश महाशब्द उठने लगा ॥ १८ ॥

तत्र नानाजलचरा विनिष्पिष्टा महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मुः शतशो लवणाम्भसि ॥ १९ ॥

और उस खारे जलवाले समुद्रमें रहनेवाले सैकडों जलजन्तु उस महान् पर्वतसे पीसे जाकर नष्ट हो गए ॥ १९ ॥

वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः ।
पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ॥ २० ॥

तथा पाताललोकमें रहनेवाले, जलप्रधान देहवाले वरुणसम्बन्धी नाना प्रकारके प्राणियोंके पास वह पर्वत नाशको खींचकर ले आया अर्थात् पातालवासी प्राणी भी उस पर्वतसे नष्ट होने लगे ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, J...

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्यन्तः परस्परम्।
न्यपतन्पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥ २१ ॥

उस पर्वत-शिखरके घूमनेपर उस पर्वतके अग्रभागसे वृक्ष आपसमें घिस घिस कर पक्षियों--समेत गिरने लगे ॥ २१ ॥

तेषां संघर्षजश्चाग्निरर्चिर्भिः प्रज्वलन्मुहुः।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥ २२ ॥

जैसे बिजलीके समूहसे नीले बादल घेर लिए जाते हैं, वैसे ही वृक्षादिकी रगडसे बार बार जलनेवाली आगसे मन्दर पर्वत घिर गया ॥ २२ ॥

ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान्।
विगतासूनि सर्वाणि सत्त्वानि विविधानि च ॥ २३ ॥

(रगडसे जली हुई वह आग पर्वत परके) सब निकले हुए हाथी और सिंहोंको जलाने-लगी, और उस आगके कारण दूसरे भी नाना प्रकारके सभी जन्तु प्राणोंसे विमुक्त होने लगे ॥ २३ ॥

तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तं ततस्ततः।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ॥ २४ ॥

अनन्तर देवोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने बादलसे निकले जलसे चारों ओर फैले और जलानेवाले अग्निको चारों ओरसे बुझाया ॥ २४ ॥

ततो नानाविधास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ॥ २५ ॥

तब नानाविध महा वृक्षोंका नाना तरहका दूध और पौधोंका अपरिमित रस समुद्रजलमें चूने लगा ॥ २५ ॥

तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनस्य च निःस्रवात् ॥ २६ ॥

उस अमृतके रसके समान प्रभावशाली जल और सुवर्णमय पर्वतसे चूनेवाले रससे देवता-ओंने अमरता प्राप्त की ॥ २६ ॥

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः।
रसोत्तमैर्विमिश्रं च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ॥ २७ ॥

जब समुद्रका जल उस सुन्दर रसोंसे मिलकर दूध बन गया, तब उस दूधसे घृत बनने लगा ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वरदमब्रुवन् ।
श्रान्ताः स्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतं च तत् ॥ २८ ॥

अनंतर देवगण बैठे हुए वर देनेवाले ब्रह्मासे बोले, "हे ब्रह्मन् ! हम सब बहुत थक गये हैं । पर अभीतक अमृत नहीं निकला ॥ २८ ॥

ऋते नारायणं देवं दैत्या नागोत्तमास्तथा ।
चिरारब्धमिदं चापि सागरस्यापि मन्थनम् ॥ २९ ॥

भगवान् नारायणको छोडकर दैत्य, श्रेष्ठ नाग भी थक गए हैं तथा सागरके मंथनके कार्यको प्रारम्भ करके भी बहुत समय बीत गया है ॥ २९ ॥

ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानत्र परायणम् ॥ ३० ॥

(देवताओंके इतना कहनेपर) ब्रह्मा देवाधिदेव नारायणसे यह वचन बोले "हे विष्णो ! तुम इन सुर और असुरोंको बल दो, इस विषयमें तुम ही एकमात्र आश्रयस्थान हो ।" ॥ ३० ॥

विष्णुरुवाच

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः ।
क्षोभ्यतां कलशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ॥ ३१ ॥

विष्णु बोले– "जो लोग समुद्र–मंथनके कार्यमें रत हैं, मैं उन सबोंको बल देता हूं, तुम सब समुद्ररूपी कलसेको हिलोडो और मन्दर पर्वतको घुमाते रहो ।" ॥ ३१ ॥

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधेः ।
तत्पयः सहिता भूयश्चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥ ३२ ॥

सूत बोले– कि नारायणका वचन सुन कर देवता और दानव बल पाकरके और मिल जुलके फिर उस समुद्र--जलको बडे वेगसे मथने लगे ॥ ३२ ॥

ततः शतसहस्रांशुः समान इव सागरात् ।
प्रसन्नभाः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥ ३३ ॥

इससे समुद्रसे सैंकडों और हजारों किरणोंके समान तेजस्वी और सुहावने शीतल प्रकाश वाले सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए; ॥ ३३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी।
सुरा देवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥ ३४ ॥

इसके बाद उस घृतरूपी जलसे श्वेत वस्त्र पहनी हुई लक्ष्मी और तदनन्तर सुरा देवी उत्पन्न हुई और तत्पश्चात् उसी घृतसे सफेद घोडा प्रकट हुआ ॥ ३४ ॥

कौस्तुभश्च मणिर्दिव्य उत्पन्नोऽमृतसंभवः।
मरीचिविकचः श्रीमान्नारायणउरोगतः ॥ ३५ ॥

नारायणकी छातीमें स्थित तेज प्रकाशको धारण करनेवाली, शोभाकारी दिव्य कौस्तुभ नामक मणि भी उसी अमृतरूपी जलसे उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥

श्रीः सुरा चैव सोमश्च तुरगश्च मनोजवः।
यतो देवास्ततो जग्मुरादित्यपथमाश्रिताः ॥ ३६ ॥

लक्ष्मी, सुरा, सोम और मनके समान वेगवान् घोडा यह सब आदित्य-पथके अनुयायी होकर जहां देवगण थे, वहां चले गये ॥ ३६ ॥

धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत।
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ॥ ३७ ॥

इसके बाद शरीरधारी धन्वन्तरी एक सफेद कमण्डलु लेकर उत्पन्न हुए जिसमें अमृत भरा हुआ था ॥ ३७ ॥

एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः।
अमृतार्थे महान्नादो ममेदमिति जल्पताम् ॥ ३८ ॥

यह आश्चर्य लीला देखकर उस अमृतके लिए "यह हमारा है यह हमारा है" कहते हुए दानवोंका बडा कोलाहल मचा ॥ ३८ ॥

ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः।
स्त्रीरूपमद्भुतं कृत्वा दानवानभिसंश्रितः ॥ ३९ ॥

अनन्तर प्रभु नारायण मोहिनी माया आश्रय करके अपूर्व स्त्रीकी मूर्ति धारण करके दानवोंके निकट जा पहुंचे ॥ ३९ ॥

ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतसः।
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ (९१९)

तब उन मूर्ख बुद्धिवाले सब दैत्योंने उस अपूर्व रूपवती युवतीको देख करके उस रूपमें मग्न होकर और जडवत् बनकर उस स्त्रीको अमृत दे दिया ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ ९१९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १७ :

सूत उवाच

अथावरणमुख्यानि नानाप्रहरणानि च ।
प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान्सहिता दैत्यदानवाः ॥ १ ॥

सूत बोले— कि अनन्तर दानव वृन्द एकत्र होकरके तनुत्राण (जिरह बख्तर) आदि पहिन कर तथा नाना अस्त्रादि लेकर देवताओं पर चढ दौडे ॥ १ ॥

ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥ २ ॥

इधर नरके साथ मिलकर वीर्यवान् देव प्रभु नारायण दानवोंसे अमृत पाकर उसे हर लाये ॥ २ ॥

ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
विष्णोः सकाशात्संप्राप्य संभ्रमे तुमुले सति ॥ ३ ॥

तब उस भारी लडाईके शुरू होनेपर देवता लोग भी नारायणसे उस अमृतको पाकर पीने लगे ॥ ३ ॥

ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवः प्रापिबत्तदा ॥ ४ ॥

देवोंके अपने अभिलषित अमृत पीते समय राहु (नामक दैत्य) देवताका स्वरूप धारण करके वहां आकर अमृत पीने लगा ॥ ४ ॥

तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥ ५ ॥

अमृत उस दानव राहुके कण्ठतक पहुंचने पाया ही था, कि चन्द्र और सूर्यने देवताओंके हित करनेके लिये वह बात प्रकट कर दी ॥ ५ ॥

ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥ ६ ॥

(राहुका असुरभाव प्रकट होने पर) चक्र ही जिनका आयुध है, ऐसे भगवान् विष्णुने चक्रसे उसी क्षण बलपूर्वक उस अमृतको पीनेवाले राहुके सुशोभित शिरको धडसे अलग कर दिया ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, J

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरो महत्।
चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयद्वसुधातलम् ॥ ७ ॥

चक्रसे अलग किया हुआ दैत्यका पहाडकी चोटीके सदृश वह महान्—मस्तक भूमिको कंपाता हुआ गिर गया ॥ ७ ॥

ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां ग्रसत्यद्यापि चैव तौ ॥ ८ ॥

इसी समयसे राहुके मुखसे चन्द्र और सूर्यकी स्थायी शत्रुता बन गई, इसीसे राहु आज भी चन्द्र और सूर्यको ग्रस लेता है ॥ ८ ॥

विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान्समकम्पयत् ॥ ९ ॥

तब भगवान् विष्णु भी सुन्दरी स्त्रीका अनुपम रूप छोड कर भांति भांतिके भयावने अस्त्रोंसे दानवोंको कम्पित करने लगे ॥ ९ ॥

ततः प्रवृत्तः संग्रामः समीपे लवणाम्भसः।
सुराणामसुराणां च सर्वघोरतरो महान् ॥ १० ॥

इसके अनन्तर खारे जलवाले समुद्रतट पर देवदानवोंमें अति घोर और महान् युद्ध शुरू हुआ ॥ १० ॥

प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णा न्यपतन्त सहस्रशः।
तोमराश्च सुतीक्ष्णाग्राः शस्त्राणि विविधानि च ॥ ११ ॥

सहस्रों तेज भाले और नोकदार तोमर तथा भांति भांतिके अस्त्र बरसने लगे ॥ ११ ॥

ततोऽसुराश्चक्रभिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु।
असिशक्तिगदारुग्णा निपेतुर्धरणीतले ॥ १२ ॥

तब चक्रसे काटे जाकर रक्त उगलते हुए दैत्यगण तलवार, शक्ति और गदासे घायल होकर धरती पर लोटने लगे ॥ १२ ॥

छिन्नानि पट्टिशैश्चापि शिरांसि युधि दारुणे।
तप्तकाञ्चनजालानि निपेतुरनिशं तदा ॥ १३ ॥

और उस भयंकर युद्धमें असुरोंके शुद्ध सुवर्ण जालोंसे सुशोभित सिर भयंकर पट्टिशोंसे शरीरोंसे अलग होकर गिरने लगे ॥ १३ ॥

रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः।
अद्रीणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ॥ १४ ॥

महावीर असुरवृन्द रक्तसे लाल होकर और मारे जाकर धातुओंसे रंगे पर्वतशृङ्गके समान पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हाहाकारः समभवत्तत्र तत्र सहस्रशः ।
अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति ॥ १५ ॥

सूर्यके लाल होनेपर उस रणभूमिमें आपसमें हजारों शस्त्रोंसे कटते और काटते हुए सुरासुरोंमें हाहाकार मच उठा ॥ १५ ॥

परिघैश्चायसैः पीतैः संनिकर्षे च मुष्टिभिः ।
निघ्नतां समरेऽन्योन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ १६ ॥

रणभूमिमें दूर स्थित शत्रुको लोहेके परिघ अस्त्रोंसे और निकट आए हुओंको घूसोंसे एक दूसरेको काटते और मारते हुए सुरासुरोंका कोलाहल आकाश तक पहुंचने लगा ॥ १६ ॥

छिन्धि भिन्धि प्रधावध्वं पातयाभिसरेति च ।
व्यश्रूयन्त महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः ॥ १७ ॥

" काटो, चूर करो, दौडो, गिरादो, आगे बढो " आदि महा भयंकर वहां शब्द चारों ओरसे सुनाई देने लगे ॥ १७ ॥

एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् ॥ १८ ॥

इस प्रकार इस महा भयंकर और घोर संग्रामके छिड जाने पर नर और नारायण देव रण-भूमिमें आ पहुंचे ॥ १८ ॥

तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ।
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसूदनम् ॥ १९ ॥

भगवान् नारायणने भी नरदेवका सुन्दर और दिव्य धनुष देखकर विष्णुने अपने दैत्यनाशी चक्रको स्मरण किया; ॥ १९ ॥

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रतापनम् ।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममजय्यमुत्तमम् ॥ २० ॥

इस स्मरण करने मात्रसे ही महा प्रभा--कांतिवाला, शत्रुओंको संताप देनेवाला, सूर्यके समान तेजस्वी, कहीं पर भी कुण्ठित न होनेवाला, देखनेमें उत्तम अथवा सुदर्शन नामका, भयंकर, जीते न जानेवाला अत्युत्तम चक्र आकाश अर्थात् स्वर्गसे उतर आया ॥ २० ॥

तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः ।
मुमोच वै चपलमुदग्रवेगवन्महाप्रभं परनगरावदारणम् ॥ २१ ॥

हाथीके सूंडके समान विशाल बाहुओंवाले अच्युत अर्थात् भगवान् नारायणने आकाशसे आये हुए उस जलती हुई आगके समान प्रभावाले, भयंकर, बिजलीके समान भयानक, वेग-वाले, अत्याधिक प्रभावाले और शत्रुके नगरोंको नष्ट भ्रष्ट करनेवाले चक्रको राक्षसों पर छोडा ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तदन्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा।
विदारयद्दितिदनुजान्सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ॥ २२ ॥

तब युद्धमें पुरुष श्रेष्ठ नारायणके हाथसे चलाये जानेपर प्रलयकालके तेजस्वी अग्निके समान वह सुदर्शन चक्र सहस्रों दैत्य–दानवोंको बडे वेगसे काटता हुआ उन पर बार बार गिरने लगा ॥ २२ ॥

दहत्क्वचिज्ज्वलन इवावलेलिहत्प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत।
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत् ॥ २३ ॥

कहीं कहीं तो वह चक्र जलती हुई अग्निके समान उन असुरोंको चाटने लगा और कहीं कहीं असुरोंको बलपूर्वक काटने लगा और पिशाचकी भांति रणभूमि तथा आकाशमें हर घडी घूमता घामता रक्त पीने लगा ॥ २३ ॥

अथासुरा गिरिभिरदीनचेतसो मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तदा।
महाबला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमभिप्रपद्य ह ॥ २४ ॥

बिना जलके बादलोंके सदृश शोभायुक्त, महाबली, तथा साहससे पूर्ण चित्तवाले सहस्रों असुर आकाशमें चढकर बार बार पर्वतोंको गिराकर देवताओंको नष्ट करने लगे ॥ २४ ॥

अथाम्बराद्भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः।
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिहत्य सस्वनाः ॥ २५ ॥

अनेकविध मेघोंके रूपोंको धारण करनेवाले, पेडोंसे युक्त तथा टूटे हुए अग्रभागवाली चोटियोंसे युक्त बडे बडे पहाड आपसमें शीघ्रतासे टकराकर भयको उत्पन्न करनेवाले शब्द करते हुए आकाशसे धरती पर गिरते थे ॥ २५ ॥

ततो मही प्रविचलिता सकानना महाद्रिपाताभिहता समन्ततः।
परस्परं भृशमभिगर्जतां मुहू रणाजिरे भृशमभिसंप्रवर्तिते ॥ २६ ॥

एक दूसरेको ललकारते हुए देव और असुरोंमें घोर भयानक लडाई होने पर रणभूमिके चारों ओर बडे बडे पर्वतोंके गिरनेसे वनसहित धरती चोट खाकर कांपने लगी ॥ २६ ॥

नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैर्महेषुभिर्गगनपथं समावृणोत्।
विदारयन्गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभयेऽसुरगणविग्रहे तदा ॥ २७ ॥

तब असुरोंके साथ उस घोर भयोत्पादक लडाईमें नरदेवने सुवर्णसे मढे हुए अग्रभागवाले श्रेष्ठ बाणोंसे पर्वतोंकी चोटी काट काटकर उनसे आकाशतल छा दिया ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो महीं लवणजलं च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ।
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशाम्य च ॥ २८ ॥

तब देवताओंसे मारे काटे जाकर और आकाशमें घूमते हुए प्रज्ज्वलित अग्निके समान तेजस्वी सुदर्शनको क्रोधित हुआ हुआ देखकर दैत्यगण पृथ्वीके भीतर और खारे जलवाले समुद्रमें जाकर छिप गए ॥ २८ ॥

ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ।
विनाद्य खं दिवमपि चैव सर्वशस्ततो गताः सलिलधरा यथागतम् ॥ २९ ॥

तब देवताओंने जय पाकर मन्दरपर्वतका यथोचित सत्कार करके उसको उसके स्थानमें भेज दिया । सम्पूर्ण बादल भी चारों ओरसे आकाश और द्युलोकको गुंजाते हुए वहांसे अपने अपने स्थानोंको चले गए ॥ २९ ॥

ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददौ च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलभिदथामरैः सह ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ९४९ ॥

पश्चात् देवता लोगोंने अत्यधिक परम आनन्द प्राप्त करके अमृतको अपने पास रख लिया । फिर इन्द्रने देवताओंके साथ मिलकर रक्षाके लिये उस अमृतको नरदेवके हाथमें अमृत-भाण्डको सौंप दिया ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ९४९ ॥

: १८ :

सूत उवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातममृतं मथितं यथा ।
यत्र सोऽश्वः समुत्पन्नः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ १ ॥

सूत बोले—हे शौनक ! जिस प्रकार अति बल—शाली तथा शोभायुक्त अश्वराज उच्चैःश्रवाकी उत्पत्ति हुई थी, और जिस प्रकार अमृतका मंथन किया था, वह सब कथा मैंने आपसे कह दी है ॥ १ ॥

यं निशाम्य तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् ।
उच्चैःश्रवा नु किंवर्णो भद्रे जानीहि माचिरम् ॥ २ ॥

उस उच्चैःश्रवाको देखकर कद्रू विनतासे यह बोली, "हे भद्रे ! जल्दी कहो तो सही, कि यह उच्चैःश्रवा किस रंगका है ?" ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तदन्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा।
विदारयद्दितिदनुजान्सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ॥ २२ ॥

तब युद्धमें पुरुष श्रेष्ठ नारायणके हाथसे चलाये जानेपर प्रलयकालके तेजस्वी अग्निके समान वह सुदर्शन चक्र सहस्रों दैत्य–दानवोंको बडे वेगसे काटता हुआ उन पर बार बार गिरने लगा ॥ २२ ॥

दहत्क्वचिज्ज्वलन इवावलेलिहत्प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत।
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत् ॥ २३ ॥

कहीं कहीं तो वह चक्र जलती हुई अग्निके समान उन असुरोंको चाटने लगा और कहीं कहीं असुरोंको बलपूर्वक काटने लगा और पिशाचकी भांति रणभूमि तथा आकाशमें हर घडी घूमता घामता रक्त पीने लगा ॥ २३ ॥

अथासुरा गिरिभिरदीनचेतसो मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तदा।
महाबला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमभिप्रपद्य ह ॥ २४ ॥

विना जलके बादलोंके सदृश शोभायुक्त, महाबली, तथा साहससे पूर्ण चित्तवाले सहस्रों असुर आकाशमें चढकर बार बार पर्वतोंको गिराकर देवताओंको नष्ट करने लगे ॥ २४ ॥

अथाम्बराद्भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः।
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिहत्य सस्वनाः ॥ २५ ॥

अनेकविध मेघोंके रूपोंको धारण करनेवाले, पेडोंसे युक्त तथा टूटे हुए अग्रभागवाली चोटियोंसे युक्त बडे बडे पहाड आपसमें शीघ्रतासे टकराकर भयको उत्पन्न करनेवाले शब्द करते हुए आकाशसे धरती पर गिरते थे ॥ २५ ॥

ततो मही प्रविचलिता सकानना महाद्रिपाताभिहता समन्ततः।
परस्परं भृशमभिगर्जतां मुहू रणाजिरे भृशमभिसंप्रवर्तिते ॥ २६ ॥

एक दूसरेको ललकारते हुए देव और असुरोंमें घोर भयानक लडाई होने पर रणभूमिके चारों ओर बडे बडे पर्वतोंके गिरनेसे वनसहित धरती चोट खाकर कांपने लगी ॥ २६ ॥

नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैर्महेषुभिर्गगनपथं समावृणोत्।
विदारयन्गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभयेऽसुरगणविग्रहे तदा ॥ २७ ॥

तब असुरोंके साथ उस घोर भयोत्पादक लडाईमें नरदेवने सुवर्णसे मढे हुए अग्रभागवाले श्रेष्ठ बाणोंसे पर्वतोंकी चोटी काट काटकर उनसे आकाशतल छा दिया ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो महीं लवणजलं च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ।
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशाम्य च ॥ २८ ॥

तब देवताओंसे मारे काटे जाकर और आकाशमें घूमते हुए प्रज्ज्वलित अग्निके समान तेजस्वी सुदर्शनको क्रोधित हुआ हुआ देखकर दैत्यगण पृथ्वीके भीतर और खारे जलवाले समुद्रमें जाकर छिप गए ॥ २८ ॥

ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ।
विनाद्य खं दिवमपि चैव सर्वशस्ततो गताः सलिलधरा यथागतम् ॥ २९ ॥

तब देवताओंने जय पाकर मन्दरपर्वतका यथोचित सत्कार करके उसको उसके स्थानमें भेज दिया । सम्पूर्ण बादल भी चारों ओरसे आकाश और द्युलोकको गुंजाते हुए वहांसे अपने अपने स्थानोंको चले गए ॥ २९ ॥

ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददौ च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलभिदथामरैः सह ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ९४९ ॥

पश्चात् देवता लोगोंने अत्यधिक परम आनन्द प्राप्त करके अमृतको अपने पास रख लिया । फिर इन्द्रने देवताओंके साथ मिलकर रक्षाके लिये उस अमृतको नरदेवके हाथमें अमृत-भाण्डको सौंप दिया ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ९४९ ॥

: १८ :

सूत उवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातममृतं मथितं यथा ।
यत्र सोऽश्वः समुत्पन्नः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ १ ॥

सूत बोले—हे शौनक ! जिस प्रकार अति बल—शाली तथा शोभायुक्त अश्वराज उच्चैःश्रवाकी उत्पत्ति हुई थी, और जिस प्रकार अमृतका मंथन किया था, वह सब कथा मैंने आपसे कह दी है ॥ १ ॥

यं निशाम्य तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् ।
उच्चैःश्रवा नु किंवर्णो भद्रे जानीहि माचिरम् ॥ २ ॥

उस उच्चैःश्रवाको देखकर कद्रू विनतासे यह बोली, "हे भद्रे ! जल्दी कहो तो सही, कि यह उच्चैःश्रवा किस रंगका है ?" ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विनतोवाच

श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे।
ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततोऽत्र विपणावहे ॥ ३ ॥

विनता बोली– "यह उच्चैःश्रवा तो सफेद रङ्गका ही है। अथवा हे कल्याणि ! तुम क्या समझती हो? तुम भी इसका वर्ण बताओ तो हम दोनों इस बारेमें बाजी लगाएं" ॥ ३ ॥

कद्रूरुवाच

कृष्णवालमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते।
एहि सार्धं मया दीव्य दासीभावाय भामिनि ॥ ४ ॥

कद्रू बोली, "हे पवित्र मुस्करानेवाली ! मैं तो इस घोडेको काले रंगकी पूंछवाला मानती हूँ। हे भामिनी ! आओ, मेरे साथ दासीभावके लिए बाजी लगाओ अर्थात् जो हारेगी, वह सदा दूसरीकी दासी बनी रहेगी" ॥ ४ ॥

सूत उवाच

एवं ते समयं कृत्वा दासीभावाय वै मिथः।
जग्मतुः स्वगृहानेव श्वो द्रक्ष्याव इति स्म ह ॥ ५ ॥

सूत बोले, कि इस प्रकार कद्रू और विनता आपसमें दासीपनकी बाजी लगा करके यह कह कर, कि "कल घोडा देख लिया जायगा" अपने अपने घरोंको चली गईं ॥ ५ ॥

ततः पुत्रसहस्रं तु कद्रूर्जिह्मं चिकीर्षती।
आज्ञापयामास तदा बाला भूत्वाञ्जनप्रभाः ॥ ६ ॥
आविशध्वं हयं क्षिप्रं दासी न स्यामहं यथा।
तद्वाक्यं नान्वपद्यन्त ताञ्शशाप भुजङ्गमान् ॥ ७ ॥

तब कद्रूने छल करनेकी इच्छासे अपने सहस्र पुत्रोंको आज्ञा दी "पुत्रो ! तुम अंजनकीसी कांतिवाले काले लोम बनकर उच्चैःश्रवाको ढंक लो, कि जिससे मुझको दासी न होना पडे।" कद्रूके ऐसा कहनेपर, जिन सर्पोंने उसकी बात न मानी, उनको उसने यह शाप दिया ॥ ६–७ ॥

सर्पसत्रे वर्तमाने पावको वः प्रधक्ष्यति।
जनमेजयस्य राजर्षेः पाण्डवेयस्य धीमतः ॥ ८ ॥

कि पाण्डवपुत्र बुद्धिमान् राजर्षि जनमेजयके सर्पयज्ञके समय अग्निदेवता तुमको जलावेंगे ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शापमेनं तु शुश्राव स्वयमेव पितामहः ।
अतिक्रूरं समुद्दिष्टं कद्रूवा दैवादतीव हि ॥ ९ ॥

कद्रूने क्रोधित होकर दैवसंयोगसे सर्पोंको जैसा कठोर शाप दिया था, उसे स्वयं पितामह ब्रह्माजीने सुना ॥ ९ ॥

सार्धं देवगणैः सर्वैर्वाचं तामन्वमोदत ।
बहुत्वं प्रेक्ष्य सर्पाणां प्रजानां हितकाम्यया ॥ १० ॥

और सम्पूर्ण देवोंके सहित ब्रह्माने सांपोंकी संख्या बढते देखकर प्रजाओंके हित करनेकी इच्छासे कद्रूकी इस बातका समर्थन किया ॥ १० ॥

तिग्मवीर्यविषा ह्येते दन्दशूका महाबलाः ।
तेषां तीक्ष्णविषत्वाद्धि प्रजानां च हिताय वै ।
प्रादाद्विषहणीं विद्यां काश्यपाय महात्मने ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ९६० ॥

ये साप भयंकर विषवाले, तीक्ष्ण दाढवाले महाबलवान् थे उनका विष तीक्ष्ण था अतः उनके अत्यन्त जहरीले होनेके कारण प्रजाओंके हितके लिए ब्रह्माने इस बातका समर्थन किया और महात्मा कश्यपको विष हरनेवाली विद्या प्रदान की ॥ ११ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अट्ठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ॥ ९६० ॥

: १९ :

सूत उवाच

ततो रजन्यां व्युष्टायां प्रभात उदिते रवौ ।
कद्रूश्च विनता चैव भगिन्यौ ते तपोधन ॥ १ ॥
अमर्षिते सुसंरब्धे दास्ये कृतपणे तदा ।
जग्मतुस्तुरगं द्रष्टुमुच्चैःश्रवसमन्तिकात् ॥ २ ॥

सूत बोले– कि हे तपोधन ! दूसरे दिन रातके खतम होनेपर सवेरे सूर्य उगते ही, कद्रू और विनता दोनों बहिनें दासीपनकी बाजी लगाये हुई, हिंसा और क्रोधसे भरी हुई घोडेको देखनेके लिए उच्चैःश्रवाके पास गईं ॥ १–२ ॥

ददृशाते तदा तत्र समुद्रं निधिमम्भसाम् ।
तिमिंगिलझषाकीर्णं मकरैरावृतं तथा ॥ ३ ॥

कुछ दूर चलकर उन्होंने पासहीमें जलके कोष महासमुद्रको देखा । जो घडियाल, तिमिंगल, मछली और मगरोंसे घिरा हुआ है ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्त्वैश्च बहुसाहस्रैर्नानारूपैः समावृतम्।
उग्रैर्नित्यमनाधृष्यं कूर्मग्राहसमाकुलम् ॥ ४ ॥

तथा भांति भांतिके रूपवाले तथा भयंकर सहस्रों जीवोंसे सदा भरा हुआ तथा जो कछुए तथा मगरोंसे भरे हुए होनेके कारण पार जा सकनेके अयोग्य है ॥ ४ ॥

आकरं सर्वरत्नानामालयं वरुणस्य च।
नागानामालयं रम्यमुत्तमं सरितां पतिम् ॥ ५ ॥

वह नदियोंका राजा समुद्र सर्व रत्नोंकी खान, वरुणका घर, सर्पोंका सुन्दर और श्रेष्ठ आगार था ॥ ५ ॥

पातालज्वलनावासमसुराणां च बन्धनम्।
भयंकरं च सत्त्वानां पयसां निधिमर्णवम् ॥ ६ ॥

वह समुद्र पातालकी अग्नि अर्थात् वाडवाग्निका आधार, असुरोंका बंधन, स्थलचर जीवोंके लिए भयंकर, जलका अक्षय भाण्डार है ॥ ६ ॥

शुभं दिव्यममर्त्यानाममृतस्याकरं परम्।
अप्रमेयमचिन्त्यं च सुपुण्यजलमद्भुतम् ॥ ७ ॥

वह समुद्र शुभ देवभोगयोग्य अमृतका मंगलमय श्रेष्ठ अलौकिक आधार, माप रहित, अत एव अचिन्त्य, उत्तम जलसे युक्त तथा अद्भुत है ॥ ७ ॥

घोरं जलचरारावरौद्रं भैरवनिस्वनम्।
गम्भीरावर्तकलिलं सर्वभूतभयंकरम् ॥ ८ ॥

जलचरोंके घोर शब्दसे भयंकर और भयानक शब्दोंसे युक्त, भारी भारी भंवरवाली लहरोंसे भरा हुआ, सर्व भूतोंके लिए भयदायी है ॥ ८ ॥

वेलादोलानिलचलं क्षोभोद्वेगसमुत्थितम्।
वीचीहस्तैः प्रचलितैर्नृत्यन्तमिव सर्वशः ॥ ९ ॥

और तट पर प्रबल वेगसे बहती हुई हवासे चञ्चल हुआ हुआ वह समुद्र चञ्चल लहररूपी हाथ उठाकर मानों चारों ओर नाच रहा है ॥ ९ ॥

चन्द्रवृद्धिक्षयवशादुद्वृत्तोर्मिदुरासदम्।
पाञ्चजन्यस्य जननं रत्नाकरमनुत्तमम् ॥ १० ॥

जो सुन्दर रत्नाकर चन्द्रके घटने और बढनेके कारण अति ऊंची लहरोंसे उछल उठनेके कारण अति भयानक है, जो पांचजन्य शङ्खकी उत्पत्तिका स्थान है ॥ १० ॥

गां विन्दता भगवता गोविन्देनामितौजसा।
वराहरूपिणा चान्तर्विक्षोभितजलाविलम् ॥ ११ ॥

भूमिको ढूंढ निकालनेकी इच्छासे वराह रूपधारी अमित तेजस्वी भगवान् नारायणने जिसका जल हिलोडा और गंदला किया है ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्मर्षिणा च तपता वर्षाणां शतमत्रिणा ।
अनासादितगाधं च पातालतलमव्ययम् ॥ १२ ॥

सैकडों वर्षोंतक तप करने पर भी ब्रह्मर्षि अत्रि भी जिसके अथाह जलके पाताल–तलके तलतक पहुंच नहीं सके थे ऐसा अगाध वह समुद्र है ॥ १२ ॥

अध्यात्मयोगनिद्रां च पद्मनाभस्य सेवतः ।
युगादिकालशयनं विष्णोरमिततेजसः ॥ १३ ॥

अपरिमित तेजोपूर्ण पद्मनाभ विष्णु प्रलयकालमें अध्यात्मयोगकी निद्रामें जहां सोते हैं ॥१३॥

वडवामुखदीप्ताग्नेस्तोयहव्यप्रदं शुभम् ।
अगाधपारं विस्तीर्णमप्रमेयं सरित्पतिम् ॥ १४ ॥

वडवामुखसे प्रज्ज्वलित अग्निमें जलरूपी हव्यकी आहुति चढानेवाला तथा शुभ है; अपरिमित सीमावाला विस्तीर्ण और अप्रमेय जो नदियोंका राजा समुद्र है ॥ १४ ॥

महानदीभिर्बह्वीभिः स्पर्धयेव सहस्रशः ।
अभिसार्यमाणमनिशं ददृशाते महार्णवम् ॥ १५ ॥

सहस्रों और बहुतसी महानदियां जिस समुद्रके समीप नायिकाकी भांति स्पर्धापूर्वक सदा दौडती हुई दिखाई देती हैं ॥ १५ ॥

गम्भीरं तिमिमकरोग्रसंकुलं तं गर्जन्तं जलचररावरौद्रनादैः ।
विस्तीर्णं ददृशतुरम्बरप्रकाशं तेऽगाधं निधिमुरुमम्भसामनन्तम् ॥ १६ ॥

अति गहरा, तिमि–मकरादि उग्र जीवोंसे भरपूर, जलचरोंके घोर शब्दसे गूंजता हुआ, आकाशके समान फैला हुआ, अथाह अपार जलसागर कद्रू और विनताको दीख पडा ॥ १६ ॥

इत्येवं झषमकरोर्मिसंकुलं तं गम्भीरं विकसितमम्बरप्रकाशम् ।
पातालज्वलनशिखाविदीपितं तं पश्यन्त्यौ द्रुतमभिपेततुस्तदानीम् ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ९७७ ॥

इस प्रकार मछली और मगरसे भरपूर, अगाध, आकाशके प्रकाशके समान विकसित तथा पातालकी अग्निकी ज्वालासे प्रकाशित उस सागरको देखती हुई वे दोनों उस समय शीघ्रही उसके पास पहुंची ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ९७७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २० :

सूत उवाच

तं समुद्रमतिक्रम्य कद्रूर्विनतया सह।
न्यपतत्तुरगाभ्याशे नचिरादिव शीघ्रगा ॥ १ ॥

सूत बोले— कि शीघ्रतासे चलनेवाली कद्रू विनताके साथ महासमुद्रके पार उतरकर शीघ्र ही उच्चैःश्रवाके समीप जा पहुंची ॥ १ ॥

निशाम्य च बहून्बालान्कृष्णान्पुच्छं समाश्रितान्।
विनतां विषण्णवदनां कद्रूर्दास्ये न्ययोजयत् ॥ २ ॥

उस (घोडे) की पूछमें बहुतसे काले बालोंको लगा हुआ देखकर उदास मुखवाली विनताको कद्रूने अपने दासीके कार्यमें नियुक्त किया ॥ २ ॥

ततः सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता।
अभवद्दुःखसंतप्ता दासीभावं समास्थिता ॥ ३ ॥

तब उस बाजीमें हारकर दासीके कार्यमें लगी हुई वह विनता दुःखसे बहुत संतप्त हुई ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव गरुडः काल आगते।
विना मात्रा महातेजा विदार्याण्डमजायत ॥ ४ ॥

इसी बीचमें बडे प्रभावशाली गरुड कालपूर्ण होने पर माताकी सहायताके बिना ही स्वयं अण्डेको फोडकर निकल आया ॥ ४ ॥

अग्निराशिरिवोद्भासन्समिद्धोऽतिभयंकरः।
प्रवृद्धः सहसा पक्षी महाकायो नभोगतः ॥ ५ ॥

जलती हुई अग्निके समान दीखते हुए तेजस्वी अति भयंकर वृद्धिको प्राप्त हुआ तथा महान् शरीरवाला यह पक्षी अचानक आकाशमें उड गया ॥ ५ ॥

तं दृष्ट्वा शरणं जग्मुः प्रजाः सर्वा विभावसुम्।
प्रणिपत्याब्रुवंश्चैनमासीनं विश्वरूपिणम् ॥ ६ ॥

यह देखकर सभी प्रजाएं सुखसे बैठे हुए विश्वरूपी अग्निदेवकी शरणमें गए और उनको प्रणाम कर बोले ॥ ६ ॥

अग्ने मा त्वं प्रवर्धिष्ठाः कच्चिन्नो न दिधक्षसि।
असौ हि राशिः सुमहान्समिद्धस्तव सर्पति ॥ ७ ॥

" हे अग्ने ! तुम अब और अधिक न बढो; क्या तुम हमें जलाना तो नहीं चाहते ? वह देखो, समिद्ध हुए तुम्हारे ये तेज—समूह बढे चले आ रहे हैं " ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अग्निरुवाच

नैतदेवं यथा यूयं मन्यध्वमसुरार्दनाः ।
गरुडो बलवानेष मम तुल्यः स्वतेजसा ॥ ८ ॥

अग्निदेव बोले– "हे दैत्यनाशी देवगण ! तुम जो मानते हो वह ठीक नहीं है । अपने तेजसे मेरे सदृश यह गरुड है" ॥ ८ ॥

सूत उवाच

एवमुक्तास्ततो गत्वा गरुडं वाग्भिरस्तुवन् ।
अदूरादभ्युपेत्यैनं देवाः सर्षिगणास्तदा ॥ ९ ॥

सूत बोले– इस प्रकार कहे जाने पर वहांसे चलकर देवगण ऋषियोंके साथ मिलकर दूरसे आकर गरुडकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥

त्वं ऋषिस्त्वं महाभागस्त्वं देवः पतगेश्वरः ।
त्वं प्रभुस्तपनप्रख्यस्त्वं नस्त्राणमनुत्तमम् ॥ १० ॥

हे पक्षीराज ! तुम ऋषि हो, तुम महा भाग्यवान् हो, तुम देवता हो, तुम पक्षियोंके स्वामी हो, तुम स्वामी हो, तुम ही तेज हो तथा तुम हम सबके उत्तम रक्षक हो ॥ १० ॥

बलोर्मिमान्साधुरदीनसत्त्वः समृद्धिमान्दुष्प्रसहस्त्वमेव ।
तपः श्रुतं सर्वमहीनकीर्ते अनागतं चोपगतं च सर्वम् ॥ ११ ॥

तुम बलके सागर हो, तुम साधु हो, तुम अक्षय बलवाले हो, तुम ऐश्वर्यवान् हो, तुम ही अजेय हो, हे पूर्ण कीर्तिमान् ! तुम तप हो, तुम श्रुत हो तथा तुम्हीसे आगत तथा अनागतकी उत्पत्ति होती है ॥ ११ ॥

त्वमुत्तमः सर्वमिदं चराचरं गभस्तिभिर्भानुरिवावभाससे ।
समाक्षिपन्भानुमतः प्रभां मुहुस्त्वमन्तकः सर्वमिदं ध्रुवाध्रुवम् ॥ १२ ॥

तुम उत्तम हो, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे सब प्रकाशित करता है उसी प्रकार तुम भी स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत्को प्रकाशित कर रहे हो, तुम ही सूर्यके प्रकाशको हर कर इस चराचर विश्वका क्षण क्षणमें लय कर रहे हो ॥ १२ ॥

दिवाकरः परिकुपितो यथा दहेत्प्रजास्तथा दहसि हुताशनप्रभ ।
भयङ्करः प्रलय इवाग्निरुत्थितो विनाशयन्युगपरिवर्तनान्तकृत् ॥ १३ ॥

हे अग्निके समान तेजवान् ! जिस प्रकार प्रलय कालमें सूर्यदेव क्रोधित होकर प्रजाओंको जलाता है, तुम भी उसी प्रकार उन प्रजाओंको जला रहे हो और युग बदलनेके कालमें सृष्टिनाशी प्रलयाग्नि जिस प्रकार भयानक रूपसे जलकर संहार करती है, तुम भी उसी प्रकार सृष्टिको नष्ट कर रहे हो ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खगेश्वरं शरणमुपस्थिता वयं महौजसं वितिमिरमभ्रगोचरम्।
महाबलं गरुडमुपेत्य खेचरं परावरं वरदमजय्यविक्रमम् ॥ १४ ॥

महा पराक्रमी, अन्धकारका विनाशक, आकाशमें संचार करनेवाले, अत्यन्त बलशाली, पर अर्थात् स्थूलसे भी स्थूल और अवर अर्थात् सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, वर देनेवाले, अजेय पराक्रमवाले पक्षियोंके राजा गरुडकी शरणमें हम आते हैं ॥ १४ ॥

एवं स्तुतः सुपर्णस्तु देवैः सर्षिगणैस्तदा।
तेजसः प्रतिसंहारमात्मनः स चकार ह ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ २९२ ॥

ऋषि और देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर गरुडने अपने तेजसमूहको समेट लिया ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ २९२ ॥

: २१ :

सूत उवाच

ततः कामगमः पक्षी महावीर्यो महाबलः।
मातुरन्तिकमागच्छत्परं तीरं महोदधेः ॥ १ ॥

सूत बोले– इसके बाद अति वीर्यशाली, महाबली, अपनी इच्छानुसार जानेवाला पक्षीराज समुद्रके दूसरे किनारे अपनी माताके समीप जा पहुंचा ॥ १ ॥

यत्र सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता।
अतीव दुःखसंतप्ता दासीभावमुपागता ॥ २ ॥

जहां उसकी माता विनता बाजी हार कर और अति दुःखी होकर, दासी बनी हुई थीं ॥२॥

ततः कदाचिद्विनतां प्रवणां पुत्रसंनिधौ।
काल आहूय वचनं कद्रूरिदमभाषत ॥ ३ ॥

एक दिन कद्रू गरुडके सामने ही नम्र हुई हुई विनताको बुला कर यह वचन बोली ॥३॥

नागानामालयं भद्रे सुरम्यं रमणीयकम्।
समुद्रकुक्षावेकान्ते तत्र मां विनते वह ॥ ४ ॥

" हे भद्रे ! उस एकान्त समुद्रके भीतर नागोंका सुन्दर और आनन्ददायी घर है, हे विनता ! वहां मुझको ले चल " ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः सुपर्णमाता तामवहत्सर्पमातरम् ।
पन्नगान्गरुडश्चापि मातुर्वचनचोदितः ॥ ५ ॥

यह सुनकर गरुडकी माता विनता उस सर्पोंकी माता कद्रूको वहां ले चली और गरुड भी माताकी आज्ञानुसार सर्पोंको ले चला ॥ ५ ॥

स सूर्यस्याभितो याति वैनतेयो विहंगमः ।
सूर्यरश्मिपरीताश्च मूर्च्छिताः पन्नगा भवन् ।
तदवस्थान्सुतान्दृष्ट्वा कद्रूः शक्रमथास्तुवत् ॥ ६ ॥

पर ले चलनेके समय वहांसे विनता पुत्र पक्षीराज गरुड सूर्यमंडलके निकट होकर जाने लगा । इससे सर्पगण सूर्यके तेजसे व्याकुल होकर बेहोश हो गए । कद्रू पुत्रोंकी यह दशा देखकर देवराजकी स्तुति करने लगी ॥ ६ ॥

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते बलसूदन ।
नमुचिघ्न नमस्तेऽस्तु सहस्राक्ष शचीपते ॥ ७ ॥

हे सर्व देवोंके नाथ ! तुमको नमस्कार करती हूं, हे बल राक्षकके सूदन ! तुमको नमस्कार करती हूं, हे नमुचि नामके असुरके विनाशक सहस्राक्ष शचीपति ! तुमको प्रणाम करती हूं ॥ ७ ॥

सर्पाणां सूर्यतप्तानां वारिणा त्वं प्लवो भव ।
त्वमेव परमं त्राणमस्माकममरोत्तम ॥ ८ ॥

जल बरसा कर तुम सूर्यसे जलते हुए सर्पोंकी रक्षा करो; हे देवोंमें उत्तम ! तुम ही हमारे एकमात्र रक्षक हो; ॥ ८ ॥

ईशो ह्यसि पयः स्रष्टुं त्वमनल्पं पुरंदर ।
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वमग्निर्वैद्युतोऽम्बरे ॥ ९ ॥

हे पुरन्दर ! तुम अपरिमित वृष्टिकी सृष्टि करनेमें समर्थ हो । तुम ही वायु हो, तुम ही बादल हो, तुम ही अग्नि हो और तुम ही आकाशमें बीजली रूप हो ॥ ९ ॥

त्वमभ्रघनविक्षेप्ता त्वामेवाहुः पुनर्घनम् ।
त्वं वज्रमतुलं घोरं घोषवांस्त्वं बलाहकः ॥ १० ॥

तुम मेघोंके चलानेवाले हो, तुम्हींको बादल भी कहते हैं, तुम तुलनारहित घोर वज्र हो, तुम गरजनेवाले बादल हो ॥ १० ॥

स्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्ता चापराजितः ।
त्वं ज्योतिः सर्वभूतानां त्वमादित्यो विभावसुः ॥ ११ ॥

तुम तीनों लोकोंके रचने हारे हो, तुम ही नाश करनेवाले हो, तुम किसीके भी द्वारा जीतनेके अयोग्य हो, तुम ही आदित्य हो, तुम ही विभावसु हो ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खगेश्वरं शरणमुपस्थिता वयं महौजसं वितिमिरमभ्रगोचरम्।
महाबलं गरुडमुपेत्य खेचरं परावरं वरदमजय्यविक्रमम् ॥ १४ ॥

महा पराक्रमी, अन्धकारका विनाशक, आकाशमें संचार करनेवाले, अत्यन्त बलशाली, पर अर्थात् स्थूलसे भी स्थूल और अवर अर्थात् सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, वर देनेवाले, अजेय पराक्रमवाले पक्षियोंके राजा गरुडकी शरणमें हम आते हैं ॥ १४ ॥

एवं स्तुतः सुपर्णस्तु देवैः सर्षिगणैस्तदा।
तेजसः प्रतिसंहारमात्मनः स चकार ह ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ८९२ ॥

ऋषि और देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर गरुडने अपने तेजसमूहको समेट लिया ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ९९२ ॥

: २१ :

सूत उवाच

ततः कामगमः पक्षी महावीर्यो महाबलः।
मातुरन्तिकमागच्छत्परं तीरं महोदधेः ॥ १ ॥

सूत बोले– इसके बाद अति वीर्यशाली, महाबली, अपनी इच्छानुसार जानेवाला पक्षीराज समुद्रके दूसरे किनारे अपनी माताके समीप जा पहुंचा ॥ १ ॥

यत्र सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता।
अतीव दुःखसंतप्ता दासीभावमुपागता ॥ २ ॥

जहां उसकी माता विनता बाजी हार कर और अति दुःखी होकर, दासी बनी हुई थीं ॥२॥

ततः कदाचिद्विनतां प्रवणां पुत्रसंनिधौ।
काल आहूय वचनं कद्रूरिदमभाषत ॥ ३ ॥

एक दिन कद्रू गरुडके सामने ही नम्र हुई हुई विनताको बुला कर यह वचन बोली ॥३॥

नागानामालयं भद्रे सुरम्यं रमणीयकम्।
समुद्रकुक्षावेकान्ते तत्र मां विनते वह ॥ ४ ॥

" हे भद्रे ! उस एकान्त समुद्रके भीतर नागोंका सुन्दर और आनन्ददायी घर है, हे विनता ! वहां मुझको ले चल " ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः सुपर्णमाता तामवहत्सर्पमातरम् ।
पन्नगान्गरुडश्चापि मातुर्वचनचोदितः ॥ ५ ॥

यह सुनकर गरुडकी माता विनता उस सर्पोंकी माता कद्रूको वहां ले चली और गरुड भी माताकी आज्ञानुसार सर्पोंको ले चला ॥ ५ ॥

स सूर्यस्याभितो याति वैनतेयो विहंगमः ।
सूर्यरश्मिपरीताश्च मूर्च्छिताः पन्नगाभवन् ।
तदवस्थान्सुतान्दृष्ट्वा कद्रूः शक्रमथास्तुवत् ॥ ६ ॥

पर ले चलनेके समय वहांसे विनता पुत्र पक्षीराज गरुड सूर्यमंडलके निकट होकर जाने लगा । इससे सर्पगण सूर्यके तेजसे व्याकुल होकर बेहोश हो गए । कद्रू पुत्रोंकी यह दशा देखकर देवराजकी स्तुति करने लगी ॥ ६ ॥

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते बलसूदन ।
नमुचिघ्न नमस्तेऽस्तु सहस्राक्ष शचीपते ॥ ७ ॥

हे सर्व देवोंके नाथ ! तुमको नमस्कार करती हूं, हे बल राक्षसके सूदन ! तुमको नमस्कार करती हूं, हे नमुचि नामके असुरके विनाशक सहस्राक्ष शचीपति ! तुमको प्रणाम करती हूं ॥ ७ ॥

सर्पाणां सूर्यतप्तानां वारिणा त्वं प्लवो भव ।
त्वमेव परमं त्राणमस्माकममरोत्तम ॥ ८ ॥

जल बरसा कर तुम सूर्यसे जलते हुए सर्पोंकी रक्षा करो; हे देवोंमें उत्तम ! तुम ही हमारे एकमात्र रक्षक हो; ॥ ८ ॥

ईशो ह्यसि पयः स्रष्टुं त्वमनल्पं पुरंदर ।
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वमग्निर्वैद्युतोऽम्बरे ॥ ९ ॥

हे पुरन्दर ! तुम अपरिमित वृष्टिकी सृष्टि करनेमें समर्थ हो । तुम ही वायु हो, तुम ही बादल हो, तुम ही अग्नि हो और तुम ही आकाशमें बीजली रूप हो ॥ ९ ॥

त्वमभ्रघनविक्षेप्ता त्वामेवाहुः पुनर्घनम् ।
त्वं वज्रमतुलं घोरं घोषवांस्त्वं बलाहकः ॥ १० ॥

तुम मेघोंके चलानेवाले हो, तुम्हींको बादल भी कहते हैं, तुम तुलनारहित घोर वज्र हो, तुम गरजनेवाले बादल हो ॥ १० ॥

स्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्ता चापराजितः ।
त्वं ज्योतिः सर्वभूतानां त्वमादित्यो विभावसुः ॥ ११ ॥

तुम तीनों लोकोंके रचने हारे हो, तुम ही नाश करनेवाले हो, तुम किसीके भी द्वारा जीतनेके अयोग्य हो, तुम ही आदित्य हो, तुम ही विभावसु हो ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्वं महद्भूतमाश्चर्यं त्वं राजा त्वं सुरोत्तमः।
त्वं विष्णुस्त्वं सहस्राक्षस्त्वं देवस्त्वं परायणम् ॥ १२ ॥

तुम आश्चर्ययुक्त महान् तत्त्व हो, तुम राजा हो, तुम देवोंमें श्रेष्ठ हो, तुम विष्णु हो, तुम सहस्राक्ष हो, तुम परात्पर पर देव हो ॥ १२ ॥

त्वं सर्वममृतं देव त्वं सोमः परमार्चितः।
त्वं मुहूर्तस्तिथिश्च त्वं लवस्त्वं वै पुनः क्षणः ॥ १३ ॥

हे देव ! तुम सब अमृत हो, तुम ही परम पूजित सोमदेव हो, तुम मुहूर्त हो, तुम तिथि हो, तुम लव हो और तुम ही क्षण हो ॥ १३ ॥

शुक्लस्त्वं बहुलश्चैव कला काष्ठा त्रुटिस्तथा।
संवत्सरर्तवो मासा रजन्यश्च दिनानि च ॥ १४ ॥

तुम शुक्लपक्ष हो, तुम कृष्णपक्ष हो, तुम कला हो, तुम काष्ठा हो तथा तुम त्रुटि हो, तुम वर्ष, ऋतु, मास, दिन और रात हो ॥ १४ ॥

त्वमुत्तमा सगिरिवना वसुंधरा सभास्करं वितिमिरमम्बरं तथा।
महोदधिः सतिमितिमिंगिलस्तथा महोर्मिमान्बहुमकरो झषालयः ॥१५॥

तुम उत्तम पर्वत और वनोंसे युक्त धरती हो और तुम्हीं सूर्ययुक्त तथा अन्धकाररहित आकाशमंडल हो, तुम तिमि तिमिङ्गिल मीन मकरादि नाना जलजन्तुओंसे भरे और लहराते हुए महासमुद्र हो ॥ १५ ॥

महद्यशस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे मनीषिभिर्मुदितमना महर्षिभिः।
अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥ १६ ॥

तुम अति यशस्वी हो, इस हेतु प्रज्ञायुक्त महर्षिगण आनन्द चित्तसे सदा तुम्हारी उपासना किया करते हैं, तुम मङ्गलार्थ यज्ञोंमें स्तुतिको प्राप्त होकर वषट् किये हुए घृत और सोमरसको पीते हो ॥ १६ ॥

त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वतुलबलौघ गीयसे च।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यभिगमयन्ति सर्ववेदैः ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ १००९ ॥

हे महाबलशाली इन्द्र ! फल पानेके निमित्त ब्राह्मणोंके द्वारा तुम हमेशा पूजे जाते हो। और संपूर्ण वेदांगोंमें तुम्ही गाये जाते हो। तुम्हें पानेके हेतु यागशील श्रेष्ठ द्विजवृन्द सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक सब वेदोंके द्वारा वेदांगोंकी मीमांसा किया करते हैं ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ॥ १००९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २२ :

सूत उवाच

एवं स्तुतस्तदा कद्रूवा भगवान्हरिवाहनः ।
नीलजीमूतसंघातैर्व्योम सर्वं समावृणोत् ॥ १ ॥

सूत बोले— कि तब कद्रूके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् मेघवाहनने काले बादलोंके समूहोंसे सम्पूर्ण आकाश मंडलको ढक दिया ॥ १ ॥

ते मेघा मुमुचुस्तोयं प्रभूतं विद्युदुज्ज्वलाः ।
परस्परमिवात्यर्थं गर्जन्तः सततं दिवि ॥ २ ॥

उन मेघवृन्दोंने बिजलीसमूहसे उज्ज्वल होकर मानों एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जना करते हुए बहुत जल बरसाया ॥ २ ॥

संघातितमिवाकाशं जलदैः सुमहाद्भुतैः ।
सृजद्भिरतुलं तोयमजस्रं सुमहारवैः ॥ ३ ॥

बहुत शब्द करनेवाले तथा अद्भुत बादलोंके बहुत जल बरसाने पर देखकर जान पडने लगा, कि मानों आकाश ही सब बहकर गिर रहा हो ॥ ३ ॥

संप्रनृत्तमिवाकाशं धारोर्मिभिरनेकशः ।
मेघस्तनितनिर्घोषमम्बरं समपद्यत ॥ ४ ॥

बादलोंकी गडगडाहट और अगणित धाराओंकी लहरोंसे मानों आकाश भी नाचने लगा। इस प्रकार आकाश सुशोभित हुआ ॥ ॥ ४ ॥

नागानामुत्तमो हर्षस्तदा वर्षति वासवे ।
आपूर्यत मही चापि सलिलेन समन्ततः ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ १०१४ ॥

तब देवराजकी वर्षासे सर्पोंको बडा आनन्द हुआ और धरती भी चारों ओर जलसे भर गई ॥ ५ ॥

महाभारतके आदिपर्वमें बाइसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ १०१४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २३ :

सूत उवाच

सुपर्णेनोह्यमानास्ते जग्मुस्तं देशमाशु वै।
सागराम्बुपरिक्षिप्तं पक्षिसंघनिनादितम् ॥ १ ॥

सूत बोले, तत्पश्चात् गरुड द्वारा ढोये जाते हुए वे सर्प सागरके पानीसे घिरे हुए तथा पक्षियोंके समूहके शब्दोंसे गुंजायमान देशमें शीघ्र ही जा पहुंचे ॥ १ ॥

विचित्रफलपुष्पाभिर्वनराजिभिरावृतम्।
भवनैरावृतं रम्यैस्तथा पद्माकरैरपि ॥ २ ॥
प्रसन्नसलिलैश्चापि ह्रदैश्चित्रैर्विभूषितम्।
दिव्यगन्धवहैः पुण्यैर्मारुतैरुपवीजितम् ॥ ३ ॥

रंग बिरंगे फल-फूलोंसे सजे सजाये वनोंसे घिरे हुए सुन्दर सुन्दर गृह मंदिरों और कमलोंसे सुशोभित सुन्दर जलवाले अनेक तरहके झीलोंसे विभूषित, शुद्ध सुगन्धित हवासे युक्त ॥ २–३ ॥

उपजिघ्रद्भिराकाशं वृक्षैर्मलयजैरपि।
शोभितं पुष्पवर्षाणि मुञ्चद्भिर्मारुतोद्धुतैः ॥ ४ ॥
किरद्भिरिव तत्रस्थान्नागान्पुष्पाम्बुवृष्टिभिः।
मनःसंहर्षणं पुण्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्।
नानापक्षिरुतं रम्यं कद्रुपुत्रप्रहर्षणम् ॥ ५ ॥

हवासे हिलाये जानेके कारण फूलोंकी वर्षा गिरानेवाले तथा मानो आकाशको भी सूंघने अर्थात् छूनेवाले ऐसे ऊंचे ऊंचे मलयपर्वत पर उत्पन्न होनेवाला जो चन्दन उसके वृक्षोंसे सुशोभित। फूलरूपी पानीकी बरसातको मानों वहां पहुंचे हुए सर्पोंपर बरसा रहे हो, मनको आनन्द देनेवाले, सुन्दर तथा गन्धर्व और अप्सराओंके परम प्रिय नाना पक्षियोंके शब्दोंसे युक्त वह सुंदर वन कद्रुके पुत्रों नागोंको बहुत आनन्द देनेवाला था ॥४–५॥

तत्ते वनं समासाद्य विजह्रुः पन्नगा मुदा।
अब्रुवंश्च महावीर्यं सुपर्णं पतगोत्तमम् ॥ ६ ॥

तब वे सर्प उस वनमें पहुंचकर आनन्दसे विहार करने लगे और अति वीर्य–शाली पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडसे बोले ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बहास्मानपरं द्वीपं सुरम्यं विपुलोदकम् ।
त्वं हि देशान्बहून्रम्यान्पतन्पश्यसि खेचर ॥ ७ ॥

"हे आकाशमें उडनेवाले गरुड ! तुमने आकाशमें घूमते हुए बहुतसे सुन्दर देश देखें हैं, अतः ज्यादा जलवाले किसी दूसरे सुन्दर द्वीपपर हमको ले चलो" ॥ ७ ॥

स विचिन्त्याब्रवीत्पक्षी मातरं विनतां तदा ।
किं कारणं मया मातः कर्तव्यं सर्पभाषितम् ॥ ८ ॥

यह सुनकर कुछ काल सोच विचार करके पक्षी गरुड अपनी माता विनतासे बोले– "हे माता ! मैं किस कारण सर्पोंकी आज्ञाका पालन करूं ?" ॥ ८ ॥

विनतोवाच

दासीभूतास्म्यनार्याया भगिन्याः पतगोत्तम ।
पणं वितथमास्थाय सर्पैरुपधिना कृतम् ॥ ९ ॥

विनताने कहा– "हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड ! अपने दुर्भाग्यसे मैंने एक प्रतिज्ञा की और सांपोंने छल कपट करके उसे झूठा कर दिया, इस कारण मैं अपनी अनार्या बहिनकी दासी हो गई हूँ" ॥ ९ ॥

सूत उवाच

तस्मिंस्तु कथिते मात्रा कारणे गगनेचरः ।
उवाच वचनं सर्पांस्तेन दुःखेन दुःखितः ॥ १० ॥

सूत बोले– माताके द्वारा (दासी बननेका) वह कारण कह सुनानेपर आकाशविहारी गरुड माताके दुःखसे दुःखी होकर सर्पोंसे ये वचन बोले ॥ १० ॥

किमाहृत्य विदित्वा वा किं वा कृत्वेह पौरुषम् ।
दास्याद्वो विप्रमुच्येयं सत्यं शंसत लेलिहाः ॥ ११ ॥

"हे चाटनेवाले सर्पो ! सच बोलो, मेरे द्वारा कौनसी वस्तु ढूंढ कर लाने वा किस बातको जानकर लौटने अथवा किस प्रकारके पौरुष करनेसे हम तुम्हारी दासतासे छूट सकते हैं" ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तमब्रुवन्सर्पा आहरामृतमोजसा ।
ततो दास्याद्विप्रमोक्षो भविता तव खेचर ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ १०२६ ॥

सर्पोंने गरुडकी बात सुनकर कहा– "हे पक्षीवर ! तुम अपने बलसे अमृत ले आओ, तो दासतासे तुम्हारा छुटकारा हो सकता है" ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तेइसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ १०२६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २३ :

सूत उवाच

सुपर्णेनोह्यमानास्ते जग्मुस्तं देशमाशु वै।
सागराम्बुपरिक्षिप्तं पक्षिसंघनिनादितम् ॥ १ ॥

सूत बोले, तत्पश्चात् गरुड द्वारा ढोये जाते हुए वे सर्प सागरके पानीसे घिरे हुए तथा पक्षियोंके समूहके शब्दोंसे गुंजायमान देशमें शीघ्र ही जा पहुंचे ॥ १ ॥

विचित्रफलपुष्पाभिर्वनराजिभिरावृतम्।
भवनैरावृतं रम्यैस्तथा पद्माकरैरपि ॥ २ ॥
प्रसन्नसलिलैश्चापि ह्रदैश्चित्रैर्विभूषितम्।
दिव्यगन्धवहैः पुण्यैर्मारुतैरुपवीजितम् ॥ ३ ॥

रंग बिरंगे फल-फूलोंसे सजे सजाये वनोंसे घिरे हुए सुन्दर सुन्दर गृह मंदिरों और कमलोंसे सुशोभित सुन्दर जलवाले अनेक तरहके झीलोंसे विभूषित, शुद्ध सुगन्धित हवासे युक्त ॥ २–३ ॥

उपजिघ्रद्भिराकाशं वृक्षैर्मलयजैरपि।
शोभितं पुष्पवर्षाणि मुञ्चद्भिर्मारुतोद्धुतैः ॥ ४ ॥
किरद्भिरिव तत्रस्थान्नागान्पुष्पाम्बुवृष्टिभिः।
मनःसंहर्षणं पुण्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्।
नानापक्षिरुतं रम्यं कद्रुपुत्रप्रहर्षणम् ॥ ५ ॥

हवासे हिलाये जानेके कारण फूलोंकी वर्षा गिरानेवाले तथा मानो आकाशको भी सूंघने अर्थात् छूनेवाले ऐसे ऊंचे ऊंचे मलयपर्वत पर उत्पन्न होनेवाला जो चन्दन उसके वृक्षोंसे सुशोभित। फूलरूपी पानीकी बरसातको मानों वहां पहुंचे हुए सर्पोंपर बरसा रहे हो, मनको आनन्द देनेवाले, सुन्दर तथा गन्धर्व और अप्सराओंके परम प्रिय नाना पक्षियोंके शब्दोंसे युक्त वह सुंदर वन कद्रुके पुत्रों नागोंको बहुत आनन्द देनेवाला था ॥४–५॥

तत्ते वनं समासाद्य विजह्रुः पन्नगा मुदा।
अब्रुवंश्च महावीर्यं सुपर्णं पतगोत्तमम् ॥ ६ ॥

तब वे सर्प उस वनमें पहुंचकर आनन्दसे विहार करने लगे और अति वीर्य–शाली पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडसे बोले ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वहास्मानपरं द्वीपं सुरम्यं विपुलोदकम् ।
त्वं हि देशान्बहून्रम्यान्पतन्पश्यसि खेचर ॥ ७ ॥

"हे आकाशमें उडनेवाले गरुड ! तुमने आकाशमें घूमते हुए बहुतसे सुन्दर देश देखें हैं, अतः ज्यादा जलवाले किसी दूसरे सुन्दर द्वीपपर हमको ले चलो" ॥ ७ ॥

स विचिन्त्याब्रवीत्पक्षी मातरं विनतां तदा ।
किं कारणं मया मातः कर्तव्यं सर्पभाषितम् ॥ ८ ॥

यह सुनकर कुछ काल सोच विचार करके पक्षी गरुड अपनी माता विनतासे बोले– "हे माता ! मैं किस कारण सर्पोंकी आज्ञाका पालन करूं ?" ॥ ८ ॥

विनतोवाच

दासीभूतास्म्यनार्याया भगिन्याः पतगोत्तम ।
पणं वितथमास्थाय सर्पैरुपधिना कृतम् ॥ ९ ॥

विनताने कहा– "हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड ! अपने दुर्भाग्यसे मैंने एक प्रतिज्ञा की और सांपोंने छल कपट करके उसे झूठा कर दिया, इस कारण मैं अपनी अनार्या बहिनकी दासी हो गई हूँ" ॥ ९ ॥

सूत उवाच

तस्मिंस्तु कथिते मात्रा कारणे गगनेचरः ।
उवाच वचनं सर्पांस्तेन दुःखेन दुःखितः ॥ १० ॥

सूत बोले– माताके द्वारा (दासी बननेका) वह कारण कह सुनानेपर आकाशविहारी गरुड माताके दुःखसे दुःखी होकर सर्पोंसे ये वचन बोले ॥ १० ॥

किमाहृत्य विदित्वा वा किं वा कृत्वेह पौरुषम् ।
दास्याद्वो विप्रमुच्येयं सत्यं शंसत लेलिहाः ॥ ११ ॥

"हे चाटनेवाले सर्पो ! सच बोलो, मेरे द्वारा कौनसी वस्तु ढूंढ कर लाने वा किस बातको जानकर लौटने अथवा किस प्रकारके पौरुष करनेसे हम तुम्हारी दासतासे छूट सकते हैं" ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तमब्रुवन्सर्पा आहरामृतमोजसा ।
ततो दास्याद्विप्रमोक्षो भविता तव खेचर ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ १०२६ ॥

सर्पोंने गरुडकी बात सुनकर कहा– "हे पक्षीवर ! तुम अपने बलसे अमृत ले आओ, तो दासतासे तुम्हारा छुटकारा हो सकता है" ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तेइसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ १०२६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २४ :

सूत उवाच

इत्युक्तो गरुडः सर्पैस्ततो मातरमब्रवीत्।
गच्छाम्यमृतमाहर्तुं भक्ष्यमिच्छामि वेदितुम् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि सर्पोंसे इस प्रकार कहे जाकर गरुड अपनी मातासे बोले, "मैं अमृत लानेको जाऊंगा, अतः अपना भक्ष्य (खाने योग्य पदार्थ) जानना चाहता हूँ" ॥ १ ॥

विनतोवाच

समुद्रकुक्षावेकान्ते निषादालयमुत्तमम्।
सहस्राणामनेकानां तान्भुक्त्वामृतमानय ॥ २ ॥

विनता बोली– "समुद्रके अन्दर एकान्तमें धीवरोंके रहनेके सुन्दर स्थान हैं, उन सहस्रों अथवा अनेकों धीवरोंको खाकर अमृत ले आओ ॥ २ ॥

न तु ते ब्राह्मणं हन्तुं कार्या बुद्धिः कथंचन।
अवध्यः सर्वभूतानां ब्राह्मणो ह्यनलोपमः ॥ ३ ॥

पर तुम कभी ब्राह्मणको मारनेकी बुद्धि मत करना, क्योंकि अग्निके समान तेजस्वी ब्राह्मण सब जीवोंके लिए अवध्य है ॥ ३ ॥

अग्निरर्को विषं शस्त्रं विप्रो भवति कोपितः।
भूतानामग्रभुग्विप्रो वर्णश्रेष्ठः पिता गुरुः ॥ ४ ॥

ब्राह्मण क्रोधित होनेसे अग्नि, सूर्य, विष और शस्त्रके समान बन जाता है, ब्राह्मण सब भूतोंका अग्रज, वर्णोंमें श्रेष्ठ, पिता और गुरु है" ॥ ४ ॥

गरुड उवाच

यथाहमभिजानीयां ब्राह्मणं लक्षणैः शुभैः।
तन्मे कारणतो मातः पृच्छतो वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

गरुड बोले– "जिन शुभ लक्षणोंसे ब्राह्मणको मैं जान सकूँ, वह पूछनेवाले मुझको हेतु दर्शाकर बताओ" ॥ ५ ॥

विनतोवाच

यस्ते कण्ठमनुप्राप्तो निगीर्णं बडिशं यथा।
दहेदङ्गारवत्पुत्र तं विद्याद्ब्राह्मणर्षभम् ॥ ६ ॥

विनता बोली– "हे पुत्र! जो तुम्हारे गलेतक पहुंचते ही मछलीके कांटेके समान गलेमें अटक जाये और जलते हुए अंगारेकी भांति प्रतीत हो, उसीको तुम ब्राह्मणश्रेष्ठ जान लेना ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

प्रोवाच चैनं विनता पुत्रहार्दादिदं वचः ।
जानन्त्यप्यतुलं वीर्यमाशीर्वादसमन्वितम् ॥ ७ ॥
पक्षौ ते मारुतः पातु चन्द्रः पृष्ठं तु पुत्रक ।
शिरस्तु पातु ते वह्निर्भास्करः सर्वमेव तु ॥ ८ ॥

सूत बोले– विनता पुत्रके अतुल बल जाननेपर भी पुत्र–स्नेहसे उससे आशीश युक्त यह वचन बोली, "पुत्र ! पवन–देवता तुम्हारे दोनों पंखोंको बचावें, चन्द्र तुम्हारी पीठको बचावें, अग्निदेव तुम्हारे सिरको बचावें, सूर्य तुम्हारे संपूर्ण शरीरको बचावें ॥ ७–८ ॥

अहं च ते सदा पुत्र शान्तिस्वस्तिपरायणा ।
अरिष्टं व्रज पन्थानं वत्स कार्यार्थसिद्धये ॥ ९ ॥

पुत्र ! मैं भी यहां रहकर तुम्हारी शान्ति और स्वस्तिके लिये मङ्गलचिन्तामें सदा नियुक्त रहूंगी, तुम कार्य साधनके लिये विघ्नरहित मार्गपर जाओ" ॥ ९ ॥

ततः स मातुर्वचनं निशम्य वितत्य पक्षौ नभ उत्पपात ।
ततो निषादान्बलवानुपागमद्बुभुक्षितः काल इवान्तको महान् ॥ १० ॥

उसके बाद बलवान् गरुड माताकी बात सुनकर दोनों पंख फैलाकर आकाशमें उड गए और क्षुधासे व्याकुल होकर सर्वनाशी महान् यमराजकी भांति वह धीवरोंके पास जा पहुंचे ॥ १० ॥

स तान्निषादानुपसंहरंस्तदा रजः समुद्धूय नभःस्पृशं महत् ।
समुद्रकुक्षौ च विशोषयन्पयः समीपगान्भूमिधरान्विचालयन् ॥ ११ ॥

तब आकाशको छूनेवाली बहुत धूलको उडाकर उस गरुडने धीवरोंका संहार किया, समुद्रके अन्दरका जल सुखा दिया और आसपासके पहाडोंको हिला दिया ॥ ११ ॥

ततः स चक्रे महदाननं तदा निषादमार्गं प्रतिरुध्य पक्षिराट् ।
ततो निषादास्त्वरिताः प्रवव्रजुर्यतो मुखं तस्य भुजङ्गभोजिनः ॥ १२ ॥

तब पक्षीराज गरुडने धीवरोंके मार्गको रोककर अपना भारी मुंह फैला दिया। तब धीवर-गण भी सांपोंको खानेवाले उस गरुडके मुंहमें ही शीघ्र घुसने लगे ॥ १२ ॥

तदाननं विवृतमतिप्रमाणवत्समभ्ययुर्गगनमिवार्दिताः खगाः ।
सहस्रशः पवनरजोऽभ्रमोहिता महानिलप्रचलितपादपे वने ॥ १३ ॥

जिस प्रकार वनके वृक्षोंके प्रबल पवनसे हिलाये जानेसे सहस्रों पक्षी समूह धूल और हवाके वेगसे विकल और मुग्ध होकर आकाशमें इधर उधर घूमते हैं, उसी प्रकार धीवरगण गरुडके बहुत फैले हुए मुखमें घुसने लगे ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः खगो वदनममित्रतापनः समाहरत्परिचपलो महाबलः।
निपूदयन्बहुविधमत्स्यभक्षिणो बुभुक्षितो गगनचरेश्वरस्तदा ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ १०४० ॥

तब शत्रुको संताप देनेवाले, महाबली, क्षुधासे व्याकुल, चपल, आकाशके स्वामी पक्षीराजने अनेक प्रकारकी मछलियोंको खानेवाले धीवरोंको निगलकर मुंह बन्द कर लिया ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ १०४० ॥

: २५ :

सूत उवाच

तस्य कण्ठमनुप्राप्तो ब्राह्मणः सह भार्यया।
दहन्दीप्त इवाङ्गारस्तमुवाचान्तरिक्षगः ॥ १ ॥

सूत बोले–(धीवरोंके संग) स्त्री सहित एक ब्राह्मण गरुडके कंठमें प्रविष्ट होकर जलते हुए अंगारेके समान गलेको जलाने लगा, तो गरुड उससे बोले ॥ १ ॥

द्विजोत्तम विनिर्गच्छ तूर्णमास्यादपावृतात्।
न हि मे ब्राह्मणो वध्यः पापेष्वपि रतः सदा ॥ २ ॥

"हे द्विजोत्तम ! इस फैले हुए मेरे मुंहसे तुम शीघ्र ही निकल जाओ, ब्राह्मण सदा पापमें रत होनेपर भी मेरे लिए वधके योग्य नहीं है" ॥ २ ॥

ब्रुवाणमेवं गरुडं ब्राह्मणः समभाषत।
निषादी मम भार्येयं निर्गच्छतु मया सह ॥ ३ ॥

इस प्रकार बोलते हुए गरुडसे ब्राह्मण बोला– "मेरी स्त्री यह धीवरी भी मेरे संग बाहर निकले" ॥ ३ ॥

गरुड उवाच

एतामपि निषादीं त्वं परिगृह्याशु निष्पत।
तूर्णं संभावयात्मानमजीर्णं मम तेजसा ॥ ४ ॥

गरुड बोले– "मेरे तेजसे पच जानेके पहिले ही अपनी इस धीवरीको लेकरके तुम शीघ्र निकलो और इस प्रकार शीघ्र ही स्वयंकी रक्षा कर लो" ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

ततः स विप्रो निष्क्रान्तो निषादीसहितस्तदा ।
वर्धयित्वा च गरुडमिष्टं देशं जगाम ह ॥ ५ ॥

सूत बोले– कि तब वह ब्राह्मण धीवरीके संग बाहर निकल आया और गरुडको आशीर्वाद देकर इच्छित देशको चला गया ॥ ५ ॥

सहभार्ये विनिष्क्रान्ते तस्मिन्विप्रे स पक्षिराट् ।
वितत्य पक्षावाकाशमुत्पपात मनोजवः ॥ ६ ॥

स्त्री–सहित उस ब्राह्मणके निकल जानेपर मनके समान वेगवान् वह पक्षीराज दोनों पंख फैलाकर आकाशमें उड गया ॥ ६ ॥

ततोऽपश्यत्स पितरं पृष्टश्चाख्यातवान्पितुः ।
अहं हि सर्पैः प्रहितः सोममाहर्तुमुद्यतः ।
मातुर्दास्यविमोक्षार्थमाहरिष्ये तमद्य वै ॥ ७ ॥

इसके बाद उसने पिताको देखा और उनसे पूछे जाकर यथावत् सब वृत्तान्त कह सुनाया । सर्पोंके द्वारा भेजा हुआ मैं अमृत लाने जा रहा हूं, मैं भी माताकी दासता छुडानेके लिए अमृत निश्चित लाऊंगा ॥ ७ ॥

मात्रा चास्मि समादिष्टो निषादान्भक्षयेति वै ।
न च मे तृप्तिरभवद्भक्षयित्वा सहस्रशः ॥ ८ ॥

माताने मुझे आज्ञा दी थी, कि तुम धीवरोंको खा लेना, पर सहस्रों धीवरोंको खाजाने पर भी मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ ८ ॥

तस्माद्भोक्तव्यमपरं भगवन्प्रदिशस्व मे ।
यद्भुक्त्वामृतमाहर्तुं समर्थः स्यामहं प्रभो ॥ ९ ॥

अतः हे भगवन् ! आप और कुछ भोजनकी सामग्री मुझे बताइए, जिसे खाकर हे प्रभो ! मैं अमृत लानेके लिए समर्थ होऊं ॥ ९ ॥

कश्यप उवाच

आसीद्विभावसुर्नाम महर्षिः कोपनो भृशम् ।
भ्राता तस्यानुजश्चासीत्सुप्रतीको महातपाः ॥ १० ॥

कश्यप बोले– विभावसुनामक एक बडे क्रोधी महर्षि थे और सुप्रतीक नामक उनका एक महातपस्वी छोटा भाई था ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स नेच्छति धनं भ्रात्रा सहैकस्थं महामुनिः।
विभागं कीर्तयत्येव सुप्रतीकोऽथ नित्यशः ॥ ११ ॥

महामुनि सुप्रतीकको पैत्रिक धनको भाईके साथ एकत्र रखना पसन्द नहीं था, अतः वह रोज संपत्तिके बंटवारेकी बात कहा करता था ॥ ११ ॥

अथाब्रवीच्च तं भ्राता सुप्रतीकं विभावसुः।
विभागं बहवो मोहात्कर्तुमिच्छन्ति नित्यदा।
ततो विभक्ता अन्योन्यं नाद्रियन्तेऽर्थमोहिताः ॥ १२ ॥

एक समय विभावसु अपने छोटे भाई सुप्रतीकसे बोले– "भाई! बहुतेरे मनुष्य मुग्ध होकर पैत्रिक धन बंटवाना चाहते तो हैं, पर बंट जाते ही धनसे मोहित होकरके वे आपसमें एक दूसरेका आदर नहीं करते ॥ १२ ॥

ततः स्वार्थपरान्मूढान्पृथग्भूतान्स्वकैर्धनैः।
विदित्वा भेदयन्त्येतानमित्रा मित्ररूपिणः ॥ १३ ॥

स्वार्थी और अज्ञानी भाइयोंके अपना अपना अंश लेकर अलग होते ही यह जानकर शत्रुलोग मित्र बनकर उनमें आपसमें द्वेष पैदा कर देते हैं ॥ १३ ॥

विदित्वा चापरे भिन्नानन्तरेषु पतन्त्यथ।
भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्तते ॥ १४ ॥

आगे जब उनमें शत्रुता हो जाती है, तब यह जानकर शत्रुलोग भी उन दोनोंके बीचमें घुस जाते हैं, तब अलग हुए हुओंका शीघ्र ही महानाश हो जाता है ॥ १४ ॥

तस्माच्चैव विभागार्थं न प्रशंसन्ति पण्डिताः।
गुरुशास्त्रे निबद्धानामन्योन्यमभिशङ्किनाम् ॥ १५ ॥

इसीसे पंडितगण गुरु और शास्त्रोंकी आज्ञा माननेवाले तथा आपसमें शंका करनेवालोंके अलग होनेकी प्रशंसा नहीं करते ॥ १५ ॥

नियन्तुं न हि शक्यस्त्वं भेदतो धनमिच्छसि।
यस्मात्तस्मात्सुप्रतीक हस्तित्वं समवाप्स्यसि ॥ १६ ॥

हे सुप्रतीक! चूंकि तुम भेदसे धनकी अभिलाषा कर रहे हो और तुम किसी प्रकारसे रुकते नहीं हो, अतः तुम हाथीकी योनिमें जन्म लोगे" ॥ १६ ॥

शप्तस्त्वेवं सुप्रतीको विभावसुमथाब्रवीत्।
त्वमप्यन्तर्जलचरः कच्छपः संभविष्यसि ॥ १७ ॥

सुप्रतीक इस प्रकार शाप पाकर विभावसुसे बोले– "तुम भी जलोंके अन्दर विचरनेवाले कछुए होओगे" ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमन्योन्यशापात्तौ सुप्रतीकविभावसू ।
गजकच्छपतां प्राप्तावर्थार्थं मूढचेतसौ ॥ १८ ॥

इस प्रकारसे विभावसु और सुप्रतीक धनके निमित्त बुद्धि खोकर एक दूसरेके शापसे हाथी और कछुआ बने ॥ १८ ॥

रोषदोषानुषङ्गेण तिर्यग्योनिगतावपि ।
परस्परद्वेषरतौ प्रमाणबलदर्पितौ ॥ १९ ॥

क्रोधके दोषके कारण पशुयोनिमें जन्म लेने पर भी आपसके द्वेषमें रत होकर तथा अपने महान् बलके घमण्डमें आकर ॥ १९ ॥

सरस्यस्मिन्महाकायौ पूर्ववैरानुसारिणौ ।
तयोरेकतरः श्रीमान्समुपैति महागजः ॥ २० ॥

इस सरोवरमें वे दोनों महाबली भाई पूर्वजन्मकी शत्रुताका अनुसरण करते हैं । उनमेंसे दूसरा सुन्दर बडा भारी हाथी (रोज सरोवरके तट पर) आता है ॥ २० ॥

तस्य बृंहितशब्देन कूर्मोऽप्यन्तर्जलेशयः ।
उत्थितोऽसौ महाकायः कृत्स्नं संक्षोभयन्सरः ॥ २१ ॥

उसकी चिल्लाहट सुनते ही जलमें सोया हुआ बहुत बडे शरीरवाला कछुआ भी संपूर्ण जलको हिलोड कर बाहर निकलता है ॥ २१ ॥

तं दृष्ट्वावेष्टितकरः पतत्येष गजो जलम् ।
दन्तहस्ताग्रलाङ्गूलपादवेगेन वीर्यवान् ॥ २२ ॥

महाबली यह हाथी उसको देखते ही सूंडको कुंडलवत् बनाकर पानीमें कूद पडता है और दांत, सूंडके अगले भाग, पूंछ और पांव आदिके धक्कोंसे आक्रमण करता है ॥ २२ ॥

तं विक्षोभयमाणं तु सरो बहुझषाकुलम् ।
कूर्मोऽप्यभ्युद्यतशिरा युद्धायाभ्येति वीर्यवान् ॥ २३ ॥

मछलियोंसे भरे हुए इस तालाबको हिलोडनेवाले हाथीसे विक्रमी कछुआ भी सिर ऊपर करके लडनेको आगे बढता है ॥ २३ ॥

षडुच्छ्रितो योजनानि गजस्तद्द्विगुणायतः ।
कूर्मस्त्रियोजनोत्सेधो दशयोजनमण्डलः ॥ २४ ॥

उस हाथीका परिमाण ऊंचाईमें ६ योजन और लंबाईमें बारह योजन है । कछुएकी ऊंचाई तीन योजनकी और गोलाई दस योजनकी है ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तावेतौ युद्धसंसक्तौ परस्परजयैषिणौ।
उपयुज्याशु कर्मेदं साधयेप्सितमात्मनः ॥ २५ ॥

अब एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले वे दोनों घोर लडाईमें फंस गये हैं, अतः तुम शीघ्र उन दोनोंको खाकर अपना मनमाना कार्य करो" ॥ २५ ॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं भीमवेगोऽन्तरिक्षगः।
नखेन गजमेकेन कूर्ममेकेन चाक्षिपत् ॥ २६ ॥

सूत बोले– तब अति वेगवान् अन्तरिक्षमें उडनेवाले उस पक्षीने अपने पिताके वचनोंको सुन करके एक नखसे हस्ती और दूसरेसे कच्छपको उठा लिया ॥ २६ ॥

समुत्पपात चाकाशं तत उच्चैर्विहंगमः।
सोऽलम्बतीर्थमासाद्य देववृक्षानुपागमत् ॥ २७ ॥

वह पक्षी आकाशकी बडी ऊंचाई पर उड गया और अलम्ब नामक तीर्थस्थान पर जाकर देववृक्षोंके निकट जा पहुंचा ॥ २७ ॥

ते भीताः समकम्पन्त तस्य पक्षानिलाहताः।
न नो भञ्ज्यादिति तदा दिव्याः कनकशाखिनः ॥ २८ ॥

सुन्दर सुवर्ण–पर्वतपरके वृक्षसमूह पक्षीवरके पंखोंकी हवासे चोट खाकर "यह कहीं हमें तोड न दे" इस भयसे कांपने लगे ॥ २८ ॥

प्रचलाङ्गान्स तान्दृष्ट्वा मनोरथफलाङ्कुरान्।
अन्यानतुलरूपाङ्गानुपचक्राम खेचरः ॥ २९ ॥

गरुड उन अभीष्ट फलदायी वृक्षोंको कांपते देखकर दूसरे अतुल रूपवाले पेडोंके पास गया ॥ २९ ॥

काञ्चनै राजतैश्चैव फलैर्वैडूर्यशाखिनः।
सागराम्बुपरिक्षिप्तान्भ्राजमानान्महाद्रुमान् ॥ ३० ॥

वे वृक्ष वैदूर्य–मणिकी शाखाओंसे सुहावने, सुवर्ण और चांदीके फलोंसे युक्त, समुद्रजलसे प्रक्षालित और चमकनेवाले महावृक्ष थे ॥ ३० ॥

तमुवाच खगश्रेष्ठं तत्र रोहिणपादपः।
अतिप्रवृद्धः सुमहानापतन्तं मनोजवम् ॥ ३१ ॥

वहां बडे ही पुराने एक बडे बरगदने मनके समान वेगवान् पक्षीराजको उधर आते देखकर कहा ॥ ३१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यैषा मम महाशाखा शतयोजनमायता ।
एतामास्थाय शाखां त्वं खादेमौ गजकच्छपौ ॥ ३२ ॥

" गरुड ! यह जो मेरी सौ योजन फैली हुई महाशाखा है इसी शाखा पर बैठकर तुम इस हाथी और कछुएको खाओ " ॥ ३२ ॥

ततो द्रुमं पतगसहस्रसेवितं महीधरप्रतिमवपुः प्रकम्पयन् ।
खगोत्तमो द्रुतमभिपत्य वेगवान्बभञ्ज तामविरलपत्रसंवृताम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ १०७२ ॥

तब पर्वतके समान बडे शरीरवाला तथा वेगवान् वह पक्षीश्रेष्ठ सहस्रों पक्षियोंसे भरे हुए उस वृक्षको हिलाते हुए शीघ्र उस पर बैठा और उसने पत्तोंकी घनी कतारसे सुहावनी वह शाखा तोड डाली ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥ १०७२ ॥

: २६ :

सूत उवाच

स्पृष्टमात्रा तु पद्भ्यां सा गरुडेन बलीयसा ।
अभज्यत तरोः शाखा भग्नां चैनामधारयत् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि उस महाबलशाली गरुडके पांवोंके छूते ही वृक्षकी शाखा टूट गई, फिर उस टूटी डालको गरुडने पकड लिया ॥ १ ॥

तां भग्नां स महाशाखां स्मयन्समवलोकयन् ।
अथात्र लम्बतोऽपश्यद्वालखिल्यानधोमुखान् ॥ २ ॥

तब मुस्करा कर उस गरुडने उस टूटी हुई बडी शाखाकी ओर देखा, तो उसमें उसने नीचे मुंह करके लटके हुए वालखिल्य ऋषियोंको देखा ॥ २ ॥

स तद्विनाशसंत्रासादनुपत्य खगाधिपः ।
शाखामास्येन जग्राह तेषामेवान्ववेक्षया ।
शनैः पर्यपतत्पक्षी पर्वतान्प्रविशातयन् ॥ ३ ॥

उस पक्षीराजने ऋषियोंके नष्ट होनेके भयसे उस शाखाको ऋषियोंकी रक्षाकी चिन्तासे अपने मुंहसे सम्भाल लिया और पर्वतोंको कंपाता हुआ वह धीरेसे उड गया ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवं सोऽभ्यपतद्देशान्बहून्सगजकच्छपः।
दयार्थं बालखिल्यानां न च स्थानमविन्दत ॥ ४ ॥

इस प्रकार वह बालखिल्योंकी रक्षाके निमित्त उस शाखाको और गजकच्छपको लेकर अनेक देशोंमें गया पर (कहीं बैठके भोजन करनेके योग्य) स्थान प्राप्त नहीं कर पाया ॥ ४ ॥

स गत्वा पर्वतश्रेष्ठं गन्धमादनमव्ययम्।
ददर्श कश्यपं तत्र पितरं तपसि स्थितम् ॥ ५ ॥

तब उसने पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादन पर जाकर अपने अविनाशी पिता कश्यपको तपमें मग्न देखा ॥ ५ ॥

ददर्श तं पिता चापि दिव्यरूपं विहंगमम्।
तेजोवीर्यबलोपेतं मनोमारुतरंहसम् ॥ ६ ॥

पिता भगवान् कश्यपने भी उस तेज–वीर्य भरे, मन और हवाके समान वेगवान् दिव्य–देही पक्षीको देखा ॥ ६ ॥

शैलशृङ्गप्रतीकाशं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम्।
अचिन्त्यमनभिज्ञेयं सर्वभूतभयंकरम् ॥ ७ ॥

वह पक्षी पर्वतशृंगके समान उद्यत, ब्रह्मदंडके समान चिन्तातीत, अद्भुत, भयंकर मूर्ति ॥७॥

मायावीर्यधरं साक्षादग्निमिद्धमिवोद्यतम्।
अप्रधृष्यमजेयं च देवदानवराक्षसैः ॥ ८ ॥

माया और वीर्यशाली, साक्षात् प्रज्ज्वलित अग्निके सदृश रौद्रमूर्ति, देव दैत्य और दानवोंके द्वारा अप्रधृष्य तथा अजेय ॥ ८ ॥

भेत्तारं गिरिशृङ्गाणां नदीजलविशोषणम्।
लोकसंलोडनं घोरं कृतान्तसमदर्शनम् ॥ ९ ॥

पर्वत–शिखरोंको तोडनेवाला, जलसमुद्र सोखनेवाला, तीनों लोकोंको मथनेवाला, घोर और यमराजके सदृश था ॥ ९ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य भगवान्कश्यपस्तदा।
विदित्वा चास्य संकल्पमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

उस पक्षीराजको आया हुआ देखकर और उसका अभिप्राय समझकर भगवान् कश्यप यह वचन बोले ॥ १० ॥

पुत्र मा साहसं कार्षीर्मा सद्यो लप्स्यसे व्यथाम्।
मा त्वा दहेयुः संक्रुद्धा बालखिल्या मरीचिपाः ॥ ११ ॥

" पुत्र ! सावधान ! साहस मत करो, शीघ्र ही कष्ट भोगना न पडे, किरणोंको पीनेवाले ये बालखिल्य क्रोधित होकर कहीं तुमको भस्म न कर दें " ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रसादयामास स तान्कश्यपः पुत्रकारणात् ।
वालखिल्यांस्तपःसिद्धानिदमुद्दिश्य कारणम् ॥ १२ ॥

तब कश्यपने पुत्रके निमित्त तपोबलसे निष्पाप वालखिल्य मुनियोंको प्रसन्न किया और वे बोले ॥ १२ ॥

प्रजाहितार्थमारम्भो गरुडस्य तपोधनाः ।
चिकीर्षति महत्कर्म तदनुज्ञातुमर्हथ ॥ १३ ॥

" हे तपोधनो ! यह गरुड प्रजाओंके मंगलके निमित्त जिस महान् कार्यको करनेकी इच्छा रखता है, आप लोग उसे उस कार्यको करनेकी आज्ञा दें । " ॥ १३ ॥

एवमुक्ता भगवता मुनयस्ते समभ्ययुः ।
मुक्त्वा शाखां गिरिं पुण्यं हिमवन्तं तपोऽर्थिनः ॥ १४ ॥

भगवान् कश्यपके ऐसा कहने पर वालखिल्य मुनिगण उस शाखाको छोडकर तपके निमित्त अति पवित्र हिमालय पर्वतको पधारे ॥ १४ ॥

ततस्तेष्वपयातेषु पितरं विनतात्मजः ।
शाखाव्याक्षिप्तवदनः पर्यपृच्छत कश्यपम् ॥ १५ ॥
भगवन्क्व विमुञ्चामि तरुशाखामिमामहम् ।
वर्जितं ब्राह्मणैर्देशमाख्यातु भगवान्मम ॥ १६ ॥

उन ऋषियोंके चले जानेपर विनता–पुत्रने, अपने शाखाभारसे कातर–मुखसे पिता कश्यपसे पूछा, " भगवन् ! मैं इस वृक्षकी शाखाको कहां रक्खूं, ब्राह्मणोंसे खाली कोई देश मुझे बताइये । " ॥ १५–१६ ॥

ततो निष्पुरुषं शैलं हिमसंरुद्धकन्दरम् ।
अगम्यं मनसाप्यन्यैस्तस्याचख्यौ स कश्यपः ॥ १७ ॥

यह सुनकर कश्यपने, हिमसे आच्छादित कन्दरावाले, मनसे भी औरोंके द्वारा न पहुंचनेके योग्य ऐसा मनुष्योंसे खाली एक पर्वत बताया ॥ १७ ॥

तं पर्वतमहाकुक्षिमाविश्य मनसा खगः ।
जवेनाभ्यपतत्तार्क्ष्यः सशाखागजकच्छपः ॥ १८ ॥

महापक्षी गरुड उस बडे भारी पर्वतकी गुफामें मनसे प्रविष्ट होकर गज, कूर्म और उस शाखाको ले कर अति वेगसे चले ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न तां वध्रः परिणहेच्छतचर्मा महानणुः।
शाखिनो महतीं शाखां यां प्रगृह्य ययौ खगः ॥ १९ ॥

वह पक्षी जिस भारी शाखाको ले चला, वह एक सौ चमडोंसे बनी इकहरी रस्सीसे भी घेरी नहीं जा सकती थी ॥ १९ ॥

ततः स शतसाहस्रं योजनान्तरमागतः।
कालेन नातिमहता गरुडः पततां वरः ॥ २० ॥
स तं गत्वा क्षणेनैव पर्वतं वचनात्पितुः।
असुञ्चन्महतीं शाखां सस्वनां तत्र खेचरः ॥ २१ ॥

तब विहंगवर गरुडने सैंकडों और हजारों योजन चलकर थोडे ही कालमें पिताके बताये हुए उस पर्वत पर क्षणमें ही पहुंच कर बडे शब्दसे उस भारी शाखाको पक्षीने छोडा ॥ २०—२१ ॥

पक्षानिलहतश्चास्य प्राकम्पत स शैलराट्।
मुमोच पुष्पवर्षं च समागलितपादपः ॥ २२ ॥

गरुडके पंखोंकी हवा खाकर वह गिरिवर कंपित हुआ और उखडे हुए वृक्षोंवाले उस पर्वतने चारों ओर फूल बरसाये ॥ २२ ॥

शृङ्गाणि च व्यशीर्यन्त गिरेस्तस्य समन्ततः।
मणिकाञ्चनचित्राणि शोभयन्ति महागिरिम् ॥ २३ ॥

उस महापर्वतको सुशोभित करनेवाली मणि और सोनेसे बनी हुई चोटियां टूट फूट कर उस पहाडके चारों ओर गिर गईं ॥ २३ ॥

शाखिनो बहवश्चापि शाखयाभिहतास्तया।
काञ्चनैः कुसुमैर्भान्ति विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः ॥ २४ ॥

बहुतसे वृक्षसमूह भी उस बडी शाखाकी रगड खाकर गिरते हुए सुवर्ण फूलोंसे बिजलीयुक्त बादलके समान बडी शोभा पाने लगे ॥ २४ ॥

ते हेमविकचा भूयो युक्ताः पर्वतधातुभिः।
व्यराजञ्शाखिनस्तत्र सूर्यांशुप्रतिरञ्जिताः ॥ २५ ॥

सुनहले रंगके वृक्ष पर्वतकी धातुओंसे रंगे जाकर सूर्यकी किरणसे रंगे हुए सुशोभित हुए ॥ २५ ॥

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गमास्थाय स खगोत्तमः।
भक्षयामास गरुडस्तावुभौ गजकच्छपौ ॥ २६ ॥

फिर पक्षीराज गरुडने उस पहाडकी चोटी पर बैठकर उन गज कछुआ दोनोंको खाया ॥ २६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः पर्वतकूटाग्रादुत्पपात मनोजवः ।
प्रावर्तन्ताथ देवानामुत्पाता भयवेदिनः ॥ २७ ॥

फिर पर्वतकी चोटीसे मनके समान वेगसे उड गये । गरुडके आकाशमें उडनेपर देवताओंके यहां भयदायी उपद्रव होने लगे ॥ २७ ॥

इन्द्रस्य वज्रं दयितं प्रजज्वाल व्यथान्वितम् ।
सधूमा चापतत्सार्चिर्दिवोल्का नभसश्च्युता ॥ २८ ॥

देवराजका प्रिय वज्र दुःखसे जल उठा और आकाशसे धुंआं–सहित ज्वालायुक्त उल्का-पिंड बहुत गिरने लगे ॥ २८ ॥

तथा वसूनां रुद्राणामादित्यानां च सर्वशः ।
साध्यानां मरुतां चैव ये चान्ये देवतागणाः ।
स्वं स्वं प्रहरणं तेषां परस्परमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥

वसु, रुद्र, आदित्य, साध्य, मरुत् और दूसरे सब देवोंके अपने अपने अस्त्र आपसमें भिडने लगे ॥ २९ ॥

अभूतपूर्वं संग्रामे तदा देवासुरेऽपि च ।
ववुर्वाताः सनिर्घाताः पेतुरुल्काः समन्ततः ॥ ३० ॥

देवों और असुरोंके संग्राममें भी न होनेवाले उपद्रव हुए । भयंकर हवा चलने लगी और उल्कायें गिरने लगीं ॥ ३० ॥

निरभ्रमपि चाकाशं प्रजगर्ज महास्वनम् ।
देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षदसृक्तदा ॥ ३१ ॥

और बिना बादलके निर्मल आकाश भी महाशब्दसे गरजने लगा; जो देवोंके भी देवता हैं, वह भी इस समय रक्त वर्षाने लगे ॥ ३१ ॥

मम्लुर्माल्यानि देवानां शेमुस्तेजांसि चैव हि ।
उत्पातमेघा रौद्राश्च ववर्षुः शोणितं बहु ।
रजांसि मुकुटान्येषामुत्थितानि व्यधर्षयन् ॥ ३२ ॥

देवताओंकी मालायें मुरझा गईं और तेज नष्ट हो गया, घोर उपद्रव करनेवाले बादलोंने बहुत अधिक रक्त बरसाना शुरु किया । उडी हुई धूलने देवोंके मुकुटोंको मलिन कर दिया ॥ ३२ ॥

ततस्त्राससमुद्विग्नः सह देवैः शतक्रतुः ।
उत्पातान्दारुणान्पश्यन्नित्युवाच बृहस्पतिम् ॥ ३३ ॥

इसके बाद उन कठोर उपद्रवोंको देखकर भीतचित्त, चिन्तित देवराज इन्द्र देवोंके साथ बृहस्पतिसे बोला ॥ ३३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

किमर्थं भगवन्घोरा महोत्पाताः समुत्थिताः।
न च शत्रुं प्रपश्यामि युधि यो नः प्रधर्षयेत् ॥ ३४ ॥

"भगवन्! किस कारणसे एकायक यह भयंकर उपद्रव उठ रहे हैं? ऐसा कोई शत्रु तो दीखता नहीं, कि जो हमको लडाईमें हरा सके" ॥ ३४॥

बृहस्पतिरुवाच

तवापराधाद्देवेन्द्र प्रमादाच्च शतक्रतो।
तपसा वालखिल्यानां भूतमुत्पन्नमद्भुतम् ॥ ३५ ॥

बृहस्पति बोले– "शतक्रतो देवराज इन्द्र! तुम्हारे अपराध और प्रमादके कारण वालखिल्यके तपोबलसे एक अद्भुत प्राणी उत्पन्न हुआ है ॥ ३५ ॥

कश्यपस्य मुनेः पुत्रो विनतायाश्च खेचरः।
हर्तुं सोममनुप्राप्तो बलवान्कामरूपवान् ॥ ३६ ॥

कश्यप मुनिसे विनतामें उत्पन्न आकाशसंचारी, अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाला महाबली पुत्र अमृतको हरने आ रहा है ॥ ३६ ॥

समर्थो बलिनां श्रेष्ठो हर्तुं सोमं विहंगमः।
सर्वं संभावयाम्यस्मिन्नसाध्यमपि साधयेत् ॥ ३७ ॥

वह बलशालियोंमें भी अत्यधिक बलवान् है, अमृत हरनेमें समर्थ है, ऐसा मुझे निश्चय है क्योंकि वह असाध्य कार्य भी सिद्ध कर सकता है" ॥ ३७ ॥

सूत उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं शक्रः प्रोवाचामृतरक्षिणः।
महावीर्यबलः पक्षी हर्तुं सोममिहोद्यतः ॥ ३८ ॥

सूत बोले– इन्द्र गुरुदेवके ये वचन सुनकर अमृतके रखवालोंसे बोला "एक महाबली पक्षी अमृत हरनेके लिए यहां आ रहा है ॥ ३८ ॥

युष्मान्संबोधयाम्येष यथा स न हरेद्बलात्।
अतुलं हि बलं तस्य बृहस्पतिरुवाच मे ॥ ३९ ॥

इसलिये तुम्हें सावधान किये देता हूं, कि वह बलसे अमृत न हरने पावे, बृहस्पतिने मुझसे कहा है, कि उस पक्षीका बल अतुल है" ॥ ३९ ॥

तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं विस्मिता यत्नमास्थिताः।
परिवार्यामृतं तस्थुर्वज्री चेन्द्रः शतक्रतुः ॥ ४० ॥

अमृतके रखवाले देव इन्द्रकी बात सुनकरके विस्मित होकर यत्नसे अमृतको घेरकर खडे होगए, प्रभावी देवराज भी वहां हाथमें वज्रको लेकर खडा हुआ ॥ ४० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धारयन्तो महार्हाणि कवचानि मनस्विनः ।
काञ्चनानि विचित्राणि वैडूर्यविकृतानि च ॥ ४१ ॥
विविधानि च शस्त्राणि घोररूपाण्यनेकशः ।
शिततीक्ष्णाग्रधाराणि समुद्यम्य सहस्रशः ॥ ४२ ॥

मनस्वी देवता लोग विचित्र सुवर्णयुक्त और वैदूर्यमणि-जटित महामूल्य कवच धारण कर अनेक घोररूप अगणित तीक्ष्णधारा और नोकोंवाले अस्त्र उठाकर ॥ ४१–४२ ॥

सविस्फुलिंगज्वालानि सधूमानि च सर्वशः ।
चक्राणि परिघांश्चैव त्रिशूलानि परश्वधान् ॥ ४३ ॥

धूंआ और अग्निकी ज्वालासे युक्त चक्र परिघ, त्रिशूल, परशु ॥ ४३ ॥

शक्तीश्च विविधास्तीक्ष्णाः करवालांश्च निर्मलान् ।
स्वदेहरूपाण्यादाय गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥ ४४ ॥

विविध तेजयुक्त शक्ति, निर्मल तलवार और अपनी देहके अनुकूल भयंकर गदा लेकर ॥४४॥

तैः शस्त्रैर्भानुमद्भिस्ते दिव्याभरणभूषिताः ।
भानुमन्तः सुरगणास्तस्थुर्विगतकल्मषाः ॥ ४५ ॥

उन शस्त्रोंसे तेजस्वी भांति भांतिके सुन्दर आभूषणोंसे भूषित तेजवाले पापसे रहित देवगण तैय्यार हो गए ॥ ४५ ॥

अनुपमबलवीर्यतेजसो धृतमनसः परिरक्षणेऽमृतस्य ।
असुरपुरविदारणाः सुरा ज्वलनसमिद्धवपुःप्रकाशिनः ॥ ४६ ॥

वीर्य, बल और तेजसे अनुपम, असुर नगरोंको तोडनेवाले, जलती आगके समान तेजसमूहसे शोभायमान संपूर्ण देवगण मन लगाकर अमृतकी रक्षाके लिए तैय्यार हुए ॥ ४६ ॥

इति समरवरं सुरास्थितं परिघसहस्रशतैः समाकुलम् ।
विगलितमिव चाम्बरान्तरे तपनमरीचिविभासितं बभौ ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥११२० ॥

इस प्रकार देवोंसे युक्त तथा परिघसे ढका हुआ श्रेष्ठ रणस्थल भी सूर्य किरणसे गले हुए आकाशकी भांति शोभा पाने लगा ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ ११२० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २७ :

शौनक उवाच

कोऽपराधो महेन्द्रस्य कः प्रमादश्च सूतज।
तपसा वालखिल्यानां संभूतो गरुडः कथम् ॥ १ ॥

शौनक बोले– कि हे सूतपुत्र ! इन्द्रसे कौनसा दोष और कैसी भूल हुई थी और गरुड वालखिल्य मुनियोंके तपके प्रभावसे कैसे उत्पन्न हुए ? ॥ १ ॥

कश्यपस्य द्विजानेश्च कथं वै पक्षिराट् सुतः।
अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्चाभवत्कथम् ॥ २ ॥

द्विजवर कश्यपके पक्षीराज पुत्र कैसे बने और वह पुत्र कैसे अधृष्य और सर्वजीवोंका अवध्य हुआ ? ॥ २ ॥

कथं च कामचारी स कामवीर्यश्च खेचरः।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पुराणे यदि पठ्यते ॥ ३ ॥

तथा आकाशमें उडनेवाला वह पक्षी किस प्रकार स्वेच्छाचारी और स्वेच्छावीर्य हुआ ? यदि यह सब विषय पुराणोंमें कहे गये हों, तो मैं सुनना चाहता हूं ॥ ३ ॥

सूत उवाच

विषयोऽयं पुराणस्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
शृणु मे वदतः सर्वमेतत्संक्षेपतो द्विज ॥ ४ ॥

सूत बोले– कि हे द्विजवर ! आप जो कुछ मुझसे पूछते हैं, वह पुराण हीके विषय हैं, मैं यह सब संक्षेपमें कहता हूं, सुनिये ॥ ४ ॥

यजतः पुत्रकामस्य कश्यपस्य प्रजापतेः।
साहाय्यमृषयो देवा गन्धर्वाश्च ददुः किल ॥ ५ ॥

पुत्रकी कामनासे यज्ञ करते हुए प्रजापति कश्यपको देवता, ऋषि और गन्धर्वोंने सहायता दी थी ॥ ५ ॥

तत्रेध्मानयने शक्रो नियुक्तः कश्यपेन ह।
मुनयो वालखिल्याश्च ये चान्ये देवतागणाः ॥ ६ ॥

कश्यपने यज्ञकी लकडी लानेके लिए इन्द्र, वालखिल्य–मुनि और जो दूसरे देवगण थे, उनको नियुक्त किया था ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शक्रस्तु वीर्यसदृशमिध्मभारं गिरिप्रभम्।
समुद्यम्यानयामास नातिकृच्छ्रादिव प्रभुः ॥ ७ ॥

देवराज इन्द्र अपनी शक्तिके अनुसार पर्वतके समान लकडीका बोझ लेकर विना कष्ट आ गए ॥ ७ ॥

अथापश्यदृषीन्ह्रस्वानङ्गुष्ठोदरपर्वणः।
पलाशवृन्तिकामेकां सहितान्वहतः पथि ॥ ८ ॥

और पथमें मिलकर पलाशकी एक ही छोटी डाली लेकर आते हुए अंगूठेके समान शरीर-वाले छोटे छोटे ऋषियोंको देखा ॥ ८ ॥

प्रलीनान्स्वेष्विवाङ्गेषु निराहारांस्तपोधनान्।
क्लिश्यमानान्मन्दबलान्गोष्पदे संप्लुतोदके ॥ ९ ॥

वे निराहारी पतले तपोधनगण तपस्यासे ऐसे दुबले हो गये थे, कि गौके खुर जितने जलमें भी डूब कर कष्ट पा रहे थे ॥ ९ ॥

तांश्च सर्वान्स्मयाविष्टो वीर्योन्मत्तः पुरंदरः।
अवहस्यात्यगाच्छीघ्रं लङ्घयित्वावमन्य च ॥ १० ॥

बलके गर्वसे उन्मत्त इन्द्र उन ऋषियोंको देखकर आश्चर्यचकित होके उनकी हंसी उडाते हुए तथा अपमान कर लांघकर वेगसे चले गये ॥ १० ॥

तेऽथ रोषसमाविष्टाः सुभृशं जातमन्यवः।
आरेभिरे महत्कर्म तदा शक्रभयंकरम् ॥ ११ ॥

इससे वालखिल्य ऋषियोंने अति दुःखी और क्रोध युक्त होकर इन्द्रके लिए भयदायी एक महान् कार्यका अनुष्ठान किया ॥ ११ ॥

जुहुवुस्ते सुतपसो विधिवज्जातवेदसम्।
मन्त्रैरुच्चावचैर्विप्रा येन कामेन तच्छृणु ॥ १२ ॥

उन तपस्वी और ज्ञानी ऋषिलोगोंने जिस कामनासे बडे बडे मंत्रोंसे विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दी, वह तुम सुनो ॥ १२ ॥

कामवीर्यः कामगमो देवराजभयप्रदः।
इन्द्रोऽन्यः सर्वदेवानां भवेदिति यतव्रताः ॥ १३ ॥

वह कामना यह थी कि, कामवीर्य, कामचारी, देवराजके लिए भयदायी, दूसरे एक इन्द्र देवलोकमें उत्पन्न होवे ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २७ :

शौनक उवाच

कोऽपराधो महेन्द्रस्य कः प्रमादश्च सूतज ।
तपसा वालखिल्यानां संभूतो गरुडः कथम् ॥ १ ॥

शौनक बोले– कि हे सूतपुत्र ! इन्द्रसे कौनसा दोष और कैसी भूल हुई थी और गरुड वालखिल्य मुनियोंके तपके प्रभावसे कैसे उत्पन्न हुए ? ॥ १ ॥

कश्यपस्य द्विजातेश्च कथं वै पक्षिराट् सुतः ।
अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्चाभवत्कथम् ॥ २ ॥

द्विजवर कश्यपके पक्षीराज पुत्र कैसे बने और वह पुत्र कैसे अधृष्य और सर्वजीवोंका अवध्य हुआ ? ॥ २ ॥

कथं च कामचारी स कामवीर्यश्च खेचरः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पुराणे यदि पठ्यते ॥ ३ ॥

तथा आकाशमें उडनेवाला वह पक्षी किस प्रकार स्वेच्छाचारी और स्वेच्छावीर्य हुआ ? यदि यह सब विषय पुराणोंमें कहे गये हों, तो मैं सुनना चाहता हूं ॥ ३ ॥

सूत उवाच

विषयोऽयं पुराणस्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
शृणु मे वदतः सर्वमेतत्संक्षेपतो द्विज ॥ ४ ॥

सूत बोले– कि हे द्विजवर ! आप जो कुछ मुझसे पूछते हैं, वह पुराण हीके विषय हैं, मैं यह सब संक्षेपमें कहता हूं, सुनिये ॥ ४ ॥

यजतः पुत्रकामस्य कश्यपस्य प्रजापतेः ।
साहाय्यमृषयो देवा गन्धर्वाश्च ददुः किल ॥ ५ ॥

पुत्रकी कामनासे यज्ञ करते हुए प्रजापति कश्यपको देवता, ऋषि और गन्धर्वोंने सहायता दी थी ॥ ५ ॥

तत्रेध्मानयने शक्रो नियुक्तः कश्यपेन ह ।
मुनयो वालखिल्याश्च ये चान्ये देवतागणाः ॥ ६ ॥

कश्यपने यज्ञकी लकडी लानेके लिए इन्द्र, वालखिल्य–मुनि और जो दूसरे देवगण थे, उनको नियुक्त किया था ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शक्रस्तु वीर्यसदृशमिध्मभारं गिरिप्रभम् ।
समुद्यम्यानयामास नातिकृच्छ्रादिव प्रभुः ॥ ७ ॥

देवराज इन्द्र अपनी शक्तिके अनुसार पर्वतके समान लकडीका बोझ लेकर विना कष्ट आ गए ॥ ७ ॥

अथापश्यदृषीन्ह्रस्वानङ्गुष्ठोदरपर्वणः ।
पलाशवृन्तिकामेकां सहितान्वहतः पथि ॥ ८ ॥

और पथमें मिलकर पलाशकी एक ही छोटी डाली लेकर आते हुए अंगूठेके समान शरीर-वाले छोटे छोटे ऋषियोंको देखा ॥ ८ ॥

प्रलीनान्स्वेष्विवाङ्गेषु निराहारांस्तपोधनान् ।
क्लिश्यमानान्मन्दबलान्गोष्पदे संप्लुतोदके ॥ ९ ॥

वे निराहारी पतले तपोधनगण तपस्यासे ऐसे दुबले हो गये थे, कि गौके खुर जितने जलमें भी डूब कर कष्ट पा रहे थे ॥ ९ ॥

तांश्च सर्वान्स्मयाविष्टो वीर्योन्मत्तः पुरंदरः ।
अवहस्यात्यगाच्छीघ्रं लङ्घयित्वावमन्य च ॥ १० ॥

बलके गर्वसे उन्मत्त इन्द्र उन ऋषियोंको देखकर आश्चर्यचकित होके उनकी हंसी उडाते हुए तथा अपमान कर लांघकर वेगसे चले गये ॥ १० ॥

तेऽथ रोषसमाविष्टाः सुभृशं जातमन्यवः ।
आरेभिरे महत्कर्म तदा शक्रभयंकरम् ॥ ११ ॥

इससे वालखिल्य ऋषियोंने अति दुःखी और क्रोध युक्त होकर इन्द्रके लिए भयदायी एक महान् कार्यका अनुष्ठान किया ॥ ११ ॥

जुहुवुस्ते सुतपसो विधिवज्जातवेदसम् ।
मन्त्रैरुच्चावचैर्विप्रा येन कामेन तच्छृणु ॥ १२ ॥

उन तपस्वी और ज्ञानी ऋषिलोगोंने जिस कामनासे बडे बडे मंत्रोंसे विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दी, वह तुम सुनो ॥ १२ ॥

कामवीर्यः कामगमो देवराजभयप्रदः ।
इन्द्रोऽन्यः सर्वदेवानां भवेदिति यतव्रताः ॥ १३ ॥

वह कामना यह थी कि, कामवीर्य, कामचारी, देवराजके लिए भयदायी, दूसरे एक इन्द्र देवलोकमें उत्पन्न होवे ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इन्द्राच्छतगुणः शौर्ये वीर्ये चैव मनोजवः।
तपसो नः फलेनाद्य दारुणः संभवत्विति ॥ १४ ॥

जो शूरता और वीरतामें इन्द्रसे सौ गुना अधिक तथा मनके समान वेगवान् ऐसा भयंकर जीव हमारे तपके फलसे आज उत्पन्न हो ॥ १४ ॥

तद्बुद्ध्वा भृशसंतप्तो देवराजः शतक्रतुः।
जगाम शरणं तत्र कश्यपं संशितव्रतम् ॥ १५ ॥

देवराज इन्द्र यह सुनकर बडे दुःखी हुए और व्रतशील कश्यप ऋषिकी शरणमें गए ॥१५॥

तच्छ्रुत्वा देवराजस्य कश्यपोऽथ प्रजापतिः।
वालखिल्यानुपागम्य कर्मसिद्धिमपृच्छत ॥ १६ ॥

प्रजापति कश्यपने देवराजकी बात सुनकर वालखिल्य ऋषियोंके समीप जाकर पूछा, कि "क्या आप लोगोंका कार्य पूरा हो गया ?" ॥ १६ ॥

एवमस्त्विति तं चापि प्रत्यूचुः सत्यवादिनः।
तान्कश्यप उवाचेदं सान्त्वपूर्वं प्रजापतिः ॥ १७ ॥

सत्यवादी वालखिल्य उससे बोले, कि "हां हुआ है।" तब श्री कश्यप प्रजापति उनको समझाकर बोले, ॥ १७ ॥

अयमिन्द्रस्त्रिभुवने नियोगाद्ब्रह्मणः कृतः।
इन्द्रार्थं च भवन्तोऽपि यत्नवन्तस्तपोधनाः ॥ १८ ॥

"हे तपोधनो ! इन्होंने ब्रह्माकी आज्ञासे तीनों भुवनोंके इन्द्रका पद प्राप्त किया है, आप लोग भी दूसरे इन्द्रके लिये चेष्टा कर रहे हैं ॥ १८ ॥

न मिथ्या ब्रह्मणो वाक्यं कर्तुमर्हथ सत्तमाः।
भवतां च न मिथ्यायं संकल्पो मे चिकीर्षितः ॥ १९ ॥

अतः आपको ब्रह्माकी बात झूठी नहीं करनी चाहिये, पर साथ ही हे सत्तमो ! आपके अभीष्ट संकल्पको भी मैं मिथ्या करना नहीं चाहता ॥ १९ ॥

भवत्वेष पतत्रीणामिन्द्रोऽतिबलसत्त्ववान्।
प्रसादः क्रियतां चैव देवराजस्य याचतः ॥ २० ॥

अतः वह महाबली और वीर्यशाली पक्षियोंका इन्द्र होवे; देवराज इन्द्र प्रार्थना कर रहे हैं, अतः आप उन पर प्रसन्न हों" ॥ २० ॥

एवमुक्ताः कश्यपेन वालखिल्यास्तपोधनाः।
प्रत्यूचुरभिसंपूज्य मुनिश्रेष्ठं प्रजापतिम् ॥ २१ ॥

तपोधन वालखिल्य कश्यपसे ऐसे कहे जाकर सम्मानपूर्वक उन मुनिश्रेष्ठ प्रजापतिसे बोले ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इन्द्रार्थोऽयं समारम्भः सर्वेषां नः प्रजापते ।
अपत्यार्थं समारम्भो भवतश्चायमीप्सितः ॥ २२ ॥

" हे प्रजापते! हम सबका यह समारंभ इन्द्रकी उत्पत्तिके निमित्त है, और आपका समारंभ संतान उपजानेकी अभिलाषासे है ॥ २२ ॥

तदिदं सफलं कर्म त्वया वै प्रतिगृह्यताम् ।
तथा चैव विधत्स्वात्र यथा श्रेयोऽनुपश्यसि ॥ २३ ॥

अतः आप हमारे इस सफल कर्मको लेकरके जो कुछ अच्छा जान पडे, वही कीजिये । " ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवी दाक्षायणी शुभा ।
विनता नाम कल्याणी पुत्रकामा यशस्विनी ॥ २४ ॥

इसी समय शुभलक्षणा कल्याणी यशस्विनी पुत्रकी कामना करनेवाली विनता नामकी दक्षपुत्री ॥ २४ ॥

तपस्तप्त्वा व्रतपरा स्नाता पुंसवने शुचिः ।
उपचक्राम भर्तारं तामुवाचाथ कश्यपः ॥ २५ ॥

तप तथा व्रत करके ऋतुस्नान–पूर्वक व्रत कर और शुद्ध होकर पतिके पास गई, तो कश्यप उससे बोले, ॥ २५ ॥

आरम्भः सफलो देवि भवितायं तवेप्सितः ।
जनयिष्यसि पुत्रौ द्वौ वीरौ त्रिभुवनेश्वरौ ॥ २६ ॥

" हे देवि ! मेरे कार्यका आरंभ सफल हुआ, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम तीनों लोकोंके स्वामी दो वीर पुत्रोंको उत्पन्न करोगी ॥ २६ ॥

तपसा वालखिल्यानां मम संकल्पजौ तथा ।
भविष्यतो महाभागौ पुत्रौ ते लोकपूजितौ ॥ २७ ॥

मेरे संकल्प और वाल्यखिल्योंके तपसे तुम्हारे दो बडे भाग्यवान्, तीनों भुवनोंमें पूजित दो पुत्र उत्पन्न होंगे " ॥ २७ ॥

उवाच चैनां भगवान्मारीचः पुनरेव ह ।
धार्यतामप्रमादेन गर्भोऽयं सुमहोदयः ॥ २८ ॥

भगवान् कश्यप फिर विनतासे बोले– " तुम अप्रमत्त होकरके अपने महान् गर्भको धारण किये रहो ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एकः सर्वपतत्रीणामिन्द्रत्वं कारयिष्यति।
लोकसंभावितो वीरः कामवीर्यो विहंगमः ॥ २९ ॥

इनमेंसे एक लोकोंमें पूज्य, वीर, कामवीर्य पक्षी सब पक्षियोंके इन्द्रका कार्य करेगा ॥२९॥

शतक्रतुमथोवाच प्रीयमाणः प्रजापतिः।
त्वत्सहायौ खगावेतौ भ्रातरौ ते भविष्यतः ॥ ३० ॥

अनन्तर कश्यप प्रजापति प्रसन्न हृदयसे देवराजसे बोले, "तुम्हारी सहायता करनेवाले ये पक्षी तुम्हारे भाई होंगे ॥ ३० ॥

नैताभ्यां भविता दोषः सकाशात्ते पुरंदर।
व्येतु ते शक्र संतापस्त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि ॥ ३१ ॥

हे इन्द्र ! इनसे तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी, हे इन्द्र ! तुम्हारा दुःख दूर होवे, तुम ही सदा इन्द्र बने रहोगे ॥ ३१ ॥

न चाप्येवं त्वया भूयः क्षेप्तव्या ब्रह्मवादिनः।
न चावमान्या दर्पात्ते वाग्विषा भृशकोपनाः ॥ ३२ ॥

पर तुम फिर कभी ब्रह्मज्ञानी, वज्रसमान वचन बोलनेवाले, अति क्रोधी ब्राह्मणोंका अहंकारसे अपमान न करना" ॥ ३२ ॥

एवमुक्तो जगामेन्द्रो निर्विशङ्कस्त्रिविष्टपम्।
विनता चापि सिद्धार्था बभूव मुदिता तदा ॥ ३३ ॥

कश्यपके इतना कहनेपर इन्द्र भयरहित हो स्वर्गधामको गया और विनता भी मनोरथ पूर्ण होनेके कारण तब प्रसन्न हुई ॥ ३३ ॥

जनयामास पुत्रौ द्वावरुणं गरुडं तथा।
अरुणस्तयोस्तु विकल आदित्यस्य पुरःसरः ॥ ३४ ॥

समय आनेपर विनताने अरुण और गरुड यह दो सन्तानें पैदा कीं; पर अरुण विकलांग होकर सूर्यके आगे चलनेवाला सारथि बना ॥ ३४ ॥

पतत्रीणां तु गरुड इन्द्रत्वेनाभ्यषिच्यत।
तस्यैतत्कर्म सुमहच्छ्रूयतां भृगुनन्दन ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ११५५ ॥

गरुड पक्षियोंके इन्द्रके पदपर अभिषिक्त हुए। हे भृगुनन्दन ! उस गरुडके यह महान् कार्य आप सुनिये ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सत्ताइसवां अध्याय समाप्त ॥ ११५५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: २८ :

सूत उवाच

ततस्तस्मिन्द्विजश्रेष्ठ समुदीर्णे तथाविधे ।
गरुत्मान्पक्षिराट् तूर्णं संप्राप्तो विबुधान्प्रति ॥ १ ॥

सूत बोले– कि हे द्विजश्रेष्ठ ! बृहस्पतिके वचन सुनके देवोंके पूर्वोक्त रीतिसे तैय्यार हो जानेपर पक्षीराज गरुड बडे वेगसे देवोंके पास आ पहुंचे ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वातिबलं चैव प्राकम्पन्त समन्ततः ।
परस्परं च प्रत्यघ्नन्सर्वप्रहरणान्यपि ॥ २ ॥

देवगण उस महाबली गरुडको देखते ही बुरी तरह कांपने लगे और भयसे स्वयं सब अस्त्रोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ २ ॥

तत्र चासीदमेयात्मा विद्युदग्निसमप्रभः ।
भौवनः सुमहावीर्यः सोमस्य परिरक्षिता ॥ ३ ॥

बिजली और आगके समान प्रकाशमान्, अति वीर्यवान्, अप्रमेयात्मा विश्वकर्मा अमृतका रक्षक था ॥ ३ ॥

स तेन पतगेन्द्रेण पक्षतुण्डनखैः क्षतः ।
मुहूर्तमतुलं युद्धं कृत्वा विनिहतो युधि ॥ ४ ॥

वह पक्षीवर गरुड द्वारा पंख, चोंच और नखोंकी चोटसे घायल होकर क्षणभर भयंकर युद्ध करके युद्धमें मारे गए ॥ ४ ॥

रजश्चोद्धूय सुमहत्पक्षवातेन खेचरः ।
कृत्वा लोकान्निरालोकांस्तेन देवानवाकिरत् ॥ ५ ॥

फिर पक्षीराजने पंखोंकी हवासे खूब धूल उडाकर उससे संपूर्ण लोकोंको उजालेसे रहित करके देवोंको भी आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

तेनावकीर्णा रजसा देवा मोहमुपागमन् ।
न चैनं ददृशुश्छन्ना रजसामृतरक्षिणः ॥ ६ ॥

देवगण धूलसे आच्छादित होकर मोहयुक्त हो गये और अमृतके रखवाले भी धूलसे आच्छादित होकर अन्धोंके समान बनकर गरुडको देख नहीं सके ॥ ६ ॥

एवं संलोडयामास गरुडस्त्रिदिवालयम् ।
पक्षतुण्डप्रहारैश्च देवान्स विददार ह ॥ ७ ॥

इस प्रकार गरुडने स्वर्गको मथ दिया और पंख और चोंचोंके प्रहारोंसे देवोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो देवः सहस्राक्षस्तूर्णं वायुमचोदयत्।
विक्षिपेमां रजोवृष्टिं तवैतत्कर्म मारुत ॥ ८ ॥

तब सहस्रनेत्र इन्द्रने शीघ्र ही पवन देवको प्रेरणा दी, कि "हे पवन! तुम तुरन्त इस धूल-वृष्टिको रोको। यह तुम्हारा ही कर्म है।" ॥ ८ ॥

अथ वायुरपोवाह तद्रजस्तरसा बली।
ततो विनिर्मिरे जाते देवाः शकुनिमार्दयन् ॥ ९ ॥

यह सुनकर महाबली वायुने शीघ्र ही संपूर्ण धूल हटा दी, इससे अंधकारके साफ हो जाने पर देवोंने उस पक्षी पर चढाई की ॥ ९ ॥

ननाद चोच्चैर्बलवान्महामेघरवः खगः।
वध्यमानः सुरगणैः सर्वभूतानि भीषयन्।
उत्पपात महावीर्यः पक्षिराट् परवीरहा ॥ १० ॥

महाबली गरुडने देवोंके द्वारा आहत होकर सब प्राणिमात्रको डराते हुए महान् बादलके समान अति घोर गर्जना की और वह महावीर्यवान् शत्रुनाशी पक्षीनाथ आकाशमें उड गए ॥१०॥

तमुत्पत्यान्तरिक्षस्थं देवानामुपरि स्थितम्।
वर्मिणो विबुधाः सर्वे नानाशस्त्रैरवाकिरन् ॥ ११ ॥

कवचधारी, इन्द्रादि संपूर्ण देवोंने आकाशमें उडकर अपने ऊपर छाए हुए गरुडको अनेक तरहके शस्त्रोंसे ढक दिया ॥ ११ ॥

पट्टिशैः परिघैः शूलैर्गदाभिश्च सवासवाः।
क्षुरान्तैर्ज्वलितैश्चापि चक्रैरादित्यरूपिभिः ॥ १२ ॥

इन्द्र सहित देवोंके द्वारा पट्टिश, परिघ, शूल, गदा, प्रज्ज्वलित क्षुरप्र, सूर्यके समान चक्रादि ॥ १२ ॥

नानाशस्त्रविसर्गैश्च वध्यमानः समन्ततः।
कुर्वन्सुतुमुलं युद्धं पक्षिराण्न व्यकम्पत ॥ १३ ॥

नाना अस्त्रोंसे चारों ओरसे मारे जाते हुए पक्षीनाथ घोर युद्ध करते हुए भी विकल नहीं हुए ॥ १३ ॥

विनर्दन्निव चाकाशे वैनतेयः प्रतापवान्।
पक्षाभ्यामुरसा चैव समन्ताद्व्यक्षिपत्सुरान् ॥ १४ ॥

अपितु आकाशमें गर्जते हुए वह प्रतापी विनतापुत्र पंख और छातीकी चोटसे देवोंको चारों ओर गिराने लगे; ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ते विक्षिप्तास्ततो देवाः प्रजग्मुर्गरुडार्दिताः ।
नखतुण्डक्षताश्चैव सुस्रुवुः शोणितं बहु ॥ १५ ॥

पक्षीराज गरुडके आक्रमणसे गिराये जाकर देव भाग गए और चोंच तथा नखोंसे घायल होकर रक्त गिराने लगे ॥ १५ ॥

साध्याः प्राचीं सगन्धर्वा वसवो दक्षिणां दिशम् ।
प्रजग्मुः सहिता रुद्रैः पतगेन्द्रप्रधर्षिताः ॥ १६ ॥

पक्षीराजसे पीडित होकर साध्य और गन्धर्व लोग पूर्वकी और वसु और रुद्रगण दक्षिणकी ओर भाग गए ॥ १६ ॥

दिशं प्रतीचीमादित्या नासत्या उत्तरां दिशम् ।
मुहुर्मुहुः प्रेक्षमाणा युध्यमाना महौजसम् ॥ १७ ॥

आदित्यगण पश्चिमकी ओर और दोनों अश्विनीकुमार उत्तरकी ओर युद्ध करते हुए तथा बार बार महाबलशाली गरुडको देखते हुए भाग गए ॥ १७ ॥

अश्वक्रन्देन वीरेण रेणुकेन च पक्षिणा ।
क्रथनेन च शूरेण तपनेन च खेचरः ॥ १८ ॥

पक्षीनाथ गरुडने वीर अश्वक्रन्द, रेणुकपक्षी, शूर, क्रथन, तपन, ॥ १८ ॥

उलूकश्वसनाभ्यां च निमेषेण च पक्षिणा ।
प्ररुजेन च संयुद्धं चकार प्रलिहेन च ॥ १९ ॥

उलूक, श्वसन, निमिषपक्षी, प्ररुज, प्रलिह इन महावीरोंसे युद्ध किया ॥ १९ ॥

तान्पक्षनखतुण्डाग्रैरभिनद्विनतासुतः ।
युगान्तकाले संक्रुद्धः पिनाकीव महाबलः ॥ २० ॥

प्रलय कालमें क्रुद्ध हुए हुए शिवके समान महा बलशाली विनतापुत्रने पंख, चोंच और नखोंसे उन वीरोंको घायल किया ॥ २० ॥

महावीर्या महोत्साहास्तेन ते बहुधा क्षताः ।
रेजुरभ्रघनप्रख्या रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ २१ ॥

महाबली और बडे उत्साही वे सब देवता सब शरीरसे घायल होकर रक्तके प्रवाहको वर्षानेवाले बादलकी भांति शोभा पाने लगे ॥ २१ ॥

तान्कृत्वा पतगश्रेष्ठः सर्वानुत्क्रान्तजीवितान् ।
अतिक्रान्तोऽमृतस्यार्थे सर्वतोऽग्निमपश्यत ॥ २२ ॥

उन वीरोंको मृतकके समान करके अमृत लानेके लिए गए हुए पक्षीश्रेष्ठ गरुडने चारों ओर अग्निको देखा ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आवृण्वानं महाज्वालमर्चिर्भिः सर्वतोऽम्बरम्।
दहन्तमिव तीक्ष्णांशुं घोरं वायुसमीरितम् ॥ २३ ॥

वह अग्नि महा ज्वालओंसे सारे आकाशको सब तरफसे घेरे हुए थी। मानों वह अग्नि तेज हवासे प्रेरित होकर सूर्यको भी जला रही थी॥ २३ ॥

ततो नवत्या नवतीर्मुखानां कृत्वा तरस्वी गरुडो महात्मा।
नदीः समापीय मुखैस्ततस्तैः सुशीघ्रमागम्य पुनर्जवेन ॥ २४ ॥
ज्वलन्तमग्निं तममित्रतापनः समास्तरत्पत्ररथो नदीभिः।
ततः प्रचक्रे वपुरन्यदल्पं प्रवेष्टुकामोऽग्निमभिप्रशाम्य ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ११८० ॥

यह देख करके वेगवान्, महात्मा गरुडने चलकर (९० × ९० = ८१००) आठ सहस्र एक सौ मुंह धारण करके उन सब मुखोंसे संपूर्ण नदियोंका जल पीकर फिर अति वेगसे आकर उस शत्रुको तपानेवाले गरुडने नदियोंसे जलती हुई आगको ढक दिया और इस प्रकार उस अग्निको बुझा करके भीतर घुसनेकी इच्छासे पक्षीने दूसरी एक अति छोटी देह धारण की॥२४-२५॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अट्ठाइसवां अध्याय समाप्त॥ २८ ॥ ११८० ॥

: २९ :

सूत उवाच

जाम्बूनदमयो भूत्वा मरीचिविकचोज्ज्वलः।
प्रविवेश बलात्पक्षी वारिवेग इवार्णवम् ॥ १ ॥

सूत बोले- गरुड, किरणोंसे सुशोभित होनेके कारण उज्ज्वल उस सुवर्णमय शरीरको धारण कर, जिस प्रकार जलका वेग समुद्रमें जा घुसता है, उसी प्रकारसे बलपूर्वक वहां जा घुसे ॥ १ ॥

स चक्रं क्षुरपर्यन्तमपश्यदमृतान्तिके।
परिभ्रमन्तमनिशं तीक्ष्णधारमयस्मयम् ॥ २ ॥

और वहां लोहेसे बने, उस्तरेके समान तीक्ष्णधारवाले, एक चक्रको अमृतके चारों ओर सदा घूमते देखा ॥ २ ॥

ज्वलनार्कप्रभं घोरं छेदनं सोमहारिणाम्।
घोररूपं तदत्यर्थं यन्त्रं देवैः सुनिर्मितम् ॥ ३ ॥

अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी वह भयंकर चक्रयंत्र देवोंने अमृत चुरानेवालोंको काटनेके लिये बनवा रखा था ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्यान्तरं स दृष्ट्वैव पर्यवर्तत खेचरः ।
अरान्तरेणाभ्यपतत्संक्षिप्याङ्गं क्षणेन ह ॥ ४ ॥

पक्षीनाथ गरुड उस यन्त्रमें प्रवेशकी थोडीसी जगह देखकर उसके चारों ओर उडने लगे और आरोंके बीचके छेदसे अपना शरीर छोटा करके उसी क्षण भीतर जा घुसे ॥ ४ ॥

अधश्चक्रस्य चैवात्र दीप्तानलसमद्युती ।
विद्युज्जिह्वौ महाघोरौ दीप्तास्यौ दीप्तलोचनौ ॥ ५ ॥

वहां चक्रके नीचे प्रज्ज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, बिजलीके समान चंचल जीभवाले, महा भयंकर प्रज्ज्वलित मुख और प्रदीप्त आंखोंवाले ॥ ५ ॥

चक्षुर्विषौ महावीर्यौ नित्यक्रुद्धौ तरस्विनौ ।
रक्षार्थमेवामृतस्य ददर्श भुजगोत्तमौ ॥ ६ ॥

विषसे भरी हुई आंखोंवाले, महा बलशाली, सदा क्रोधी, अति बलवान्, दो कराल सर्प गरुडने अमृतकी रक्षाके निमित्त देखा ॥ ६ ॥

सदा संरब्धनयनौ सदा चानिमिषेक्षणौ ।
तयोरेकोऽपि यं पश्येत्स तूर्णं भस्मसाद्भवेत् ॥ ७ ॥

वे दोनों सदा क्रोधसे लाल लाल आंखोंवाले तथा पलक न मारते हुए एकटक देखनेवाले थे, वे दोनों इतने भयंकर थे कि उन दोनोंमेंसे एक भी यदि किसीको देख ले तो वह तभी भस्म हो जाये ॥ ७ ॥

तयोश्चक्षूंषि रजसा सुपर्णस्तूर्णमावृणोत् ।
अदृष्टरूपस्तौ चापि सर्वतः पर्यकालयत् ॥ ८ ॥

विनता–पुत्र गरुडने सहसा धूल फेंककर उन दोनों सर्पोंकी आंखें बन्द कर दीं और अदृश्य होकर उनके शरीरमें मारने लगे ॥ ८ ॥

तयोरङ्गे समाक्रम्य वैनतेयोऽन्तरिक्षगः ।
आच्छिनत्तरसा मध्ये सोममभ्यद्रवत्ततः ॥ ९ ॥

और अन्तरिक्षमें उडनेवाले उस विनता पुत्र गरुडने उनपर चढाई कर दी और शीघ्रतासे उनके टुकडे टुकडे करके वे अमृतकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

समुत्पाट्यामृतं तत्तु वैनतेयस्ततो बली ।
उत्पपात जवेनैव यन्त्रमुन्मथ्य वीर्यवान् ॥ १० ॥

इसके बाद महाबली वीर्यवान् विनता पुत्र गरुड यन्त्रको पूर्णरूपसे मथकर अमृतका कलसा उठाकर बडे वेगसे उडे ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपीत्वैवामृतं पक्षी परिगृह्याशु वीर्यवान्।
अगच्छदपरिश्रान्त आवार्यार्कप्रभां खगः ॥ ११ ॥

वह आकाशमें उडनेवाला वीर्यवान् पक्षी गरुड उस अमृतको स्वयं न पीते हुए उसे लेकर सूर्यकी प्रभाको चारों ओरसे ढककर न थकते हुए उड चले ॥ ११ ॥

विष्णुना तु तदाकाशे वैनतेयः समेयिवान्।
तस्य नारायणस्तुष्टस्तेनालौल्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
तमुवाचाव्ययो देवो वरदोऽस्मीति खेचरम्।
स वव्रे तव तिष्ठेयमुपरीत्यन्तरिक्षगः ॥ १३ ॥

जाते हुए विनतापुत्र गरुडकी आकाशमें विष्णुसे भेंट हुई। श्रीनारायण उसको (अमृत पीनेके) लोभकर्मसे रहित देख करके प्रसन्न होकर आकाशमें उडनेवाले उससे अव्यय देव नारायण बोले– "हे पक्षी ! तुम वर मांगो।" अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले उसने वर मांगा कि, "मैं तुम्हारे ध्वजके ऊपर रहूं" ॥ १२-१३ ॥

उवाच चैनं भूयोऽपि नारायणमिदं वचः।
अजरश्चामरश्च स्याममृतेन विनाप्यहम् ॥ १४ ॥

और फिर इसने नारायणसे यह बात कही कि अमृत न पीकर भी मैं अजर अमर हो जाऊं ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य वरौ तौ च गरुडो विष्णुमब्रवीत्।
भवतेऽपि वरं दद्मि वृणीतां भगवानपि ॥ १५ ॥

गरुड उन दोनों वरोंको मांगकर विष्णुसे बोले, कि तुमको भी कोई वर दूंगा, तुम भी मुझसे कोई वर मांगो ॥ १५ ॥

तं वव्रे वाहनं कृष्णो गरुत्मन्तं महाबलम्।
ध्वजं च चक्रे भगवानुपरि स्थास्यसीति तम् ॥ १६ ॥

विष्णुने महाबली, वीर्यशाली गरुडको अपना वाहन बना लिया तथा भगवान् नारायणने एक ध्वज बनाया और गरुडसे कहा कि तुम हमेशा मेरे ऊपर इस ध्वज पर रहोगे ॥१६॥

अनुपत्य खगं त्विन्द्रो वज्रेणाङ्गेऽभ्यताडयत्।
विहंगमं सुरामित्रं हरन्तममृतं बलात् ॥ १७ ॥

इन्द्रने देवशत्रु पक्षी गरुडको बलसे अमृत हरकर ले जाते देखकर उसके पास जाकर उसके शरीरपर वज्र मारा ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमुवाचेन्द्रमाक्रन्दे गरुडः पततां वरः ।
प्रहसञ्श्लक्ष्णया वाचा तथा वज्रसमाहतः ॥ १८ ॥

पक्षीश्रेष्ठ गरुड उस युद्धमें वज्रकी मार खाकर हंसकर मीठी वाणीसे देवराजसे बोले ॥ १८ ॥

ऋषेर्मानं करिष्यामि वज्रं यस्यास्थिसंभवम् ।
वज्रस्य च करिष्यामि तव चैव शतक्रतो ॥ १९ ॥

"हे इन्द्र ! जिस ऋषिकी हड्डीसे वज्र बना है, उनका सम्मान मैं करूंगा, साथ ही तुम्हारा और तुम्हारे वज्रका आदर बनाये रखूंगा ॥ १९ ॥

एष पत्रं त्यजाम्येकं यस्यान्तं नोपलप्स्यसे ।
न हि वज्रनिपातेन रुजा मेऽस्ति कदाचन ॥ २० ॥

इसलिए, तुमको जिसका अन्त भी नहीं मिलेगा; ऐसा यह एक पंख मैं त्याग देता हूं, तुम्हारे इस वज्रकी चोटसे मुझको कभी चोट नहीं लग सकती" ॥ २० ॥

तत्र तं सर्वभूतानि विस्मितान्यब्रुवंस्तदा ।
सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति ॥ २१ ॥

तब सारे प्राणी उसके सुन्दर पंखको देखकर आश्चर्यचकित होकर उससे बोले, कि इसका नाम "सुपर्ण" हो ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा तदद्भुतं चापि सहस्राक्षः पुरंदरः ।
खगो महदिदं भूतमिति मत्वाभ्यभाषत ॥ २२ ॥

सहस्रनेत्र पुरन्दर भी यह अत्याश्चर्य देखकर सोचने लगे कि "निश्चय ही यह पक्षी कोई महाप्राणी होगा" और यह सोचकर बोले ॥ २२ ॥

बलं विज्ञातुमिच्छामि यत्ते परमनुत्तमम् ।
सख्यं चानन्तमिच्छामि त्वया सह खगोत्तम ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ १२०३ ॥

"हे पक्षीवर ! तुम्हारा जो अत्यंत उत्तम बल है उसे मैं जानना चाहता हूं और तुमसे सदा मित्रताकी इच्छा करता हूँ" ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उन्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ १२०३ ॥

---

*

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३० :

गरुड उवाच

सख्यं मेऽस्तु त्वया देव यथेच्छसि पुरंदर।
बलं तु मम जानीहि महच्चासह्यमेव च ॥ १ ॥

गरुड बोले, कि हे देवराज पुरन्दर ! तुम जिस प्रकार चाहते हो; उसी प्रकार तुम्हारी मेरे साथ मित्रता हो। और तुम बस इतना ही समझ लो कि मेरा बल महान् और न सहने योग्य है ॥ १ ॥

कामं नैत्प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम्।
गुणसंकीर्तनं चापि स्वयमेव शतक्रतो ॥ २ ॥

हे शतक्रतो ! पंडितलोग अपने बलकी प्रशंसा वा स्वगुणोंका कीर्तन स्वयं नहीं करते ॥ २ ॥

सखेति कृत्वा तु सखे पृष्टो वक्ष्याम्यहं त्वया।
न ह्यात्मस्तवसंयुक्तं वक्तव्यमनिमित्ततः ॥ ३ ॥

हे मित्र ! तुम मित्र बनकर पूछते हो, इसलिये कहता हूं, नहीं तो बिना कारण अपनी प्रशंसा की बात नहीं कहनी चाहिये ॥ ३ ॥

सपर्वतवनामुर्वीं ससागरवनामिमाम्।
पक्षनाड्यैकया शक्र त्वां चैवात्रावलम्बिनम् ॥ ४ ॥

मैं अपने पंखकी एक नाडीसे ही पर्वत, वन और समुद्र—जल सहित इस धरतीको उठा सकता हूं, और उसपर बैठे हुए तुमको भी उठालूं तोभी मुझे कष्ट नहीं जान पडेगा ॥ ४ ॥

सर्वान्संपिण्डितान्वापि लोकान्सस्थाणुजङ्गमान्।
वहेयमपरिश्रान्तो विद्धीदं मे महद्बलम् ॥ ५ ॥

स्थावर—जंगमसे पूर्ण संपूर्ण भुवनोंकी गठरीसी बांधकर एक ही कालमें बिना थके ले जाऊं, इतना महान् बल मुझमें तुम समझो ॥ ५ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तवचनं वीरं किरीटी श्रीमतां वरः।
आह शौनक देवेन्द्रः सर्वभूतहितः प्रभुः ॥ ६ ॥

सूत बोले— हे शौनक ! सब प्राणियोंके हितको चाहनेवाले प्रभु, किरीटधारी, ऐश्वर्यशालियोंमें श्रेष्ठ, देवोंके स्वामी इन्द्र वीरवर गरुडके यह वचन सुनकर बोले ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रति गृह्यतामिदानीं मे सख्यमानन्त्यमुत्तमम् ।
न कार्यं तव सोमेन मम सोमः प्रदीयताम् ।
अस्मांस्ते हि प्रबाधेयुर्येभ्यो दद्याद्भवानिमम् ॥ ७ ॥

" इसी क्षण तुम मेरी उत्तम और हमेशा स्थिर रहनेवाली मित्रताको स्वीकार करो और अमृतसे तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं है, अतः वह मुझे लौटा दो। तुम जिनको यह अमृत दोगे वे सदा हमारी हानि किया करेंगे " ॥ ७ ॥

गरुड उवाच

किंचित्कारणमुद्दिश्य सोमोऽयं नीयते मया ।
न दास्यामि समादातुं सोमं कस्मैचिदप्यहम् ॥ ८ ॥

गरुड बोले-- " किसी विशेष कारणसे मैं अमृत ले जा रहा हूं, पर मैं यह अमृत किसीको भी पीने नहीं दूंगा ॥ ८ ॥

यत्रेमं तु सहस्राक्ष निक्षिपेयमहं स्वयम् ।
त्वमादाय ततस्तूर्णं हरेथास्त्रिदशेश्वर ॥ ९ ॥

हे देवोंके स्वामिन् सहस्रनेत्र इन्द्र ! मैं इस अमृतके कलसेको ले जा करके जहां रखूंगा, हे देवराज ! तुम वहांसे इस उसी क्षण हर लाना " ॥ ९ ॥

शक्र उवाच

वाक्येनानेन तुष्टोऽहं यत्त्वयोक्तमिहाण्डज ।
यदिच्छसि वरं मत्तस्तद्गृहाण खगोत्तम ॥ १० ॥

इन्द्र बोले-- " हे अंडोत्पन्न पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड ! तुमने जो कुछ कहा, तुम्हारी उस बातसे मैं बडा प्रसन्न हुआ । तुम मुझसे जो कुछ वर लेना चाहो, मांग लो । " ॥ १० ॥

सूत उवाच

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं कद्रूपुत्राननुस्मरन् ।
स्मृत्वा चैवोपधिकृतं मातुर्दास्यनिमित्ततः ॥ ११ ॥

सूत बोले, कि यह बात सुन करके गरुड कद्रूके पुत्रोंके व्यवहार और माताके दासीपनके कारण कद्रूके छलको स्मरण कर बोले ॥ ११ ॥

ईशोऽहमपि सर्वस्य करिष्यामि तु तेऽर्थिनाम् ।
भवेयुर्भुजगाः शक्र मम भक्ष्या महाबलाः ॥ १२ ॥

" मैं हर तरहसे समर्थ होने पर भी मैं तुम्हारा याचक होऊंगा अर्थात् तुमसे यह वर मांगता हूं, कि हे शक्र ! महाबली सर्पगण मेरे भोजनकी सामग्री बनें " ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथेत्युक्त्वान्वगच्छत्तं ततो दानवसूदनः।
हरिष्यामि विनिक्षिप्तं सोममित्यनुभाष्य तम् ॥ १३ ॥

दानवोंका नाश करनेवाले इन्द्रने उसे कहा, "वैसा ही हो अर्थात् सांप तुम्हारे भक्ष्य बनें" और "तुम्हारे द्वारा रखे गए अमृतको मैं हर लाऊंगा" यह कहकर इन्द्र गरुडके पीछे पीछे चले ॥ १३ ॥

आजगाम ततस्तूर्णं सुपर्णो मातुरन्तिकम्।
अथ सर्पानुवाचेदं सर्वान्परमहृष्टवत् ॥ १४ ॥

इसके बाद गरुड उसी क्षण माताके निकट लौट गये और प्रसन्न हृदयसे सब सर्पोंसे यह बोले ॥ १४ ॥

इदमानीतममृतं निक्षेप्स्यामि कुशेषु वः।
स्नाता मङ्गलसंयुक्तास्ततः प्राश्नीत पन्नगाः ॥ १५ ॥

"हे नागो! मैं तुम्हारे निमित्त यह अमृत लेता आया हूं, और उसे कुशाओंमें रख देता हूं, तुम सब सर्प स्नान और मंगलाचरण करके अमृत पिओ ॥ १५ ॥

अदासी चैव मातेयमद्यप्रभृति चास्तु मे।
यथोक्तं भवतामेतद्वचो मे प्रतिपादितम् ॥ १६ ॥

आजसे मेरी यह माता दासीत्वसे छूट जाये। क्योंकि आपके द्वारा कहा हुआ काम मैंने पूरा कर दिया है" ॥ १६ ॥

ततः स्नातुं गताः सर्पाः प्रत्युक्त्वा तं तथेत्युत।
शक्रोऽप्यमृतमाक्षिप्य जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ १७ ॥

यह सुनकर सर्पगण गरुडसे "तथास्तु" कहकर नहाने चले गये, इसी बीच इन्द्र भी अमृतका कलसा लेकर फिर स्वर्गको चले गए ॥ १७ ॥

अथागतास्तमुद्देशं सर्पाः सोमार्थिनस्तदा।
स्नाताश्च कृतजप्याश्च प्रहृष्टाः कृतमङ्गलाः ॥ १८ ॥

स्नान, जप और मंगलाचरण करके अमृत पीनेकी इच्छावाले सर्प प्रसन्न होकर, जहां कुशाओंमें अमृतका कलसा धरा था, वहां आए ॥ १८ ॥

तद्विज्ञाय हृतं सर्पाः प्रतिमायाकृतं च तत्।
सोमस्थानमिदं चेति दर्भांस्ते लिलिहुस्तदा ॥ १९ ॥

"अमृतको किसीने चुरा लिया है" यह जानकर और "हमने जैसे छल किया था, गरुडने भी वैसे ही छल किया है।" यह सोचकर यहीं कुशाओंमें अमृत रखा था, यह विचार कर सर्पगण उन कुशोंको चाटने लगे ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो द्वैधीकृता जिह्वा सर्पाणां तेन कर्मणा ।
अभवंश्चामृतस्पर्शाद्दर्भास्तेऽथ पवित्रिणः ॥ २० ॥

इस कर्मसे उनकी जीभ कट कर दो भागोंमें बंट गई । अमृतके स्पर्शसे वे कुश भी पवित्र हो गए ॥ २० ॥

ततः सुपर्णः परमप्रहृष्टवान्विहृत्य मात्रा सह तत्र कानने ।
भुजङ्गभक्षः परमार्चितः खगैरहीनकीर्तिर्विनतामनन्दयत् ॥ २१ ॥

अनन्तर प्रफुल्लित हृदयसे माताके साथ उस वनमें विहार करके संपूर्ण पक्षियोंसे भली प्रकार पूजे जाकर और सर्पभक्षक बनकर अक्षय कीर्तिवाले गरुड माताका आनन्द बढाने लगे ॥ २१ ॥

इमां कथां यः शृणुयान्नरः सदा पठेत वा द्विजजनमुख्यसंसदि ।
असंशयं त्रिदिवमियात्स पुण्यभाङ्महात्मनः पतगपतेः प्रकीर्तनात् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ १२२५ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मण जनोंकी सभामें यह कथा सदा सुनता या पढता है; वह अति प्रभावी पक्षीराज गरुडके चरित्र कहनेका पुण्य लेकरके विना सन्देह देवलोक जाता है ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ ॥ १२२५ ॥

: ३१ :

शौनक उवाच

भुजङ्गमानां शापस्य मात्रा चैव सुतेन च ।
विनतायास्त्वया प्रोक्तं कारणं सूतनन्दन ॥ १ ॥

शौनक बोले-- कि हे सूतनन्दन ! माताका सर्पोंको शाप देना और पुत्र अरुणका अपनी माता विनताको शाप देना इन दोनोंके कारण तुमने कह सुनाये ॥ १ ॥

वरप्रदानं भर्त्रा च कद्रूविनतयोस्तथा ।
नामनी चैव ते प्रोक्ते पक्षिणोर्वैनतेययोः ॥ २ ॥

और पतिसे कद्रू और विनताके वर पानेके वृत्तान्तका वर्णन करके तुम विनताके पुत्रों दोनों पक्षियोंके नाम भी बता चुके हो ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पन्नगानां तु नामानि न कीर्तयसि सूतज।
प्राधान्येनापि नामानि श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ३ ॥

पर हे सूतपुत्र ! तुमने सर्पोंके नाम नहीं कहे; अतः हम कुछ प्रधान प्रधान सर्पोंके नाम सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

सूत उवाच

बहुत्वान्नामधेयानि भुजगानां तपोधन।
न कीर्तयिष्ये सर्वेषां प्राधान्येन तु मे शृणु ॥ ४ ॥

सूत बोले-- कि हे तपोधन शौनक ! सर्पोंके नाम बहुत होनेके कारण सबोंके नाम नहीं कहूंगा, केवल प्रधान प्रधान सांपोंके नाम कहता हूं, सुनिये ॥ ४ ॥

शेषः प्रथमतो जातो वासुकिस्तदनन्तरम्।
ऐरावतस्तक्षकश्च कर्कोटकधनंजयौ ॥ ५ ॥

सबसे पहिले शेष नागने जन्म लिया, अनन्तर वासुकिका जन्म हुआ, इसके पश्चात् ऐरावत और तक्षक, कर्कोटक, धनंजय ॥ ५ ॥

कालियो मणिनागश्च नागश्चापूरणस्तथा।
नागस्तथा पिञ्जरक एलापत्रोऽथ वामनः ॥ ६ ॥

कालिय और मणिनाग तथा आपूरण नाग तथा पिंजरक नाग, एलापत्र और वामन ॥६॥

नीलानीलौ तथा नागौ कल्माषशबलौ तथा।
आर्यकश्चादिकश्चैव नागश्च शलपोतकः ॥ ७ ॥

तथा नील, अनील नाग, कल्माष और शबल, आर्यक और आदिक नाग तथा शलपोतक ॥७॥

सुमनोमुखो दधिमुखस्तथा विमलपिण्डकः।
आप्तः कोटनकश्चैव शङ्खो वालशिखस्तथा ॥ ८ ॥

सुमनोमुख, दधिमुख और विमलपिंडक, आप्त और कोटनक, शंख और वालशिख ॥ ८ ॥

निष्ठ्यूनको हेमगुहो नहुषः पिङ्गलस्तथा।
वाह्यकर्णो हस्तिपदस्तथा मुद्गरपिण्डकः ॥ ९ ॥

निष्ठ्यूनक, हेमगुह, नहुष तथा पिंगल, वाह्यकर्ण, हस्तिपद तथा मुद्गरपिंडक ॥ ९ ॥

कम्बलाश्वतरौ चापि नागः कालीयकस्तथा।
वृत्तसंवर्तकौ नागौ द्वौ च पद्मावितिश्रुतौ ॥ १० ॥

कम्बल, अश्वतर तथा कालीयक नाग, वृत्त, संवर्त्तक नाग और दो प्रसिद्ध पद्म, महापद्म ॥१०॥

नागः शङ्खनकश्चैव तथा च स्फण्डकोऽपरः।
क्षेमकश्च महानागो नागः पिण्डारकस्तथा ॥ ११ ॥

शंखनक नाग, दूसरा स्फंडक, क्षेमक महानाग और पिण्डारक नाग ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करवीरः पुष्पदंष्ट्र एळको बिल्वपाण्डुकः ।
मूषकादः शङ्खशिराः पूर्णदंष्ट्रो हरिद्रकः ॥ १२ ॥

करवीर, पुष्पदंष्ट्र, एळक, बिल्वपाण्डुक, मूषकाद, शंखशिरा, पूर्णदंष्ट्र, हरिद्रक ॥ १२ ॥

अपराजितो ज्योतिकश्च पन्नगः श्रीवहस्तथा ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च पुष्करः शल्यकस्तथा ॥ १३ ॥

अपराजित और ज्योतिक तथा पन्नग श्रीवह, कौरव्य और धृतराष्ट्र, पुष्कर तथा शल्यक ॥ १३ ॥

विरजाश्च सुबाहुश्च शालिपिण्डश्च वीर्यवान् ।
हस्तिभद्रः पिठरको मुखरः कोणवासनः ॥ १४ ॥

विरजा और सुबाहु, वीर्यवान् शालिपिण्ड, हस्तिभद्र, पिठरक, मुखर, कोणवासन ॥ १४ ॥

कुञ्जरः कुररश्चैव तथा नागः प्रभाकरः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च तित्तिरिर्हलिकस्तथा ।
कर्कराकर्करौ चोभौ कुण्डोदरमहोदरौ ॥ १५ ॥

कुंजर, कुरर तथा प्रभाकर नाग, कुमुद और कुमुदाक्ष, तित्तिरि तथा हलिक, दोनों कर्कर और अकर्कर, कुण्डोण्दर और महोदर ॥ १५ ॥

एते प्राधान्यतो नागाः कीर्तिता द्विजसत्तम ।
बहुत्वान्नामधेयानामितरे न प्रकीर्तिताः ॥ १६ ॥

यह सब प्रधान प्रधान नागोंके नाम कहे गये हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! नामोंके अधिक होनेके कारण दूसरे सब सर्पोंके नाम नहीं कहे हैं ॥ १६ ॥

एतेषां प्रसवो यश्च प्रसवस्य च संततिः ।
असंख्येयेति मत्वा तान्न ब्रवीमि द्विजोत्तम ॥ १७ ॥

हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! इनके पुत्र और पुत्रोंके पुत्र भी असंख्य हैं, यह जानकर उनके नामोंको नहीं गिना रहा ॥ १७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अशक्यान्येव संख्यातुं भुजगानां तपोधन ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ १२४३ ॥

वास्तवमें अनेक हजारों, अनेक अयुतों, अनेक अर्बुदों नाग हैं, अतः हे तपोधन ! सांपोंकी संख्या भी नहीं की जा सकती है ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ १२४३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३२ :

शौनक उवाच

जाता वै भुजगास्तात वीर्यवन्तो दुरासदाः।
शापं तं त्वथ विज्ञाय कृतवन्तो नु किं परम् ॥ १ ॥

शौनक बोले– कि तात ! सर्प तो बडे वीर्यशाली तथा दुर्धर्ष होकर उत्पन्न हुए थे। उन्होंने माताके शापको सुननेके पश्चात् क्या किया ॥ १ ॥

सूत उवाच

तेषां तु भगवाञ्शेषस्त्यक्त्वा कद्रूं महायशाः।
तपो विपुलमातस्थे वायुभक्षो यतव्रतः ॥ २ ॥

सूत बोले– कि तब उन सर्पोंमें अति यशस्वी भगवान् शेषनाग कद्रूको छोड कर जितेन्द्रिय और वायुभक्षी होकर महान् तप करने लगे ॥ २ ॥

गंधमादनमासाद्य बदर्यां च तपोरतः।
गोकर्णे पुष्करारण्ये तथा हिमवतस्तटे ॥ ३ ॥
तेषु तेषु च पुण्येषु तीर्थेष्वायतनेषु च।
एकान्तशीली नियतः सततं विजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥

तपमें रत रहनेवाले वे गन्धमादन, बदरिका, गोकर्ण, पुष्करवन तथा हिमालयके किनारे आदि उन उन संपूर्ण पवित्र तीर्थ और आश्रमोंमें घूमकर सदा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेवाले तथा एकान्तवासी होकर तप करने लगे ॥ ३–४ ॥

तप्यमानं तपो घोरं तं ददर्श पितामहः।
परिशुष्कमांसत्वक्स्नायुं जटाचीरधरं प्रभुम् ॥ ५ ॥

जटा और चीर धारण करनेवाले, कठोर तप करनेके कारण सूखे हुए मांस, चमडा और नसों-वाले, भयंकर तपस्या करनेवाले उस सामर्थ्यशाली शेषनागको पितामह ब्रह्माने देखा ॥ ५ ॥

तमब्रवीत्सत्यधृतिं तप्यमानं पितामहः।
किमिदं कुरुषे शेष प्रजानां स्वस्ति वै कुरु ॥ ६ ॥

अटल धैर्यसे तप करते देखकर पितामह उससे बोले– "हे शेष ! तुम यह क्या कर रहे हो ? प्रजाओंका जिससे मंगल हो, वही करो ॥ ६ ॥

त्वं हि तीव्रेण तपसा प्रजास्तापयसेऽनघ।
ब्रूहि कामं च मे शेष यत्ते हृदि चिरं स्थितम् ॥ ७ ॥

हे अनघ ! तुम कठोर तपसे प्रजाको संताप दे रहे हो। हे शेष ! तुम्हारे हृदयमें जो दीर्घ कालसे स्थित है, उस अपनी अभिलाषाके बारेमें मुझे बताओ" ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शेष उवाच

सोदर्या मम सर्वे हि भ्रातरो मन्दचेतसः ।
सह तैर्नोत्सहे वस्तुं तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ८ ॥

शेष बोले– " मेरे सब सगे भाई दुष्ट बुद्धिवाले हैं, मैं उनके साथ एकत्र रहना नहीं चाहता, अतः आप मुझे उनसे अलग रहनेकी अनुमति दीजिये ॥ ८ ॥

अभ्यसूयन्ति सततं परस्परमामित्रवत् ।
ततोऽहं तप आतिष्ठे नैतान्पश्येयमित्युत ॥ ९ ॥

वे मेरे भाई आपसमें शत्रुके समान सदा एक दूसरेसे द्वेष करते रहते हैं, इसी हेतुसे मैं तप कर रहा हूं, कि फिर उनको मैं न देखूं ॥ ९ ॥

न मर्षयन्ति सततं विनतां ससुतां च ते ।
अस्माकं चापरो भ्राता वैनतेयः पितामह ॥ १० ॥

वे सदा विनता और उसके पुत्रसे डाह किया करते हैं; अतः उनके सुखको सहन नहीं कर पाते । हे पितामह ! विनता पुत्र गरुड हमारे दूसरे भाई ही तो हैं ॥ १० ॥

तं च द्विषन्ति तेऽत्यर्थं स चापि सुमहाबलः ।
वरप्रदानात्स पितुः कश्यपस्य महात्मनः ॥ ११ ॥

वे गरुड अपने पिता महात्मा कश्यपके वरके कारण अति बलवीर्यशाली हुए हैं; इस कारण मेरे वे भाई सदा उससे द्वेष किया करते हैं ॥ ११ ॥

सोऽहं तपः समास्थाय मोक्ष्यामीदं कलेवरम् ।
कथं मे प्रेत्यभावेऽपि न तैः स्यात्सह संगमः ॥ १२ ॥

अतः मैं तप करके यह शरीर छोड दूंगा, पर दूसरे जन्ममें भी उन भाइयोंसे मेरा किसी प्रकारका सम्बन्ध न रह सके, इसके लिए कौनसा उपाय है " ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच

जानामि शेष सर्वेषां भ्रातॄणां ते विचेष्टितम् ।
मातुश्चाप्यपराधाद्वै भ्रातॄणां ते महद्भयम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मा बोले– " हे शेष ! मैं तुम्हारे भाइयोंके सब व्यवहार जानता हूं, तुम्हारी माताके शापसे तुम्हारे भाइयोंके लिए जो महाभय उपस्थित हुआ है, वह भी जानता हूं ॥ १३ ॥

कृतोऽत्र परिहारश्च पूर्वमेव भुजङ्गम ।
भ्रातॄणां तव सर्वेषां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ १४ ॥

पर हे शेष ! पहिले ही उसका प्रतिकार होगया है, अतः तुम सब भाइयोंके निमित्त दुःख मत करो ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वृणीष्व च वरं मत्तः शेष यत्तेऽभिकाङ्क्षितम्।
दित्सामि हि वरं तेऽद्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि ॥ १५ ॥

हे शेष ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूं, और तुमको मैं आज वर देना चाहता हूं, अतः तुम जो कुछ चाहते हो, वह वर तुम मुझसे मांग लो ॥ १५ ॥

दिष्ट्या च बुद्धिर्धर्मे ते निविष्टा पन्नगोत्तम।
अतो भूयश्च ते बुद्धिर्धर्मे भवतु सुस्थिरा ॥ १६ ॥

हे सर्पश्रेष्ठ ! सौभाग्यवश तुम्हारा चित्त धर्ममें लगा हुआ है, इसलिए तुम्हारी बुद्धि धर्म पर और ज्यादा स्थिर हो जाए" ॥ १६ ॥

शेष उवाच

एष एव वरो मेऽद्य काङ्क्षितः प्रपितामह।
धर्मे मे रमतां बुद्धिः शमे तपसि चेश्वर ॥ १७ ॥

शेष बोले– " पितामह ब्रह्मा ! आज मेरा यही अभिलषित वर है, कि धर्म, शान्ति और तपमें मेरी बुद्धि रमती रहे " ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच

प्रीतोऽस्म्यनेन ते शेष दमेन प्रशमेन च।
त्वया त्विदं वचः कार्यं मन्नियोगात्प्रजाहितम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मा बोले– " हे शेष ! मैं तुम्हारे इस शान्तिगुण और दमसे प्रसन्न हुआ हूँ, तुम मेरी आज्ञासे प्रजाओंके हितके निमित्त यह कार्य करो ॥ १८ ॥

इमां महीं शैलवनोपपन्नां ससागरां साकरपत्तनां च।
त्वं शेष सम्यक्चलितां यथावत्संगृह्य तिष्ठस्व यथाचला स्यात् ॥ १९ ॥

हे शेष ! पर्वत और वनोंसे युक्त सागरों सहित तथा शहर आदियोंसे सम्पन्न तथा हिलती डुलती हुई इस धरतीको तुम इस प्रकार अच्छी तरह पकडकर बैठ जाओ कि यह पृथ्वी अचल अर्थात् स्थिर हो जाए" ॥ १९ ॥

शेष उवाच

यथाह देवो वरदः प्रजापतिर्महीपतिर्भूतपतिर्जगत्पतिः।
तथा महीं धारयितास्मि निश्चलां प्रयच्छ तां मे शिरसि प्रजापते ॥ २० ॥

शेष बोले– " देव वर देनेवाले प्रजापति, महीपति, भूतपति और जगत्पति जैसी आज्ञा देते हैं, उसी तरह मैं पृथ्वीको ऐसे धरे रहूंगा, कि वह डोलने न पावेगी; हे प्रजापति ! आप इस पृथ्वीको मेरे सिर पर रख दीजिये " ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्मोवाच

अधो महीं गच्छ भुजङ्गमोत्तम स्वयं तवैषा विवरं प्रदास्यति ।
इमां धरां धारयता त्वया हि मे महत्प्रियं शेष कृतं भविष्यति ॥ २१ ॥

ब्रह्मा बोले-- कि हे सर्पश्रेष्ठ ! तुम इस पृथ्वीमंडलके नीचे चले जाओ, यह पृथ्वी स्वयं ही तुमको बिल अर्थात् रास्ता दे देगी, हे शेष ! तुम्हारे द्वारा इस धरती-मंडलको धारण किए जानेपर मेरा एक अति प्रिय कार्य सम्पन्न हो जाएगा ॥ २१ ॥

सूत उवाच

तथेति कृत्वा विवरं प्रविश्य स प्रभुर्भुवो भुजगवराग्रजः स्थितः ।
बिभर्ति देवीं शिरसा महीमिमां समुद्रनेमिं परिगृह्य सर्वतः ॥ २२ ॥

सूत बोले-- कि सांपोंमें श्रेष्ठ वासुकिके बडे भाई सर्पनाथ शेषने "तथास्तु" कहकर पृथ्वीके बिलमें घुसकरके समुद्रसे घिरी हुई इस पूरी धरती देवीको चारों ओरसे उठाकर सिरपर रख लिया ॥ २२ ॥

ब्रह्मोवाच

शेषोऽसि नागोत्तम धर्मदेवो महीमिमां धारयसे यदेकः ।
अनन्तभोगः परिगृह्य सर्वां यथाहमेवं बलभिद्यथा वा ॥ २३ ॥

ब्रह्मा बोले– कि हे नागोंमें श्रेष्ठ शेष ! जिस कारण तू अकेला ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने अनन्त फनोंसे अच्छी तरह संभालकर धारण करता है, इसलिए जिस प्रकार मैं अथवा बलासुरका नाशक इन्द्र हैं, उसीप्रकार तू भी शेष (अवशिष्ट अर्थात् तीसरा) धर्मराज होगा ॥ २३ ॥

सत उवाच

अधो भूमेर्वसत्येवं नागोऽनन्तः प्रतापवान् ।
धारयन्वसुधामेकः शासनाद्ब्रह्मणो विभुः ॥ २४ ॥

सूत बोले– कि प्रतापी प्रभु अनन्त नाग ब्रह्माकी आज्ञासे अकेले ही धरतीको धारण किये भूमिके नीचे रहते हैं ॥ २४ ॥

सुपर्णं च सखायं वै भगवानमरोत्तमः ।
प्रादादनन्ताय तदा वैनतेयं पितामहः ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ १२६८ ॥

तब देवोंमें श्रेष्ठ, भगवान् पितामहने विनतानन्दन सुपर्णको भी अनन्त शेषके मित्रके रूपमें प्रदान कर दिया अर्थात् गरुडको शेषनागका मित्र बना दिया ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ १२६८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३३ :

सूत उवाच

मातुः सकाशात्तं शापं श्रुत्वा पन्नगसत्तमः।
वासुकिश्चिन्तयामास शापोऽयं न भवेत्कथम् ॥ १ ॥

सूत बोले– नागोंमें श्रेष्ठ वासुकि भी मातासे इस शापके वचन सुनकर यह सोचने लगे, कि ऐसा कौनसा उपाय है कि जिससे यह शाप सत्य न हो ॥ १ ॥

ततः स मन्त्रयामास भ्रातृभिः सह सर्वशः।
ऐरावतप्रभृतिभिर्ये स्म धर्मपरायणाः ॥ २ ॥

अनन्तर वह वासुकि, जो धर्मका आचरण करनेवाले थे, ऐसे अपने ऐरावतादि सभी भाइयोंके साथ हर तरहसे विचार करने लगा ॥ २ ॥

वासुकिरुवाच

अयं शापो यथोद्दिष्टो विदितं वस्तथानघाः।
तस्य शापस्य मोक्षार्थं मन्त्रयित्वा यतामहे ॥ ३ ॥

वासुकि बोला– कि हे निष्पाप भाइयो! माताने जो यह शाप दिया है, वह आपको पता ही है, अतः अब हम सब मिलकर विचार करके उस शापसे मुक्त होनेका प्रयत्न करें ॥ ३ ॥

सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते।
न तु मात्राभिशप्तानां मोक्षो विद्येत पन्नगाः। ॥ ४ ॥

हे सांपो! सब शापोंको प्रतिकार द्वारा व्यर्थ किया जा सकता है, पर जो माताके द्वारा शापग्रस्त हुए हैं, उनके लिए उस शापसे छूटनेका कोई उपाय नहीं है ॥ ४ ॥

अव्ययस्याप्रमेयस्य सत्यस्य च तथाग्रतः।
शप्ता इत्येव मे श्रुत्वा जायते हृदि वेपथुः ॥ ५ ॥

विशेष करके अविनाशी, सत्य और अप्रमेय पितामह ब्रह्माके सामने हमें यह शाप दिया गया है; यह सुनकर मेरा हृदय कांप रहा है ॥ ५ ॥

नूनं सर्वविनाशोऽयमस्माकं समुदाहृतः।
न ह्येनां सोऽव्ययो देवः शपन्तीं प्रत्यषेधयत् ॥ ६ ॥

जान पडता है, कि हमारा सर्वनाश विना सन्देह आ पहुंचा है, क्योंकि अविनाशी देव ब्रह्माने भी हमें शाप देती हुई इस हमारी माताको नहीं रोका ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मात्संमन्त्रयामोऽत्र भुजगानामनामयम् ।
यथा भवेत सर्वेषां मा नः कालोऽत्यगादयम् ॥ ७ ॥

अतः आज यहां हम सब मिलकर सर्पोंके मंगल पर विचार करें, जिससे हम सबका कल्याण हो और हमारा यह काल व्यर्थ न जाए ॥ ७ ॥

अपि मन्त्रयमाणा हि हेतुं पश्याम मोक्षणे ।
यथा नष्टं पुरा देवा गूढमग्निं गुहागतम् ॥ ८ ॥

सबोंसे मिल जुलकर विचार करनेसे अवश्य ही शापसे मुक्त होनेका कोई उपाय निकल सकता है । जिस प्रकार पहले देवोंने गुहामें छिपकर गुप्त हुए अग्नि देवको ढूंढ निकाला था ॥ ८ ॥

यथा स यज्ञो न भवेद्यथा वापि पराभवेत् ।
जनमेजयस्य सर्पाणां विनाशकरणाय हि ॥ ९ ॥

उसी प्रकार ऐसा कोई उपाय निश्चय किया जावे, कि जिससे सांपोंका विनाश करनेके लिए राजा जनमेजयका सर्पयज्ञ न होने पावे अथवा हो भी तो वह यज्ञ निष्फल हो जावे ॥९॥

सूत उवाच

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे काद्रवेयाः समागताः ।
समयं चक्रिरे तत्र मन्त्रबुद्धिविशारदाः ॥ १० ॥

सूत बोले– "ठीक है" इस प्रकार (वासुकीसे) कहकर बादमें नीतिको निश्चित करनेमें प्रवीण वे सब कद्रूके पुत्र एक जगह आकर एक मतसे शापसे छूटनेके उपाय पर विचार करने लगे ॥ १० ॥

एके तत्राब्रुवन्नागा वयं भूत्वा द्विजर्षभाः ।
जनमेजयं तु भिक्षामो यज्ञस्ते न भवेदिति ॥ ११ ॥

उस सभामें कुछ सर्पोंने कहा, कि हम उत्तम ब्राह्मण हो करके जनमेजयके निकट यह भिक्षा मांगें, कि वह सर्प–यज्ञ न करे ॥ ११ ॥

अपरे त्वब्रुवन्नागास्तत्र पण्डितमानिनः ।
मन्त्रिणोऽस्य वयं सर्वे भविष्यामः सुसंमताः ॥ १२ ॥

पर वहीं पर अपनेको पण्डित माननेवाले कुछ दूसरे सर्पोंने कहा, कि हम सब इस जनमेजयके प्रिय मन्त्री बन जायें ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स नः प्रक्ष्यति सर्वेषु कार्येष्वर्थविनिश्चयम् ।
तत्र बुद्धिं प्रवक्ष्यामो यथा यज्ञो निवर्तते ॥ १३ ॥

ऐसा करनेसे वह हमसे हर कार्यमें कर्तव्याकर्तव्य पूछेंगे, उस समय हम ऐसी युक्ति बतायेंगे, कि जिससे सर्प-यज्ञ न होने पावे ॥ १३ ॥

स नो बहुमतान्राजा बुद्ध्वा बुद्धिमतां वरः ।
यज्ञार्थं प्रक्ष्यति व्यक्तं नेति वक्ष्यामहे वयम् ॥ १४ ॥

बडे बुद्धिमान् राजा जनमेजय हमें बहुत प्रिय मानकर हमसे यज्ञके लिए पूछेंगे, तब हम उससे स्पष्ट कह देंगे, कि यह यज्ञ मत करो ॥ १४ ॥

दर्शयन्तो बहून्दोषान्प्रेत्य चेह च दारुणान् ।
हेतुभिः कारणैश्चैव यथा यज्ञो भवेन्न सः ॥ १५ ॥

(उस यज्ञके कारण) इस लोक और परलोकमें होनेवाले अनेक भयंकर दोषपूर्ण व अनिष्ट परिणामोंको हेतु और कारण सहित दिखाकर ऐसी व्यवस्था कर देंगे कि जिससे वह यज्ञ हो ही न पावे ॥ १५ ॥

अथवा य उपाध्यायः क्रतौ तस्मिन्भविष्यति ।
सर्पसत्रविधानज्ञो राजकार्यहिते रतः ॥ १६ ॥

अथवा सर्पयज्ञकी विधिको जाननेवाला और राजाके कार्यके हितमें रत रहनेवाला जो ब्राह्मण होगा वही सर्प-यज्ञका आचार्य होगा ॥ १६ ॥

तं गत्वा दशतां कश्चिद्भुजगः स मरिष्यति ।
तस्मिन्हते यज्ञकरे क्रतुः स न भविष्यति ॥ १७ ॥

कोई सर्प जाकर उसी आचार्यको काट ले, काटने हीसे वह मर जायेगा और यज्ञके प्रधान उपाध्यायके मर जानेसे वह यज्ञ फिर नहीं होगा ॥ १७ ॥

ये चान्ये सर्पसत्रज्ञा भविष्यन्त्यस्य ऋत्विजः ।
तांश्च सर्वान्दशिष्यामः कृतमेवं भविष्यति ॥ १८ ॥

इसके बाद भी सर्प-यज्ञकी विधि जाननेवाले जो कोई दूसरे पुरोहित होंगे तो उनको भी उसी प्रकारसे काट लेंगे; ऐसा करनेहीसे हमारा कार्य पूरा होगा ॥ १८ ॥

तत्रापरेऽमन्त्रयन्त धर्मात्मानो भुजंगमाः ।
अबुद्धिरेषा युष्माकं ब्रह्महत्या न शोभना ॥ १९ ॥

तब वहां उस सभामें दूसरे कुछ धार्मिक सर्प विचार करके बोले- कि यह तुम्हारी दुष्ट बुद्धि ही है, ब्रह्महत्या करना अच्छा नहीं है ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सम्यक्सद्धर्ममूला हि व्यसने शान्तिरुत्तमा ।
अधर्मोत्तरता नाम कृत्स्नं व्यापादयेज्जगत् ॥ २० ॥

विपत्तिके समयमें भी निर्दोष और धर्मयुक्त शान्तिमय उपाय ही कल्याणदायी होता है; अधर्मयुक्त कार्य तो संपूर्ण जगत्को नष्ट कर देता है" ॥ २० ॥

अपरे त्वब्रुवन्नागाः समिद्धं जातवेदसम् ।
वर्षैर्निर्वापयिष्यामो मेघा भूत्वा सविद्युतः ॥ २१ ॥

तब दूसरे कुछ नाग बोले– "हम बिजलीसे युक्त बादलका स्वरूप धारण कर प्रतिक्षण जल बरसा कर जलती हुई यज्ञकी आग बुझा देंगे" ॥ २१ ॥

स्रुग्भाण्डं निशि गत्वा वा अपरे भुजगोत्तमाः ।
प्रमत्तानां हरन्त्वाशु विघ्न एवं भविष्यति ॥ २२ ॥

इस पर कुछ दूसरे नागश्रेष्ठ बोले– "रात्रिके समय ऋत्विकोंके बेसुध होनेपर कुछ सांप जाकर यज्ञके संपूर्ण अंग स्रुक्भांडको चुरा लावें, ऐसा करनेसे यज्ञमें विघ्न पड जाएगा ॥ २२ ॥

यज्ञे वा भुजगास्तस्मिञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
जनं दशन्तु वै सर्वमेवं त्रासो भविष्यति ॥ २३ ॥

अथवा उस यज्ञके आरंभ होने पर सैंकडों अथवा हजारों सर्प सब लोगोंको काटने लग जाएं, तो ऐसा करनेहीसे सभी डर जाएंगे और सभी कुछ बिगड जाएगा ॥ २३ ॥

अथवा संस्कृतं भोज्यं दूषयन्तु भुजंगमाः ।
स्वेन मूत्रपुरीषेण सर्वभोज्यविनाशिना ॥ २४ ॥

अथवा सब सांप अपने भोजन करनेके योग्य सब पदार्थोंका विनाश करनेवाले मूत्र और शौचसे (उस यज्ञमें) उत्तम रीतिसे तैय्यार किए गए भोग्य पदार्थोंको बिगाड दें" ॥२४॥

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र ऋत्विजोऽस्य भवामहे ।
यज्ञविघ्नं करिष्यामो दीयतां दक्षिणा इति ।
वश्यतां च गतोऽसौ नः करिष्यति यथेप्सितम् ॥ २५ ॥

तब वहां दूसरे कुछ नाग बोले, कि हम जाकर राजाके पुरोहित बन जाएं तथा "हमें इतनी दक्षिणा दो" यह कहकर यज्ञमें विघ्न डालेंगे, ऐसा करनेसे हमारे वशमें आकर वह राजा, हम जो कहेंगे, वह ही करेगा ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र जले प्रक्रीडितं नृपम् ।
गृहमानीय बध्नीमः क्रतुरेवं भवेन्न सः ॥ २६ ॥

तब दूसरे कुछ सर्प बोले– कि राजा जब जल-क्रीडा कर रहा हो, उसी समय जलमें खेलते हुए उस राजाको हम लोग पकडके घरमें लाकर बांध कर रख छोडेंगे ऐसा करनेसे फिर सर्पयज्ञ ही नहीं होगा ॥ २६ ॥

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र नागाः सुकृतकारिणः ।
दशामैनं प्रगृह्याशु कृतमेवं भविष्यति ।
छिन्नं मूलमनर्थानां मृते तस्मिन्भविष्यति ॥ २७ ॥

तब उत्तम कर्म करनेवाले कुछ दूसरे सर्प वहां बोले– कि हम जनमेजयको ही पकड कर शीघ्र काटें, क्योंकि उसकी मृत्यु होनेपर एकसाथ ही सब बुराइयोंकी जड कट जायगी और इस प्रकार हमारा काम भी पूरा हो जाएगा ॥ २७ ॥

एषा वै नैष्ठिकी बुद्धिः सर्वेषामेव संमता ।
यथा वा मन्यसे राजंस्तत्क्षिप्रं संविधीयताम् ॥ २८ ॥

हे राजन् वासुके ! यही हमारी निश्चित बुद्धि तथा सबकी सम्मति है; अब आपकी समझमें जो उचित जान पडे वही जल्दी कीजिये ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा समुदैक्षन्त वासुकिं पन्नगेश्वरम् ।
वासुकिश्चापि संचिन्त्य तानुवाच भुजङ्गमान् ॥ २९ ॥

यह कह कर सब सांपोंके स्वामी वासुकिकी ओर ताकने लगे, वासुकि भी बहुत सोच विचार कर उन सर्पोंसे बोले ॥ २९ ॥

नैषा वो नैष्ठिकी बुद्धिर्मता कर्तुं भुजङ्गमाः ।
सर्वेषामेव मे बुद्धिः पन्नगानां न रोचते ॥ ३० ॥

कि हे सर्पगण ! तुमने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार जो निश्चय किया, उसके अनुसार काम करना उत्तम नहीं है। तुम सभी सांपोंका जो निश्चय है, वह मुझे पसन्द नहीं है ॥ ३० ॥

किं त्वत्र संविधातव्यं भवतां यद्भवेद्धितम् ।
अनेनाहं भृशं तप्ये गुणदोषौ मदाश्रयौ ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ १२९९ ॥

अपितु इस विषयमें कुछ ऐसा करना चाहिए कि जिससे तुम्हारी सबकी भलाई ही हो। मेरे ही ऊपर सब गुण और दोषोंका भार है; इसीसे मैं बहुत ही दुःखी और चिन्तित हो रहा हूं ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ १२९९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३४ :

सूत उवाच

श्रुत्वा तु वचनं तेषां सर्वेषामिति चेति च ।
वासुकेश्च वचः श्रुत्वा एलापत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि सभी सांपोंकी " ऐसा करो वैसा करो " वाली बात तथा वासुकिके वचन सुनकर एलापत्र नामका सर्प यह वाक्य बोला ॥ १ ॥

न स यज्ञो न भविता न स राजा तथाविधः ।
जनमेजयः पाण्डवेयो यतोऽस्माकं महाभयम् ॥ २ ॥

" हे राजन् ! वह सर्पयज्ञ नहीं होगा, ऐसी बात नहीं अर्थात् वह सर्पयज्ञ अवश्य होगा । और जिससे हममें बडा भय है, वह पाण्डुवंशज जनमेजय भी ऐसा वैसा अर्थात् साधारण राजा नहीं है ॥ २ ॥

दैवेनोपहतो राजन्यो भवेदिह पूरुषः ।
स दैवमेवाश्रयते नान्यत्तत्र परायणम् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! वास्तवमें इस संसारमें जो पुरुष दैववश विपत्तिमें गिरता है, वह दैवी उपायोंका ही आश्रय लेता है, उसके लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ ३ ॥

तदिदं दैवमस्माकं भयं पन्नगसत्तमाः ।
दैवमेवाश्रयामोऽत्र शृणुध्वं च वचो मम ॥ ४ ॥

हे सांपोंमें श्रेष्ठ सर्पगण ! हमें दैवहीसे यह भय प्राप्त हुआ है, अतः दैवी उपायोंकाही आश्रय हम लें अर्थात् हम भाग्यके सहारे ही चलें, इस विषयमें तुम मेरी बात सुनो ॥ ४ ॥

अहं शापे समुत्सृष्टे समश्रौषं वचस्तदा ।
मातुरुत्सङ्गमारूढो भयात्पन्नगसत्तमाः ॥ ५ ॥
देवानां पन्नगश्रेष्ठास्तीक्ष्णास्तीक्ष्णा इति प्रभो ।
पितामहमुपागम्य दुःखार्तानां महाद्युते ॥ ६ ॥

हे नागश्रेष्ठो ! (मांके मुंहसे) वह शाप निकलते ही मैं डरकर मांकी गोदीमें जा बैठा । तब हे सर्पश्रेष्ठो और हे महातेजस्वी प्रभो वासुकि ! पितामह ब्रह्माके पास जाकर दुःखी देवोंने जो कहा था कि " स्त्रियां बडी कठोर होती हैं, स्त्रियां बडी कठोर होती हैं, " तब उन देवोंके ये शब्द मैंने सुने थे ॥ ५-६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देवा ऊचुः

का हि लब्ध्वा प्रियान्पुत्राञ्शपेदेवं पितामह।
ऋते कद्रूं तीक्ष्णरूपां देवदेव तवाग्रतः ॥ ७ ॥

देव बोले– " हे देवोंके देव पितामह! आपके सामने ही कठोर स्वभाववाली कद्रूको छोडकर कौनसी दूसरी कोई स्त्री अपने प्रिय पुत्रोंको पाकर ऐसा शाप देगी ॥ ७ ॥

तथेति च वचस्तस्यास्त्वयाप्युक्तं पितामह।
एतदिच्छाम विज्ञातुं कारणं यन्न वारिता ॥ ८ ॥

पर हे पितामह! जो आपने भी " तथास्तु " कहकर उस कद्रूकी बात मान ली और उसे रोका नहीं, इसका क्या कारण है, हम लोग सुनना चाहते हैं " ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

बहवः पन्नगास्तीक्ष्णा भीमवीर्या विषोल्बणाः।
प्रजानां हितकामोऽहं न निवारितवांस्तदा ॥ ९ ॥

ब्रह्मा बोले– " अनेक सर्प तीक्ष्ण, बडे विषैले और भयंकर पराक्रमी हो गये हैं, अतः प्रजाओंकी भलाई चाहनेवाले मैंने उस समय कद्रूको नहीं रोका ॥ ९ ॥

ये दन्दशूकाः क्षुद्राश्च पापचारा विषोल्बणाः।
तेषां विनाशो भविता न तु ये धर्मचारिणः ॥ १० ॥

वास्तवमें जो सब सर्प काटनेके लिए तीक्ष्ण दांतोंसे युक्त, नीच मनोवृत्तिके, पापात्मा और बडे विषैले हैं, सर्पयज्ञमें उन्हींका नाश होगा, पर जो धार्मिक हैं, उनका नाश नहीं होगा ॥ १० ॥

यन्निमित्तं च भविता मोक्षस्तेषां महाभयात्।
पन्नगानां निबोधध्वं तस्मिन्काले तथागते ॥ ११ ॥

उस सर्पयज्ञके समय आने पर जिस उपायसे उस भारी भयसे उन धार्मिक सर्पोंकी मुक्ति होगी, वह उपाय तुम्हें बताता हूं, सुनो ॥ ११ ॥

यायावरकुले धीमान्भविष्यति महानृषिः।
जरत्कारुरिति ख्यातस्तेजस्वी नियतेन्द्रियः ॥ १२ ॥

जरत्कारु नामसे प्रसिद्ध अति बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, तेजस्वी एक महर्षि यायावर वंशमें उत्पन्न होंगे ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य पुत्रो जरत्कारोरुत्पत्स्यति महातपाः ।
आस्तीको नाम यज्ञं स प्रतिषेत्स्यति तं तदा ।
तत्र मोक्ष्यन्ति भुजगा ये भविष्यन्ति धार्मिकाः ॥ १३ ॥

उन जरत्कारुके आस्तीक नामक एक महा तपस्वी पुत्र उत्पन्न होगा, वह ही तब सर्पयज्ञ बन्द करायेगा और इस प्रकार जो धर्मशील सर्प होंगे वे उस सर्पयज्ञसे मुक्त हो जाएंगे" ॥१३॥

देवा ऊचुः

स मुनिप्रवरो देव जरत्कारुर्महातपाः ।
कस्यां पुत्रं महात्मानं जनयिष्यति वीर्यवान् ॥ १४ ॥

देवगण बोले– "हे देव! वह मुनियोंमें श्रेष्ठ, बडे तपस्वी और वीर्यवान् जरत्कारु, किसके गर्भसे उस महात्मा पुत्रको उत्पन्न करेंगे ?" ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

सनामायां सनामा स कन्यायां द्विजसत्तमः ।
अपत्यं वीर्यवान्देवा वीर्यवज्जनयिष्यति ॥ १५ ॥

ब्रह्मा बोले– "वीर्यवान् द्विजश्रेष्ठ जरत्कारु उन्हींके नामवाली जो कन्या होगी, उस अपने ही नामवाली कन्यामें उस वीर्यशाली पुत्रको उत्पन्न करेंगे"॥ १५ ॥

एलापत्र उवाच

एवमस्त्विति तं देवाः पितामहमथाब्रुवन् ।
उक्त्वा चैवं गता देवाः स च देवः पितामहः ॥ १६ ॥

एलापत्र बोला– कि देवोंने पितामहसे "एवमस्तु" कहा और इसप्रकार कहकर देव चले गए और वे पितामह देव भी अपने स्थानको चले गए ॥ १६ ॥

सोऽहमेवं प्रपश्यामि वासुके भगिनीं तव ।
जरत्कारुरिति ख्यातां तां तस्मै प्रतिपादय ॥ १७ ॥
भैक्षवद्भिक्षमाणाय नागानां भयशान्तये ।
ऋषये सुव्रताय त्वमेष मोक्षः श्रुतो मया ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥१३१७॥

मैं यही उपाय देख रहा हूँ । अतः हे वासुकि ! जरत्कारुके नामसे प्रसिद्ध जो तुम्हारी एक बहिन है, उसे तुम नागोंके भयको शान्त करनेके लिए भिक्षाके समान कन्याको मांगनेवाले और उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले उस (जरत्कारु) ऋषिको दे दो । हम सबके (उस यज्ञसे) छूटनेका यही एकमात्र उपाय मैंने सुना है ॥ १७–१८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ १३१७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३५ :

सूत उवाच

एलापत्रस्य तु वचः श्रुत्वा नागा द्विजोत्तम।
सर्वे प्रहृष्टमनसः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ १ ॥

सूत बोले– कि हे द्विजश्रेष्ठ शौनक! एलापत्र नागकी बात सुनकर सभी नाग बहुत प्रसन्न हुए और सभीने "ठीक ठीक" कहकर उसकी पूजा की ॥ १ ॥

ततः प्रभृति तां कन्यां वासुकिः पर्यरक्षत।
जरत्कारुं स्वसारं वै परं हर्षमवाप च ॥ २ ॥

यह सुनकर वासुकिको भी बहुत आनन्द मिला और उस दिनसे जरत्कारु नामकी अपनी बहिनको कुमारी रख छोडा ॥ २ ॥

ततो नातिमहान्कालः समतीत इवाभवत्।
अथ देवासुराः सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम् ॥ ३ ॥

इसके बाद बहुत समय नहीं बीता था कि देवताओं और असुरोंने मिलकर वरुणालय समुद्रका मन्थन किया ॥ ३ ॥

तत्र नेत्रमभून्नागो वासुकिर्बलिनां वरः।
समाप्यैव च तत्कर्म पितामहमुपागमन् ॥ ४ ॥
देवा वासुकिना सार्धं पितामहमथाब्रुवन्।
भगवञ्शापभीतोऽयं वासुकिस्तप्यते भृशम् ॥ ५ ॥

उसमें बलशालियोंमें श्रेष्ठ वासुकिनाग मंथन रस्सी बने। उस कार्यके पूर्ण होने पर देवोंने वासुकिके साथ पितामहके निकट जाकर पितामहसे कहा– "भगवन्! (अपनी माताके) शापसे डरे हुए यह वासुकि बहुत दुःखी हैं ॥ ४-५ ॥

तस्येदं मानसं शल्यं समुद्धर्तुं त्वमर्हसि।
जनन्यां शापजं देव ज्ञातीनां हितकाङ्क्षिणः ॥ ६ ॥

हे देव! अपनी जातिका हित करनेकी इच्छा करनेवाले इसके माताके शापसे उत्पन्न हुए इस मानसिक दुःखको दूर करनेमें आप समर्थ हैं ॥ ६ ॥

हितो ह्ययं सदास्माकं प्रियकारी च नागराट्।
कुरु प्रसादं देवेश शमयास्य मनोज्वरम् ॥ ७ ॥

यह नागोंके राजा वासुकि सदासे हमारे प्रियकारी और हितकारी हैं; हे देवेश! आप इन पर कृपा कीजिए और इनके चित्तकी पीडाको दूर कीजिये ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्मोवाच

मयैवैतद्वितीर्णं वै वचनं मनसामराः ।
एलापत्रेण नागेन यदस्याभिहितं पुरा ॥ ८ ॥

ब्रह्मा बोले– " हे अमरो ! एलापत्र नागने पहिले ही वासुकिसे जो कुछ कही थी, वह मेरी ही मनसे विचारी हुई बात है ॥ ८ ॥

तत्करोत्वेष नागेन्द्रः प्राप्तकालं वचस्तथा ।
विनाशिष्यन्ति ये पापा न तु ये धर्मचारिणः ॥ ९ ॥

समय आनेपर ये नागराज वासुकि उन्हीं वचनोंके अनुसार कार्य करें, जो सर्प सदासे पापाचारी हैं, वे ही सर्पयज्ञमें नष्ट होंगे, पर जो धार्मिक हैं, वे नष्ट नहीं होंगे ॥ ९ ॥

उत्पन्नः स जरत्कारुस्तपस्युग्रे रतो द्विजः ।
तस्यैष भगिनीं काले जरत्कारुं प्रयच्छतु ॥ १० ॥

उस द्विजराज जरत्कारुने भूलोकमें जन्म लिया है और कठोर तपस्यामें मग्न हैं, अतएव यह वासुकि उचित समयपर उनको अपनी जरत्कारु नामकी बहन प्रदान कर दें ॥ १० ॥

यदेलापत्रेण वचस्तदोक्तं भुजगेन ह ।
पन्नगानां हितं देवास्तत्तथा न तदन्यथा ॥ ११ ॥

हे देवगण ! एलापत्र नागने सर्पोंके हितके निमित्त जो कुछ कहा है, वह सब ठीक वैसा ही होगा; उसका कहना कभी मिथ्या होनेवाला नहीं है ॥ ११ ॥

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा स नागेन्द्रः पितामहवचस्तदा ।
सर्पान्बहूञ्जरत्कारौ नित्ययुक्तान्समादधत् ॥ १२ ॥
जरत्कारुर्यदा भार्यामिच्छेद्वरयितुं प्रभुः ।
शीघ्रमेत्य ममाख्येयं तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ १३३० ॥

सूत बोले– कि नागेन्द्र वासुकिने पितामहकी यह बात सुनकर बहुतसे सांपोंको जरत्कारुके पास नियुक्त कर दिया और उनसे यह कह दिया कि जब प्रभु जरत्कारु पत्नीके निमित्त कन्याकी इच्छा करें, तब तुम लोग आकर मुझे तुरन्त समाचार देना; ऐसा करनेहीसे हमारा मंगल हो सकेगा ॥ १२-१३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ १३३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ३६ :

शौनक उवाच

जरत्कारुरिति प्रोक्तं यत्त्वया सूतनन्दन।
इच्छाम्येतदहं तस्य ऋषेः श्रोतुं महात्मनः ॥ १ ॥

शौनक बोले– कि हे सूतपुत्र ! तुमने जो जरत्कारुके बारेमें कहा है उस महात्मा ऋषिका वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

किं कारणं जरत्कारोर्नामैतत्प्रथितं भुवि।
जरत्कारुनिरुक्तं त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

जरत्कारुका यह नाम भूमंडलमें किस कारणसे प्रसिद्ध हुआ, जरत्कारु शब्दकी व्युत्पत्तिको तुम ठीक ठीक कहो ॥ २ ॥

सूत उवाच

जरेति क्षयमाहुर्वै दारुणं कारुसंज्ञितम्।
शरीरं कारु तस्यासीत्तत्स धीमाञ्शनैः शनैः ॥ ३ ॥
क्षपयामास तीव्रेण तपसेत्यत उच्यते।
जरत्कारुरिति ब्रह्मन्वासुकेर्भगिनी तथा ॥ ४ ॥

सूत बोले– कि विद्वान् जरत् शब्दका अर्थ क्षय और कारु शब्दका अर्थ दारुण करते हैं; जरत्कारुका शरीर बहुत दारुण अर्थात् विशेष पुष्ट था; पर उस बुद्धिमान्ने कठोर तपस्यासे धीरे धीरे उस अपने पुष्ट शरीरको सुखा लिया था। हे ब्रह्मन् ! इसलिये वह जरत्कारुके नामसे प्रसिद्ध हुए थे। वासुकिकी बहिनके नामकी व्युत्पत्ति भी वैसी ही है ॥ ३–४ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा शौनकः प्राहसत्तदा।
उग्रश्रवसमामन्त्र्य उपपन्नमिति ब्रुवन् ॥ ५ ॥

सूतपुत्रके इसप्रकार कहनेपर धर्मात्मा शौनक हंसने लगे और उग्रश्रवासे बोले– कि तुमने जो कहा वही ठीक है ॥ ५ ॥

सूत उवाच

अथ कालस्य महतः स मुनिः संशितव्रतः।
तपस्यभिरतो धीमान्न दारानभ्यकाङ्क्षत ॥ ६ ॥

तब बहुत समयके व्यतीत होने भी पर बुद्धिमान् व्रतपरायण वह ऋषि केवल तपहीमें दत्तचित्त रहे और उसने विवाह करना नहीं चाहा ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स ऊर्ध्वरेतास्तपसि प्रसक्तः स्वाध्यायवान्वीतभयक्लमः सन् ।
चचार सर्वां पृथिवीं महात्मा न चापि दारान्मनसाप्यकाङ्क्षत् ॥ ७ ॥

वह महात्मा थकावट और भयसे रहित, स्वाध्यायमें रत, ऊर्ध्वरेता और तपःपरायण होकरके संपूर्ण पृथ्वीमंडलमें घूमे, पर मनसे भी कभी विवाह करने की अभिलाषा नहीं की ॥ ७ ॥

ततोऽपरस्मिन्संप्राप्ते काले कस्मिंश्चिदेव तु ।
परिक्षिदिति विख्यातो राजा कौरववंशभृत् ॥ ८ ॥

इसके बाद थोडा समय बीत जाने और एक समय आनेपर परिक्षित् नामक विख्यात तथा कौरववंशको चलानेवाला राजा हुआ ॥ ८ ॥

यथा पाण्डुर्महाबाहुर्धनुर्धरवरो भुवि ।
बभूव मृगयाशीलः पुरास्य प्रपितामहः ॥ ९ ॥
मृगान्विध्यन्वराहांश्च तरक्षून्महिषांस्तथा ।
अन्यांश्च विविधान्वन्यांश्चचार पृथिवीपतिः ॥ १० ॥

जिसप्रकार पहले उसके परदादा पाण्डु विशालभुजाओं वाला और पृथ्वीपर सभी धनुष-को धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ और शिकार खेलनेका बडा व्यसनी था, उसी प्रकार राजा परिक्षित् भी मृग, सुअर, चीता, भैंसे और दूसरे भांति भांतिके वनैले जन्तुओंको मारते हुए घूमते थे ॥ ९–१० ॥

स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा बाणेन नतपर्वणा ।
पृष्ठतो धनुरादाय ससार गहने वने ॥ ११ ॥

एक बार परिक्षित् झुकी हुई नोकवाले बाणसे एक मृगको बींधकर उसके पीछे पीछे धनुष लेकर दौडते हुए घने वनमें जा घुसे ॥ ११ ॥

यथा हि भगवान्रुद्रो विद्ध्वा यज्ञमृगं दिवि ।
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः पर्यन्वेषं ततस्ततः ॥ १२ ॥

जैसे पहिले भगवान् रुद्र देवलोकमें यज्ञके मृगको बींधकर उसके पीछे पीछे हाथमें धनुष लिये ढूंढनेके निमित्त इधर उधर घूमते फिरे थे, उसी प्रकार वह परिक्षित् भी बींधे हुए मृगके पीछे पीछे दौडते हुए वनमें घूमने लगे ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न हि तेन मृगो विद्धो जीवन्गच्छति वै वनम् ।
पूर्वरूपं तु तन्नूनमासीत्स्वर्गगतिं प्रति ।
परिक्षितस्तस्य राज्ञो विद्धो यन्नष्टवान्मृगः ॥ १३ ॥

परिक्षित्से बींधा हुआ कोई मृग पहिले जीवित रहकर वनमें भाग नहीं सका था, पर चूंकि यह मृग परिक्षित् द्वारा विद्ध होकर गायब हो गया, अतः यह उस राजा परिक्षित्के स्वर्गके प्रति जानेका पूर्वलक्षण था ॥ १३ ॥

दूरं चापहृतस्तेन मृगेण स महीपतिः ।
परिश्रान्तः पिपासार्त आससाद मुनिं वने ॥ १४ ॥
गवां प्रचारेष्वासीनं वत्सानां मुखनिःसृतम् ।
भूयिष्ठमुपयुञ्जानं फेनमापिबतां पयः ॥ १५ ॥

तब उस मृगके द्वारा बहुत दूर ले जाए गए, थके मांदे और प्याससे पीडित राजा परिक्षित्ने उस वनमें गौ चरानेके स्थानमें बैठे हुए तथा दूध पीनेवाले बछडोंके मुंहसे निकलनेवाले फेन—झागको खाकर जीनेवाले एक मुनिको देखा ॥ १४–१५ ॥

तमभिद्रुत्य वेगेन स राजा संशितव्रतम् ।
अपृच्छद्धनुरुद्यम्य तं मुनिं क्षुच्छ्रमान्वितः ॥ १६ ॥

राजा परिक्षित्ने भूख और थकावटसे कातर होकर व्रतमें रत उस मुनिके निकट वेगसे जाकर धनुष उठाकर पूछा ॥ १६ ॥

भो भो ब्रह्मन्नहं राजा परिक्षिदभिमन्युजः ।
मया विद्धो मृगो नष्टः कच्चित्त्वं दृष्टवानसि ॥ १७ ॥

" हे ब्रह्मन् ! मैं अभिमन्युका पुत्र राजा परिक्षित् हूं; मुझसे बींधा हुआ एक मृग अदृश्य हो गया है, क्या आपने उसको देखा है ? " ॥ १७ ॥

स मुनिस्तस्य नोवाच किंचिन्मौनव्रते स्थितः ।
तस्य स्कन्धे मृतं सर्पं क्रुद्धो राजा समासजत् ॥ १८ ॥
धनुष्कोट्या समुत्क्षिप्य स चैनं समुदैक्षत ।
न स किंचिदुवाचैनं शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ १९ ॥

मौनव्रत धारण किये हुए उस मुनिने उस राजाको कुछ उत्तर नहीं दिया; तब राजाने क्रोधवश होकर धनुष्यके अन्तिम भागसे एक मरे हुए सांपको उठाकर उस मुनिके गलेमें डाल दिया । पर उस मुनिने राजाके इस कार्यकी उपेक्षा कर दी और मुनिने उस पर भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा ॥ १८--१९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स राजा क्रोधमुत्सृज्य व्यथितस्तं तथागतम् ।
दृष्ट्वा जगाम नगरमृषिस्त्वास्ते तथैव सः ॥ २० ॥

राजा ऋषिको इस दशामें देखकर क्रोध छोडके कातर हृदयसे राजधानीमें लौट गये, ऋषि वहां उसी दशामें बैठे रहे ॥ २० ॥

तरुणस्तस्य पुत्रोऽभूत्तिग्मतेजा महातपाः ।
शृङ्गी नाम महाक्रोधो दुष्प्रसादो महाव्रतः ॥ २१ ॥

उस ऋषिका शृंगी नामका एक तरुण पुत्र था; वह अति तेजस्वी, महातपस्वी और बडा व्रतनिष्ठ था; उसके क्रोधित होनेपर उसे प्रसन्न करना कठिन था ॥ २१ ॥

स देवं परमीशानं सर्वभूतहिते रतम् ।
ब्रह्माणमुपतस्थे वै काले काले सुसंयतः ।
स तेन समनुज्ञातो ब्रह्मणा गृहमीयिवान् ॥ २२ ॥

वह बीच बीचमें भली प्रकार नियतेन्द्रिय होकर सब प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले पितामह ब्रह्माके निकट जाया करता था (जिस दिन परिक्षित्‌ने ऋषिके गलेमें सांप डाल दिया था, उस दिन) वह पितामहसे आज्ञा पाकर घरको आ रहा था ॥ २२ ॥

सख्योक्तः क्रीडमानेन स तत्र हसता किल ।
संरंभी कोपनोऽतीव विषकल्प ऋषेः सुतः ।
ऋषिपुत्रेण नर्मार्थं कृशेन द्विजसत्तम ॥ २३ ॥

हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ शौनक ! इसी बीच उसके मित्र कृश नामक ऋषि पुत्रने खेल खेलमें हंसते हुए मजाक करनेके लिए उसके पिताका हाल सुनाया। अत्यधिक क्रोधी ऋषि-कुमार शृंगी उसे सुनते ही क्रोधसे परिपूर्ण होकर विषके समान हो गया ॥ २३ ॥

तेजस्विनस्तव पिता तथैव च तपस्विनः ।
शवं स्कन्धेन वहति मा शृङ्गिन्गर्वितो भव ॥ २४ ॥

(कृश बोला)– "हे शृंगिन् ! तुम जैसे तपस्वी और तजस्वी बालकके पिता एक मृतकको गलेमें धारण कर रहे हैं, अतः फिर कभी तुम अहंकार न करना ॥ २४ ॥

व्याहरत्स्वृषिपुत्रेषु मा स्म किंचिद्वचो वदीः ।
अस्मद्विधेषु सिद्धेषु ब्रह्मवित्सु तपस्विषु ॥ २५ ॥

हमारे समान ब्रह्मज्ञानी सिद्ध और तपस्वी ऋषिपुत्रोंके कुछ कहनेपर तुम फिर कभी कुछ वचन मत कहना ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्व ते पुरुषमानित्वं क्व ते वाचस्तथाविधाः।
दर्पजाः पितरं यस्त्वं द्रष्टा शवधरं तथा ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ १३५६ ॥

वह तुम्हारा पुरुषाभिमान कहां चला गया ? और तुम्हारे उस प्रकारके अहंकारके वे वचन कहां चले गये ? अभी घरमें जाकर देखोगे, कि तुम्हारे पिता गलेमें एक मुर्देको धारण किए हुए हैं " ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ १३५६ ॥

: ३७ :

सूत उवाच

एवमुक्तः स तेजस्वी शृङ्गी कोपसमन्वितः।
मृतधारं गुरुं श्रुत्वा पर्यतप्यत मन्युना ॥ १ ॥

सूत बोले– कि कृशके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह तेजस्वी शृंगी पिताके द्वारा मृत सर्पको धारण करनेकी बात सुनकर क्रोधित होकर मनकी पीडासे जलने लगा ॥ १ ॥

स तं कृशमभिप्रेक्ष्य सूनृतां वाचमुत्सृजन्।
अपृच्छत कथं तातः स मेऽद्य मृतधारकः ॥ २ ॥

तब कृशकी ओर देखकर मीठी वाणी बोलते हुए शृंगीने उस कृशसे पूछा कि आज मेरे पिता मृतको धारण करनेवाले कैसे बने ? ॥ २ ॥

कृश उवाच

राज्ञा परिक्षिता तात मृगयां परिधावता।
अवसक्तः पितुस्तेऽद्य मृतः स्कन्धे भुजङ्गमः ॥ ३ ॥

कृश बोला– " हे तात ! आज राजा परिक्षित् मृगयामें अपने शिकारके पीछे दौडते हुए आए और तुम्हारे पिताके गलेमें मरा हुआ सर्प लपेट गये हैं " ॥ ३ ॥

शृङ्ग्युवाच

किं मे पित्रा कृतं तस्य राज्ञोऽनिष्टं दुरात्मनः।
ब्रूहि त्वं कृश तत्त्वेन पश्य मे तपसो बलम् ॥ ४ ॥

शृंगी बोला– " हे कृश ! तुम सच बोलो, मेरे पिताने उस दुरात्मा राजाका कौनसा अनिष्ट किया था। और आज मेरे तपका बल देखो " ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कृश उवाच

स राजा मृगयां यातः परिक्षिदभिमन्युजः ।
ससार मृगमेकाकी विद्ध्वा बाणेन पत्रिणा ॥ ५ ॥

कृश बोला-- "अभिमन्युके पुत्र परिक्षित्ने मृगयाके लिए निकल कर पंखोंवाले एक बाणसे एक मृगको बींधकर अकेले ही उसका पीछा किया ॥ ५ ॥

न चापश्यन्मृगं राजा चरंस्तस्मिन्महावने ।
पितरं ते स दृष्ट्वैव पप्रच्छानभिभाषिणम् ॥ ६ ॥

उस महावनमें घूमते हुए उस राजाने मृगको नहीं देखा, और मौनके कारण न बोलनेवाले तेरे पिताको देखकर उसने पूछा ॥ ६ ॥

तं स्थाणुभूतं तिष्ठन्तं क्षुत्पिपासाश्रमातुरः ।
पुनः पुनर्मृगं नष्टं पप्रच्छ पितरं तव ॥ ७ ॥

भूख, प्यास और थकावटसे व्याकुल होकर राजाने खम्बेके समान होकर बैठे हुए तुम्हारे पितासे भागे हुए मृगके बारेमें बार बार पूछा ॥ ७ ॥

स च मौनव्रतोपेतो नैव तं प्रत्यभाषत ।
तस्य राजा धनुष्कोट्या सर्पं स्कन्धे समासृजत् ॥ ८ ॥

मौनव्रतको धारण किए होनेके कारण तुम्हारे पिताने इस राजाको कुछ उत्तर नहीं दिया। तब राजाने धनुषके अन्तिम भागसे एक मृत सर्पको उनके गलेमें लपेट दिया ॥ ८ ॥

शृङ्गिंस्तव पिताद्यासौ तथैवास्ते यतव्रतः ।
सोऽपि राजा स्वनगरं प्रतियातो गजाह्वयम् ॥ ९ ॥

हे शृंगिन् ! तुम्हारे व्रतशील पिता अब भी उसी दशामें हैं, राजा परिक्षित् भी हस्तिनापुर नामक अपने नगरको चले गए हैं" ॥ ९ ॥

सूत उवाच

श्रुत्वैवमृषिपुत्रस्तु दिवं स्तब्ध्वेव विष्ठितः ।
कोपसंरक्तनयनः प्रज्वलन्निव मन्युना ॥ १० ॥

सूत बोले– यह सुनकर क्रोधसे लाल लाल आंख करके और क्रोधसे जलते हुएके समान ऋषिपुत्र शृंगी मानों द्युलोकको स्तब्ध करते हुए उठकर खडे हो गए ॥ १० ॥

आविष्टः स तु कोपेन शशाप नृपतिं तदा ।
वार्युपस्पृश्य तेजस्वी क्रोधवेगबलात्कृतः ॥ ११ ॥

तब क्रोधके वेगसे बलात् प्रेरित होकर और क्रोधसे आच्छादित होकर उस तेजस्वी शृंगी ऋषिने जल हाथमें लेकर राजाको शाप दिया ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शृङ्ग्युवाच

योऽसौ वृद्धस्य तातस्य तथा कृच्छ्रगतस्य च ।
स्कन्धे मृतमवास्राक्षीत्पन्नगं राजकिल्बिषी ॥ १२ ॥

शृंगी बोला-- राजाओंमें सर्वाधिक पापी जिस राजाने मौनव्रतरूप कठिन तपस्यामें रत मेरे वृद्ध पिताके गलेमें मृत सर्प डाल दिया है ॥ १२ ॥

तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगोत्तमः ।
आशीविषस्तिग्मतेजा मद्वाक्यबलचोदितः ॥ १३ ॥
सप्तरात्रादितो नेता यमस्य सदनं प्रति ।
द्विजानामवमन्तारं कुरूणामयशस्करम् ॥ १४ ॥

उस कुरुओंके वंशको कलंकित करनेवाले और ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले राजाको भयंकर विषधारी तीक्ष्ण तेजवाला तक्षक मेरे वाक्यसे प्रेरित होकर अति क्रोधित होकर आजसे सातवीं रात यमराजके घरकी ओर ले जाएगा ॥ १३-१४ ॥

सूत उवाच

इति शप्त्वा नृपं क्रुद्धः शृङ्गी पितरमभ्ययात् ।
आसीनं गोचरे तस्मिन्वहन्तं शवपन्नगम् ॥ १५ ॥

सूत बोले-- कि क्रोधित हुआ हुआ शृंगी इस प्रकार राजाको शाप देकर मृतसर्पको धारण किए हुए और चरानेके स्थानमें बैठे हुए अपने पिताके पास गया ॥ १५ ॥

स तमालक्ष्य पितरं शृङ्गी स्कन्धगतेन वै ।
शवेन भुजगेनासीद्भूयः क्रोधसमन्वितः ॥ १६ ॥

शृंगी अपने पिताको उस दशामें कंधे पर मरा सर्प धारण किया हुआ देखकर फिर क्रोधयुक्त हो गया ॥ १६ ॥

दुःखाच्चाश्रूणि मुमुचे पितरं चेदमब्रवीत् ।
श्रुत्वेमां धर्षणां तात तव तेन दुरात्मना ॥ १७ ॥
राज्ञा परिक्षिता कोपादशपं तमहं नृपम् ।
यथार्हति स एवोग्रं शापं कुरुकुलाधमः ॥ १८ ॥

और बहुत दुःखी होकर वह आंसू गिराने लगा और पितासे यह बोला– "पिता, उस दुरात्मा राजा परिक्षित्के द्वारा आपका यह अपमान सुनकर मैंने क्रोधसे उस कुरुकुलके लिए कलङ्कीको उसके इस कुकार्यके योग्य ही यह कठोर शाप दिया है ॥ १७–१८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तमेऽहनि तं पापं तक्षकः पन्नगोत्तमः।
वैवस्वतस्य भवनं नेता परमदारुणम् ॥ १९ ॥

कि सातवें दिन सर्पश्रेष्ठ तक्षक उस पापीको महाभयंकर यमके घर पहुंचायेंगे ॥ १९ ॥

तमब्रवीत्पिता ब्रह्मंस्तथा कोपसमन्वितम्।
न मे प्रियं कृतं तात नैष धर्मस्तपस्विनाम् ॥ २० ॥

हे ब्रह्मन् ! तब उसके पिता शमीक ऋषि उस प्रकार क्रोधसे युक्त उस शृंगीसे बोले— "हे तात ! तुमने मेरा प्रिय कार्य नहीं किया, तपस्वियोंका यह धर्म नहीं है॥ २० ॥

वयं तस्य नरेन्द्रस्य विषये निवसामहे।
न्यायतो रक्षितास्तेन तस्य पापं न रोचये ॥ २१ ॥

हम उस राजाके राज्यमें बसते हैं और वह भी न्यायानुसार हमारी रक्षा कर रहे हैं, इसलिये उसका पाप ध्यानमें लाने योग्य नहीं है ॥ २१ ॥

सर्वथा वर्तमानस्य राज्ञो ह्यस्मद्विधैः सदा।
क्षन्तव्यं पुत्र धर्मो हि हतो हन्ति न संशयः ॥ २२ ॥

हे पुत्र ! न्यायमें रहनेवाले राजाके दोष करने पर भी उनको क्षमा करना हमारा कर्तव्य है, अन्यथा धर्मको नष्ट करनेसे धर्म भी हमको निस्सन्देह नष्ट कर देता है ॥ २२ ॥

यदि राजा न रक्षेत पीडा वै नः परा भवेत्।
न शक्नुयाम चरितुं धर्मं पुत्र यथासुखम् ॥ २३ ॥

यदि राजा हमारी रक्षा न करे, तो हमें भारी दुःख प्राप्त होंगे और तब हे पुत्र ! हम सुखसे धर्मका अनुष्ठान भी नहीं कर सकेंगे ॥ २३ ॥

रक्ष्यमाणा वयं तात राजभिः शास्त्रदृष्टिभिः।
चरामो विपुलं धर्मं तेषां चांशोऽस्ति धर्मतः ॥ २४ ॥

हे पुत्र ! शास्त्रोंका अध्ययन करके तदनुसार आचरण करनेवाले राजाओंसे भली प्रकार रक्षित होकर हम बहुत धर्मार्जन किया करते हैं, अतः राजा धर्मतः हमारे द्वारा किए गए धर्ममें उनका भी अंश होता है ॥ २४ ॥

परिक्षित्तु विशेषेण यथाऽस्य प्रपितामहः।
रक्षत्यस्मान्यथा राज्ञा रक्षितव्याः प्रजास्तथा ॥ २५ ॥

विशेष कर जिस प्रकारसे प्रजाओंका राजाको पालन करना चाहिए, परिक्षित् भी उसी प्रकारसे अपने प्रपितामह पाण्डुराजाके समान हमारी रक्षा कर रहे हैं ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेनेह क्षुधितेनाद्य श्रान्तेन च तपस्विना।
अजानता व्रतमिदं कृतमेतदसंशयम् ॥ २६ ॥

उस भूखे और थके हुए तपस्वी राजाने मेरे मौनव्रतको न जानकर ही निस्सन्देह ऐसा किया है ॥ २६ ॥

तस्मादिदं त्वया बाल्यात्सहसा दुष्कृतं कृतम्।
न ह्यर्हति नृपः शापमस्मत्तः पुत्र सर्वथा ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ १३८३ ॥

अतः हे पुत्र ! तुमने बालस्वभावसे ही अचानक ऐसा कुकर्म किया है, राजाको शाप देना हमारे लिये किसी प्रकार योग्य नहीं है " ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ १३८३ ॥

: ३८ :

शृङ्ग्युवाच

यद्येतत्साहसं तात यदि वा दुष्कृतं कृतम्।
प्रियं वाप्यप्रियं वा ते वागुक्ता न मृषा मया ॥ १ ॥

शृंगी बोला– " हे पिता ! यदि परिक्षित्को शाप देना मेरा साहस हो या उसे शाप देकर मैंने कुकर्म ही किया हो और वह मेरा कर्म आपको प्रिय वा अप्रिय जो कुछ भी हो, पर मेरी कही हुई बात व्यर्थ नहीं होगी ॥ १ ॥

नैवान्यथेदं भविता पितरेष ब्रवीमि ते।
नाहं मृषा प्रब्रवीमि स्वैरेष्वपि कुतः शपन् ॥ २ ॥

हे तात ! मैं आपसे निश्चित कहता हूं कि मेरी वह बात कभी भी झूठी न होगी, मेरे शापका व्यर्थ होना तो दूर रहा, मैं हंसीमें भी कभी झूठ नहीं बोलता " ॥ २ ॥

शमीक उवाच

जानाम्युग्रप्रभावं त्वां पुत्र सत्यगिरं तथा।
नानृतं ह्युक्तपूर्वं ते नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ ३ ॥

शमीक बोले– " पुत्र ! अत्यन्त प्रभावशाली और सदा सत्यवचन बोलनेवाले तुमको मैं अच्छी तरह जानता हूँ, पहले कभी तुम झूठ नहीं बोले हो और तुम्हारा दिया हुआ यह शाप भी मिथ्या नहीं होगा ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पित्रा पुत्रो वयःस्थोऽपि सततं वाच्य एव तु ।
यथा स्याद्गुणसंयुक्तः प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ४ ॥

पुत्रके वय प्राप्त होनेपर भी सदा उसको उपदेश देना पिताका कर्तव्य है, ताकि वह पुत्र गुणवान् हो और महान् यश प्राप्त करे ॥ ४ ॥

किं पुनर्बाल एव त्वं तपसा भावितः प्रभो ।
वर्धते च प्रभवतां कोपोऽतीव महात्मनाम् ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! फिर तुम तो बालक ही हो और सदा तप ही में रत रहते हो, पर महात्माओंके भी प्रभाव बढनेके साथ साथ क्रोध भी बहुत बढता जाता है ॥ ५ ॥

सोऽहं पश्यामि वक्तव्यं त्वयि धर्मभृतां वर ।
पुत्रत्वं बालतां चैव तवावेक्ष्य च साहसम् ॥ ६ ॥

अतः हे धार्मिकोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारा पुत्रत्व, बालस्वभाव और साहस देखकर मुझे अनुभव होता है, कि मुझे तुमको उपदेश देना होगा ॥ ६ ॥

स त्वं शमयुतो भूत्वा वन्यमाहारमाहरन् ।
चर क्रोधमिमं त्यक्त्वा नैवं धर्मं प्रहास्यसि ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! तुम यह क्रोध छोडकर, शमयुक्त होकर वनके फल मूल खाकर तप किया करो, इस प्रकार धर्मसे पतित न होगे ॥ ७ ॥

क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःखसंचितम् ।
ततो धर्मविहीनानां गतिरिष्टा न विद्यते ॥ ८ ॥

क्योंकि यतियों– मुनियोंके द्वारा बहुत दुःख सहन करके संचित किए गए धर्मको क्रोध हर ले जाता है अर्थात् बहुत दुःख उठाकर संचित किया गया धर्म क्रोधके कारण क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है और तब धर्मविहीनोंको अभिलषित सद्गति नहीं मिलती ॥ ८ ॥

शम एव यतीनां हि क्षमिणां सिद्धिकारकः ।
क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ॥ ९ ॥

क्षमाशील यतियोंकी क्षमा ही उन्हें सिद्धि प्राप्त करानेवाली होती है। क्षमाशीलोंके लिए ही यह लोक है और क्षमाशीलोंके लिए ही परलोक है ॥ ९ ॥

तस्माच्चरेथाः सततं क्षमाशीलो जितेन्द्रियः ।
क्षमया प्राप्स्यसे लोकान्ब्रह्मणः समनन्तरान् ॥ १० ॥

इसलिए तुम सदा क्षमाशील और जितेन्द्रिय होकर व्रतका आचरण करते रहो। क्षमाको आश्रय करके ब्रह्मके समान लोकोंको प्राप्त करोगे ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मया तु शममास्थाय यच्छक्यं कर्तुमद्य वै।
तत्करिष्येऽद्य तातहं प्रेषयिष्ये नृपाय वै ॥ ११ ॥

तात ! मैं शान्तिका आश्रय करके आज जितना संभव हो सके सब काम करूंगा। राजाको आज यह बात अवश्य ही कहला भेजूंगा ॥ ११ ॥

मम पुत्रेण शप्तोऽसि बालेनाकृतबुद्धिना।
ममेमां धर्षणां त्वत्तः प्रेक्ष्य राजन्नमर्षिणा ॥ १२ ॥

कि "हे राजन् ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ मेरा यह अपमान देखकर असहिष्णु, अत्यन्त क्रोधी तथा अल्पबुद्धिवाले बालक मेरे पुत्रने तुमको शाप दिया है" ॥ १२ ॥

सूत उवाच

एवमादिश्य शिष्यं स प्रेषयामास सुव्रतः।
परिक्षिते नृपतये दयापन्नो महातपाः ॥ १३ ॥
संदिश्य कुशलप्रश्नं कार्यवृत्तान्तमेव च।
शिष्यं गौरमुखं नाम शीलवन्तं समाहितम् ॥ १४ ॥

सूत बोले-- कि उत्तम कर्म करनेवाले, महातपस्वी, दयालु शमीक ऋषिने गौरमुख नामक अपने उत्तम शील स्वभाववाले और सावधान चित्तवाले शिष्यको राजाका कुशल समाचार पूछकर उससे सब समाचार कह सुनानेके लिए राजा परिक्षित्के पास भेजा ॥ १३-१४ ॥

सोऽभिगम्य ततः शीघ्रं नरेन्द्रं कुरुवर्धनम्।
विवेश भवनं राज्ञः पूर्वं द्वाःस्थैर्निवेदितः ॥ १५ ॥

गौरमुख शीघ्र ही कुरुकुलके बढानेवाले राजा परिक्षित्के पास जाकर द्वारपालोंसे पहले सूचना भिजवाकर फिर राजाके भवनमें प्रविष्ट हुआ ॥ १५ ॥

पूजितश्च नरेन्द्रेण द्विजो गौरमुखस्ततः।
आचख्यौ परिविश्रान्तो राज्ञे सर्वमशेषतः।
शमीकवचनं घोरं यथोक्तं मन्त्रिसंनिधौ ॥ १६ ॥

इसके बाद राजाके द्वारा पूजित होकर तथा थकावट दूर करके ब्राह्मण गौरमुखने मन्त्रियोंके सामने ही राजासे शमीक मुनिके कहे हुए कठोर समाचारको आदिसे अन्ततक कह सुनाया ॥ १६ ॥

शमीको नाम राजेन्द्र विषये वर्तते तव।
ऋषिः परमधर्मात्मा दान्तः शान्तो महातपाः ॥ १७ ॥

कि "हे राजेन्द्र ! आपके राज्यमें परम धार्मिक, शान्त, दान्त, महातपस्वी, शमीक नामक एक महर्षि रहते हैं ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य त्वया नरव्याघ्र सर्पः प्राणैर्वियोजितः ।
अवसक्तो धनुष्कोट्या स्कन्धे भरतसत्तम ।
क्षान्तवांस्तव तत्कर्म पुत्रस्तस्य न चक्षमे ॥ १८ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ नरसिंह राजन् ! आपने धनुषकी नोकसे एक प्राणसे रहित सर्पको उठाकर उनके गलेमें लपेट दिया था, शमीक मुनिने तो आपके उस कार्यको (क्रोधित न हो करके) क्षमा कर दिया था, पर उनके पुत्रने क्षमा नहीं किया ॥ १८ ॥

तेन शप्तोऽसि राजेन्द्र पितुरज्ञातमद्य वै ।
तक्षकः सप्तरात्रेण मृत्युस्ते वै भविष्यति ॥ १९ ॥

उसने आज पिताके अनजाने ही आपको यह शाप दिया है, कि आजसे सातवीं रात तक्षक सर्प आपके लिए मृत्यु सिद्ध होगा, अर्थात् वह आकर आपको काट लेगा ॥ १९ ॥

तत्र रक्षां कुरुष्वेति पुनः पुनरथाब्रवीत् ।
तदन्यथा न शक्यं च कर्तुं केनचिदप्युत ॥ २० ॥

शमीक ऋषिने आपसे बार बार कहा है कि आप अपनी उससे रक्षा करें, क्योंकि वह शाप किसीके द्वारा भी व्यर्थ नहीं किया जा सकता ॥ २० ॥

न हि शक्नोति संयन्तुं पुत्रं कोपसमन्वितम् ।
ततोऽहं प्रेषितस्तेन तव राजन्हितार्थिना ॥ २१ ॥

ऋषि भी किसी प्रकारसे क्रोधयुक्त पुत्रको शान्त न कर सके, इस कारण हे राजन् ! आपका हित चाहनेवाले शमीक ऋषि द्वारा मैं भेजा गया हूँ " ॥ २१ ॥

इति श्रुत्वा वचो घोरं स राजा कुरुनन्दनः ।
पर्यतप्यत तत्पापं कृत्वा राजा महातपाः ॥ २२ ॥

कुरुवंशमें उत्पन्न महातपस्वी वह राजा परिक्षित् उस कठोर बातको सुनकर और यह जान करके कि मैंने पापकार्य किया है, बहुत दुःखी हुए ॥ २२ ॥

तं च मौनव्रतधरं श्रुत्वा मुनिवरं तदा ।
भूय एवाभवद्राजा शोकसंतप्तमानसः ॥ २३ ॥

और उस मुनिश्रेष्ठको मौनव्रतको धारण करनेवाला सुनकर राजा और ज्यादा शोकसे संतप्त हृदयवाला हो गया अर्थात् जब राजाने यह जाना कि मौनव्रतको पालनेके कारण मुनिने राजाकी बातका उत्तर नहीं दिया, तो राजाको अपने किए पर और ज्यादा दुःख हुआ ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनुक्रोशात्मतां तस्य शमीकस्यावधार्य तु।
पर्यतप्यत भूयोऽपि कृत्वा तत्किल्बिषं मुनेः ॥ २४ ॥

और यह सोचते हुए कि ऐसे दया-स्वभावी शमीक मुनिका मैंने अपमान किया है, पूर्वके किये पापको स्मरण कर बार बार दुःखी होने लगे ॥ २४ ॥

न हि मृत्युं तथा राजा श्रुत्वा वै सोऽन्वतप्यत।
अशोचदमरप्रख्यो तथा कृत्वेह कर्म तत् ॥ २५ ॥

देव-समान राजा परिक्षित् क्षमाशील ब्राह्मणके अपमानकी याद कर जैसे दुःखी हुए वैसे अपनी मृत्युके समाचार सुनने पर भी नहीं हुए ॥ २५ ॥

ततस्तं प्रेषयामास राजा गौरमुखं तदा।
भूयः प्रसादं भगवान्करोत्विति ममेति वै ॥ २६ ॥

अनन्तर यह प्रार्थना करके कि भगवान् शमीकमुनि फिर मुझ पर प्रसन्न होवें, राजाने गौरमुखको विदा किया ॥ २६ ॥

तस्मिंश्च गतमात्रे वै राजा गौरमुखे तदा।
मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास सह संविग्नमानसः ॥ २७ ॥

तब उस गौरमुखके चले जाने पर राजा शोकसे पीडित मनवाला होकर उसी क्षण मंत्रियोंसे मन्त्रणा करने लगा ॥ २७ ॥

निश्चित्य मन्त्रिभिश्चैव सहितो मन्त्रतत्त्ववित्।
प्रासादं कारयामास एकस्तम्भं सुरक्षितम्। ॥ २८ ॥

स्वयं मन्त्रतत्त्वोंको जाननेवाला होकरके भी उसने मन्त्रियोंसे विचार कर अच्छी प्रकारसे सुरक्षित एकस्तम्भवाला एक महल बनवाया ॥ २८ ॥

रक्षां च विदधे तत्र भिषजश्चौषधानि च।
ब्राह्मणान्सिद्धमन्त्रांश्च सर्वतो वै न्यवेशयत् ॥ २९ ॥

तथा रक्षाके निमित्त चिकित्सक और दवायें पासमें रखीं और मन्त्रमें सिद्ध ब्राह्मणोंको शरीरकी रक्षाके निमित्त चारों ओर नियुक्त किया ॥ २९ ॥

राजकार्याणि तत्रस्थः सर्वाण्येवाकरोच्च सः।
मन्त्रिभिः सह धर्मज्ञः समन्तात्परिरक्षितः ॥ ३० ॥

परम धार्मिक वह परिक्षित् मन्त्रियोंसे चारों ओरसे सुरक्षित होकर वहीं रहकर सब राजकार्य करने लगा ॥ ३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्राप्ते तु दिवसे तस्मिन्सप्तमे द्विजसत्तम ।
काश्यपोऽभ्यागमाद्विद्वांस्तं राजानं चिकित्सितुम् ॥ ३१ ॥

हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ शौनक ! उस सातवें दिनके आ पहुंचने पर विद्वान् कश्यप उस राजाकी चिकित्सा करनेको चले ॥ ३१ ॥

श्रुतं हि तेन तदभूदद्य तं राजसत्तमम् ।
तक्षकः पन्नगश्रेष्ठो नेष्यते यमसादनम् ॥ ३२ ॥

उन्होंने सुना था, कि आज सर्पश्रेष्ठ तक्षक राजाओंमें श्रेष्ठ परिक्षित्को यमराजके घर पहुंचावेगा ॥ ३२ ॥

तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण करिष्येऽहमपज्वरम् ।
तत्र मेऽर्थश्च धर्मश्च भवितेति विचिन्तयन् ॥ ३३ ॥

इससे उन्होंने मनही मनमें निश्चय किया था, कि सर्पनाथके द्वारा उस राजाको काटने पर मैं विषसे मुक्तकर राजाको आरोग्य प्रदान करूंगा, ऐसा करनेसे मुझे अर्थ और धर्म दोनों प्राप्त होंगे ॥ ३३ ॥

तं ददर्श स नागेन्द्रस्तक्षकः काश्यपं पथि ।
गच्छन्तमेकमनसं द्विजो भूत्वा वयोऽतिगः ॥ ३४ ॥
तमब्रवीत्पन्नगेन्द्रः काश्यपं मुनिपुङ्गवम् ।
क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति ॥ ३५ ॥

यह सोचते हुए एकचित्त होकर जाते हुए काश्यपको रास्तेमें नागराज तक्षकने देखा और एक बूढे ब्राह्मणका वेश धरकर वह सर्पराज उस मुनिश्रेष्ठ काश्यपसे बोला– " हे मुनिश्रेष्ठ ! आप शीघ्रतासे कहां जा रहे हैं ? आप कौनसा कार्य करना चाहते हैं ? " ३४–३५ ॥

काश्यप उवाच

नृपं कुरुकुलोत्पन्नं परिक्षितमरिंदमम् ।
तक्षकः पन्नगश्रेष्ठस्तेजसाद्य प्रधक्ष्यति ॥ ३६ ॥

काश्यप बोले– " आज सर्पनाथ तक्षक कुरुकुलमें उत्पन्न शत्रुनाशी राजा परिक्षित्को विषसे जलावेगा ॥ ३६ ॥

तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण तेनाग्निसमतेजसा ।
पाण्डवानां कुलकरं राजानममितौजसम् ।
गच्छामि सौम्य त्वरितं सद्यः कर्तुमपज्वरम् ॥ ३७ ॥

हे सौम्य ! अग्निके समान तेजस्वी उस सर्पराज द्वारा पाण्डवकुलके तिलक महाबलशाली राजाके काटे जाने पर शीघ्र ही इसे आरोग्य प्रदान करनेके लिए मैं शीघ्र जा रहा हूं " ॥३७॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तक्षक उवाच

अहं स तक्षको ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम्।
निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम् ॥ ३८ ॥

तक्षक बोला– "हे ब्रह्मन्! मैं ही वह तक्षक हूं, तथा मैं ही परिक्षित्को भस्म करूंगा; मेरे काटे हुए की तुम चिकित्सा नहीं कर सकोगे, अतः तुम लौट जाओ।" ॥ ३८ ॥

काश्यप उवाच

अहं तं नृपतिं नाग त्वया दष्टमपज्वरम्।
करिष्य इति मे बुद्धिर्विद्याबलमुपाश्रितः ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ १४२२ ॥

काश्यप बोले– "हे नाग! यह मुझे निश्चय है कि तुम्हारे द्वारा काटे गए राजाको मैं अपने विद्याके बलसे विषसे अवश्य बचा सकूंगा" ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ ॥ १४२२ ॥

: ३९ :

तक्षक उवाच

दष्टं यदि मयेह त्वं शक्तः किंचिच्चिकित्सितुम्।
ततो वृक्षं मया दष्टमिमं जीवय काश्यप ॥ १ ॥

तक्षक बोला– "हे काश्यप! यदि तुम मेरे काटे हुए प्राणीकी कुछ भी चिकित्सा करनेमें समर्थ हो, तो मेरे द्वारा काटे हुए इस वृक्षको जीवित कर दो ॥ १ ॥

परं मन्त्रबलं यत्ते तद्दर्शय यतस्व च।
न्यग्रोधमेनं धक्ष्यामि पश्यतस्ते द्विजोत्तम ॥ २ ॥

हे द्विजोंमें श्रेष्ठ काश्यप! तुम्हारे देखते देखते मैं इस बरगदके पेडको जलाता हूँ, तुम प्रयत्न करो और जो तुम्हारे मंत्रका बल है, उसे दिखाओ" ॥ २ ॥

काश्यप उवाच

दश नागेन्द्र वृक्षं त्वं यमेनमभिमन्यसे।
अहमेनं त्वया दष्टं जीवयिष्ये भुजङ्गम ॥ ३ ॥

काश्यप बोले– "हे नागनाथ! यदि तुम ऐसा अभिमान करते हो, तो इस वृक्षको काटो, और तुम्हारे द्वारा काटे हुए इसे मैं फिर जीवित अर्थात् हराभरा कर दूंगा" ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

एवमुक्तः स नागेन्द्रः काश्यपेन महात्मना ।
अदशद्वृक्षमभ्येत्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तमः ॥ ४ ॥

सूत बोले– कि महात्मा काश्यपके यह कहनेपर सांपोंमें श्रेष्ठ नागराज तक्षकने पास जाकर उस बरगदके वृक्षको काटा ॥ ४ ॥

स वृक्षस्तेन दष्टः सन्सद्य एव महाद्युते ।
आशीविषविषोपेतः प्रजज्वाल समन्ततः ॥ ५ ॥

हे महातेजस्वी शौनक! उसके सर्पके काटते ही वह वृक्ष उस भयंकर सर्पविषके कारण चारों ओरसे जलने लगा ॥ ५ ॥

तं दग्ध्वा स नगं नागः काश्यपं पुनरब्रवीत् ।
कुरु यत्नं द्विजश्रेष्ठ जीवयैनं वनस्पतिम् ॥ ६ ॥

वह नाग तक्षक उस वृक्षको भस्म करके काश्यपसे फिर बोला, "हे द्विजराज! तुम यत्न करो और इस वृक्षको फिर जिला दो" ॥ ६ ॥

भस्मीभूतं ततो वृक्षं पन्नगेन्द्रस्य तेजसा ।
भस्म सर्वं समाहृत्य काश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

तब सर्पराज तक्षकके तेजसे भस्म हुए वृक्षकी सब भस्मको लेकरके कश्यपने यह वाक्य कहा ॥ ७ ॥

विद्याबलं पन्नगेन्द्र पश्य मेऽस्मिन्वनस्पतौ ।
अहं संजीवयाम्येनं पश्यतस्ते भुजङ्गम ॥ ८ ॥

"हे सर्पनाथ! आज इस वृक्षपर मेरी विद्याका बल देखो, हे नाग! तुम्हारे देखते देखते ही मैं इसको जिलाता हूं" ॥ ८ ॥

ततः स भगवान्विद्वान्काश्यपो द्विजसत्तमः ।
भस्मराशीकृतं वृक्षं विद्यया समजीवयत् ॥ ९ ॥

तब उस द्विजश्रेष्ठ विद्वान् भगवान् काश्यपने उस भस्मके ढेर हुए हुए वृक्षको विद्याके बलसे जीवित कर दिया ॥ ९ ॥

अङ्कुरं तं स कृतवांस्ततः पर्णद्वयान्वितम् ।
पलाशिनं शाखिनं च तथा विटपिनं पुनः ॥ १० ॥

सर्व प्रथम काश्यपने उस भस्मसे अंकुर पैदा किया फिर उस अंकुरको दो पत्तोंसे युक्त किया, फिर उसे बडी डाली, तथा फिर छोटी छोटी डालियोंसे युक्त करके अन्तमें उसे एक महावृक्ष बना दिया ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं दृष्ट्वा जीवितं वृक्षं काश्यपेन महात्मना।
उवाच तक्षको ब्रह्मन्नेतदत्यद्भुतं त्वयि ॥ ११ ॥
विप्रेन्द्र यद्विषं हन्या मम वा मद्विधस्य वा।
कं त्वमर्थमभिप्रेप्सुर्यासि तत्र तपोधन ॥ १२ ॥

महात्मा काश्यपके द्वारा वृक्षको फिर हराभरा किया हुआ देखकर तक्षक बोला, "हे ब्रह्मन्! यह तुम्हारे लिये बड़े आश्चर्यका विषय नहीं है कि तुम मेरे अथवा मेरे सदृश किसी दूसरे सर्पके तेज विषको दूर कर देते हो, पर हे तपोधन! तुम राजाके पास किस चीजको पानेकी इच्छासे जा रहे हो ॥ ११-१२ ॥

यत्तेऽभिलषितं प्राप्तुं फलं तस्मान्नृपोत्तमात्।
अहमेव प्रदास्यामि तत्ते यद्यपि दुर्लभम् ॥ १३ ॥

तुम उस राजा श्रेष्ठसे जो वस्तु पानेकी अभिलाषा करते हो वह यद्यपि दुर्लभ भी हो तो भी मैं तुम्हें दे दूंगा ॥ १३ ॥

विप्रशापाभिभूते च क्षीणायुषि नराधिपे।
यतमानस्य ते विप्र सिद्धिः संशयिता भवेत् ॥ १४ ॥

हे ब्राह्मण काश्यप! ब्राह्मणके शापसे ग्रस्त होनेके कारण जिसकी आयु समाप्त हो चुकी है, ऐसे राजाको जीवित करनेके कार्यमें प्रयत्न करनेवाले तुम्हारी सिद्धि सन्देह युक्त ही रहेगी अर्थात् उसे जीवित करनेमें तुम सफल हो सकोगे इसमें सन्देह ही है ॥ १४ ॥

ततो यशः प्रदीप्तं ते त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
विरश्मिरिव घर्मांशुरन्तर्धानमितो व्रजेत् ॥ १५ ॥

(अतएव यदि तुम उसे स्वस्थ न कर सके) तो तुम्हारा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, तुम्हारा तेजस्वी यश इस संसारमें किरणोंसे रहित सूर्यकी भांति नष्ट हो जायेगा" ॥ १५ ॥

काश्यप उवाच

धनार्थी यास्यहं तत्र तन्मे दित्स भुजङ्गम।
ततोऽहं विनिवर्तिष्ये गृहायोरगसत्तम ॥ १६ ॥

काश्यप बोले-- "हे सर्पराज! मैं धनकी आशासे वहां जा रहा हूं, यदि तुम वह धन मुझे दो; तो हे सर्पश्रेष्ठ! मैं अपने घर लौट जाऊंगा ॥ १६ ॥

तक्षक उवाच

यावद्धनं प्रार्थयसे तस्माद्राज्ञस्ततोऽधिकम्।
अहं तेऽद्य प्रदास्यामि निवर्तस्व द्विजोत्तम ॥ १७ ॥

तक्षक बोला - "हे द्विजोत्तम! तुमने उस राजासे जितना धन पानेकी आशा की है, उससे भी अधिक धन मैं आज तुमको दे दूंगा, अतः तुम अपने घर लौट जाओ ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

तक्षकस्य वचः श्रुत्वा काश्यपो द्विजसत्तमः ।
प्रदध्यौ सुमहातेजा राजानं प्रति बुद्धिमान् ॥ १८ ॥

सूत बोले– बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठ अति तेजस्वी काश्यपमुनि तक्षककी बात सुनकर राजा परिक्षित्के बारेमें विचार करने लगे ॥ १८ ॥

दिव्यज्ञानः स तेजस्वी ज्ञात्वा तं नृपतिं तदा ।
क्षीणायुषं पाण्डवेयमपावर्तत काश्यपः
लब्ध्वा वित्तं मुनिवरस्तक्षकाद्यावदीप्सितम् ॥ १९ ॥

तथा दिव्यज्ञानके प्रभावसे यह देखकर, कि पाण्डवपुत्र राजा परिक्षित्की आयु क्षीण हो चुकी है, मुनिश्रेष्ठ तथा तेजस्वी वह काश्यप तक्षकसे यथेच्छ धन पाकर वापस लौट गये ॥ १९ ॥

निवृत्ते काश्यपे तस्मिन्समयेन महात्मनि ।
जगाम तक्षकस्तूर्णं नगरं नागसाह्वयम् ॥ २० ॥

महात्मा काश्यपके अपनी शर्तके अनुसार लौट जानेपर तक्षक तुरन्त हस्तिनापुर नगरको गया ॥ २० ॥

अथ शुश्राव गच्छन्स तक्षको जगतीपतिम् ।
मन्त्रागदैर्विषहरै रक्ष्यमाणं प्रयत्नतः ॥ २१ ॥

और जाते हुए पथमें उस तक्षकने सुना, कि राजा विष हरनेवाली दवा और मन्त्रोंसे बडे यत्नसे अपनी सुरक्षा कर रहे हैं ॥ २१ ॥

स चिन्तयामास तदा मायायोगेन पार्थिवः ।
मया वञ्चयितव्योऽसौ क उपायो भवेदिति ॥ २२ ॥

तब वह सोचने लगा, कि मुझे मायाके बलसे ही इस राजाको ठगना पडेगा, उसके लिए मैं कौनसा उपाय करूं ॥ २२ ॥

ततस्तापसरूपेण प्राहिणोत्स भुजङ्गमान् ।
फलपत्रोदकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः ॥ २३ ॥

तब उस तक्षक-सर्पने अपने साथी नागोंको तपस्वीके रूपमें तथा फल, पत्र और उदक लेकर राजाके पास भेजा ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तक्षक उवाच

गच्छध्वं यूयमव्यग्रा राजानं कार्यवत्तया।
फलपत्रोदकं नाम प्रतिग्राहयितुं नृपम् ॥ २४ ॥

तक्षक बोला– " बिना व्याकुल होकर तुम किसी कामके बहाने उस राजाको फल, पत्र और जल देनेके लिए जाओ " ॥ २४ ॥

सूत उवाच

ते तक्षकसमादिष्टास्तथा चक्रुर्भुजङ्गमाः।
उपनिन्युस्तथा राज्ञे दर्भानापः फलानि च ॥ २५ ॥

सूत बोले– उन सर्पोंने तक्षककी आज्ञानुसार वैसा ही किया और राजाको दर्भ, और फल लेजाकर दिया ॥ २५ ॥

तच्च सर्वं स राजेन्द्रः प्रतिजग्राह वीर्यवान्।
कृत्वा च तेषां कार्याणि गम्यतामित्युवाच तान् ॥ २६ ॥

वीर्यशाली राजा परिक्षित्ने वह सब ले लिया और उनका कार्य पूराकर " अब आप जाइए " ऐसा उनसे कहा ॥ २६ ॥

गतेषु तेषु नागेषु तापसच्छद्मरूपिषु।
अमात्यान्सुहृदश्चैव प्रोवाच स नराधिपः ॥ २७ ॥

तपस्वियोंके छद्मरूपको धारण किए हुए उन नागोंके चले जानेपर राजाने अपने मन्त्रियों और मित्रोंसे कहा ॥ २७ ॥

भक्षयन्तु भवन्तो वै स्वादूनीमानि सर्वशः।
तापसैरुपनीतानि फलानि सहिता मया ॥ २८ ॥

कि तुम मेरे साथ तपस्वियोंके द्वारा लाये गए सब तरहसे स्वादिष्ट इन फलोंको खाओ ॥ २८ ॥

ततो राजा ससचिवः फलान्यादातुमैच्छत।
यद्गृहीतं फलं राज्ञा तत्र कृमिरभूदणुः।
ह्रस्वकः कृष्णनयनस्ताम्रो वर्णेन शौनक ॥ २९ ॥

तब हे शौनक! राजाने मन्त्रियोंके सहित बैठकर वे फल खाने चाहे, राजाने जो फल उठाया उसमें एक अणुके समान छोटा, काले नेत्रवाला, ताम्बेके रङ्गका कीडा बैठा हुआ था ॥ २९ ॥

स तं गृह्य नृपश्रेष्ठः सचिवानिदमब्रवीत्।
अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥ ३० ॥

राजश्रेष्ठ परिक्षित् उस कीडेको पकडकर मन्त्रियोंसे यह बोला– कि सूर्यदेव अस्त होने जा रहे हैं, अतः आज अब मुझे विषका भय नहीं रहा ॥ ३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्यवागस्तु स मुनिः कृमिको मां दशत्वयम् ।
तक्षको नाम भूत्वा वै तथा परिहृतं भवेत् ॥ ३१ ॥

अतः यदि यह कीट तक्षक होकर मुझे काट ले, तभी उस मुनिकी बात भी सच ठहरेगी और शाप भी सच होगा ॥ ३१ ॥

ते चैनमन्ववर्तन्त मन्त्रिणः कालचोदिताः ।
एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संन्निवेश्य ह ।
कृमिकं प्राहसत्तूर्णं मुमूर्षुर्नष्टचेतनः ॥ ३२ ॥

कालसे प्रेरित हुए हुए उन मंत्रियोंने भी राजाकी इस बातका समर्थन किया । इधर मरनेकी इच्छावाला और नष्ट बुद्धिवाला राजा परिक्षित् भी यह कहकर और उस कीडेको गलेमें डालकर बार बार हंसने लगा ॥ ३२ ॥

हसन्नेव च भोगेन तक्षकेणाभिवेष्टितः ।
तस्मात्फलाद्विनिष्क्रम्य यत्तद्राज्ञे निवेदितम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ १४५५ ॥

इस प्रकार राजा हंस ही रहा था कि तपस्वियोंने जो फल राजाको दिया था उस फलमेंसे निकलकर तक्षक नागने अपने फनसे राजाको लपेट लिया ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उन्तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ १४५५ ॥

: ४० :

सूत उवाच

तं तथा मन्त्रिणो दृष्ट्वा भोगेन परिवेष्टितम् ।
विवर्णवदनाः सर्वे रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ १ ॥

सूत बोले– मन्त्रीगण उस राजाको उस प्रकार तक्षकके द्वारा घिरा हुए देखकर अति दुःखी होकर और पीले मुखवाले होकर रोने लगे ॥ १ ॥

तं तु नादं ततः श्रुत्वा मन्त्रिणस्ते प्रदुद्रुवुः ।
अपश्यंश्चैव ते यान्तमाकाशे नागमद्भुतम् ॥ २ ॥
सीमन्तमिव कुर्वाणं नभसः पद्मवर्चसम् ।
तक्षकं पन्नगश्रेष्ठं भृशं शोकपरायणाः ॥ ३ ॥

तब तक्षकके गर्जनका शब्द सुनकर वे सब मंत्री भाग गए और बहुत शोकसे युक्त होकर उन्होंने अद्भुत नागको आकाशरूपी स्त्रीकी मांगको सिन्दूरसे सजाते हुएके समान लाल कमलके वर्णवाले उस सर्पश्रेष्ठ तक्षक नागको आकाशमें जाते हुए देखा ॥ २–३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तक्षक उवाच

गच्छध्वं यूयमव्यग्रा राजानं कार्यवत्तया।
फलपत्रोदकं नाम प्रतिग्राहयितुं नृपम् ॥ २४ ॥

तक्षक बोला– " बिना व्याकुल होकर तुम किसी कामके बहाने उस राजाको फल, पत्र और जल देनेके लिए जाओ " ॥ २४ ॥

सूत उवाच

ते तक्षकसमादिष्टास्तथा चक्रुर्भुजङ्गमाः।
उपनिन्युस्तथा राज्ञे दर्भानापः फलानि च ॥ २५ ॥

सूत बोले– उन सर्पोंने तक्षककी आज्ञानुसार वैसा ही किया और राजाको दर्भ, और फल लेजाकर दिया ॥ २५ ॥

तच्च सर्वं स राजेन्द्रः प्रतिजग्राह वीर्यवान्।
कृत्वा च तेषां कार्याणि गम्यतामित्युवाच तान् ॥ २६ ॥

वीर्यशाली राजा परिक्षित्ने वह सब ले लिया और उनका कार्य पूराकर " अब आप जाइए " ऐसा उनसे कहा ॥ २६ ॥

गतेषु तेषु नागेषु तापसच्छद्मरूपिषु।
अमात्यान्सुहृदश्चैव प्रोवाच स नराधिपः ॥ २७ ॥

तपस्वियोंके छद्मरूपको धारण किए हुए उन नागोंके चले जानेपर राजाने अपने मन्त्रियों और मित्रोंसे कहा ॥ २७ ॥

भक्षयन्तु भवन्तो वै स्वादूनीमानि सर्वशः।
तापसैरुपनीतानि फलानि सहिता मया ॥ २८ ॥

कि तुम मेरे साथ तपस्वियोंके द्वारा लाये गए सब तरहसे स्वादिष्ट इन फलोंको खाओ ॥ २८ ॥

ततो राजा ससचिवः फलान्यादातुमैच्छत।
यद्गृहीतं फलं राज्ञा तत्र कृमिरभूदणुः।
ह्रस्वकः कृष्णनयनस्ताम्रो वर्णेन शौनक ॥ २९ ॥

तब हे शौनक! राजाने मन्त्रियोंके सहित बैठकर वे फल खाने चाहे, राजाने जो फल उठाया उसमें एक अणुके समान छोटा, काले नेत्रवाला, ताम्बेके रङ्गका कीडा बैठा हुआ था ॥ २९ ॥

स तं गृह्य नृपश्रेष्ठः सचिवानिदमब्रवीत्।
अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥ ३० ॥

राजश्रेष्ठ परिक्षित् उस कीडेको पकडकर मन्त्रियोंसे यह बोला– कि सूर्यदेव अस्त होने जा रहे हैं, अतः आज अब मुझे विषका भय नहीं रहा ॥ ३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्यवागस्तु स मुनिः कृमिको मां दशत्वयम् ।
तक्षको नाम भूत्वा वै तथा परिहृतं भवेत् ॥ ३१ ॥

अतः यदि यह कीट तक्षक होकर मुझे काट ले, तभी उस मुनिकी बात भी सच ठहरेगी और शाप भी सच होगा ॥ ३१ ॥

ते चैनमन्ववर्तन्त मन्त्रिणः कालचोदिताः ।
एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संन्निवेश्य ह ।
कृमिकं प्राहसत्तूर्णं मुमूर्षुर्नष्टचेतनः ॥ ३२ ॥

कालसे प्रेरित हुए हुए उन मंत्रियोंने भी राजाकी इस बातका समर्थन किया । इधर मरनेकी इच्छावाला और नष्ट बुद्धिवाला राजा परिक्षित् भी यह कहकर और उस कीडेको गलेमें डालकर बार बार हंसने लगा ॥ ३२ ॥

हसन्नेव च भोगेन तक्षकेणाभिवेष्टितः ।
तस्मात्फलाद्विनिष्क्रम्य यत्तद्राज्ञे निवेदितम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ १४५५ ॥

इस प्रकार राजा हंस ही रहा था कि तपस्वियोंने जो फल राजाको दिया था उस फलमेंसे निकलकर तक्षक नागने अपने फनसे राजाको लपेट लिया ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उन्तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ १४५५ ॥

: ४० :

सूत उवाच

तं तथा मन्त्रिणो दृष्ट्वा भोगेन परिवेष्टितम् ।
विवर्णवदनाः सर्वे रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ १ ॥

सूत बोले– मन्त्रीगण उस राजाको उस प्रकार तक्षकके द्वारा घिरा हुए देखकर अति दुःखी होकर और पीले मुखवाले होकर रोने लगे ॥ १ ॥

तं तु नादं ततः श्रुत्वा मन्त्रिणस्ते प्रदुद्रुवुः ।
अपश्यंश्चैव ते यान्तमाकाशे नागमद्भुतम् ॥ २ ॥
सीमन्तमिव कुर्वाणं नभसः पद्मवर्चसम् ।
तक्षकं पन्नगश्रेष्ठं भृशं शोकपरायणाः ॥ ३ ॥

तब तक्षकके गर्जनका शब्द सुनकर वे सब मंत्री भाग गए और बहुत शोकसे युक्त होकर उन्होंने अद्भुत नागको आकाशरूपी स्त्रीकी मांगको सिन्दूरसे सजाते हुएके समान लाल कमलके वर्णवाले उस सर्पश्रेष्ठ तक्षक नागको आकाशमें जाते हुए देखा ॥ २–३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततस्तु ते तद्गृहमग्निना वृतं प्रदीप्यमानं विषजेन भोगिनः।
भयात्परित्यज्य दिशः प्रपेदिरे पपात तच्चाशनिताडितं यथा ॥ ४ ॥

इधर मंत्रीगण भी तक्षक नागके भयंकर विषसे उपजी हुई आगसे घिर कर जलते हुए उस घरको डरके कारण छोडकर चारों दिशाओंमें भाग गये और वह घर भी वज्रसे आहत हुए हुएके समान गिर गया ॥ ४ ॥

ततो नृपे तक्षकतेजसा हते प्रयुज्य सर्वाः परलोकसत्क्रियाः।
शुचिर्द्विजो राजपुरोहितस्तदा तथैव ते तस्य नृपस्य मन्त्रिणः ॥ ५ ॥

राजा परिक्षित्के तक्षकके तेजसे मर जाने पर इस राजाके मन्त्री और शुद्धाचारी ब्राह्मण-श्रेष्ठ राज-पुरोहितने राजाके संपूर्ण और्ध्वदेहिक कार्य सम्पन्न किये ॥ ५ ॥

नृपं शिशुं तस्य सुतं प्रचक्रिरे समेत्य सर्वे पुरवासिनो जनाः।
नृपं यमाहुस्तममित्रघातिनं कुरुप्रवीरं जनमेजयं जनाः ॥ ६ ॥

हस्तिनापुर नगरमें रहनेवाले मनुष्योंने राजा परीक्षित्के शत्रुओंके विनाशक, कुरुओंमें श्रेष्ठ उस छोटे पुत्रको राजा बनाया, जिसे लोग "जनमेजय" कहा करते थे ॥ ६ ॥

स बाल एवार्यमतिर्नृपोत्तमः सहैव तैर्मन्त्रिपुरोहितैस्तदा।
शशास राज्यं कुरुपुङ्गवाग्रजो यथास्य वीरः प्रपितामहस्तथा ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ बुद्धिवाला नृपश्रेष्ठ कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय बालक होने पर भी उन मन्त्रियों और पुरोहितोंके साथ उसी प्रकार राज्यशासन करने लगा जिस प्रकार उसके प्रपितामह (परदादा) युधिष्ठिर राज्यशासन करते थे ॥ ७ ॥

ततस्तु राजानममित्रतापनं समीक्ष्य ते तस्य नृपस्य मन्त्रिणः।
सुवर्णवर्माणमुपेत्य काशिपं वपुष्टमार्थं वरयांप्रचक्रमुः ॥ ८ ॥

कुछ कालके बाद उस राजाके मन्त्रियोंने उस जनमेजयको शत्रुनाशी देखकर (जनमेजयके लिए) काशीराज सुवर्णवर्माके पास जाकर वपुष्टमा नामकी उनकी कन्या मांगी ॥ ८ ॥

ततः स राजा प्रददौ वपुष्टमां कुरुप्रवीराय परीक्ष्य धर्मतः।
स चापि तां प्राप्य मुदा युतोऽभवन्न चान्यनारीषु मनो दधे क्वचित् ॥ ९ ॥

तब सुवर्णवर्माने कुरुप्रवीर जनमेजयकी धर्मानुसार परीक्षा करके वपुष्टमा नामकी अपनी कन्या जनमेजयको प्रदान कर दी और जनमेजय भी वपुष्टमाको प्राप्तकर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने किसी दूसरी स्त्री पर कभी मन नहीं लगाया ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सरःसु फुल्लेषु वनेषु चैव ह प्रसन्नचेता विजहार वीर्यवान् ।
तथा स राजन्यवरो विजह्रिवान्यथोर्वशीं प्राप्य पुरा पुरुरवाः ॥ १० ॥

जिस प्रकार पूर्वकालमें पुरुरवाने उर्वशीको प्राप्तकर प्रसन्नचित्तसे उसके साथ विहार किया था, उसी प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ वीर्यशाली जनमेजय प्रसन्नहृदयसे वपुष्टमाके साथ सुन्दर तालाबोंमें और खिले हुए वनोंमें विहार करने लगे ॥ १० ॥

वपुष्टमा चापि वरं पतिं तदा प्रतीतरूपं समवाप्य भूमिपम् ।
भावेन रामा रमयाम्बभूव वै विहारकालेष्ववरोधसुन्दरी ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ १४६६ ॥

प्रसिद्ध रूपवती अन्तःपुरकी ज्योति सुन्दरी सती वपुष्टमा भी अपने ही समान सुन्दर उस भूपालको पति रूपमें पाकर विहारके समय अति प्रेम दिखाकर प्रसन्न करने लगी ॥ ११ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ १४६६ ॥

: ४१ :

सूत उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु जरत्कारुर्महातपाः ।
चचार पृथिवीं कृत्स्नां यत्रसायंगृहो मुनिः ॥ १ ॥

सूत बोले– इसी समय महातपस्वी जरत्कारु ऋषि यत्रसायंगृह होकर (अर्थात् जहां सन्ध्या हो जाती थी, वहीं अपना घर बनाकर) सम्पूर्ण पृथ्वीमें घूम रहे थे ॥ १ ॥

चरन्दीक्षां महातेजा दुश्चरामकृतात्मभिः ।
तीर्थेष्वाप्लवनं कुर्वन्पुण्येषु विचचार ह ॥ २ ॥

वह महातेजस्वी मुनि पवित्र तीर्थमें नहाते हुए अपुण्यशाली मनुष्योंके द्वारा करनेके अयोग्य कठोर तप करते हुए पवित्र तीर्थोंमें विचरने लगे ॥ २ ॥

वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्नहरहर्मुनिः ।
स ददर्श पितॄन्गर्ते लम्बमानानधोमुखान् ॥ ३ ॥

कभी निराहारसे, कभी हवा पीकरके रहनेके कारण अपने शरीरको दिनरात सुखाते हुए घूमा करते थे । एक समय घूमते हुए उन्होंने अपने पितरोंको एक गड्ढेमें नीचे मुंह किए लटकते हुए देखा ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एकतन्त्ववशिष्टं वै वीरणस्तम्बमाश्रितान्।
तं च तन्तुं शनैराखुमाददानं बिलाश्रयम् ॥ ४ ॥

वे सब पितर वीरण अर्थात् खसके गुच्छेको पकडकर लटके हुए थे। उस वीरणस्तंबका एक ही तार शेष बचा था और उसे भी गड्ढेमें रहता हुआ एक चूहा धीरे धीरे काट रहा था ॥ ४ ॥

निराहारान्कृशान्दीनान्गर्तेऽर्तांस्त्राणमिच्छतः।
उपसृत्य स तान्दीनान्दीनरूपोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

जरत्कारुने उनको निराहारी, दुबले पतले, दीन और गड्ढेमें दुःखी होते हुए तथा अपनी रक्षाके अभिलाषी उन दुःखी पितरोंके पास जाकर दुःखी हृदयसे पूछा ॥ ५ ॥

के भवन्तोऽवलम्बन्ते वीरणस्तम्बमाश्रिताः।
दुर्बलं खादितैर्मूलैराखुना बिलवासिना ॥ ६ ॥

बिलमें रहनेवाले चूहेने जिनकी जडोंको खा लिया है, ऐसे कमजोर खसके गुच्छेको पकड कर लटकनेवाले आप कौन हैं ? ॥ ६ ॥

वीरणस्तम्बके मूलं यदप्येकमिह स्थितम्।
तदप्ययं शनैराखुरादत्ते दशनैः शितैः ॥ ७ ॥

इस खसके गुच्छेमें इसकी एक ही जड जो शेष है, उसे भी यह चूहा अपने तेज दांतोंसे धीरे धीरे काट रहा है ॥ ७ ॥

छेत्स्यतेऽल्पावशिष्टत्वादेतदप्यचिरादिव।
ततः स्थ पतितारोऽत्र गर्ते अस्मिन्नधोमुखाः ॥ ८ ॥

यह मूल थोडासा बचा हुआ होनेके कारण यह भी थोडे ही कालमें काट दिया जाएगा, तब निःसन्देह आप नीचे मुंह किये ही इस गड्ढेमें गिर जायंगे ॥ ८ ॥

ततो मे दुःखमुत्पन्नं दृष्ट्वा युष्मानधोमुखान्।
कृच्छ्रामापदमापन्नान्प्रियं किं करवाणि वः ॥ ९ ॥

आपको नीचे मुंह किये और कठिन विपत्तिमें पडे हुए देखकर मुझे बडा दुःख हो रहा है; कहिये मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं ॥ ९ ॥

तपसोऽस्य चतुर्थेन तृतीयेनापि वा पुनः।
अर्धेन वापि निस्तर्तुमापदं ब्रूत माचिरम् ॥ १० ॥

मेरी तपस्याके चौथे भागसे वा तीसरे भागसे या आधे भागसे आप इस आपत्तिको पार कर सकेंगे, शीघ्र बोलिए ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथवापि समग्रेण तरन्तु तपसा मम ।
भवन्तः सर्व एवास्मात्काममेवं विधीयताम् ॥ ११ ॥

अथवा मेरी सम्पूर्ण तपस्यासे आप लोग इस विपत्तिसे बच जाइये, इसमें आप जैसा चाहें, वैसा ही कीजिये ॥ ११ ॥

पितर ऊचुः

ऋद्धो भवान्ब्रह्मचारी यो नस्त्रातुमिहेच्छति ।
न तु विप्राग्र्य तपसा शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥ १२ ॥

पितृगण बोले– हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आप समृद्ध ब्रह्मचारी हैं जो यहां हमारी रक्षा करना चाहते हैं, पर हमारी इस विपत्तिको तपस्यासे दूर करना संभव नहीं है ॥ १२ ॥

अस्ति नस्तात तपसः फलं प्रवदतां वर ।
संतानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्पतामो निरयेऽशुचौ ॥ १३ ॥

हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हमलोगोंका भी बहुत तपका फल है; पर हे ब्रह्मन्! केवल सन्तान नष्ट हो जानेके कारण ही हम इस अपवित्र नरकमें गिर रहे हैं ॥ १३ ॥

लम्बतामिह नस्तात न ज्ञानं प्रतिभाति वै ।
येन त्वां नाभिजानीमो लोके विख्यातपौरुषम् ॥ १४ ॥

यहां लटके रहनेके कारण हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है, इस हेतु आपका यश तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध रहनेपर भी हम आपको पहिचान नहीं पा रहे हैं ॥ १४ ॥

ऋद्धो भवान्महाभागो यो नः शोच्यान्सुदुःखितान् ।
शोचस्युपेत्य कारुण्याच्छृणु ये वै वयं द्विज ॥ १५ ॥

आप ऋद्ध और बडे भाग्यवान् हैं, जो इस बडे भारी दुःख और शोचनीय दशासे पीडित हुए हुए हमारे लिए दयावश होकर दुःख प्रगट कर रहे हैं। हे विप्र! सुनिये, हम कौन हैं ॥ १५ ॥

यायावरा नाम वयमृषयः सांशितव्रताः ।
लोकात्पुण्यादिह भ्रष्टाः संतानप्रक्षयाद्विभो ॥ १६ ॥

हे विभो! हम यायावर नामक व्रतनिष्ठ ऋषि हैं, संतानके लोप होनेके कारण हम इस पुण्य लोकसे भ्रष्ट हो गए हैं ॥ १६ ॥

प्रनष्टं नस्तपः पुण्यं न हि नस्तन्तुरस्ति वै ।
अस्ति त्वेकोऽद्य नस्तन्तुः सोऽपि नास्ति यथा तथा ॥ १७ ॥

हमारे सम्पूर्ण तपस्या और पुण्य निष्फल हो गए हैं क्योंकि हमारा वंशतन्तु नहीं है। हमारे वंशका एक तन्तु अर्थात् हमारे वंशमें एक संतान है तो सही, पर उसका होना, न होना सब बराबर है ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एकतन्तववशिष्टं वै वीरणस्तम्बमाश्रितान्।
तं च तन्तुं शनैराखुमाददानं बिलाश्रयम् ॥ ४ ॥

वे सब पितर वीरण अर्थात् खसके गुच्छेको पकडकर लटके हुए थे। उस वीरणस्तंबका एक ही तार शेष बचा था और उसे भी गड्ढेमें रहता हुआ एक चूहा धीरे धीरे काट रहा था ॥ ४ ॥

निराहारान्कृशान्दीनान्गर्तेऽर्तांस्त्राणमिच्छतः।
उपसृत्य स तान्दीनान्दीनरूपोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

जरत्कारुने उनको निराहारी, दुबले पतले, दीन और गड्ढेमें दुःखी होते हुए तथा अपनी रक्षाके अभिलाषी उन दुःखी पितरोंके पास जाकर दुःखी हृदयसे पूछा ॥ ५ ॥

के भवन्तोऽवलम्बन्ते वीरणस्तम्बमाश्रिताः।
दुर्बलं खादितैर्मूलैराखुना बिलवासिना ॥ ६ ॥

बिलमें रहनेवाले चूहेने जिनकी जडोंको खा लिया है, ऐसे कमजोर खसके गुच्छेको पकड कर लटकनेवाले आप कौन हैं ? ॥ ६ ॥

वीरणस्तम्बके मूलं यदप्येकमिह स्थितम्।
तदप्ययं शनैराखुरादत्ते दशनैः शितैः ॥ ७ ॥

इस खसके गुच्छेमें इसकी एक ही जड जो शेष है, उसे भी यह चूहा अपने तेज दांतोंसे धीरे धीरे काट रहा है ॥ ७ ॥

छेत्स्यतेऽल्पावशिष्टत्वादेतदप्यचिरादिव।
ततः स्थ पतितारोऽत्र गर्ते अस्मिन्नधोमुखाः ॥ ८ ॥

यह मूल थोडासा बचा हुआ होनेके कारण यह भी थोडे ही कालमें काट दिया जाएगा, तब निःसन्देह आप नीचे मुंह किये ही इस गड्ढेमें गिर जायंगे ॥ ८ ॥

ततो मे दुःखमुत्पन्नं दृष्ट्वा युष्मानधोमुखान्।
कृच्छ्रामापदमापन्नान्प्रियं किं करवाणि वः ॥ ९ ॥

आपको नीचे मुंह किये और कठिन विपत्तिमें पडे हुए देखकर मुझे बडा दुःख हो रहा है; कहिये मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं ॥ ९ ॥

तपसोऽस्य चतुर्थेन तृतीयेनापि वा पुनः।
अर्धेन वापि निस्तर्तुमापदं ब्रूत माचिरम् ॥ १० ॥

मेरी तपस्याके चौथे भागसे वा तीसरे भागसे या आधे भागसे आप इस आपत्तिको पार कर सकेंगे, शीघ्र बोलिए ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथवापि समग्रेण तरन्तु तपसा मम ।
भवन्तः सर्व एवास्मात्काममेवं विधीयताम् ॥ ११ ॥

अथवा मेरी सम्पूर्ण तपस्यासे आप लोग इस विपत्तिसे बच जाइये, इसमें आप जैसा चाहें, वैसा ही कीजिये ॥ ११ ॥

पितर ऊचुः

ऋद्धो भवान्ब्रह्मचारी यो नस्त्रातुमिहेच्छति ।
न तु विप्राग्र्य तपसा शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥ १२ ॥

पितृगण बोले– हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आप समृद्ध ब्रह्मचारी हैं जो यहां हमारी रक्षा करना चाहते हैं, पर हमारी इस विपत्तिको तपस्यासे दूर करना संभव नहीं है ॥ १२ ॥

अस्ति नस्तात तपसः फलं प्रवदतां वर ।
संतानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्पतामो निरयेऽशुचौ ॥ १३ ॥

हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हमलोगोंका भी बहुत तपका फल है; पर हे ब्रह्मन्! केवल सन्तान नष्ट हो जानेके कारण ही हम इस अपवित्र नरकमें गिर रहे हैं ॥ १३ ॥

लम्बतामिह नस्तात न ज्ञानं प्रतिभाति वै ।
येन त्वां नाभिजानीमो लोके विख्यातपौरुषम् ॥ १४ ॥

यहां लटके रहनेके कारण हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है, इस हेतु आपका यश तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध रहनेपर भी हम आपको पहिचान नहीं पा रहे हैं ॥ १४ ॥

ऋद्धो भवान्महाभागो यो नः शोच्यान्सुदुःखितान् ।
शोचस्युपेत्य कारुण्याच्छृणु ये वै वयं द्विज ॥ १५ ॥

आप ऋद्ध और बडे भाग्यवान् हैं, जो इस बडे भारी दुःख और शोचनीय दशासे पीडित हुए हुए हमारे लिए दयावश होकर दुःख प्रगट कर रहे हैं। हे विप्र! सुनिये, हम कौन हैं ॥ १५ ॥

यायावरा नाम वयमृषयः सांशितव्रताः ।
लोकात्पुण्यादिह भ्रष्टाः संतानप्रक्षयाद्विभो ॥ १६ ॥

हे विभो! हम यायावर नामक व्रतनिष्ठ ऋषि हैं, संतानके लोप होनेके कारण हम इस पुण्य लोकसे भ्रष्ट हो गए हैं ॥ १६ ॥

प्रनष्टं नस्तपः पुण्यं न हि नस्तन्तुरस्ति वै ।
अस्ति त्वेकोऽद्य नस्तन्तुः सोऽपि नास्ति यथा तथा ॥ १७ ॥

हमारे सम्पूर्ण तपस्या और पुण्य निष्फल हो गए हैं क्योंकि हमारा वंशतन्तु नहीं है। हमारे वंशका एक तन्तु अर्थात् हमारे वंशमें एक संतान है तो सही, पर उसका होना, न होना सब बराबर है ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां बन्धुः स किल नः कुले।
जरत्कारुरिति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः।
नियतात्मा महात्मा च सुव्रतः सुमहातपाः ॥ १८ ॥

वही मन्दभाग्य हमारे वंशमें हम अल्पभाग्योंका सहारा है उसका नाम जरत्कारु है। वह सन्तान वेद-वेदाङ्गोंमें निपुण, व्रतशील, जितेन्द्रिय, महात्मा और बडा तपस्वी है ॥१८॥

तेन स्म तपसो लोभात्कृच्छ्रमापादिता वयम्।
न तस्य भार्या पुत्रो वा बान्धवो वास्ति कश्चन ॥ १९ ॥

उसने तपके लोभसे हमको इस विपत्तिमें गिरा दिया है; उसकी स्त्री, पुत्र, स्वजन, बन्धु, कोई भी नहीं हैं ॥ १९ ॥

तस्माल्लम्बामहे गर्ते नष्टसंज्ञा ह्यनाथवत्।
स वक्तव्यस्त्वया दृष्ट्वा अस्माकं नाथवत्तया ॥ २० ॥

इसी कारण हम अनाथकी भांति संज्ञासे शून्य होकर इस गड्ढेमें लटके हुए हैं। यदि आप उसे देखें तो हम अनाथोंको सनाथ करनेके लिए उससे इस प्रकार कहिएगा ॥ २० ॥

पितरस्तेऽवलम्बन्ते गर्ते दीना अधोमुखाः।
साधु दारान्कुरुष्वेति प्रजायस्वेति चाभिभो।
कुलतन्तुर्हि नः शिष्टस्त्वमेवैकस्तपोधन ॥ २१ ॥

" हे तेजस्वी साधु पुरुष! तुम्हारे पितरलोग दीन होकर और नीचे मुंह करके गड्ढेमें लटक रहे हैं, तुम विवाह करो और स्त्रीमें पुत्रोत्पादन करो क्योंकि हे तपोधन! तुम ही कुलके एकमात्र तन्तुके रूपमें बचे हो ॥ २१ ॥

यत्तु पश्यसि नो ब्रह्मन्वीरणस्तम्बमाश्रितान्।
एषोऽस्माकं कुलस्तम्ब आसीत्स्वकुलवर्धनः ॥ २२ ॥

हे ब्रह्मन्! आप हमको जिस खसके गुच्छेमें लटका हुआ देख रहे हैं यह हमारा कुल बढाने वाला कुलस्तम्ब था ॥ २२ ॥

यानि पश्यसि वै ब्रह्मन्मूलानीहास्य वीरुधः।
एते नस्तन्तवस्तात कालेन परिभक्षिताः ॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन्! आप इस वृक्षकी जो सब जड देख रहे हैं, वे हमारी सन्तानें हैं, ये सभी कालसे भक्षित हो चुकी हैं ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यत्त्वेतत्पश्यसि ब्रह्मन्मूलमस्यार्धभक्षितम् ।
तत्र लम्बामहे सर्वे सोऽप्येकस्तप आस्थितः ॥ २४ ॥

और हे ब्रह्मन् ! यह जो आधी खाई हुई एकही जड आप देख रहे हैं जिसे पकड कर हम गड्ढेके ऊपर लटके हुए हैं, यह वही जरत्कारु है, उसने भी केवल तपस्याको पकड रखा है ॥२४॥

यमाखुं पश्यसि ब्रह्मन्काल एष महाबलः ।
स तं तपोरतं मन्दं शनैः क्षपयते तुदन् ।
जरत्कारुं तपोलुब्धं मन्दात्मानमचेतसम् ॥ २५ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप यह जो चूहा देख रहे हैं वह महाबली काल है; यह काल तपमें रत, मन्द-मति, अज्ञानी और तपस्यालोभी उस जरत्कारुको पीडित करता हुआ धीरे धीरे क्षीण कर रहा है ॥ २५ ॥

न हि नस्तत्तपस्तस्य तारयिष्यति सत्तम ।
छिन्नमूलान्परिभ्रष्टान्कालोपहतचेतसः ।
नरकप्रतिष्ठान्पश्यास्मान्यथा दुष्कृतिनस्तथा ॥ २६ ॥

देखो, हे सज्जनश्रेष्ठ ! कटी हुई जडवाले, भ्रष्ट हुए, कालसे विनष्ट ज्ञानवाले तथा नरकमें पडे हुए हमें उस (जरत्कारु) की तपस्या भी उसी प्रकार बचा नहीं सकेगी जिस प्रकार दुष्ट कर्म करनेवालेको नहीं बचा सकती ॥ २६ ॥

अस्मासु पतितेष्वत्र सह पूर्वैः पितामहैः ।
छिन्नः कालेन सोऽप्यत्र गन्ता वै नरकं ततः ॥ २७ ॥

प्राचीन पितामहोंके साथ हमारे इस गड्ढेमें गिर जानेपर जरत्कारु भी कालसे भक्षित होकर इस स्थानमें गिरकर नरकमें जायगा ॥ २७ ॥

तपो वाप्यथवा यज्ञो यच्चान्यत्पावनं महत् ।
तत्सर्वं न समं तात संतत्येति सतां मतम् ॥ २८ ॥

तपस्या, यज्ञ तथा पाप दूर करनेवाले जितने महत् कार्य हैं, वे सब पुत्रोत्पादनके तुल्य (महत्त्वपूर्ण) नहीं होते, ऐसा विद्वानोंका मत है ॥ २८ ॥

स तात दृष्ट्वा ब्रूयास्त्वं जरत्कारुं तपस्विनम् ।
यथादृष्टमिदं चास्मै त्वयाख्येयमशेषतः ॥ २९ ॥

हे तात ! आपने जैसा कुछ देखा, वह सब उस तपस्वी जरत्कारुसे मिलकर पूर्ण रूपसे कह देना ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यथा दारान्प्रकुर्यात्स पुत्रांश्चोत्पादयेद्यथा।
तथा ब्रह्मंस्त्वया वाच्यः सोऽस्माकं नाथवत्तया ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ १४८६ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप हमारे नाथके समान हैं अतः उससे इस प्रकार कहना, कि जिससे वह जरत्कारु विवाह करके पुत्रोत्पादन करे ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ १४८६ ॥

: ४२ :

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा जरत्कारुर्दुःखशोकपरायणः।
उवाच स्वान्पितॄन्दुःखाद्बाष्पसंदिग्धया गिरा ॥ १ ॥

सूत बोले– जरत्कारु पितरोंकी यह सब बात सुनकर अति दुःख और शोकसे युक्त होकर मनःपीडासे आंखोंमें आंसू भरकर गद्गद वाणीसे अपने पितरोंसे बोला ॥ १ ॥

अहमेव जरत्कारुः किल्बिषी भवतां सुतः।
तद्दण्डं धारयत मे दुष्कृतेरकृतात्मनः ॥ २ ॥

"मैं ही आपका पुत्र पापी जरत्कारु हूं; अकृतआत्मा मुझसे जो दोष हुआ है, उसका मुझे दण्ड दीजिये" ॥ २ ॥

पितर ऊचुः

पुत्र दिष्ट्यासि संप्राप्त इमं देशं यदृच्छया।
किमर्थं च त्वया ब्रह्मन्न कृतो दारसंग्रहः ॥ ३ ॥

पितर बोले– "पुत्र ! तुम इच्छानुसार घूमते हुए हमारे सौभाग्यसे इस देशमें आये हो; हे ब्रह्मन् ! तुमने अबतक किस कारण विवाह नहीं किया ?" ॥ ३ ॥

जरत्कारुरुवाच

ममायं पितरो नित्यं हृद्यर्थः परिवर्तते।
ऊर्ध्वरेताः शरीरं वै प्रापयेयमसुत्र वै ॥ ४ ॥

जरत्कारु बोले– "पितृगण ! मेरे हृदयमें सदा यह बात घूमती रहती है, कि मैं ऊर्ध्वरेता होकर उस लोकमें भी शरीर प्राप्त करूं ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवं दृष्ट्वा तु भवतः शकुन्तानिव लम्बतः ।
मया निवर्तिता बुद्धिर्ब्रह्मचर्यात्पितामहाः ॥ ५ ॥

हे पितामहगण ! पर अब आपको यहां पक्षियोंके समान इस प्रकार लटकते हुए देखकर मैंने ब्रह्मचर्यसे चित्त हटा दिया है ॥ ५ ॥

करिष्ये वः प्रियं कामं निवेक्ष्ये नात्र संशयः ।
सनाम्नीं यद्यहं कन्यामुपलप्स्ये कदाचन ॥ ६ ॥

मैं आपका प्रियकार्य करूंगा; सन्देह नहीं है, पर यदि कभी अपने ही नामकी कन्या पाऊंगा तो मैं अवश्य विवाह करूंगा ॥ ६ ॥

भविष्यति च या काचिद्भैक्ष्यवत्स्वयमुद्यता ।
प्रतिग्रहीता तामस्मि न भरेय च यामहम् ॥ ७ ॥

यदि कोई कन्या भिक्षाके समान स्वयं तैय्यार हो तथा मुझे जिसका पालन करना न पडे, उस कन्याको मैं स्वीकार करूंगा ॥ ७ ॥

एवंविधमहं कुर्यां निवेशं प्राप्नुयां यदि ।
अन्यथा न करिष्ये तु सत्यमेतत्पितामहाः ॥ ८ ॥

हे पितामहगण ! मैं सच कहता हूं, यदि ऐसी कन्या प्राप्त होगी तभी मैं विवाह करूंगा, इसके विपरीत होनेसे मैं विवाह नहीं कर सकूंगा ॥ ८ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा तु स पितॄंश्चचार पृथिवीं मुनिः ।
न च स्म लभते भार्यां वृद्धोऽयमिति शौनक ॥ ९ ॥

सूत बोले– हे शौनक ! वह मुनि जरत्कारु पितरोंसे यह बात कहकर संपूर्ण भूमण्डलमें घूमने लगा, पर "यह वृद्ध है" ऐसा जानकर किसीने उनको अपनी कन्या नहीं दी ॥ ९ ॥

यदा निर्वेदमापन्नः पितृभिश्चोदितस्तथा ।
तदारण्यं स गत्वोच्चैश्चुक्रोश भृशदुःखितः ॥ १० ॥

जब पितरोंसे प्रेरित हुआ हुआ जरत्कारु निराश हो गया, तब वनमें जाकर दुःखी हृदयसे जोर जोरसे चिल्लाने लगा ॥ १० ॥

यानि भूतानि सन्तीह स्थावराणि चराणि च ।
अन्तर्हितानि वा यानि तानि शृण्वन्तु मे वचः ॥ ११ ॥

इस स्थानमें स्थावर जङ्गमात्मक जितने प्राणी विराजमान हों और जो प्राणी छिपे हुए हों, वे सब मेरी बात सुनें ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उग्रे तपसि वर्तन्तं पितरश्चोदयन्ति माम्।
निविशस्वेति दुःखार्तास्तेषां प्रियचिकीर्षया ॥ १२ ॥
निवेशार्थ्यखिलां भूमिं कन्याभैक्षं चरामि भोः।
दरिद्रो दुःखशीलश्च पितृभिः संनियोजितः ॥ १३ ॥

हे जीवो ! कठोर तपस्यामें रत रहनेवाले मुझे दुःखी पितरोंने प्रेरणा दी है कि तुम विवाह करो। अतः पितरोंके द्वारा प्रेरित हुआ हुआ मैं उनके प्रिय करनेकी इच्छासे सन्तानोत्पादनके निमित्त विवाह करनेके लिए सम्पूर्ण भूमण्डलमें कन्याकी भिक्षा मांग रहा हूं, मैं अति दरिद्र और दुःखी हूं ॥ १२-१३ ॥

यस्य कन्यास्ति भूतस्य ये मयेह प्रकीर्तिताः।
ते मे कन्यां प्रयच्छन्तु चरतः सर्वतो दिशम् ॥ १४ ॥

मैंने जिनसे यह बात कही है, यदि उनमेंसे किसी प्राणीकी कन्या हो तो वे सभी दिशाओंमें विचरनेवाले मुझे अपनी कन्या प्रदान करें ॥ १४ ॥

मम कन्या सनाम्नी या भैक्षवच्चोद्यता भवेत्।
भरेयं चैव यां नाहं तां मे कन्यां प्रयच्छत ॥ १५ ॥

जो कन्या मेरे नामकी ही हो और भिक्षाके समान मुझे मिले तथा जिसका पोषण मुझे न करना पडे वैसी कन्या मुझे दो ॥ १५ ॥

ततस्ते पन्नगा ये वै जरत्कारौ समाहिताः।
तामादाय प्रवृत्तिं ते वासुकेः प्रत्यवेदयन् ॥ १६ ॥

तब जो नाग जरत्कारुको ढूंढनेके लिए नियुक्त थे, उन्होंने वासुकिको यह समाचार ले जाकर कह सुनाया ॥ १६ ॥

तेषां श्रुत्वा स नागेन्द्रः कन्यां तां समलंकृताम्।
प्रगृह्यारण्यमगमत्समीपं तस्य पन्नगः ॥ १७ ॥

नागनाथ वासुकि यह बात सुनतेही सजी सजाई अपनी बहिनको लेकर वनमें उस ऋषिके पास गया ॥ १७ ॥

तत्र तां भैक्षवत्कन्यां प्रादात्तस्मै महात्मने।
नागेन्द्रो वासुकिर्ब्रह्मन्न स तां प्रत्यगृह्णत ॥ १८ ॥

और हे ब्रह्मन् ! उस नागेन्द्र वासुकिने उस महात्मा मुनिको भिक्षाके समान वह कन्या देदी, पर जरत्कारुने उसको स्वीकार नहीं किया ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

असनामेति वै मत्वा भरणे चाविचारिते ।
मोक्षभावे स्थितश्चापि द्वन्द्वीभूतः परिग्रहे ॥ १९ ॥

वह सोचने लगे, कि यह कन्या संभवतः मेरे नामकी न भी हो और कदाचित् मुझे इसका पालन पोषण भी करना पडे । मोक्षके पथिक जरत्कारु उसको स्वीकार करते समय दुविधामें पड गए ॥ १९ ॥

ततो नाम स कन्यायाः पप्रच्छ भृगुनन्दन ।
वासुके भरणं चास्या न कुर्यामित्युवाच ह ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ १५१६ ॥

हे भृगुनन्दन ! तब उस ऋषिने वासुकिसे कन्याका नाम पूछा और कहा, कि मैं इसका भरण पोषण नहीं करूंगा ॥ २० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बयालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ १५१६ ॥

: ४३ :

सूत उवाच

वासुकिस्त्वब्रवीद्वाक्यं जरत्कारुमृषिं तदा ।
सनामा तव कन्येयं स्वसा मे तपसान्विता ॥ १ ॥

सूत बोले– तब वासुकिने जरत्कारु ऋषिसे यह वाक्य कहा, " तपस्विनी यह कन्या मेरी बहिन तुम्हारे नामवाली ही है ॥ १ ॥

भरिष्यामि च ते भार्यां प्रतीच्छेमां द्विजोत्तम ।
रक्षणं च करिष्येऽस्याः सर्वशक्त्या तपोधन ॥ २ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम इसका ग्रहण करो, तुम्हारी स्त्रीका भरणपोषण मैं करूंगा और हे तपोधन ! अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर मैं इसकी रक्षा भी करूंगा ॥ २ ॥

प्रतिश्रुते तु नागेन भरिष्ये भगिनीमिति ।
जरत्कारुस्तदा वेश्म भुजगस्य जगाम ह ॥ ३ ॥

वासुकि नागके यह प्रतिज्ञा करनेपर, कि " मैं बहिनका पोषण करूंगा, " जरत्कारु वासुकि नागके घर गये ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र मन्त्रविदां श्रेष्ठस्तपोवृद्धो महाव्रतः।
जग्राह पाणिं धर्मात्मा विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ४ ॥

वहां मन्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ तपोवृद्ध, महा व्रतशील, धर्मात्मा जरत्कारुने विधिपूर्वक मन्त्र पढकर पाणिग्रहण किया ॥ ४ ॥

ततो वासगृहं शुभ्रं पन्नगेन्द्रस्य संमतम्।
जगाम भार्यामादाय स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ५ ॥

तब महर्षियों द्वारा प्रशंसित होते हुए पत्नीको लेकर तक्षकके द्वारा बताये गए सफेद वासगृहमें गए ॥ ५ ॥

शयनं तत्र वै कल्पितं स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम्।
तत्र भार्यासहायः स जरत्कारुरुवास ह ॥ ६ ॥

वहां सुन्दर चादरसे युक्त सुन्दर सेज बनायी गयी थी। वहां जरत्कारु स्त्रीके साथ रहने लगे ॥ ६ ॥

स तत्र समयं चक्रे भार्यया सह सत्तमः।
विप्रियं मे न कर्तव्यं न च वाच्यं कदाचन ॥ ७ ॥

साधुश्रेष्ठ ऋषिने वहां पत्नीके सामने यह शर्त रखी कि तुम कभी मेरा अप्रिय कार्य मत करना अथवा बात न कहना ॥ ७ ॥

त्यजेयमप्रिये हि त्वां कृते वासं च ते गृहे।
एतद्गृहाण वचनं मया यत्समुदीरितम् ॥ ८ ॥

तुम यदि मुझसे अप्रिय वचन बोलोगी या अप्रिय काम करोगी, तो मैं फिर तुम्हारे घरमें न रहूंगा और तुमको त्याग दूंगा; मैंने जो कुछ कहा है, उसे स्मरण रखना ॥ ८ ॥

ततः परमसंविग्ना स्वसा नागपतेस्तु सा।
अतिदुःखान्विता वाचं तमुवाचैवमस्त्विति ॥ ९ ॥

तब नागराज वासुकिकी बहिन जरत्कारुने अति शोकयुक्त और दुःखी होकर "एवमस्तु" कहकर वह बात मान ली ॥ ९ ॥

तथैव सा च भर्तारं दुःखशीलमुपाचरत्।
उपायैः श्वेतकाकीयैः प्रियकामा यशस्विनी ॥ १० ॥

पतिका प्रिय चाहनेवाली यशस्विनी नागेशकी बहिन कुत्ता, हरिण और कौवेके समान सावधानीसे दुःखी पतिकी सेवा करने लगी ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऋतुकाले ततः स्नाता कदाचिद्वासुकेः स्वसा ।
भर्तारं तं यथान्यायमुपतस्थे महामुनिम् ॥ ११ ॥

कुछ कालके बाद वासुकिकी बहिन उस जरत्कारुने ऋतुस्नान कर महामुनि पतिके पास यथाविधि गमन किया ॥ ११ ॥

तत्र तस्याः समभवद्गर्भो ज्वलनसंनिभः ।
अतीव तपसा युक्तो वैश्वानरसमद्युतिः ।
शुक्लपक्षे यथा सोमो व्यवर्धत तथैव सः ॥ १२ ॥

तब उस जरत्कारुने अग्निके समान, अत्यधिक तपसे युक्त, अग्निके समान तेजस्वी गर्भ धारण किया और वह गर्भ दिनोंदिन उसी प्रकार बढने लगा, जिस प्रकार शुक्ल पक्षमें चन्द्रमा ॥ १२ ॥

ततः कतिपयाहस्य जरत्कारुर्महातपाः ।
उत्सङ्गेऽस्याः शिरः कृत्वा सुष्वाप परिखिन्नवत् ॥ १३ ॥

कुछ समयके बाद एक दिन अति तपस्वी जरत्कारु नागकी बहिन जरत्कारुकी गोदमें सिर रखकर थके—मादेके समान सो रहा था ॥ १३ ॥

तस्मिंश्च सुप्ते विप्रेन्द्रे सवितास्तमियाद्गिरिम् ।
अह्नः परिक्षये ब्रह्मंस्ततः साचिन्तयत्तदा ।
वासुकेर्भगिनी भीता धर्मलोपान्मनस्विनी ॥ १४ ॥

उस विप्रश्रेष्ठके सो जानेपर सूर्यदेव अस्ताचलकी चोटी पर चढ गये, तब हे ब्रह्मन्! दिनके समाप्त होनेपर मनस्विनी वासुकिकी बहन धर्मके लोप होनेके भयसे भीत होकर सोचने लगी ॥ १४ ॥

किं नु मे सुकृतं भूयाद्भर्तुरुत्थापनं न वा।
दुःखशीलो हि धर्मात्मा कथं नास्यापराध्नुयाम् ॥ १५ ॥

कि इस समय मैं क्या करूं, पतिको नींदसे जगाना ठीक होगा या नहीं, ऐसा करनेसे दुःखशील धर्मात्मा पतिके निकट दोषी तो नहीं बनना पडेगा ॥ १५ ॥

कोपो वा धर्मशीलस्य धर्मलोपोऽथवा पुनः ।
धर्मलोपो गरीयान्वै स्यादत्रेत्यकरोन्मनः ॥ १६ ॥

नींदसे न जगानेसे इस धार्मिक पतिके धर्मके लोप होनेकी सम्भावना है और नींदसे जगानेसे भी क्रोधित हो सकते हैं; अन्तमें उसने मनमें निश्चय किया धर्मके लोप होनेके कारण होनेवाला पाप ज्यादा भयंकर होता है ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उत्थापयिष्ये यद्येनं ध्रुवं कोपं करिष्यति।
धर्मलोपो भवेदस्य सन्ध्यातिक्रमणे ध्रुवम् ॥ १७ ॥

इसमें सन्देह नहीं, कि यदि मैं इन्हें नींदसे उठाऊंगी, तो ये अवश्य ही क्रोधित होंगे, पर यदि सन्ध्याकाललंघन हो जाए; तो निःसन्देह धर्मका लोप होगा ॥ १७ ॥

इति निश्चित्य मनसा जरत्कारुर्भुजङ्गमा।
तमृषिं दीप्ततपसं शयानमनलोपमम्।
उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं ततो मधुरभाषिणी ॥ १८ ॥

मधुर बोलनेवाली सर्पबहिन मनही मनमें ऐसा निश्चय करके सोये हुए अग्निके समान तेजस्वी तपसे प्रदीप्त ऋषिसे इस प्रकार मीठे शब्दोंमें बोली ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठ त्वं महाभाग सूर्योऽस्तमुपगच्छति।
सन्ध्यामुपास्स्व भगवन्नपः स्पृष्ट्वा यतव्रतः ॥ १९ ॥

"हे महाभाग, व्रतशील भगवन्! सूर्यदेव अस्त हो रहे हैं, अतः आप उठिए और उठकर जल छू करके सन्ध्योपासन कीजिये ॥ १९ ॥

प्रादुष्कृताग्निहोत्रोऽयं मुहूर्तो रम्यदारुणः।
सन्ध्या प्रवर्तते चेयं पश्चिमायां दिशि प्रभो ॥ २० ॥

अग्निहोत्रका समय आ पहुंचा है; यह मुहूर्त दारुण और रमणीय है; हे प्रभो! पश्चिम दिशामें यह संध्या उपस्थित हो रही है।" ॥ २० ॥

एवमुक्तः स भगवाञ्जरत्कारुर्महातपाः।
भार्यां प्रस्फुरमाणोष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

पत्नीके यह बात कहनेपर महातपस्वी भगवान् जरत्कारु क्रोधसे होठोंको फडफडाते हुए अपनी पत्नीसे ये वचन बोले ॥ २१ ॥

अवमानः प्रयुक्तोऽयं त्वया मम भुजङ्गमे।
समीपे ते न वत्स्यामि गमिष्यामि यथागतम् ॥ २२ ॥

"अरी सर्पिणी! तूने मेरा इस प्रकारसे अपमान किया है? मैं तेरे साथ अब न रहूंगा; जहां मन चाहेगा वहां चला जाऊंगा ॥ २२ ॥

न हि तेजोऽस्ति वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः।
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते ॥ २३ ॥

हे सुंदर जंघाओंवाली! मैं निश्चित रूपसे जानता हूं, कि मेरे सोये रहने पर सूर्यदेव कभी भी उचित समयमें अस्त होनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न चाप्यवमतस्येह वस्तुं रोचेत कस्यचित् ।
किं पुनर्धर्मशीलस्य मम वा मद्विधस्य वा ॥ २४ ॥

अपमानित होकर कोई भी पुरुष यहां रहना नहीं चाहेगा, फिर मेरे या मेरे जैसे किसी धर्मशील पुरुषकी तो बात ही क्या ? ॥ २४ ॥

एवमुक्ता जरत्कारुर्भर्त्रा हृदयकम्पनम् ।
अब्रवीद्भगिनी तत्र वासुकेः संनिवेशने ॥ २५ ॥

पतिके द्वारा इस हृदय कंपानेवाली बातको सुनकर वासुकिके घरमें रहती हुई उसकी बहिन जरत्कारु बोली ॥ २५ ॥

नावमानात्कृतवती तवाहं प्रतिबोधनम् ।
धर्मलोपो न ते विप्र स्यादित्येतत्कृतं मया ॥ २६ ॥

" हे विप्र ! मैंने अपमान करनेके निमित्त आपको नींदसे नहीं जगाया; अपितु आपका धर्म लोप न होने पावे इसलिए मैंने यह कार्य किया॥ " २६ ॥

उवाच भार्यामित्युक्तो जरत्कारुर्महातपाः ।
ऋषिः कोपसमाविष्टस्त्यक्तुकामो भुजङ्गमाम् ॥ २७ ॥

अपनी स्त्रीके ऐसा कहने पर उस सर्पिणीको छोडनेकी अभिलाषावाले क्रोधित एवं महातपस्वी ऋषि जरत्कारु अपनी स्त्रीसे यह बोले ॥ २७ ॥

न मे वागनृतं प्राह गमिष्येऽहं भुजङ्गमे ।
समयो ह्येष मे पूर्वं त्वया सह मिथः कृतः ॥ २८ ॥

" हे सर्पिणी ! मेरी वाणी कभी झूठ नहीं बोलती; मैं अवश्य जाऊंगा; मैंने पहिले ही तेरे सामने एकान्तमें यह शर्त रख दी थी ॥ २८ ॥

सुखमस्म्युषितो भद्रे ब्रूयास्त्वं भ्रातरं शुभे ।
इतो मयि गते भीरु गतः स भगवानिति ।
त्वं चापि मयि निष्क्रान्ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

भद्रे ! मेरे यहांसे चले जानेपर अपने भाईसे कहना कि मुनि चले गये हैं और मैं यहां जितने दिनोंतक रहा परम सुखसे रहा; हे भीरु ! मेरे जानेपर तू भी शोकसे विकल मत होना " ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्युक्ता सानवद्याङ्गी प्रत्युवाच पतिं तदा।
जरत्कारुं जरत्कारुश्चिन्ताशोकपरायणा ॥ ३० ॥
बाष्पगद्गदया वाचा मुखेन परिशुष्यता।
कृताञ्जलिर्वरारोहा पर्यश्रुनयना ततः।
धैर्यमालम्ब्य वामोरूर्हृदयेन प्रवेपता ॥ ३१ ॥

इस प्रकार कहे जानेपर अनिन्दित अंगोंवाली चिन्ता और शोकसे व्याकुल, कमलके समान सुन्दर और सुन्दर जांघोंवाली वह जरत्कारु आंसुओंसे भरी हुई आंखोंवाली होकर कांपते हुए हृदयसे, सूखते हुए मुखसे किसी प्रकार धैर्य धारण करके आंसुओंके कारण रुंधे हुए कण्ठसे अपने पति जरत्कारुसे बोली ॥ ३०–३१ ॥

न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम्।
धर्मे स्थितां स्थितो धर्मे सदा प्रियहिते रताम् ॥ ३२ ॥

"हे धर्मको जाननेवाले ! धर्ममें रहनेवाले आपके लिए सदा पतिके हितमें रत रहनेवाली, धर्मके मार्गपर चलनेवाली और निरपराधिनी मुझे त्याग देना उचित नहीं है ॥ ३२ ॥

प्रदाने कारणं यच्च मम तुभ्यं द्विजोत्तम।
तदलब्धवतीं मन्दां किं मां वक्ष्यति वासुकिः ॥ ३३ ॥

हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! जिस अभिप्रायसे मेरे भाईने आपसे मेरा विवाह कराया था, उसे प्राप्त न करनेवाली मुझ मन्द भाग्यवालीसे वासुकि क्या कहेगा ? ॥ ३३ ॥

मातृशापाभिभूतानां ज्ञातीनां मम सत्तम।
अपत्यमीप्सितं त्वत्तस्तच्च तावन्न दृश्यते ॥ ३४ ॥

हे साधुश्रेष्ठ ! माताके शापसे कातर मेरे स्वगणोंने आपके वीर्यसे मेरे गर्भमें एक सन्तानकी इच्छा की थी जो मुझे दिखाई नहीं देती ॥ ३४ ॥

त्वत्तो ह्यपत्यलाभेन ज्ञातीनां मे शिवं भवेत्।
संप्रयोगो भवेन्नायं मम मोघस्त्वया द्विज ॥ ३५ ॥

आपके वीर्यसे पुत्र उत्पन्न होनेसे मेरे स्वगणोंका मंगल होगा, अतः हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे साथ मेरा यह मिलन व्यर्थ न हो ॥ ३५ ॥

ज्ञातीनां हितमिच्छन्ती भगवंस्त्वां प्रसादये।
इममव्यक्तरूपं मे गर्भमाधाय सत्तम।
कथं त्यक्त्वा महात्मा सन्गन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! मैं स्वजनोंके हितकी इच्छासे प्रार्थना करती हूं कि आप प्रसन्न होवें। हे साधुश्रेष्ठ ! यह अव्यक्तरूप गर्भ मेरे अन्दर स्थापित करके तुम महात्मा क्यों निर्दोषी पत्नीको तजकर जाना चाहते हो" ॥ ३६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्तस्तु स मुनिर्भार्यां वचनमब्रवीत् ।
यद्युक्तमनुरूपं च जरत्कारुस्तपोधनः ॥ ३७ ॥

पत्नीकी ऐसी बातें सुनकर तपोधन मुनि जरत्कारुने पत्नीसे कालोचित वचन कहे ॥ ३७ ॥

अस्त्येष गर्भः सुभगे तव वैश्वानरोपमः ।
ऋषिः परमधर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३८ ॥

" हे सुभगे ! अग्निके समान तेजस्वी, परम धार्मिक, वेदवेदाङ्गोंमें निपुण एक ऋषि तुम्हारे गर्भमें विराज रहे हैं " ॥ ३८ ॥

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा जरत्कारुर्महानृषिः ।
उग्राय तपसे भूयो जगाम कृतनिश्चयः । ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ १५५५ ॥

धर्मात्मा महर्षि जरत्कारु पत्नीसे यह कहकर फिर कठोर तप करनेका प्रण ठानकर चले गये ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तैतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ १५५५ ॥

: ४४ :

सूत उवाच

गतमात्रं तु भर्तारं जरत्कारुरवेदयत् ।
भ्रातुस्त्वरितमागम्य यथातथ्यं तपोधन ॥ १ ॥

सूत बोले– हे तपोधन शौनक ! पतिके जाते ही जरत्कारुने भाईके निकट शीघ्र जाकर संपूर्ण वृत्तान्त ठीक ठीक कह सुनाया ॥ १ ॥

ततः स भुजगश्रेष्ठः श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
उवाच भगिनीं दीनां तदा दीनतरः स्वयम् ॥ २ ॥

तब वह सर्पश्रेष्ठ वासुकि इस अत्यन्त अप्रिय बातको सुनकर स्वयं भी दीन होते हुए दीना बहिनसे बोला ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जानासि भद्रे यत्कार्यं प्रदाने कारणं च यत्।
पन्नगानां हितार्थाय पुत्रस्ते स्यात्ततो यदि ॥ ३ ॥
स सर्पसत्रात्किल नो मोक्षयिष्यति वीर्यवान्।
एवं पितामहः पूर्वमुक्तवान्मां सुरैः सह ॥ ४ ॥

"हे भद्रे! हमारा जो अभिप्राय है और जिस अभिप्रायसे तुम्हारा विवाह किया था, वह तो तुम जानती हो; सर्पोंके हितके निमित्त तुम्हारे (गर्भमें उस ऋषिके वीर्यसे) यदि एक पुत्रका जन्म हो तो वह वीर्यवान् पुत्र हम सर्पोंको सर्पयज्ञसे बचावेगा, यह बात पितामह प्रजापतिने पूर्वकालमें देवोंके साथ मुझसे कही थी ॥ ३-४ ॥

अप्यस्ति गर्भः सुभगे तस्मात्ते मुनिसत्तमात्।
न चेच्छाम्यफलं तस्य दारकर्म मनीषिणः ॥ ५ ॥

हे सुभगे! उस मुनिश्रेष्ठसे तुम्हारे गर्भ स्थिर हुआ है वा नहीं? मैं चाहता हूं कि उस बुद्धिमान् ऋषिका विवाह कर्म निष्फल न होवे ॥ ५ ॥

कामं च मम न न्याय्यं प्रष्टुं त्वां कार्यमीदृशम्।
किं तु कार्यगरीयस्त्वात्ततस्त्वाहमचूचुदम् ॥ ६ ॥

यद्यपि तुमसे ऐसा प्रश्न करना मेरे लिये अनुचित है तो भी इसे अपना गुरुकार्य जानके ही ऐसा अनुचित प्रश्न कर रहा हूं ॥ ६ ॥

दुर्वासतां विदित्वा च भर्तुस्तेऽतितपस्विनः।
नैनमन्वागमिष्यामि कदाचिद्धि शपेत्स माम् ॥ ७ ॥

महातपस्वी तुम्हारे पतिके क्रोधको जानकर मैं उनके पीछे नहीं जा रहा हूं शायद वह मुझे शाप भी दे दें ॥ ७ ॥

आचक्ष्व भद्रे भर्तुस्त्वं सर्वमेव विचेष्टितम्।
शल्यमुद्धर मे घोरं भद्रे हृदि चिरस्थितम् ॥ ८ ॥

भद्रे! अपने पतिके संपूर्ण कार्योंको विशेष रीतिसे कहो और हे भद्रे! मेरे हृदयमें बहुत दिनोंसे गडे हुए इस कठोर शल्यको उखाड डालो" ॥ ८ ॥

जरत्कारुस्ततो वाक्यमित्युक्ता प्रत्यभाषत।
आश्वासयन्ती संतप्तं वासुकिं पन्नगेश्वरम् ॥ ९ ॥

जरत्कारु यह बात सुनकर दुःखसे कातर सर्पपति वासुकिको ढाढस देकर बोली ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पृष्टो मयापत्यहेतोः स महात्मा महातपाः ।
अस्तीत्युदरमुद्दिश्य ममेदं गतवांश्च सः ॥ १० ॥

मैंने उस महात्मा महातपस्वी पतिसे सन्तानकी बात पूछी थी, उस पर वह मुझे "सन्तान तेरे गर्भमें है" यह उत्तर देकर चले गए ॥ १० ॥

स्वैरेष्वपि न तेनाहं स्मरामि वितथं क्वचित् ।
उक्तपूर्वं कुतो राजन्सांपराये स वक्ष्यति ॥ ११ ॥

मुझको स्मरण है, कि उन्होंने हंसीमें भी कभी पहले झूठ नहीं कहा फिर इस विपत्तिके समय झूठ क्यों बोलेंगे ॥ ११ ॥

न संतापस्त्वया कार्यः कार्यं प्रति भुजङ्गमे ।
उत्पत्स्यति हि ते पुत्रो ज्वलनार्कसमद्युतिः ॥ १२ ॥

(उन्होंने मुझे कहा है कि) हे भुजंगमे ! तुम अपने प्रयोजनके लिए संताप न करो, क्योंकि तुम्हारे अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वा हि स मां भ्रातर्गतो भर्ता तपोवनम् ।
तस्माद्व्यतु परं दुःखं तवेदं मनसि स्थितम् ॥ १३ ॥

हे भाई ! मेरे वह पति यह कह करके तपोवन चले गये; अतएव तुम्हारे मनमें स्थित यह परम दुःख दूर हो ॥ १३ ॥

एतच्छ्रुत्वा स नागेन्द्रो वासुकिः परया मुदा ।
एवमस्त्विति तद्वाक्यं भगिन्याः प्रत्यगृह्णत ॥ १४ ॥

नागनाथ वासुकिने यह बात सुनकर बहुत आनन्दसे "एवमस्तु" कहकर बहिनकी वह बात मान ली ॥ १४ ॥

सान्त्वमानार्थदानैश्च पूजया चानुरूपया ।
सोदर्यां पूजयामास स्वसारं पन्नगोत्तमः ॥ १५ ॥

इसके बाद सांपोंमें श्रेष्ठ वासुकिने शान्त हुई हुई अपनी बहिनको धन देकर यथोचित पूजासे सम्मान किया ॥ १५ ॥

ततः स ववृधे गर्भो महातेजा रविप्रभः ।
यथा सोमो द्विजश्रेष्ठ शुक्लपक्षोदितो दिवि ॥ १६ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! आकाशमें उदय हुए शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान सूर्यके प्रकाशके समान बडा तेजोवान् वह गर्भ दिनोंदिन बढने लगा ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यथाकालं तु सा ब्रह्मन्प्रजज्ञे भुजगस्वसा।
कुमारं देवगर्भाभं पितृमातृभयापहम् ॥ १७ ॥

हे ब्रह्मन्! आगे समय आने पर उस सर्पकी बहिनने पितृमातृकुलोंके भयके नाशक देवगर्भके समान तेजस्वी एक पुत्रका प्रसव किया ॥ १७ ॥

ववृधे स च तत्रैव नागराजनिवेशने।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान्भार्गवाच्च्यवनात्मजात् ॥ १८ ॥

कुमार उस नागराजके घरमें ही बढने लगा तथा च्यवनके पुत्र भार्गवसे वह अंगोंसे सहित वेदोंको पढने लगा ॥ १८ ॥

चरितव्रतो बाल एव बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः।
नाम चास्याभवत्ख्यातं लोकेष्वास्तीक इत्युत ॥ १९ ॥

वह बालपनहीसे सत्त्वगुणवाली बुद्धिसे युक्त और व्रतनिष्ठ था। वह "आस्तीक" नामसे लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ ॥ १९ ॥

अस्तीत्युक्त्वा गतो यस्मात्पिता गर्भस्थमेव तम्।
वनं तस्मादिदं तस्य नामास्तीकेति विश्रुतम् ॥ २० ॥

वह जब गर्भमें था, तब उसके पिता "अस्ति" यह बात कहकर वनको सिधारे थे, इस लिये उसका नाम आस्तीक हुआ ॥ २० ॥

स बाल एव तत्रस्थश्चरन्नमितबुद्धिमान्।
गृहे पन्नगराजस्य प्रयत्नात्पर्यरक्ष्यत ॥ २१ ॥

असाधारण बुद्धिमान् आस्तीक बालपनमें सर्पराजके घरमें रहकर वासुकिके यत्नसे भली भांति रक्षित हुए ॥ २१ ॥

भगवानिव देवेशः शूलपाणिर्हिरण्यदः।
विवर्धमानः सर्वांस्तान्पन्नगानभ्यहर्षयत् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ १५७७ ॥

प्रकाशमान् भगवान् देवोंके देव शूलधारीके समान दिनोंदिन बढता हुआ सम्पूर्ण सर्पोंको आनन्द देने लगे ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ ॥ १५७७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ४५ :

शौनक उवाच

यदपृच्छत्तदा राजा मन्त्रिणो जनमेजयः।
पितुः स्वर्गगतिं तन्मे विस्तरेण पुनर्वद ॥ १ ॥

शौनक बोले– राजा जनमेजयने पिताके परलोक जानेके विषयमें मन्त्रियोंसे जो कुछ पूछा था, उसे फिर विस्तारपूर्वक कहो ॥ १ ॥

सूत उवाच

शृणु ब्रह्मन्यथा पृष्टा मन्त्रिणो नृपतेस्तदा।
आख्यातवन्तस्ते सर्वे निधनं तत्परिक्षितः ॥ २ ॥

सूत बोले– ब्रह्मन्! राजाने मन्त्रियोंसे जैसा पूछा था और मन्त्रियोंने परिक्षित्की स्वर्ग-प्राप्तिके विषयमें जैसा वर्णन किया था वह सुनिये ॥ २ ॥

जनमेजय उवाच

जानन्ति तु भवन्तस्तद्यथावृत्तः पिता मम।
आसीद्यथा च निधनं गतः काले महायशाः ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा– "हे मन्त्रियो! मेरे पिताका जैसा चरित्र था और वह महायशस्वी नरेश कालवश जिस प्रकार मृत्युको प्राप्त हुए, वह आप भली प्रकार जानते हैं ॥ ३ ॥

श्रुत्वा भवत्सकाशाद्धि पितुर्वृत्तमशेषतः।
कल्याणं प्रतिपत्स्यामि विपरीतं न जातुचित् ॥ ४ ॥

मैं आपसे पिताका सम्पूर्ण चरित्र सुनकर जैसे मङ्गल हो सके वही करूंगा, उसके विपरीत कभी भी कुछ भी नहीं करूंगा" ॥ ४ ॥

सूत उवाच

मन्त्रिणोऽथाब्रुवन्वाक्यं पृष्टास्तेन महात्मना।
सर्वधर्मविदः प्राज्ञा राजानं जनमेजयम् ॥ ५ ॥

सूत बोले– उस महात्माके इस प्रकार पूछनेपर सब धर्मोंको जाननेवाले और बुद्धिमान् मन्त्रियोंने राजा जनमेजयसे कहा ॥ ५ ॥

धर्मात्मा च महात्मा च प्रजापालः पिता तव।
आसीदिह यथावृत्तः स महात्मा शृणुष्व तत् ॥ ६ ॥

"आपके पिता जैसे धर्मात्मा, महात्मा तथा प्रजापालक थे, तथा वे महात्मा जिस प्रकार चरित्रवान् होकर यहां रहे, वह हम कहते हैं, सुनो ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं स कृत्वा पर्यरक्षत ।
धर्मतो धर्मविद्राजा धर्मो विग्रहवानिव ॥ ७ ॥

धर्मशील राजा साक्षात् धर्मके अवतारके समान धर्म–पथका अवलम्बन करके चारों वर्णोंको निज निज धर्ममें स्थापित करके प्रजाकी रक्षा करते थे ॥ ७ ॥

ररक्ष पृथिवीं देवीं श्रीमानतुलविक्रमः ।
द्वेष्टारस्तस्य नैवासन्स च न द्वेष्टि कंचन ।
समः सर्वेषु भूतेषु प्रजापतिरिवाभवत् ॥ ८ ॥

अतुल विक्रमी श्रीमान् राजा पृथ्वीदेवीकी भली प्रकार रक्षा करते थे; उनका द्वेषी कोई नहीं था; वह भी किसीसे द्वेष नहीं करते थे; वह प्रजापतिके समान सब प्रजाको समान दृष्टिसे देखते थे और कभी पक्षपात नहीं करते थे ॥ ८ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव स्वकर्मसु ।
स्थिताः सुमनसो राजंस्तेन राज्ञा स्वनुष्ठिताः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब राजासे सुरक्षित होकर प्रसन्नचित्तसे अपने अपने कार्यमें लगे रहते थे ॥ ९ ॥

विधवानाथकृपणान्विकलांश्च बभार सः ।
सुदर्शः सर्वभूतानामासीत्सोम इवापरः ॥ १० ॥

वह विधवा, अनाथ, दीन दुःखियोंका पोषण करते थे और दूसरे चन्द्रमाकी भांति सब प्रजाओंके नेत्रोंके लिए आनन्ददायी थे ॥ १० ॥

तुष्टपुष्टजनः श्रीमान्सत्यवाग्दृढविक्रमः ।
धनुर्वेदे तु शिष्योऽभून्नृपः शारद्वतस्य सः ॥ ११ ॥

उस श्रीमान्, सत्यवादी, दृढविक्रमी, महीपालसे सब लोग ही प्रसन्न और पुष्ट होते थे; हे जनमेजय ! ऐसे गुणवान् आपके पिता धनुर्वेदमें शारद्वतके शिष्य थे ॥ ११ ॥

गोविन्दस्य प्रियश्चासीत्पिता ते जनमेजय ।
लोकस्य चैव सर्वस्य प्रिय आसीन्महायशाः ॥ १२ ॥

हे जनमेजय ! आपके पिता गोविन्दके प्रियपात्र थे; वे महायशस्वी सभी लोगोंके प्रिय थे ॥ १२ ॥

परिक्षीणेषु कुरुषु उत्तरायामजायत ।
परिक्षिदभवत्तेन सौभद्रस्यात्मजो बली ॥ १३ ॥

कुरुकुलके क्षय हो जाने पर अभिमन्युके पुत्र उस बलवान् परिक्षित्ने उत्तराके गर्भसे जन्म लिया था, इस हेतु उनका नाम परिक्षित् पड़ा ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राजधर्मार्थकुशलो युक्तः सर्वगुणैर्नृपः ।
जितेन्द्रियश्चात्मवांश्च मेधावी वृद्धसेवितः ॥ १४ ॥

वे राजा राजधर्म और अर्थमें निपुण, सर्व गुणोंसे भूषित, जितेन्द्रिय, आत्मवान् मेधायुक्त तथा वृद्धों द्वारा सेवित थे ॥ १४ ॥

षड्वर्गविन्महाबुद्धिर्नीतिधर्मविदुत्तमः ।
प्रजा इमास्तव पिता षष्टिं वर्षाण्यपालयत् ।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्पेणानतिवर्तितम् ॥ १५ ॥

कामक्रोधादिके अवशीभूत, महाबुद्धियुक्त और नीति और धर्ममें अच्छे पण्डित आपके पिताने साठ वर्षतक इन प्रजाओंका पालन किया। फिर सर्पके द्वारा काट लिए जाने पर मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

ततस्त्वं पुरुषश्रेष्ठ धर्मेण प्रतिपेदिवान् ।
इदं वर्षसहस्राय राज्यं कुरुकुलागतम् ।
बाल एवाभिजातोऽसि सर्वभूतानुपालकः ॥ १६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! उसके पश्चात् आपने कुरुकुलसे क्रमागत इस राज्यको हजार वर्षोंतक शासन करनेके लिए धर्मानुसार प्राप्त किया है और बालपनहीसे आप संपूर्ण प्रजाके पालक हुए हैं ॥ १६ ॥

जनमेजय उवाच

नास्मिन्कुले जातु बभूव राजा यो न प्रजानां हितकृत्प्रियश्च ।
विशेषतः प्रेक्ष्य पितामहानां वृत्तं महद्वृत्तपरायणानाम् ॥ १७ ॥

जनमेजय बोले– लोकोंमें असाधारण कीर्तिमान् पिछले पितामहोंके चरित्रोंको जानकर मुझे ज्ञात होता है कि इस वंशमें कभी ऐसा कोई राजा नहीं हुआ कि जो प्रजाओंका हित और उनका प्रिय करनेवाला न हुआ हो ॥ १७ ॥

कथं निधनमापन्नः पिता मम तथाविधः ।
आचक्षध्वं यथावन्मे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १८ ॥

अतएव मैं यह सुनना चाहता हूं, कि वैसे गुणशील होने पर भी मेरे पिता किस हेतु मृत्युको प्राप्त हुए; तुम यथावत् कहो ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं स कृत्वा पर्यरक्षत ।
धर्मतो धर्मविद्राजा धर्मो विग्रहवानिव ॥ ७ ॥

धर्मशील राजा साक्षात् धर्मके अवतारके समान धर्म–पथका अवलम्बन करके चारों वर्णोंको निज निज धर्ममें स्थापित करके प्रजाकी रक्षा करते थे ॥ ७ ॥

ररक्ष पृथिवीं देवीं श्रीमानतुलविक्रमः ।
द्वेष्टारस्तस्य नैवासन्स च न द्वेष्टि कंचन ।
समः सर्वेषु भूतेषु प्रजापतिरिवाभवत् ॥ ८ ॥

अतुल विक्रमी श्रीमान् राजा पृथ्वीदेवीकी भली प्रकार रक्षा करते थे; उनका द्वेषी कोई नहीं था; वह भी किसीसे द्वेष नहीं करते थे; वह प्रजापतिके समान सब प्रजाको समान दृष्टिसे देखते थे और कभी पक्षपात नहीं करते थे ॥ ८ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव स्वकर्मसु ।
स्थिताः सुमनसो राजंस्तेन राज्ञा स्वनुष्ठिताः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब राजासे सुरक्षित होकर प्रसन्नचित्तसे अपने अपने कार्यमें लगे रहते थे ॥ ९ ॥

विधवानाथकृपणान्विकलांश्च बभार सः ।
सुदर्शः सर्वभूतानामासीत्सोम इवापरः ॥ १० ॥

वह विधवा, अनाथ, दीन दुःखियोंका पोषण करते थे और दूसरे चन्द्रमाकी भांति सब प्रजाओंके नेत्रोंके लिए आनन्ददायी थे ॥ १० ॥

तुष्टपुष्टजनः श्रीमान्सत्यवाग्दृढविक्रमः ।
धनुर्वेदे तु शिष्योऽभून्नृपः शारद्वतस्य सः ॥ ११ ॥

उस श्रीमान्, सत्यवादी, दृढविक्रमी, महीपालसे सब लोग ही प्रसन्न और पुष्ट होते थे; हे जनमेजय ! ऐसे गुणवान् आपके पिता धनुर्वेदमें शारद्वतके शिष्य थे ॥ ११ ॥

गोविन्दस्य प्रियश्चासीत्पिता ते जनमेजय ।
लोकस्य चैव सर्वस्य प्रिय आसीन्महायशाः ॥ १२ ॥

हे जनमेजय ! आपके पिता गोविन्दके प्रियपात्र थे; वे महायशस्वी सभी लोगोंके प्रिय थे ॥ १२ ॥

परिक्षीणेषु कुरुषु उत्तरायामजायत ।
परिक्षिदभवत्तेन सौभद्रस्यात्मजो बली ॥ १३ ॥

कुरुकुलके क्षय हो जाने पर अभिमन्युके पुत्र उस बलवान् परिक्षित्ने उत्तराके गर्भसे जन्म लिया था, इस हेतु उनका नाम परिक्षित् पडा ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राजधर्मार्थकुशलो युक्तः सर्वगुणैर्नृपः ।
जितेन्द्रियश्चात्मवांश्च मेधावी वृद्धसेवितः ॥ १४ ॥

वे राजा राजधर्म और अर्थमें निपुण, सर्व गुणोंसे भूषित, जितेन्द्रिय, आत्मवान् मेधायुक्त तथा वृद्धों द्वारा सेवित थे ॥ १४ ॥

षड्वर्गविन्महाबुद्धिर्नीतिधर्मविदुत्तमः ।
प्रजा इमास्तव पिता षष्टिं वर्षाण्यपालयत् ।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्पेणानतिवर्तितम् ॥ १५ ॥

कामक्रोधादिके अवशीभूत, महाबुद्धियुक्त और नीति और धर्ममें अच्छे पण्डित आपके पिताने साठ वर्षतक इन प्रजाओंका पालन किया। फिर सर्पके द्वारा काट लिए जाने पर मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

ततस्त्वं पुरुषश्रेष्ठ धर्मेण प्रतिपेदिवान् ।
इदं वर्षसहस्राय राज्यं कुरुकुलागतम् ।
बाल एवाभिजातोऽसि सर्वभूतानुपालकः ॥ १६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! उसके पश्चात् आपने कुरुकुलसे क्रमागत इस राज्यको हजार वर्षोंतक शासन करनेके लिए धर्मानुसार प्राप्त किया है और बालपनहीसे आप संपूर्ण प्रजाके पालक हुए हैं ॥ १६ ॥

जनमेजय उवाच

नास्मिन्कुले जातु बभूव राजा यो न प्रजानां हितकृत्प्रियश्च ।
विशेषतः प्रेक्ष्य पितामहानां वृत्तं महद्वृत्तपरायणानाम् ॥ १७ ॥

जनमेजय बोले– लोकोंमें असाधारण कीर्तिमान् पिछले पितामहोंके चरित्रोंको जानकर मुझे ज्ञात होता है कि इस वंशमें कभी ऐसा कोई राजा नहीं हुआ कि जो प्रजाओंका हित और उनका प्रिय करनेवाला न हुआ हो ॥ १७ ॥

कथं निधनमापन्नः पिता मम तथाविधः ।
आचक्षध्वं यथावन्मे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १८ ॥

अतएव मैं यह सुनना चाहता हूं, कि वैसे गुणशील होने पर भी मेरे पिता किस हेतु मृत्युको प्राप्त हुए; तुम यथावत् कहो ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

एवं संचोदिता राज्ञा मन्त्रिणस्ते नराधिपम्।
ऊचुः सर्वे यथावृत्तं राज्ञः प्रियहिते रताः ॥ १९ ॥

सूत बोले– राजाके हितैषी मन्त्रीगण राजासे इस प्रकार पूछे जाकर राजासे यथाविधि आद्योपान्त वृत्तान्त कहने लगे ॥ १९ ॥

बभूव मृगयाशीलस्तव राजन्पिता सदा।
यथा पाण्डुर्महाभागो धनुर्धरवरो युधि।
अस्मास्वासज्य सर्वाणि राजकार्याण्यशेषतः ॥ २० ॥

हे राजन्! जिस प्रकार पाण्डु थे, उसी प्रकार युद्धमें धनुष धारण करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तुम्हारे पिता सारे राज्यकार्योंको हम पर सौंप कर सदा ही शिकार खेलनेमें व्यस्त रहते थे ॥ २० ॥

स कदाचिद्वनचरो मृगं विव्याध पत्रिणा।
विद्ध्वा चान्वसरत्तूर्णं तं मृगं गहने वने ॥ २१ ॥

राजाने एक दिन उस वनमें विचरनेवाले बाणसे एक हिरणको मारा तथा उसे मार कर वह राजा भी उस घने वनमें उस हिरणके पीछे लग गया ॥ २१ ॥

पदातिर्बद्धनिस्त्रिंशस्ततायुधकलापवान्।
न चाससाद गहने मृगं नष्टं पिता तव ॥ २२ ॥

खड्गको कमरमें बांधे तरकशसे सजधज कर पैदल चलनेवाले तुम्हारे पिता उस घने वनमें गायब हुए हुए हिरणको प्राप्त नहीं कर पाये ॥ २२ ॥

परिश्रान्तो वयःस्थश्च षष्टिवर्षो जरान्वितः।
क्षुधितः स महारण्ये ददर्श मुनिमन्तिके ॥ २३ ॥

वह साठ वर्षकी आयुमें पहुंचे थे और बूढे हो गये थे, इस हेतु थक गये और भूखसे कातर होकर उन्होंने उस घोर वनमें पासमें एक मुनिको देखा ॥ २३ ॥

स तं पप्रच्छ राजेंद्रो मुनिं मौनव्रतान्वितम्।
न च किंचिदुवाचैनं स मुनिः पृच्छतोऽपि सन् ॥ २४ ॥

मौनव्रतका अवलम्बन किये हुए उस मुनिको राजाने (भागे हुए मृगके बारेमें) पूछा। पर पूछे जानेपर भी उस मुनिने इस राजाको कोई उत्तर नहीं दिया ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो राजा क्षुच्छ्रमार्तस्तं मुनिं स्थाणुवत्स्थितम् ।
मौनव्रतधरं शान्तं सद्यो मन्युवशं ययौ ॥ २५ ॥

तब भूख और थकावटसे कातर राजा खम्भेके समान बैठे हुए मौनव्रतधारी उस ऋषिको बात न बोलते देखकर उसीक्षण क्रोधयुक्त हो गये ॥ २५ ॥

न बुबोध हि तं राजा मौनव्रतधरं मुनिम् ।
स तं मन्युसमाविष्टो धर्षयामास ते पिता ॥ २६ ॥

आपके पिता नहीं जानते थे, कि वह मुनि मौनव्रत धारण किये हुए हैं, इससे उन्होंने क्रोध-युक्त होकर उनका अपमान किया ॥ २६ ॥

मृतं सर्पं धनुष्कोट्या समुत्क्षिप्य धरातलात् ।
तस्य शुद्धात्मनः प्रादात्स्कन्धे भरतसत्तम ॥ २७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! राजाने धनुषकी नोकसे धरती परसे एक मृत सर्पको उठाकर उस पवित्रात्मा मुनिके गलेमें लपेट दिया ॥ २७ ॥

न चोवाच स मेधावी तमथो साध्वसाधु वा ।
तस्थौ तथैव चाक्रुध्यन्सर्पं स्कन्धेन धारयन् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ १६०५ ॥

तब भी उस मेधायुक्त मुनिने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा, और उस राजा पर जरा भी क्रोध न करके वे अपने गलेमें मरे सर्पको लपेटे उसी प्रकार बैठे रहे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ १६०५ ॥

: ४६ :

मन्त्रिण ऊचुः

ततः स राजा राजेन्द्र स्कन्धे तस्य भुजङ्गमम् ।
मुनेः क्षुत्क्षाम आसज्य स्वपुरं पुनराययौ ॥ १ ॥

मन्त्रीगण बोले– हे राजेन्द्र ! आपके पिता यह राजा भूखसे कातर होकर और उस मुनिके गलेमें मृत सर्प लपेट कर नगरमें लौट आये ॥ १ ॥

ऋषेस्तस्य तु पुत्रोऽभूद्भवि जातो महायशाः ।
शृङ्गी नाम महातेजास्तिग्मवीर्योऽतिकोपनः ॥ २ ॥

उस ऋषिके गौके गर्भसे जन्म लिये हुए महायशस्वी, महातेजस्वी, तीक्ष्ण वीर्यवाले और अति क्रोधी शृंगी नामक एक पुत्र थे ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्माणं सोऽभ्युपागम्य मुनिः पूजां चकार ह।
अनुज्ञातो गतस्तत्र शृङ्गी शुश्राव तं तदा।
सख्युः सकाशात्पितरं पित्रा ते धर्षितं तथा ॥ ३ ॥

उस शृंगी मुनिने ब्रह्माके निकट जाकर उनकी पूजा की। उनकी आज्ञासे आश्रमको लौटे आ रहे थे कि पथमें अपने साथीसे तुम्हारे पिताके द्वारा किए गए अपने पिताके अपमानकी बात सुनी ॥ ३ ॥

मृतं सर्पं समासक्तं पित्रा ते जनमेजय।
वहन्तं कुरुशार्दूल स्कन्धेनानपकारिणम् ॥ ४ ॥

हे कुरुओंमें सिंहवत् जनमेजय! तुम्हारे पिताने अपकार न करनेवाले मुनिके गलेमें मरा सर्प लपेट दिया है और वे मुनि उसी प्रकार अपने गलेमें मरे सर्पको डाले बैठे हैं ॥४॥

तपस्विनमतीवाथ तं मुनिप्रवरं नृप।
जितेन्द्रियं विशुद्धं च स्थितं कर्मण्यथाद्भुते ॥ ५ ॥

हे राजन्! वह मुनि तपस्वी, मुनिश्रेष्ठ जितेन्द्रिय विशुद्ध तथा तपरूपी अद्भुत कर्ममें रत थे ॥ ५ ॥

तपसा द्योतितात्मानं स्वेष्वङ्गेषु यतं तथा।
शुभाचारं शुभकथं सुस्थितं तमलोलुपम् ॥ ६ ॥

तपस्यासे प्रकाशमान आत्मावाले, तथा अपने अंगोंमें रत, सदा शुभाचारमें रत, सत्क्रियामें स्थित, लोभवर्जित, सुस्थित ॥ ६ ॥

अक्षुद्रमनसूयं च वृद्धं मौनव्रते स्थितम्।
शरण्यं सर्वभूतानां पित्रा विप्रकृतं तव ॥ ७ ॥

अक्षुद्र, असूयारहित वृद्ध, मौनव्रतमें स्थित सर्वभूतोंको शरण देने योग्य मुनिका तुम्हारे पिताने अपमान किया ॥ ७ ॥

शशापाथ स तच्छ्रुत्वा पितरं ते रुषान्वितः।
ऋषेः पुत्रो महातेजा बालोऽपि स्थविरैर्वरः ॥ ८ ॥

बालक होते हुए भी वृद्धोंके द्वारा वरणीय महातेजस्वी उस ऋषिके पुत्रने यह सुनकर क्रोधित हो तुम्हारे पिताको शाप दिया ॥ ८ ॥

स क्षिप्रमुदकं स्पृष्ट्वा रोषादिदमुवाच ह।
पितरं तेऽभिसंधाय तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ९ ॥

तेजसे जलते हुएके समान उसने क्रोधसे शीघ्र ही जल छूकर तेरे पिताको लक्ष्य करके यह कहा ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनागसि गुरौ यो मे मृतं सर्पमवासृजत् ।
तं नागस्तक्षकः क्रुद्धस्तेजसा सादयिष्यति ।
सप्तरात्रादितः पापं पश्य मे तपसो बलम् ॥ १० ॥

कि जिसने बिना अपराधवाले मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प डाला है, उस पापीको क्रुद्ध तक्षक सर्प आजसे सातवीं रात तेजसे जला देगा; हे मित्र! मेरे तपोबलको देखो ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र पिता यत्रास्य सोऽभवत् ।
दृष्ट्वा च पितरं तस्मै शापं तं प्रत्यवेदयत् ॥ ११ ॥

शृंगी यह बात कहकर जहां उसके पिता थे, वहां गए और पिताको देखकर उससे शाप देनेका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ११ ॥

स चापि मुनिशार्दूलः प्रेषयामास ते पितुः ।
शप्तोऽसि मम पुत्रेण यत्तो भव महीपते ।
तक्षकस्त्वां महाराज तेजसा सादयिष्यति ॥ १२ ॥

उस मुनिशार्दूल शमीकने आपके पिताके निकट यह समाचार भेजा कि हे राजन्! मेरे पुत्रने तुमको शाप दिया है। सावधान हो जाओ, हे महाराज! तक्षक तुमको तेज द्वारा जलायेगा ॥ १२ ॥

श्रुत्वा तु तद्वचो घोरं पिता ते जनमेजय ।
यत्तोऽभवत्परित्रस्तस्तक्षकात्पन्नगोत्तमात् ॥ १३ ॥

हे जनमेजय! तुम्हारे पिता यह कठोर बात सुनकर नागोत्तम तक्षकके भयसे डरकर सावधान हो गए ॥ १३ ॥

ततस्तस्मिंस्तु दिवसे सप्तमे समुपस्थिते ।
राज्ञः समीपं ब्रह्मर्षिः काश्यपो गन्तुमैच्छत ॥ १४ ॥

अनन्तर उस सातवें दिनके आनेपर महर्षि काश्यपने राजाके समीप जानेकी इच्छा की ॥ १४ ॥

तं ददर्शाथ नागेन्द्रः काश्यपं तक्षकस्तदा ।
तमब्रवीत्पन्नगेन्द्रः काश्यपं त्वरितं व्रजन् ।
क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति ॥ १५ ॥

तब पथमें नागराज तक्षकने उस काश्यपको देखा। सर्पनाथ तक्षक जल्दी जल्दी जाते हुए उस काश्यपसे बोला— "हे द्विज! आप शीघ्रतापूर्वक कहां जा रहे हैं? और क्या कार्य करना चाहते हैं?" ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

काश्यप उवाच

यत्र राजा कुरुश्रेष्ठः परिक्षिन्नाम वै द्विज।
तक्षकेण भुजङ्गेन धक्ष्यते किल तत्र वै ॥ १६ ॥

काश्यपने उत्तर दिया– "हे विप्र! आज नागराज तक्षक कुरुश्रेष्ठ राजा परिक्षितको जहां तेजसे जलावेगा ॥ १६ ॥

गच्छाम्यहं तं त्वरितः सद्यः कर्तुमपज्वरम्।
मयाभिपन्नं तं चापि न सर्पो धर्षयिष्यति ॥ १७ ॥

मैं उसे शीघ्र ही आरोग्यसे युक्त करनेके अभिप्रायसे शीघ्रतापूर्वक वहीं जा रहा हूं; मेरे द्वारा उस राजाके सुरक्षित होनेपर तक्षक उनका प्राण नहीं ले सकेगा" ॥ १७ ॥

तक्षक उवाच

किमर्थं तं मया दष्टं संजीवयितुमिच्छसि।
ब्रूहि काममहं तेऽद्य दद्मि स्वं वेश्म गम्यताम् ॥ १८ ॥

तक्षक बोला– "हे ब्रह्मन्! मेरे द्वारा काटे गए उसे तुम क्यों बचाना चाहते हो? तुम्हारी जो इच्छा हो वह कहो "मैं तुम्हें वह आज दूंगा, तुम अपने घर लौट जाओ" ॥ १८ ॥

मन्त्रिण ऊचुः

धनलिप्सुरहं तत्र यामीत्युक्तश्च तेन सः।
तमुवाच महात्मानं मानयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ १९ ॥

मंत्रियोंने कहा– उस कश्यपने उत्तर दिया कि मैं धन पानेकी आशासे वहां जा रहा हूं। तब तक्षकने उस महात्माका आदर करते हुए उससे मीठी बातोंसे कहा ॥ १९ ॥

यावद्धनं प्रार्थयसे तस्माद्राज्ञस्ततोऽधिकम्।
गृहाण मत्त एव त्वं संनिवर्तस्व चानघ ॥ २० ॥

"तुम उस राजासे जितना धन मांगोगे उससे भी अधिक धन तुम मुझसे ले लो और हे पापरहित! तुम लौट जाओ" ॥ २० ॥

स एवमुक्तो नागेन काश्यपो द्विपदां वरः।
लब्ध्वा वित्तं निववृते तक्षकाद्यावदीप्सितम् ॥ २१ ॥

नागसे इस प्रकार कहे जाने पर मानवोंमें श्रेष्ठ काश्यप तक्षकसे यथेच्छ धन पाकर लौट गये ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिन्प्रतिगते विप्रे छद्मनोपेत्य तक्षकः ।
तं नृपं नृपतिश्रेष्ठ पितरं धार्मिकं तव ॥ २२ ॥
प्रासादस्थं यत्तमपि दग्धवान्विषवह्निना ।
ततस्त्वं पुरुषव्याघ्र विजयायाभिषेचितः ॥ २३ ॥

तब उस ब्राह्मणके लौट जाने पर छद्मवेशमें जाकर तक्षकने राजाओंमें श्रेष्ठ उस तुम्हारे धार्मिक पिता राजाको सावधानतासे महलमें स्थित होने पर भी अपने विषकी अग्निसे जला दिया । हे पुरुषोंमें सिंह ! उसके पश्चात् आप विपक्षियोंको जीतनेके लिए उनके पदपर आरूढ हुए हैं ॥ २२–२३ ॥

एतद्दृष्टं श्रुतं चापि यथावन्नृपसत्तम ।
अस्माभिर्निखिलं सर्वं कथितं ते सुदारुणम् ॥ २४ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! हमने जो सब अति भयावनी लीला यथावत् देखी और सुनी है, वह सब हमने तुम्हें आद्योपान्त कह सुनाई है ॥ २४ ॥

श्रुत्वा चैतं नृपश्रेष्ठ पार्थिवस्य पराभवम् ।
अस्य चर्षेरुत्तङ्कस्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २५ ॥

हे नरनाथ ! अपने पिता और इस उत्तङ्क ऋषिकी पराजयका वृत्तान्त तो सुन चुके, अब इसके बाद जो उचित हो कीजिये ॥ २५ ॥

जनमेजय उवाच

एतत्तु श्रोतुमिच्छामि अटव्यां निर्जने वने ।
संवादं पन्नगेन्द्रस्य काश्यपस्य च यत्तदा ॥ २६ ॥

जनमेजय बोले– निर्जन वनमें काश्यप और सर्पनाथ तक्षकमें जो संवाद हुआ, उस संवादको मैं सुनना चाहता हूँ ॥ २६ ॥

केन दृष्टं श्रुतं चापि भवतां श्रोत्रमागतम् ।
श्रुत्वा चाथ विधास्यामि पन्नगान्तकरीं मतिम् ॥ २७ ॥

उस संवादको किसने देखा है वा किसने सुना है, अथवा वह तुम्हारे कानोंतक कैसे पहुंचा ? मैं यह सुनकर सर्पकुलका नाश करनेका विचार करूंगा ॥ २७ ॥

मन्त्रिण ऊचुः

शृणु राजन्यथास्माकं येनैतत्कथितं पुरा ।
समागमं द्विजेन्द्रस्य पन्नगेन्द्रस्य चाध्वनि ॥ २८ ॥

मन्त्रियोंने कहा– हे राजन् ! रास्तेमें काश्यप और तक्षकका यह मिलनवृत्तान्त जिसने हमसे जिस प्रकारसे कहा था, वह कहते हैं, सुनिये ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिन्वृक्षे नरः कश्चिदिन्धनार्थाय पार्थिव।
विचिन्वन्पूर्वमारूढः शुष्कशाखं वनस्पतिम्।
अबुध्यमानौ तं तत्र वृक्षस्थं पन्नगद्विजौ ॥ २९ ॥

हे पृथ्वीपते ! एक मनुष्य लकडीके निमित्त उस वृक्षपर सूखी शाखावाले वनस्पति बटोरनेके लिए पहले ही चढा हुआ, उस ब्राह्मण और तक्षकने वृक्ष पर चढे हुए उस मनुष्यको देखा नहीं था ॥ २९ ॥

स तु तेनैव वृक्षेण भस्मीभूतोऽभवत्तदा।
द्विजप्रभावाद्राजेन्द्र जीवितः सवनस्पतिः ॥ ३० ॥

हे राजन् ! वह मनुष्य भी तक्षककी विषाग्निसे उसी वृक्षके सहित भस्म हो गया था, आगे काश्यपके प्रभावसे वृक्षके साथ जी उठा ॥ ३० ॥

तेन गत्वा नृपश्रेष्ठ नगरेऽस्मिन्निवेदितम्।
यथावृत्तं तु तत्सर्वं तक्षकस्य द्विजस्य च ॥ ३१ ॥

हे राजाओंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! उस पुरुषने इस नगरमें जाकर तक्षक और ब्राह्मणका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा था ॥ ३१ ॥

एतत्ते कथितं राजन्यथावृत्तं यथाश्रुतम्।
श्रुत्वा तु नृपशार्दूल प्रकुरुष्व यथोप्सितम् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! हमने जो सुना है, वह सब तुमसे ठीक ठीक कह चुके हैं। हे राजसिंह ! इसे सुनकर जो अच्छा लगे, उसे कीजिये ॥ ३२ ॥

सूत उवाच

मन्त्रिणां तु वचः श्रुत्वा स राजा जनमेजयः।
पर्यतप्यत दुःखार्तः प्रत्यपिंषत्करे करम् ॥ ३३ ॥

सूत बोले– वह राजा जनमेजय मन्त्रियोंकी बात सुनकर दुःखसे अति कातर बहुत संताप करने लगे और हाथसे हाथ मलने लगे ॥ ३३ ॥

निःश्वासमुष्णमसकृद्दीर्घं राजीवलोचनः।
मुमोचाश्रूणि च तदा नेत्राभ्यां प्रततं नृपः।
उवाच च महीपालो दुःखशोकसमन्वितः ॥ ३४ ॥

और बार बार गर्म गर्म लम्बी सांस लेकर उस कमल जैसे नेत्रवाले राजा नेत्रोंसे आंसू गिराने लगा, दुःख और शोकसे युक्त होकर वह राजा मंत्रियोंसे बोला ॥ ३४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रुत्वैतद्भवतां वाक्यं पितुर्मे स्वर्गतिं प्रति ।
निश्चितेयं मम मतिर्या वै तां मे निबोधत ॥ ३५ ॥

मेरे पिताके परलोक सिधारनेके विषयमें तुम्हारी बातें सुनकर मैंने जो अपने विचार इस प्रकार निश्चित किए हैं, उन मेरे विचारोंको सुनो ॥ ३५ ॥

अनन्तरमहं मन्ये तक्षकाय दुरात्मने ।
प्रतिकर्तव्यमित्येव येन मे हिंसितः पिता ॥ ३६ ॥

मैंने यही सोचा है, कि जिसने मेरे पिताको मारा है, उस दुरात्मा तक्षकसे बदला लेना ही चाहिए ॥ ३६ ॥

ऋषेर्हि शृङ्गेर्वचनं कृत्वा दग्ध्वा च पार्थिवम् ।
यदि गच्छेदसौ पापो ननु जीवेत्पिता मम ॥ ३७ ॥

उसने शृङ्गी ऋषिके वचनका पालन कर मेरे पिताको जलाकर नष्ट किया है, यदि यह पापी नाशको प्राप्त हो तो मेरे पिता जीवित हो जाएं ॥ ३७ ॥

परिहीयेत किं तस्य यदि जीवेत्स पार्थिवः ।
काश्यपस्य प्रसादेन मन्त्रिणां सुनयेन च ॥ ३८ ॥

काश्यपके प्रसाद और मंत्रियोंकी उत्तम नीतिसे यदि वह राजा जी गये होते, तो उस (तक्षक) की कौनसी हानि हुई होती ? ॥ ३८ ॥

स तु वारितवान्मोहात्काश्यपं द्विजसत्तमम् ।
संजिजीवयिषुं प्राप्तं राजानमपराजितम् ॥ ३९ ॥

किसीसे पराजित न होनेवाले उस राजाको जीवित करनेकी इच्छासे आते हुए उन ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ काश्यपको उस नागने मूर्खतासे लौटा दिया ॥ ३९ ॥

महानतिक्रमो ह्येष तक्षकस्य दुरात्मनः ।
द्विजस्य योऽददद्द्रव्यं मा नृपं जीवयेदिति ॥ ४० ॥

ब्राह्मण राजाको जीवन न दे, इसलिये जिसने उन द्विजको धन दे दिया, उस दुरात्मा तक्षकका यह बडा अत्याचार है ॥ ४० ॥

उत्तङ्कस्य प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च महत्प्रियम् ।
भवतां चैव सर्वेषां यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ १६४६ ॥

अतएव मैं उत्तङ्कका प्रिय करनेके लिए तथा मेरे और तुम सबके हितका अनुष्ठान करनेके निमित्त पिताकी शत्रुताका बदला लूंगा ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ १६०६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ४७ :

सूत उवाच

एवमुक्त्वा ततः श्रीमान्मन्त्रिभिश्चानुमोदितः।
आरुरोह प्रतिज्ञां स सर्पसत्राय पार्थिवः।
ब्रह्मन्भरतशार्दूलो राजा पारिक्षितस्तदा ॥ १ ॥

सूत बोले– ब्रह्मन्! यह कहकर और मन्त्रियोंसे अनुमोदित होने पर उस भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ परिक्षित्के पुत्र श्रीमान् राजा जनमेजयने सर्पयज्ञ करनेका प्रण ठान लिया ॥ १ ॥

पुरोहितमथाहूय ऋत्विजं वसुधाधिपः।
अब्रवीद्वाक्यसंपन्नः संपदर्थकरं वचः ॥ २ ॥

और उस वचन बोलनेमें श्रेष्ठ राजाने पुरोहित और ऋत्विजोंको बुलवाकर सम्पत् प्राप्त करानेवाली यह बात कही ॥ २ ॥

यो मे हिंसितवांस्तातं तक्षकः स दुरात्मवान्।
प्रतिकुर्यां यथा तस्य तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ॥ ३ ॥

कि जिस दुरात्मा तक्षकने मेरे पिताकी हिंसा की है; मैं जिससे उसे उसका यथोचित प्रतिफल दे सकूं, ऐसा कोई उपाय आप मुझे बतायें ॥ ३ ॥

अपि तत्कर्म विदितं भवतां येन पन्नगम्।
तक्षकं संप्रदीप्तेऽग्नौ प्राप्स्येऽहं सहबान्धवम् ॥ ४ ॥

क्या आप ऐसे किसी विधानको जानते हैं कि जिससे नागराज तक्षकको बन्धुओंके साथ जलती हुई आगमें डाल सकूं ॥ ४ ॥

यथा तेन पिता मह्यं पूर्वं दग्धो विषाग्निना।
तथाहमपि तं पापं दग्धुमिच्छामि पन्नगम् ॥ ५ ॥

पहिले तक्षकने जिस प्रकारसे विषरूपी आगसे मेरे पिताको जलाया था, मैं भी उस पापी सांपको उसी प्रकार जलती हुई आगमें जलानेकी इच्छा करता हूँ ॥ ५ ॥

ऋत्विज ऊचुः

अस्ति राजन्महत्सत्रं त्वदर्थं देवनिर्मितम्।
सर्पसत्रमिति ख्यातं पुराणे कथ्यते नृप ॥ ६ ॥

ऋत्विक्गण बोले– हे राजन्! पुराणोंमें कहा है कि सर्पयज्ञ नामसे प्रसिद्ध एक महान् यज्ञ है; जिसे हे राजन्! देवताओंने आपहीके निमित्त रचा है ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आहर्ता तस्य सत्रस्य त्वन्नान्योऽस्ति नराधिप ।
इति पौराणिकाः प्राहुरस्माकं चास्ति स क्रतुः ॥ ७ ॥

पौराणिकलोग कहते हैं, कि आपके सिवाय कोई दूसरा राजा उस महायज्ञका अनुष्ठान नहीं कर सकेगा । हे महाराज ! हम लोग भी उस यज्ञके नियमोंको जानते हैं ॥ ७ ॥

सूत उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिर्मेने सर्पं हि तक्षकम् ।
हुताशनमुखं दीप्तं प्रविष्टमिति सत्तम ॥ ८ ॥

सूत बोले– हे सत्तम ! राजाने ऋत्विजोंकी यह बात सुनकर तक्षकको अग्निके मुंहमें पडा हुआ और जला हुआ ही समझा ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीन्मन्त्रविदस्तान्राजा ब्राह्मणांस्तदा ।
आहरिष्यामि तत्सत्रं संभाराः संभ्रियन्तु मे ॥ ९ ॥

तब उन मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंसे राजा बोला कि मैं उस सर्पयज्ञका अनुष्ठान करूंगा; आप लोग मेरे लिए सामग्री इकट्ठी कीजिये ॥ ९ ॥

ततस्ते ऋत्विजस्तस्य शास्त्रतो द्विजसत्तम ।
देशं तं मापयामासुर्यज्ञायतनकारणात्
यथावज्ज्ञानविदुषः सर्वे बुद्ध्या परं गताः ॥ १० ॥

हे द्विजसत्तम ! तब यज्ञस्थानके निमित्त सर्पयज्ञको यथावत् जाननेवाले, विद्वान् और बुद्धिमें पारंगत सब ऋत्विजोंने एक स्थान निश्चित कर शास्त्रानुसार यथाविधि उसे मापा ॥ १० ॥

ऋद्ध्या परमया युक्तमिष्टं द्विजगणायुतम् ।
प्रभूतधनधान्याढ्यमृत्विग्भिः सुनिवेशितम् ॥ ११ ॥
निर्माय चापि विधिवद्यज्ञायतनमीप्सितम् ।
राजानं दीक्षयामासुः सर्पसत्राप्तये तदा ॥ १२ ॥

तथा उन्होंने परम ऋद्धिसे युक्त, द्विजोंसे निषेवित, अपरिमित धनधान्यवाले ऋत्विकोंसे सेवित अपनी इच्छाके अनुसार यज्ञस्थानको यथाविधि तैयार करके राजाको सर्पयज्ञ शुरू करनेके लिए दीक्षित किया ॥ ११–१२ ॥

इदं चासीत्तत्र पूर्वं सर्पसत्रे भविष्यति ।
निमित्तं महदुत्पन्नं यज्ञविघ्नकरं तदा ॥ १३ ॥

पर होनेवाले सर्पयज्ञके पहले ही वहां यज्ञमें विघ्न डालनेवाला एक भारी निमित्त उपस्थित हो गया ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यज्ञस्यायतने तस्मिन्क्रियमाणे वचोऽब्रवीत्।
स्थपतिर्बुद्धिसंपन्नो वास्तुविद्याविशारदः ॥ १४ ॥
इत्यब्रवीत्सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तदा।
यस्मिन्देशे च काले च मापनेयं प्रवर्तिता।
ब्राह्मणं कारणं कृत्वा नायं संस्थास्यते क्रतुः ॥ १५ ॥

जब वह यज्ञस्थान बन रहा था; तब वास्तुविद्यामें पण्डित बुद्धिमान् राज (स्थपति) सूत्रधार पौराणिक सूतने कहा था, कि जिस देशमें और जिस कालमें यह माप आरंभ हुआ है, उससे जान पडता है, कि एक ब्राह्मणको कारण बनाकर यह यज्ञ टिकेगा नहीं अर्थात् एक ब्राह्मण द्वारा रोक दिया जाएगा ॥ १४-१५ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु राजा स प्राग्दीक्षाकालमब्रवीत्।
क्षत्तारं नेह मे कश्चिदज्ञातः प्रविशेदिति ॥ १६ ॥

यह बात सुनकर राजा दीक्षित होनेके पहिले द्वारपालसे बोले, कि मेरे अन जानेमें किसीको भी घुसने न देना ॥ १६ ॥

ततः कर्म प्रववृते सर्पसत्रे विधानतः।
पर्यक्रामंश्च विधिवत्स्वे स्वे कर्मणि याजकाः ॥ १७ ॥

तब यथाविधि सर्पयज्ञमें कार्य आरंभ हो गया और याजकलोग यथाविधि अपने अपने कार्योंमें लग गए ॥ १७ ॥

परिधाय कृष्णवासांसि धूमसंरक्तलोचनाः।
जुहुवुर्मन्त्रवच्चैव समिद्धं जातवेदसम् ॥ १८ ॥

वे लोग काले रंगके कपडे पहनकर धूंएसे लाल आंखोंवाले होकर विधिपूर्वक मंत्रको बोलते हुए प्रज्ज्वलित अग्निमें आहुति देने लगे ॥ १८ ॥

कम्पयन्तश्च सर्वे वासुरगाणां मनांसि ते।
सर्पानाजुहुवुस्तत्र सर्वानग्निमुखे तदा ॥ १९ ॥

इससे सभी सर्पोंके चित्तोंको कंपाते हुए वे याजक लोग सब सर्पोंको उद्देशकर अग्निके मुंहमें आहुति देने लगे ॥ १९ ॥

ततः सर्पाः समापेतुः प्रदीप्ते हव्यवाहने।
विवेष्टमानाः कृपणा आह्वयन्तः परस्परम् ॥ २० ॥

तब सभी सर्प आपसमें लिपटे हुए तथा दीन होकर एक दूसरेको बुलाते हुए उस जलती हुई अग्निमें आ आकर गिरने लगे ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विस्फुरन्तः श्वसन्तश्च वेष्टयन्तस्तथा परे ।
पुच्छैः शिरोभिश्च भृशं चित्रभानुं प्रपेदिरे ॥ २१ ॥

फुंफकारते हुए, लम्बी लम्बी सांसें लेते हुए, एक दूसरेको पूंछ और सिरसे कसकर लपेटकर बुरी तरह आगमें गिरने लगे ॥ २१ ॥

श्वेताः कृष्णाश्च नीलाश्च स्थविराः शिशवस्तथा ।
रुवन्तो भैरवान्नादान्पेतुर्दीप्ते विभावसौ ॥ २२ ॥

सफेद, काले, नीले, बूढ और बच्चे अर्थात् सभी सर्प भयंकर आवाजोंको करते हुए जलती हुई आगमें गिरने लगे ॥ २२ ॥

एवं शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अवशानि विनष्टानि पन्नगानां द्विजोत्तम ॥ २३ ॥

इस प्रकारसे हे द्विजश्रेष्ठ ! सैंकडों, सहस्रों, करोडों, अरबों सर्प अग्निमें विवश होकर नष्ट हो गए ॥ २३ ॥

इन्दुरा इव तत्रान्ये हस्तिहस्ता इवापरे ।
मत्ता इव च मातङ्गा महाकाया महाबलाः ॥ २४ ॥
उच्चावचाश्च बहवो नानावर्णा विषोल्बणाः ।
घोराश्च परिघप्रख्या दन्दशूका महाबलाः ।
प्रपेतुरग्नावुरगा मातृवाग्दण्डपीडिताः ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ १६७१ ॥

अनन्तर कुछ अश्वके समान, कुछ हाथीकी सूंडके समान, मत्तहस्तीके समान भारी शरीरधारी और महाबली, ऊंचे नीचे अर्थात् टेढे मेढे अगणित रंग-बिरंगे, भांति भांतिके, भयंकर विषवाले, भयंकर रूपवाले, परिघके समान बडे-बडे तथा बलशाली दन्दशूक सर्प माताके शापवाले वाक्यदण्डसे पीडित होकर अग्निमें गिरने लगे ॥ २४-२५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ १६७१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ४८ :

शौनक उवाच

सर्पसत्रे तदा राज्ञः पाण्डवेयस्य धीमतः।
जनमेजयस्य के त्वासन्नृत्विजः परमर्षयः ॥ १ ॥

शौनकने पूछा– कि तब पाण्डवनन्दन धीमान् राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें कौन कौनसे परमर्षि ऋत्विज बने थे ॥ १ ॥

के सदस्या बभूवुश्च सर्पसत्रे सुदारुणे।
विषादजननेऽत्यर्थं पन्नगानां महाभये ॥ २ ॥

तथा सर्पोंको बडा भय देनेवाले, अति दुःखदायी, बडे कठोर इस सर्प–यज्ञमें कौन कौन सदस्य थे ॥ २ ॥

सर्वं विस्तरतस्तात भवाञ्शंसितुमर्हति।
सर्पसत्रविधानज्ञा विज्ञेयास्ते हि सूतज ॥ ३ ॥

हे सूतसे उत्पन्न तात ! यह सब विस्तारसे बतानेमें तुम समर्थ हो, सर्पयज्ञकी विधिको जाननेवाले उन ऋषियोंके बारेमें जानना चाहिए ॥ ३ ॥

सूत उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि नामानीह मनीषिणाम्।
ये ऋत्विजः सदस्याश्च तस्यासन्नृपतेस्तदा ॥ ४ ॥

सूत बोले-- अच्छा ! जो सब पण्डित लोग राजाके उस यज्ञमें ऋत्विक् और सदस्य बने थे, उन बुद्धिमानोंके नाम यहां तुमसे कहता हूं ॥ ४ ॥

तत्र होता बभूवाथ ब्राह्मणश्चण्डभार्गवः।
च्यवनस्यान्वये जातः ख्यातो वेदविदां वरः ॥ ५ ॥

च्यवन वंशमें उत्पन्न वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ प्रसिद्ध ब्राह्मण चण्डभार्गव उस महायज्ञमें होता थे ॥ ५ ॥

उद्गाता ब्राह्मणो वृद्धो विद्वान्कौत्सार्यजैमिनिः।
ब्रह्माभवच्छार्ङ्गरवो अध्वर्युर्बोधपिङ्गलः ॥ ६ ॥

विद्वान् बूढे कौत्स नामक ब्राह्मण उद्गाता, जैमिनि मुनि ब्रह्मा, शार्ङ्गरव और बोध पिङ्गल मुनि अध्वर्यु थे ॥ ६ ॥

सदस्यश्चाभवद्व्यासः पुत्रशिष्यसहायवान्।
उद्दालकः शमठकः श्वेतकेतुश्च पञ्चमः ॥ ७ ॥

पुत्र और शिष्योंके साथ व्यास, उद्दालक, शमठक, पांचवें श्वेतकेतु सदस्य थे ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

असितो देवलश्चैव नारदः पर्वतस्तथा ।
आत्रेयः कुण्डजठरो द्विजः कुटिघटस्तथा ॥ ८ ॥
वात्स्यः श्रुतश्रवा वृद्धस्तपःस्वाध्यायशीलवान् ।
कहोडो देवशर्मा च मौद्गल्यः शमसौभरः ॥ ९ ॥

असित और देवल, नारद तथा पर्वत, आत्रेय, कुण्डजठर, तथा ब्राह्मण कुटिघट, वात्स्य, वृद्ध श्रुतश्रवा, तप और स्वाध्यायमें रत सुशील कहोड, देवशर्मा, मौद्गल्य, शमसौभर ॥ ८–९ ॥

एते चान्ये च बहवो ब्राह्मणाः संशितव्रताः ।
सदस्या अभवंस्तत्र सत्रे पारिक्षितस्य ह ॥ १० ॥

यह सब और दूसरे व्रतशील बहुतसे ब्राह्मण परिक्षित्के पुत्र जनमेजयके इस महायज्ञमें सदस्य हुए थे ॥ १० ॥

जुह्वत्स्वृत्विक्ष्वथ तदा सर्पसत्रे महाक्रतौ ।
अहयः प्रापतंस्तत्र घोराः प्राणिभयावहाः ॥ ११ ॥

ऋत्विकोंके उस महा सर्पयज्ञमें आहुति चढाने पर भयंकर तथा प्राणियोंके लिए भयानक सर्पगण उस यज्ञमें आ आकर गिरने लगे ॥ ११ ॥

वसामेदोवहाः कुल्या नागानां संप्रवर्तिताः ।
ववौ गन्धश्च तुमुलो दह्यतामनिशं तदा ॥ १२ ॥

उन सांपोंकी चर्बी और मेदके छोटे छोटे नाले बहने लगे । रात दिन जलते हुए सर्पोंकी भयंकर दुर्गन्ध चारों ओर फैलने लगी ॥ १२ ॥

पततां चैव नागानां धिष्ठितानां तथाम्बरे ।
अश्रूयतानिशं शब्दः पच्यतां चाग्निना भृशम् ॥ १३ ॥

आगमें गिरे हुए आकाशमें स्थित और अग्निसे बहुत बुरी तरह जलाये जाते हुए सर्पोंके चिल्लानेके शब्द रात दिन सुनाई देने लगे ॥ १३ ॥

तक्षकस्तु स नागेन्द्रः पुरन्दरनिवेशनम् ।
गतः श्रुत्वैव राजानं दीक्षितं जनमेजयम् ॥ १४ ॥

नागराज तक्षक तो राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें दीक्षित होनेकी बात सुनकर ही इन्द्रपुरीमें चला गया ॥ १४ ॥

ततः सर्वं यथावृत्तमाख्याय भुजगोत्तमः ।
अगच्छच्छरणं भीत आगस्कृत्वा पुरन्दरम् ॥ १५ ॥

तथा उस सर्पश्रेष्ठने पाप करनेके कारण भयभीत होकर आद्योपान्त सब बात कहकर इन्द्रकी शरण ली ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमिन्द्रः प्राह सुप्रीतो न तवास्तीह तक्षक।
भयं नागेन्द्र तस्माद्वै सर्पसत्रात्कथंचन ॥ १६ ॥

इससे इन्द्र प्रसन्न होकर बोले– " हे नागराज तक्षक ! उस सर्पयज्ञसे तुम्हें कोई भय नहीं है ॥ १६ ॥

प्रसादितो मया पूर्वं तवार्थाय पितामहः।
तस्मात्तव भयं नास्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ १७ ॥

मैंने पहिले ही तुम्हारे लिये पितामहको प्रसन्न किया है, सो तुम्हें भय नहीं है, अतः तुम्हारे चित्तकी पीडा दूर हो " ॥ १७ ॥

एवमाश्वासितस्तेन ततः स भुजगोत्तमः।
उवास भवने तत्र शक्रस्य मुदितः सुखी ॥ १८ ॥

तब नागोत्तम तक्षक इन्द्रसे इस प्रकार ढाढस पाकर प्रसन्न चित्तसे इन्द्रके भवनमें सुखपूर्वक रहने लगा ॥ १८ ॥

अजस्रं निपतत्स्वग्नौ नागेषु भृशदुःखितः।
अल्पशेषपरीवारो वासुकिः पर्यतप्यत ॥ १९ ॥

इधर नागोंके लगातार अग्निमें गिरने पर अपने परिवारोंको कम होता हुआ देखकर वासुकि अति दुःखी होकर संतप्त होने लगे ॥ १९ ॥

कश्मलं चाविशद्घोरं वासुकिं पन्नगेश्वरम्।
स घूर्णमानहृदयो भगिनीमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥

तब उस सर्पराज वासुकिको बहुत घोर दुःख हुआ और उसका मन डोलने लगा। तब उसने अपनी बहिनसे यह कहा ॥ २० ॥

दह्यन्तेऽङ्गानि मे भद्रे दिशो न प्रतिभान्ति च।
सीदामीव च संमोहाद्घूर्णतीव च मे मनः ॥ २१ ॥

" भद्रे ! मेरा शरीर जला जा रहा है, (चारों ओर अंधेरा छाया हुआ हुआ होनेके कारण) मुझे दिशाओंका ज्ञान नहीं रहा है, मोहसे विवश हो रहा हूं, मेरा चित्त घूम रहा है ॥ २१ ॥

दृष्टिर्भ्रमति मेऽतीव हृदयं दीर्यतीव च।
पतिष्याम्यवशोऽद्याहं तस्मिन्दीप्ते विभावसौ ॥ २२ ॥

मेरी दृष्टि भ्रमित हो रही है, मेरा हृदय फटासा जा रहा है, आज विवश होकर मुझको भी उस जलती हुई आगमें गिरना पडेगा ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पारिक्षितस्य यज्ञोऽसौ वर्ततेऽस्मज्जिघांसया ।
व्यक्तं मयापि गन्तव्यं पितृराजनिवेशनम् ॥ २३ ॥

हम सर्पोंके नाशकी इच्छासे परिक्षित्के पुत्र जनमेजयका यह यज्ञ चल रहा है । स्पष्ट है कि मुझको भी यमराजके घर जाना पडेगा ॥ २३ ॥

अयं स कालः संप्राप्तो यदर्थमसि मे स्वसः ।
जरत्कारोः पुरा दत्ता सा त्राह्यस्मान्सबान्धवान् ॥ २४ ॥

हे बहिन ! जिस हेतुसे जरत्कारु ऋषिसे तुम्हारा विवाह पहले कर दिया था, यह वही काल आ पहुंचा है, अब हमको भाईयोंके सहित बचाओ ॥ २४ ॥

आस्तीकः किल यज्ञं तं वर्तन्तं भुजगोत्तमे ।
प्रतिषेत्स्यति मां पूर्वं स्वयमाह पितामहः ॥ २५ ॥

हे नागोत्तमे ! पहिले पितामहने स्वयं मुझसे कहा था, कि सर्पयज्ञ आरंभ होने पर आस्तीक ऋषि उसे रोकेंगे ॥ २५ ॥

तद्वत्से ब्रूहि वत्सं स्वं कुमारं वृद्धसंमतम् ।
ममाद्य त्वं सभृत्यस्य मोक्षार्थं वेदवित्तमम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ १६२७ ॥

अतः हे बहिन ! अब मेरी और मेरे परिवारोंकी रक्षाके निमित्त वृद्धोंको प्रिय और वेदोंको जाननेवालोंमें उत्तम अपने बालकपुत्रसे आज कहो ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ १६९७ ॥

: ४९ :

सूत उवाच

तत आहूय पुत्रं स्वं जरत्कारुर्भुजङ्गमा ।
वासुकेर्नागराजस्य वचनादिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

सूत बोले– सर्पिणी जरत्कारुने नागराज वासुकिके वाक्यानुसार अपने पुत्रको बुलाकर यह कहा ॥ १ ॥

अहं तव पितुः पुत्र भ्रात्रा दत्ता निमित्ततः ।
कालः स चायं संप्राप्तस्तत्कुरुष्व यथातथम् ॥ २ ॥

कि बेटे ! भाईने मुझे तुम्हारे पिताको जिस निमित्तसे दान दिया था, वह समय अब आ गया है, जो उचित हो, करो ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आस्तीक उवाच

किंनिमित्तं मम पितुर्दत्ता त्वं मातुलेन मे।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन श्रुत्वा कर्तास्मि तत्तथा ॥ ३ ॥

आस्तीक बोले– किसलिये मामाने तुम्हें मेरे पिताको दान दिया था, वह बात तुम मुझे बताओ ताकि मैं उसे सुनकर उसके अनुसार कार्य करूं ॥ ३ ॥

सूत उवाच

तत आचष्ट सा तस्मै बान्धवानां हितैषिणी।
भगिनी नागराजस्य जरत्कारुरविक्लवा ॥ ४ ॥

सूत बोले– उसके अनन्तर बान्धवोंके हित चाहनेवाली नागराज वासुकि सर्पकी बहिन जरत्कारु ढाढस पाकर पुत्रसे बोली ॥ ४ ॥

भुजगानामशेषाणां माता कद्रूरिति श्रुतिः।
तया शप्ता रुषितया सुता यस्मान्निबोध तत् ॥ ५ ॥

ऐसा सुना जाता है कि संपूर्ण सर्पोंकी माता कद्रूने जिस कारणसे क्रोधित होकर अपने पुत्रोंको शाप दिया था, वह कहती हूं, सुनो ॥ ५ ॥

उच्चैःश्रवाः सोऽश्वराजो यन्मिथ्या न कृतो मम।
विनतानिमित्तं पणिते दासभावाय पुत्रकाः ॥ ६ ॥
जनमेजयस्य वो यज्ञे धक्ष्यत्यनिलसारथिः।
तत्र पञ्चत्वमापन्नाः प्रेतलोकं गमिष्यथ ॥ ७ ॥

(कद्रू बोली) "हे पुत्रो ! विनता मेरी दासी हो इसलिए मेरे दासीपनकी बाजी लगाने पर भी जिस कारण तुम उस अश्वराज उच्चैःश्रवाका रंग बदलनेसे इन्कार करके मेरा कहा काम नहीं कर रहे हो, इसलिये जनमेजय राजाके सर्पयज्ञमें वायुके सारथी अग्निदेव तुमको जलावेंगे और उस यज्ञमें तुम मरकर परलोकको सिधारोगे" ॥ ६-७ ॥

तां च शप्तवतीमेवं साक्षाल्लोकपितामहः।
एवमस्त्विति तद्वाक्यं प्रोवाचानुमुमोद च ॥ ८ ॥

कद्रूके इस प्रकार शाप देनेपर सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने "एवमस्तु" कहके उस शाप देनेवालीकी बातका समर्थन किया ॥ ८ ॥

वासुकिश्चापि तच्छ्रुत्वा पितामहवचस्तदा।
अमृते मथिते तात देवाञ्शरणमीयिवान् ॥ ९ ॥

हे तात ! तब वासुकि भी पितामहकी वह बात सुनकर अमृत मथनेके पश्चात् देवोंकी शरणमें गया ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिद्धार्थाश्च सुराः सर्वे प्राप्यामृतमनुत्तमम् ।
भ्रातरं मे पुरस्कृत्य प्रजापतिमुपागमन् ॥ १० ॥

देवगण भी दुर्लभ अमृतको पाकर सफलमनोरथवाले हो गए थे, अतः वे मेरे भाईको आगे कर करके प्रजापतिके समीप गए ॥ १० ॥

ते तं प्रसादयामासुर्देवाः सर्वे पितामहम् ।
राज्ञा वासुकिना सार्धं स शापो न भवेदिति ॥ ११ ॥

फिर उन सब देवताओंने नागनाथ वासुकिके साथ पितामह ब्रह्माको प्रसन्न किया, कि सर्पोंका वह शाप सफल न होवे ॥ ११ ॥

वासुकिर्नागराजोऽयं दुःखितो ज्ञातिकारणात् ।
अभिशापः स मात्रास्य भगवन्न भवेदिति ॥ १२ ॥

भगवन् ! यह नागराज वासुकि स्वजनोंके निमित्त बहुत दुःखी हैं अतएव ऐसा कीजिये, कि माताका शाप इन पर न लगे ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच

जरत्कारुर्जरत्कारुं यां भार्यां समवाप्स्यति ।
तत्र जातो द्विजः शापाद्भुजगान्मोक्षयिष्यति ॥ १३ ॥

ब्रह्मा बोले– जरत्कारु नामक ऋषि जिस जरत्कारु नामकी स्त्रीको भार्या रूपसे प्राप्त करेंगे, उसीके गर्भसे एक ब्राह्मण जन्म लेकर सर्पोंको शापसे बचावेगा ॥ १३ ॥

जरत्कारुरुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वासुकिः पन्नगेश्वरः ।
प्रादान्माममरप्रख्य तव पित्रे महात्मने ।
प्रागेवानागते काले तत्र त्वं मय्यजायथाः ॥ १४ ॥

जरत्कारु बोली– हे देव सदृश पुत्र ! नागराज वासुकिने पितामहकी यह बात सुनकर तुम्हारे महात्मा पिताको मुझे दिया, अतएव सर्पयज्ञका काल आनेके पहिलेही तुमने मेरे गर्भसे जन्म लिया है ॥ १४ ॥

अयं स कालः संप्राप्तो भयान्नस्त्रातुमर्हसि ।
भ्रातरं चैव मे तस्मात्त्रातुमर्हसि पावकात् ॥ १५ ॥

अब वह कठोर काल आ पहुंचा है, तुम हमको भयसे बचाओ, इस अग्निके मुखसे मेरे भाईकी भी रक्षा करनेमें तुम समर्थ हो ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अमोघं नः कृतं तत्स्याद्यदहं तव भीमते ।
पित्रे दत्ता विमोक्षार्थं कथं वा पुत्र मन्यसे ॥ १६ ॥

हे पुत्र ! (मैं सर्पोंकी रक्षाके निमित्त तुम्हारे पिताको दी गई थी) अतः अब ऐसा करो, कि मैं जिस अभिप्रायसे तुम्हारे बुद्धिमान् पिताके हाथोंमें सौंपी गई थी, वह व्यर्थ न हो; अथवा कहो तो सही इस विषयमें तुम्हारा क्या विचार है ॥ १६ ॥

सूत उवाच

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽस्तीको मातरं तदा ।
अब्रवीद्दुःखसंतप्तं वासुकिं जीवयन्निव ॥ १७ ॥

सूत बोले– इस प्रकार कहे जानेपर आस्तीक मातासे "तथास्तु" कहकर दुःखसे जलते हुए वासुकिको मानों जीवित करते हुए बोले ॥ १७ ॥

अहं त्वां मोक्षयिष्यामि वासुके पन्नगोत्तम ।
तस्माच्छापान्महासत्त्व सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥

कि हे महाभाग सर्पश्रेष्ठ वासुके! मैं सच कहता हूं, तुमको उस शापसे मुक्त करूंगा ॥१८॥

भव स्वस्थमना नाग न हि ते विद्यते भयम् ।
प्रयतिष्ये तथा सौम्य यथा श्रेयो भविष्यति ।
न मे वागनृतं प्राह स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ॥ १९ ॥

हे सौम्य नाग ! तुम स्वस्थ चित्तवाले होओ, तुम्हें कुछ भी डर नहीं है, मैं वैसा यत्न करूंगा, कि जिससे तुम्हारा मंगल होगा, मेरी वाणी खेलमें भी झूठ नहीं बोलती, फिर सच्चे कामके बारेमें तो कहना ही क्या ? ॥ १९ ॥

तं वै नृपवरं गत्वा दीक्षितं जनमेजयम् ।
वाग्भिर्मङ्गलयुक्ताभिस्तोषयिष्येऽद्य मातुल ।
यथा स यज्ञो नृपतेर्निवर्तिष्यति सत्तम ॥ २० ॥

हे मामा ! मैं उस दीक्षित नृपश्रेष्ठ जनमेजयके निकट जाकर मङ्गलयुक्त बातोंसे उसको आज प्रसन्न करूंगा; हे सत्तम ! ऐसा करूंगा, कि राजाका वह यज्ञ रुक जाय ॥ २० ॥

स संभावय नागेन्द्र मयि सर्वं महामते ।
न ते मयि मनो जातु मिथ्या भवितुमर्हति ॥ २१ ॥

हे महाबुद्धिमान् नागनाथ ! मुझमें सब कुछ संभव है, मुझमें तुम्हारा मन मिथ्या न हो, अर्थात् तुम मेरी बात झूठी मत मानो ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वासुकिरुवाच

आस्तीक परिघूर्णामि हृदयं मे विदीर्यते ।
दिशश्च न प्रजानामि ब्रह्मदण्डनिपीडितः ॥ २२ ॥

वासुकि बोला– हे आस्तीक ! मुझे चक्कर आ रहे हैं, मेरा हृदय फटा जाता है, ब्रह्मदण्डसे पीसे जाकर (चारों ओर अंधेरा होनेके कारण) मुझे दिशाएं सूझ नहीं रही हैं ॥२२॥

आस्तीक उवाच

न संतापस्त्वया कार्यः कथंचित्पन्नगोत्तम ।
दीप्तादग्नेः समुत्पन्नं नाशयिष्यामि ते भयम् ॥ २३ ॥

आस्तीक बोले– हे सर्पराज ! तुम किसी प्रकार संताप मत करो । मैं प्रज्ज्वलित अग्निसे उत्पन्न तुम्हारे भयको दूर करूंगा ॥ २३ ॥

ब्रह्मदण्डं महाघोरं कालाग्निसमतेजसम् ।
नाशयिष्यामि मात्र त्वं भयं कार्षीः कथंचन ॥ २४ ॥

मैं प्रलयकालके अग्निके समान तेजस्वी अति घोर ब्रह्मदण्डको नष्ट कर दूंगा, तुम इस बारेमें किसी भी प्रकार भय मत करो ॥ २४ ॥

सूत उवाच

ततः स वासुकेर्घोरमपनीय मनोज्वरम् ।
आधाय चात्मनोऽङ्गेषु जगाम त्वरितो भृशम् ॥ २५ ॥
जनमेजयस्य तं यज्ञं सर्वैः समुदितं गुणैः ।
मोक्षाय भुजगेन्द्राणामास्तीको द्विजसत्तमः ॥ २६ ॥

सूत बोले-- तब वासुकिके घोर चित्तपीडाको दूरकर स्वयं (सर्पकुलके उद्धारका) भार लेकर द्विजश्रेष्ठ आस्तीक सर्पश्रेष्ठोंको छुडानेके लिए जनमेजयके उस सर्व गुणशाली यज्ञ स्थानको बहुत जल्दी गए ॥ २५-२६ ॥

स गत्वापश्यदास्तीको यज्ञायतनमुत्तमम् ।
वृतं सदस्यैर्बहुभिः सूर्यवह्निसमप्रभैः ॥ २७ ॥

वहां पहुंचकर आस्तीकने अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान अगणित सदस्योंसे भरे हुए, सुन्दर यज्ञस्थानको देखा ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स तत्र वारितो द्वाःस्थैः प्रविशन्द्विजसत्तमः।
अभितुष्टाव तं यज्ञं प्रवेशार्थी द्विजोत्तमः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ १७२५ ॥

वहां यज्ञगृहमें प्रवेश करते हुए वे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ आस्तीक द्वारपालोंके द्वारा रोक दिए गए, तब द्विजोंमें उत्तम और यज्ञमें प्रवेश करनेकी अभिलाषावाले उस आस्तीकने उस यज्ञकी स्तुति की ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ १७२५ ॥

: ५० :

आस्तीक उवाच

सोमस्य यज्ञो वरुणस्य यज्ञः प्रजापतेर्यज्ञ आसीत्प्रयागे।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ १ ॥

आस्तीक बोले– हे भारतश्रेष्ठ परिक्षित्के पुत्र जनमेजय! प्रयागमें सोमका यज्ञ, वरुणका यज्ञ और प्रजापतिका यज्ञ जैसा हुआ था, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥ १ ॥

शक्रस्य यज्ञः शतसंख्य उक्तस्तथापरस्तुल्यसंख्यः शतं वै।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ २ ॥

हे भारतश्रेष्ठ पारिक्षित! देवराजके जो सौ यज्ञ कहे जाते हैं, उसके और सौ दूसरे यज्ञ अर्थात् उसके दस हजार यज्ञोंके तुल्य आपका यह यज्ञ है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥ २ ॥

यमस्य यज्ञो हरिमेधसश्च यथा यज्ञो रन्तिदेवस्य राज्ञः।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ३ ॥

हे भारतश्रेष्ठ पारिक्षित! यमका यज्ञ, हरिमेधाका यज्ञ और राजा रन्तिदेवका यज्ञ जैसा हुआ था, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥ ३ ॥

गयस्य यज्ञः शशबिन्दोश्च राज्ञो यज्ञस्तथा वैश्रवणस्य राज्ञः।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ४ ॥

हे भारतश्रेष्ठ पारिक्षित! गयका यज्ञ, राजा शशबिन्दुका यज्ञ और वैश्रवण राजाका यज्ञ जैसा था, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नृगस्य यज्ञस्त्वजमीढस्य चासीद्यथा यज्ञो दाशरथेश्च राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ५ ॥

हे भारतश्रेष्ठ पारिक्षित ! नृगका यज्ञ, अजमीढका यज्ञ और दाशरथि राजा रामचन्द्रका यज्ञ जैसा था, आपका यज्ञ भी वैसा ही है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥५॥

यज्ञः श्रुतो नो दिवि देवसूनोर्युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ६ ॥

हे भारतश्रेष्ठ पारिक्षित ! अजमीढवंशोत्पन्न देवपुत्र युधिष्ठिरका यज्ञ स्वर्गमें जैसा हमने सुना था, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥ ६ ॥

कृष्णस्य यज्ञः सत्यवत्याः सुतस्य स्वयं च कर्म प्रचकार यत्र ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ७ ॥

हे भारतश्रेष्ठ पारिक्षित ! सत्यवती--पुत्र कृष्णद्वैपायनने स्वयं सम्पूर्ण धर्मानुष्ठान करके जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है, प्रार्थना करता हूं हमारे प्रियजनोंका मंगल होवे ॥ ७ ॥

इमे हि ते सूर्यहुताशवर्चसः समासते वृत्रहणः क्रतुं यथा ।
नैषां ज्ञानं विद्यते ज्ञातुमद्य दत्तं येभ्यो न प्रणश्येत्कथंचित् ॥ ८ ॥

वृत्रको मारनेवाले इन्द्रके यज्ञमें जैसे सदस्य थे, उनके ऐसे ही आपके इस यज्ञमें भी सूर्य और अग्नि समान प्रकाशमान यह सब सदस्य बैठे हुए हैं, इस कालमें ऐसी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है, जो यह लोग न जानें; (ये लोग ऐसे हैं कि) जिनको दान देनेसे कभी नष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥

ऋत्विक्समो नास्ति लोकेषु चैव द्वैपायनेनेति विनिश्चितं मे ।
एतस्य शिष्या हि क्षितिं चरन्ति सर्वर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षाः ॥ ९ ॥

मैंने निश्चय कर लिया है, कि भगवान् द्वैपायनके समान ऋत्विक् तीनों भुवनमें नहीं है, क्योंकि इनके शिष्यलोग ऋत्विक्गण अपने अपने कार्यमें निपुण होकरके भूमण्डलमें घूमते रहते हैं ॥ ९ ॥

विभावसुश्चित्रभानुर्महात्मा हिरण्यरेता विश्वभुक्कृष्णवर्त्मा ।
प्रदक्षिणावर्तशिखः प्रदीप्तो हव्यं तवेदं हुतभुग्वष्टि देवः ॥ १० ॥

प्रकाशरूपी धनवाले, रंगबिरंगी किरणोंसे युक्त, सोनेके समान तेजस्वी वीर्यवाले, सभी पदार्थोंको खानेवाले, अपने मार्गको धुंवेसे काला करनेवाले इस प्रदीप्त अग्निदेवकी ज्वालायें दांयी तरफ मुड रही हैं अतः इससे प्रतीत होता है कि ये अग्निदेव तुम्हारे इन हव्योंकी सचमुच इच्छा कर रहे हैं ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नेह त्वदन्यो विद्यते जीवलोके समो नृपः पालयिता प्रजानाम्।
धृत्या च ते प्रीतमनाः सदाहं त्वं वा राजा धर्मराजो यमो वा ॥ ११ ॥

हे राजन्! इस जीवलोक भरमें आपके सदृश प्रजापालक महाराज और कोई नहीं है, आपके धीरजसे भी मैं सदा प्रसन्न हूं; आप या तो साक्षात् धर्मराज हैं अथवा यम हैं ॥ ११ ॥

शक्रः साक्षाद्वज्रपाणिर्यथेह त्राता लोकेऽस्मिंस्त्वं तथेह प्रजानाम्।
मतस्त्वं नः पुरुषेन्द्रेह लोके न च त्वदन्यो गृहपतिरस्ति यज्ञे ॥ १२ ॥

अथवा जिस प्रकार वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले साक्षात् इन्द्र देवलोकमें देवोंका पालन करते हैं उसी प्रकार आप इस लोकमें प्रजाओंके रक्षक और पालक हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप इस लोकमें हमारे सम्मानके पात्र हैं, यज्ञमें आप जैसा यजमान इस लोकमें कोई दूसरा नहीं है ॥ १२ ॥

खट्वाङ्गनाभागदिलीपकल्पो ययातिमान्धातृसमप्रभावः।
आदित्यतेजःप्रतिमानतेजा भीष्मो यथा भ्राजसि सुव्रतस्त्वम् ॥ १३ ॥

आप खट्वाङ्ग, नाभाग और दिलीप नरेशोंके सदृश हैं, आप ययाति और मान्धाताकी भांति प्रभावशाली हैं, आप आदित्यके तेजके समान तेजस्वी हैं और आप भीष्मके सदृश व्रतशील होकरके विराजमान हैं ॥ १३ ॥

वाल्मीकिवत्ते निभृतं सुधैर्यं वसिष्ठवत्ते नियतश्च कोपः।
प्रभुत्वमिन्द्रेण समं मतं मे द्युतिश्च नारायणवद्विभाति ॥ १४ ॥

आपका धैर्य वाल्मीकिके धैर्यके समान गुप्त है, आपका क्रोध वसिष्ठके सदृश वशमें है, आपकी प्रभुता इन्द्रकीसी है और आपका तेज नारायणके तेजके समान है ॥ १४ ॥

यमो यथा धर्मविनिश्चयज्ञः कृष्णो यथा सर्वगुणोपपन्नः।
श्रियां निवासोऽसि यथा वसूनां निधानभूतोऽसि तथा क्रतूनाम् ॥ १५ ॥

आप यमके समान धर्मका निश्चय करनेवाले हैं, श्रीकृष्णके सदृश सर्व गुणयुक्त हैं, वसुओंके समान लक्ष्मीके बसनेके स्थान हैं तथा यज्ञोंके आप ही आश्रयस्थान हैं ॥ १५ ॥

दम्भोद्भवेनासि समो बलेन रामो यथा शस्त्रविदस्त्रविच्च।
और्वत्रिताभ्यामसि तुल्यतेजा दुष्प्रेक्षणीयोऽसि भगीरथो वा ॥ १६ ॥

दम्भोद्भवके समान बली हैं, रामचन्द्र जैसे अस्त्र शस्त्रोंको जाननेवाले हैं, त्रित और और्वके समान तेजस्वी और भगीरथकी भांति कठिनतासे देखने योग्य हैं ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

एवं स्तुताः सर्व एव प्रसन्ना राजा सदस्या ऋत्विजो हव्यवाहः ।
तेषां दृष्ट्वा भावितानीङ्गितानि प्रोवाच राजा जनमेजयोऽथ ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ १७४२ ॥

सूत बोले– राजा, सदस्य, ऋत्विक् और अग्नि सभी इस प्रकार स्तुत होने पर प्रसन्न हुए । तब राजा जनमेजय उनके हृदयके भाव और इशारोंको समझकर बोला ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ १७४२ ॥

: ५१ :

जनमेजय उवाच

बालो वाक्यं स्थविर इव प्रभाषते नायं बालः स्थविरोऽयं मतो मे ।
इच्छाम्यहं वरमस्मै प्रदातुं तन्मे विप्रा वितरध्वं समेताः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– यह बालक ऋषि वृद्धके समान बातें कह रहा है, अतः मेरा विचार है कि यह बालक नहीं अपितु वृद्ध है । मैं इसे वर देना चाहता हूं । ब्राह्मणो ! मिलकर आप इस विषयका उचित विचार करें ॥ १ ॥

सदस्या ऊचुः

बालोऽपि विप्रो मान्य एवेह राज्ञां यश्चाविद्वान्यश्च विद्वान्यथावत् ।
सर्वान्कामांस्त्वत्त एषोऽर्हतेऽद्य यथा च नस्तक्षक एति शीघ्रम् ॥ २ ॥

सदस्यलोग बोले– ब्राह्मण बालक भी हो, तो भी राजाके लिए माननीय होते हैं । वे चाहे विद्वान् हों या अविद्वान्, फिर भी यथावत् पूज्य होते हैं, अतएव आप इनके मनमाने सब वर दे सकते हैं, पर ऐसा करना चाहिये, कि हमारा तक्षक शीघ्र आवे ॥ २ ॥

सूत उवाच

व्याहर्तुकामे वरदे नृपे द्विजं वरं वृणीष्वेति ततोऽभ्युवाच ।
होता वाक्यं नातिहृष्टान्तरात्मा कर्मण्यस्मिंस्तक्षको नैति तावत् ॥ ३ ॥

सूत बोले– राजा वर देनेको अभिलाषी होकर आस्तीक मुनिसे यह कहने ही वाले थे, कि "वर मांगो" कि ऐसे समयमें होताने कुछ असन्तुष्ट चित्त होकर कहा, कि महाराज ! जबतक तक्षक इस यज्ञमें नहीं आता है, तबतक रुकिए ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जनमेजय उवाच

यथा चेदं कर्म समाप्यते मे यथा च नस्तक्षक एति शीघ्रम्।
तथा भवन्तः प्रयतन्तु सर्वे परं शक्त्या स हि मे विद्विषाणः ॥ ४ ॥

जनमेजय बोले– आप लोग पूरी शक्तिके अनुसार ऐसी चेष्टा कीजिये, कि मेरा यह कार्य पूरा हो और हमारा वह तक्षक शीघ्र आवे; क्योंकि वह तक्षक ही मेरा शत्रु है ॥ ४ ॥

ऋत्विज ऊचुः

यथा शास्त्राणि नः प्राहुर्यथा शंसति पावकः।
इन्द्रस्य भवने राजंस्तक्षको भयपीडितः ॥ ५ ॥

ऋत्विक् बोले– कि हे राजन्! हमारे शास्त्र जैसा कह रहे हैं और अग्निदेव भी जैसा कह रहे हैं, कि तक्षक भयसे पीडित होकर इन्द्रके गृहमें छिपा हुआ है ॥ ५ ॥

सूत उवाच

यथा सूतो लोहिताक्षो महात्मा पौराणिको वेदितवान्पुरस्तात्।
स राजानं प्राह पृष्टस्तदानीं यथाहुर्विप्रास्तद्वदेतन्नृदेव ॥ ६ ॥

सूत बोले– महात्मा पौराणिक सूत लोहिताक्षने राजासे पूछे जाकर पहिले जिस प्रकार कहा था, तब भी फिर वैसा ही कहा, कि महाराज! ब्राह्मणलोग जो कहते हैं, वह सत्य है ॥६॥

पुराणमागम्य ततो ब्रवीम्यहं दत्तं तस्मै वरमिन्द्रेण राजन्।
वसेह त्वं मत्सकाशे सुगुप्तो न पावकस्त्वां प्रदहिष्यतीति ॥ ७ ॥

पुराणको देखकर तब मैं यह कह रहा हूं, कि हे राजन्! इन्द्रने उस तक्षकको यह वर दिया है कि "तुम मेरे पास यहां छिप कर रहो, अग्निदेव तुमको जला नहीं सकेंगे।" ॥७॥

एतच्छ्रुत्वा दीक्षितस्तप्यमान आस्ते होतारं चोदयन्कर्मकाले।
होता च यत्तः स जुहाव मन्त्रैरथो इन्द्रः स्वयमेवाजगाम ॥ ८ ॥
विमानमारुह्य महानुभावः सर्वैर्देवैः परिसंस्तूयमानः।
बलाहकैश्चाप्यनुगम्यमानो विद्याधरैरप्सरसां गणैश्च ॥ ९ ॥

यह सुनकर यज्ञमें दीक्षा लिए हुए राजा क्रोधित होकर उस यज्ञकालमें होताको प्रेरणा देने लगा, और होता भी प्रयत्न करके मंत्रोंके द्वारा अग्निमें आहुतियां देने लगा, तब सम्पूर्ण देवोंके द्वारा स्तुत होते हुए, बादल, विद्याधर और अप्सराओंके गण जिसके पीछे पीछे चल रहे हैं, ऐसा महात्मा इन्द्र विमान पर चढकर स्वयं वहां आकर उपस्थित हो गया ॥ ८–९॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्योत्तरीये निहितः स नागो भयोद्विग्नः शर्म नैवाभ्यगच्छत् ।
ततो राजा मन्त्रविदोऽब्रवीत्पुनः क्रुद्धो वाक्यं तक्षकस्यान्तमिच्छन् ॥१०॥

भयसे उद्विग्न होकर उस इन्द्रके दुपट्टेमें छिपा हुआ वह नाग कहीं भी शरण न पा सका । तब तक्षकके नाशकी इच्छा करते हुए राजाने क्रोधित होकर मन्त्रज्ञ ऋषियोंसे फिर कहा ॥ १० ॥

इन्द्रस्य भवने विप्रा यदि नागः स तक्षकः ।
तमिन्द्रेणैव सहितं पातयध्वं विभावसौ ॥ ११ ॥

हे ब्राह्मणो ! यदि वह नाग तक्षक इन्द्रके भवनमें हो, तो इन्द्रके सहित ही उसको अग्निमें गिराइये ॥ ११ ॥

ऋत्विज ऊचुः

अयमायाति वै तूर्णं तक्षकस्ते वशं नृप ।
श्रूयतेऽस्य महान्नादो रुवतो भैरवं भयात् ॥ १२ ॥

ऋत्विजोंने कहा– कि हे महाराज ! तक्षक आपके वशमें होकर शीघ्र चला आ रहा है और भयसे व्याकुल होकर चिल्लानेके कारण उसकी घोर आवाज सुनाई दे रही है ॥ १२ ॥

नूनं मुक्तो वज्रभृता स नागो भ्रष्टश्चाङ्कान्मन्त्रविस्रस्तकायः ।
घूर्णन्नाकाशे नष्टसंज्ञोऽभ्युपैति तीव्रान्निःश्वासान्निःश्वसन्पन्नगेन्द्रः ॥ १३ ॥

निश्चयसे जान पडता है, कि वज्रधारी देवराजने उस नागको छोड दिया है, सो मन्त्रके बलसे खींचे जाकर इन्द्रकी गोदसे भ्रष्ट होकर तथा अस्तव्यस्त शरीरवाला होकर वह सर्पनाथ तेज सांस छोडता हुआ आकाशमें चक्कर खा खाकर और चेतना–वर्जित होकर आ रहा है ॥१३॥

वर्तते तव राजेन्द्र कर्मैतद्विधिवत्प्रभो ।
अस्मै तु द्विजमुख्याय वरं त्वं दातुमर्हसि ॥ १४ ॥

हे राजेन्द्र प्रभो ! अब आपका कार्य विधिपूर्वक हुआ है, अब इन ब्राह्मणश्रेष्ठको आप वर दे सकते हैं ॥ १४ ॥

जनमेजय उवाच

बालाभिरूपस्य तवाप्रमेय वरं प्रयच्छामि यथानुरूपम् ।
वृणीष्व यत्तेऽभिमतं हृदि स्थितं तत्ते प्रदास्याम्यपि चेददेयम् ॥ १५ ॥

जनमेजय बोले– हे अप्रमेय बालक ! तुम जैसे योग्य पात्र हो, मैं तुमको वैसा ही वर दूंगा। तुम्हारे चित्तमें जो अभिलाषा हो; उसे मांगो, यदि वह मेरे देनेके अयोग्य भी होगा, तो भी दूंगा ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

पतिष्यमाणे नागेन्द्रे तक्षके जातवेदसि।
इदमन्तरमित्येवं तदास्तीकोऽभ्यचोदयत् ॥ १६ ॥

सूत बोले– नागराज तक्षकके अग्निमें गिरते समय आस्तीक मुनि वरको मांगनेका समय जानकर उससे बोले ॥ १६ ॥

वरं ददासि चेन्मह्यं वृणोमि जनमेजय।
सत्रं ते विरमत्वेतन्न पतेयुरिहोरगाः ॥ १७ ॥

हे जनमेजय ! यदि आप मुझे वर दे रहे हैं तो मैं यही मांगता हूं, कि आपका यह सर्पयज्ञ बन्द होवे और अब इसमें सर्प न गिरें ॥ १७ ॥

एवमुक्तस्ततो राजा ब्रह्मन्पारिक्षितस्तदा।
नानिहृष्टमना वाक्यमास्तीकमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

ब्रह्मन् ! तब इस प्रकार कहे जाने पर परिक्षित्-पुत्र राजाने अप्रसन्न चित्तसे आस्तीकसे यह वचन कहे ॥ १८ ॥

सुवर्णं रजतं गाश्च यच्चान्यन्मन्यसे विभो।
तत्ते दद्यां वरं विप्र न निवर्तेत्क्रतुर्मम ॥ १९ ॥

विभो ! आप सोना, चांदी, गौ वा और किसी भी वस्तुकी प्रार्थना कीजिये, वह सभी आपको दे सकूंगा; पर हे विप्र ! मेरा यह यज्ञ बन्द नहीं होगा ॥ १९ ॥

आस्तीक उवाच

सुवर्णं रजतं गाश्च न त्वां राजन्वृणोम्यहम्।
सत्रं ते विरमत्वेतत्स्वस्ति मातृकुलस्य नः ॥ २० ॥

आस्तीकने उत्तर दिया– हे राजन् ! मैं सोना, चांदी, गौ आदि कुछ भी तुमसे नहीं मांगता, आपका यह यज्ञ बन्द हो, उसीसे मेरे मातृकुलका मंगल होगा ॥ २० ॥

सूत उवाच

आस्तीकेनैवमुक्तस्तु राजा पारिक्षितस्तदा।
पुनः पुनरुवाचेदमास्तीकं वदतां वरम् ॥ २१ ॥
अन्यं वरय भद्रं ते वरं द्विजवरोत्तम।
अयाचत न चाप्यन्यं वरं स भृगुनन्दन ॥ २२ ॥

सूत बोले– मुनि आस्तीकके ऐसा उत्तर देनेपर उस बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ आस्तीकसे राजा जनमेजय बार बार यह कहने लगे, कि " हे द्विजश्रेष्ठ ! आप दूसरा वर मांगिये तो आपके लिये मंगल होगा।" पर हे भृगुनन्दन ! आस्तीकने किसी प्रकार दूसरे वरकी मांग नहीं की ॥२१-२२॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो वेदविदस्तत्र सदस्याः सर्व एव तम् ।
राजानमूचुः सहिता लभतां ब्राह्मणो वरम् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ १७६५ ॥

तब सभी वेद जाननेवाले सदस्योंने मिलकर उस राजासे कहा, कि ब्राह्मणकुमार वर प्राप्त करे ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ १७६५ ॥

: ५२ :

शौनक उवाच

ये सर्पाः सर्पसत्रेऽस्मिन्पतिता हव्यवाहने ।
तेषां नामानि सर्वेषां श्रोतुमिच्छामि सूतज ॥ १ ॥

शौनकने पूछा– हे सूतपुत्र ! उस सर्पयज्ञमें जो सर्प अग्निमें आ गिरे थे, उन सबके नाम सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥

सूत उवाच

सहस्राणि बहून्यस्मिन्प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
न शक्यं परिसंख्यातुं बहुत्वाद्वेदवित्तम ॥ २ ॥

सूत बोले– हे वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ शौनक ! सहस्रों, लाखों, अरबों सर्प अग्निमें जल मरे थे, इसलिए बहुत होनेके कारण उनकी संख्या नहीं हो सकती ॥ २ ॥

यथास्मृति तु नामानि पन्नगानां निबोध मे ।
उच्यमानानि मुख्यानां हुतानां जातवेदसि ॥ ३ ॥

पर अपने स्मरणके अनुसार अग्निमें जल जानेवाले मुख्य मुख्य सांपोंके कहे जानेवाले नामोंको मुझसे सुनो ॥ ३ ॥

वासुकेः कुलजांस्तावत्प्राधान्येन निबोध मे ।
नीलरक्तान्सितान्घोरान्महाकायान्विषोल्बणान् ॥ ४ ॥

पहिले उनमें वासुकि--वंशोत्पन्न नीले, लाल, सफेद, बडे शरीरवाले, घोर विषसे भयावने प्रधान प्रधान सर्पोंके नाम मुझसे सुनिये ॥ ४ ॥

कोटिको मानसः पूर्णः सहः पैलो हलीसकः ।
पिच्छिलः कोणपश्चक्रः कोणवेगः प्रकालनः ॥ ५ ॥

कोटिक, मानस, पूर्ण, सह, पैल, हलीसक, पिच्छिल, कोणप, चक्र, कोणवेग, प्रकालन ॥५॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हिरण्यवाहः शरणः कक्षकः कालदन्तकः ।
एते वासुकिजा नागाः प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥

हिरण्यवाह, शरण, कक्षक और कालदन्तक ये वासुकि--वंशोत्पन्न सर्प जलती हुई आगमें गिरे थे ॥ ६ ॥

तक्षकस्य कुले जातान्प्रवक्ष्यामि निबोध तान् ।
पुच्छण्डको मण्डलकः पिण्डभेत्ता रभेणकः ॥ ७ ॥

तक्षकके कुलमें उत्पन्न हुए सर्पोंके नाम कहता हूं, सुनिये । पुच्छण्डक, मण्डलक, पिण्ड-भेत्ता, रभेणक ॥ ७ ॥

उच्छिखः सुरसो द्रङ्गो बलहेडो विरोहणः ।
शिलीशलकरो मूकः सुकुमारः प्रवेपनः ॥ ८ ॥

उच्छिख, सुरस, द्रङ्ग, बलहेड, विरोहण, शिलीशलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेपन ॥८॥

मुद्गरः शशरोमा च सुमना वेगवाहनः ।
एते तक्षकजा नागाः प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ ९ ॥

मुद्गर, शशरोमा, सुमना और वेगवाहन ये तक्षकवंशोत्पन्न सब सर्प अग्निमें प्रविष्ट हुए थे ॥९॥

पारावतः पारियात्रः पाण्डरो हरिणः कृशः ।
विहङ्गः शरभो मोदः प्रमोदः संहताङ्गदः ॥ १० ॥
ऐरावतकुलादेते प्रविष्टा हव्यवाहनम् ।
कौरव्यकुलजान्नागाञ्शृणु मे द्विजसत्तम ॥ ११ ॥

पारावत, पारियात्र, पाण्डर, हरिण, कृश, विहङ्ग, शरभ, मोद, प्रमोद और संहतांगद यह सब ऐरावतवंशोत्पन्न नाग आगमें गिरे थे । हे द्विजोत्तम ! अब कौरव्यकुलमें उत्पन्न नागोंके नाम मुझसे सुनो ॥ १०-११ ॥

ऐण्डिलः कुण्डलो मुण्डो वेणिस्कन्धः कुमारकः ।
बाहुकः शृङ्गवेगश्च धूर्तकः पातपातरौ ॥ १२ ॥

ऐण्डिल, कुण्डल, मुण्ड, वेणिस्कन्ध, कुमारक, बाहुक, शृङ्गवेग, धूर्तक, पात, पातर यह सब नाग आगमें घुसे थे ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्रकुले जाताञ्शृणु नागान्यथातथम् ।
कीर्त्यमानान्मया ब्रह्मन्वातवेगान्विषोल्बणान् ॥ १३ ॥

हे ब्रह्मन् ! अब मेरे द्वारा कहे जानेवाले धृतराष्ट्रवंशोत्पन्न विषधारी वायुवत् वेगवान् नागोंके नाम यथावत् सुनिये ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शङ्कुकर्णः पिङ्गलकः कुठारमुखमेचकौ ।
पूर्णाङ्गदः पूर्णमुखः प्रहसः शकुनिर्हरिः ॥ १४ ॥

शङ्कुकर्ण, पिंगलक, कुठार, मुखमेचक, पूर्णाङ्गद, पूर्णमुख, प्रहस, शकुनि, हरि ॥ १४ ॥

आमाहठः कोमठकः श्वसनो मानवो वटः ।
भैरवो मुण्डवेदाङ्गः पिशङ्गश्चोद्रपारगः ॥ १५ ॥

आमाहठ, कोमठक, श्वसन, मानव, वट, भैरव, मुण्डवेदांग, पिशंग, उद्रपारग ॥ १५ ॥

ऋषभो वेगवान्नाम पिण्डारकमहाहनू ।
रक्ताङ्गः सर्वसारङ्गः समृद्धः पाटराक्षसौ ॥ १६ ॥

ऋषभ, वेगवान् नाग, पिण्डारक, महाहनू, रक्ताङ्ग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पाट और राक्षस ॥ १६ ॥

वराहको वारणकः सुमित्रश्चित्रवेदिकः ।
पराशरस्तरुणको मणिस्कन्धस्तथारुणिः ॥ १७ ॥

वराहक, वारणक, सुमित्र, चित्रवेदिक, पराशर, तरुणक, मणि, स्कन्ध और अरुणि ॥ १७ ॥

इति नागा मया ब्रह्मन्कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।
प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार सब बडे बडे यशस्वी सर्पोंके नाम प्राधान्यतासे कह चुका, अधिक होनेके कारण सब सर्पोंके नाम नहीं कह सका ॥ १८ ॥

एतेषां पुत्रपौत्रास्तु प्रसवस्य च संततिः ।
न शक्याः परिसंख्यातुं ये दीप्तं पावकं गताः ॥ १९ ॥

इनके बेटे और इनके पोते तथा उनकी भी सन्तानें जो जलती हुई आगमें गिरी थीं, उनकी संख्या नहीं गिनी जा सकती ॥ १९ ॥

सप्तशीर्षा द्विशीर्षाश्च पञ्चशीर्षास्तथापरे ।
कालानलविषा घोरा हुताः शतसहस्रशः ॥ २० ॥

इनके सिवाय सात सिरयुक्त, दो सिरयुक्त, पांच सिरयुक्त प्रलय कालिक अग्निके समान विष धरनेवाले सैंकडों हजारों भयानक सांप जला दिए गए ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाकाया महावीर्याः शैलशृङ्गसमुच्छ्रयाः।
योजनायामविस्तारा द्वियोजनसमायताः ॥ २१ ॥
कामरूपाः कामगमा दीप्तानलविषोल्बणाः।
दग्धास्तत्र महासत्रे ब्रह्मदण्डनिपीडिताः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ १७८७ ॥

बडे भारी शरीरवाले, अति वीर्यवान्, पहाडकी चोटी जैसे ऊंचे, योजन भर लम्बे और दो योजन चौडे, इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले, इच्छाके अनुसार सर्वत्र जानेवाले प्रदीप्त अग्निके समान विषधारी सर्प ब्रह्मदण्डसे पीडित होकर उस महायज्ञमें जल गये थे ॥ २१–२२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ १७८७ ॥

: ५३ :

सूत उवाच

इदमत्यद्भुतं चान्यदास्तीकस्यानुशुश्रुमः।
तथा वरैश्छन्द्यमाने राज्ञा पारिक्षितेन ह ॥ १ ॥

सूत बोले-- परिक्षित्पुत्र जनमेजयके उस प्रकार आस्तीकको वर देनेके लिए प्रस्तुत होनेपर और एक आश्चर्य लीला हमने सुनी ॥ १ ॥

इन्द्रहस्ताच्च्युतो नागः ख एव यदतिष्ठत।
ततश्चिन्तापरो राजा बभूव जनमेजयः ॥ २ ॥

नागराज तक्षक इन्द्रके हाथसे छूट कर आकाशहीमें ठहर गया, तब राजा जनमेजय चिन्तासे युक्त हो गया ॥ २ ॥

हूयमाने भृशं दीप्ते विधिवत्पावके तदा।
न स्म स प्रापतद्वह्नौ तक्षको भयपीडितः ॥ ३ ॥

भयसे व्याकुल होने पर भी तक्षक विधिपूर्वक आहुति दी हुई तथा अच्छी तरहसे जलती आगमें नहीं गिरा ॥ ३ ॥

शौनक उवाच

किं सूत तेषां विप्राणां मन्त्रग्रामो मनीषिणाम्।
न प्रत्यभात्तदाग्नौ यन्न पपात स तक्षकः ॥ ४ ॥

शौनकने पूछा– हे सूत! क्या उस समय मनीषासम्पन्न उन ब्राह्मणोंका मन्त्र प्रतिभा युक्त नहीं हुआ था, कि जिससे वह तक्षक आगमें नहीं गिरा? ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

तमिन्द्रहस्ताद्विस्रस्तं विसंज्ञं पन्नगोत्तमम् ।
आस्तीकस्तिष्ठ तिष्ठेति वाचस्तिस्रोऽभ्युदैरयत् ॥ ५ ॥

सूत बोले– चेतना खोये हुए तथा इन्द्रके हाथसे छूट कर गिरते हुए नागश्रेष्ठसे मुनि आस्तीकने "ठहरो, ठहरो" ये शब्द तीनबार कहे थे ॥ ५ ॥

वितस्थे सोऽन्तरिक्षेऽथ हृदयेन विदूयता ।
यथा तिष्ठेत वै कश्चिद्रोचक्रस्यान्तरा नरः ॥ ६ ॥

जैसे कोई पुरुष दो पहियोंके बीचमें ही लटक कर रह जाए, वैसे ही तक्षक दुःखी चित्तसे आकाशहीमें लटका रह गया ॥ ६ ॥

ततो राजाब्रवीद्वाक्यं सदस्यैश्चोदितो भृशम् ।
काममेतद्भवत्वेवं यथास्तीकस्य भाषितम् ॥ ७ ॥

तब सदस्योंके बहुत अनुरोध करने पर राजाने कहा, कि अच्छा, आस्तीक जो कहते हैं, वही होवे ॥ ७ ॥

समाप्यतामिदं कर्म पन्नगाः सन्त्वनामयाः ।
प्रीयतामयमास्तीकः सत्यं सूतवचोऽस्तु तत् ॥ ८ ॥

सर्पयज्ञका यह कर्म समाप्त होवे, सर्प दुःखसे बच जावें वह आस्तीक प्रसन्न हों, तथा सूतकी वह वाणी सत्य हो ॥ ८ ॥

ततो हलहलाशब्दः प्रीतिजः समवर्तत ।
आस्तीकस्य वरे दत्ते तथैवोपररामं च ॥ ९ ॥
स यज्ञः पाण्डवेयस्य राज्ञः पारिक्षितस्य ह ।
प्रीतिमांश्चाभवद्राजा भारतो जनमेजयः ॥ १० ॥

तब चारों ओरसे उत्पन्न हुई आनन्दकी हलहल ध्वनि होने लगी; मुनि आस्तीकको वर दे देने पर पाण्डुवंशोत्पन्न परिक्षित्के पुत्र राजा जनमेजयका वह यज्ञ बन्द हुआ और भरतवंशी वह राजा जनमेजय भी प्रसन्न हुआ ॥ ९-१० ॥

ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो ये तत्रासन्समागताः ।
तेभ्यश्च प्रददौ वित्तं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥

तथा उसने ऋत्विक, सदस्य और दूसरे लोगोंको, जो उस यज्ञमें आये थे, सैंकडों सहस्रों मुद्रायें दानमें दीं ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोहिताक्षाय सूताय तथा स्थपतये विभुः।
येनोक्तं तत्र सत्राग्रे यज्ञस्य विनिवर्तनम् ॥ १२ ॥
निमित्तं ब्राह्मण इति तस्मै वित्तं ददौ बहु।
ततश्चकारावभृथं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १३ ॥

और जिसने यज्ञसे पहले कहा था कि एक ब्राह्मणके कारण यह यज्ञ समाप्त हो जाएगा राजाने उस स्थपति सूत लोहिताक्षके लिए भी बहुतसा धन दिया फिर अन्तमें विविध कर्मके अनुसार यज्ञान्त स्नान किया ॥ १२-१३ ॥

आस्तीकं प्रेषयामास गृहानेव सुसत्कृतम्।
राजा प्रीतमनाः प्रीतं कृतकृत्यं मनीषिणम् ॥ १४ ॥

इसके बाद सन्तुष्ट मनवाले होकरके उस राजाने कृतकृत्य किये हुए और प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् आस्तीककी यथोचित पूजा करके उसे घर भेज दिया ॥ १४ ॥

पुनरागमनं कार्यमिति चैनं वचोऽब्रवीत्।
भविष्यसि सदस्यो मे वाजिमेधे महाक्रतौ ॥ १५ ॥

और कह दिया कि आप फिर आइए, तथा मेरे अश्वमेध नामक महायज्ञमें आप सदस्य होइये ॥ १५ ॥

तथेत्युक्त्वा प्रदुद्राव स चास्तीको मुदा युतः।
कृत्वा स्वकार्यमतुलं तोषयित्वा च पार्थिवम् ॥ १६ ॥

आस्तीक इस प्रकार महान् कार्यको करके अति प्रीतिचित्तसे राजाको प्रसन्न करके तथास्तु कहकर चले गये ॥ १६ ॥

स गत्वा परमप्रीतो मातरं मातुलं च तम्।
अभिगम्योपसंगृह्य यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ १७ ॥

और उन्होंने बहुत आनन्दित होकर माता और मामाके पास जाकर प्रणामपूर्वक जो कुछ भी हुआ था, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १७ ॥

एतच्छ्रुत्वा प्रीयमाणाः समेता ये तत्रासन्पन्नगा वीतमोहाः।
तेऽस्तीके वै प्रीतिमन्तो बभूवुरूचुश्चैनं वरमिष्टं वृणीष्व ॥ १८ ॥

यह सुनकर वहां जितने भी सर्प थे, सब भयसे रहित होकर बहुत खुश हुए और वे आस्तीकसे अत्यधिक प्रेम करने लगे और इससे बोले कि जो इच्छा हो, वह वर मांगो ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भूयो भूयः सर्वशस्तेऽब्रुवंस्तं किं ते प्रियं करवामोऽद्य विद्वन् ।
प्रीता वयं मोक्षिताश्चैव सर्वे कामं किं ते करवामोऽद्य वत्स ॥ १९ ॥

हमको बचानेके हेतु हम सब तुमपर बडे सन्तुष्ट हुए हैं, वे सब आस्तीकसे बार बार कहने लगे कि हे विद्वन् ! आज हम तुम्हारा क्या प्रिय करें? हम सबको तुमने छुडाया है, इसलिए हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, अतः हे वत्स! बताओ, हम आज तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूर्ण करें ॥ १९ ॥

आस्तीक उवाच

सायं प्रातः सुप्रसन्नात्मरूपा लोके विप्रा मानवाश्चेतरेऽपि ।
धर्माख्यानं ये वदेयुर्ममेदं तेषां युष्मद्भयो नैव किंचिद्भयं स्यात् ॥ २० ॥

आस्तीक बोले– इस भूमण्डलमें जो सब ब्राह्मण वा दूसरे मनुष्य प्रसन्न चित्तवाले होकर प्रातःकाल वा सन्ध्याके समय मेरा यह धर्म आख्यान पढें, उनको तुमसे कोई भय नहीं रहे ॥ २० ॥

सूत उवाच

तैश्चाप्युक्तो भागिनेयः प्रसन्नैरेतत्सत्यं काममेवं चरन्तः ।
प्रीत्या युक्ता ईप्सितं सर्वशस्ते कर्तारः स्म प्रवणा भागिनेय ॥ २१ ॥

सूत बोले– तब प्रसन्न हुए हुए सांपोंने अपने भांजे आस्तीकसे कहा– "हे भांजे ! जो इस प्रकारका आचरण करेंगे अर्थात् सायं प्रातः तुम्हारे इस धर्माख्यानका पाठ करेंगे, उनके बारेमें तुम्हारी इच्छा सच होगी अर्थात् हम उन्हें नहीं डसेंगे । प्रीतिसे युक्त हम तुम्हारे मांगे हुए वरको खुशीसे और तत्परतासे पूरा करेंगे ॥ २१ ॥

जरत्कारोर्जरत्कार्वां समुत्पन्नो महायशाः ।
आस्तीकः सत्यसंधो मां पन्नगेभ्योऽभिरक्षतु ॥ २२ ॥

जरत्कारुके वीर्य और जरत्कारुके गर्भसे उत्पन्न महायशस्वी तथा सत्यशील आस्तीक सांपोंसे मेरी रक्षा करे ॥ २२ ॥

असितं चार्तिमन्तं च सुनीथं चापि यः स्मरेत् ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत् ॥ २३ ॥

इस प्रकार जो दिन वा रात्रिमें असित, आर्त्तिमान् और सुनीथको स्मरण करेगा, उसको सर्पोंसे भय नहीं रहेगा ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

मोक्षयित्वा स भुजगान्सर्पसत्राद्द्विजोत्तमः।
जगाम काले धर्मात्मा दिष्टान्तं पुत्रपौत्रवान् ॥ २४ ॥

सूत बोले– धर्मात्मा द्विजोत्तम आस्तीक इस प्रकार सर्पोंकी सर्पयज्ञसे रक्षा कर पुत्र पौत्रादि युक्त होकर उचित समयमें परलोकको सिधारे ॥ २४ ॥

इत्याख्यानं मयास्तीकं यथावत्कीर्तितं तव।
यत्कीर्तयित्वा सर्पेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा धर्मिष्ठमाख्यानमास्तीकं पुण्यवर्धनम्।
आस्तीकस्य कवेर्विप्र श्रीमच्चरितमादितः ॥ २६ ॥

इस प्रकार, हे विप्र शौनक ! मैंने आपके सामने आस्तीककी कथा ठीक ठीक सुना दी है। इस ज्ञानी आस्तीकके उत्तम चरित्रका वर्णन करनेवाले तथा पुण्य बढानेवाले धर्मयुक्त आस्तीक आख्यानको जो सुनता अथवा पढता है, उसे कहीं भी सांपोंसे डर नहीं होता ॥ २५-२६ ॥

शौनक उवाच

भृगुवंशात्प्रभृत्येव त्वया मे कथितं महत्।
आख्यानमखिलं तात सौते प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥ २७ ॥

शौनक बोले– हे तात ! तुमने मेरे सामने भृगुवंशसे लेकर जो सब महत् आख्यान कीर्तन किये हैं, उस कारण मैं तुमपर बडा प्रसन्न हुआ हूं ॥ २७ ॥

प्रक्ष्यामि चैव भूयस्त्वां यथावत्सूतनन्दन।
यां कथां व्याससंपन्नां तां च भूयः प्रचक्ष्व मे ॥ २८ ॥

तो भी, हे सूतनन्दन ! तुमसे फिर पूछता हूं, कि व्यासजीके द्वारा कही गई जो कथायें हैं, हे महाकवे ! उन सबको तुम जैसीकी तैसी विस्तारसे फिर कहो ॥ २८ ॥

तस्मिन्परमदुष्प्रापे सर्पसत्रे महात्मनाम्।
कर्मान्तरेषु विधिवत्सदस्यानां महाकवे ॥ २९ ॥
या बभूवुः कथाश्चित्रा येष्वर्थेषु यथातथम्।
त्वत्त इच्छामहे श्रोतुं सौते त्वं वै विचक्षणः ॥ ३० ॥

हे महाज्ञानी सूतपुत्र ! महात्माओंके उस कठिनतासे सम्पन्न होनेवाले सर्पसत्रमें यज्ञानुष्ठानके अवसरपर तथा दूसरे कामोंके समय बडे ज्ञानी सदस्योंकी जो अनेक तरहकी कथायें अनेक विषयोंपर हुई, उनको उन्हीं रूपोंमें हम तुमसे सुनना चाहते हैं। हे सूतपुत्र ! तुम बहुत बुद्धिमान् हो ॥ २९-३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूत उवाच

कर्मान्तरेष्वकथयन्द्विजा वेदाश्रयाः कथाः ।
व्यासस्त्वकथयन्नित्यमाख्यानं भारतं महत् ॥ ३१ ॥

सूत बोले– सर्पयज्ञके अवसरपर ब्राह्मणोंने वेदोंके आधारसे अनेक कथायें कही थीं, उस समय व्यासजी महाभारत नामक आख्यानको रोज सुनाया करते थे ॥ ३१ ॥

शौनक उवाच

महाभारतमाख्यानं पाण्डवानां यशस्करम् ।
जनमेजयेन यत्पृष्टः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ ३२ ॥
श्रावयामास विधिवत्तदा कर्मान्तरेषु सः ।
तामहं विधिवत्पुण्यां श्रोतुमिच्छामि वै कथाम् ॥ ३३ ॥

शौनक बोले– उस समय जनमेजयके द्वारा पूछे जानेपर कृष्णद्वैपायनने उसे पाण्डवोंकी कीर्ति बढानेवाले महाभारतकी कथाको, यज्ञकर्मके बीच बीचमें विधिपूर्वक सुनाया था, उस पवित्र कथाको विधिपूर्वक मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ३२-३३ ॥

मनःसागरसंभूतां महर्षेः पुण्यकर्मणः ।
कथयस्व सतां श्रेष्ठ न हि तृप्यामि सूतज ॥ ३४ ॥

हे सज्जनोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र ! पुण्यकर्म करनेवाले महर्षिके हृदयरूपी समुद्रमेंसे निकले हुए, उस कथाको सुनाओ, अभीतक मैं तृप्त नहीं हुआ हूं ॥ ३४ ॥

सूत उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् ।
कृष्णद्वैपायनमतं महाभारतमादितः ॥ ३५ ॥

सूत बोले– अच्छा, आपको कृष्णद्वैपायनके द्वारा कहे हुए महाभारत नामक अति श्रेष्ठ महाख्यानको शुरुसे कहूंगा ॥ ३५ ॥

तज्जुषस्वोत्तममते कथ्यमानं मया द्विज ।
शंसितुं तन्मनोहर्षो ममापीह प्रवर्तते ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ १८२३ ॥ समाप्तमास्तीकपर्व ॥

हे उत्तम बुद्धिमान् द्विज ! मेरे द्वारा कहे जाते हुए उस आख्यानको सुनिये, इसके कहनेमें मेरा भी मन बडा हर्षित होता है ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तिरेपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ १८२३ ॥ आस्तीकपर्व समाप्त हुआ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ५४ :

सूत उवाच

श्रुत्वा तु सर्पसत्राय दीक्षितं जनमेजयम्।
अभ्यागच्छदृषिर्विद्वान्कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ १ ॥
जनयामास यं काली शक्तेः पुत्रात्पराशरात्।
कन्यैव यमुनाद्वीपे पाण्डवानां पितामहम् ॥ २ ॥

सूत बोले– पाण्डवोंके पितामह जिन (कृष्णद्वैपायन) को शक्तिके पुत्र पराशरके वीर्यसे सत्यवतीने यमुना द्वीपपर कुमारीकी अवस्थामें ही पैदा किया था, वे विद्वान् ऋषि कृष्ण द्वैपायन तब जनमेजयके सर्पयज्ञमें दीक्षित होनेकी बात सुनकर वहां गए ॥ १-२ ॥

जातमात्रश्च यः सद्य इष्ट्वा देहमवीवृधत्।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान्सेतिहासान्महायशाः ॥ ३ ॥

जिन महर्षिने जन्म लेते ही उसीक्षण यज्ञ करके देहको बढा लिया था और वेद, वेदांग, इतिहास आदि सम्पूर्ण शास्त्र पढ लिए ॥ ३ ॥

यं नाति तपसा कश्चिन्न वेदाध्ययनेन च।
न व्रतैर्नोपवासैश्च न प्रसूत्या न मन्युना ॥ ४ ॥

जिनसे न कोई तपसे आगे बढ सका, न वेदाध्ययनसे, न व्रतोंसे, न उपवासोंसे, न जन्मसे और न क्रोधमें ही कोई उनसे आगे बढ सका ॥ ४ ॥

विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः।
परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः ॥ ५ ॥

जिन परात्पर परमेश्वरके तत्त्व जाननेवाले, सत्यव्रतधारी, अतीतदर्शी शुद्धाचारी, वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षिने एक वेदको चार भागोंमें बांटा ॥ ५ ॥

यः पाण्डुं धृतराष्ट्रं च विदुरं चाप्यजीजनत्।
शन्तनोः सन्ततिं तन्वन्पुण्यकीर्तिर्महायशाः ॥ ६ ॥

जिन पुण्यकीर्त्तिवाले अति यशस्वी महर्षिने शान्तनुवंशकी सन्तानका विस्तार करते हुए पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुरको उत्पन्न किया था ॥ ६ ॥

जनमेजयस्य राजर्षेः स तद्यज्ञसदस्तदा।
विवेश शिष्यैः सहितो वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ७ ॥

उन्हीं महात्माने वेद वेदाङ्गमें पण्डित अपने शिष्योंके साथ राजर्षि जनमेजयकी यज्ञ-सभामें प्रवेश किया ! ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र राजानमासीनं ददर्श जनमेजयम् ।
वृतं सदस्यैर्बहुभिर्देवैरिव पुरन्दरम् ॥ ८ ॥
तथा मूर्धावसिक्तैश्च नानाजनपदेश्वरैः ।
ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च कुशलैर्यज्ञसंस्तरे ॥ ९ ॥

वहां, देवोंसे जिस प्रकार इन्द्र घिरे रहते हैं, उसी प्रकार अनेक सदस्यों, नाना देशोंके मूर्धाभिषिक्त राजाओं, देवोंके समान तथा यज्ञकर्मको करनेमें कुशल ऋत्विजोंसे घिरे हुए राजा जनमेजयको देखा ॥ ८–९ ॥

जनमेजयस्तु राजर्षिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ।
सगणोऽभ्युद्ययौ तूर्णं प्रीत्या भरतसत्तमः ॥ १० ॥

राजर्षि जनमेजय तो उन ऋषिको आया देखकर प्रसन्नचित्तसे साथियोंके साथ शीघ्र ही उनके पास गए ॥ १० ॥

काञ्चनं विष्टरं तस्मै सदस्यानुमते प्रभुः ।
आसनं कल्पयामास यथा शक्रो बृहस्पतेः ॥ ११ ॥

देवराज इन्द्र जिस प्रकार बृहस्पतिको आसन देते हैं, वैसे ही प्रभु जनमेजयने सदस्योंसे सहमत होकर उन महर्षिको सुवर्णका आसन दिया ॥ ११ ॥

तत्रोपविष्टं वरदं देवर्षिगणपूजितम् ।
पूजयामास राजेन्द्रः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १२ ॥

और वह उसपर बैठे हुए वर देनेवाले और देवर्षियोंसे पूजे जानेवाले उन कृष्णद्वैपायनकी राजेन्द्र जनमेजयने शास्त्रोचित कर्मसे पूजा की ॥ १२ ॥

पाद्यमाचमनीयं च अर्घ्यं गां च विधानतः ।
पितामहाय कृष्णाय तदर्हाय न्यवेदयत् ॥ १३ ॥

और उन पितामह कृष्ण व्यासको उनके योग्य पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और गौको विधिपूर्वक समर्पित किया ॥ १३ ॥

प्रतिगृह्य च तां पूजां पाण्डवाज्जनमेजयात् ।
गां चैव समनुज्ञाय व्यासः प्रीतोऽभवत्तदा ॥ १४ ॥

भगवान् व्यास पाण्डुवंशोत्पन्न जनमेजयसे वह सब पूजा लेकर तथा गौ स्वीकार करके बहुत प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथा संपूजयित्वा तं यत्नेन प्रपितामहम्।
उपोपविश्य प्रीतात्मा पर्यपृच्छदनामयम् ॥ १५ ॥

जनमेजयने यत्नसे अपने प्रपितामहको पूजकर उनके निकट बैठकर प्रसन्नचित्तसे उनकी कुशल पूछी ॥ १५ ॥

भगवानपि तं दृष्ट्वा कुशलं प्रतिवेद्य च।
सदस्यैः पूजितः सर्वैः सदस्यानभ्यपूजयत् ॥ १६ ॥

भगवान् व्यासने भी उन्हें देखकर उनसे अपना कुशल कहा; तथा सदस्यलोगोंके द्वारा पूजित होकर उन्होंने भी उन सदस्योंकी यथोचित अभ्यर्थना की ॥ १६ ॥

ततस्तं सत्कृतं सर्वैः सदस्यैर्जनमेजयः
इदं पश्चाद्द्विजश्रेष्ठं पर्यपृच्छत्कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥

इसके बाद जनमेजयने हाथ जोडकर सब सदस्यों द्वारा पूजित उन द्विजश्रेष्ठ व्याससे यह पूछा ॥ १७ ॥

कुरूणां पाण्डवानां च भवान्प्रत्यक्षदर्शिवान्।
तेषां चरितमिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज ॥ १८ ॥

हे द्विज! आपने कुरुओं और पाण्डवोंको प्रत्यक्ष देखा है, अतः मैं आपके द्वारा कहे जाते हुए उनके चरित्रको सुनना चाहता हूं ॥ १८ ॥

कथं समभवद्भेदस्तेषामक्लिष्टकर्मणाम्।
तच्च युद्धं कथं वृत्तं भूतान्तकरणं महत् ॥ १९ ॥
पितामहानां सर्वेषां दैवेनाविष्टचेतसाम्।
कार्त्स्न्येनैतत्समाचक्ष्व भगवन्कुशलो ह्यसि ॥ २० ॥

दैव अर्थात् काल ही स्वयं जिनके हृदयोंमें प्रविष्ट हो गया था, ऐसे उत्तम कर्म करनेवाले उन सब मेरे परदादा कुरुओं और पाण्डवोंमें शत्रुता कैसे उत्पन्न हो गई और उनमें प्राणी-मात्रका विनाश करनेवाला वह युद्ध कैसे हुआ ॥ १९–२० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा।
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके ॥ २१ ॥
कुरूणां पाण्डवानां च यथा भेदोऽभवत्पुरा।
तदस्मै सर्वमाचक्ष्व यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥ २२ ॥

तब कृष्णद्वैपायनने उनकी वह बात सुनकर पासमें बैठे हुए शिष्य वैशम्पायनको आज्ञा दी कि पहिले जिस प्रकार कुरुपाण्डवोंमें शत्रुता उत्पन्न हुई थी, वह तुमने मुझसे जैसा सुना है, ठीक वैसा ही इस राजाको सुनाओ ॥ २१–२२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गुरोर्वचनमाज्ञाय स तु विप्रर्षभस्तदा ।
आचचक्षे ततः सर्वमितिहासं पुरातनम् ॥ २३ ॥
तस्मै राज्ञे सदस्येभ्यः क्षत्रियेभ्यश्च सर्वशः ।
भेदं राज्यविनाशं च कुरुपाण्डवयोस्तदा ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ १८४७ ॥

तब ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वैशम्पायनने गुरुके कथनको आज्ञाके समान मानकर महाराज जनमेजयको सदस्यों और सब राजाओंके सामने कौरवों और पाण्डवोंके झगडे और राज्य नाश आदि सारे प्राचीन इतिहासको कह सुनाया ॥ २३–२४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ ॥ १८४७ ॥

: ५५ :

वैशंपायन उवाच

गुरवे प्राङ्नमस्कृत्य मनोबुद्धिसमाधिभिः ।
संपूज्य च द्विजान्सर्वांस्तथान्यान्विदुषो जनान् ॥ १ ॥
महर्षेः सर्वलोकेषु विश्रुतस्यास्य धीमतः ।
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यामिततेजसः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– पहिले गुरुके पदोंपर भक्तिसहित मन और बुद्धिको एकाग्र करके साष्टाङ्ग प्रणाम कर, दूसरे विद्वान् जनों और सम्पूर्ण ब्राह्मणोंकी वंदना करके सब लोकोंमें प्रसिद्ध धीमान् महर्षि अत्यन्त तेजस्वी व्यासका सम्पूर्ण मत कहता हूं ॥ १-२ ॥

श्रोतुं पात्रं च राजंस्त्वं प्राप्येमां भारतीं कथाम् ।
गुरोर्वक्तुं परिस्पन्दो मुदा प्रोत्साहतीव माम् ॥ ३ ॥

महाराज ! आप इस भारतीय उपाख्यानको सुननेके योग्य पुरुष हैं; अतः इस महाभारतकी कथा प्राप्त होनेके कारण गुरुजीकी आज्ञा यह कथा कहनेके लिए मानों मुझे उत्साहित कर रही है ॥ ३ ॥

शृणु राजन्यथा भेदः कुरुपाण्डवयोरभूत् ।
राज्यार्थे द्यूतसंभूतो वनवासस्तथैव च ॥ ४ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ महाराज ! जिस प्रकार कौरवों और पाण्डवोंका झगडा हुआ, राज्यके निमित्त जिस प्रकार जुएका खेल हुआ तथा पाण्डवोंका बनवास हुआ ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यथा च युद्धमभवत्पृथिवीक्षयकारकम् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि पृच्छते भरतर्षभ ॥ ५ ॥

और पृथिवीका नाश करनेवाली भयंकर लडाई हुई थी, यह सब पूछनेवाले आपसे कहता हूं, सुनिये ॥ ५ ॥

मृते पितरि ते वीरा वनादेत्य स्वमन्दिरम् ।
नचिरादिव विद्वांसो वेदे धनुषि चाभवन् ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर आदि सब वीर पिताकी मृत्युके पश्चात् वनसे अपने निज घरमें लौटकर थोडे ही समयमें धनुष-विद्यामें और वेदोंमें पंडित हो गए ॥ ६ ॥

तांस्तथा रूपवीर्यौजःसंपन्नान्पौरसंमतान् ।
नामृष्यन्कुरवो दृष्ट्वा पाण्डवाञ्श्रीयशोभृतः ॥ ७ ॥

रूप, वीर्य और बलसे सम्पन्न, पुरवासियोंको प्रिय तथा श्रीलक्ष्मी तथा यशको धारण करनेवाले उन पाण्डवोंको देखकर कौरव सह न सके ॥ ७ ॥

ततो दुर्योधनः क्रूरः कर्णश्च सहसौबलः ।
तेषां निग्रहनिर्वासान्विविधांस्ते समाचरन् ॥ ८ ॥

तब क्रूरचित्त दुर्योधन और कर्ण शकुनिके साथ उनको सताकर और घरसे खदेडकर भांति भांतिके कष्ट देने लगे ॥ ८ ॥

ददावथ विषं पापो भीमाय धृतराष्ट्रजः ।
जरयामास तद्वीरः सहान्नेन वृकोदरः ॥ ९ ॥

एकदिन पापी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने भीमको अन्नके साथ विष दे दिया, पर वीर वृकोदर उसे भी पचा गये ॥ ९ ॥

प्रमाणकोट्यां संसुप्तं पुनर्बद्ध्वा वृकोदरम् ।
तोयेषु भीमं गङ्गायाः प्रक्षिप्य पुरमाव्रजत् ॥ १० ॥

एक दिन भीम प्रमाणकोटि अर्थात् गंगाके तटपर सोये हुए थे, उस समय वह पापी दुर्योधन उनको बांधकर गंगाके प्रवाहमें फेंककर अपने घर लौट आया ॥ १० ॥

यदा प्रबुद्धः कौन्तेयस्तदा संछिद्य बन्धनम् ।
उदतिष्ठन्महाराज भीमसेनो गतव्यथः ॥ ११ ॥

कुन्तीपुत्र महाराज भीमसेन जब जागे, तब बलसे बन्धनको तोडकर पीडा दूर करके उठ आये ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आशीविषैः कृष्णसर्पैः सुप्तं चैनमदंशयत् ।
सर्वेष्वेवाङ्गदेशेषु न ममार च शत्रुहा ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र-पुत्रने भयंकर विषवाले काले सर्पसे सोते हुए उस भीमके सब शरीरको कटवाया था, पर शत्रुनाशी भीमसेन उसपर भी न मरे ॥ १२ ॥

तेषां तु विप्रकारेषु तेषु तेषु महामतिः ।
मोक्षणे प्रतिघाते च विदुरोऽवहितोऽभवत् ॥ १३ ॥

जब कौरवलोग धोखा देकर पाण्डवोंके प्राण लेनेकी चेष्टा किया करते थे, तब महामति विदुर उनके उपायको नष्ट करने और पाण्डवोंकी रक्षाके निमित्त प्रयत्नशील रहते थे ॥१३॥

स्वर्गस्थो जीवलोकस्य यथा शक्रः सुखावहः ।
पाण्डवानां तथा नित्यं विदुरोऽपि सुखावहः ॥ १४ ॥

जिस प्रकार देवलोकके देवराज सब मर्त्य लोकोंके लिए सुखदायी होते हैं, उसके समान ही विदुर सदा पाण्डवोंके लिए सुखदायी थे ॥ १४ ॥

यदा तु विविधोपायैः संवृतैर्विवृतैरपि ।
नाशक्नोद्विनिहन्तुं तान्दैवभाव्यर्थरक्षितान् ॥ १५ ॥
ततः संमन्त्र्य सचिवैर्वृषदुःशासनादिभिः ।
धृतराष्ट्रमनुज्ञाप्य जातुषं गृहमादिशत् ॥ १६ ॥

जब दुर्योधन गुप्त अथवा प्रकट अनेक उपायसे भाग्यके द्वारा रक्षित उन पाण्डवोंको मार न सका, तब दुर्योधनने कर्ण और दुःशासन आदि मन्त्रियोंसे सलाह करके और धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर जतुगृह बनवाया ॥ १५–१६ ॥

तत्र तान्वासयामास पाण्डवानमितौजसः ।
अदाहयच्च विस्रब्धान्पावकेन पुनस्तदा ॥ १७ ॥

उस लाखके घरमें उस दुर्योधनने उन अतिशय तेजस्वी पाण्डवोंको ठहराया, और तब उनके विश्वास कर लेने पर उन्हें आगसे जलवा दिया ॥ १७ ॥

विदुरस्यैव वचनात्खनित्री विहिता ततः ।
मोक्षयामास योगेन ते मुक्ताः प्राद्रवन्भयात् ॥ १८ ॥

विदुरकी आज्ञासे वहीं एक सुरंग खोदी, उसकी सहायतासे खोदनेवालेने उन पांडवोंको बचा दिया, तथा वे पाण्डव भी भयके कारण भाग गए ॥ १८ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो महावने घोरे हिडिम्बं नाम राक्षसम्।
भीमसेनोऽवधीत्क्रुद्धो भुवि भीमपराक्रमः ॥ १९ ॥

तब महाभयंकर वनमें संसारमें भयंकर पराक्रम करनेवाले भीमने क्रुद्ध होकर हिडिम्ब नामक राक्षसको मारा ॥ १९ ॥

अथ संधाय ते वीरा एकचक्रां व्रजंस्तदा।
ब्रह्मरूपधरा भूत्वा मात्रा सह परंतपाः ॥ २० ॥

इसके बाद शत्रुको संताप देनेवाले वे वीर संगठित होकर ब्राह्मणोंका रूप धारण कर माताके साथ एकचक्रा नगरीको गए ॥ २० ॥

तत्र ते ब्राह्मणार्थाय बकं हत्वा महाबलम्।
ब्राह्मणैः सहिता जग्मुः पाञ्चालानां पुरं ततः ॥ २१ ॥

वहां ब्राह्मणके लिए महाबलशाली बकासुरको मारकर वे ब्राह्मणोंके साथ पांचालोंके नगर की ओर चल दिए ॥ २१ ॥

ते तत्र द्रौपदीं लब्ध्वा परिसंवत्सरोषिताः।
विदिता हास्तिनपुरं प्रत्याजग्मुररिन्दमाः ॥ २२ ॥

वहां पांचालनगरमें शत्रुनाशी पाण्डवलोग द्रौपदीको प्राप्तकर वहां वर्षभर रहनेके बाद जाने जाकर हस्तिनापुरको लौट गये ॥ २२ ॥

त उक्ता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च।
भ्रातृभिर्विग्रहस्तात कथं वो न भवेदिति ॥
अस्माभिः खाण्डवप्रस्थे युष्मद्वासोऽनुचिन्तितः ॥ २३ ॥

तब राजा धृतराष्ट्र और शान्तनु पुत्र भीष्म उनसे बोले— तात ! इसलिये, कि तुममें भ्रातृविरोध किसी प्रकार न खडा हो, हमने खाण्डवप्रस्थमें तुम्हारे लिए रहनेके स्थानको सोचा है ॥२३॥

तस्माज्जनपदोपेतं सुविभक्तमहापथम्।
वासाय खाण्डवप्रस्थं व्रजध्वं गतमन्यवः ॥ २४ ॥

अतएव तुम क्रोधको छोडकर नाना देशोंसे युक्त, अच्छी चौडी चौडी सडकोंसे शोभित खाण्डवप्रस्थमें रहनेके लिए जाओ ॥ २४ ॥

तयोस्ते वचनाज्जग्मुः सह सर्वैः सुहृज्जनैः।
नगरं खाण्डवप्रस्थं रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ २५ ॥

पाण्डवलोक उन दोनोंकी इस बातके अनुसार सभी मित्रजनोंके साथ सम्पूर्ण रत्नादि धन ऐश्वर्य लेकर खाण्डवप्रस्थ नगरको गए ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र ते न्यवसन्राजन्संवत्सरगणान्बहून् ।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीक्षितः ॥ २६ ॥
एवं धर्मप्रधानास्ते सत्यव्रतपरायणाः ।
अप्रमत्तोत्थिताः क्षान्ताः प्रतपन्तोऽहितांस्तदा ॥ २७ ॥

तब वहां, हे राजन् ! धर्मका मुख्य रूपसे आचरण करनेवाले, सत्यव्रतमें रत रहनेवाले, अप्रमत्त, उत्साही (सज्जनोंको) क्षमा करनेवाले, पर शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले वे पाण्डव अपने शस्त्रके प्रतापसे दूसरे राजाओंको वशमें करते हुए वर्षोंतक रहे ॥ २६–२७ ॥

अजयद्भीमसेनस्तु दिशं प्राचीं महाबलः ।
उदीचीमर्जुनो वीरः प्रतीचीं नकुलस्तथा ॥ २८ ॥
दक्षिणां सहदेवस्तु विजिग्ये परवीरहा ।
एवं चक्रुरिमां सर्वे वशे कृत्स्नां वसुन्धराम् ॥ २९ ॥

महाबलवान् भीमसेनने पूर्व दिशा पर विजय पाई, वीर अर्जुनने उत्तर दिशा और नकुलने पश्चिम दिशा और शत्रुओंका नाश करनेवाले सहदेवने दक्षिण दिशाको जीता। इस प्रकार उन सभीने इस सारे भूमण्डलको वशमें कर लिया ॥ २८–२९ ॥

पञ्चभिः सूर्यसंकाशैः सूर्येण च विराजता ।
षट्सूर्येवाबभौ पृथ्वी पाण्डवैः सत्यविक्रमैः ॥ ३० ॥

सूर्यके समान तेजस्वी, सत्य विक्रमी पांच पाण्डवों और आकाश मण्डलमें सुशोभित एक सूर्यसे मानों धरती छः सूर्यवाली हो गई ॥ ३० ॥

ततो निमित्ते कस्मिंश्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वनं प्रस्थापयामास भ्रातरं वै धनंजयम् ॥ ३१ ॥

इसके बाद किसी कारण धर्मराज युधिष्ठिरने अपने भाई धनंजय अर्जुनको वन भेजा ॥ ३१ ॥

स वै संवत्सरं पूर्णं मासं चैकं वनेऽवसत् ।
ततोऽगच्छद्धृषीकेशं द्वारवत्यां कदाचन ॥ ३२ ॥

अर्जुन बारह वर्ष और एक महीने वनमें रहे। उसके बाद एक दिन वे अर्जुन द्वारकामें श्रीकृष्णके निकट गए ॥ ३२ ॥

लब्धवांस्तत्र बीभत्सुर्भार्यां राजीवलोचनाम् ।
अनुजां वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीम् ॥ ३३ ॥

वहां द्वारकामें बीभत्सु अर्जुनने कमलके समान सुन्दर आंखोंवाली तथा मधुरतासे बोलनेवाली कृष्णकी छोटी बहिन सुभद्राको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया ॥ ३३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सा शचीव महेन्द्रेण श्रीः कृष्णेनेव संगता।
सुभद्रा युयुजे प्रीता पाण्डवेनार्जुनेन ह ॥ ३४ ॥

इन्द्राणी जिसप्रकार इन्द्रसे मिलकर प्रसन्न हुई थी और श्रीलक्ष्मी जिसप्रकार विष्णुसे मिलकर सन्तुष्ट हुई थी, उसी प्रकार सुभद्रा पाण्डुपुत्र अर्जुनसे संयुक्त होकर अति आनन्दित हुई ॥ ३४ ॥

अतर्पयच्च कौन्तेयः खाण्डवे हव्यवाहनम्।
बीभत्सुर्वासुदेवेन सहितो नृपसत्तम ॥ ३५ ॥

हे नृपश्रेष्ठ जनमेजय ! कुन्तीपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ खाण्डव वनको जलाकर अग्निको सन्तुष्ट किया ॥ ३५ ॥

नातिभारो हि पार्थस्य केशवेनाभवत्सह।
व्यवसायसहायस्य विष्णोः शत्रुवधेष्विव ॥ ३६ ॥

दृढ निष्ठा पर भरोसा रखनेवाले श्रीकृष्णको जिस प्रकार शत्रुओंके मारनेमें कठिनता नहीं जान पडती है, उसी प्रकार केशव पर भरोसा रखनेवाले अर्जुनको कोई कार्य असाध्य जान नहीं पडता था ॥ ३६ ॥

पार्थायाग्निर्ददौ चापि गाण्डीवं धनुरुत्तमम्।
इषुधी चाक्षयैर्बाणै रथं च कपिलक्षणम् ॥ ३७ ॥

इसके बाद अग्निदेवने पृथापुत्र अर्जुनको सुन्दर गाण्डीव धनुष, अक्षयबाणयुक्त तरकस और कपिध्वजयुक्त रथ दिया ॥ ३७ ॥

मोक्षयामास बीभत्सुर्मयं तत्र महासुरम्।
स चकार सभां दिव्यां सर्वरत्नसमाचिताम् ॥ ३८ ॥

अर्जुनने मय नामक असुरको खाण्डवके साथ जलजानेसे बचाया था, अतः मयासुरने उनको सब रत्नोंसे युक्त एक सुन्दर सभागृह बना कर दिया ॥ ३८ ॥

तस्यां दुर्योधनो मन्दो लोभं चक्रे सुदुर्मतिः।
ततोऽक्षैर्वञ्चयित्वा च सौबलेन युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥
वनं प्रस्थापयामास सप्त वर्षाणि पञ्च च।
अज्ञातमेकं राष्ट्रे च तथा वर्षं त्रयोदशम् ॥ ४० ॥

दुष्ट बुद्धिवाला मूर्ख दुर्योधन उस सभाको देखकर उसे पानेके लिए लालच करने लगा। तब उसने सुबलपुत्र शकुनिकी सहायतासे युधिष्ठिरको पांसोंसे ठगकर सात और पांच अर्थात् बारह वर्ष तथा किसी नगरमें एक वर्ष अज्ञातवासके रूपमें इस प्रकार तेरह वर्षके लिए बन भेज दिया ॥ ३९-४० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततश्चतुर्दशे वर्षे याचमानाः स्वकं वसु ।
नालभन्त महाराज ततो युद्धमवर्तत ॥ ४१ ॥

हे महाराज ! चौदहवां वर्ष आ पहुंचनेपर (कौरवोंसे) अपनी सम्पत्तिको मांगनेवाले पाण्डवोंने सम्पत्ति प्राप्त नहीं की, तब इसी सम्पत्तिके कारण लडाई हुई ॥ ४१ ॥

ततस्ते सर्वमुत्साद्य हत्वा दुर्योधनं नृपम् ।
राज्यं विद्रुतभूयिष्ठं प्रत्यपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ४२ ॥

तब पाण्डवोंने सबको नष्ट करनेके पश्चात् दुर्योधनको मारकर उस राज्यको प्राप्त किया जिसके लिये अनेक लोग मारे गये थे ॥ ४२ ॥

एवमेतत्पुरावृत्तं तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
भेदो राज्यविनाशश्च जयश्च जयतां वर ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ १८९० ॥

हे शत्रुओंको जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! क्रोध द्वेषादिवर्जित सरल स्वभाववाले पाण्डवोंका इस प्रकार घरेलू झगडेसे राज्यनाश और पश्चात् जयलाभ हुआ था और यही उनके प्राचीन इतिहासका वृत्तान्त है ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ १८९० ॥

: ५६ :

जनमेजय उवाच

कथितं वै समासेन त्वया सर्वं द्विजोत्तम ।
महाभारतमाख्यानं कुरूणां चरितं महत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे द्विजोत्तम ! आपने कुरुवंशियोंके चरित्र-सम्बन्धी महाभारत नामक महान् आख्यानको संक्षेपमें कीर्तन किया ॥ १ ॥

कथां त्वनघ चित्रार्थामिमां कथयति त्वयि ।
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे ॥ २ ॥

हे अनघ ! तुम्हारे विचित्र अर्थवाली इस कथाको कहते हुए उसे पूरी तरहसे सुननेकी मेरी बडी इच्छा हो गई है ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स भवान्विस्तरेणेमां पुनराख्यातुमर्हति ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ ३ ॥

अतः आप कृपा करके फिरसे इसका विस्तारसे वर्णन करें; पिछले पुरुषोंके महत् चरित्रोंको सुनकर मेरी तृप्ति नहीं हुई है ॥ ३ ॥

न तत्कारणमल्पं हि धर्मज्ञा यत्र पाण्डवाः ।
अवध्यान्सर्वशो जघ्नुः प्रशस्यन्ते च मानवैः ॥ ४ ॥

पाण्डवोंने तो धर्मज्ञ होनेपर भी अवध्य स्वजन, कुटुम्बी आदियोंका वध किया था, पर उसपर भी लोग उन्हींकी प्रशंसा करते हैं। इसका कोई छोटा मोटा कारण नहीं हो सकता अर्थात् इसका कारण कोई बडा ही होना चाहिए ॥ ४ ॥

किमर्थं ते नरव्याघ्राः शक्ताः सन्तो ह्यनागसः ।
प्रयुज्यमानान्संक्लेशान्क्षान्तवन्तो दुरात्मनाम् ॥ ५ ॥

मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी निर्दोषी पाण्डवोंने बदला लेनेमें समर्थ होनेपर भी दुरात्माओंके द्वारा किए जानेवाले नाना कष्टोंको क्यों सहा ? ॥ ५ ॥

कथं नागायुतप्राणो बाहुशाली वृकोदरः ।
परिक्लिश्यन्नपि क्रोधं धृतवान्वै द्विजोत्तम ॥ ६ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाले तथा अपनी भुजाओंके बलपर गर्व करनेवाले वृकोदर भीम इतना क्लेश सहकरके भी क्यों क्रोधको रोके रहे ? ॥ ६ ॥

कथं सा द्रौपदी कृष्णा क्लिश्यमाना दुरात्मभिः ।
शक्ता सती धार्तराष्ट्रान्नादहद्घोरचक्षुषा ॥ ७ ॥

द्रुपदराजपुत्री सती द्रौपदीने दुरात्मा धृतराष्ट्र-पुत्रोंसे वैसा क्लेश पाकरके शक्ति रहनेपर भी क्यों क्रोधकी दृष्टिसे उनको भस्म नहीं कर दिया ? ॥ ७ ॥

कथं व्यतिक्रमन्द्यूते पार्थौ माद्रीसुतौ तथा ।
अनुव्रजन्नरव्याघ्रं वञ्च्यमानं दुरात्मभिः ॥ ८ ॥

दो पृथाके पुत्र भीम और अर्जुन तथा दो माद्रीके पुत्र नकुल एवं सहदेव जुएमें चुपचाप क्यों बैठे रहे और उन दुरात्मा कौरवोंके द्वारा ठगे जानेपर भी वे पुरुषोंमें सिंहरूप युधिष्ठिरके पीछे पीछे जंगलमें कैसे चले गए ? ॥ ८ ॥

कथं धर्मभृतां श्रेष्ठः सुतो धर्मस्य धर्मवित् ।
अनर्हः परमं क्लेशं सोढवान्स युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, धर्मपुत्र युधिष्ठिरने क्लेश सहनेके अयोग्य हो करके भी कैसे असह्य कष्टोंको सहन किया ? ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कथं च बहुलाः सेनाः पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
अस्यन्नेकोऽनयत्सर्वाः पितृलोकं धनञ्जयः ॥ १० ॥

और पाण्डुपुत्र धनञ्जयने अकेले केवल श्रीकृष्णको सारथी बनाकर कैसे अस्त्र मार करके अगणित सेनाको यमराजके घरमें भेज दिया था ? ॥ १० ॥

एतदाचक्ष्व मे सर्वं यथावृत्तं तपोधन ।
यच्च कृतवन्तस्ते तत्र तत्र महारथाः ॥ ११ ॥

हे तपोधन ! यह सब लीला तथा महारथी वीरोंने वहां जो जो कुछ किया था वह सब ठीक ठीक प्रकारसे मुझसे कहिये ॥ ११ ॥

वैशंपायन उवाच

महर्षेः सर्वलोकेषु पूजितस्य महात्मनः ।
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यामिततेजसः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले-- सब लोकोंमें पूजित, अमिततेजस्वी, महात्मा, महर्षि वेदव्यासके सम्पूर्ण मतको कहूंगा ॥ १२ ॥

इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम् ।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥ १३ ॥

परम तेजस्वी सत्यवती-सुतने पवित्र एक लाख श्लोकोंमें पुण्यकर्म करनेवाले पाण्डवोंके इस आख्यानको कहा है ॥ १३ ॥

य इदं श्रावयेद्विद्वान्यश्चेदं शृणुयान्नरः ।
ते ब्रह्मणः स्थानमेत्य प्राप्नुयुर्देवतुल्यताम् ॥ १४ ॥

जो विद्वान् पुरुष इस महाभारतको सुनाते हैं और जो लोग सुनते हैं, वे ब्रह्मके लोकमें जाकर देवताओंकी समानता प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् ।
श्राव्याणामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥ १५ ॥

ऋषिका रचा हुआ यह पुराण वेदके द्वारा अनुमोदित, पवित्र, सुन्दर और सब सुनने योग्य शास्त्रोंमें श्रेष्ठतम है ॥ १५ ॥

अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते ।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ॥ १६ ॥

इस महापवित्र इतिहासमें अर्थ और धर्म तथा उत्तम निष्ठावाली बुद्धि सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयोंका भी उपदेश है ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अक्षुद्रान्दानशीलांश्च सत्यशीलाननास्तिकान्।
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्श्रावयित्वार्थमश्नुते ॥ १७ ॥

महान्, दाता, सत्यशील और आस्तीकोंके सम्मुख कृष्णद्वैपायनके इस वेदको सुनाकर विद्वान् जन अर्थलाभ करता है ॥ १७ ॥

भ्रूणहत्याकृतं चापि पापं जह्यादसंशयम्।
इतिहासमिमं श्रुत्वा पुरुषोऽपि सुदारुणः ॥ १८ ॥

इसमें सन्देह नहीं है, कि इस इतिहासको सुनकर पापी पुरुष भी भयंकर भ्रूणहत्याके पापसे भी छूट जाता है ॥ १८ ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते सर्वां शत्रूंश्चापि पराजयेत् ॥ १९ ॥

इस इतिहासका नाम जय है, जय चाहनेवाले जनको इसे सुनना चाहिये। इसे सुननेसे मनुष्य पृथ्वीको जीतकर सभी शत्रुओंको हरा सकता है ॥ १९ ॥

इदं पुंसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्ययनं महत्।
महिषीयुवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा ॥ २० ॥

यह इतिहास श्रेष्ठ पुंसवन और महान् स्वस्त्ययनरूपी है। युवराजको रानीके साथ बार बार इसे सुनना चाहिए ॥ २० ॥

अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥ २१ ॥

अपरिमित बुद्धिवाले व्यासका रचा हुआ यह आख्यान पवित्र अर्थशास्त्र, श्रेष्ठ धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र है ॥ २१ ॥

संप्रत्याचक्षते चैव आख्यास्यन्ति तथापरे।
पुत्राः शुश्रूषवः सन्ति प्रेष्याश्च प्रियकारिणः ॥ २२ ॥

आज भी लोग महाभारतका कीर्तन कर रहे हैं, भविष्यमें भी बहुतेरे कहेंगे। पुत्रगण इसे सुनकर पिताकी आज्ञा माननेवाले और मित्रगण प्रिय करनेवाले हो जाते हैं ॥ २२ ॥

शरीरेण कृतं पापं वाचा च मनसैव च।
सर्वं तत्त्यजति क्षिप्रमिदं शृण्वन्नरः सदा ॥ २३ ॥

इस महाभारतको हमेशा सुनकर मनुष्य शरीरसे, वाणीसे और मनसे किए गए सब पापोंसे उसी क्षण मुक्त हो जाता है ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भारतानां महज्जन्म शृण्वतामनसूयताम् ।
नास्ति व्याधिभयं तेषां परलोकभयं कुतः ॥ २४ ॥

भरतवंशमें उत्पन्न हुए हुओंके इस महान् जन्मकी गाथा सुननेवाले एवं ईर्ष्या द्वेषसे रहित मनुष्योंके लिए इहलोकमें व्याधिका भय भी नहीं रहता, फिर परलोकका भय कहांसे होगा ? ॥ २४ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं पुण्यं तथैव च ।
कृष्णद्वैपायनेनेदं कृतं पुण्यचिकीर्षुणा ॥ २५ ॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ २६ ॥

महात्मा पाण्डवों और बहुत धन और तेजसे युक्त दूसरे क्षत्रियोंकी कीर्तिको संसारमें प्रकट करनेवाले, इस धन, यश, आयु, स्वर्ग तथा पुण्य दिलानेवाले पवित्र इतिहासको पुण्य कर्म करनेकी इच्छावाले भगवान् कृष्ण द्वैपायनने रचा है ॥ २५-२६ ॥

यथा समुद्रो भगवान्यथा च हिमवान्गिरिः ।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥ २७ ॥

जिस प्रकार भगवान् समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों रत्नाकरके नामसे प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार यह महाभारत भी प्रसिद्ध है अर्थात् इसमें भी अनेक रत्न भरे पडे हैं ॥ २७ ॥

य इदं श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणानिह पर्वसु ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ २८ ॥

जो विद्वान् पर्वोंमें इसे ब्राह्मणोंको सुनाते हैं, वह निष्पाप हो करके देवलोकको जीतकर शाश्वत ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २८ ॥

यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ।
अक्षय्यं तस्य तच्छ्राद्धमुपतिष्ठेत्पितॄनपि ॥ २९ ॥

जो श्राद्धके कालमें कमसे कम इसका एकपाद भी ब्राह्मणोंको सुनाते हैं, उसके उस नष्ट न होनेवाले श्राद्धमें पितर सदा विद्यमान रहते हैं ॥ २९ ॥

अह्ना यदेनश्चाज्ञानात्प्रकरोति नरश्चरन् ।
तन्महाभारताख्यानं श्रुत्वैव प्रविलीयते ॥ ३० ॥

मनुष्य कार्य करता हुआ दिनको अज्ञानपूर्वक जो पाप करता है, वह महाभारतके सुनने मात्रसे ही उसी क्षण दूर हो जाता है ॥ ३० ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भारतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥

भरतकुलमें उत्पन्न हुए हुओंका महत् जन्मवृत्तान्त ही महाभारत कहा जाता है। जो महाभारतके इस व्युत्पत्तियुक्त अर्थको जानता है वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

सदा उन्नतिशील मुनि कृष्णद्वैपायनने तीन वर्षोंमें इस उत्तम महाभारतके आख्यानको रचा ॥ ३२ ॥

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ १९२९ ॥

हे भारतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसम्बन्धी जो जो विषय इसमें हैं, वही सब अन्यत्र दीख पडते हैं, जो विषय इस भारतमें नहीं हैं, वह और कहीं नहीं मिलेंगे ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ १९२९ ॥

: ५७ :

वैशम्पायन उवाच

राजोपरिचरो नाम धर्मनित्यो महीपतिः।
बभूव मृगयां गन्तुं स कदाचिद्धृतव्रतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले- (प्राचीनकालमें) उपरिचर नामक एक धर्मनिष्ठ राजा हो गया है, उसने मानों शिकार खेलनेका व्रत ही धारण कर लिया था ॥ १ ॥

स चेदिविषयं रम्यं वसुः पौरवनन्दनः।
इन्द्रोपदेशाज्जग्राह ग्रहणीयं महीपतिः ॥ २ ॥

कभी उस पौरवनन्दन राजा वसु (यह उसका मूल नाम था) ने इन्द्रके कहनेपर चेदि नामक सुहावने देशपर अधिकार किया था ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमाश्रमे न्यस्तशस्त्रं निवसन्तं तपोरतिम् ।
देवः साक्षात्स्वयं वज्री समुपायान्महीपतिम् ॥ ३ ॥

(आगे जाकर) एक समय अस्त्र शस्त्र छोडकर आश्रममें कठोर तपमें प्रवृत्त हुए हुए उस राजाके पास स्वयं वज्रधारी इन्द्रदेव गये ॥ ३ ॥

इन्द्रत्वमर्हो राजायं तपसेत्यनुचिन्त्य वै ।
तं सान्त्वेन नृपं साक्षात्तपसः संन्यवर्तयत् ॥ ४ ॥

"यह राजा तपके कारण इन्द्रका पद प्राप्त कर सकता है।" यह सोचकर इन्द्र उस राजाको समझा बुझाकर तपस्यासे निवृत्त करनेकी कोशिश करने लगे ॥ ४ ॥

इन्द्र उवाच

न संकीर्येत धर्मोऽयं पृथिव्यां पृथिवीपते ।
त्वं पाहि धर्मो हि धृतः कृत्स्नं धारयते जगत् ॥ ५ ॥

इन्द्र बोले– हे महाराज ! ऐसा करो, कि पृथ्वीपर धर्मका ह्रास न हो । तुम धर्मकी रक्षा करो, तभी धारण किया हुआ धर्म सम्पूर्ण भूमण्डलको धारण करेगा ॥ ५ ॥

लोकयं धर्मं पालय त्वं नित्ययुक्तः समाहितः ।
धर्मयुक्तस्ततो लोकान्पुण्यानाप्स्यसि शाश्वतान् ॥ ६ ॥

तुम सदा उत्साही और समाहित होकर लोककी रक्षा करनेवाले धर्मका पालन करो, ऐसा करनेसे तुम धर्मसे युक्त होकर शाश्वत पवित्र लोकोंको प्राप्त करोगे ॥ ६ ॥

दिविष्ठस्य भुविष्ठस्त्वं सखा भूत्वा मम प्रियः ।
ऊर्ध्वः पृथिव्या यो देशस्तमावस नराधिप ॥ ७ ॥
पशव्यश्चैव पुण्यश्च सुस्थिरो धनधान्यवान् ।
स्वारक्ष्यश्चैव सौम्यश्च भोग्यैर्भूमिगुणैर्युतः ॥ ८ ॥

मर्त्यलोकमें वास करनेवाले तुम स्वर्गमें रहनेवाले मेरे प्रिय सखा होकर, हे नरनाथ ! इस धरतीका स्तनस्थानीय अर्थात् अत्युत्तम जो देश है, तथा जो देश सुन्दर, पशुओंके लिए मङ्गलकारी, पवित्र, सुस्थिर, बहुत धनधान्यपूर्ण, स्वर्गके समान रमणीय, सौम्य और भूमिपर मिलनेवाले सभी ऐश्वर्यों एवं अच्छी भूमिके गुणोंसे युक्त हो, तुम उस देशमें जाकर निवास करो ॥७-८॥

अत्यन्यानेष देशो हि धनरत्नादिभिर्युतः ।
वसुपूर्णा च वसुधा वस चेदिषु चेदिप ॥ ९ ॥

हे चेदिराज ! यह चेदि देश ऐश्वर्ययुक्त और अगणित धनरत्नोंसे भरा हुआ है, यहां वसुधा धनोंसे भरी हुई है, इसीलिए यह देश अन्य देशोंको मात करता है अतः तुम इस चेदिदेशमें रहो ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्मशीला जनपदाः सुसंतोषाश्च साधवः।
न च मिथ्याप्रलापोऽत्र स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ॥ १० ॥

इस देशके निवासी धर्मशील, सदा सन्तुष्ट और साधु हैं; और यहां हंसीमें भी कोई झूठ नहीं बोलता; फिर सचमुच झूठ बोलनेवाला कहांसे मिलेगा ॥ १० ॥

न च पित्रा विभज्यन्ते नरा गुरुहिते रताः।
युञ्जते धुरि नो गाश्च कृशाः संधुक्षयन्ति च ॥ ११ ॥

यहांके मनुष्य अपने पितासे अलग नहीं होते और सदा गुरुकी सेवामें लगे रहते हैं, इस स्थानमें कोई दुबले पतले बैलको बोझा ढोने वा हल जोतनेमें नहीं लगाता। इसके विपरीत यहांके लोग ऐसे दुबले पतले बैलोंको पुष्ट ही करते हैं ॥ ११ ॥

सर्वे वर्णाः स्वधर्मस्थाः सदा चेदिषु मानद।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु यद्भवेत् ॥ १२ ॥

हे माननीय ! इस चेदि देशमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सभी वर्ण अपने धर्ममें सन्नद्ध रहते हैं। तीनों लोकोंमें जो कुछ होता है उसमें कुछ भी तुम्हारे लिए अज्ञात नहीं है ॥ १२ ॥

देवोपभोग्यं दिव्यं च आकाशे स्फाटिकं महत्।
आकाशगं त्वां मद्दत्तं विमानमुपपत्स्यते ॥ १३ ॥

मेरे द्वारा दिया गया देवोंके भोगके योग्य दिव्य आकाशगामी सुन्दर स्फटिकका बना हुआ महान् विमान सदा तुम्हारे पास आकाशमें उपस्थित रहेगा ॥ १३ ॥

त्वमेकः सर्वमर्त्येषु विमानवरमास्थितः।
चरिष्यस्युपरिस्थो वै देवो विग्रहवानिव ॥ १४ ॥

इस मर्त्यलोकमें तुम ही अकेले इस श्रेष्ठ यानपर चढकर साक्षात् शरीरधारी देवताकी भांति ऊपर विचर सकोगे ॥ १४ ॥

ददामि ते वैजयन्तीं मालामम्लानपङ्कजाम्।
धारयिष्यति संग्रामे या त्वां शस्त्रैरविक्षतम् ॥ १५ ॥

तुमको कभी न मुरझानेवाले कमलोंवाली वैजयन्ती माला देता हूं; जो माला रणभूमिमें तुम्हें शस्त्रास्त्रोंके आघातोंसे सुरक्षित रखेगी ॥ १५ ॥

लक्षणं चैतदेवेह भविता ते नराधिप।
इन्द्रमालेति विख्यातं धन्यमप्रतिमं महत् ॥ १६ ॥

हे राजन् ! इस लोकमें यह माला ही तेरा महान् अद्वितीय और धन्य चिन्ह होगी और यह माला "इन्द्रमाला" के नामसे विख्यात होगी" ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशंपायन उवाच

यष्टिं च वैणवीं तस्मै ददौ वृत्रनिषूदनः ।
इष्टप्रदानमुद्दिश्य शिष्टानां परिपालिनीम् ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– (इस प्रकार कहकर) प्रिय वस्तु देनेकी इच्छासे वृत्रनाशक इन्द्रने उस राजा उपरिचरको सज्जनोंकी रक्षा करनेवाली एक बांसकी लाठी दी ॥ १७ ॥

तस्याः शक्रस्य पूजार्थं भूमौ भूमिपतिस्तदा ।
प्रवेशं कारयामास गते संवत्सरे तदा ॥ १८ ॥

तब एक वर्ष व्यतीत होनेपर पृथ्वीनाथ वसुने इन्द्रकी पूजाके निमित्त उस बांसकी लाठीको धरतीमें गाड दिया ॥ १८ ॥

ततः प्रभृति चाद्यापि यष्ट्याः क्षितिपसत्तमैः ।
प्रवेशः क्रियते राजन्यथा तेन प्रवर्तितः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! उपरिचर राजाने जैसे बांसकी लाठीको गाडा था, आजतक राजालोग वैसाही बांस गाडा करते हैं ॥ १९ ॥

अपरेद्युस्तथा चास्याः क्रियते उच्छ्रयो नृपैः ।
अलंकृतायाः पिष्टकैर्गन्धैर्माल्यैश्च भूषणैः ।
माल्यदामपरिक्षिप्ता विधिवत्क्रियतेऽपि च ॥ २० ॥

और उसके दूसरे दिन (वर्ष प्रतिपदाको) सुगन्धी माला, वस्त्र, आभूषण आदिसे उस बांसकी लाठीको सुशोभितकर उठा लेते हैं तथा विधिपूर्वक उसको मालासे लपेटते हैं ॥२०॥

भगवान्पूज्यते चात्र हास्यरूपेण शंकरः ।
स्वयमेव गृहीतेन वसोः प्रीत्या महात्मनः ॥ २१ ॥

हे भगवन् ! महात्मा वसुकी प्रीतिके लिए स्वयं हास्यके रूपको धारण करनेवाले शंकरकी पूजा की जाती है ॥ २१ ॥

एतां पूजां महेन्द्रस्तु दृष्ट्वा देव कृतां शुभाम् ।
वसुना राजमुख्येन प्रीतिमानब्रवीद्विभुः ॥ २२ ॥

हे देव ! वैभवयुक्त देवराज महेन्द्रने राजश्रेष्ठ वसुसे की गई इस शुभ पूजाको देखकर अति प्रसन्न होकर कहा ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ये पूजयिष्यन्ति नरा राजानश्च महं मम।
कारयिष्यन्ति च मुदा यथा चेदिपतिर्नृपः ॥ २३ ॥
तेषां श्रीर्विजयश्चैव सराष्ट्राणां भविष्यति।
तथा स्फीतो जनपदो सुदितश्च भविष्यति ॥ २४ ॥

जो सब नर और नरेश चेदिराजके समान प्रेमसे और उत्सवसे मेरी पूजा करायेंगे उनकी राज्यसहित श्री बढेगी और जय होगी और उनके अधिकारके देश विस्तृत और समृद्ध होंगे ॥ २३-२४ ॥

एवं महात्मना तेन महेन्द्रेण नराधिप।
वसुः प्रीत्या मघवता महाराजोऽभिसत्कृतः ॥ २५ ॥

हे नरनाथ! उस महात्मा तथा ऐश्वर्यशाली महेन्द्रने इस प्रकारसे प्रेमसहित महाराज वसुका सत्कार किया ॥ २५ ॥

उत्सवं कारयिष्यन्ति सदा शक्रस्य ये नराः।
भूमिदानादिभिर्दानैर्यथा पूता भवन्ति वै।
वरदानमहायज्ञैस्तथा शक्रोत्सवेन ते ॥ २६ ॥

जो मनुष्य भूमिदान, वरदान आदि दानोंसे महायज्ञों तथा शक्रके उत्सवसे सदा महेन्द्रका उत्सव करेंगे, वे राजा वसुके समान पवित्र हो जायेंगे ॥ २६ ॥

संपूजितो मघवता वसुश्चेदिपतिस्तदा।
पालयामास धर्मेण चेदिस्थः पृथिवीमिमाम्।
इन्द्रप्रीत्या भूमिपतिश्चकारेन्द्रमहं वसुः ॥ २७ ॥

तब चेदिराज वसु ऐश्वर्यवान् इन्द्रसे सत्कृत होकर चेदिदेशमें निवास करते हुए धर्मके अनुसार इस धरतीको पालने लगे; और इन्द्र पर प्रेम दिखाकर ये पृथ्वीके स्वामी वसु इन्द्रका महोत्सव करने लगे ॥ २७ ॥

पुत्राश्चास्य महावीर्याः पञ्चासन्नमितौजसः।
नानाराज्येषु च सुतान्स सम्राडभ्यषेचयत् ॥ २८ ॥

अत्यन्त तेजस्वी वसुके महावीर्यवान् पांच पुत्र थे। उस सम्राट् वसुने अपने पुत्रोंको नाना राज्योंमें अभिषिक्त किया ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महारथो मगधराड्विश्रुतो यो बृहद्रथः ।
प्रत्यग्रहः कुशाम्बश्च यमाहुर्मणिवाहनम् ।
मच्छिल्लश्च यदुश्चैव राजन्यश्चापराजितः ॥ २९ ॥

उनमेंसे प्रसिद्ध प्रधान रथी बृहद्रथ नामक एक पुत्र मगध देशका राजा हुआ । उसके दूसरे एक पुत्रका नाम प्रत्यग्रह, अन्य एकका कुशाम्ब था जिसको मणिवाहन भी कहते हैं अन्य एकका मच्छिल और एक राजपुत्रका यदु नाम था; ये शत्रुओंसे कभी हारता नहीं था ॥ २९ ॥

एते तस्य सुता राजन्राजर्षेर्भूरितेजसः ।
न्यवेशयन्नामभिः स्वैस्ते देशांश्च पुराणि च ।
वासवाः पञ्च राजानः पृथग्वंशाश्च शाश्वताः ॥ ३० ॥

हे महाराज ! उन राजर्षिके यह पांच अत्यन्त तेजस्वी पुत्र थे; उन्होंने अपने नामसे देश और राजधानियां बसायी थीं । वसुके उन पांच महीपाल पुत्रोंसे अति विस्तृत अलग अलग पांच वंशोंकी उत्पत्ति हुई और वे वंश बहुत समयतक रहे ॥ ३० ॥

वसन्तमिन्द्रप्रासादे आकाशे स्फाटिके च तम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं गन्धर्वाप्सरसो नृपम् ।
राजोपरिचरेत्येवं नाम तस्याथ विश्रुतम् ॥ ३१ ॥

इन्द्रके द्वारा दिए गए तथा आकाशमें उडनेवाले उस स्फटिकके महलके समान विमानमें बैठे हुए उस उदार चित्तवाले वसुराजाकी गन्धर्व और अप्सरायें सेवा करती थीं, (क्योंकि वह ऊपर आकाशमें विचरता था, इसलिए) वह संसारमें "उपरिचर" के नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३१ ॥

पुरोपवाहिनीं तस्य नदीं शुक्तिमतीं गिरिः ।
अरौत्सीच्चेतनायुक्तः कामात्कोलाहलः किल ॥ ३२ ॥

उनकी राजधानीके समीप बहनेवाली शुक्तिमती नामकी एक नदीको कोलाहल नामक एक सजीव पर्वतने कामयुक्त होकर रोका ॥ ३२ ॥

गिरिं कोलाहलं तं तु पदा वसुरताडयत् ।
निश्चक्राम नदी तेन प्रहारविवरेण सा ॥ ३३ ॥

तब राजा वसुने उस पर्वत कोलाहलके एक लात मारी, तब उनके पांवकी चोटसे जो बिल बना, उसीसे शुक्तिमती नदी बह निकली ॥ ३३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्यां नद्यामजनयन्मिथुनं पर्वतः स्वयम्।
तस्माद्विमोक्षणात्प्रीता नदी राज्ञे न्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

कोलाहल पर्वतने स्वयं उस नदीमें उससे मिलकर एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। नदीने मुक्त होनेके कारण सन्तुष्ट होकर राजाको वह पुत्र और कन्या दे दी ॥ ३४ ॥

यः पुमानभवत्तत्र तं स राजर्षिसत्तमः।
वसुर्वसुप्रदश्चक्रे सेनापतिमरिन्दमम्।
चकार पत्नीं कन्यां तु दयितां गिरिकां नृपः ॥ ३५ ॥

उस नदीसे जो उत्पन्न हुआ था, उसे शत्रुनाशक पुत्रको राजर्षिश्रेष्ठ धनदाता वसुने अपना सेनापति बना लिया और गिरिका नाम्नी उस कन्याको अपनी प्यारी रानी बना लिया ॥ ३५ ॥

वसोः पत्नी तु गिरिका कामात्काले न्यवेदयत्।
ऋतुकालमनुप्राप्तं स्नाता पुंसवने शुचिः ॥ ३६ ॥

एक बार वसुकी रानी गिरिकाने ऋतुकालके आनेपर गर्भधारणके योग्य समयमें ऋतुस्नान करके शुद्ध होकर पतिसे अभिलाषा प्रकट की ॥ ३६ ॥

तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति।
तं राजसत्तमं प्रीतास्तदा मतिमतां वरम् ॥ ३७ ॥

उस दिन पितरोंने प्रसन्न होकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तथा राजाओंमें श्रेष्ठ उस राजाको आज्ञा दी, कि आज तुम हिरणोंको मारो ॥ ३७ ॥

स पितॄणां नियोगं तमन्वतिक्रम्य पार्थिवः।
चचार मृगयां कामी गिरिकामेव संस्मरन्।
अतीव रूपसंपन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥ ३८ ॥

तब पितरोंकी आज्ञाका उल्लंघन न करते हुए उस राजाने मानों लक्ष्मी दूसरा ही शरीर धारण करके आई है, ऐसी अत्यन्त सुन्दरी गिरिकाका स्मरण करते हुए कामवासनासे पीडित होकर शिकार किया ॥ ३८ ॥

तस्य रेतः प्रचस्कन्द चरतो रुचिरे वने।
स्कन्नमात्रं च तद्रेतो वृक्षपत्रेण भूमिपः ॥ ३९ ॥
प्रतिजग्राह मिथ्या मे न स्कंदेद्रेत इत्युत।
ऋतुश्च तस्याः पत्न्या मे न मोघः स्यादिति प्रभुः ॥ ४० ॥

उस सुन्दर वनमें विचरते हुए उनका वीर्य उस स्थानमें स्खलित हो गया, तब राजाने उस गिरे हुए वीर्यको वृक्षके पत्तेमें ले लिया और राजा सोचने लगा, कि यह गिरा हुआ मेरा वीर्य बेकार न हो और मेरी उस स्त्रीकी ऋतु भी व्यर्थ न हो ? ॥ ३९-४० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संचिन्त्यैवं तदा राजा विचार्य च पुनः पुनः ।
अमोघत्वं च विज्ञाय रेतसो राजसत्तमः ॥ ४१ ॥
शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः ।
अभिमन्त्र्याथ तच्छुक्रमारात्तिष्ठन्तमाशुगम् ।
सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्वज्ञो ज्ञात्वा श्येनं ततोऽब्रवीत् ॥ ४२ ॥

तब देरतक सोचकर बार बार विचार किया और यह जानकर कि "यह मेरा वीर्य निष्फल नहीं होगा," तथा "मेरी रानीका गर्भाधानका समय है" उस राजश्रेष्ठने पुत्रोत्पादक मंत्रोंसे उस वीर्यको अभिमंत्रित किया और सूक्ष्म धर्मके अर्थ एवं तत्त्वको जाननेवाले उस राजाने पासमें ही बैठे हुए शीघ्र जानेवाले एक बाज पक्षीसे कहा ॥ ४१-४२॥

मत्प्रियार्थमिदं सौम्य शुक्रं मम गृहं नय ।
गिरिकायाः प्रयच्छाशु तस्या ह्यार्तवमद्य वै ॥ ४३ ॥

"हे सौम्य ! तुम मेरा हित करनेके लिए मेरे इस वीर्यको मेरे अन्तःपुरमें ले जाओ और शीघ्र ले जाकर मेरी पत्नी गिरिकाको दे दो, क्योंकि आज उसका ऋतुकाल है ॥ ४३ ॥

गृहीत्वा तत्तदा श्येनस्तूर्णमुत्पत्य वेगवान् ।
जवं परममास्थाय प्रदुद्राव विहंगमः ॥ ४४ ॥

तब वेगवान् वह बाज उस वीर्यको लेकर शीघ्रतासे ऊपर आकाशमें पहुंचा और वह पक्षी बहुत वेगको धारण करके उड चला ॥ ४४ ॥

तमपश्यदथायान्तं श्येनं श्येनस्तथापरः ।
अभ्यद्रवच्च तं सद्यो दृष्ट्वैवामिषशङ्कया ॥ ४५ ॥

इस प्रकारसे उडकर आते हुए उसे दूसरे एक बाजने देखा और उसी क्षण उसकी चोंचमें मांस जानकर उसके पीछे उडने लगा ॥ ४५ ॥

तुण्डयुद्धमथाकाशे तावुभौ संप्रचक्रतुः ।
युध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि ॥ ४६ ॥

तब उस आकाशहीमें वे चोंचोंकी भयंकर लडाई करने लगे । उन दोनोंके लडनेके कारण बाजके पैरसे वह वीर्य यमुनाके जलमें गिर गया ॥ ४६ ॥

तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद्वराप्सराः ।
मीनभावमनुप्राप्ता बभूव यमुनाचरी ॥ ४७ ॥

वहां अद्रिका नामसे प्रसिद्ध एक अप्सरा ब्रह्मशापसे मछली बनकरके यमुनाके जलमें विचरनेवाली होकर रहती थी ॥ ४७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्येनपादपरिभ्रष्टं तद्वीर्यमथ वासवम्।
जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी ॥ ४८ ॥

बाजके पंजेसे छूटकर गिरे हुए राजा वसुके उस वीर्यको उस मछली बनी हुई अद्रिकाने वेगसे झपटकर खा लिया ॥ ४८ ॥

कदाचिदथ मत्सीं तां बबन्धुर्मत्स्यजीविनः।
मासे च दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम।
उज्जह्रुरुदरात्तस्याः स्त्रीपुमांसं च मानुषम् ॥ ४९ ॥

हे भारतश्रेष्ठ! उसके पश्चात् कभी दसवें महीनेमें एक दिन मछुओंने उस मछलीको फांसा; और उसके पेटसे चीरकर एक पुत्र और एक कन्या निकाले ॥ ४९ ॥

आश्चर्यभूतं मत्वा तद्राज्ञस्ते प्रत्यवेदयन्।
काये मत्स्या इमौ राजन्संभूतौ मानुषाविति ॥ ५० ॥

तब उन मछुहारोंने अति आश्चर्यमग्न होकर राजासे जा कर कहा, कि महाराज! मछलीके शरीरमेंसे यह दो मनुष्य उत्पन्न हुए हैं ॥ ५० ॥

तयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा।
स मत्स्यो नाम राजासीद्धार्मिकः सत्यसंगरः ॥ ५१ ॥

तब राजा उपरिचरने उन दोनोंमेंसे बालकको ले लिया। वह मछलीसे जन्मा हुआ लडका पीछे मत्स्य नामक सत्यशील धार्मिक राजा हुआ ॥ ५१ ॥

साप्सरा मुक्तशापा च क्षणेन समपद्यत।
पुरोक्ता या भगवता तिर्यग्योनिगता शुभे।
मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ५२ ॥

वह अप्सरा भी उसीक्षण शापसे मुक्त हो गई। क्योंकि जब अद्रिका शापसे भ्रष्ट होकर मत्स्ययोनिमें आ गिरी थी, तब भगवान्‌ने कृपापूर्वक कहा था, हे कल्याणी! तू दो मनुष्य प्रसव करके शापसे मुक्त होगी ॥ ५२ ॥

ततः सा जनयित्वा तौ विशस्ता मत्स्यघातिना।
संत्यज्य मत्स्यरूपं सा दिव्यं रूपमवाप्य च।
सिद्धर्षिचारणपथं जगामाथ वराप्सराः ॥ ५३ ॥

इसके बाद वह सुन्दर अप्सरा अद्रिका दो मनुष्यपुत्र प्रसव करके मछुओंसे मारी गयी और मछलीका स्वरूप छोडके दिव्यरूप धारण कर सिद्ध और चारणोंसे सेवित आकाश-मार्गसे चली गयी ॥ ५३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

या कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यसगन्धिनी ।
राज्ञा दत्ताथ दाशाय इयं तव भवत्विति ।
रूपसत्त्वसमायुक्ता सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ५४ ॥

राजाने मत्स्यकी गन्धसे युक्त मत्स्यके गर्भसे उपजी हुई कन्या भी उस मछुएको दे दी और कहा, कि रूप-यौवन-वती सब गुणवाली यह कन्या तुम्हारी बेटी हो ॥ ५४ ॥

सा तु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात् ।
आसीन्मत्स्यसगन्धैव कंचित्कालं शुचिस्मिता ॥ ५५ ॥

सुन्दर मुस्कराहटोंवाली उस सत्यवती नाम्नी कन्याके मछुएके घरमें कुछ दिन पाले जानेके कारण उसका नाम मत्स्यगन्धा पड गया ॥ ५५ ॥

शुश्रूषार्थं पितुर्नावं तां तु वाहयतीं जले ।
तीर्थयात्रां परिक्रामन्नपश्यद्वै पराशरः ॥ ५६ ॥

एक बार पिताकी सेवाके लिए जलमें नाव चलाती हुई उसे तीर्थयात्रामें निकले हुए पराशरने देखा ॥ ५६ ॥

अतीव रूपसंपन्नां सिद्धानामपि काङ्क्षिताम् ।
दृष्ट्वैव च स तान्धीमांश्चकमे चारुदर्शनाम् ।
विद्वांस्तां वासवीं कन्यां कार्यवान्मुनिपुङ्गवः ॥ ५७ ॥

और अति रूपवती, सिद्धोंके द्वारा भी चाहनेके योग्य, दीखनेमें सुन्दर, मनोहारिणी उस वसुकी बेटीको देखकर ही मुनिवर विद्वान् और बुद्धिमान् पराशर कामवश हो गए और उसकी इच्छा करने लगे ॥ ५७ ॥

साब्रवीत्पश्य भगवन्पारावारे ऋषीन्स्थितान् ।
आवयोर्दृश्यतोरभिः कथं तु स्यात्समागमः ॥ ५८ ॥

कन्या बोली— भगवन् ! नदीके दोनों ओर खडे हुए ऋषिलोगोंको देखो, अतएव इनके देखते देखते हम दोनोंका संगम कैसे हो सकता है ? ॥ ५८ ॥

एवं तयोक्तो भगवान्नीहारमसृजत्प्रभुः ।
येन देशः स सर्वस्तु तमोभूत इवाभवत् ॥ ५९ ॥

मत्स्य—गन्धाके इस प्रकार कहनेपर प्रभु भगवान् पराशरने कोहरा उत्पन्न कर दिया; जिससे वह सम्पूर्ण देश अन्धकारसे घिरसा गया ॥ ५९ ॥

दृष्ट्वा सृष्टं तु नीहारं ततस्तं परमर्षिणा ।
विस्मिता चाब्रवीत्कन्या व्रीडिता च मनस्विनी ॥ ६० ॥

तब उस महर्षिके द्वारा उत्पन्न किए गए कोहरेको देखकर आश्चर्य और लज्जासे युक्त हुई हुई वह मनस्विनी कन्या बोली ॥ ६० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विद्धि मां भगवन्कन्यां सदा पितृवशानुगाम्।
त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममानघ ॥ ६१ ॥

" भगवन्! मैं सदा पिताके वशमें रहनेवाली कन्या हूं; मेरा विवाह नहीं हुआ है! यह आप जान लें। हे अनघ! आपसे मिलनेसे मेरा कन्याभाव नष्ट हो जाएगा ॥ ६१ ॥

कन्यात्वे दूषिते चापि कथं शक्ष्ये द्विजोत्तम
गन्तुं गृहं गृहे चाहं धीमन्न स्थातुमुत्सहे।
एतत्संचिन्त्य भगवन्विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ६२ ॥

हे द्विजोत्तम! और कन्याभाव नष्ट हो जानेपर मैं किसप्रकार घर लौट कर जा सकूंगी? हे धीमान् ऋषि! ऐसा होनेपर अर्थात् मेरे कुंवारेपनके नष्ट हो जानेपर मैं घरमें भी नहीं रह सकूंगी। हे भगवन्! आप इसका विचारकर जो कुछ करना चाहें कीजिये ॥ ६२ ॥

एवमुक्तवतीं तां तु प्रीतिमानृषिसत्तमः।
उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ ६३ ॥

कन्याके ऐसा कहने पर ऋषिश्रेष्ठ पराशर प्रसन्न होकर उससे बोले, कि मेरा प्रिय करके भी तू कन्या ही बनी रहेगी ॥ ६३ ॥

वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि।
वृथा हि न प्रसादो मे भूतपूर्वः शुचिस्मिते ॥ ६४ ॥

हे भीरु! तेरी जो कुछ अभिलाषा हो, वह वर मांग। हे सुन्दर मुस्कराहटोंवाली सुन्दरी! मेरी प्रसन्नता कभी भी पहले निष्फल नहीं हुई है ॥ ६४ ॥

एवमुक्ता वरं वव्रे गात्रसौगन्ध्यमुत्तमम्।
स चास्यै भगवान्प्रादान्मनसः काङ्क्षितं प्रभुः ॥ ६५ ॥

पराशरके इसप्रकार कहने पर मत्स्यगन्धाने अपने शरीरमें अच्छी गन्ध उत्पन्न करनेकी प्रार्थना की। मुनिने " तथास्तु " कहकर मनसे प्रार्थित उस वरको दे दिया ॥ ६५ ॥

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभावगुणभूषिता।
जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुतकर्मणा ॥ ६६ ॥

इससे सत्यवतीने स्त्रीभावके गुणसे भूषित अर्थात् ऋतुमती और प्रार्थित वरके पानेसे प्रसन्न होकर अद्भुत कार्य करनेवाले ऋषि पराशरसे सङ्गम किया ॥ ६६ ॥

तेन गन्धवतीत्येव नामास्याः प्रथितं भुवि।
तस्यास्तु योजनाद्गन्धमाजिघ्रन्ति नरा भुवि ॥ ६७ ॥

तबसे मत्स्यगन्धाका " गन्धवती " यह नाम संसारमें प्रसिद्ध हो गया। मनुष्यलोग योजन भर अर्थात् आठ–नौ मीलकी दूरीसे भी उसके शरीरकी गन्धको सूंघ लेते थे; ॥ ६७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो योजनगन्धेति तस्या नाम परिश्रुतम् ।
पराशरोऽपि भगवाञ्जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ६८ ॥

इसलिये उसका "योजनगन्धा" यह नाम भी प्रसिद्ध हुआ। (सत्यवतीसे संगम करके) भगवान् पराशर भी अपने स्थानको चले गए ॥ ६८ ॥

इति सत्यवती हृष्टा लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ।
पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा ।
जज्ञे च यमुनाद्वीपे पराशर्यः स वीर्यवान् ॥ ६९ ॥

इसप्रकार उत्तम वर पाकर प्रसन्न हुई हुई सत्यवतीने पराशरसे संगम करके शीघ्र ही गर्भ का प्रसव किया। इससे वीर्यवान् पराशरके पुत्र अर्थ कृष्ण द्वैपायनने यमुनाद्वीपमें जन्म लिया ॥ ६९ ॥

स मातरमुपस्थाय तपस्येव मनो दधे ।
स्मृतोऽहं दर्शयिष्यामि कृत्येष्विति च सोऽब्रवीत् ॥ ७० ॥

वह जन्म लेतेही माताके पास जाकर तपस्या करनेमें दत्तचित्त हुए और उससे यह कहकर चले गये, कि जब प्रयोजन हो तब मुझे स्मरण करना और मैं तुम्हारे पास आजाऊंगा ॥७०॥

एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ।
द्वीपे न्यस्तः स यद्बालस्तस्माद्द्वैपायनोऽभवत् ॥ ७१ ॥

द्वैपायनने इस प्रकार पराशरके वीर्य और सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया था। उस बालकके द्वीपमें प्रसव किये जानेके कारण उसका नाम द्वैपायन पडा ॥ ७१ ॥

पादापसारिणं धर्मं विद्वान् स तु युगे युगे ।
आयुः शक्तिं च मर्त्यानां युगानुगमवेक्ष्य च ॥ ७२ ॥
ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाम्यया ।
विव्यास वेदान्यस्माच्च तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥ ७३ ॥

प्रत्येक युगमें एक एक पादसे रहित होते हुए धर्मको तथा युगके अनुसार मनुष्योंकी आयु और शक्तिको घटते हुए देखकर वेदकी रक्षाके निमित्त ब्राह्मणों पर दया दिखानेकी इच्छासे पराशरके पुत्रने वेदका व्यास याने विभाग किया, इस कारण उनका नाम वेद-व्यास पडा ॥ ७२–७३ ॥

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥ ७४ ॥

वर देनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ प्रभु वेदव्यासने सुमन्तु, जैमिनि, पैल, अपने पुत्र शुकको तथा वैशम्पायनको चार वेद और पांचवां वेद महाभारत पढाया ॥ ७४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥ ७५ ॥

उन सुमन्तु आदि शिष्योंमेंसे हरेकने महाभारतकी अलग अलग एक एक संहिता प्रकाशित की ॥ ७५ ॥

तथा भीष्मः शान्तनवो गङ्गायाममितद्युतिः।
वसुवीर्यात्समभवन्महावीर्यो महायशाः ॥ ७६ ॥

महावीर्य, महायशस्वी, अपरिमित तेजस्वी राजा शन्तनुके पुत्र भीष्मने वसुओंके अंशसे गङ्गाके गर्भसे जन्म लिया था ॥ ७६ ॥

शूले प्रोतः पुराणर्षिरचोरश्चोरशङ्कया।
अणीमाण्डव्य इति वै विख्यातः सुमहायशाः ॥ ७७ ॥

प्रसिद्ध महायशस्वी पुराण ऋषि विप्र अणीमाण्डव्य चोरी न करने पर भी झूठमूठ चोरीकी शंकासे शूलीपर चढाये गये थे ॥ ७७ ॥

स धर्ममाह्वय पुरा महर्षिरिदमुक्तवान्।
इषीकया मया बाल्यादेका विद्धा शकुन्तिका ॥ ७८ ॥
तत्किल्बिषं स्मरे धर्म नान्यत्पापमहं स्मरे।
तन्मे सहस्रसमितं कस्मान्नेहाजयत्तपः ॥ ७९ ॥

इस हेतु पूर्वकालमें उस ऋषिने धर्मको पुकार कर कहा, कि हे धर्म। मैंने बालपनमें कुशके द्वारा एक छोटी चिडियाको बींधा था, अपने जन्ममें मैं केवल उतने ही पापकी याद करता हूं, उसके अलावा और कोई पाप मैंने किया हो, मुझे याद नहीं आता पर जितना पाप हुआ है, उससे सहस्रगुनी अधिक तपस्या की है, इतने पर भी उस पापका क्षय क्यों नहीं हुआ ? ॥ ७८–७९ ॥

गरीयान्ब्राह्मणवधः सर्वभूतवधाद्यतः।
तस्मात्त्वं किल्बिषादस्माच्छूद्रयोनौ जनिष्यसि ॥ ८० ॥

क्योंकि दूसरे सब प्राणियोंके वधकी अपेक्षा ब्राह्मण वधका पाप अधिक होता है, अतएव तुम ब्राह्मण वधके इस पापसे पापी होनेके कारण शूद्रयोनिमें जन्म लोगे ॥ ८० ॥

तेन शापेन धर्मोऽपि शूद्रयोनावजायत।
विद्वान्विदुररूपेण धार्मी तनुरकिल्बिषी ॥ ८१ ॥

धर्मने भी उस शापसे शूद्रयोनिमें विद्वान् धार्मिक और पाप–वर्जित शरीरवाले विदुरके स्वरूपमें जन्म लिया था ॥ ८१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सञ्जयो मुनिकल्पस्तु जज्ञे सूतो गवल्गणात् ।
सूर्याच्च कुन्तिकन्यायां जज्ञे कर्णो महारथः ।
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्द्योतिताननः ॥ ८२ ॥

मुनिके समान सूत सञ्जयने गवल्गणसे जन्म लिया । कुण्डलसे तेजस्वी मुखवाला महारथी कर्ण जन्मसेही कवचको धारण करके कुन्तीकी कन्यादशामें उसके गर्भ और सूर्यके वीर्यसे जन्मा था ॥ ८२ ॥

अनुग्रहार्थं लोकानां विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
वसुदेवात्तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः ॥ ८३ ॥
अनादिनिधनो देवः स कर्ता जगतः प्रभुः ।
अव्यक्तमक्षरं ब्रह्म प्रधानं त्रिगुणात्मकम् ॥ ८४ ॥

अनादि, अनन्त, जगत्कर्ता, जगत्प्रभु, सब लोकोंके द्वारा नमस्कारके योग्य, अव्यक्त, अविनाशी, ब्रह्म एवं सत्त्व, रज, तमरूप तीन गुणसे युक्त प्रधान अर्थात् प्रकृतिका रूप धारण करनेवाले महायशस्वी भगवान् विष्णुने लोकोंपर दया दिखाकर वसुदेवके वीर्य और देवकीके गर्भसे जन्म लिया था ॥ ८३–८४ ॥

आत्मानमव्ययं चैव प्रकृतिं प्रभवं परम् ।
पुरुषं विश्वकर्माणं सत्त्वयोगं ध्रुवाक्षरम् ॥ ८५ ॥
अनन्तमचलं देवं हंसं नारायणं प्रभुम् ।
धातारमजरं नित्यं तमाहुः परमव्ययम् ॥ ८६ ॥

विद्वान् जन उन्हीं विष्णुको उस आत्माको अव्यय, प्रधान, जगत्का कारण, परम कारण, पुरुष, विश्वकर्मा, सत्वगुणाश्रय, प्रणवस्वरूप, अनन्त, अचल, देव, हंस, नारायण, प्रभु, धाता, अजर, नित्य, श्रेष्ठ और अविनश्वर कहते हैं ॥ ८५–८६ ॥

पुरुषः स विभुः कर्ता सर्वभूतपितामहः ।
धर्मसंवर्धनार्थाय प्रजज्ञेऽन्धकवृष्णिषु ॥ ८७ ॥

सर्वभूतोंके पितामह, संसारके रचनेवाले, सर्वत्र व्यापक पुरुष विष्णुने धर्मवृद्धिके निमित्त अंधक वृष्णिवंशमें जन्म लिया ॥ ८७ ॥

अस्त्रज्ञौ तु महावीर्यौ सर्वशस्त्रविशारदौ ।
सात्यकिः कृतवर्मा च नारायणमनुव्रतौ ।
सत्यकाद्धृदिकाच्चैव जज्ञातेऽस्त्रविशारदौ ॥ ८८ ॥

अस्त्रज्ञ, महावीर्य, सब शस्त्रोंमें कुशल, अस्त्र चलानेमें सुदक्ष, नारायणके पीछे चलनेवाले सात्यकि और कृतवर्माने सत्यक और हृदिकसे जन्म लिया ॥ ८८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भरद्वाजस्य च स्कन्नं द्रोण्यां शुक्रमवर्धत ।
महर्षेरुग्रतपसस्तस्माद्द्रोणो व्यजायत ॥ ८९ ॥

कठोर तपसे युक्त महर्षि भरद्वाजका वीर्य द्रोणी अर्थात् गिरि कन्दरामें गिरकर और गर्भ-रूप होकर बढने लगा और उससे द्रोणाचार्यका जन्म हुआ ॥ ८९ ॥

गौतमान्मिथुनं जज्ञे शरस्तम्बाच्छरद्वतः ।
अश्वत्थाम्नश्च जननी कृपश्चैव महाबलः ।
अश्वत्थामा ततो जज्ञे द्रोणादस्त्रभृतां वरः ॥ ९० ॥

गौतमका वीर्य सरकण्डेके बोझपर गिरकर दो भागोंमें बंट जानेके कारण उससे अश्वत्थामाकी माता कृपी और महाबली कृपने जन्म लिया। इसके बाद द्रोणाचार्यके वीर्यसे अस्त्रधारियों-में श्रेष्ठ अश्वत्थामाका जन्म हुआ ॥ ९० ॥

तथैव धृष्टद्युम्नोऽपि साक्षादग्निसमद्युतिः ।
वैताने कर्मणि तते पावकात्समजायत ।
वीरो द्रोणविनाशाय धनुषा सह वीर्यवान् ॥ ९१ ॥

उसी प्रकार साक्षात् अग्निकी भांति तेजस्वी तथा वीर्यवान् वीर धृष्टद्युम्नने यज्ञकर्मके समय अग्निसे द्रोणको नष्ट करनेके निमित्त धनुषसहित जन्म लिया ॥ ९१ ॥

तथैव वेद्यां कृष्णापि जज्ञे तेजस्विनी शुभा ।
विभ्राजमाना वपुषा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ ९२ ॥

और उस यज्ञकी वेदीमेंसे तेजस्विनी, शुभलक्षणा, शरीरसे बहुत तेजस्विनी तथा अनुपम रूप धारण करनेवाली कृष्णा—द्रौपदीका जन्म हुआ ॥ ९२ ॥

प्रह्लादशिष्यो नग्नजित्सुबलश्चाभवत्ततः ।
तस्य प्रजा धर्महन्त्री जज्ञे देवप्रकोपनात् ॥ ९३ ॥

इसके बाद प्रह्लादके शिष्य नग्नजित् और सुबलने जन्म लिया। दैवी कोपसे सुबलका पुत्र धर्मका हनन करनेवाला हुआ ॥ ९३ ॥

गान्धारराजपुत्रोऽभूच्छकुनिः सौबलस्तथा ।
दुर्योधनस्य माता च जज्ञातेऽर्थविदावुभौ ॥ ९४ ॥

उस गान्धारराज सुबलसे शकुनि और दुर्योधनकी माता गान्धारी इन दोनों अर्थशास्त्रमें कुशलोंका जन्म हुआ ॥ ९४ ॥

कृष्णद्वैपायनाज्जज्ञे धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य पाण्डुश्चैव महाबलः ॥ ९५ ॥

कृष्णद्वैपायनके वीर्य और विचित्रवीर्यकी स्त्रीके गर्भसे राजा धृतराष्ट्र और महाबली पाण्डु उत्पन्न हुए ॥ ९५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाण्डोस्तु जज्ञिरे पञ्च पुत्रा देवसमाः पृथक् ।
द्वयोः स्त्रियोर्गुणज्येष्ठस्तेषामासीद्युधिष्ठिरः ॥ ९६ ॥

पाण्डुकी दो रानियोंसे देवोंके समान पांच पाण्डवोंका पृथक् पृथक् जन्म हुआ । उनमेंसे युधिष्ठिर सर्वगुणयुक्त और बडे थे ॥ ९६ ॥

धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे मारुतात्तु वृकोदरः ।
इन्द्राद्धनञ्जयः श्रीमान्सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ९७ ॥
जज्ञाते रूपसंपन्नावश्विभ्यां तु यमावुभौ ।
नकुलः सहदेवश्च गुरुशुश्रूषणे रतौ ॥ ९८ ॥

युधिष्ठिरने धर्मके वीर्यसे जन्म लिया था । वायुसे वृकोदर, इन्द्रसे श्रीमान् सर्वशास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ धनञ्जय और दोनों अश्विनीकुमारोंसे अपनेसे बडोंकी सेवामें रत रहनेवाले तथा रूपवान् जुडवें नकुल और सहदेव दोनोंने जन्म लिया ॥ ९७–९८ ॥

तथा पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
दुर्योधनप्रभृतयो युयुत्सुः करणस्तथा ॥ ९९ ॥

बुद्धिमान् धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ पुत्र और करण अर्थात् वैश्याके गर्भसे जन्मा हुआ युयुत्सु नामक एक पुत्र हुआ ॥ ९९ ॥

अभिमन्युः सुभद्रायामर्जुनादभ्यजायत ।
स्वस्रीयो वासुदेवस्य पौत्रः पाण्डोर्महात्मनः ॥ १०० ॥

महात्मा पाण्डुके पोते, श्रीकृष्णके भाञ्जे अभिमन्युने अर्जुनके वीर्य और सुभद्राके गर्भसे जन्म लिया ॥ १०० ॥

पाण्डवेभ्योऽपि पञ्चभ्यः कृष्णायां पञ्च जज्ञिरे ।
कुमारा रूपसम्पन्नाः सर्वशस्त्रविशारदाः ॥ १०१ ॥

पांच पाण्डवोंके वीर्य और द्रौपदीके गर्भसे सर्वशास्त्रोंमें निपुण, रूपवान् पांच कुमार उत्पन्न हुए ॥ १०१ ॥

प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात्सुतसोमो वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ १०२ ॥
तथैव सहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान् ।
हिडिम्बायां च भीमेन वने जज्ञे घटोत्कचः ॥ १०३ ॥

उनमेंसे युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, वृकोदर भीमसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे प्रतापी श्रुतसेन उत्पन्न हुए । इनके सिवाय वनमें वृकोदर भीमसे हिडिम्बाके गर्भसे घटोत्कच नामक एक पुत्र हुआ था ॥ १०२–१०३ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शिखण्डी द्रुपदाज्जज्ञे कन्या पुत्रत्वमागता।
यां यक्षः पुरुषं चक्रे स्थूणः प्रियचिकीर्षया ॥ १०४ ॥

शिखण्डीने द्रुपदसे जन्म लिया था, उसने कन्या होकरके पुत्रत्व प्राप्त किया था। जिसे स्थूण नामक यक्षने प्रिय करनेकी इच्छासे पुरुष बना दिया था ॥ १०४ ॥

कुरूणां विग्रहे तस्मिन्समागच्छन्बहून्यथ।
राज्ञां शतसहस्राणि योत्स्यमानानि संयुगे ॥ १०५ ॥

कुरुपाण्डवोंके उस युद्धमें युद्ध करनेके निमित्त सैंकडों सहस्रों अर्थात् अनेकों भूप एकत्र हुए थे ॥ १०५ ॥

तेषामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वशः।
न शक्यं परिसंख्यातुं वर्षाणामयुतैरपि।
एते तु कीर्तिता मुख्या यैराख्यानमिदं ततम् ॥ १०६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ २०३५ ॥

दस हजार वर्षोंमें भी उन अगणित राजाओंके नामोंकी गणना नहीं की जा सकती, पर जिन प्रधान प्रधान राजाओंसे यह कथा पूरी हुई है, केवल उनकेही नाम कहे गये हैं ॥ १०६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ २०३५ ॥

: ५८ :

जनमेजय उवाच

य एते कीर्तिता ब्रह्मन्ये चान्ये नानुकीर्तिताः।
सम्यक्ताञ्श्रोतुमिच्छामि राज्ञश्चान्यान्सुवर्चसः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– ब्रह्मन् ! जिन राजाओंके नाम आपने कहे हैं और जिनके नहीं कहे, उनके तथा दूसरे भी तेजस्वी राजाओंके नाम सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

यदर्थमिह संभूता देवकल्पा महारथाः।
भुवि तन्मे महाभाग सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

देवोंके समान महारथी महानुभावोंने जिस कारण इस भूमण्डलमें जन्म लिया था, वह मैं सुनना चाहता हूं; हे महाभाग ! आप पूरी तरह उनका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

रहस्यं खल्विदं राजन्देवानामिति नः श्रुतम् ।
तत्तु ते कथयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले– राजन् ! मैंने सुना है कि यह देवोंका रहस्य है, मैं स्वयंभू ब्रह्माको नमन कर आपके सामने वह देवरहस्य प्रकट करता हूँ ॥ ३ ॥

त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां पुरा ।
जामदग्न्यस्तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥ ४ ॥

पूर्वकालमें जमदग्निके पुत्र परशुराम इस भूमण्डलको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे रहित करके महेन्द्र नामक श्रेष्ठ पर्वतपर तप करने लगे ॥ ४ ॥

तदा निःक्षत्रिये लोके भार्गवेण कृते सति ।
ब्राह्मणान्क्षत्रिया राजन्गर्भार्थिन्योऽभिचक्रमुः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! जब पृथ्वी जामदग्न्य भार्गवके द्वारा क्षत्रियोंसे रहित कर गई तब गर्भको धारण करनेकी इच्छावाली क्षत्रियोंकी स्त्रियां ब्राह्मणोंके पास गईं ॥ ५ ॥

ताभिः सह समापेतुर्ब्राह्मणाः संशितव्रताः ।
ऋतावृतौ नरव्याघ्र न कामान्नानृतौ तथा ॥ ६ ॥

हे पुरुषोंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी जनमेजय ! व्रतशील ब्राह्मणलोग प्रत्येक ऋतुकालमें उन क्षत्राणियोंसे समागम करने लगे, पर ऋतुकालके सिवाय किसी दूसरे समय कामवश हो करके वे समागम नहीं करते थे ॥ ६ ॥

तेभ्यस्तु लेभिरे गर्भान्क्षत्रियास्ताः सहस्रशः ।
ततः सुषुविरे राजन्क्षत्रियान्वीर्यसंमतान् ।
कुमारांश्च कुमारीश्च पुनः क्षत्राभिवृद्धये ॥ ७ ॥

राजन् ! सहस्रों क्षत्रियोंकी रानियोंने ब्राह्मणोंसे गर्भधारण किया और इसके बाद वे क्षत्रियों के वंश बढानेके निमित्त फिर महावीर्यवान् क्षत्रिय कुमार और कुमारियां प्रसव करने लगीं ॥ ७ ॥

एवं तद्ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः ।
जातमृध्यत धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम् ।
चत्वारोऽपि तदा वर्णा बभूवुर्ब्राह्मणोत्तराः ॥ ८ ॥

इस प्रकार क्षत्रियोंने अच्छे अच्छे तपस्वी ब्राह्मणोंके वीर्य और क्षत्राणियोंके गर्भसे जन्म लेकर दीर्घायु प्राप्तकर धर्मानुष्ठान करके वृद्धि पायी थी, इससे फिर ब्राह्मणादि चार वर्ण पूर्ण हुए ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अभ्यगच्छन्नृतौ नारीं न कामान्नानृतौ तथा।
तथैवान्यानि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि।
ऋतौ दारांश्च गच्छन्ति तदा स्म भरतर्षभ ॥ ९ ॥

हे भरतर्षभ ! उन दिनों वे ऋतुकाल ही में स्त्रीके पास गमन करते थे, ऋतुकालके सिवाय किसी दूसरे समय कामवश होकरके गमन नहीं करते थे; इसीलिए उसके बादसे पशुपक्षी आदि तिर्यक्-योनिके जीवगण भी ऋतुकालहीमें स्त्रीके पास गमन करते हैं ॥ ९ ॥

ततोऽवर्धन्त धर्मेण सहस्रशतजीविनः।
ताः प्रजाः पृथिवीपाल धर्मव्रतपरायणाः।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव विमुक्ताः सर्वशो नराः ॥ १० ॥

हे पृथ्वीपाल ! तब वे प्रजागण सैंकडों सहस्रों वर्षकी आयु प्राप्तकर धार्मिक व्रतशील होकर धर्मसे बढने लगे और वे मनुष्य शरीर तथा मनसम्बन्धी पीडाओंसे सर्वथा रहित थे ॥ १० ॥

अथेमां सागरापाङ्गां गां गजेन्द्रगताखिलाम्।
अध्यतिष्ठत्पुनः क्षत्रं सशैलवनकाननाम् ॥ ११ ॥

हे उत्तम उत्तम हाथियोंके स्वामिन् जनमेजय ! इस प्रकार क्षत्रियवंशी राजालोगोंने समुद्रतक, पहाड नगर और वनयुक्त इस भूमण्डलको (जो एकवार उनके हाथसे छिन गया था) फिर अपने अधिकारमें कर लिया ॥ ११ ॥

प्रशासति पुनः क्षत्रे धर्मेणेमां वसुंधराम्।
ब्राह्मणाद्यास्तदा वर्णा लेभिरे मुदमुत्तमाम् ॥ १२ ॥

क्षत्रियोंके द्वारा धर्मानुसार फिर इस धरतीका शासन आरम्भ करनेपर ब्राह्मणादि चारों वर्ण अति प्रसन्नताको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

कामक्रोधोद्भवान्दोषान्निरस्य च नराधिपाः।
दण्डं दण्ड्येषु धर्मेण प्रणयन्तोऽन्वपालयन् ॥ १३ ॥

भूपाल लोग काम-क्रोधसे पैदा होनेवाले सम्पूर्ण दोषोंको छोडकर धर्मानुसार दण्ड पानेके योग्य लोगोंको दण्ड देकर राज्यका पालन करने लगे ॥ १३ ॥

तथा धर्मपरे क्षत्रे सहस्राक्षः शतक्रतुः।
स्वादु देशे च काले च ववर्षाप्याययन्प्रजाः ॥ १४ ॥

तब क्षत्रियोंके इस प्रकार धार्मिक होनेपर सहस्रनेत्रवाले शतक्रतु इन्द्र भी देशकाल पर ध्यान रखकर नियमानुसार वर्षासे प्रजाओंको तृप्त करने लगे ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न बाल एव म्रियते तदा कश्चिन्नराधिप ।
न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिदप्राप्तयौवनः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! उन दिनों कोई बालपनमें नहीं मरता था और यौवन दशाको प्राप्त करनेसे पहले कोई स्त्रियोंको जानता तक नहीं था ॥ १५ ॥

एवमायुष्मतीभिस्तु प्रजाभिर्भरतर्षभ ।
इयं सागरपर्यन्ता समापूर्यत मेदिनी ॥ १६ ॥

हे भरतोंमें श्रेष्ठ ! ऐसी दीर्घायुयुक्त प्रजासे यह समुद्रतक धरती पूर्ण हो गई ॥ १६ ॥

ईजिरे च महायज्ञैः क्षत्रिया बहुदक्षिणैः ।
साङ्गोपनिषदान्वेदान्विप्राश्चाधीयते तदा ॥ १७ ॥

क्षत्रियलोग भरपूर दक्षिणा देकर बडे बडे यज्ञोंका अनुष्ठान करने लगे । ब्राह्मणलोग भी शिक्षा कल्प व्याकरणादि अङ्ग और उपनिषत् सहित वेदोंको पढने लगे ॥ १७ ॥

न च विक्रीणते ब्रह्म ब्राह्मणाः स्म तदा नृप ।
न च शूद्रसमाभ्याशे वेदानुच्चारयन्त्युत ॥ १८ ॥

हे राजन् ! उन दिनों ब्राह्मण वेदोंको बेचते नहीं थे और शूद्रोंके सामने वेदके मन्त्र नहीं बोलते थे ॥ १८ ॥

कारयन्तः कृषिं गोभिस्तथा वैश्याः क्षितावि‍ह ।
न गामयुञ्जन्त धुरि कृशाङ्गाश्चाप्यजीवयन् ॥ १९ ॥

इस भूमिपर वैश्यगण बैलोंसे खेती करवाते हुए पतले और दुबले बैलोंको जुओंमें जोतते नहीं थे । उनके कमजोर होनेपर भी उनका सम्यक् रीतिसे पालन करते थे ॥ १९ ॥

फेनपांश्च तथा वत्सान्न दुहन्ति स्म मानवाः ।
न कूटमानैर्वणिजः पण्यं विक्रीणते तदा ॥ २० ॥

उन दिनों कोई मनुष्य फेन पीनेवाले अर्थात् थोडी अवस्थाके बछडेवाली गायको दुहते नहीं थे और वणिक्लोग बेईमानीसे तौलसे ठगकर विक्रीकी वस्तुओंको नहीं बेचते थे ॥२०॥

कर्माणि च नरव्याघ्र धर्मोपेतानि मानवाः ।
धर्ममेवानुपश्यन्तश्चक्रुर्धर्मपरायणाः ॥ २१ ॥

हे नरव्याघ्र ! उन दिनों सब जन धार्मिक होकर धर्ममार्गकी ओर दृष्टि रखकर अपने धर्मके कर्मोंको करते थे ॥ २१ ॥

स्वकर्मनिरताश्चासन्सर्वे वर्णा नराधिप ।
एवं तदा नरव्याघ्र धर्मो न ह्रसते क्वचित् ॥ २२ ॥

हे नरेश ! उन दिनों चारों वर्ण अपने अपने धर्ममें लगे रहते थे; इस प्रकार, हे नरव्याघ्र ! किसी स्थानमें धर्मकी क्षीणता नहीं थी ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

काले गावः प्रसूयन्ते नार्यश्च भरतर्षभ।
फलन्त्यृतुषु वृक्षाश्च पुष्पाणि च फलानि च ॥ २३ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उस कालमें गौ और नारी उचित समयमें ही सन्तान उत्पन्न करती थीं, ऋतुओंके अनुसार वृक्षके फूल और फल फलते फूलते थे ॥ २३ ॥

एवं कृतयुगे सम्यग्वर्तमाने तदा नृप।
आपूर्यत मही कृत्स्ना प्राणिभिर्बहुभिर्भृशम् ॥ २४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! तब इस प्रकार सत्ययुग प्रवर्तित होनेपर सम्पूर्ण धरती अगणित जीवोंसे बहुत भर गई ॥ २४ ॥

ततः समुदिते लोके मानुषे भरतर्षभ।
असुरा जज्ञिरे क्षेत्रे राज्ञां मनुजपुंगव ॥ २५ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ महाराज ! मर्त्यलोकके इस प्रकार उन्नत होनेपर राजाओंके क्षेत्रों अर्थात् रानियोंमें असुरलोग जन्म लेने लगे ॥ २५ ॥

आदित्यैर्हि तदा दैत्या बहुशो निर्जिता युधि।
ऐश्वर्याद्भ्रंशिताश्चापि संबभूवुः क्षितावि ह ॥ २६ ॥

तब वे दैत्य युद्धमें देवोंसे बार बार जीते गए और इस प्रकार ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर भूतलमें जन्म लेने लगे ॥ २६ ॥

इह देवत्वमिच्छन्तो मानुषेषु मनस्विनः।
जज्ञिरे भुवि भूतेषु तेषु तेष्वसुरा विभो ॥ २७ ॥

हे राजेन्द्र ! मनस्वी असुर लोग भूलोकमें उन उन मनुष्यों और प्राणियोंमें देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए उत्पन्न होने लगे ॥ २७ ॥

गोष्वश्वेषु च राजेन्द्र खरोष्ट्रमहिषेषु च।
क्रव्यादेषु च भूतेषु गजेषु च मृगेषु च ॥ २८ ॥
जातैरिह महीपाल जायमानैश्च तैर्मही।
न शशाकात्मनात्मानमियं धारयितुं धरा ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र ! गौओं, घोडों, ऊंटों, गधों, भैंसों, हिंसक प्राणियों, हाथियों, मृगादियोंके रूपोंमें उत्पन्न हुए हुए और उत्पन्न होनेवाले उन असुरोंसे, हे राजेन्द्र ! यह धरती भारयुक्त होकर स्वयंहीको संभालनेमें समर्थ न रही ॥ २८-२९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथ जाता महीपालाः केचिद्बलसमन्विताः।
दितेः पुत्रा दनोश्चैव तस्माल्लोकादिह च्युताः ॥ ३० ॥

उनमेंसे अति वीर्यवान् कोई कोई दिति और दनुके पुत्र अर्थात् दैत्य और दानव उस स्वर्ग लोकसे च्युत होकर इस मानवकुलमें जन्म लेकर महीपाल बने ॥ ३० ॥

वीर्यवन्तोऽवलिप्तास्ते नानारूपधरा महीम्।
इमां सागरपर्यन्तां परीयुररिमर्दनाः ॥ ३१ ॥

वीर्यवान्, अहङ्कारी, शत्रुओंको नष्ट करनेवाले तथा अनेक स्वरूप धारण करनेवाले उन दैत्य और दानवोंने सागरतक इस पृथ्वीपर अधिकार कर लिया ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चैवाप्यपीडयन्।
अन्यानि चैव भूतानि पीडयामासुरोजसा ॥ ३२ ॥

और वे अपने तेजसे ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों और दूसरे जीवोंको भी सताने लगे ॥ ३२ ॥

त्रासयन्तो विनिघ्नन्तस्तांस्तान्भूतगणांश्च ते।
विचेरुः सर्वतो राजन्महीं शतसहस्रशः ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! उन सब प्राणिगणोंको डराते हुए तथा उनके कार्योंमें विघ्न उपस्थित करते तथा उन्हें मारते हुए सैंकडों और हजारों दानव पृथ्वीपर सर्वत्र घूमने लगे ॥ ३३ ॥

आश्रमस्थान्महर्षींश्च धर्षयन्तस्ततस्ततः।
अब्रह्मण्या वीर्यमदा मत्ता मदबलेन च ॥ ३४ ॥

बलगर्वित, वीर्यके अहङ्कारसे उन्मत्त होकर नास्तिक वे दैत्य दानव आश्रमके महर्षियोंका अपमान कर सर्वत्र विचरने लगे ॥ ३४ ॥

एवं वीर्यबलोत्सिक्तैर्भूरियं तैर्महासुरैः।
पीडयमाना महीपाल ब्रह्माणमुपचक्रमे ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार बलवीर्यके अहङ्कारसे उन्मत्त उन बडे बडे असुरोंसे सताई जाकर धरती ब्रह्माके पास गयी ॥ ३५ ॥

न हीमां पवनो राजन्न नागा न नगा महीम्।
तदा धारयितुं शेकुराक्रान्तां दानवैर्बलात् ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! क्योंकि उस कालमें दानवोंके बलसे पीडित हुई हुई इस धरतीको न वायु, न दिग्गज तथा न पर्वत आदि ही धारण करनेमें समर्थ हुए ॥ ३६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो मही महीपाल भारार्ता भयपीडिता।
जगाम शरणं देवं सर्वभूतपितामहम् ॥ ३७ ॥

हे महीपाल ! तब भारसे युक्त और भयसे व्याकुल होकर पृथ्वीने सब प्राणियोंके पितामह ब्रह्माकी शरण ली ॥ ३७ ॥

सा संवृतं महाभागैर्देवद्विजमहर्षिभिः।
ददर्श देवं ब्रह्माणं लोककर्तारमव्ययम् ॥ ३८ ॥

उसने वहां जाकर महाभाग देवता, द्विज और महर्षियोंसे घिरे हुए लोकका निर्माण करनेवाले उन अविनाशी देव ब्रह्माको देखा ॥ ३८ ॥

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च वन्दिकर्मसु निष्ठितैः।
वन्द्यमानं मुदोपेतैर्ववन्दे चैनमेत्य सा ॥ ३९ ॥

स्तुतिगान करनेके कार्यमें नियुक्त, प्रसन्न, गन्धर्व तथा अप्सराओंसे वन्दित होते हुए इन ब्रह्माके पास पहुंचकर इस पृथ्वीने वन्दना की ॥ ३९ ॥

अथ विज्ञापयामास भूमिस्तं शरणार्थिनी।
संनिधौ लोकपालानां सर्वेषामेव भारत ॥ ४० ॥

हे भारत ! इसके बाद पृथ्वीने शरण लेनेकी लालसासे सम्पूर्ण लोकपालोंके सामने उन ब्रह्मासे सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४० ॥

तत्प्रधानात्मनस्तस्य भूमेः कृत्यं स्वयंभुवः।
पूर्वमेवाभवद्राजन्विदितं परमेष्ठिनः ॥ ४१ ॥

हे राजन् ! देवोंमें प्रधान उन स्वयम्भू परमेष्ठीको पहिलेसे ही इस पृथ्वीका अभिप्राय ज्ञात था ॥ ४१ ॥

स्रष्टा हि जगतः कस्मान्न संबुध्येत भारत।
सुरासुराणां लोकानामशेषेण मनोगतम् ॥ ४२ ॥

क्योंकि जो जगत्के सृष्टिकर्ता हैं, वह सुरासुरादि सम्पूर्ण लोकोंके चित्तके भावोंको क्यों न जानेंगे ॥ ४२ ॥

तमुवाच महाराज भूमिं भूमिपतिर्विभुः।
प्रभवः सर्वभूतानामीशः शंभुः प्रजापतिः ॥ ४३ ॥

हे महाराज ! सब भूतोंके सृष्टिकर्ता, नियन्ता और मंगल करनेवाले तथा सम्पूर्ण संसारके स्वामी प्रभु प्रजापति उस पृथ्वीसे बोले ॥ ४३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदर्थमसि संप्राप्ता मत्सकाशं वसुंधरे।
तदर्थं संनियोक्ष्यामि सर्वानेव दिवौकसः ॥ ४४ ॥

हे वसुन्धरे ! तुम जिस लिये मेरे पास आयी हो, उस कार्यको पूरा करनेके लिए मैं सम्पूर्ण देवोंको नियुक्त करूंगा ॥ ४४ ॥

इत्युक्त्वा स महीं देवो ब्रह्मा राजन्विसृज्य च।
आदिदेश तदा सर्वान्विबुधान्भूतकृत्स्वयम् ॥ ४५ ॥

हे राजन् ! सृष्टिकर्ता देव उन ब्रह्माने इस वाक्यसे धरतीको ढांढस देकर विदा किया। और तब सब देवोंको आज्ञा दी ॥ ४५ ॥

अस्या भूमेर्निरसितुं भारं भागैः पृथक्पृथक्।
अस्यामेव प्रसूयध्वं विरोधायेति चाब्रवीत् ॥ ४६ ॥

ब्रह्माने कहा कि तुम इस पृथ्वीके भारको दूर करनेके लिए अपने अपने अंशोंसे उस मर्त्यलोक ही में विरोध करनेके लिए उत्पन्न होओ ॥ ४६ ॥

तथैव च समानीय गन्धर्वाप्सरसां गणान्।
उवाच भगवान्सर्वानिदं वचनमुत्तमम्।
स्वैरंशैः संप्रसूयध्वं यथेष्टं मानुषेष्विति ॥ ४७ ॥

इसी प्रकार गन्धर्व तथा अप्सराओंके गणोंको बुलवाकर उन सबसे भी भगवान्ने यह उत्तम वचन कहा कि तुम सब अपने अपने अंशोंसे मनुष्यलोकमें अपनी अपनी इच्छाके अनुसार जन्म लो ॥ ४७ ॥

अथ शक्रादयः सर्वे श्रुत्वा सुरगुरोर्वचः।
तथ्यमर्थ्यं च पथ्यं च तस्य ते जगृहुस्तदा ॥ ४८ ॥

तब इन्द्रादि देवोंने उन देवगुरुके उस सत्यार्थयुक्त अति उपकारी उस वचनको सुनकर मान लिया ॥ ४८ ॥

अथ ते सर्वशोंऽशैः स्वैर्गन्तुं भूमिं कृतक्षणाः।
नारायणममित्रघ्नं वैकुण्ठमुपचक्रमुः ॥ ४९ ॥
यः स चक्रगदापाणिः पीतवासासितप्रभः।
पद्मनाभः सुरारिघ्नः पृथुचार्वञ्चितेक्षणः ॥ ५० ॥

तब वे अपने अपने सम्पूर्ण अंशोंसे पृथ्वीमें जन्म लेनेका निश्चयकर, जो अपने हाथोंमें चक्र और गदाको धारण किए रहते हैं, जो पीला कपडा पहनते हैं, तथा जो काले रंगके हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो देवोंके शत्रुओं अर्थात् असुरोंको मारनेवाले हैं और जो सुन्दर और बडी बडी आंखोंवाले हैं, ऐसे शत्रुनाशक मधुसूदन नारायणके पास वैकुण्ठमें गये ॥ ४९–५० ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं भुवः शोधनायेन्द्र उवाच पुरुषोत्तमम्।
अंशेनावतरस्वेति तथेत्याह च तं हरिः ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ २०८६ ॥

उन पुरुषोत्तम विष्णुसे इन्द्रने पृथ्वीको ढूंढनेके लिए कहा और यह भी कहा कि आप अपने अंशसे भूमि पर अवतार लें, हरिने भी "तथास्तु" कहकर इन्द्रकी बात मान ली ॥५१॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ २०८६ ॥

: ५९ :

वैशम्पायन उवाच

अथ नारायणेनेन्द्रश्चकार सह संविदम्।
अवतर्तुं महीं स्वर्गादंशतः सहितः सुरैः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले-- तब इसके बाद इन्द्रने नारायणके साथ सब देवोंके सहित स्वर्गसे अपने अपने अंश लेकर भूमण्डलमें अवतीर्ण होनेकी प्रतिज्ञा की ॥ १ ॥

आदिश्य च स्वयं शक्रः सर्वानेव दिवौकसः।
निर्जगाम पुनस्तस्मात्क्षयान्नारायणस्य ह ॥ २ ॥

उसके बाद इन्द्र स्वयं सब देवोंको आज्ञा देकर नारायणके उस भवनसे चले गये ॥ २ ॥

तेऽमरारिविनाशाय सर्वलोकहिताय च।
अवतेरुः क्रमेणेमां महीं स्वर्गाद्दिवौकसः ॥ ३ ॥

वे सब सुरगण देवोंके शत्रु असुरोंके नाश और सब लोगोंके हितके लिए क्रमानुसार स्वर्गसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होने लगे ॥ ३ ॥

ततो ब्रह्मर्षिवंशेषु पार्थिवर्षिकुलेषु च।
जज्ञिरे राजशार्दूल यथाकामं दिवौकसः ॥ ४ ॥

हे राजसिंह ! उन देवोंने अपनी अपनी इच्छानुसार ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंके वंशोंमें जन्म लिया ॥ ४ ॥

दानवान्राक्षसांश्चैव गन्धर्वान्पन्नगांस्तथा।
पुरुषादानि चान्यानि जघ्नुः सत्त्वान्यनेकशः ॥ ५ ॥

और दानव, राक्षस, गन्धर्व, पन्नग आदि तथा मनुष्योंको खानेवाले दूसरे भी भांति भांतिके अगणित जन्तुओंको नष्ट करने लगे ॥ ५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दानवा राक्षसाश्चैव गन्धर्वाः पन्नगास्तथा ।
न तान्बलस्थान्बाल्येऽपि जघ्नुर्भरतसत्तम ॥ ६ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उन बलशालियोंको दानव, राक्षस, गन्धर्व और पन्नगगण बालपनमें भी कोई हानि नहीं पहुंचा सके ॥ ६ ॥

जनमेजय उवाच

देवदानवसङ्घानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
मानवानां च सर्वेषां तथा वै यक्षरक्षसाम् ॥ ७ ॥
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन संभवं कृत्स्नमादितः ।
प्राणिनां चैव सर्वेषां सर्वशः सर्वविद्ध्यसि ॥ ८ ॥

जनमेजयने कहा– देवों, दानवों, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, राक्षसों और सम्पूर्ण मनुष्योंके संघ तथा दूसरे सब जीवोंकी उत्पत्तिको मैं ठीक ठीक रूपसे सुनना चाहता हूँ। आप सर्ववित् हैं ॥ ७–८ ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ।
सुरादीनामहं सम्यग्लोकानां प्रभवाप्ययम् ॥ ९ ॥

वैशम्पायन बोले– अच्छा, मैं स्वयम्भूको प्रणाम करके देवता और दूसरे जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयका वर्णन करता हूं ॥ ९ ॥

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ १० ॥

मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु यह छः प्रसिद्ध महर्षि ब्रह्माके मानसपुत्रोंके रूपसे प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाः प्रजाः ।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ११ ॥

कश्यप मरीचिके पुत्र हैं और उन कश्यप ही से यह सब प्रजा उत्पन्न हुई। प्रजापति दक्षसे अति सौभाग्यवती तेरह कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥

अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिका मुनिः ।
क्रोधा प्राधा अरिष्टा च विनता कपिला तथा ॥ १२ ॥

अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, प्राधा, अरिष्टा, विनता, कपिला ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत ।
एतासां वीर्यसंपन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ १३ ॥

और, हे नरव्याघ्र भारत ! कद्रु ये दक्षकन्यायें उत्पन्न हुईं । इन सभीके अनन्त वीर्यवान् अगणित पुत्र पौत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

अदित्यां द्वादशादित्याः संभूता भुवनेश्वराः ।
ये राजन्नामतस्तांस्ते कीर्तयिष्यामि भारत ॥ १४ ॥

हे भारत ! अदितिके गर्भसे सारे भुवनों पर शासन करनेवाले बारह पुत्रोंने जन्म लिया। हे राजन् ! उनमेंसे प्रत्येकके नाम कहता हूं ॥ १४ ॥

धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणश्चांश एव च ।
भगो विवस्वान्पूषा च सविता दशमस्तथा ॥ १५ ॥
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते ।
जघन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः ॥ १६ ॥

उनके नाम धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र और वरुण तथा अंश, भग, विवस्वान् और पूषा, दसवें सविता तथा ग्यारहवें त्वष्टा और बारहवें विष्णु थे । वे विष्णु इन बारहों पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे होते हुए भी सबसे ज्यादा गुणवान् कहे जाते हैं ॥ १५–१६ ॥

एक एव दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुः स्मृतः ।
नाम्ना ख्यातास्तु तस्येमे पुत्राः पञ्च महात्मनः ॥ १७ ॥

दितिका एक ही पुत्र था, उसका नाम हिरण्यकशिपु था । उस महात्मा हिरण्यकशिपुके अपने अपने नामोंसे प्रसिद्ध पांच पुत्र हुए ॥ १७ ॥

प्रह्लादः पूर्वजस्तेषां संह्लादस्तदनन्तरम् ।
अनुह्लादस्तृतीयोऽभूत्तस्माच्च शिबिबाष्कलौ ॥ १८ ॥

उनमें प्रह्लाद सबसे बडा, उसके बाद संह्लाद दूसरा, अनुह्लाद तीसरा, शिबि चौथा और बाष्कल पांचवां था ॥ १८ ॥

प्रह्लादस्य त्रयः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत ।
विरोचनश्च कुम्भश्च निकुम्भश्चेति विश्रुताः ॥ १९ ॥

हे भारत ! प्रह्लादके सर्वत्र प्रसिद्ध तीन पुत्र थे; वे विरोचन, कुम्भ और निकुम्भके नामोंसे प्रसिद्ध हुए ॥ १९ ॥

विरोचनस्य पुत्रोऽभूद्बलिरेकः प्रतापवान् ।
बलेश्च प्रथितः पुत्रो बाणो नाम महासुरः ॥ २० ॥

विरोचनका बलि नामक एक प्रतापी पुत्र हुआ। बलिके बाण नामक एक प्रख्यात महासुर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत ।
तेषां प्रथमजो राजा विप्रचित्तिर्महायशाः ॥ २१ ॥

हे भारत ! दनु नाम्नी दक्षपुत्रीने तीनों लोकमें प्रसिद्ध चालीस पुत्र प्रसव किये थे; उनमेंसे सर्व प्रथम उत्पन्न हुए विप्रचित्ति नामक अति यशस्वी बडे पुत्र राजा हुए थे ॥ २१ ॥

शम्बरो नमुचिश्चैव पुलोमा चेति विश्रुतः ।
असिलोमा च केशी च दुर्जयश्चैव दानवः ॥ २२ ॥

शम्बर और नमुचि और प्रसिद्ध पुलोमा, असिलोमा, केशी और दानव दुर्जय ॥ २२ ॥

अयःशिरा अश्वशिरा अयःशंकुश्च वीर्यवान् ।
तथा गगनमूर्धा च वेगवान्केतुमांश्च यः ॥ २३ ॥

अयःशिरा, अश्वशिरा और वीर्यवान् अयःशंकु तथा गगनमूर्धा, वेगवान् और जो केतुमान् ॥ २३ ॥

स्वर्भानुरश्वोऽश्वपतिर्वृषपर्वाजकस्तथा ।
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुहुण्डश्च महासुरः ॥ २४ ॥

स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा और अजक तथा अश्वग्रीव एवं सूक्ष्म तथा महासुर, तुहुण्ड ॥ २४ ॥

इसृपा एकचक्रश्च विरूपाक्षो हराहरौ ।
निचन्द्रश्च निकुम्भश्च कुपथः कापथस्तथा ॥ २५ ॥

इसृपा और एकचक्र, विरूपाक्ष, हर और अहर, निचन्द्र और निकुम्भ, कुपथ और कापथ ॥ २५ ॥

शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
इति ख्याता दनोर्वंशे दानवाः परिकीर्तिताः ।
अन्यौ तु खलु देवानां सूर्याचन्द्रमसौ स्मृतौ ॥ २६ ॥

शरभ और शलभ, सूर्य और चन्द्र, यह सब प्रसिद्ध दानव दनुवंशसे उत्पन्न हुए थे । देवोंमें गिने जानेवाले सूर्य और चन्द्र उक्त दनुवंशी सूर्य और चन्द्रसे भिन्न हैं ॥ २६ ॥

इमे च वंशे प्रथिताः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
दनुपुत्रा महाराज दश दानवपुंगवाः ॥ २७ ॥

हे महाराज ! इस दनुवंशमें बडे बलशाली और पराक्रमी दस दनुके पुत्र दनुवंशमें श्रेष्ठ होकर विख्यात हुए ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एकाक्षो मृतपा वीरः प्रलम्बनरकावपि ।
वातापिः शत्रुतपनः शठश्चैव महासुरः ॥ २८ ॥
गविष्ठश्च दनायुश्च दीर्घजिह्वश्च दानवः ।
असंख्येयाः स्मृतास्तेषां पुत्राः पौत्राश्च भारत ॥ २९ ॥

उनके नाम एकाक्ष, वीर मृतपा, प्रलम्ब, नरक, वातापि, शत्रुतपन, महासुर शठ और गविष्ठ, दनायु और दानव दीर्घजिह्व थे। हे भारत! इनके पुत्र—पौत्र इतने थे, कि उनकी संख्या नहीं की जा सकती ॥ २८-२९ ॥

सिंहिका सुषुवे पुत्रं राहुं चन्द्रार्कमर्दनम् ।
सुचन्द्रं चन्द्रहन्तारं तथा चन्द्रविमर्दनम् ॥ ३० ॥

सिंहिकाने चन्द्र और सूर्यको पीडित करनेवाले राहु, सुचन्द्र, चन्द्रहन्ता और चन्द्र-विमर्दनको जन्म दिया ॥ ३० ॥

क्रूरस्वभावं क्रूरायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
गणः क्रोधवशो नाम क्रूरकर्मारिमर्दनः ॥ ३१ ॥

इसके अतिरिक्त उस क्रूर सिंहिकाके कुटिल स्वभावी अगणित पुत्र पौत्रादि थे। उनमेंसे कुछ क्रोधवश नामके कुटिल कार्य करनेवाले और शत्रुनाशी गण थे ॥ ३१ ॥

अनायुषः पुनः पुत्राश्चत्वारोऽसुरपुङ्गवाः ।
विक्षरो बलवीरौ च वृत्रश्चैव महासुरः ॥ ३२ ॥

विक्षर, बल, वीर और महासुर वृत्र इन चार श्रेष्ठ असुरोंने अनायुके गर्भसे जन्म लिया ॥ ३२ ॥

कालायाः प्रथिताः पुत्राः कालकल्पाः प्रहारिणः ।
भुवि ख्याता महावीर्या दानवेषु परंतपाः ॥ ३३ ॥

काला नाम्नी दक्ष-पुत्रीके कालके समान भयंकर पृथ्वीपर प्रसिद्ध असुरोंमें बडे वीर्यवान्, शत्रुओंको मथनेवाले बहुत पुत्र हुए ॥ ३३ ॥

विनाशनश्च क्रोधश्च हन्ता क्रोधस्य चापरः ।
क्रोधशत्रुस्तथैवान्यः कालेया इति विश्रुताः ॥ ३४ ॥

वे विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता, क्रोधशत्रु आदि नामोंसे तथा दूसरे बहुतसे "कालेय" नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ३४ ॥

असुराणामुपाध्यायः शुक्रस्त्वृषिसुतोऽभवत् ।
ख्याताश्चोशनसः पुत्राश्चत्वारोऽसुरयाजकाः ॥ ३५ ॥

असुरोंके उपाध्याय ऋषिपुत्र शुक्राचार्य थे; उशनाके प्रख्यात चार पुत्र असुरोंके याजक थे ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्वष्टावरस्तथात्रिश्च द्वावन्यौ मन्त्रकर्मिणौ ।
तेजसा सूर्यसंकाशा ब्रह्मलोकप्रभावनाः ॥ ३६ ॥

उनके अतिरिक्त त्वष्टावर और अत्रि यह दो मंत्रकर्मा थे । यह सब तेजमें सूर्यके समान और ब्रह्मलोक पर भक्ति रखनेवाले थे ॥ ३६ ॥

इत्येष वंशप्रभवः कथितस्ते तरस्विनाम् ।
असुराणां सुराणां च पुराणे संश्रुतो मया ॥ ३७ ॥
एतेषां यदपत्यं तु न शक्यं तदशेषतः ।
प्रसंख्यातुं महीपाल गुणभूतमनन्तकम् ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! मैंने पुराणोंमें बलशाली असुरों और देवोंका जो वंशवृत्तान्त सुना था, वह मैंने सुना दिया। उनके पुत्र आदि जो हैं वे इतने अधिक हैं, कि उनकी पूरी तरहसे गिनती नहीं की जा सकती और वे उतने महत्त्वपूर्ण भी नहीं हैं ॥ ३७–३८ ॥

तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च तथैव गरुडारुणौ ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव वैनतेया इति स्मृताः ॥ ३९ ॥

तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि तथा गरुड, अरुण, आरुणि और वारुणि यह सब विनताकी सन्तानें कही गई हैं ॥ ३९ ॥

शेषोऽनन्तो वासुकिश्च तक्षकश्च भुजङ्गमः ।
कूर्मश्च कुलिकश्चैव काद्रवेया महाबलाः ॥ ४० ॥

नागराज शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक ये सब महाबलशाली नाग कद्रुसे उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥

भीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च सप्तमः ॥ ४१ ॥

भीमसेन, उग्रसेन सुपर्ण तथा वरुण, गोपति, धृतराष्ट्र और सातवां सूर्यवर्च ॥ ४१ ॥

पत्रवानर्कपर्णश्च प्रयुतश्चैव विश्रुतः ।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद्वशी ॥ ४२ ॥

पत्रवान्, अर्कपर्ण और प्रयुत, विश्रुत, भीम, प्रख्यात, सर्वज्ञ और जितेंद्रिय चित्ररथ ॥ ४२ ॥

तथा शालिशिरा राजन्प्रद्युम्नश्च चतुर्दशः ।
कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चैव षोडशः ।
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ॥ ४३ ॥

तथा शालिशिरा, चौदहवां प्रद्युम्न, पंद्रहवां कलि और सोलहवां नारद इन देव और गन्धर्वोंने हे राजन् ! दक्ष--पुत्री मुनिके गर्भसे जन्म लिया ॥ ४३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अतस्तु भूतान्यन्यानि कीर्तयिष्यामि भारत।
अनवद्यामनुवशामनूनामरुणां प्रियाम्।
अनूपां सुभगां भासीमिति प्रावा व्यजायत ॥ ४४ ॥

हे भारत! इसके पश्चात् दूसरे प्राणियोंकी कथा कहता हूं। अनवद्या, अनुवशा, अनूना, अरुणा प्रिया, अनूपा, सुभगा, भासी, यह सब कन्यायें प्रावासे उत्पन्न हुई हैं ॥ ४४ ॥

सिद्धः पूर्णश्च बर्ही च पूर्णाशश्च महायशाः।
ब्रह्मचारी रतिगुणः सुपर्णश्चैव सप्तमः ॥ ४५ ॥

सिद्ध, पूर्ण, बर्ही, महायशस्वी पूर्णाश, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सातवां सुपर्ण ॥ ४५ ॥

विश्वावसुश्च भानुश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा।
इत्येते देवगन्धर्वाः प्रावेयाः परिकीर्तिताः ॥ ४६ ॥

विश्वावसु, भानु और दसवां सुचन्द्र इन देवताओं और गन्धर्वोंने भी प्रावासे जन्म लिया ॥ ४६ ॥

इमं त्वप्सरसां वंशं विदितं पुण्यलक्षणम्।
प्रावासूत महाभागा देवी देवर्षितः पुरा ॥ ४७ ॥

इनके अतिरिक्त उस महाभागा देवी प्रावाने पहले देवर्षि कश्यपके सहवाससे प्रख्यात और उत्तम लक्षणोंसे युक्त अप्सराओंके वंशको उत्पन्न किया ॥ ४७ ॥

अलम्बुसा मिश्रकेशी विद्युत्पर्णा तुलानघा।
अरुणा रक्षिता चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा ॥ ४८ ॥

उनके नाम अलम्बुसा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तुलानघा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, उसी तरह मनोरमा ॥ ४८ ॥

असिता च सुबाहुश्च सुव्रता सुभुजा तथा।
सुप्रिया चातिबाहुश्च विख्यातौ च हहाहुहू।
तुम्बरुश्चेति चत्वारः स्मृता गन्धर्वसत्तमाः ॥ ४९ ॥

असिता, सुबाहु, सुव्रता, सुभुजा और सुप्रिया हैं; एवं अतिबाहु, सुप्रसिद्ध हहा, हुहू और तुम्बरु, यह चार गन्धर्वराज भी उसकी सन्तानें हैं ॥ ४९ ॥

अमृतं ब्राह्मणा गावो गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
अपत्यं कपिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम् ॥ ५० ॥

पुराणोंमें कहा है, कि अमृत, ब्राह्मण, गौ, गन्धर्व और अप्सरा यह सब कपिलाकी सन्तानें हैं ॥ ५० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इति ते सर्वभूतानां संभवः कथितो मया ।
यथावत्परिसंख्यातो गंधर्वाप्सरसां तथा ॥ ५१ ॥
भुजगानां सुपर्णानां रुद्राणां मरुतां तथा ।
गवां च ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यकर्मणाम् ॥ ५२ ॥

आपको सर्प, सुपर्ण, रुद्र, मरुत्, गौ और पुण्य कार्य करनेवाले श्रीमान् ब्राह्मण, गन्धर्व, अप्सरा तथा सब प्राणियोंकी उत्पत्ति यथावत् कह दी और उन्हें गिना भी दिया ॥५१-५२॥

आयुष्यश्चैव पुण्यश्च धन्यः श्रुतिसुखावहः ।
श्रोतव्यश्चैव सततं श्राव्यश्चैवानसूयता ॥ ५३ ॥

यह आयुको बढानेवाली कथा पुण्यदायिका धन्य तथा कानोंको सुख देनेवाली है; इसलिये इस कथाको सदा ईर्ष्या द्वेष छोडकर सुनना और सुनाना चाहिए ॥ ५३ ॥

इमं तु वंशं नियमेन यः पठेन्महात्मनां ब्राह्मणदेवसंनिधौ ।
अपत्यलाभं लभते स पुष्कलं श्रियं यशः प्रेत्य च शोभनां गतिम् ॥५४॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ २१४० ॥

जो मनुष्य देवता और ब्राह्मणके सामने नियमके अनुसार महात्माओंकी इस वंशावलीका पाठ करेगा, वह अच्छे पुत्र, बहुत लक्ष्मी और यश और अन्तमें मरकर सुगति प्राप्त करेगा ॥ ५४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ ॥ २१४० ॥

: ६० :

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
एकादश सुताः स्थाणोः ख्याताः परममानसाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– ब्रह्मदेवके मानस पुत्रके रूपमें छै महर्षि प्रसिद्ध हैं, तथा स्थाणुके अत्यन्त मनस्वी ग्यारह सन्तानें सुप्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

मृगव्याधश्च शर्वश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतपः ॥ २ ॥

उनके नाम मृगव्याध, शर्व, अति यशस्वी निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, महा तपस्वी पिनाकी ॥ २ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः।
स्थाणुर्भवश्च भगवान्रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ३ ॥

ईश्वर, दहन, महा तेजस्वी कपाली, स्थाणु और भगवान् भव यह ग्यारह रुद्रके नामसे प्रख्यात हैं ॥ ३ ॥

मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
षडेते ब्रह्मणः पुत्रा वीर्यवन्तो महर्षयः ॥ ४ ॥

मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु, यह वीर्यवान् छः महर्षि ब्रह्माके पुत्र हैं ॥ ४ ॥

त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च धृतव्रताः ॥ ५ ॥

अङ्गिराके लोकमें प्रसिद्ध तीन पुत्र उत्पन्न हुए; उनके नाम बृहस्पति, उतथ्य और व्रतशील संवर्त हैं ॥ ५ ॥

अत्रेस्तु बहवः पुत्राः श्रूयन्ते मनुजाधिप।
सर्वे वेदविदः सिद्धाः शान्तात्मानो महर्षयः ॥ ६ ॥

हे नराधिप ! अत्रिके अगणित पुत्र सुने जाते हैं। वे सब वेद जाननेवाले, सिद्ध, शान्तचित्त और महर्षि थे ॥ ६ ॥

राक्षसास्तु पुलस्त्यस्य वानराः किंनरास्तथा।
पुलहस्य मृगाः सिंहा व्याघ्राः किंपुरुषास्तथा ॥ ७ ॥

राक्षस, बन्दर तथा किन्नर पुलस्त्यके पुत्र थे और मृग, सिंह, व्याघ्र और नीच पुरुष पुलहके पुत्र हुए ॥ ७ ॥

क्रतोः क्रतुसमाः पुत्राः पतङ्गसहचारिणः।
विश्रुतास्त्रिषु लोकेषु सत्यव्रतपरायणाः ॥ ८ ॥

क्रतुके क्रतु (यज्ञ) के समान पाप दूर करनेहारे और सूर्यके साथी (वालखिल्य नामक) बेटे तीनों लोकोंमें प्रख्यात और सत्य व्रतशील थे ॥ ८ ॥

दक्षस्त्वजायताङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्भगवानृषिः।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥ ९ ॥
वामादजायताङ्गुष्ठाद्भार्या तस्य महात्मनः।
तस्यां पञ्चाशतं कन्याः स एवाजनयन्मुनिः ॥ १० ॥

हे पृथ्वीपाल ! पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ पुत्र भगवान् दक्ष मुनिने ब्रह्माके दाहिने अंगूठेसे जन्म लिया और उन महात्माकी स्त्री ब्रह्माके बांयें अंगूठेसे उत्पन्न हुई थी। प्रजापति दक्षने उस स्त्रीसे पचास कन्याओंको उत्पन्न किया ॥ ९-१० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ताः सर्वास्त्वनवद्याङ्ग्यः कन्याः कमललोचनाः ।
पुत्रिकाः स्थापयामास नष्टपुत्रः प्रजापतिः ॥ ११ ॥

वे कन्यायें अनिन्दित अंगोंवाली और कमलके समान सुन्दर आंखोंवाली थीं । प्रजापति दक्षने पुत्र न होनेके कारण कन्याओंको ही पुत्रिका+ बनाया ॥ ११ ॥

ददौ स दश धर्माय सप्तविंशतिमिन्दवे ।
दिव्येन विधिना राजन्कश्यपाय त्रयोदश ॥ १२ ॥

उन्होंने दिव्य विधिके अनुसार धर्मको दस कन्यायें, चन्द्रको सत्ताइस कन्यायें और कश्यपको तेरह कन्यायें दान कीं ॥ १२ ॥

नामतो धर्मपत्न्यस्ताः कीर्त्यमाना निबोध मे ।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया तथा ॥ १३ ॥

धर्मकी धर्मपत्नियोंके नाम मैं बताता हूं, सुनिये । कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा और क्रिया ॥ १३ ॥

बुद्धिर्लज्जा मतिश्चैव पत्न्यो धर्मस्य ता दश ।
द्वाराण्येतानि धर्मस्य विहितानि स्वयंभुवा ॥ १४ ॥

बुद्धि, लज्जा और मति ये दस धर्मकी पत्नियां हैं, धर्मकी इन दस पत्नियोंको भगवान् स्वयंभूने धर्मके द्वार बना दिये थे ॥ १४ ॥

सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो लोके परिश्रुताः ।
कालस्य नयने युक्ताः सोमपत्न्यः शुभव्रताः ।
सर्वा नक्षत्रयोगिन्यो लोकयात्राविधौ स्थिताः ॥ १५ ॥

चन्द्रकी सत्ताइस स्त्रियां तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं । वे सब उत्तम आचरण करनेवाली चन्द्रमाकी पत्नियां लोकयात्रा निर्वाहके निमित्त काल निश्चित करनेके लिये अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रोंके नामसे प्रख्यात हुई हैं ॥ १५ ॥

पितामहो मुनिर्देवस्तस्य पुत्रः प्रजापतिः
तस्याष्टौ वसवः पुत्रास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ १६ ॥

ब्रह्माके पुत्र देवमुनि और उनके पुत्र प्रजापति हैं; उनसे आठ वसुओंका जन्म हुआ था । उनकी कथा विस्तृत रूपसे कहता हूं ॥ १६ ॥

+ अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥ (मनु. ९।१२७)

जिसके पुत्र न हो, वह अपनी लडकीके विवाहके समय अपने जामाताके साथ यह करार करता है कि इस लडकीसे जो पुत्र हो, वही मेरा तर्पण, श्राद्ध आदि करे । इसके कारण वह लडकी " पुत्रिका " कहलाती है ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धरो ध्रुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टाविति स्मृताः ॥ १७ ॥

धर और ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास यह आठ वसु प्रसिद्ध हुए ॥१७॥

धूम्रायाश्च धरः पुत्रो ब्रह्मविद्यो ध्रुवस्तथा।
चन्द्रमास्तु मनस्विन्याः श्वसायाः श्वसनस्तथा ॥ १८ ॥

ब्रह्मविद्यामें पण्डित ध्रुव और धर धूम्राके पुत्र; चन्द्र मनस्विनीके और वायु श्वसाके पुत्र थे ॥ १८ ॥

रतायाश्चाप्यहः पुत्रः शाण्डिल्याश्च हुताशनः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च प्रभातायाः सुतौ स्मृतौ ॥ १९ ॥

दिवस रताके पुत्र; हुताशन शाण्डिलीके पुत्र और प्रत्यूष तथा प्रभास प्रभाताके पुत्र थे ॥१९॥

धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः ॥ २० ॥

आठ वसुओंमेंसे धरके दो पुत्र थे; उनके नाम द्रविण और हुतहव्यवह थे। लोकनाशी भगवान् काल ध्रुवके पुत्र थे ॥ २० ॥

सोमस्य तु सुतो वर्चा वर्चस्वी येन जायते।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥ २१ ॥

सोमके पुत्र वर्चा थे, जिससे वर्चस्वी उत्पन्न होते हैं; मनोहराके शिशिर, रमण और प्राण यह पुत्र हुए ॥ २१ ॥

अहः सुतः स्मृतो ज्योतिः श्रमः शान्तस्तथा मुनिः।
अग्नेः पुत्रः कुमारस्तु श्रीमाञ्शरवणालयः ॥ २२ ॥

दिवससे ज्योतिः, श्रम, शान्त और मुनि ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। अग्निसे शरवनरूपी-गृहवाले श्रीमान् कुमारका जन्म हुआ ॥ २२ ॥

तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेशश्च पृष्ठजः।
कृत्तिकाभ्युपपत्तेश्च कार्तिकेय इति स्मृतः ॥ २३ ॥

कृत्तिका आदि छः माताओंसे कार्तिकेयका जन्म हुआ है। शाख, विशाख और नैगमेश कार्त्तिकेयके छोटे भाई थे ॥ २३ ॥

अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रः पुरोजवः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥ २४ ॥

अनिलकी शिवा नामकी स्त्री थी उसके गर्भसे अनिलके पुरोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्रोंका जन्म हुआ ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम्।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ॥ २५ ॥

देवल नामसे उत्पन्न हुए प्रत्यूषके ऋषिपुत्रको सब जानते हैं। देवलके भी क्षमावान् और बुद्धिमान् दो पुत्र हुए थे ॥ २५ ॥

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्सर्वमसक्तं विचरत्युत।
प्रभासस्य तु भार्या सा वसूनामष्टमस्य ह ॥ २६ ॥
विश्वकर्मा महाभागो जज्ञे शिल्पप्रजापतिः।
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः ॥ २७ ॥

ब्रह्मचारिणी सुन्दरी स्त्री बृहस्पतिकी बहन संसारमें न फंस कर योगमें चित्तको लगाकरके सम्पूर्ण भूमण्डलमें विचरने लगी; बादमें उसने वसुओंमें आठवें वसु प्रभासकी स्त्री होकर शिल्पविद्यामें दक्ष विश्वकर्मा नामक महानुभाव पुत्र प्रसव किया; ये विश्वकर्मा सहस्रों शिल्प कार्योंके सृष्टिकर्त्ता, देवोंके वर्धकि अर्थात् शिल्पकार थे ॥ २६-२७ ॥

भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः।
यो दिव्यानि विमानानि देवतानां चकार ह ॥ २८ ॥

जिन्होंने सम्पूर्ण अलङ्कार बनाये तथा शिल्पियोंमें प्रधान जिस विश्वकर्माने देवोंको दिव्य यान बना कर दिया ॥ २८ ॥

मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः।
पूजयन्ति च यं नित्यं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥ २९ ॥

मनुष्यलोग भी जिन महात्माकी शिल्पविद्या सीखकर जीविकाका निर्वाह करते हैं और जिस अव्यय विश्वकर्माकी मनुष्य हमेशा पूजा करते हैं वह प्रभासके पुत्र हैं ॥ २९ ॥

स्तनं तु दक्षिणं भित्त्वा ब्रह्मणो नरविग्रहः।
निःसृतो भगवान्धर्मः सर्वलोकसुखावहः ॥ ३० ॥

सब लोकोंको सुख देनेवाले भगवान् धर्म नरमूर्तिके स्वरूपमें अर्थात् पुरुषका रूप धारण करके ब्रह्माके दाहिने स्तनको भेद करके निकले थे ॥ ३० ॥

त्रयस्तस्य वराः पुत्राः सर्वभूतमनोहराः।
शमः कामश्च हर्षश्च तेजसा लोकधारिणः ॥ ३१ ॥

अपने तेजसे लोकोंको धारण करनेवाले और सब जीवोंमें मनोहर, शम, काम और हर्ष, यह तीन श्रेष्ठ पुत्र धर्मसे उत्पन्न हुए थे ॥ ३१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कामस्य तु रतिर्भार्या शमस्य प्राप्तिरङ्गना।
नन्दी तु भार्या हर्षस्य यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३२ ॥

कामकी स्त्री रति, शमकी स्त्री प्राप्ति और हर्षकी स्त्री नन्दी हुई। इन तीन स्त्रियोंमें सारे लोक प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य सुरासुराः।
जज्ञिरे नृपशार्दूल लोकानां प्रभवस्तु सः ॥ ३३ ॥

हे राजसिंह ! मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, कश्यप ही से सुरासुरोंने जन्म लिया है, अतएव वही समस्त लोगोंके जन्मदाता हैं ॥ ३३ ॥

त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या वडवारूपधारिणी।
असूयत महाभागा सान्तरिक्षेऽश्विनावुभौ ॥ ३४ ॥

वडवा (घोडी) के रूपको धारण करनेवाली सूर्यपत्नी महाभागा त्वाष्ट्रीने आकाशमें दोनों अश्विनीकुमारोंको पैदा किया ॥ ३४ ॥

द्वादशैवादितेः पुत्राः शक्रमुख्या नराधिप।
तेषामवरजो विष्णुर्यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३५ ॥

हे नराधिप ! अदितिके गर्भसे इन्द्रादि बारह पुत्रोंने जन्म लिया, उनमें विष्णु सबसे छोटे हैं जिनमें सबलोक प्रतिष्ठित हैं ॥ ३५ ॥

त्रयस्त्रिंशत इत्येते देवास्तेषामहं तव।
अन्वयं संप्रवक्ष्यामि पक्षैश्च कुलतो गणान् ॥ ३६ ॥

तैंतीस प्रधान देव हैं, उनके पक्ष, कुल और गणके अनुसार वंशकी कथा तुमसे कहता हूं ॥ ३६ ॥

रुद्राणामपरः पक्षः साध्यानां मरुतां तथा।
वसूनां भार्गवं विद्याद्विश्वेदेवांस्तथैव च ॥ ३७ ॥

रुद्रोंका एक पक्ष है तथा साध्यगण, मरुद्गण, वसुगण, भार्गवगण और विश्वदेवगण इनका एक एक पक्ष है ॥ ३७ ॥

वैनतेयस्तु गरुडो बलवानरुणस्तथा।
बृहस्पतिश्च भगवानादित्येष्वेव गण्यते ॥ ३८ ॥

विनतानन्दन गरुड तथा बलवान् अरुण और भगवान् बृहस्पति आदित्यगणमें गिने जाते हैं ॥ ३८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अश्विभ्यां गुह्यकान्विद्धि सर्वौषध्यस्तथा पशून् ।
एष देवगणो राजन्कीर्तितस्तेऽनुपूर्वशः ।
यं कीर्तयित्वा मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥

दोनों अश्विनी कुमार, सब औषधि और पशुलोग गुह्यकगणमें गिने जाते हैं । हे राजन् ! आदिसे अन्ततक यह सब देवोंकी कथा कही । जिसका वर्णन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३९ ॥

ब्रह्मणो हृदयं भित्त्वा निःसृतो भगवान्भृगुः ।
भृगोः पुत्रः कविर्विद्वाञ्शुक्रः कविसुतो ग्रहः ॥ ४० ॥

भगवान् भृगु ब्रह्माके हृदयको तोडकर निकले। विद्वान् कवि भृगुका पुत्र था और शुक्र ग्रह कविका पुत्र था ॥ ४० ॥

त्रैलोक्यप्राणयात्रार्थे वर्षावर्षे भयाभये ।
स्वयंभुवा नियुक्तः सन्भुवनं परिधावति ॥ ४१ ॥

वह ब्रह्माकी आज्ञासे ग्रहके स्वरूपमें तीनों लोकोंकी प्राणयात्राके निर्वाहके लिये पानी बरसाना या न बरसाना, भयका रहना और न रहना आदि विषयोंपर दृष्टि रखनेके निमित्त नियुक्त होकर भूमण्डलमें विचर रहे हैं ॥ ४१ ॥

योगाचार्यो महाबुद्धिर्दैत्यानामभवद्गुरुः ।
सुराणां चापि मेधावी ब्रह्मचारी यतव्रतः ॥ ४२ ॥

व्रतशील, मेधावी, ब्रह्मचारी, अति बुद्धिमान् योगाचार्य शुक्र योगबलसे बृहस्पति और शुक्र इन दोका स्वरूप धारण करके देव और असुरोंके गुरु हुए ॥ ४२ ॥

तस्मिन्नियुक्ते विभुना योगक्षेमाय भार्गवे ।
अन्यमुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिन्दितम् ॥ ४३ ॥
च्यवनं दीप्ततपसं धर्मात्मानं मनीषिणम् ।
यः स रोषाच्च्युतो गर्भान्मातुर्मोक्षाय भारत ॥ ४४ ॥

तेजधारी मनीषी लोगोंके योगक्षेमकी व्यवस्था करनेके लिए प्रभुके द्वारा भार्गवको नियुक्त किए जाने पर भृगुने च्यवन नामके बुद्धिमान्, धर्मात्मा और प्रदीप्त तेजस्वी तथा अनिन्दित एक दूसरे पुत्रको पैदा किया। हे भारत! वह क्रोधयुक्त होकर माताको छुडानेके लिए गर्भसे गिर गए थे ॥ ४३–४४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आरुषी तु मनोः कन्या तस्य पत्नी मनीषिणः।
और्वस्तस्यां समभवदूरुं भित्त्वा महायशाः।
महातपा महातेजा बाल एव गुणैर्युतः ॥ ४५ ॥

मनीषी उन मुनि च्यवनकी स्त्री आरुषी मनुकी बेटी थी। अति यशस्वी और्व आरुषीकी जांघको चीरकर निकले। वह बालपनहीमें सब गुणोंसे भूषित, अति तेजस्वी और बडे तपस्वी थे ॥ ४५ ॥

ऋचीकस्तस्य पुत्रस्तु जमदग्निस्ततोऽभवत्।
जमदग्नेस्तु चत्वार आसन्पुत्रा महात्मनः ॥ ४६ ॥

उस और्वके पुत्र ऋचीक हुए; ऋचीकके पुत्र जमदग्नि थे और महात्मा जमदग्निके चार पुत्र थे ॥ ४६ ॥

रामस्तेषां जघन्योऽभूदजघन्यैर्गुणैर्युतः।
सर्वशस्त्रास्त्रकुशलः क्षत्रियान्तकरो वशी ॥ ४७ ॥

उनमें राम (परशुराम) सबसे छोटे होनेपर भी गुणोंके कारण सबसे बडे थे; वह जितेन्द्रिय क्षत्रियकुलके नाश करनेवाले और सभी शस्त्रास्त्रोंमें कुशल थे ॥ ४७ ॥

और्वस्यासीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम्।
तेषां पुत्रसहस्राणि बभूवुर्भृगुविस्तरः ॥ ४८ ॥

ऋचीकके जमदग्नि आदि सौ पुत्र थे। उन पुत्रोंके भी सहस्रों पुत्र भृगुवंशको बढानेवाले हुए ॥ ४८ ॥

द्वौ पुत्रौ ब्रह्मणस्त्वन्यौ ययोस्तिष्ठति लक्षणम्।
लोके धाता विधाता च यौ स्थितौ मनुना सह ॥ ४९ ॥

ब्रह्माके जो दूसरे पुत्र हैं, वे लोकोंमें धाता और विधाता नामसे प्रख्यात होकर ब्रह्मलोकमें मनुके साथ रहते हैं ॥ ४९ ॥

तयोरेव स्वसा देवी लक्ष्मीः पद्मगृहा शुभा।
तस्यास्तु मानसाः पुत्रास्तुरगा व्योमचारिणः ॥ ५० ॥

शुभलक्षणोंसे युक्त तथा पद्मपर विराजमान देवी लक्ष्मी उनकी बहिन हैं; आकाशमें उडनेवाले घोडे लक्ष्मीके मानस-पुत्र हैं ॥ ५० ॥

वरुणस्य भार्या ज्येष्ठा तु शुक्रादेवी व्यजायत।
तस्याः पुत्रं बलं विद्धि सुरां च सुरनन्दिनीम् ॥ ५१ ॥

वरुणकी बडी स्त्री देवीने शुक्रसे जन्म लिया; उन्होंने बल नामक एक पुत्र और सुरा नाम सुरनन्दिनी एक कन्या उत्पन्न की ऐसा जानो ॥ ५१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रजानामन्नकामानामन्योन्यपरिभक्षणात्।
अधर्मस्तत्र संजातः सर्वभूतविनाशनः ॥ ५२ ॥

अन्नकी इच्छा करनेवाली प्रजाओंके आपसमें ही एक दूसरेको खानेसे सब प्राणियोंका विनाश करनेवाला अधर्म उत्पन्न हो गया ॥ ५२ ॥

तस्यापि निर्ऋतिर्भार्या नैर्ऋता येन राक्षसाः।
घोरास्तस्यास्त्रयः पुत्राः पापकर्मरताः सदा।
भयो महाभयश्चैव मृत्युर्भूतान्तकस्तथा ॥ ५३ ॥

अधर्मकी स्त्रीका नाम निर्ऋति था, उसके गर्भसे नैर्ऋत राक्षसोंने जन्म लिया था और उसके सदा पापाचारी घोररूप दूसरे तीन बेटे थे; उनके नाम भय, महाभय और सब भूतोंके अन्तकारी मृत्यु हैं ॥ ५३ ॥

काकीं श्येनीं च भासीं च धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम्।
ताम्रा तु सुषुवे देवी पञ्चैता लोकविश्रुताः ॥ ५४ ॥

लोकोंमें प्रसिद्ध काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री और शुकी इन पांच कन्याओंने देवी ताम्राके गर्भसे जन्म लिया ॥ ५४ ॥

उलूकान्सुषुवे काकी श्येनी श्येनान्व्यजायत।
भासी भासानजनयद्गृध्रांश्चैव जनाधिप ॥ ५५ ॥

हे राजन्! काकीने उल्लुओंको, श्येनीने बाजोंको, भासीने मुरगोंको और गिद्धोंको उत्पन्न किया ॥ ५५ ॥

धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः।
चक्रवाकांश्च भद्रं ते प्रजज्ञे सा तु भामिनी ॥ ५६ ॥

और उस भामिनी धृतराष्ट्रीने, हंस, राजहंस और चकवोंको उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥

शुकी विजज्ञे धर्मज्ञ शुकानेव मनस्विनी।
कल्याणगुणसंपन्ना सर्वलक्षणपूजिता ॥ ५७ ॥

हे धर्मको जाननेवाले राजन्! सब उत्तम लक्षणोंसे युक्त तथा कल्याण करनेवाले सभी गुणोंसे युक्त मनस्विनी शुकीसे शुक अर्थात् तोतोंका जन्म हुआ ॥ ५७ ॥

नव क्रोधवशा नारीः प्रजज्ञेऽप्यात्मसंभवाः।
मृगीं च मृगमन्दां च हरिं भद्रमनामपि ॥ ५८ ॥
मातङ्गीमथ शार्दूलीं श्वेतां सुरभिमेव च।
सर्वलक्षणसंपन्नां सुरसां च यशस्विनीम् ॥ ५९ ॥

क्रोधवशा नौ नारियां क्रोधसे उत्पन्न हुई थीं। मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और सब लक्षणोंवाली और यशस्वनी सुरसा थीं ॥ ५८-५९ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरात्मज ।
ऋक्षाश्च मृगमन्दायाः सृमराश्चमरा अपि ॥ ६० ॥

हे राजपुत्र! सब मृगोंने मृगीसे जन्म लिया है; ऋक्ष और सृमरों और चमरोंने मृगमन्दासे जन्म लिया ॥ ६० ॥

ततस्त्वैरावतं नागं जज्ञे भद्रमना सुतम् ।
ऐरावतः सुतस्तस्या देवनागो महागजः ॥ ६१ ॥

इसके बाद भद्रमनाने ऐरावत हाथीको पुत्रके रूपमें पैदा किया। उस भद्रमनाका पुत्र देवोंका हाथी महागज ऐरावत है ॥ ६१ ॥

हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तरस्विनः ।
गोलाङ्गूलांश्च भद्रं ते हर्याः पुत्रान्प्रचक्षते ॥ ६२ ॥

बंदर और दूसरे भी वेगवान् वानर हरीकी सन्तानें हैं। राजन्! तेरा कल्याण हो! लंगूरोंको भी हरीकी सन्तान कहा जाता है ॥ ६२ ॥

प्रजज्ञे त्वथ शार्दूली सिंहान्व्याघ्रांश्च भारत ।
द्वीपिनश्च महाभाग सर्वानेव न संशयः ॥ ६३ ॥

हे महाभाग भारत! शार्दूलीने सिंह, व्याघ्र और सम्पूर्ण चीतोंको जन्म दिया इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥

मातङ्ग्यास्त्वथ मातङ्गा अपत्यानि नराधिप ।
दिशागजं तु श्वेताख्यं श्वेताजनयदाशुगम् ॥ ६४ ॥

हे नराधिप! हस्तीगण मातङ्गीके बेटे हैं, श्वेताने श्वेता नामक द्रुतगामी दिग्गज उत्पन्न किया ॥ ६४ ॥

तथा दुहितरौ राजन्सुरभिर्वै व्यजायत ।
रोहिणीं चैव भद्रं ते गन्धर्वीं तु यशस्विनीम् ।
रोहिण्यां जज्ञिरे गावो गन्धर्व्यां वाजिनः सुताः ॥ ६५ ॥

हे राजन्! तेरा कल्याण हो, सुरभिने यशस्विनी गन्धर्वी और रोहिणी इन दो कन्याओंको जन्म दिया। रोहिणीसे गौ और गन्धर्वीसे घोडे उत्पन्न हुए ॥ ६५ ॥

सुरसाजनयन्नागान्राजन्कद्रूश्च पन्नगान् ।
सप्त पिण्डफलान्वृक्षाननलापि व्यजायत ।
अनलायाः शुकी पुत्री कद्र्वास्तु सुरसा सुता ॥ ६६ ॥

हे राजन्! सुरसाने नागोंको और कद्रूने पन्नगों अर्थात् सांपोंको पैदा किया। खजूर, ताड, हिन्ताल, ताली, खजूरिका, सुपारी तथा नारियल आदि पिण्डफलवाले सात वृक्ष अनलासे उत्पन्न हुए हैं, इनके सिवाय अनलासे शुकी नामकी और कद्रूसे सुरसा नामकी पुत्रियां हुईं ॥ ६६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अरुणस्य भार्या श्येनी तु वीर्यवन्तौ महाबलौ ।
संपातिं जनयामास तथैव च जटायुषम् ।
द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु विख्यातौ गरुडारुणौ ॥ ६७ ॥

अरुणकी स्त्री श्येनीने सम्पाती और जटायु नामक महाबली वीर्यवान् दो पुत्रोंको उत्पन्न किया और सुप्रसिद्ध गरुड और अरुणने विनताके गर्भसे जन्म लिया ॥ ६७ ॥

इत्येष सर्वभूतानां महतां मनुजाधिप ।
प्रभवः कीर्तितः सम्यङ्मया मतिमतां वर ॥ ६८ ॥

हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ मनुजाधिपते ! यह सब बडे बडे भूतोंकी उत्पत्तिकी कथा मैंने ठीक ठीक कह सुनाई ॥ ६८ ॥

यं श्रुत्वा पुरुषः सम्यक्पूतो भवति पाप्मनः ।
सर्वज्ञतां च लभते गतिमग्र्यां च विन्दति ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ २२०९ ॥

इसके सुननेसे मनुष्यलोग सर्वज्ञ बन जाते हैं और पापोंसे मुक्त होकर अच्छी गति प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ २२०९ ॥

: ६१ :

जनमेजय उवाच

देवानां दानवानां च यक्षाणामथ रक्षसाम् ।
अन्येषां चैव भूतानां सर्वेषां भगवन्नहम् ॥ १ ॥
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन मानुषेषु महात्मनाम् ।
जन्म कर्म च भूतानामेतेषामनुपूर्वशः ॥ २ ॥

जनमेजय बोले– भगवन् ! देव, दानव, यक्ष, राक्षस तथा अन्य सभी प्राणियोंके तथा मनुष्योंमें इन महात्मा प्राणियोंके जन्मकर्मको क्रमशः तत्त्वतः सम्पूर्ण सुनना चाहता हूँ ॥ १-२ ॥

वैशंपायन उवाच

मानुषेषु मनुष्येन्द्र संभूता ये दिवौकसः ।
प्रथमं दानवांश्चैव तांस्ते वक्ष्यामि सर्वशः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले– हे मनुष्येन्द्र ! जिन सब देवता और दानवोंने मानवोंके स्वरूपमें जन्म लिया था, उनमें पहिले दानवोंकी कथा पूरी तरहसे कहता हूं ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विप्रचित्तिरिति ख्यातो य आसीद्दानवर्षभः ।
जरासन्ध इति ख्यातः स आसीन्मनुजर्षभः ॥ ४ ॥

दानवोंमें श्रेष्ठ जो विप्रचित्तिके नामसे प्रसिद्ध हुआ था, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ होकर जरासंधके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४ ॥

दितेः पुत्रस्तु यो राजन्हिरण्यकशिपुः स्मृतः ।
स जज्ञे मानुषे लोके शिशुपालो नरर्षभः ॥ ५ ॥

हे नरनाथ ! हिरण्यकशिपु नामक जो दितिका पुत्र था, उसीने शिशुपाल होकर मनुष्य लोकमें पुरुषोंमें श्रेष्ठ होकर जन्म लिया ॥ ५ ॥

संह्राद इति विख्यातः प्रह्लादस्यानुजस्तु यः ।
स शल्य इति विख्यातो जज्ञे बाह्लीकपुङ्गवः ॥ ६ ॥

प्रह्लादका छोटा भाई जो संह्लादके नामसे प्रसिद्ध था, वह शल्यके नामसे प्रख्यात होकरके बाह्लीकोंमें श्रेष्ठ होकर पैदा हुआ ॥ ६ ॥

अनुह्लादस्तु तेजस्वी योऽभूत्ख्यातो जघन्यजः ।
धृष्टकेतुरिति ख्यातः स आसीन्मनुजेश्वरः ॥ ७ ॥

प्रह्लादका सबसे छोटा भाई जो प्रसिद्ध तेजस्वी अनुह्लाद था, वह धृष्टकेतुके नामसे प्रसिद्ध होकर राजा हुआ ॥ ७ ॥

यस्तु राजञ्शिबिर्नाम दैतेयः परिकीर्तितः ।
द्रुम इत्यभिविख्यातः स आसीद्भुवि पार्थिवः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! शिबि नामक जो दैत्य कहा गया है, वह भूमिपर द्रुम नामसे प्रसिद्ध राजा हुआ ॥ ८ ॥

बाष्कलो नाम यस्तेषामासीदसुरसत्तमः ।
भगदत्त इति ख्यातः स आसीन्मनुजेश्वरः ॥ ९ ॥

उनमें असुरश्रेष्ठ जो बाष्कल नामका था, वह मानव योनिमें जन्म लेकर भगदत्तके नामसे प्रसिद्ध राजा हुआ ॥ ९ ॥

अयःशिरा अश्वशिरा अयःशङ्कुश्च वीर्यवान् ।
तथा गगनमूर्धा च वेगवांश्चात्र पञ्चमः ॥ १० ॥
पञ्चैते जज्ञिरे राजन्वीर्यवन्तो महासुराः ।
केकयेषु महात्मानः पार्थिवर्षभसत्तमाः ॥ ११ ॥

अयःशिरा, अश्वशिरा, वीर्यवान् अयःशंकु, गगनमूर्धा और वेगवान्, इन पांच वीर्यवान् महात्मा महासुरोंने, हे राजन् ! केकय देशमें श्रेष्ठ भूपति होकर जन्म लिया था ॥ १०-११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

केतुमानिति विख्यातो यस्ततोऽन्यः प्रतापवान् ।
अमितौजा इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ॥ १२ ॥

जो उनसे दूसरा प्रख्यात प्रतापी केतुमान् था, वह पृथ्वी पर अमितौजाके नामसे प्रसिद्ध नरेश हुआ ॥ १२ ॥

स्वर्भानुरिति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ।
उग्रसेन इति ख्यात उग्रकर्मा नराधिपः ॥ १३ ॥

स्वर्भानु नामसे जो प्रसिद्ध श्रीमान् महासुर था, वह उग्रसेन नामसे वीरताके कर्म करने वाला राजा होकर अवतीर्ण हुआ ॥ १३ ॥

यस्त्वश्व इति विख्यातः श्रीमानासीन्महासुरः ।
अशोको नाम राजासीन्महावीर्यपराक्रमः ॥ १४ ॥

जो श्रीमान् महासुर अश्वके नामसे प्रसिद्ध था, उसने अशोक नामक महादुर्जय नरेश होकर जन्म लिया था ॥ १४ ॥

तस्मादवरजो यस्तु राजन्नश्वपतिः स्मृतः ।
दैतेयः सोऽभवद्राजा हार्दिक्यो मनुजर्षभः ॥ १५ ॥

अश्वका छोटा भाई दैत्य जो अश्वपति बताया जाता है, वह हार्दिक्य नामक श्रेष्ठ महीपाल हुआ ॥ १५ ॥

वृषपर्वेति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ।
दीर्घप्रज्ञ इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ॥ १६ ॥

जो श्रीमान् महासुर वृषपर्वा नामसे प्रसिद्ध था, उसने दीर्घप्रज्ञ नामसे प्रख्यात राजा होकर भूमिपर जन्म लिया ॥ १६ ॥

अजकस्त्वनुजो राजन्य आसीद्वृषपर्वणः ।
स मल्ल इति विख्यातः पृथिव्यामभवन्नृपः ॥ १७ ॥

वृषपर्वाका छोटा भाई जो अजक नामसे प्रसिद्ध था, वह पृथ्वीपर मल्ल नामसे प्रसिद्ध राजा हुआ ॥ १७ ॥

अश्वग्रीव इति ख्यातः सत्त्ववान्यो महासुरः ।
रोचमान इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ॥ १८ ॥

बलवान् महासुर जो अश्वग्रीवके नामसे प्रसिद्ध था, उसने पृथ्वी पर रोचमान नामसे प्रसिद्ध नरेश होकर जन्म लिया ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूक्ष्मस्तु मतिमान्राजन्कीर्तिमान्यः प्रकीर्तितः।
बृहन्त इति विख्यातः क्षितावासीत्स पार्थिवः ॥ १९ ॥

कीर्तिशाली मतिमान् सूक्ष्म नामक जो दैत्य कहा गया है उसने बृहन्त नामक प्रख्यात महीपति होकर भूमिपर जन्म लिया ॥ १९ ॥

तुहुण्ड इति विख्यातो य आसीदसुरोत्तमः।
सेनाबिन्दुरिति ख्यातः स बभूव नराधिपः ॥ २० ॥

जो असुरराज तुहुण्ड नामसे प्रसिद्ध था, वह सेनाबिन्दु नामक प्रशंसित भूपालके स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ २० ॥

इसृपा नाम यस्तेषामसुराणां बलाधिकः।
पापजिन्नाम राजासीद्भुवि विख्यातविक्रमः ॥ २१ ॥

जो असुरोंमें अति बलवान् इसृपाके नामसे प्रसिद्ध था, उसने पापजित् नामसे भूमिपर प्रख्यात विक्रमी राजा होकर जन्म लिया ॥ २१ ॥

एकचक्र इति ख्यात आसीद्यस्तु महासुरः।
प्रतिविन्ध्य इति ख्यातो बभूव प्रथितः क्षितौ ॥ २२ ॥

जो प्रसिद्ध महासुर एकचक्र था वह पृथ्वीमें प्रतिविन्ध्य नामक प्रशंसित पृथ्वीपति हुआ ॥ २२ ॥

विरूपाक्षस्तु दैतेयश्चित्रयोधी महासुरः।
चित्रवर्मेति विख्यातः क्षितावासीत्स पार्थिवः ॥ २३ ॥

अद्भुत योद्धा महासुर दैत्य विरूपाक्षने क्षितमण्डलमें चित्रवर्मा नामक प्रख्यात क्षितिपति होकर जन्म लिया ॥ २३ ॥

हरस्त्वरिहरो वीर आसीद्यो दानवोत्तमः।
सुवास्तुरिति विख्यातः स जज्ञे मनुजर्षभः ॥ २४ ॥

जो शत्रुओंका नाश करनेवाला वीर दैत्यवर हर था, वह श्रीमान् प्रख्यात अवनीपति सुवास्तु होकर अवतीर्ण हुआ ॥ २४ ॥

अहरस्तु महातेजाः शत्रुपक्षक्षयंकरः।
बाह्लीको नाम राजा स बभूव प्रथितः क्षितौ ॥ २५ ॥

शत्रुपक्षके लिए भयंकर महातेजस्वी जो अहर नामक दैत्य था, उसने भूमण्डलमें बाह्लीक नामक प्रशंसित राजा होकर जन्म लिया ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निचन्द्रश्चन्द्रवक्त्रश्च य आसीदसुरोत्तमः।
मुञ्जकेश इति ख्यातः श्रीमानासीत्स पार्थिवः ॥ २६ ॥

जो चन्द्रके समान सुन्दर मुखवाला असुरोत्तम निचन्द्र था, वह महीपति श्रीमान् मुञ्जकेशके स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ २६ ॥

निकुम्भस्त्वजितः संख्ये महामतिरजायत।
भूमौ भूमिपतिः श्रेष्ठो देवाधिप इति स्मृतः ॥ २७ ॥

लडाईमें दुर्जय महामति निकुम्भ भूमिपर जन्म लेकर भूपालोंमें श्रेष्ठ देवाधिपके रूपमें प्रशंसित हुआ ॥ २७ ॥

शरभो नाम यस्तेषां दैतेयानां महासुरः।
पौरवो नाम राजर्षिः स बभूव नरेष्विह ॥ २८ ॥

उन दैत्योंमें जो शरभ नामक महासुर था, उसने पौरव नामक राजर्षि होकर मनुष्योंमें जन्म लिया था ॥ २८ ॥

द्वितीयः शलभस्तेषामसुराणां बभूव यः।
प्रह्लादो नाम बाह्लीकः स बभूव नराधिपः ॥ २९ ॥

जो उन असुरोंमें दूसरे शलभके नामसे प्रसिद्ध था, उसने प्रह्लाद नामसे बाह्लीक देशका राजा होकर जन्म लिया ॥ २९ ॥

चन्द्रस्तु दितिजश्रेष्ठो लोके ताराधिपोत्तमः।
ऋषिको नाम राजर्षिर्बभूव नृपसत्तमः ॥ ३० ॥

दितिपुत्रोंमें श्रेष्ठ और चन्द्रके समान सुन्दर चन्द्रने ऋषिके नामसे राजाओंमें श्रेष्ठ राजर्षि होकर जन्म लिया ॥ ३० ॥

मृतपा इति विख्यातो य आसीदसुरोत्तमः।
पश्चिमानूपकं विद्धि तं नृपं नृपसत्तम ॥ ३१ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! जो मृतपानामक प्रसिद्ध असुरोत्तम था, उसने पश्चिममें अनूप देशका भूपति होकर जन्म लिया ऐसा तुम जानो ॥ ३१ ॥

गविष्ठस्तु महातेजा यः प्रख्यातो महासुरः।
द्रुमसेन इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ॥ ३२ ॥

प्रख्यात महासुर महातजस्वी जो गविष्ठके नामसे प्रसिद्ध था, वह पृथ्वी पर राजा द्रुमसेनके स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ ३२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मयूर इति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः।
स विश्व इति विख्यातो बभूव पृथिवीपतिः ॥ ३३ ॥

जो श्रीमान् महासुर मयूरके नामसे प्रसिद्ध था, वह विश्व नामसे प्रसिद्ध राजा हुआ ॥३३॥

सुपर्ण इति विख्यातस्तस्मादवरजस्तु यः।
कालकीर्तिरिति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ॥ ३४ ॥

उसका छोटा भाई जो सुपर्णके नामसे प्रसिद्ध था, वह कालकीर्त्तिके नामसे धरती पर राजा होकर अवतीर्ण हुआ ॥ ३४ ॥

चन्द्रहन्तेति यस्तेषां कीर्तितः प्रवरोऽसुरः।
शुनको नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः ॥ ३५ ॥

उन आसुरोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ असुर जो चन्द्रहन्ताके नामसे प्रसिद्ध था, वह शुनक नाम राजर्षि हुआ ॥ ३५ ॥

विनाशनस्तु चन्द्रस्य य आख्यातो महासुरः।
जानकिर्नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः ॥ ३६ ॥

जो महासुर चन्द्रविनाशनके नामसे प्रसिद्ध था, उसने जानकि नामक प्रख्यात राजा होकर जन्म लिया ॥ ३६ ॥

दीर्घजिह्वस्तु कौरव्य य उक्तो दानवर्षभः।
काशिराज इति ख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥ ३७ ॥

हे कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! जो दानवोंमें श्रेष्ठ दीर्घजिह्व कहा गया है, वह पृथ्वीपर काशीराज नामक प्रसिद्ध राजा हुआ ॥ ३७ ॥

ग्रहं तु सुषुवे यं तं सिंही चन्द्रार्कमर्दनम्।
क्राथ इत्यभिविख्यातः सोऽभवन्मनुजाधिपः ॥ ३८ ॥

जिस चन्द्रसूर्यके ग्रसनेवाले ग्रहको सिंहीने उत्पन्न किया था, उस ग्रहने क्राथ नामक प्रसिद्ध राजा होकर जन्म लिया था ॥ ३८ ॥

अनायुषस्तु पुत्राणां चतुर्णां प्रवरोऽसुरः।
विक्षरो नाम तेजस्वी वसुमित्रोऽभवन्नृपः ॥ ३९ ॥

अनायुके चार पुत्रोंमें बडा पुत्र तेजस्वी विक्षर नामक असुर वसुमित्र नामक राजा हुआ ॥३९॥

द्वितीयो विक्षराद्यस्तु नराधिप महासुरः।
पांसुराष्ट्राधिप इति विश्रुतः सोऽभवन्नृपः ॥ ४० ॥

हे नराधिप ! विक्षरसे छोटा उसका दूसरा पुत्र जो महासुर था, उसने पांसु राष्ट्रके अधिपतिके रूपमें सुप्रसिद्ध राजा होकर जन्म लिया ॥ ४० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बलवीर इति ख्यातो यस्त्वासीदसुरोत्तमः ।
पौण्ड्रमत्स्यक इत्येव स बभूव नराधिपः ॥ ४१ ॥

जो असुरोत्तम बलवीरके नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह पौण्ड्रमत्स्यक नामक भूप हुआ ॥४१॥

वृत्र इत्यभिविख्यातो यस्तु राजन्महासुरः ।
मणिमान्नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! जो महासुर वृत्र नामसे विख्यात था, उसने मणिमान् नामक राजर्षि राजा होकर जन्म लिया ॥ ४२ ॥

क्रोधहन्तेति यस्तस्य बभूवावरजोऽसुरः ।
दण्ड इत्यभिविख्यातः स आसीन्नृपतिः क्षितौ ॥ ४३ ॥

उसका छोटा भाई जो असुर क्रोधहन्ता नामवाला था, वह पृथ्वी पर दण्ड नामक प्रसिद्ध राजा हुआ ॥ ४३ ॥

क्रोधवर्धन इत्येव यस्त्वन्यः परिकीर्तितः ।
दण्डधार इति ख्यातः सोऽभवन्मनुजेश्वरः ॥ ४४ ॥

क्रोधवर्धन नामक जो दूसरा असुर कहा जाता है वह दण्डधार नामक प्रख्यात राजा हुआ ॥ ४४ ॥

कालकायास्तु ये पुत्रास्तेषामष्टौ नराधिपाः ।
जज्ञिरे राजशार्दूल शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ४५ ॥

हे राजसिंह ! कालकाके जितने पुत्र थे, उनमें आठ सिंहके समान पराक्रमी राजा हुए ॥ ४५ ॥

मगधेषु जयत्सेनः श्रीमानासीत्स पार्थिवः
अष्टानां प्रवरस्तेषां कालेयानां महासुरः ॥ ४६ ॥

उन आठों कालेयोंमें बडा श्रीमान् महासुर जयत्सेन मगध देशका अधिपति हुआ ॥ ४६ ॥

द्वितीयस्तु ततस्तेषां श्रीमान्हरिहयोपमः ।
अपराजित इत्येव स बभूव नराधिपः ॥ ४७ ॥

उनमें देवराजके समान श्रीमान् दूसरा असुर अपराजित नामका राजा हुआ ॥ ४७ ॥

तृतीयस्तु महाराज महाबाहुर्महासुरः ।
निषादाधिपतिर्जज्ञे भुवि भीमपराक्रमः ॥ ४८ ॥

हे महाराज ! महाबाहु तीसरे महासुरने पृथ्वी पर भयंकर पराक्रमवाला होकर निषादाधिपतिके रूपमें जन्म लिया ॥ ४८ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेषामन्यतमो यस्तु चतुर्थः परिकीर्तितः।
श्रेणिमानिति विख्यातः क्षितौ राजर्षिसत्तमः ॥ ४९ ॥

उनमेंसे दूसरा, जो चौथा कहा गया है उसने पृथ्वी पर श्रेणिमान् नाम प्रसिद्ध राजर्षि होकर जन्म लिया ॥ ४९ ॥

पञ्चमस्तु बभूवैषां प्रवरो यो महासुरः।
महौजा इति विख्यातो बभूवेह परंतपः ॥ ५० ॥

उनमें श्रेष्ठ जो पांचवां महासुर था, उसने शत्रुओंको पीडित करनेवाले महौजाके नामसे प्रख्यात होकर जन्म लिया ॥ ५० ॥

षष्ठस्तु मतिमान्यो वै तेषामासीन्महासुरः।
अभीरुरिति विख्यातः क्षितौ राजर्षिसत्तमः ॥ ५१ ॥

उनमेंसे छठवां मतिमान् नामक जो महासुर था, वह क्षितिमण्डलमें प्रख्यात राजर्षिसत्तम अभीरु नामसे अवतीर्ण हुआ ॥ ५१ ॥

समुद्रसेनस्तु नृपस्तेषामेवाभवद्गुणात्।
विश्रुतः सागरान्तायां क्षितौ धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ ५२ ॥

उनमें सातवें असुरराजने समुद्रसेन नामसे समुद्रतक धरतीमें प्रख्यात धर्मार्थतत्त्व जाननेवाला नरेश होकर जन्म लिया ॥ ५२ ॥

बृहन्नामाष्टमस्तेषां कालेयानां परंतपः।
बभूव राजन्धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः ॥ ५३ ॥

हे नराधिप ! कालेयोंमेंसे आठवां असुर शत्रुओंका नाश करनेवाला बृहत् नामक सर्वभूतोंका हित करनेवाला राजा हुआ ॥ ५३ ॥

गणः क्रोधवशो नाम यस्ते राजन्प्रकीर्तितः।
ततः संजज्ञिरे वीराः क्षितावेह नराधिपाः ॥ ५४ ॥

हे राजन् ! क्रोधवश नामक जिन गणोंकी कथा तुमसे मैं कह चुका हूं, उन्होंने धरतीमें शूरवीर राजाओंका रूप धारण करके जन्म लिया ॥ ५४ ॥

नन्दिकः कर्णवेष्टश्च सिद्धार्थः कीटकस्तथा।
सुवीरश्च सुबाहुश्च महावीरोऽथ बाह्लिकः ॥ ५५ ॥

नन्दिक, कर्णवेष्ट, सिद्धार्थ और कीटक, सुवीर और सुबाहु, महावीर और बाह्लीक, ॥ ५५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्रोधो विचित्यः सुरसः श्रीमान्नीलश्च भूमिपः ।
वीरधामा च कौरव्य भूमिपालश्च नामतः ॥ ५६ ॥

हे कौरव ! क्रोध, विचित्य, सुरस, भूमिपति, श्रीमान् नील, वीरधामा, भूमिपाल ॥५६॥

दन्तवक्त्रश्च नामासीद्दुर्जयश्चैव नामतः ।
रुक्मी च नृपशार्दूलो राजा च जनमेजयः ॥ ५७ ॥

दन्तवक्त्र नामवाला तथा दुर्जय नामका, राजाओंमें सिंहके समान पराक्रमी रुक्मी, राजा जनमेजय, ॥ ५७ ॥

आषाढो वायुवेगश्च भूरितेजास्तथैव च ।
एकलव्यः सुमित्रश्च वाटधानोऽथ गोमुखः ॥ ५८ ॥

आषाढ, वायुवेग और उसी तरह भूरितेजा, एकलव्य, सुमित्र, वाटधान और गोमुख ॥५८॥

कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिस्तथैव च ।
श्रुतायुरुद्धवश्चैव बृहत्सेनस्तथैव च ॥ ५९ ॥

कारूषक राजा और उसी तरह क्षेमधूर्त्ति, श्रुतायुः, उद्धव और बृहत्सेन ॥ ५९ ॥

क्षेमोग्रतीर्थः कुहरः कलिङ्गेषु नराधिपः ।
मतिमांश्च मनुष्येन्द्र ईश्वरश्चेति विश्रुतः ॥ ६० ॥

क्षेम, अग्रतीर्थ, कलिङ्गराज कुहर, प्रशंसित मतिमान् और प्रसिद्ध मनुजेश ईश्वर ॥ ६० ॥

गणात्क्रोधवशादेवं राजपूगोऽभवत्क्षितौ ।
जातः पुरा महाराज महाकीर्तिर्महाबलः ॥ ६१ ॥

यह सब, हे महाराज ! अति कीर्तिमान् मति–मान् महाबली वीरोंमें श्रेष्ठ राजगण क्रोध-वश गणोंके अवतार भूमिपर हुए हैं ॥ ६१ ॥

यस्त्वासीद्देवको नाम देवराजसमद्युतिः ।
स गन्धर्वपतिर्मुख्यः क्षितौ जज्ञे नराधिपः ॥ ६२ ॥

देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी जो देवक नामका था, वह गन्धर्वपति नामक प्रधान नरेश होकर धरतीमें अवतीर्ण हुआ ॥ ६२ ॥

बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्देवर्षेर्विद्धि भारत ।
अंशाद्द्रोणं समुत्पन्नं भारद्वाजमयोनिजम् ॥ ६३ ॥

हे भारत ! अति कीर्तिमान् देवर्षि बृहस्पतिके अंशसे बिना योनिके भरद्वाज पुत्र द्रोण उत्पन्न हुए ऐसा समझो ॥ ६३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धन्विनां नृपशार्दूल यः स सर्वास्त्रवित्तमः।
बृहत्कीर्तिर्महातेजाः संजज्ञे मनुजेष्विह ॥ ६४ ॥

राजाओंमें सिंहके समान पराक्रमी जनमेजय! जो सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष, धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, अति कीर्तिमान् और महातेजस्वी हैं वे मनुष्योंमें इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए ॥ ६४ ॥

धनुर्वेदे च वेदे च यं तं वेदविदो विदुः।
वरिष्ठमिन्द्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ॥ ६५ ॥

वेदोंको जाननेवाले विद्वान् जिनको धनुर्वेद और वेदमें पण्डित, इन्द्रके समान कार्य करनेवाला और निज कुलको बढानेवाला तथा सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं, उन नरश्रेष्ठ द्रोणने बृहस्पतिके अंशसे जन्म लिया ॥ ६५ ॥

महादेवान्तकाभ्यां च कामात्क्रोधाच्च भारत।
एकत्वमुपपन्नानां जज्ञे शूरः परंतपः ॥ ६६ ॥
अश्वत्थामा महावीर्यः शत्रुपक्षक्षयंकरः।
वीरः कमलपत्राक्षः क्षितावासीन्नराधिप ॥ ६७ ॥

हे राजन्! महादेव, अन्तक, काम और क्रोध इन चारोंके सम्मिलित अंशसे शत्रुपक्षके नाशक शूरवीर, शत्रुपक्षको नष्ट करनेवाले कमलपत्रके समान सुन्दर आंखोंवाले अति वीर्यवान् अश्वत्थामा पृथ्वी पर उत्पन्न हुए ॥ ६६–६७ ॥

जज्ञिरे वसवस्त्वष्टौ गङ्गायां शन्तनोः सुताः।
वसिष्ठस्य च शापेन नियोगाद्वासवस्य च ॥ ६८ ॥

वसिष्ठके शाप और इन्द्रकी आज्ञाके कारण, अष्टवसुओंने शान्तनुके वीर्यसे गंगाके गर्भमें जन्म लिया ॥ ६८ ॥

तेषामवरजो भीष्मः कुरूणामभयंकरः।
मतिमान्वेदविद्वाग्मी शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥ ६९ ॥

उनमें सबसे छोटे भीष्म बुद्धिमान्, वेदज्ञ, सद्वक्ता, शत्रुकुलको नष्ट करनेवाले और कौरवोंको अभय देनेवाले थे ॥ ६९ ॥

जामदग्न्येन रामेण यः स सर्वविदां वरः।
अयुध्यत महातेजा भार्गवेण महात्मना ॥ ७० ॥

वे जो सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ भीष्म थे, उन दक्ष महातेजस्वी महात्माने जमदग्निके पुत्र महात्मा, भार्गव, परशुरामसे युद्ध किया ॥ ७० ॥

यस्तु राजन्कृपो नाम ब्रह्मर्षिरभवत्क्षितौ।
रुद्राणां तं गणाद्विद्धि संभूतमतिपौरुषम् ॥ ७१ ॥

हे राजन्! कृपके नामसे जो ब्रह्मर्षि पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए उन अत्यन्त पराक्रमीको तुम रुद्रोंके गणसे उत्पन्न हुआ जानो ॥ ७१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शकुनिर्नाम यस्त्वासीद्राजा लोके महारथः ।
द्वापरं विद्धि तं राजन्संभूतमरिमर्दनम् ॥ ७२ ॥

हे राजन् ! संसारमें जिस महारथी शकुनिने जन्म लिया था, उस शत्रुनाशकको द्वापरके अंशसे पैदा हुआ जानो ॥ ७२ ॥

सात्यकिः सत्यसन्धस्तु योऽसौ वृष्णिकुलोद्वहः ।
पक्षात्स जज्ञे मरुतां देवानामरिमर्दनः ॥ ७३ ॥

वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ शत्रुओंको मथनेवाले सत्यशील, जो यह सात्यकि थे वे मरुत् देवोंके गणसे उत्पन्न हुए थे ॥ ७३ ॥

द्रुपदश्चापि राजर्षिस्तत एवाभवद्गणात् ।
मानुषे नृप लोकेऽस्मिन्सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ७४ ॥

हे नृप ! सब अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राजर्षि द्रुपद उन्हीं देवोंके गणसे इस भूलोकमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ७४ ॥

ततश्च कृतवर्माणं विद्धि राजञ्जनाधिपम् ।
जातमप्रतिकर्माणं क्षत्रियर्षभसत्तमम् ॥ ७५ ॥

हे राजन् । इसके बाद अनुपम कर्म करनेवाले, क्षत्रियकुलमें उत्पन्न श्रेष्ठ राजाओंमें भी श्रेष्ठ राजा कृतवर्माको भी उन्हीं देवोंसे उत्पन्न हुआ हुआ जानो ॥ ७५ ॥

मरुतां तु गणाद्विद्धि संजातमरिमर्दनम् ।
विराटं नाम राजर्षिं परराष्ट्रप्रतापनम् ॥ ७६ ॥

विपक्ष राज्यको पीडा पहुंचानेवाले शत्रुओंको मथनेहारे नरेश विराट्को भी उन्हीं मरुद्गणके अंशसे अवतीर्ण हुआ हुआ जानो ॥ ७६ ॥

अरिष्टायास्तु यः पुत्रो हंस इत्यभिविश्रुतः ।
स गन्धर्वपतिर्जज्ञे कुरुवंशविवर्धनः ॥ ७७ ॥

धृतराष्ट्र इति ख्यातः कृष्णद्वैपायनादपि ।
दीर्घबाहुर्महातेजाः प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
मातुर्दोषादृषेः कोपादन्ध एव व्यजायत ॥ ७८ ॥

अरिष्टाका हंस नामसे प्रसिद्ध गन्धर्वोंका स्वामी जो एक पुत्र था, वह इस पृथ्वीपर कृष्ण द्वैपायनके वीर्यसे लम्बी लम्बी भुजाओंवाले, महातेजस्वी, कुरुओंके वंशको बढानेवाले अन्धे राजा धृतराष्ट्रके रूपमें पैदा हुआ। वह धृतराष्ट्र माताके दोष और ऋषिके क्रोधसे जन्मसे ही अन्धा पैदा हुआ ॥ ७७–७८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अत्रेस्तु सुमहाभागं पुत्रं पुत्रवतां वरम्।
विदुरं विद्धि लोकेऽस्मिञ्जातं बुद्धिमतां वरम् ॥ ७९ ॥

अत्रिके पुत्रवालोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्र उत्तम भाग्यवाले पुत्र धर्मको इस लोकमें बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरके रूपमें उत्पन्न हुआ हुआ समझो ॥ ७९ ॥

कलेरंशात्तु संजज्ञे भुवि दुर्योधनो नृपः।
दुर्बुद्धिर्दुर्मतिश्चैव कुरूणामयशस्करः ॥ ८० ॥
जगतो यः स सर्वस्य विद्विष्टः कलिपूरुषः।
यः सर्वां घातयामास पृथिवीं पुरुषाधमः।
येन वैरं समुद्दीप्तं भूतान्तकरणं महत् ॥ ८१ ॥

जो कलि पुरुष सारे जगत्से द्वेष करनेवाला था, और पुरुषोंमें सबसे नीच जिसने सारी पृथ्वीका विनाश करवा दिया था, तथा जिसने मनुष्योंमें सब प्राणियोंके विनाश करनेवाली दुश्मनी पैदा कर दी थी, ऐसा दुर्बुद्धि और दुष्ट मतिवाला तथा कुरुओंके यशको क्षीण करनेवाला राजा दुर्योधन इस पृथ्वीपर कलिके अंशसे पैदा हुआ ॥ ८०-८१ ॥

पौलस्त्या भ्रातरः सर्वे जज्ञिरे मनुजेष्विह।
शतं दुःशासनादीनां सर्वेषां क्रूरकर्मणाम् ॥ ८२ ॥

सभी पौलस्त्य भाइयोंने इस मर्त्यलोकके मध्यमें क्रूर कर्म करनेवाले दुःशासन आदि सौ भाईयोंके रूपमें जन्म लिया ॥ ८२ ॥

दुर्मुखो दुःसहश्चैव ये चान्ये नानुशब्दिताः
दुर्योधनसहायास्ते पौलस्त्या भरतर्षभ ॥ ८३ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! दुर्मुख, दुःसह आदि जिनके नाम कहे गये और जिनके नहीं कहे गये हैं वे सभी पौलस्त्योंके अंश और दुर्योधनके सहायक थे ॥ ८३ ॥

धर्मस्यांशं तु राजानं विद्धि राजन्युधिष्ठिरम्।
भीमसेनं तु वातस्य देवराजस्य चार्जुनम् ॥ ८४ ॥
अश्विनोस्तु तथैवांशौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि।
नकुलः सहदेवश्च सर्वलोकमनोहरौ ॥ ८५ ॥

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिरको धर्मका अंश, भीमसेनको वायुका अंश, अर्जुनको देवराज इन्द्रका, उसी प्रकार संसारमें अपने सुन्दर रूपमें अद्वितीय तथा सब लोगोंके मनोंको हरनेवाले नकुल सहदेवको अश्विनीकुमारका अंश समझो ॥ ८४-८५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यः सुवर्चा इति ख्यातः सोमपुत्रः प्रतापवान् ।
अभिमन्युर्बृहत्कीर्तिरर्जुनस्य सुतोऽभवत् ॥ ८६ ॥

जो सुवर्चा नामक प्रख्यात प्रतापी सोमका पुत्र था, वह अर्जुनके पुत्र महाकीर्तिमान् अभिमन्युके स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ ८६ ॥

अग्नेरंशं तु विद्धि त्वं धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
शिखण्डिनमथो राजन्स्त्रीपुंसं विद्धि राक्षसम् ॥ ८७ ॥

महारथी धृष्टद्युम्नको तुम अग्निके अंशसे उत्पन्न हुआ जानो । हे राजन् ! जो शिखण्डी पहिले कन्या थे, उन्हें राक्षसके अंशसे जन्म लिया हुआ जानो ॥ ८७ ॥

द्रौपदेयाश्च ये पञ्च बभूवुर्भरतर्षभ ।
विश्वेदेवगणान्राजंस्तान्विद्धि भरतर्षभ ॥ ८८ ॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! जो द्रौपदीके पांच पुत्र हुए, हे राजन ! उन्हें तुम विश्वदेवगण जानो ॥ ८८ ॥

आमुक्तकवचः कर्णो यस्तु जज्ञे महारथः ।
दिवाकरस्य तं विद्धि देवस्यांशमनुत्तमम् ॥ ८९ ॥

कवचको छोडकर जो महारथी कर्ण पैदा हुआ था, उसे तुम देव सूर्यका उत्तम अंश जानो ॥ ८९ ॥

यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः ।
तस्यांशो मानुषेष्वासीद्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ९० ॥

जो सनातन देवोंके देव श्रीनारायण हैं, उनके अंशसे मर्त्यलोकमें प्रतापी वासुदेव कृष्ण अवतीर्ण हुए ॥ ९० ॥

शेषस्यांशस्तु नागस्य बलदेवो महाबलः ।
सनत्कुमारं प्रद्युम्नं विद्धि राजन्महौजसम् ॥ ९१ ॥

महाबली बलदेवने शेषनागके अंशसे जन्म लिया । हे राजन् ! बडे ओजस्वी सनत्कुमारको प्रद्युम्नके स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ जानो ॥ ९१ ॥

एवमन्ये मनुष्येन्द्र बहवोंऽशा दिवौकसाम् ।
जज्ञिरे वसुदेवस्य कुले कुलविवर्धनाः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार दूसरे देवोंके बहुतसे अंशोंने वसुदेवके वंशमें वंश बढानेवाले अगणित नरोंके स्वरूपमें जन्म लिया ॥ ९२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गणस्त्वप्सरसां यो वै मया राजन्प्रकीर्तितः।
तस्य भागः क्षितौ जज्ञे नियोगाद्वासवस्य च ॥ ९३ ॥

हे राजन्! मैंने जिन सब अप्सराओंके गणकी कथा कही है, उस गणका भाग भी देवराजकी आज्ञासे भूतलपर उत्पन्न हुआ ॥ ९३ ॥

तानि षोडश देवीनां सहस्राणि नराधिप।
बभूवुर्मानुषे लोके नारायणपरिग्रहः ॥ ९४ ॥

हे राजन्! वे सोलह हजार देवियां मर्त्यलोकमें प्रगट होकर नारायणकी पत्नियां बनीं ॥९४॥

श्रियस्तु भागः संजज्ञे रत्यर्थं पृथिवीतले।
द्रुपदस्य कुले कन्या वेदिमध्यादनिन्दिता ॥ ९५ ॥

लक्ष्मीका भाग प्रेमवश पृथ्वीपर द्रुपदके कुलमें अनिन्दित कन्या रूपमें वेदीमेंसे प्रकट हुआ ॥ ९५ ॥

नातिह्रस्वा न महती नीलोत्पलसुगन्धिनी।
पद्मायताक्षी सुश्रोणी असितायतमूर्धजा ॥ ९६ ॥
सर्वलक्षणसंपन्ना वैडूर्यमणिसंनिभा।
पञ्चानां पुरुषेन्द्राणां चित्तप्रमथिनी रहः ॥ ९७ ॥

रूपवती द्रौपदी न तो बहुत लम्बी थी और न बहुत नाटी, वह नीले कमलकी सुगंधसे सुगंधित थी, वह काले घुंघराले केशोंसे सुहावनी, पद्मके समान प्रशस्त नेत्रवती, सुन्दर नितम्बोंवाली, सब लक्षणोंसे संपन्न वैडूर्यमणिसी सुन्दर और सिंहके समान पराक्रमी पांच पुरुषोंके मनको एकान्तमें मोहित करनेवाली थी ॥ ९६–९७ ॥

सिद्धिर्धृतिश्च ये देव्यौ पञ्चानां मातरौ तु ते।
कुन्ती माद्री च जज्ञाते मतिस्तु सुबलात्मजा ॥ ९८ ॥

जो सिद्धि और धृति थीं इन दो देवियोंने पांचोंकी माता कुन्ती और माद्रीके स्वरूपमें जन्म लिया था। मति देवीने सुबलकन्या गान्धारीके स्वरूपमें जन्म लिया ॥ ९८ ॥

इति देवासुराणां ते गन्धर्वाप्सरसां तथा।
अंशावतरणं राजन्राक्षसानां च कीर्तितम् ॥ ९९ ॥
ये पृथिव्यां समुद्भूता राजानो युद्धदुर्मदाः।
महात्मानो यदूनां च ये जाता विपुले कुले ॥ १०० ॥

जो युद्धमें भयंकर पराक्रम करनेवाले राजाओंके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे, तथा जो महात्मा विशाल यदुकुलमें जन्मे थे, उन देवों, असुरों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा राक्षसोंके अंशावतरणकी कथायें, हे राजन्! मैं पूरी तरहसे सुना चुका हूँ ॥ ९९–१०० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धन्यं यशस्यं पुत्रीयमायुष्यं विजयावहम् ।
इदमंशावतरणं श्रोतव्यमनसूयता ॥ १०१ ॥

यह अंशावतरणकी कथा धन, यश, पुत्र, आयु और जय देनेवाली है, अतः द्वेष छोडकर यह अंशावतरणकी कथा सुननी चाहिए ॥ १०१ ॥

अंशावतरणं श्रुत्वा देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
प्रभवाप्ययवित्प्राज्ञो न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥ १०२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ २३११ ॥ समाप्तमादिवंशावतरणपर्व ॥

ज्ञानीलोग, देव, गन्धर्व, राक्षसोंके अंशावतरणकी कथा सुननेसे जन्म मृत्युके वृत्तान्तसे विदित होकर विपत्तिके समय शोकादिके वशमें नहीं होते ॥ १०२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ २३११ ॥ आदिवंशावतरणपर्व समाप्त ॥

: ६२ :

जनमेजय उवाच

त्वत्तः श्रुतमिदं ब्रह्मन्देवदानवरक्षसाम् ।
अंशावतरणं सम्यग्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! आपसे देवों, दानवों, राक्षसों, गन्धर्वों और अप्सराओंके अंशावतरणकी कथा अच्छी प्रकार सुन चुका ॥ १ ॥

इमं तु भूय इच्छामि कुरूणां वंशमादितः ।
कथ्यमानं त्वया विप्र विप्रर्षिगणसंनिधौ ॥ २ ॥

हे विप्र ! अब इन ब्राह्मणोंके सन्मुख आपके द्वारा कहे जाते हुए कुरुओंके चरित्रको मैं फिर शुरूसे सुनना चाहता हूं ॥ २ ॥

वैशंपायन उवाच

पौरवाणां वंशकरो दुःषन्तो नाम वीर्यवान् ।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता भरतसत्तम ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भरतश्रेष्ठ ! दुःषन्त नामक वीर्यवान् राजा कौरवोंका आदिपुरुष था । वह चार समुद्रोंतककी धरतीका पालक एवं रक्षक था ॥ ३ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चतुर्भागं भुवः कृत्स्नं स भुङ्क्ते मनुजेश्वरः।
समुद्रावरणांश्चापि देशान्स समितिंजयः ॥ ४ ॥
आम्लेच्छाटविकान्सर्वान्स भुङ्क्ते रिपुमर्दनः।
रत्नाकरसमुद्रान्तांश्चातुर्वर्ण्यजनावृतान् ॥ ५ ॥

सारी पृथ्वीके चौथे भागका वह राजा उपभोग करता था और वह युद्धविजयी राजा समुद्रोंसे घिरे हुए देशों पर शासन करता था। साथ ही वह शत्रुओंको नष्ट करनेवाला राजा दुःषन्त म्लेच्छ देशतक तथा चारों वर्णोंके मनुष्योंसे युक्त रत्नोंके घर समुद्रतककी पृथ्वीका उपभोग करता था ॥ ४-५ ॥

न वर्णसंकरकरो नाकृष्यकरकृज्जनः।
न पापकृत्कश्चिदासीत्तस्मिन्राजनि शासति ॥ ६ ॥

उस राजाके शासनके कालमें वर्णसंकर नहीं थे, प्रजाको खेतीकरके अनाज उपजाना नहीं पडता था और कोई पाप कर्म करनेवाला नहीं था ॥ ६ ॥

धर्म्यां रतिं सेवमाना धर्मार्थावभिपेदिरे।
तदा नरा नरव्याघ्र तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥ ७ ॥

हे नरव्याघ्र! दुःषन्त जब नगरोंका स्वामी था, तब सब लोग धर्ममें स्वयं प्रेमसे नियुक्त रहकर धर्म और अर्थका उपार्जन करते थे ॥ ७ ॥

नासीच्चोरभयं तात न क्षुधाभयमण्वपि।
नासीद्व्याधिभयं चापि तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥ ८ ॥

हे तात! उस समय उस राजाके शासनकालमें चोरीका भय नहीं था, रोगका भय और क्षुधाका भय जरासा भी नहीं था ॥ ८ ॥

स्वैर्धर्मै रेमिरे वर्णा दैवे कर्मणि निःस्पृहाः।
तमाश्रित्य महीपालमासंश्चैवाकुतोभयाः ॥ ९ ॥

उन दिनों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने अपने धर्ममें लगे रहते थे, वृष्टि आदिके निमित्त किसीको दैवीकर्म नहीं करना पडता था। उस भूपालके आश्रयमें सब लोग निर्भय होकर रहते थे ॥ ९ ॥

कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि फलवन्ति च।
सर्वरत्नसमृद्धा च मही वसुमती तदा ॥ १० ॥

उन दिनों बादल उचित समयमें जलवृष्टि करते थे, शस्य फलयुक्त होते थे और धरती धन और भांति भांतिके रत्नोंसे भरी और समृद्ध थी ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स चाद्भुतमहावीर्यो वज्रसंहननो युवा ।
उद्यम्य मन्दरं दोर्भ्यां हरेत्सवनकाननम् ॥ ११ ॥

वज्रसे भी कठिन देहधारी विचित्र महावीर्यवान् वह युवा दुःपन्त निज भुजबलसे वनोपवन सहित मन्दरपर्वतको उखाडकर वहन कर सकता था ॥ ११ ॥

धनुष्यथ गदायुद्धे त्सरुप्रहरणेषु च ।
नागपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च बभूव परिनिष्ठितः ॥ १२ ॥

वह धनुर्युद्धमें, गदायुद्धमें और भाला फेंकनेमें दक्ष और हाथीकी पीठ और घोडेकी पीठपर चढनेमें बडा निपुण था ॥ १२ ॥

बले विष्णुसमश्चासीत्तेजसा भास्करोपमः ।
अक्षुब्धत्वेऽर्णवसमः सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ १३ ॥

वह बलमें विष्णुवत्, तेजमें सूर्यसदृश, गांभीर्यमें समुद्रके समान और सहनशीलतामें धरतीकी भांति था ॥ १३ ॥

संमतः स महीपालः प्रसन्नपुरराष्ट्रवान् ।
भूयो धर्मपरैर्भावैर्विदितं जनमावसत् ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ २३२५ ॥

पुरवासी और दूसरी प्रजाओंके उस पर प्रसन्न रहनेके कारण वह साधारण जनोंका प्रेमपात्र था। वह महीपाल दुःपन्त आनन्दपूर्वक धर्मानुसार प्रजाओंका शासन किया करता था ॥१४॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ २३२५ ॥

: ६३ :

वैशंपायन उवाच

स कदाचिन्महाबाहुः प्रभूतबलवाहनः ।
वनं जगाम गहनं हयनागशतैर्वृतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– एक बार सैंकडों घोडों और हाथियोंसे घिरा हुआ वह महाबाहु दुःपन्त अगणित सेना और अनेक वाहन साथमें लेकर, ॥ १ ॥

खड्गशक्तिधरैर्वीरैर्गदामुसलपाणिभिः ।
प्रासतोमरहस्तैश्च ययौ योधशतैर्वृतः ॥ २ ॥

तथा खड्ग, शक्ति, गदा, मुसल, प्रास और तोमरादि अस्त्र लेकर चलनेवाले सैंकडों योद्धाओंसे घिरा हुआ वह जंगल गया ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिंहनादैश्च योधानां शङ्खदुन्दुभिनिस्वनैः।
रथनेमिस्वनैश्चापि सनागवरबृंहितैः ॥ ३ ॥
हेषितस्वनमिश्रैश्च क्ष्वेडितास्फोटितस्वनैः।
आसीत्किलकिलाशब्दस्तस्मिन्गच्छति पार्थिवे ॥ ४ ॥

उस पृथ्वीनाथके चलते समय योद्धाओंकी सिंहके समान गरजना, शंख और नगाडोंकी ध्वनि, रथोंके पहियोंकी आहट, हाथियोंकी चिंघाड, घोडोंकी हिनहिनाहट और भांति भांतिके अस्त्र और वेषसे सजी हुई सेनाकी ललकार– यह सब अप्रगट ध्वनि मिलाकर केवल किल-किलाहट होने लगी ॥ ३–४ ॥

प्रासादवरशृङ्गस्थाः परया नृपशोभया।
ददृशुस्तं स्त्रियस्तत्र शूरमात्मयशस्करम् ॥ ५ ॥

नगरकी नारियां अच्छे अच्छे गृहोंकी अटारियोंपर चढकर अत्युत्तम राजयात्राकी शोभासे युक्त शूर, यशस्वी उक्त राजाको देखने लगीं ॥ ५ ॥

शक्रोपममरिमित्रघ्नं परवारणवारणम्।
पश्यन्तः स्त्रीगणास्तत्र शस्त्रपाणिं स्म मेनिरे ॥ ६ ॥

स्त्रियां इन्द्रके समान शत्रुनाशक, शत्रुपक्षके हाथियोंको नष्ट करनेवाले उस पृथ्वीनाथको निहार कर शस्त्रधारी योद्धा समझने लगीं ॥ ६ ॥

अयं स पुरुषव्याघ्रो रणेऽद्भुतपराक्रमः।
यस्य बाहुबलं प्राप्य न भवन्त्यसुहृद्गणाः ॥ ७ ॥
इति वाचो ब्रुवन्त्यस्ताः स्त्रियः प्रेम्णा नराधिपम्।
तुष्टुवुः पुष्पवृष्टीश्च ससृजुस्तस्य मूर्धनि ॥ ८ ॥

" यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा रणभूमिमें अद्भुत पराक्रमी है, जिनके भुजबलसे शत्रु नष्ट हो जाते हैं। " प्रेमसे यह कहती हुई रमणीगणने राजाकी प्रशंसा की और वे उसके शिरपर फूल वर्षाने लगीं ॥ ७–८ ॥

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रैः स्तूयमानः समन्ततः।
निर्ययौ परया प्रीत्या वनं मृगजिघांसया ॥ ९ ॥

दुःषन्त सब स्थानोंमें चारों ओर ब्राह्मणोंसे प्रशंसित होकर मृगयाके लिये अति प्रसन्नचित्तसे वनको पधारा ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुदूरमनुजग्मुस्तं पौरजानपदास्तदा ।
न्यवर्तन्त ततः पश्चादनुज्ञाता नृपेण ह ॥ १० ॥

पुरवासी और जनपदवासी इस प्रकार बडी दूरतक राजाके पीछे गए, बादमें राजाकी आज्ञा पाकर वहांसे लौट आये ॥ १० ॥

सुपर्णप्रतिमेनाथ रथेन वसुधाधिपः ।
महीमापूरयामास घोषेण त्रिदिवं तथा ॥ ११ ॥

वह पृथ्वीका स्वामी दुःषन्त गरुडकी आकृतिवाले रथसे पृथ्वीको और रथके पहियोंकी घर घराहटसे मिले हुए कोलाहलसे आकाश मण्डलको भरने लगा ॥ ११ ॥

स गच्छन्ददृशे धीमान्नन्दनप्रतिमं वनम् ।
बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसंकुलम् ॥ १२ ॥
विषमं पर्वतप्रस्थैरश्मभिश्च समावृतम् ।
निर्जलं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम् ।
मृगसंघैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः ॥ १३ ॥

धीमान् राजा दुःषन्तने जाते समय बेल, खैर, मदारसे व्याप्त तथा कैथके वृक्षोंसे घिरे हुए पहाडोंके कारण ऊंचेनीचे, पत्थरोंसे भरपूर, जल और मनुष्योंसे रहित, बहुयोजन तक फैले हुए और मृग, सिंहों तथा दूसरे भयानक वनैले जीवोंसे भरे हुए नन्दनवनके समान एक वनको देखा ॥ १२-१३ ॥

तद्वनं मनुजव्याघ्रः सभृत्यबलवाहनः ।
लोडयामास दुःषन्तः सूदयन्विविधान्मृगान् ॥ १४ ॥

नौकर और सेनासे युक्त उस राजाने बहुतसे विविध मृगोंको मारते हुए उस वनको मथ दिया ॥ १४ ॥

बाणगोचरसंप्राप्तांस्तत्र व्याघ्रगणान्बहून् ।
पातयामास दुःषन्तो निर्बिभेद च सायकैः ॥ १५ ॥

अपने बाणके लक्ष्यमें आए हुए अगणित व्याघ्रोंको बींधके धरती पर गिराया और अपने बाणोंसे उन्हें मार दिया ॥ १५ ॥

दूरस्थान्सायकैः कांश्चिदभिनत्स नरर्षभः ।
अभ्याशमागतांश्चान्यान्खड्गेन निरकृन्तत ॥ १६ ॥

वह दूर दूरके मृगोंको बाणोंसे बींधने लगा और निकट आए हुये हिरणोंको खड्गोंसे काटने लगा ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कांश्चिदेणान्स निर्जघ्ने शक्त्या शक्तिमतां वरः।
गदामण्डलतत्त्वज्ञश्चचारामितविक्रमः ॥ १७ ॥

और उस शक्तिवानोंमें श्रेष्ठ पुरुषने किन्हीं किन्हीं मृगोंको शक्तिसे नष्ट किया। गदायुद्धमें दक्ष अतुल विक्रमी वह भूपाल चारों ओर घूमने लगा ॥ १७ ॥

तोमरैरसिभिश्चापि गदामुसलकर्षणैः।
चचार स विनिघ्नन्वै वन्यांस्तत्र मृगद्विजान् ॥ १८ ॥

तोमर, तलवार, गदा, मूसल चलाता हुआ वह राजा दुःषन्त भांति भांतिके वनैले मृग और पक्षियोंको मारकर घूमने लगा ॥ १८ ॥

राज्ञा चाद्भुतवीर्येण योधैश्च समरप्रियैः।
लोड्यमानं महारण्यं तत्यजुश्च महामृगाः ॥ १९ ॥

आश्चर्यकारक वीर्यसे सम्पन्न राजा और युद्धको पसन्द करनेवाली सेनाओंके द्वारा वह भारी वन हिलोंडे जानेसे सब बडे बडे हिरण उस जंगलको छोडकर भागने लगे ॥ १९ ॥

तत्र विद्रुतसंघानि हतयूथपतीनि च।
मृगयूथान्यथौत्सुक्याच्छब्दं चक्रुस्ततस्ततः ॥ २० ॥

समूहके तितर बितर हो जाने और यूथपतिके मार दिए जानेके कारण मृगदल शोचयुक्त हृदयसे कोलाहल करने लगे ॥ २० ॥

शुष्कां चापि नदीं गत्वा जलनैराश्यकर्शिताः।
व्यायामक्लान्तहृदयाः पतन्ति स्म विचेतसः ॥ २१ ॥

मृग थके मादे होकर जल पीनेके लिये सूखी नदीमें जाकर और वहां पानी न मिलनेके कारण निराश होकर चेतनासे रहित होकर भूमि पर गिरने लगे ॥ २१ ॥

क्षुत्पिपासापरीताश्च श्रान्ताश्च पतिता भुवि।
केचित्तत्र नरव्याघ्रैरभक्ष्यन्त बुभुक्षितैः ॥ २२ ॥

मृगदलके भूख प्यासके मारे थके मादे होकर धरती पर गिर जाने पर पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी योधा आकर उनको खाने लगे ॥ २२ ॥

केचिदग्निमथोत्पाद्य समिध्य च वनेचराः।
भक्षयन्ति स्म मांसानि प्रकुट्य विधिवत्तदा ॥ २३ ॥

वनमें विचरनेवाले कुछ सैनिक तो अग्निको पैदा कर एवं उसे प्रदीप्त करके उन हिरणोंके मांसोंको कूटपीस कर और यथाविधि पकाकर खा गए ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र केचिद्गजा मत्ता बलिनः शस्त्रविक्षताः ।
संकोच्याग्रकरान्भीताः प्रद्रवन्ति स्म वेगिताः ॥ २४ ॥

उस वनमें कुछ महाबली मत्त हाथी अस्त्रोंसे घायल हो भयसे सूंडके अगले भागको सिकोड करके वेगसे भागने लगे ॥ २४ ॥

शकृन्मूत्रं सृजन्तश्च क्षरन्तः शोणितं बहु ।
वन्या गजवरास्तत्र ममृदुर्मनुजान्बहून् ॥ २५ ॥

कुछ वनैले हाथियोंने मलमूत्र छोडते और रक्त गिराते हुए तथा भागते हुए अगणित लोगोंको कुचल डाला ॥ २५ ॥

तद्वनं बलमेघेन शरधारेण संवृतम् ।
व्यरोचन्महिषाकीर्णं राज्ञा हतमहामृगम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ २३५१ ॥

राजाके द्वारा मारे गए हिरणों और भैंसोंसे व्याप्त हुए उस वनने सेनारूपी बादल और बाणधारारूपी जलधारासे युक्त होकर अपूर्व शोभा धारण की ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तिरेसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ २३५१ ॥

: ६४ :

वैशम्पायन उवाच

ततो मृगसहस्राणि हत्वा विपुलवाहनः ।
राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश ह ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनेक वाहनोंसे सम्पन्न वह राजा दुःषन्त सहस्रों मृग मारकर मृगोंका पीछा करता हुआ दूसरे वनमें जा घुसा ॥ १ ॥

एक एवोत्तमबलः क्षुत्पिपासासमन्वितः ।
स वनस्यान्तमासाद्य महदीरिणमासदत् ॥ २ ॥

वह अकेला ही अति बलवान होनेपर भी थककर और भूख प्यासके मारे विकल होकर वनको पारकर एक बडे भारी मैदानमें जा पहुंचा ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्राप्यतीत्य नृपतिरुत्तमाश्रमसंयुतम् ।
मनःप्रह्लादजननं दृष्टिकान्तमतीव च ।
शीतमारुतसंयुक्तं जगामान्यन्महद्वनम् ॥ ३ ॥

भूपाल उस मैदानको भी पारकर सुन्दर आश्रमसे युक्त, चित्तको आनंद देनेवाले और मनोहर तथा शीत हवासे युक्त दूसरे एक वनमें जा पहुंचा ॥ ३ ॥

पुष्पितैः पादपैः कीर्णमतीव सुखशाद्वलम् ।
विपुलं मधुरारावैर्नादितं विहगैस्तथा ॥ ४ ॥

वहां वृक्ष खिले हुए फूलोंसे सजे हुए थे और हरी घाससे धरती युक्त थी, मीठी बोली बोलनेवाले पक्षियोंकी ध्वनि वनमें शब्द भर रही थी ॥ ४ ॥

प्रवृद्धविटपैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ।
षट्पदाघूर्णितलतं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥ ५ ॥

वहां बडी बडी शाखाओं और ठण्डी छांहसे युक्त—वृक्षोंसे चारों दिशा घिरी हुई थीं; वह वन मधुलोभी भंवरोंसे युक्त लताओंसे सम्पन्न तथा अति सुन्दर शोभासे युक्त था ॥ ५ ॥

नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कण्टकी ।
षट्पदैर्वाप्यनाकीर्णस्तस्मिन्वै काननेऽभवत् ॥ ६ ॥

उस वनमें कोई भी वृक्ष फूल और फलोंसे रहित न था और नाही कोई वृक्ष कांटोंसे जकडा हुआ था और भंवरोंसे न घिरा हुआ भी कोई वृक्ष नहीं था ॥ ६ ॥

विहगैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव च ।
सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षैरतीव सुखशाद्वलम् ।
मनोरमं महेष्वासो विवेश वनमुत्तमम् ॥ ७ ॥

बडा धनुर्धारी दुःषन्त पक्षियोंके कलरवोंसे पूर्ण, फूलोंसे सजेसजाये, मनोहर, सब ऋतुओंके फूलोंसे सुशोभित तथा सुन्दर घासवाले उस उत्तम वनमें जा घुसा ॥ ७ ॥

मारुतागलितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशालिनः ।
पुष्पवृष्टिं विचित्रां स्म व्यसृजंस्ते पुनः पुनः ॥ ८ ॥

तब हवासे डोलते हुए फूलोंवाले वृक्षोंने बार बार सुन्दर सुन्दर फूल वर्षाये ॥ ८ ॥

दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पक्षिभिर्मधुरस्वरैः ।
विरेजुः पादपास्तत्र विचित्रकुसुमाम्बराः ॥ ९ ॥

वृक्ष अनेक प्रकारके फूलरूपी वस्त्र पहनकर पक्षियोंकी आकाशतक पहुंचनेवाली मीठी बोलीसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेषां तत्र प्रवालेषु पुष्पभारावनामिषु ।
रुवन्ति रावं विहगाः षट्पदैः सहिता मृदु ॥ १० ॥

फूलोंके भारसे नीचे सिर किये उन वृक्षोंके नये पल्लवोंपर बैठकर मधुलोभी भौंरोंके साथ पक्षी मीठे स्वरसे गीत गा रहे थे ॥ १० ॥

तत्र प्रदेशांश्च बहून्कुसुमोत्करमण्डितान् ।
लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ।
संपश्यन्स महातेजा बभूव मुदितस्तदा ॥ ११ ॥

महातेजस्वी दुःषन्त उस स्थानमें फूलोंसे सजे, नाना प्रदेश और हृदयमें आनन्द बढानेवाले लतामण्डपोंको देखकर अति प्रसन्न हुआ ॥ ११ ॥

परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमाचितैः ।
अशोभत वनं तत्तैर्महेन्द्रध्वजसंनिभैः ॥ १२ ॥

एक दूसरीसे मिली हुई शाखाओंवाले और फूलोंसे सुहावने तथा महेन्द्रकी ध्वजाके समान ऊंचे ऊंचे वृक्षोंसे वह वन सुशोभित हो रहा था ॥ १२ ॥

सुखशीतः सुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः ।
परिक्रामन्वने वृक्षानुपैतीव रिरंसया ॥ १३ ॥

सुखदायी, ठण्डी, फूलोंका पराग लेजानेवाली, अच्छी गन्धयुक्त हवा इधर उधर घूमती हुई मानो खेलने ही के लिये वृक्षोंके निकट पहुंच रही थी ॥ १३ ॥

एवंगुणसमायुक्तं ददर्श स वनं नृपः ।
नदीकच्छोद्भवं कान्तमुच्छ्रितध्वजसंनिभम् ॥ १४ ॥

उस राजाने ऐसे बहुत गुणयुक्त, उडती हुई ध्वजाकी तरह ऊंचे तथा नदी तटपर उत्पन्न हुए सुन्दर वनको देखा ॥ १४ ॥

प्रेक्षमाणो वनं तत्तु सुप्रहृष्टविहङ्गमम् ।
आश्रमप्रवरं रम्यं ददर्श च मनोरमम् ॥ १५ ॥

प्रसन्न पक्षियोंसे युक्त उस वनको देखते हुए उस राजाने सुन्दर और मनोहारी एक श्रेष्ठ आश्रमको देखा ॥ १५ ॥

नानावृक्षसमाकीर्णं संप्रज्वलितपावकम् ।
यतिभिर्वालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणान्वितम् ॥ १६ ॥

वह भांति भांतिके वृक्षोंसे युक्त, प्रज्ज्वलित अग्निसे सुशोभित, यति और वालखिल्योंसे घिरा हुआ तथा मुनियोंसे युक्त था ॥ १६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अग्न्यागारैश्च बहुभिः पुष्पसंस्तरसंस्तृतम्।
महाकच्छैर्बृहद्भिश्च विभ्राजितमनीव च। ॥ १७ ॥

अनेक अग्निगृहोंसे सुशोभित और फूलोंकी शैय्यासे सुसज्जित, नदियोंके विस्तृत और भारी तटोंसे वह बहुत सुशोभित हो रहा था ॥ १७ ॥

मालिनीमभितो राजन्नदीं पुण्यां सुखोदकाम्।
नैकपक्षिगणाकीर्णां तपोवनमनोरमाम्।
तत्र व्यालमृगान्सौम्यान्पश्यन्प्रीतिमवाप सः ॥ १८ ॥

हे राजन्! चारों ओर पुण्यशीला, सुखदायक जलवाली, अनेक पक्षियोंसे युक्त, तपोवनके कारण मनोरम मालिनी नदीको तथा सौम्य बने हुए सांप, मृग आदियोंको देखकर वह राजा बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १८ ॥

तं चाप्यतिरथः श्रीमानाश्रमं प्रत्यपद्यत।
देवलोकप्रतीकाशं सर्वतः सुमनोहरम् ॥ १९ ॥

तब अजेय श्रीमान् दुःपन्त देवलोकके समान सब प्रकारसे सुन्दर उस आश्रममें पहुंचा ॥१९॥

नदीमाश्रमसंश्लिष्टां पुण्यतोयां ददर्श सः।
सर्वप्राणभृतां तत्र जननीमिव विष्ठिताम् ॥ २० ॥

सब जीवोंकी माताके समान विराजमान पवित्र जलसे पूर्ण तथा आश्रमसे ही लगकर बहनेवाली मालिनी नदीको देखा ॥ २० ॥

सचक्रवाकपुलिनां पुष्पफेनप्रवाहिनीम्।
सकिंनरगणावासां वानरर्क्षनिषेविताम् ॥ २१ ॥

वह नदी किन्नरगणोंकी वासभूमि और बन्दर तथा भालुओंसे सेवित थी, उसके रेतीले किनारेपर चकवा चकई खेलते थे, उसकी धारसे फूलके समान फेन बहता था ॥ २१ ॥

पुण्यस्वाध्यायसंघुष्टां पुलिनैरुपशोभिताम्।
मत्तवारणशार्दूलभुजगेन्द्रनिषेविताम् ॥ २२ ॥

उसका रेतीला किनारा पवित्र वेदपाठकी ध्वनिसे गूंजता था; और वहां मत्त हाथी, सिंह और बडे बडे सर्प विचर रहे थे ॥ २२ ॥

नदीमाश्रमसंबद्धां दृष्ट्वाश्रमपदं तथा।
चकाराभिप्रवेशाय मतिं स नृपतिस्तदा ॥ २३ ॥

तब आश्रमसे संबंधित उस नदीको और आश्रमको देखकर राजाने उसमें प्रवेश करनेका विचार किया ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अलंकृतं द्वीपवत्या मालिन्या रम्यतीरया ।
नरनारायणस्थानं गंगयेवोपशोभितम् ।
मत्तबर्हिणसंघुष्टं प्रविवेश महद्वनम् ॥ २४ ॥

गंगासे शोभायमान नरनारायणके आश्रमकी भांति रमणीय तट और द्वीपोंसे सुहावनी मालिनी नदीसे सजे हुए तथा उन्मत्त मोरके केका शब्दसे गूंजते हुए उस महान् वनमें वह राजा जा घुसा ॥ २४ ॥

तत्स चैत्ररथप्रख्यं समुपेत्य नरेश्वरः ।
अतीव गुणसंपन्नमनिर्देश्यं च वर्चसा ।
महर्षिं काश्यपं द्रष्टुमथ कण्वं तपोधनम् ॥ २५ ॥
रथिनीमश्वसंबाधां पदातिगणसंकुलाम् ।
अवस्थाप्य वनद्वारि सेनामिदमुवाच सः ॥ २६ ॥

चैत्ररथके सदृश उस तपोवनमें प्रवेश कर अति गुणशाली अपरिमित तेजस्वी तपोधन कश्यपके पुत्र महर्षि कण्वका दर्शन करनेके लिए वह राजा हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण सेनाको वनके द्वारपर ही छोडकर सेनासे बोला ॥ २५-२६ ॥

मुनिं विरजसं द्रष्टुं गमिष्यामि तपोधनम् ।
काश्यपं स्थीयतामत्र यावदागमनं मम ॥ २७ ॥

सेनाओ ! मैं रजोगुणसे अतीत तपोधन तथा कश्यपके पुत्र मुनिवर कण्वके दर्शनको जाता हूं । इसलिए मेरे लौटनेतक तुम यहीं ठहरो ॥ २७ ॥

तद्वनं नन्दनप्रख्यमासाद्य मनुजेश्वरः ।
क्षुत्पिपासे जहौ राजा हर्षं चावाप पुष्कलम् ॥ २८ ॥

तब राजा नन्दनवनके समान उस तपोवनमें प्रवेशकर भूख-प्यासको भूलकर अपार आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥

सामात्यो राजलिङ्गानि सोऽपनीय नराधिपः ।
पुरोहितसहायश्च जगामाश्रममुत्तमम् ।
दिदृक्षुस्तत्र तमृषिं तपोराशिमथाव्ययम् ॥ २९ ॥

वहां मन्त्री और पुरोहितके साथ सम्पूर्ण राजचिह्नोंको छोडकर उन अव्यय-तपस्यावाले ऋषिओंको देखनेके लिये उस सुन्दर आश्रममें प्रविष्ट हुआ ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्मलोकप्रतीकाशमाश्रमं सोऽभिवीक्ष्य च।
षट्पदोद्गीतसंघुष्टं नानाद्विजगणायुतम् ॥ ३० ॥
ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः।
शुश्राव मनुजव्याघ्रो वितत्योष्विह कर्मसु ॥ ३१ ॥

भंवरोंकी गुनगुनाहटसे गूंजते हुए और भांति भांतिके पक्षिगणोंसे युक्त ब्रह्म लोकके सदृश आश्रमको देखकर उस पुरुषसिंह राजाने विस्तृत यज्ञकर्मोंमें ऋग्वेदमें कुशल ब्राह्मणोंके द्वारा पदोंके क्रमसे उच्चारे जाते हुए ऋग्वेदके मन्त्र सुने ॥ ३०–३१ ॥

यज्ञविद्याङ्गविद्भिश्च क्रमज्ञैश्च क्रमानपि।
अमितात्मभिः सुनियतैः शुशुभे स तदाश्रमः ॥ ३२ ॥

कल्पसूत्रादि यज्ञविद्यांगमें पण्डित तथा जटा, घन आदि मंत्रपाठके क्रमोंका पाठ करनेवाले नियम युक्त तथा अत्यन्त आत्मशक्तिवाले ब्राह्मणोंसे वह आश्रम सुशोभित था ॥ ३२ ॥

अथर्ववेदप्रवराः पूगयाज्ञिकसंमताः।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते ॥ ३३ ॥

पवित्र यज्ञमें दक्ष अथर्ववेदमें पण्डित मुनिलोग पद और क्रमसे युक्त संहिताका पाठ कर रहे थे ॥ ३३ ॥

शब्दसंस्कारसंयुक्तं ब्रुवद्भिश्चापरैर्द्विजैः।
नादितः स बभौ श्रीमान्ब्रह्मलोक इवाश्रमः ॥ ३४ ॥

दूसरे द्विजोंके द्वारा यथास्थानोच्चारित शब्दसे संस्कृत वाक्योंमें कथा कहे जानेके कारण वह आश्रम शब्दयुक्त होकर दूसरे ब्रह्मलोककी भांति शोभा पा रहा था ॥ ३४ ॥

यज्ञसंस्कारविद्भिश्च क्रमशिक्षाविशारदैः।
न्यायतत्त्वार्थविज्ञानसंपन्नैर्वेदपारगैः ॥ ३५ ॥
नानावाक्यसमाहारसमवायविशारदैः।
विशेषकार्यविद्भिश्च मोक्षधर्मपरायणैः ॥ ३६ ॥

यज्ञ और संस्कारमें पंडित, क्रमशिक्षामें विशारद, न्यायके तत्त्वके अर्थको जाननेवाले, वेदपारग, नाना वाक्योंके जोडने और मिलानेमें निपुण, ब्रह्मोपासनारूपी विशेष कार्यमें दक्ष, मोक्षधर्ममें विद्वान् ॥ ३५–३६ ॥

स्थापनाक्षेपसिद्धान्तपरमार्थज्ञतां गतैः।
लोकायतिकमुख्यैश्च समन्तादनुनादितम् ॥ ३७ ॥

सिद्धान्तकी स्थापना, परसिद्धान्त पर आक्षेप करनेमें अत्यन्त कुशल, सिद्धान्त करनेमें ज्ञानी, प्रधान चार्वाकोंके द्वारा चारों ओरसे गूंजते हुए शब्दको भूपालने सुना ॥ ३७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान्संशितव्रतान् ।
जपहोमपरान्सिद्धान्ददर्श परवीरहा ॥ ३८ ॥

शत्रुनाशी नरेशने स्थान स्थानमें ऐसे व्रतशील नियमयुक्त जपहोम करनेमें सिद्ध अर्थात् कुशल श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको देखा ॥ ३८ ॥

आसनानि विचित्राणि पुष्पवन्ति महीपतिः ।
प्रयत्नोपहितानि स्म दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥ ३९ ॥

महीपति दुःषन्त यत्नसे बिछाये हुए विचित्र और फूलोंवाले आसनोंको देखकर आश्चर्य-चकित हो गया ॥ ३९ ॥

देवतायतनानां च पूजां प्रेक्ष्य कृतां द्विजैः।
ब्रह्मलोकस्थमात्मानं मेने स नृपसत्तमः ॥ ४० ॥

ब्राह्मणोंके द्वारा बनाये गए देवस्थानोंकी सजावट देख देखकर उस श्रेष्ठ राजाने अपनेको ब्रह्मलोकमें स्थित जाना ॥ ४० ॥

स काश्यपतपोगुप्तमाश्रमप्रवरं शुभम् ।
नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै तपोधनगुणैर्युतम् ॥ ४१ ॥

कश्यपके पुत्र ऋषि कण्वके तपसे रक्षित, तपोवनकी शोभासे युक्त उस परम मङ्गलमय आश्रमको बार बार देखने पर भी नृपश्रेष्ठ दुःषन्त तृप्त न हो सका ॥ ४१ ॥

स काश्यपस्यायतनं महाव्रतैर्वृतं समन्ताद्ऋषिभिस्तपोधनैः ।
विवेश सामात्यपुरोहितोऽरिहा विविक्तमत्यर्थमनोहरं शिवम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ २३९३ ॥

शत्रुनाशी राजाने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ महाव्रतशील तपोधन मुनियोंसे सर्वत्र घिरे हुए कश्यपपुत्र ऋषि कण्वके उस बडे मनोहर शुभस्थानमें प्रवेश किया ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ २३९३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ६५ :

वैशम्पायन उवाच

ततो गच्छन्महाबाहुरेकोऽमात्यान्विसृज्य तान्।
नापश्यदाश्रमे तस्मिंस्तमृषिं संशितव्रतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद महाबाहु दुःषन्त मन्त्री और पुरोहितको विदा करके अकेले ही ऋषि कण्वके आश्रममें जा पहुंचा, पर उस आश्रममें उन संयत व्रतयुक्त महर्षिको नहीं देखा ॥ १ ॥

सोऽपश्यमानस्तमृषिं शून्यं दृष्ट्वा तमाश्रमम्।
उवाच क इहेत्युच्चैर्वनं संनादयन्निव ॥ २ ॥

वहां उस ऋषिको न देखकर और उस आश्रमको सूना पाकर सारे जंगलको गुंजाता हुआ जोरसे बोला कि " यहां कौन है " ॥ २ ॥

श्रुत्वाथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीरिव रूपिणी।
निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तापसीवेषधारिणी ॥ ३ ॥

उसकी उस आवाजको सुनकर साक्षात् लक्ष्मीकी भांति रूपवती तपस्विनीका वेषधारण किये हुए एक कन्या उस आश्रमसे निकली ॥ ३ ॥

सा तं दृष्ट्वैव राजानं दुःषन्तमसितेक्षणा।
स्वागतं त इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च ॥ ४ ॥

उस काली आंखोंवाली कामिनीने राजर्षि दुःषन्तको देखते ही उसी क्षण उसकी अभ्यर्थना करके कहा " आपका स्वागत हो " ॥ ४ ॥

आसनेनार्चयित्वा च पाद्येनार्घ्येण चैव हि।
पप्रच्छानामयं राजन्कुशलं च नराधिपम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ! कन्याने राजाकी आसन, पाद्य और अर्घ्यसे पूजाकर उसका स्वास्थ्य और कुशल पूछा ॥ ५ ॥

यथावदर्चयित्वा सा पृष्ट्वा चानामयं तदा।
उवाच स्मयमानेव किं कार्यं क्रियतामिति ॥ ६ ॥

यथायोग्य राजाकी पूजाकर और उसकी कुशलता पूछनेके बाद वह मुस्कराती हुई बोली कहिये, मुझे क्या कार्य करना होगा ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तामब्रवीत्ततो राजा कन्यां मधुरभाषिणीम्।
दृष्ट्वा सर्वानवद्याङ्गीं यथावत्प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥

राजा विधिपूर्वक पूजे जाकर उस अनिन्दिताङ्गी, मधुरभाषिणी कन्याको देखकर बोला ॥७॥

आगतोऽहं महाभागमृषिं कण्वमुपासितुम्।
क गतो भगवान्भद्रे तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥ ८ ॥

हे भद्रे ! मैं महाभाग ऋषि कण्वकी उपासना करनेके लिए आया हूं, हे शोभने ! मुझे बताओ, कि वे भगवान् कहां गये हैं ॥ ८ ॥

शकुन्तलोवाच

गतः पिता मे भगवान्फलान्याहर्तुमाश्रमात्।
मुहूर्तं संप्रतीक्षस्व द्रक्षस्येनमिहागतम् ॥ ९ ॥

शकुन्तला बोली – मेरे भगवान् पिता फल लानेके लिए आश्रमसे बाहर गए हुए हैं। आप क्षणभर प्रतीक्षा कीजिए, उनको लौटे हुए आप देखेंगे ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

अपश्यमानस्तमृषिं तया चोक्तस्तथा नृपः।
तां च दृष्ट्वा वरारोहां श्रीमतीं चारुहासिनीम् ॥ १० ॥
विभ्राजमानां वपुषा तपसा च दमेन च।
रूपयौवनसंपन्नामित्युवाच महीपतिः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले– और इस प्रकार शकुन्तलासे कहे जाकर तथा ऋषिको न देखकर और शकुन्तलाको सुन्दर हंसीसे युक्त मुखवाली तथा कमलके समान सुन्दर, तप और दमसे तेजस्वी मुखवाली रूप और यौवनसे सम्पन्न उस परमशोभावाली स्त्रीको देखकर राजा बोला ॥ १०–११ ॥

कासि कस्यासि सुश्रोणि किमर्थं चागता वनम्।
एवंरूपगुणोपेता कुतस्त्वमसि शोभने ॥ १२ ॥

हे उत्तम नितम्बोंवाली ! तुम कौन हो ? किसकी बेटी हो ? हे शोभने ! तुम ऐसी रूप-गुणवती होकर इस वनमें क्यों आई हो ? और कहांसे आई हो ? ॥ १२ ॥

दर्शनादेव हि शुभे त्वया मेऽपहृतं मनः।
इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥ १३ ॥

हे शुभे ! तुमने दर्शन मात्रसे ही मेरा मन हर लिया है, हे शोभने ! मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूं। अतः तुम मुझसे अपना परिचय कहो ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्ता तदा कन्या तेन राज्ञा तदाश्रमे।
उवाच हसती वाक्यमिदं सुमधुराक्षरम् ॥ १४ ॥

आश्रममें उस राजाके इस प्रकार कहनेपर हंसती हुई कन्याने मीठे अक्षरोंसे युक्त यह वाक्य कहा ॥ १४ ॥

कण्वस्याहं भगवतो दुःषन्त दुहिता मता।
तपस्विनो धृतिमतो धर्मज्ञस्य यशस्विनः ॥ १५ ॥

हे दुःषन्त ! मैं तपस्वी धृतिमान् धर्मज्ञ यशस्वी भगवान् कण्वकी बेटी हूं ॥ १५ ॥

दुःषन्त उवाच

ऊर्ध्वरेता महाभागो भगवाँल्लोकपूजितः।
चलेद्धि वृत्ताद्धर्मोऽपि न चलेत्संशितव्रतः ॥ १६ ॥

दुःषन्त बोले– लोकपूजित महाभाग भगवान् कण्व ऊर्ध्वरेता हैं; धर्म भी अपने चरित्रसे टल जाए, पर संयत व्रतशील महर्षि कदापि अपने वृत्तसे नहीं टल सकते ॥ १६ ॥

कथं त्वं तस्य दुहिता संभूता वरवर्णिनी।
संशयो मे महानत्र तं मे छेत्तुमिहार्हसि ॥ १७ ॥

अतएव, हे श्रेष्ठोंके द्वारा वरण किए जाने योग्य ! मुझे बडी शङ्का होती है, कि तुम कैसे उनकी कन्या हुई, तुम मेरी यह शङ्का दूर करो ॥ १७ ॥

शकुन्तलोवाच

यथायमागमो मह्यं यथा चेदमभूत्पुरा।
शृणु राजन्यथातत्त्वं यथास्मि दुहिता मुनेः ॥ १८ ॥

शकुन्तला बोली– हे राजन् ! यह पहले जिस प्रकार हुआ है, मैंने जैसा सुना है और मैं जैसे महर्षिकी बेटी हुई हूं, सब कहती हूं सुनिये ॥ १८ ॥

ऋषिः कश्चिदिहागम्य मम जन्माभ्यचोदयत्।
तस्मै प्रोवाच भगवान्यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ १९ ॥

किसी समय एक ऋषिने यहां आकर पिता कण्वसे मेरा जन्मवृत्तान्त पूछा था; उस समय भगवान्‌ने उनसे जैसा कहा था, हे पृथ्वीनाथ ! वह सुनिये ॥ १९ ॥

तप्यमानः किल पुरा विश्वामित्रो महत्तपः।
सुभृशं तापयामास शक्रं सुरगणेश्वरम् ॥ २० ॥

पूर्वकालमें महातपस्वी ऋषि विश्वामित्रने तपस्या करते हुए देवराज इन्द्रको बहुत संतप्त किया ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तपसा दीप्तवीर्योऽयं स्थानान्मां च्यावयेदिति।
भीतः पुरंदरस्तस्मान्मेनकामिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

तपस्याके बलसे तेजस्वी यह ऋषि मुझको पदसे कहीं च्युत न कर दे, इससे डरकर इन्द्र मेनका नामक अप्सरासे बोले ॥ २१ ॥

गुणैर्दिव्यैरप्सरसां मेनके त्वं विशिष्यसे।
श्रेयो मे कुरु कल्याणि यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ २२ ॥

मेनका ! तुम दिव्य गुणोंसे अनेक अप्सराओंमें श्रेष्ठ हो। कल्याणि ! तुम मेरा हित करो, मैं जो कहता हूं, उसे सुनो ॥ २२ ॥

असावादित्यसंकाशो विश्वामित्रो महातपाः।
तप्यमानस्तपो घोरं मम कम्पयते मनः ॥ २३ ॥

मेनके ! आदित्यके समान तेजस्वी महातपस्वी विश्वामित्र कठोर तपस्या करते हुए मेरा हृदय कंपा रहे हैं ॥ २३ ॥

मेनके तव भारोऽयं विश्वामित्रः सुमध्यमे।
संशितात्मा सुदुर्धर्ष उग्रे तपसि वर्तते ॥ २४ ॥

वह संयतात्मा दुर्धर्ष क्रमशः कठोरतर तपस्यामें प्रवृत्त हो रहे हैं। हे सुमध्यमे मेनके ! मैं तुमपर यह भार डाल रहा हूं ॥ २४ ॥

स मां न च्यावयेत्स्थानात्तं वै गत्वा प्रलोभय।
चर तस्य तपोविघ्नं कुरु मे प्रियमुत्तमम् ॥ २५ ॥

तुम जाकर उनको लुभाओ, ताकि वह मुझको मेरे पदसे च्युत न कर सकें, उनकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित करो और इस प्रकार मेरा उत्तम हित करो ॥ २५ ॥

रूपयौवनमाधुर्यचेष्टितस्मितभाषितैः।
लोभयित्वा वरारोहे तपसः संनिवर्तय ॥ २६ ॥

हे कमलके समान सुन्दरी ! तुम रूप, यौवनकी शोभा, हाव, भावादि और मुस्कराहटभरी बातोंसे मुनिको लुभाकर तपस्यासे निवृत्त करो ॥ २६ ॥

मेनकोवाच

महातेजाः स भगवान्सदैव च महातपाः।
कोपनश्च तथा ह्येनं जानाति भगवानपि ॥ २७ ॥

मेनका बोली– भगवान् विश्वामित्र महातेजस्वी, महातपस्वी और सदाके बडे क्रोधी हैं; आप भी उनको जानते हैं ॥ २७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेजसस्तपसश्चैव कोपस्य च महात्मनः।
त्वमप्युद्विजसे यस्य नोद्विजेयमहं कथम् ॥ २८ ॥

जिन महात्माके तेज, तपस्या और क्रोधसे आप देवराज होकरके भी भय खा रहे हैं, उनसे मैं भयभीत कैसे नहीं होऊं? ॥ २८ ॥

महाभागं वसिष्ठं यः पुत्रैरिष्टैर्व्ययोजयत्।
क्षत्रे जातश्च यः पूर्वमभवद्ब्राह्मणो बलात् ॥ २९ ॥

जिन्होंने महात्मा वसिष्ठको प्यारे पुत्रोंसे अलग कर दिया था, जो पहिले क्षत्रिय कुलमें जन्म लेकर भी पीछे बलसे ब्राह्मण हो गए ॥ २९ ॥

शौचार्थं यो नदीं चक्रे दुर्गमां बहुभिर्जलैः।
यां तां पुण्यतमां लोके कौशिकीति विदुर्जनाः ॥ ३० ॥

जिन्होंने स्नानादिके निमित्त एक जलसे भरी हुई होनेके कारण कठिनतासे पार करने योग्य नदी बहाई, जिस पुण्यमयी नदीको संसारके लोग "कौशिकी" के नामसे जानते हैं ॥ ३० ॥

बभार यत्रास्य पुरा काले दुर्गे महात्मनः।
दारान्मतङ्गो धर्मात्मा राजर्षिर्व्याधतां गतः ॥ ३१ ॥

व्याधजातिको प्राप्त हुए जिस मतङ्ग नामक धर्मात्मा राजर्षिने दुर्भिक्षके कालमें उक्त नदीके तटपर जिन महात्माके परिवारको पाला पोषा था ॥ ३१ ॥

अतीतकाले दुर्भिक्षे यत्रैत्य पुनराश्रमम्।
मुनिः पारेति नद्या वै नाम चक्रे तदा प्रभुः ॥ ३२ ॥

दुर्भिक्ष कालके अन्त होनेपर उस प्रभु मुनिने फिर आश्रममें लौटकर उस कौशिकी नदीका "पारा" नाम रखा ॥ ३२ ॥

मतङ्गं याजयांचक्रे यत्र प्रीतमनाः स्वयम्।
त्वं च सोमं भयाद्यस्य गतः पातुं सुरेश्वर ॥ ३३ ॥

और प्रसन्न होकर जिन्होंने स्वयं उन मतङ्ग नामक राजर्षिका याजन कार्य किया था; हे देवराज! आप भी जिनके भयसे सोमरस पीनेको गये थे ॥ ३३ ॥

अति नक्षत्रवंशांश्च क्रुद्धो नक्षत्रसम्पदा।
प्रति श्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि ससर्ज यः ॥ ३४ ॥

जिन्होंने क्रोधित होकर नक्षत्रकी संपत्तिसे युक्त नक्षत्र वंशोंको और श्रवण नक्षत्रको पहले रखकर अन्य नक्षत्रोंको बनाया ॥ ३४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतानि यस्य कर्माणि तस्याहं भृशमुद्विजे।
यथा मां न दहेत्क्रुद्धस्तथाज्ञापय मां विभो ॥ ३५ ॥

हे प्रभो! जिनके यह सब कार्य हैं, मैं उनसे बडा भय खाती हूं; आप मुझे ऐसी आज्ञा कीजिये, कि वह क्रोधित होकर मुझको भस्म न कर डालें ॥ ३५ ॥

तेजसा निर्दहेल्लोकान्कम्पयेद्धरणीं पदा।
संक्षिपेच्च महामेरुं तूर्णमावर्तयेत्तथा ॥ ३६ ॥

जो तेजसे संपूर्ण लोकोंको जला सकते हैं, पृथ्वीको पैरसे हिला सकते हैं, महा सुमेरु पहाडको भी शीघ्र ही उठाकर फेंक सकते हैं और उसे उठाकर शीघ्रतासे घुमा भी सकते हैं ॥३६॥

तादृशं तपसा युक्तं प्रदीप्तमिव पावकम्।
कथमस्मद्विधा बाला जितेन्द्रियमभिस्पृशेत् ॥ ३७ ॥

उन प्रज्ज्वलित अग्निके सदृश तेजस्वी तपस्वी जितेन्द्रिय महर्षिको मुझ जैसी बाला कैसे छू सकती है? ॥ ३७ ॥

हुताशनमुखं दीप्तं सूर्यचन्द्राक्षितारकम्।
कालजिह्वं सुरश्रेष्ठ कथमस्मद्विधा स्पृशेत् ॥ ३८ ॥

हे सुरश्रेष्ठ! जिनका मुख प्रज्ज्वलित अग्निके समान तेजस्वी है, जिनके नेत्रोंके तारे चन्द्र सूर्यके स्वरूप हैं, जिनकी जिह्वा कालस्वरूप है, उन दुर्धर्ष महर्षिको मुझसी बाला कैसे छू सकती है? ॥ ३८ ॥

यमश्च सोमश्च महर्षयश्च साध्या विश्वे बालखिल्याश्च सर्वे।
एतेऽपि यस्योद्विजन्ते प्रभावात्कस्मात्तस्मान्मादृशी नोद्विजेत ॥ ३९ ॥

यम, सोम, महर्षिगण, साध्यगण और सब बालखिल्य मुनिगण भी जिनके प्रभावसे भय खाते हैं तब मुझसी बालायें क्यों उनसे भय न खायेंगी? ॥ ३९ ॥

त्वयैवमुक्ता च कथं समीपमृषेर्न गच्छेयमहं सुरेन्द्र।
रक्षां तु मे चिन्तय देवराज यथा त्वदर्थं रक्षिताहं चरेयम् ॥ ४० ॥

हे सुरेन्द्र! आप जब उन ऋषिके समीप जानेकी आज्ञा दे रहे हैं, तब आपके द्वारा कही जाने पर मैं कैसे न जाऊं? पर, हे देवराज! मेरी रक्षाका प्रयत्न कीजिये, ताकि मैं आपसे भलीप्रकार रक्षित होकर आपका कार्य कर सकूं ॥ ४० ॥

कामं तु मे मारुतस्तत्र वासः प्रक्रीडिताया विवृणोतु देव।
भवेच्च मे मन्मथस्तत्र कार्ये सहायभूतस्तव देव प्रसादात् ॥ ४१ ॥

मेरी भी प्रार्थना यह है, कि जब मैं आश्रममें खेलती रहूं, उस समय वायु मेरा पहिना हुआ वस्त्र हरले और आपकी आज्ञासे कामदेव उस कार्यमें सम्मत और मेरे सहायक होवें ॥ ४१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वनाच्च वायुः सुरभिः प्रवायेत्तस्मिन्काले तमृषिं लोभयन्त्याः ।
तथेत्युक्त्वा विहिते चैव तस्मिंस्ततो ययौ साश्रमं कौशिकस्य ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ २४३५ ॥

और मैं जब ऋषिको लुभाने लगूं, तब उस समय वनसे सुरभि युक्त हवा चले । मेनकाकी ऐसी प्रार्थना पर देवराजने "तथास्तु" कहकर वैसा ही प्रबन्ध कर दिया, तब मेनका विश्वामित्रके आश्रमको गई ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ २४३५ ॥

: ६६ :

शकुन्तलोवाच

एवमुक्तस्तया शक्रः संदिदेश सदागतिम् ।
प्रातिष्ठत तदा काले मेनका वायुना सह ॥ १ ॥

शकुन्तला बोली– मेनकाके इस प्रकार कहनेपर इन्द्रने सदा बहनेवाली वायुको आज्ञा दी और यथा समय पवनदेवके साथ मेनका चली ॥ १ ॥

अथापश्यद्वरारोहा तपसा दग्धकिल्बिषम् ।
विश्वामित्रं तपस्यन्तं मेनका भीरुराश्रमे ॥ २ ॥

तब उस सुन्दरी भीरु मेनकाने तपस्यासे पापहीन हुए तथा तप करते हुए विश्वामित्रको आश्रममें देखा ॥ २ ॥

अभिवाद्य ततः सा तं प्राक्रीडदृषिसंनिधौ ।
अपोवाह च वासोऽस्या मारुतः शशिसंनिभम् ॥ ३ ॥

तब वह ऋषिको प्रणाम करके ऋषिके पास खेलने लगी । तब वायुने भी उस समय उसके चन्द्रमा सदृश वस्त्रको हर लिया ॥ ३ ॥

सागच्छत्त्वरिता भूमिं वाससस्तदभिलिप्सती ।
उत्स्मयन्तीव सव्रीडं मारुतं वरवर्णिनी ॥ ४ ॥

सुन्दरी मेनका वायुके उस कार्यको देखकर लाज दिखाती हुई एवं मुस्कराती हुई वस्त्र चुन लेनेके लिये जमीनपर झुकती झुकती गई ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गृद्धां वाससि संभ्रान्तां मेनकां मुनिसत्तमः ।
अनिर्देश्यवयोरूपामपश्यद्विवृतां तदा ॥ ५ ॥

उस मुनि श्रेष्ठने अज्ञात वय और रूपवाली वस्त्रहीना, वस्त्र लेनेकी अभिलाषिणी होकर भूली भटकीसी मेनकाको देखा ॥ ५ ॥

तस्या रूपगुणं दृष्ट्वा स तु विप्रर्षभस्तदा ।
चकार भावं संसर्गे तया कामवशं गतः ॥ ६ ॥

उसके अतुलरूप और गुणको निहारकर विप्रोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्र कामवश हुए और उसके साथ संसर्ग करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥

न्यमन्त्रयत चाप्येनां सा चाप्यैच्छदनिन्दिता ।
तौ तत्र सुचिरं कालं वने व्यहरतामुभौ ।
रममाणौ यथाकामं यथैकदिवसं तथा ॥ ७ ॥

मुनिने उसे बुलाया और वह अनिन्दिता मेनका भी उसपर सम्मत हुई । तब मुनि और मेनका दोनों उस वनमें बहुत कालतक विहार करते रहे और यथेच्छ रमण करते हुए उन्हें बहुत दिन भी एक दिनके समान प्रतीत हुआ ॥ ७ ॥

जनयामास स मुनिर्मेनकायां शकुन्तलाम् ।
प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिनीमभितो नदीम् ॥ ८ ॥

इसके बाद मुनिने मेनकामें हिमालयपर्वतके मनोहर चट्टान पर, मालिनी नदीके किनारे शकुन्तलाको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु ।
कृतकार्या ततस्तूर्णमगच्छच्छक्रसंसदम् ॥ ९ ॥

मेनका सफल मनोरथवाली होकर उस पैदा हुई सन्तानको मालिनी नदीके तटपर छोड-करके उसीक्षण शीघ्रतासे इन्द्रकी सभामें गयी ॥ ९ ॥

तं वने विजने गर्भं सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
दृष्ट्वा शयानं शकुनाः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १० ॥

सिंह—व्याघ्रोंसे भरे हुए उस विजन वनमें उस बालिकाको सोती हुई देखकर उसे पक्षि-योंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥

नेमां हिंस्युर्वने बालां क्रव्यादा मांसगृद्धिनः ।
पर्यरक्षन्त तां तत्र शकुन्ता मेनकात्मजाम् ॥ ११ ॥

शकुन्त (पक्षीगण) उस वनमें मेनकाकी पुत्रीकी इसलिए रखवाली करते थे कि मांस-लोभी जन्तु उस बालिकाकी हिंसा न कर सकें ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उपस्प्रष्टुं गतश्चाहमपश्यं शयितामिमाम् ।
निर्जने विपिनेऽरण्ये शकुन्तैः परिवारिताम् ।
आनयित्वा ततश्चैनां दुहितृत्वे न्ययोजयम् ॥ १२ ॥

उस समय स्नानार्थ गए हुए मैंने उस निर्जन वनमें पक्षियोंसे घिरी हुई और सोनेवाली इसे देखकरके आश्रममें ले जाकर कन्याकी भांति रक्षा की ॥ १२ ॥

शरीरकृत्प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते ।
क्रमेण ते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मनिश्चये ॥ १३ ॥

धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि जन्मदाता, प्राणदाता और जिसका अन्न खाया जाता है क्रमसे यह तीनों ही पिता होते हैं ॥ १३ ॥

निर्जने च वने यस्माच्छकुन्तैः परिरक्षिता ।
शकुन्तलेति नामास्याः कृतं चापि ततो मया ॥ १४ ॥

चूंकि यह कन्या निर्जन वनमें शकुन्तोंसे बचायी गयी थी, इसलिये मैंने भी इसका "शकुन्तला" नाम रख दिया ॥ १४ ॥

एवं दुहितरं विद्धि मम सौम्य शकुन्तलाम् ।
शकुन्तला च पितरं मन्यते मामनिन्दिता ॥ १५ ॥

हे विप्र ! शकुन्तलाको इस प्रकार मेरी कन्या ही समझो, यह अनिन्दिता शकुन्तला भी मुझको पिता ही मानती है ॥ १५ ॥

एतदाचष्ट पृष्टः सन्मम जन्म महर्षये ।
सुतां कण्वस्य मामेवं विद्धि त्वं मनुजाधिप ॥ १६ ॥

हे नराधिप ! पिताने आये हुए महर्षिसे पूछे जाकर इस प्रकार मेरा जन्म वृत्तान्त उस महर्षिसे कहा था; सो तुम भी मुझको कण्वकी बेटी ही समझो ॥ १६ ॥

कण्वं हि पितरं मन्ये पितरं स्वमजानती ।
इति ते कथितं राजन्यथावृत्तं श्रुतं मया ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ २४५२ ॥

मैं जन्मदाता पिताको नहीं जानती; अतः कण्वहीको पिता मानती हूं; हे राजन् ! अपने जन्मके विषयमें मैंने जो कुछ सुना था, वह सब मैंने तुमसे कह दिया है ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छियासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ ॥ २४५२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ६७ :

दुःषन्त उवाच

सुव्यक्तं राजपुत्री त्वं यथा कल्याणि भाषसे ।
भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥

दुःषन्त बोला– हे कल्याणि ! तुमने जो कुछ कहा, उससे स्पष्ट होता है, कि तुम राजपुत्री हो । हे उत्तम नितम्बोंवाली सुन्दरी ! तुम मेरी स्त्री होओ; कहो, तुम्हारे लिए मैं क्या करूं ॥ १ ॥

सुवर्णमाला वासांसि कुण्डले परिहाटके ।
नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्ने च शोभने ॥ २ ॥
आहरामि तवाद्याहं निष्कादीन्यजिनानि च ।
सर्वं राज्यं तवाद्यास्तु भार्या मे भव शोभने ॥ ३ ॥

सुवर्ण हार, वस्त्र, सुवर्णके कुण्डल, नाना नगरोंमें उत्पन्न शोभा देनेहारे शुभ्र मणि, रत्न, मृगचर्म, सोनेके सिक्के आदि सभी आज तुम्हारे लिए मंगवाता हूं, आज सम्पूर्ण राज्यही तुम्हारा हो; हे शोभने ! तुम मेरी पत्नी होओ ॥ २–३ ॥

गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेनैहि सुंदरि ।
विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ४ ॥

हे सुन्दरि ! हे भीरु ! मुझको गान्धर्व विवाहसे तुम प्राप्त करो; हे रम्भाके समान सुन्दर जांघोंवाली सुन्दरी ! सब विवाहोंमेंसे गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ माना गया है ॥ ४ ॥

शकुन्तलोवाच

फलाहारो गतो राजन्पिता मे इत आश्रमात् ।
तं मुहूर्तं प्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥ ५ ॥

शकुन्तला बोली– हे राजन् ! मेरे पिता फल बटोरनेके लिये इस आश्रमसे बाहर गये हुए हैं; आप क्षणभर ठहरें, वह आकर आपको मुझे प्रदान कर देंगे ॥ ५ ॥

दुःषन्त उवाच

इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते ।
त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥ ६ ॥

दुःषन्त बोला– हे कमलके समान सुन्दरी ! मैं चाहता हूं कि तुम स्वयं मुझको स्वीकार करो, हे अनिन्दिते ! तुम यह जान लो कि मैं तुम्हारे निमित्त ही यहां स्थित हूं, मेरा हृदय तुम पर ही आसक्त हुआ है ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः।
आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥ ७ ॥

आत्मा स्वयं ही अपना बन्धु है, आत्मा आप ही अपनी गति है, सो धर्मानुसार तुम स्वयं ही अपना दान करो ॥ ७ ॥

अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ ८ ॥
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः।
तेषां धर्मान्यथापूर्वं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

धर्मानुसार आठ प्रकारके ही विवाह संक्षेपमें कहे गए हैं; ब्राह्म, दैव तथा आर्ष, प्राजापत्य और आसुर, गान्धर्व और राक्षस और आठवां पैशाच बताया गया है। स्वायम्भुवमनुने इन आठ प्रकारोंके विवाहोंमें, जो जिसके लिये धर्मयुक्त है, उसकी कथा आद्योपान्त कही है ॥ ८-९ ॥

प्रशस्तांश्चतुरः पूर्वान्ब्राह्मणस्योपधारय।
षडानुपूर्व्या क्षत्रस्य विद्धि धर्म्याननिन्दिते ॥ १० ॥

पहिले कहे हुए चार प्रकारके विवाह ब्राह्मणके लिये प्रशस्त हैं। हे अनिन्दिते! पहिलेसे आद्योपान्त कहे हुए छः प्रकारके विवाह क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त हैं ॥ १० ॥

राज्ञां तु राक्षसोऽप्युक्तो विट्शूद्रेष्वासुरः स्मृतः।
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ॥ ११ ॥

और राजाके लिये राक्षस विवाह भी धर्म-सम्मत है और वैश्य और शूद्रके लिये आसुर-विवाह धर्मयुक्त कहा है। पहिले गिने हुए पांच प्रकारके विवाहोंमें ब्राह्म, दैव और आर्ष यह तीन प्रकारोंके विवाह सब प्रकारसे धर्मसंयुक्त हैं। प्राजापत्य तथा आसुरविवाह धर्म-विहित नहीं हैं ॥ ११ ॥

पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथंचन।
अनेन विधिना कार्यो धर्मस्यैषा गतिः स्मृता ॥ १२ ॥

और पैशाच तथा आसुर विवाह किसी प्रकारसे नहीं करने चाहिए। धर्मकी गति ऐसी है; इस विधिके अनुसार विवाह करना चाहिए ॥ १२ ॥

गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशङ्किथाः।
पृथग्वा यदि वा मिश्रौ कर्तव्यौ नात्र संशयः ॥ १३ ॥

अतएव इसमें शङ्का नहीं करनी चाहिए, कि गान्धर्व और राक्षस-विवाह क्षत्रियोंके लिये धर्मसंयुक्त हैं या नहीं। इसमें सन्देह नहीं है, कि यह दो प्रकारके विवाह, चाहे अलग रूपसे हो वा मिल कर हो, राजाओंके लिये उचित ही हैं ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनि ।
गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि ॥ १४ ॥

हे सुन्दरी ! मैं तुमसे विवाह करनेका अभिलाषी हुआ हूं, और इसमें तुम्हारी भी इच्छा है, अतः गान्धर्वविवाहके अनुसार तुम तुम्हारी कामना करनेवाले मेरी पत्नी हो सकती हो ॥ १४ ॥

शकुन्तलोवाच

यदि धर्मपथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम ।
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रभो ॥ १५ ॥

शकुन्तला बोली– हे प्रभो पौरव श्रेष्ठ ! यदि यह धर्मके पथके अनुसार है और आत्मसमर्पणके विषयमें मुझे अधिकार है, तो मेरा एक प्रण सुनिए ॥ १५ ॥

सत्यं मे प्रतिजानीहि यत्त्वां वक्ष्याम्यहं रहः ।
मम जायेत यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरम् ॥ १६ ॥
युवराजो महाराज सत्यमेतद्ब्रवीहि मे ।
यद्येतदेवं दुःषन्त अस्तु मे संगमस्त्वया ॥ १७ ॥

महाराज ! मैं इस निर्जन स्थानमें जैसा कहती हूं, वैसा मुझसे प्रण कीजिये, कि मेरे गर्भसे मेरा जो पुत्र उत्पन्न होगा वही पुत्र युवराज और आपके पीछे अधिकारी होगा । हे महाराज दुःषन्त ! आप मुझसे यह सत्य प्रतिज्ञा कीजिए। यदि ऐसा हो, तो आपसे मेरा संगम हो ॥ १६–१७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन् ।
अपि च त्वां नयिष्यामि नगरं स्वं शुचिस्मिते ।
यथा त्वमर्हा सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥

वैशम्पायन बोले– राजाने कुछ न विचार करके "एवमस्तु" कहकर शकुन्तलाकी बात मानली और वह बोला, कि हे स्मितमुखि ! तुम जिस योग्य हो, वही करूंगा और तुमको राजधानीमें ले जाऊंगा । हे सुश्रोणि ! तुम जो कहती हो, वही होगा, यह मैं सच कहता हूँ ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा स राजर्षिस्तामनिन्दितगामिनीम् ।
जग्राह विधिवत्पाणावुवास च तया सह ॥ १९ ॥

राजर्षि दुःषन्त अनिन्दित गतिवाली उस शकुंतलासे यह कहकर यथाविधि उसका पाणिग्रहण करके उसके साथ रहा ॥ १९ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः।
प्रेषयिष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरङ्गिणीम्।
तया त्वामानयिष्यामि निवासं स्वं शुचिस्मिते ॥ २० ॥

अनन्तर उसको समझा बुझा करके विश्वास कराकर राजा अपनी राजधानी लौट गया और जाते जाते वह शकुन्तलासे बारबार बोला– हे पवित्र मुस्कराहटोंवाली ! राजधानीमें जाकर तुम्हारे लिये चतुरङ्गिणी सेना भेजूंगा और उस सेनाके साथ तुमको अपनी राजधानीमें ले जाऊंगा ॥ २० ॥

इति तस्याः प्रतिश्रुत्य स नृपो जनमेजय।
मनसा चिन्तयन्प्रायात्काश्यपं प्रति पार्थिवः ॥ २१ ॥
भगवांस्तपसा युक्तः श्रुत्वा किं नु करिष्यति।
एवं संचिन्तयन्नेव प्रविवेश स्वकं पुरम् ॥ २२ ॥

हे जनमेजय ! राजा शकुन्तलासे वह प्रतिज्ञाकर वह राजा काश्यप कण्वके विषयमें मनमें सोचते हुए चला कि तपस्वी कण्व आश्रममें आकर यह सब सुन करके क्या समझेंगे और क्या करेंगे ? ऐसे सोचते हुए उसने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया ॥ २१-२२ ॥

मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु कण्वोऽप्याश्रममागमत्।
शकुन्तला च पितरं ह्रिया नोपजगाम तम् ॥ २३ ॥

अनन्तर कुछ समयके पश्चात् महर्षि कण्व भी आश्रममें आये, शकुन्तला लज्जावश होकर अपने पिता उन कण्वके पास नहीं गयी ॥ २३ ॥

विज्ञायाथ च तां कण्वो दिव्यज्ञानो महातपाः।
उवाच भगवान्प्रीतः पश्यन्दिव्येन चक्षुषा ॥ २४ ॥

दिव्यज्ञानसे युक्त महातपस्वी भगवान् कण्व दिव्यदृष्टिसे सम्पूर्ण वृत्तान्तको जानकर प्रसन्नचित्त हुए और बोले ॥ २४ ॥

त्वयाद्य राजान्वयया मामनादृत्य यत्कृतः।
पुंसा सह समायोगो न स धर्मोपघातकः ॥ २५ ॥

कि आज मेरी सम्मतिके विना एकान्तमें राजवंशी पुरुषसे जो तुम मिलीं, उससे धर्मकी हानि नहीं हुई ॥ २५ ॥

क्षत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते।
सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः ॥ २६ ॥

क्योंकि कहा है, कि क्षत्रियके लिये गान्धर्व विवाह श्रेष्ठ होता है; निर्जन स्थानमें कामयुक्ता नारीसे कामयुक्त पुरुषका विना मन्त्रविधिके जो मिलन होता है, वही गान्धर्व विवाह कहलाता है ॥ २६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्मात्मा च महात्मा च दुःषन्तः पुरुषोत्तमः ।
अभ्यगच्छः पतिं यं त्वं भजमानं शकुन्तले ॥ २७ ॥

हे शकुन्तले ! जिसको तुमने अपना पति मानकर जिसके साथ समागम किया है, वह राजा दुःषन्त धर्मात्मा, महात्मा और पुरुषोंमें श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः ।
य इमां सागरापाङ्गां कृत्स्नां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ २८ ॥

तुम्हारे गर्भसे संसारमें एक महात्मा महाबली पुत्र जन्म लेगा। जो सागरतककी इस सम्पूर्ण भूमिका भोग करेगा ॥ २८ ॥

परं चाभिप्रयातस्य चक्रं तस्य महात्मनः ।
भविष्यत्यप्रतिहतं सततं चक्रवर्तिनः ॥ २९ ॥

शत्रुके विरुद्ध रणयात्रा करनेके समय उस महात्मा चक्रवर्त्तीके रथके चक्र कभी नहीं रुकेंगे॥२९॥

ततः प्रक्षाल्य पादौ सा विश्रान्तं मुनिमब्रवीत् ।
विनिधाय ततो भारं संनिधाय फलानि च ॥ ३० ॥

इसके बाद शकुन्तलाने फल और यज्ञकी लकडीके बोझको रखकर मुनिके पांव धोए और विश्राम करते हुए मुनिसे बोली ॥ ३० ॥

मया पतिर्वृतो योऽसौ दुःषन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

पिता ! पुरुषश्रेष्ठ जिस इस दुःषन्तको मैंने पतिरूपमें वरण कर लिया है, अतः आप कृपाकर उस राजा और उसके मन्त्रियोंपर प्रसन्न होवें ॥ ३१ ॥

कण्व उवाच

चसन्न एव तस्याहं त्वत्कृते वरवर्णिनि ।
गृहाण च वरं मत्तस्तत्कृते यदभीप्सितम् ॥ ३२ ॥

कण्व बोले– हे बेटी ! मैं तुम्हारे लिये उसपर प्रसन्न ही हूं, हे शुभे ! तुम उसके लिए मुझसे जो इच्छा हो, वह वर मांगो ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो धर्मिष्ठतां वव्रे राज्याच्चास्खलनं तथा ।
शकुन्तला पौरवाणां दुःषन्तहितकाम्यया ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ २४८५ ॥

वैशम्पायन बोले– तब शकुन्तलाने दुःषन्तके हित करनेकी इच्छासे पौरवोंकी धर्मनिष्ठा और उनके राज्यसे च्युत न होनेका वर मांगा ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ २४८५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ६८ :

वैशम्पायन उवाच

प्रतिज्ञाय तु दुःषन्ते प्रतियाते शकुन्तला।
गर्भं सुषाव वामोरूः कुमारममितौजसम् ॥ १ ॥
त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु दीप्तानलसमद्युतिम्।
रूपौदार्यगुणोपेतं दौःषन्तिं जनमेजय ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– प्रतिज्ञामें आबद्ध होकर राजा दुःषन्तके राजधानीको लौट जानेपर सुन्दरी शकुन्तलाने तीन वर्षके पूरे होनेपर प्रज्वलित अग्निके समान अत्यन्त तेजस्वी रूपवान् उदार और गुणवान् दुःषन्तके एक कुमारको उत्पन्न किया ॥ १-२ ॥

जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतां वरः।
तस्याथ कारयामास वर्धमानस्य धीमतः ॥ ३ ॥

दिनोंदिन बढनेवाले उस बुद्धिमान् कुमारके पुण्यशालियोंमें श्रेष्ठ ऋषिने जातकर्मादि संस्कार किये ॥ ३ ॥

दन्तैः शुक्लैः शिखरिभिः सिंहसंहननो युवा।
चक्रांकितकरः श्रीमान्महामूर्धा महाबलः।
कुमारो देवगर्भाभः स तत्राशु व्यवर्धत ॥ ४ ॥

शुक्ल और तेज दांतसे युक्त, सिंहके समान कठोर, युवा, चक्रके चिह्नसे चिन्हित हाथवाला, महामूर्धा, अतिबलवान्, महाशक्तिशाली देवकुमारके समान वह कुमार मुनिके आश्रममें शीघ्र बढने लगा ॥ ४ ॥

षड्वर्ष एव बालः स कण्वाश्रमपदं प्रति।
व्याघ्रान्सिंहान्वराहांश्च गजांश्च महिषांस्तथा ॥ ५ ॥
बद्ध्वा वृक्षेषु बलवानाश्रमस्य समन्ततः।
आरोहन्दमयंश्चैव क्रीडंश्च परिधावति ॥ ६ ॥

वह बलवान् बालक छः वर्षकी अवस्थामें कण्वके आश्रममें व्याघ्र, सिंह, शूकर, भैंसे और हाथी आदिको पकडकर आश्रमके चारों ओर बांधकर उनपर चढकर, उनको वशमें करता हुआ और खेलता हुआ चारों ओर घूमता रहता था ॥ ५-६ ॥

ततोऽस्य नाम चक्रुस्ते कण्वाश्रमनिवासिनः।
अस्त्वयं सर्वदमनः सर्वं हि दमयत्ययम् ॥ ७ ॥

तब कण्वके आश्रममें रहनेवाले मुनिलोगोंने उन लीलाओंको देखकर उसका नाम "सर्वदमन" रखा, क्योंकि यह बालक सभी जीवोंका दमन करता था ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत ।
विक्रमेणौजसा चैव बलेन च समन्वितः ॥ ८ ॥

विक्रमसे तेजस्वी और बलवान् यह कुमार तभीसे सर्वदमन नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ८ ॥

तं कुमारमृषिर्दृष्ट्वा कर्म चास्यातिमानुषम् ।
समयो यौवराज्यायेत्यब्रवीच्च शकुन्तलाम् ॥ ९ ॥

महर्षि कण्वने तब कुमारका असाधारण बल और कार्य देखकर शकुन्तलासे कहा, कि इस बालकके युवराजके पदपर अभिषिक्त होनेका समय आ पहुंचा है ॥ ९ ॥

तस्य तद्बलमाज्ञाय कण्वः शिष्यानुवाच ह ।
शकुन्तलामिमां शीघ्रं सहपुत्रामितोऽश्रमात् ।
भर्त्रे प्रापयताद्यैव सर्वलक्षणपूजिताम् ॥ १० ॥

उसके उस बलको देखकर उन्होंने शिष्योंको बुलाकर कहा, कि तुम इस आश्रमसे पुत्र सहित इस शकुन्तलाको आज शीघ्र ही सब लक्षणोंसे युक्त पतिके घर पहुंचा दो ॥ १० ॥

नारीणां चिरवासो हि बान्धवेषु न रोचते ।
कीर्तिचारित्रधर्मघ्नस्तस्मान्नयत माचिरम् ॥ ११ ॥

स्त्रियोंका सदा पिता और भाईयोंके घरमें रहना अच्छा नहीं, ऐसा होनेसे कीर्ति, चरित्र और धर्म बिगड सकता है, सो इसको पतिके घर ले जानेमें थोडासा भी विलंब मत करो ॥ ११ ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्तामितौजसः ।
शकुन्तलां पुरस्कृत्य सपुत्रां गजसाह्वयम् ॥ १२ ॥

महातेजस्वी शिष्य लोग ऋषि कण्वकी आज्ञाको मानकर पुत्रसहित शकुन्तलाको आगे करके हस्तिनापुरको गए ॥ १२ ॥

गृहीत्वामरगर्भाभं पुत्रं कमललोचनम् ।
आजगाम ततः शुभ्रा दुःषन्तविदिताद्वनात् ॥ १३ ॥

तेजस्वी शकुन्तला भी अमर देवके समान प्रकाशमान् और कमलके समान नेत्रवाले अपने पुत्रको लेकर दुःषन्तके जाने हुए उस वनसे आई ॥ १३ ॥

अभिसृत्य च राजानं विदिता सा प्रवेशिता ।
सह तेनैव पुत्रेण तरुणादित्यवर्चसा ॥ १४ ॥

इसके बाद वह शकुन्तला उस तरुण सूर्यके सदृश तेजस्वी बालकके साथ राजाके द्वारपर पहुंचकर द्वारपालसे राजाको खबर देकर राजमन्दिरमें प्रविष्ट हुई ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पूजयित्वा यथान्यायमब्रवीत्तं शकुन्तला।
अयं पुत्रस्त्वया राजन्यौवराज्येऽभिषिच्यताम् ॥ १५ ॥

शकुन्तला राजाका यथायोग्य सत्कार कर उससे बोली– हे राजन्! इस पुत्रको यौवराज्य पदपर आप अभिषिक्त कीजिए ॥ १५ ॥

त्वया ह्ययं सुतो राजन्मय्युत्पन्नः सुरोपमः।
यथासमयमेतस्मिन्वर्तस्व पुरुषोत्तम ॥ १६ ॥

आपके इस पुत्रने मेरे गर्भसे जन्म लिया है; देवताके समान यह पुत्र आपहीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है; हे पुरुषश्रेष्ठ! आपने जिस प्रकार शर्त स्वीकार की थी वैसाही कार्य कीजिये ॥१६॥

यथा समागमे पूर्वं कृतः स समयस्त्वया।
तं स्मरस्व महाभाग कण्वाश्रमपदं प्रति ॥ १७ ॥

हे महाभाग! पहिले आपने मुनि कण्वके आश्रममें मुझसे सङ्गम करनेके समय जो प्रतिज्ञा की थी, उसको स्मरण कीजिये ॥ १७ ॥

सोऽथ श्रुत्वैव तद्वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि।
अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥ १८ ॥

तब शकुन्तलाके यह वचन सुनकर राजा दुःषन्तको अपने किये हुए पूर्व कार्यके स्मरण होने पर भी वह कहने लगा, कि मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। दुष्ट तपस्विनि! तू किसकी स्त्री है? ॥ १८ ॥

धर्मकामार्थसंबन्धं न स्मरामि त्वया सह।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद्वापीच्छसि तत्कुरु ॥ १९ ॥

तुझसे मेरा धर्म, अर्थ और काम किसी भी विषयके सम्बन्धका मुझको स्मरण नहीं होता, इसलिए तू अब जो चाहती है कर, चाहे चली जा, चाहे रह ॥ १९ ॥

सैवमुक्ता वरारोहा व्रीडितेव मनस्विनी।
विसंज्ञेव च दुःखेन तस्थौ स्थाणुरिवाचला ॥ २० ॥

दुःषन्तके ऐसी निष्ठुर वाणी कहनेपर मनस्विनी और सुन्दर कमलके समान शकुंतला लज्जासे मलिन और अचेतन बनकर दुःखसे जड खंभेके समान हो गई ॥ २० ॥

संरम्भामर्षताम्राक्षी स्फुरमाणोष्ठसंपुटा।
कटाक्षैर्निर्दहन्तीव तिर्यग्राजानमैक्षत ॥ २१ ॥

अभिमान और दुःखमें उसकी आंखें लाल हो गयीं और दोनों होठ हिलने लगे। तब वह तिरछी दृष्टिसे राजाकी ओर देखकर कटाक्षसे मानों उसको भस्म करने लगी ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आकारं गूहमाना च मन्युनाभिसमीरिता।
तपसा संभृतं तेजो धारयामास वै तदा ॥ २२ ॥

तब उसने क्रोधसे प्रेरित होनेपर भी बाहर कुछ न प्रगट कर अपने क्रोधको अन्दर ही अन्दर छिपाकर तपसे बटोरे हुए तेजको रोक लिया ॥ २२ ॥

सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा दुःखामर्षसमन्विता।
भर्तारमभिसंप्रेक्ष्य क्रुद्धा वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥
जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे।
न जानामीति निःसङ्गं यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥ २४ ॥

इसके बाद कुछ काल सोचकर दुःख और क्रोधसे युक्त होके पतिकी ओर देखकर क्रोधसे यह वचन बोली– महाराज ! आप सबकुछ जान करके भी क्यों नीच जनके समान बिना कुछ सोचे विचारे "नहीं जानता" यह बात कह रहे हैं ? ॥ २३-२४ ॥

अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च।
कल्याण बत साक्षी त्वं मात्मानमवमन्यथाः ॥ २५ ॥

इस बातकी सत्यता और असत्यताको आपका हृदय जानता है, अतः, हे भद्र ! आपके अपने कामोंकी साक्षी देनेवाले अपनी मंगल आत्माकी अवहेलना मत कीजिए ॥ २५ ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ॥ २६ ॥

जो जन हृदयमें कुछ और रखता है और बाहर कुछ और प्रकट करता है, ऐसा कौनसा पाप है, जो उस आत्माकी हत्या करनेवाले मनुष्यसे नहीं होता ! ॥ २६ ॥

एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम्।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य यस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥ २७ ॥

क्या आपने यह समझ लिया है, कि आपने अकेले ही यह कार्य किया है, (क्या आप यह समझते हैं कि वहां दूसरा कोई नहीं था, अतः कौन जानेगा ?) क्या आप नहीं जानते, कि पुराण मुनि परमेश्वर सबके हृदय मन्दिरमें सदा सजग है ? जो सभी पाप कर्मोंको जाननेवाला है। आप उसके सामने ही यह पाप कर रहे हैं ॥ २७ ॥

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति।
विदन्ति चैनं देवाश्च स्वश्चैवान्तरपूरुषः ॥ २८ ॥

लोग पाप करके समझते हैं, कि किसीने मुझे नहीं जाना, पर देव और हृदयके अन्दर रहनेवाले परमपुरुष सब कुछ जानते हैं ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ २९ ॥

आदित्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, धरती, जल, हृदय, यम, दिन, रात्रि, दोनों संध्या और धर्म यह सब मनुष्यके सम्पूर्ण चरित्रोंको जानते हैं ॥ २९ ॥

यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम्।
हृदि स्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति ॥ ३० ॥

सब कामोंके साक्षी हृदयमें स्थित क्षेत्रज्ञ पुरुष जिनपर प्रसन्न रहते हैं, वैवस्वत यम भी उनके सम्पूर्ण दुष्कर्मोंको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥

न तु तुष्यति यस्यैष पुरुषस्य दुरात्मनः।
तं यमः पापकर्माणं निर्यातयति दुष्कृतम् ॥ ३१ ॥

और जिस दुरात्माकी आत्मा उससे सन्तुष्ट नहीं रहती, काल उस दुष्कर्म और पाप कर्म करनेवालेको नष्ट कर देता है ॥ ३१ ॥

अवमन्यात्मनात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
देवा न तस्य श्रेयांसो यस्यात्मापि न कारणम् ॥ ३२ ॥

जो जन अपनी आत्माका अपमान करके कुछका कुछ विश्वास दिलाता और आत्माकी गवाही भी नहीं मानता, उसका हित देवगण भी नहीं करते ॥ ३२ ॥

स्वयं प्राप्तेति मामेवं मावमंस्थाः पतिव्रताम्।
अर्घ्यार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥ ३३ ॥

मैं स्वयं आ पहुंची हूं, यह समझकर मुझ पतिव्रताका अपमान न कीजिये। आदरके योग्य तथा स्वयं आयी हुई अपनी स्त्रीका आदर आप नहीं करते हैं ॥ ३३ ॥

किमर्थं मां प्राकृतवदुपप्रेक्षसि संसदि।
न खल्वहमिदं शून्ये रौमि किं न शृणोषि मे ॥ ३४ ॥

आप क्यों मूर्ख जनकी भांति इस सभामें मुझको तुच्छ समझ रहे हैं? मैं निर्जन जगहमें तो चिल्ला नहीं रही हूं, फिर आप मेरी बात क्यों नहीं सुनते ॥ ३४ ॥

यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि।
दुःषन्त शतधा मूर्धा ततस्तेऽद्य फलिष्यति ॥ ३५ ॥

हे दुषन्त! यदि प्रार्थना करनेवाली मेरी प्रार्थना आप नहीं सुनेंगे, तो आज आपका सिर सैंकडों भागोंमें फट जायगा ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भार्यां पतिः संप्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः ।
जायाया इति जायात्वं पुराणाः कवयो विदुः ॥ ३६ ॥

प्राचीन ज्ञानीलोग कहा करते हैं, कि पति स्वयं गर्भके स्वरूपमें पत्नीमें प्रविष्ट होकर फिर पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है । इसीलिए पत्नी जाया कही जाती है ॥ ३६ ॥

यदागमवतः पुंसस्तदपत्यं प्रजायते ।
तत्तारयति संतत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥ ३७ ॥

ज्ञानी पुरुषके जो पुत्र होता है वह पुत्र सन्तानोंसे परलोकवासी पितरोंका उद्धार करता है ॥ ३७ ॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ ३८ ॥

भगवान् स्वयंभूने स्वयं कहा है, कि पुत्र पुन्नामक नरकसे अपने पिताकी रक्षा करता है इसलिये वह पुत्र कहा जाता है ॥ ३८ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥ ३९ ॥

जो गृहकार्योंमें चतुर है वही भार्या है, जिसने पुत्र प्रसव किया है वही भार्या है, जिसके लिए पति ही प्राण है वही भार्या है, जो पतिव्रता है वही भार्या है ॥ ३९ ॥

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मित्रं मरिष्यतः ॥ ४० ॥

मनुष्योंका स्त्री आधा अङ्ग है, भार्या सबसे बढ कर मित्र है, भार्या ही धर्मार्थ काम इन तीनों वर्गोंकी जड है और भार्या ही मरते हुएका मित्र है ॥ ४० ॥

भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः ।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥ ४१ ॥

जिनकी भार्या है वे वही क्रियादि क्रिया करते हैं; जिनकी भार्या है वही गृहवासी हैं । जिनकी भार्या है, वही आमोद-प्रमोदसे समय बिताते हैं; जिनकी भार्या है, वही श्रीसे युक्त होते हैं ॥ ४१ ॥

सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ।
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ॥ ४२ ॥

मधुर बोलनेवाली ये भार्यायें एकान्तमें अच्छे परामर्श देनेवाले मित्रके समान होती हैं; धर्म-कर्ममें हितैषी पिताके समान हैं, पीडाकी दशामें ये भार्यायें स्नेहवती माताके समान होती हैं ॥ ४२ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ २९ ॥

आदित्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, धरती, जल, हृदय, यम, दिन, रात्रि, दोनों संध्या और धर्म यह सब मनुष्यके सम्पूर्ण चरित्रोंको जानते हैं ॥ २९ ॥

यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम्।
हृदि स्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति ॥ ३० ॥

सब कामोंके साक्षी हृदयमें स्थित क्षेत्रज्ञ पुरुष जिनपर प्रसन्न रहते हैं, वैवस्वत यम भी उनके सम्पूर्ण दुष्कर्मोंको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥

न तु तुष्यति यस्यैष पुरुषस्य दुरात्मनः।
तं यमः पापकर्माणं निर्यातयति दुष्कृतम् ॥ ३१ ॥

और जिस दुरात्माकी आत्मा उससे सन्तुष्ट नहीं रहती, काल उस दुष्कर्म और पाप कर्म करनेवालेको नष्ट कर देता है ॥ ३१ ॥

अवमन्यात्मनात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
देवा न तस्य श्रेयांसो यस्यात्मापि न कारणम् ॥ ३२ ॥

जो जन अपनी आत्माका अपमान करके कुछका कुछ विश्वास दिलाता और आत्माकी गवाही भी नहीं मानता, उसका हित देवगण भी नहीं करते ॥ ३२ ॥

स्वयं प्राप्तेति मामेवं मावमंस्थाः पतिव्रताम्।
अर्घ्यार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥ ३३ ॥

मैं स्वयं आ पहुंची हूं, यह समझकर मुझ पतिव्रताका अपमान न कीजिये। आदरके योग्य तथा स्वयं आयी हुई अपनी स्त्रीका आदर आप नहीं करते हैं ॥ ३३ ॥

किमर्थं मां प्राकृतवदुपप्रेक्षसि संसदि।
न खल्वहमिदं शून्ये रौमि किं न शृणोषि मे ॥ ३४ ॥

आप क्यों मूर्ख जनकी भांति इस सभामें मुझको तुच्छ समझ रहे हैं? मैं निर्जन जगहमें तो चिल्ला नहीं रही हूं, फिर आप मेरी बात क्यों नहीं सुनते ॥ ३४ ॥

यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि।
दुःषन्त शतधा मूर्धा ततस्तेऽद्य फलिष्यति ॥ ३५ ॥

हे दुषन्त! यदि प्रार्थना करनेवाली मेरी प्रार्थना आप नहीं सुनेंगे, तो आज आपका सिर सैंकडों भागोंमें फट जायगा ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भार्यां पतिः संप्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः ।
जायाया इति जायात्वं पुराणाः कवयो विदुः ॥ ३६ ॥

प्राचीन ज्ञानीलोग कहा करते हैं, कि पति स्वयं गर्भके स्वरूपमें पत्नीमें प्रविष्ट होकर फिर पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है । इसीलिए पत्नी जाया कही जाती है ॥ ३६ ॥

यदागमवतः पुंसस्तदपत्यं प्रजायते ।
तत्तारयति संतत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥ ३७ ॥

ज्ञानी पुरुषके जो पुत्र होता है वह पुत्र सन्तानोंसे परलोकवासी पितरोंका उद्धार करता है ॥ ३७ ॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ ३८ ॥

भगवान् स्वयंभूने स्वयं कहा है, कि पुत्र पुन्नामक नरकसे अपने पिताकी रक्षा करता है इसलिये वह पुत्र कहा जाता है ॥ ३८ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥ ३९ ॥

जो गृहकार्योंमें चतुर है वही भार्या है, जिसने पुत्र प्रसव किया है वही भार्या है, जिसके लिए पति ही प्राण है वही भार्या है, जो पतिव्रता है वही भार्या है ॥ ३९ ॥

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मित्रं मरिष्यतः ॥ ४० ॥

मनुष्योंका स्त्री आधा अङ्ग है, भार्या सबसे बढ कर मित्र है, भार्या ही धर्मार्थ काम इन तीनों वर्गोंकी जड है और भार्या ही मरते हुएका मित्र है ॥ ४० ॥

भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः ।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥ ४१ ॥

जिनकी भार्या है वे वही क्रियादि क्रिया करते हैं; जिनकी भार्या है वही गृहवासी हैं । जिनकी भार्या है, वही आमोद–प्रमोदसे समय बिताते हैं; जिनकी भार्या है, वही श्रीसे युक्त होते हैं ॥ ४१ ॥

सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ।
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ॥ ४२ ॥

मधुर बोलनेवाली ये भार्यायें एकान्तमें अच्छे परामर्श देनेवाले मित्रके समान होती हैं; धर्म-कर्ममें हितैषी पिताके समान हैं, पीडाकी दशामें ये भार्यायें स्नेहवती माताके समान होती हैं ॥ ४२ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कान्तारेष्वपि विश्रामो नरस्याध्वनिकस्य वै ।
यः सदारः स विश्वास्यस्तस्माद्दाराः परा गतिः ॥ ४३ ॥

पत्नी वनमें पथिक पतिके लिए विश्रामका स्थल है; जिसकी भार्या रहती है, उसीका सब लोग विश्वास करते हैं; इसलिए भार्या ही मनुष्योंकी परम गति है ॥ ४३ ॥

संसरन्तमपि प्रेतं विषमेष्वेकपातिनम् ।
भार्यैवान्वेति भर्तारं सततं या पतिव्रता ॥ ४४ ॥

किसीके सांसारिक लीलाके अन्त होनेके बाद नरकमें जानेपर उसके उद्धारके निमित्त केवल पतिव्रता भार्या ही साथी होती है ॥ ४४ ॥

प्रथमं संस्थिता भार्या पतिं प्रेत्य प्रतीक्षते ।
पूर्वं मृतं च भर्तारं पश्चात्साध्व्यनुगच्छति ॥ ४५ ॥

पत्नीके पहिले परलोक सिधार जानेपर वह परलोकमें पतिके निमित्त पथ ताकती रहती है, और पतिके पहिले देह छोड जानेपर सती भार्या उसके पीछे चली जाती है ॥ ४५ ॥

एतस्मात्कारणाद्राजन्पाणिग्रहणमिष्यते ।
यदाप्नोति पतिर्भार्यामिह लोके परत्र च ॥ ४६ ॥

हे राजन् ! क्योंकि भर्ता इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें भार्याको प्राप्त करता है, इसीलिये विवाहकर्मकी आवश्यकता होती है ॥ ४६ ॥

आत्मात्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ।
तस्माद्भार्यां नरः पश्येन्मातृवत्पुत्रमातरम् ॥ ४७ ॥

पण्डितलोग कहा करते हैं, कि अपनी आत्मासे उत्पन्न हुआ ही पुत्र कहाता है, अतः मनुष्य भार्याको अपनी माताके समान समझे ॥ ४७ ॥

भार्यायां जनितं पुत्रमादर्शे स्वमिवाननम् ।
ह्लादते जनिता प्रेक्ष्य स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥ ४८ ॥

पुण्यवान् स्वर्ग पानेसे जैसे आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार आईनेमें देखे जाते हुए मुखके समान भार्याके गर्भसे जन्म लिये हुए अपने पुत्रको देखकर जन्मदाता आनन्दित होते हैं ॥४८॥

दह्यमाना मनोदुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः ।
ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्ताः सलिलेष्विव ॥ ४९ ॥

पसीनेसे नहाया हुआ जन जिस प्रकार ठण्डे जलसे सन्तुष्ट होता है, उसी प्रकार मनुष्यगण मनःपीडासे जलने और रोगोंसे जकडे जानेपर भी भार्यासे आनन्दित होते हैं ॥ ४९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुसंरब्धोऽपि रामाणां न ब्रूयादप्रियं बुधः ।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य च ॥ ५० ॥

रति, प्रीति और धर्म सब ही भार्याके हाथमें देखकर ज्ञानीको चाहिये कि वह अति क्रोधित होनेपर भी पत्नीसे कभी अप्रिय बोले नहीं ॥ ५० ॥

आत्मनो जन्मनः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम् ।
ऋषीणामपि का शक्तिः स्रष्टुं रामामृते प्रजाः ॥ ५१ ॥

स्त्रियां आत्माका सनातन और पवित्र जन्मक्षेत्र हैं; ऋषियोंमें भी क्या शक्ति है, कि वे स्त्रीके बिना प्रजा रच सकें ? ॥ ५१ ॥

परिपत्य यदा सूनुर्धरणीरेणुगुण्ठितः ।
पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमिवास्त्यधिकं ततः ॥ ५२ ॥

जब पुत्र धरतीके धूलमें शरीरको सानकर पास आकरके पिताके अंगोंसे लिपट जाता है तब उससे और अधिक सुख क्या होगा ? ॥ ५२ ॥

स त्वं स्वयमनुप्राप्तं साभिलाषमिमं सुतम् ।
प्रेक्षमाणं च कांक्षेण किमर्थमवमन्यसे ॥ ५३ ॥

हे राजन् ! स्वयं आकर उत्साहयुक्त नेत्रोंसे आपको साभिलाष होकर देखनेवाले अपने पुत्रका आप किसलिये अपमान कर रहे हैं ? ॥ ५३ ॥

अण्डानि बिभ्रति स्वानि न भिन्दन्ति पिपीलिकाः ।
न भरेथाः कथं नु त्वं धर्मज्ञः सन्स्वमात्मजम् ॥ ५४ ॥

चींटियां छोटी प्राणी होनेपर भी प्रसव किये हुए अण्डोंकी रक्षा करती हैं, उन्हें फोडती नहीं; फिर आप धर्मज्ञ होनेपर भी अपने पुत्रको क्यों नहीं पाल रहे हैं ? ॥ ५४ ॥

न वाससां न रामाणां नापां स्पर्शस्तथा सुखः ।
शिशोरालिङ्गयमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः ॥ ५५ ॥

छोटी सन्तानके गलेसे लगनेसे उसका अनुभव पिताको जैसा सुखदायी जान पडता है, उतना कोमल वस्त्र, जल और नारीका अनुभव भी सुखदायी नहीं होता ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।
गुरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार दोपाये जन्तुओंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं, अथवा जिस प्रकार चार पायोंमें गौ श्रेष्ठ होती है और माननीय जनोंमें गुरु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सुखको देनेवाले स्पर्शोंमें पुत्रका स्पर्श श्रेष्ठ होता है ॥ ५६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्पृशतु त्वां समाश्लिष्य पुत्रोऽयं प्रियदर्शनः।
पुत्रस्पर्शात्सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते ॥ ५७ ॥

दीखनेमें सुन्दर यह पुत्र आपके गलेसे लगकर आपको छुए, क्योंकि पुत्रस्पर्शसे दूसरा सुखदायी स्पर्श पृथ्वीमें नहीं है ॥ ५७ ॥

त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु प्रजाताहमरिंदम।
इमं कुमारं राजेन्द्र तव शोकप्रणाशनम् ॥ ५८ ॥

हे शत्रुओंके विनाशक राजेन्द्र! तीनवर्ष पूरे होनेपर मैंने आपके इस शोकनाशी पुत्रको प्रसूत किया है ॥ ५८ ॥

आहर्ता वाजिमेधस्य शतसङ्ख्यस्य पौरव।
इति वागंतरिक्षे मां सूतकेऽभ्यवदत्पुरा ॥ ५९ ॥

हे पौरव! पहले प्रसवकालमें आकाशवाणीने कहा था कि "यह पुत्र सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा!" ॥ ५९ ॥

ननु नामाङ्कमारोप्य स्नेहाद्ग्रामान्तरं गताः।
मूर्ध्नि पुत्रानुपाघ्राय प्रतिनंदन्ति मानवाः ॥ ६० ॥

मनुष्य दूसरे गांवमें जाकर जब घरको लौटते हैं, तब पुत्रको गोदमें लेकर और उसका सिर चूम कर परमानन्द प्राप्त करते हैं ॥ ६० ॥

वेदेष्वपि वदंतीमं मंत्रवादं द्विजातयः।
जातकर्मणि पुत्राणां तवापि विदितं तथा ॥ ६१ ॥

पुत्रके जातकर्ममें ब्राह्मणलोग वेदोंमें लिखे गए इस मंत्रवादका पाठ करते हैं वह आपको भी ज्ञात ही है ॥ ६१ ॥

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ ६२ ॥

(वह मंत्रवाद इस प्रकार है) "तुम मेरे अङ्गसे निकले हो, तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न हुए हो, तुम पुत्ररूपमें मेरी आत्मा ही हो, अतः, हे पुत्र! तुम्हारी सौ वर्षकी आयु हो ॥६२॥

पोषो हि त्वदधीनो मे संतानमपि चाक्षयम्।
तस्मात्त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम् ॥ ६३ ॥

हे पुत्र! मेरा जीवन और वंशका अक्षय होना तुम्हारे ही अधीन है, अतः तुम शत वर्षकी आयु पाकर परम सुखसे समय व्यतीत करो" ॥ ६३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्वदङ्गेभ्यः प्रसूतोऽयं पुरुषात्पुरुषोऽपरः।
सरसीवामलेऽऽत्मानं द्वितीयं पश्य मे सुतम् ॥ ६४ ॥

हे राजन् ! आपके अङ्गसे यह दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ है, निर्मल सरोवरमें दीख पडती हुई अपनी परछांईके समान ही अपनी दूसरी आत्मा इस मेरे पुत्रमें आप देख लीजिये ॥ ६४ ॥

यथा ह्याहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यात्प्रणीयते।
तथा त्वत्तः प्रसूतोऽयं त्वमेकः सन्द्विधा कृतः ॥ ६५ ॥

जिस प्रकार एक गार्हपत्य अग्निसे दूसरी आहवनीय अग्निकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही एक होने पर भी आपसे जन्मे हुए इस पुत्रके स्वरूपमें आप स्वयं दो भाग हुए हैं ॥ ६५ ॥

मृगापकृष्टेन हि ते मृगयां परिधावता।
अहमासादिता राजन्कुमारी पितुराश्रमे ॥ ६६ ॥

महाराज ! मैं जब पिताके आश्रममें कुमारी थी, तब आपने मृगयामें जाकर मृगका पीछा करते हुए वहां पहुंच करके मुझसे विवाह किया था ॥ ६६ ॥

उर्वशी पूर्वचित्तिश्च सहजन्या च मेनका।
विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वराः ॥ ६७ ॥

उर्वशी, पूर्वचित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची यह छः ही अप्सराओंमें श्रेष्ठ मानी जाती हैं ॥ ६७ ॥

तासां मां मेनका नाम ब्रह्मयोनिर्वराप्सराः।
दिवः संप्राप्य जगतीं विश्वामित्रादजीजनत् ॥ ६८ ॥

उनमें ब्रह्मासे जन्मी हुई श्रेष्ठ अप्सरा मेनकाने देवलोकसे भूतलमें उतर कर विश्वामित्रके वीर्यसे गर्भधारण करके मुझे उत्पन्न किया था ॥ ६८ ॥

सा मां हिमवतः पृष्ठे सुषुवे मेनकाप्सराः।
अवकीर्य च मां याता परात्मजामिवासती ॥ ६९ ॥

इसके बाद सतीत्वसे रहित उस अप्सरा मेनकाने हिमाचलके चट्टानपर मुझको उत्पन्न किया और परायी सन्तानकी तरह मुझे छोडकर चली गयी ॥ ६९ ॥

किं नु कर्माशुभं पूर्वं कृतवत्यस्मि जन्मनि।
यदहं बान्धवैस्त्यक्ता बाल्ये संप्रति च त्वया ॥ ७० ॥

हा ! मैंने पूर्व जन्म और इस जन्ममें कैसा पाप किया था, कि बचपनमें पिता माताने मुझे त्याग दिया और अब आप भी मुझको छोड रहे हैं ॥ ७० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कामं त्वया परित्यक्ता गमिष्याम्यहमाश्रमम् ।
इमं तु बालं संत्यक्तुं नार्हस्यात्मजमात्मना ॥ ७१ ॥

आपके द्वारा छोड दिए जानेपर मैं स्वेच्छासे निज आश्रमको चली जाऊंगी, पर अपनी आत्मासे उत्पन्न इस बालकको त्याग देना आपके लिए उचित नहीं है ॥ ७१ ॥

दुःषन्त उवाच

न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले ।
असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः ॥ ७२ ॥

दुःषन्त बोला– हे शकुन्तले ! मैं नहीं जानता, कि तुम्हारा गर्भोत्पन्न यह बालक मेरा पुत्र है, वा नहीं; तुम्हारी इस बातपर कौन विश्वास करेगा ? क्योंकि स्त्रियां प्रायः झूठी बात कहा करती हैं ॥ ७२ ॥

मेनका निरनुक्रोशा बन्धकी जननी तव ।
यया हिमवतः पृष्ठे निर्माल्येव प्रवेरिता ॥ ७३ ॥

विशेषकर तुम्हारी जननी मेनका व्यभिचारिणी और दयाहीना है जिसने मालाको त्यागनेकी भांति तुमको हिमाचलकी पीठपर छोड दिया था ॥ ७३ ॥

स चापि निरनुक्रोशः क्षत्रयोनिः पिता तव ।
विश्वामित्रो ब्राह्मणत्वे लुब्धः कामपरायणः ॥ ७४ ॥

क्षत्रियके वंशमें उत्पन्न होनेपर भी ब्राह्मणत्व पानेका लोभ करनेवाले तुम्हारे पिता विश्वामित्र भी दयाहीन और बडे कामी थे ॥ ७४ ॥

मेनकाप्सरसां श्रेष्ठा महर्षीणां च ते पिता ।
तयोरपत्यं कस्मात्त्वं पुंश्चलीवाभिधास्यसि ॥ ७५ ॥

यदि यह कहो, कि मेनका अप्सराओंमें और विश्वामित्र ऋषियोंमें श्रेष्ठ हैं, तो फिर तुम उनकी सन्तान होकरके क्यों एक वेश्याके समान बात कह रही हो ? ॥ ७५ ॥

अश्रद्धेयमिदं वाक्यं कथयन्ती न लज्जसे ।
विशेषतो मत्सकाशे दुष्टतापसि गम्यताम् ॥ ७६ ॥

यह श्रद्धाके अयोग्य बातके कहनेमें तुमको लज्जा क्यों नहीं होती ? और वह भी तुम मेरे सामने यह बात कह रही हो; अतः, हे दुष्ट तपस्विनी ! तुम यहांसे चली जाओ ॥ ७६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्व महर्षिः सदैवोग्रः साप्सरा क्व च मेनका ।
क्व च त्वमेवं कृपणा तापसीवेषधारिणी ॥ ७७ ॥

वह देवोंमें भी सर्वश्रेष्ठ महर्षि कहां ? और अप्सराओंमें श्रेष्ठ वह मेनका कहां ? और नीच तपस्विनीका वेष बनायी हुई तू कहां ? ॥ ७७ ॥

अतिकायश्च पुत्रस्ते बालोऽपि बलवानयम् ।
कथमल्पेन कालेन शालस्कन्ध इवोद्गतः ॥ ७८ ॥

तेरा यह पुत्र बालक होनेपर भी मोटा ताजा और बलिष्ठ दीख पडता है, थोडे कालहीमें यह कैसे शालवृक्षसा बढ गया ? ॥ ७८ ॥

सुनिकृष्टा च योनिस्ते पुंश्चली प्रतिभासि मे ।
यदृच्छया कामरागाज्जाता मेनकया ह्यसि ॥ ७९ ॥

तेरा जन्म बडा नीच है, मुझे तो तू कोई वेश्यासी लगती है। मेनकाने कामके वशमें होकर जैसे चाहा वैसे ही तुझको पैदा कर दिया है ॥ ७९ ॥

सर्वमेतत्परोक्षं मे यत्त्वं वदसि तापसि ।
नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ २५६५ ॥

हे तापसि ! तू जो कुछ कहती है, वह सब मेरा अनजाना, अनसुना और अनसोचा है; मैं तुझको नहीं जानता, अतः जहां तेरी इच्छा हो वहां चली जा ॥ ८० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ २५६५ ॥

: ६९ :

शकुन्तलोवाच

राजन्सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यसि ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि ॥ १ ॥

शकुन्तला बोली– राजन् ! तुम सरसोंके समान पराये दोषको तो देखते हो, पर अपना दोष बेलके समान होनेपर भी नहीं देखते ॥ १ ॥

मेनका त्रिदशेष्वेव त्रिदशाश्चानु मेनकाम् ।
ममैवोद्रिच्यते जन्म दुःषन्त तव जन्मतः ॥ २ ॥

हे दुःषन्त ! मेनका देवोंकीही प्रेमिका और देवगण मेनकाहीके प्रेमी हैं, अतः तुम्हारे जन्मसे मेरा ही जन्म श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्षितावटासि राजंस्त्वमन्तरिक्षे चराम्यहम्।
आवयोरन्तरं पश्य मेरुसर्षपयोरिव ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र ! देखो, मेरु और सरसोंके समान हम दोनोंमें भेद है, तुम धरतीपर चलते हो और मैं आकाशमें उडती हूं ॥ ३ ॥

महेन्द्रस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च।
भवनान्यनुसंयामि प्रभावं पश्य मे नृप ॥ ४ ॥

हे नृप ! देखो, मेरा प्रभाव कितना है; मैं महेन्द्र, कुबेर, यम और वरुण इनके घरोंमें जा सकती हूं ॥ ४ ॥

सत्यश्चापि प्रवादोऽयं यं प्रवक्ष्यामि तेऽनघ।
निदर्शनार्थं न द्वेषात्तच्छ्रुत्वा क्षन्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

हे अनघ ! एक सच्ची कहावत यह है, मैं उदाहरणके लिये आपसे कहती हूं, द्वेषसे नहीं कहती, सो आप इसे सुनकर मुझे क्षमा करें ॥ ५ ॥

विरूपो यावदादर्शे नात्मनः पश्यते मुखम्।
मन्यते तावदात्मानमन्येभ्यो रूपवत्तरम् ॥ ६ ॥

कुरूप जन जबतक दर्पणमें अपना मुख नहीं देख लेता, तबतक अपनेको औरोंसे सुन्दर समझता है ॥ ६ ॥

यदा तु मुखमादर्शे विकृतं सोऽभिवीक्षते।
तदेतरं विजानाति आत्मानं नेतरं जनम् ॥ ७ ॥

पर जब दर्पणमें अपना भद्दा मुख देख लेता है, तब वह अपनेको एक दूसरा ही आदमी समझने लगता है ॥ ७ ॥

अतीव रूपसम्पन्नो न किंचिदवमन्यते।
अतीव जल्पन्दुर्वाचो भवतीह विहेठकः ॥ ८ ॥

अच्छे रूपवान् जन किसीका अनादर नहीं करते; बहुत कडी बात कहनेवाले लोग निन्दक या औरोंको पीडा देनेवाले कहे जाते हैं ॥ ८ ॥

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव सूकरः ॥ ९ ॥

सूअर जैसे और सब वस्तुओंमेंसे केवल विष्ठाको ही चुन लेता है, वैसे ही मूर्ख जन भी कहनेवालेके हिताहित वाक्योंमेंसे केवल अहित वाक्यहीको चुनते हैं ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥ १० ॥

हंस जैसे जल और दूधमेंसे जलके भागको छोडकर दूध ले लेता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष कहनेवालेकी हिताहित बातोंको सुनकर केवल गुणयुक्त बातको ही चुनते हैं ॥ १० ॥

अन्यान्परिवदन्साधुर्यथा हि परितप्यते ।
तथा परिवदन्नन्यांस्तुष्टो भवति दुर्जनः ॥ ११ ॥

औरोंकी निन्दा करके जिस प्रकार साधु दुःखी होते हैं, वैसे ही दूसरोंकी निन्दा करके असाधु जन प्रसन्न होते हैं ॥ ११ ॥

अभिवाद्य यथा वृद्धान्सन्तो गच्छन्ति निर्वृतिम् ।
एवं सज्जनमाक्रुश्य मूर्खो भवति निर्वृतः ॥ १२ ॥

साधुजन वृद्धोंका सम्मान कर जैसे सन्तुष्ट होते हैं, वैसे ही निन्दित जन सज्जनोंकी निन्दा करके आनन्दित होते हैं ॥ १२ ॥

सुखं जीवन्त्यदोषज्ञा मूर्खा दोषानुदर्शिनः ।
यत्र वाच्याः परैः सन्तः परानाहुस्तथाविधान् ॥ १३ ॥

मूर्खलोग नहीं जानते, कि दोष क्या है, पर पराये दोषोंके देखनेवाले बनकर सुखचैनसे समय बिताते हैं; वे जिन दोषोंके कारण पण्डितोंसे निन्दनीय होते हैं, पण्डितोंको उन्हीं दोषोंसे युक्त बताकर उनकी निन्दा किया करते हैं ॥ १३ ॥

अतो हास्यतरं लोके किंचिदन्यन्न विद्यते ।
यत्र दुर्जन इत्याह दुर्जनः सज्जनं स्वयम् ॥ १४ ॥

संसारमें इससे अधिक हंसीकी बात और क्या हो सकती है, कि एक मनुष्य स्वयं दुर्जन होकर सुजनको दुर्जन कह कर लाञ्छित करे ॥ १४ ॥

सत्यधर्मच्युतात्पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव ।
अनास्तिकोऽप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः ॥ १५ ॥

जिस प्रकार क्रोधित सर्पसे भय होता है, वैसे ही सच्चे धर्मसे गिरे हुए जनसे नास्तिक भी भय खाता है, फिर आस्तिकके भयभीत होनेमें कौनसा अचरज है ? ॥ १५ ॥

स्वयमुत्पाद्य वै पुत्रं सदृशं योऽवमन्यते ।
तस्य देवाः श्रियं घ्नन्ति न च लोकानुपाश्नुते ॥ १६ ॥

जो पुरुष स्वयं अपने समान ही सन्तानको उत्पन्न करके फिर उसका अपमान करता है, देवगण उसकी श्री बिगाड देते हैं और उसको स्वर्गभोग नहीं मिलता ॥ १६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुलवंशप्रतिष्ठां हि पितरः पुत्रमब्रुवन्।
उत्तमं सर्वधर्माणां तस्मात्पुत्रं न संत्यजेत् ॥ १७ ॥

पितृगण पुत्रको वंश और कुलकी प्रतिष्ठा और सर्व धर्मसे श्रेष्ठ कहा करते हैं, अतः ऐसे पुत्रको त्याग देना उचित नहीं है ॥ १७ ॥

स्वपत्नीप्रभवान्पञ्च लब्धान्क्रीतान्विवर्धितान्।
कृतानन्यासु चोत्पन्नान्पुत्रान्वै मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥

भगवान् मनुने स्वपत्नीसे उत्पन्न और अन्य स्त्रियोंसे उत्पन्न, पाये हुए, खरीदे हुए, विवर्धित तथा संस्कारित ये पांच प्रकारके पुत्र कहे हैं ॥ १८ ॥

धर्मकीर्त्यावहा नृणां मनसः प्रीतिवर्धनाः।
त्रायन्ते नरकाज्जाताः पुत्रा धर्मप्लवाः पितॄन् ॥ १९ ॥

हे राजसिंह ! मनुष्योंकी धर्म, कीर्ति और चित्तकी प्रीति बढानेवाले पुत्रगण जन्म लेकरके धर्मरूपी नाव बनकर पितरोंका नरकसे उद्धार करते हैं ॥ १९ ॥

स त्वं नृपतिशार्दूल न पुत्रं त्यक्तुमर्हसि।
आत्मानं सत्यधर्मौ च पालयानो महीपते।
नरेन्द्रसिंह कपटं न वोढुं त्वमिहार्हसि ॥ २० ॥

अतः, हे नरश्रेष्ठ राजन् ! सत्य, धर्म और अपनी आत्माका पालन करते हुए तुम्हें पुत्रको त्यागना नहीं चाहिये। हे नरेन्द्रसिंह ! इस विषयमें आपको कपट करना योग्य नहीं है ॥ २० ॥

वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः।
वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशताद्वरम् ॥ २१ ॥

सैंकडों कुओंको बनवानेकी अपेक्षा एक तालाब बनवाना श्रेष्ठ है और सैंकडों तालाब बनवानेकी अपेक्षा एक यज्ञ करना उत्तम है और सैंकडों यज्ञ करनेकी अपेक्षा एक पुत्र पैदा करना श्रेष्ठ है और सैंकडों पुत्रोंकी अपेक्षा एक सत्यनिष्ठा श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ २२ ॥

यदि तराजूके एक ओर हजार अश्वमेध और दूसरी ओर सत्यनिष्ठाको रखकर तौला जाय, तो सहस्र अश्वमेधोंसे एक सत्यनिष्ठा ही भारी होगी ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सत्यं च वदतो राजन्समं वा स्यान्न वा समम् ॥ २३ ॥

हे राजन् ! इसमें सन्देह है, कि सर्व वेदोंका पठन और सर्व तीर्थोंमें स्नान एक सत्य वाक्यके तुल्य होता है वा नहीं ॥ २३ ॥

नास्ति सत्यात्परो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम् ।
न हि तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते ॥ २४ ॥

सत्यसे बढकर दूसरा धर्म नहीं है, और न सत्यसे बढकर और कोई चीज ही है, असत्यसे बढकर पाप और कोई भी नहीं है ॥ २४ ॥

राजन्सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयः परः ।
मा त्याक्षीः समयं राजन्सत्यं संगतमस्तु ते ॥ २५ ॥

हे राजन् ! सत्य ही परब्रह्म और सत्य ही परम नियम है । हे नृपते ! आपने मुझसे जो प्रण किया था, उसका उल्लङ्घन न कीजिये; आपके साथ सत्यका संयोग हो ॥ २५ ॥

अनृते चेत्प्रसङ्गस्ते श्रद्दधासि न चेत्स्वयम् ।
आत्मनो हन्त गच्छामि त्वादृशे नास्ति संगतम् ॥ २६ ॥

पर यदि मिथ्या पर ही आपको प्रेम हो और उससे आप मेरी इस सत्य बात पर भी विश्वास न करें, तो मैं स्वयं चली जाती हूं; आपसे मेरे मिलनका प्रयोजन नहीं है ॥ २६ ॥

ऋतेऽपि त्वयि दुःषन्त शैलराजावतंसकाम् ।
चतुरन्तामिमामुर्वीं पुत्रो मे पालयिष्यति ॥ २७ ॥

हे दुःषन्त ! आपके स्वीकार न करने पर भी मेरा यह पुत्र शैलराजसे अलंकृत इस पृथ्वीका चारों समुद्रोंतक शासन करेगा ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतावदुक्त्वा वचनं प्रातिष्ठत शकुन्तला ।
अथान्तरिक्षे दुःषन्तं वागुवाचाशरीरिणी ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मन्त्रिभिश्चावृतं तदा ॥ २८ ॥

वैशम्पायन बोले– शकुन्तला यह सब कहकर जाने लगी । तब ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य और मन्त्रियोंसे घिरे हुए राजासे अन्तरिक्षमें शरीररहित वाणी बोली ॥ २८ ॥

भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुःषन्त मावमंस्थाः शकुंतलाम् ॥ २९ ॥

हे दुःषन्त ! माता चमडेके कोषके समान है, उसमेंसे पिता स्वयं ही पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, इसलिए पुत्रको पालो, पोषो । शकुन्तलाका अनादर मत करो ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ ३० ॥

हे नरदेव ! निज वीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तान यमराजके घरसे मनुष्यका उद्धार करती है; तुम्हींने यह गर्भाधान किया है। शकुन्तलाने जो कुछ कहा है, सब सत्य है ॥ ३० ॥

जाया जनयते पुत्रमात्मनोऽङ्गं द्विधा कृतम्।
तस्माद्भरस्व दुःषन्त पुत्रं शाकुन्तलं नृप ॥ ३१ ॥

हे दुःषन्त ! अपना अङ्ग दो भागोंमें बंटकर पुत्रके स्वरूपमें भार्या जन्म देती है; अतएव शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न निजपुत्रका पालन करो ॥ ३१ ॥

अभूतिरेषा कस्त्यज्याज्जीवञ्जीवन्तमात्मजम्।
शाकुन्तलं महात्मानं दौःषन्तिं भर पौरव ॥ ३२ ॥

हे पौरव ! जीते हुए पुत्रको तजकर जीवन धरना अति दुर्भाग्यकी बात है; अतः अपने पुत्रका त्याग कौन करेगा ? शकुन्तलाके गर्भजात इस महात्मा दुःषन्त—नन्दनका पालन करो ॥ ३२ ॥

भर्तव्योऽयं त्वया यस्मादस्माकं वचनादपि।
तस्माद्भवत्वयं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः ॥ ३३ ॥

हमारी बातके अनुसार तुमको इस पुत्रका भरण करना होगा, इस हेतु यह तुम्हारा पुत्र भरतके नामसे प्रसिद्ध हो ॥ ३३ ॥

तच्छ्रुत्वा पौरवो राजा व्याहृतं वै दिवौकसाम्।
पुरोहितममात्यांश्च संप्रहृष्टोऽब्रवीदिदम् ॥ ३४ ॥

पुरुकुलोत्पन्न राजा दुःषन्तने ऐसी देववाणी सुनकर प्रसन्नचित्तसे पुरोहित और मन्त्रियोंसे यह कहा ॥ ३४ ॥

शृण्वन्त्वेतद्भवन्तोऽस्य देवदूतस्य भाषितम्।
अहमप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम् ॥ ३५ ॥

आप इन देवदूतकी वाणी पर ध्यान दीजिये और मैं भी वैसा ही जानता हूं, कि इस पुत्रने मुझसे ही जन्म लिया है ॥ ३५ ॥

यद्यहं वचनादेव गृह्णीयामिममात्मजम्।
भवेद्धि शङ्का लोकस्य नैवं शुद्धो भवेदयम् ॥ ३६ ॥

यदि मैंने शकुन्तलाके वाक्यानुसार अपने पुत्रको स्वीकार कर लिया होता, तो प्रजा यह शङ्का करती कि यह पुत्र शुद्ध न भी हो सकता है ॥ ३६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं विशोध्य तदा राजा देवदूतेन भारत ।
हृष्टः प्रमुदितश्चापि प्रतिजग्राह तं सुतम् ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! तब राजाने देवदूतसे पुत्रको विशुद्ध कराकर प्रसन्न और प्रमुदित चित्तसे उस पुत्रको स्वीकार कर लिया ॥ ३७ ॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय सस्नेहं परिषस्वजे ।
सभाज्यमानो विप्रैश्च स्तूयमानश्च बन्दिभिः ।
स मुदं परमां लेभे पुत्रसंस्पर्शजां नृपः ॥ ३८ ॥

अनन्तर प्रीतियुक्त और प्रमुदित होकर कुमारका सिर चूमकर स्नेह प्रकट करते हुए गलेसे लगाया । तब ब्राह्मण लोग आशीस देने लगे और भाट स्तुति पढने लगे और राजा पुत्रस्पर्श का लाभकर परम आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥

तां चैव भार्यां धर्मज्ञः पूजयामास धर्मतः ।
अब्रवीच्चैव तां राजा सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ३९ ॥

आगे धर्मानुसार उस धर्मज्ञने पतिव्रता पत्नीका सम्मान कर समझाते हुए यह कहने लगे ॥ ३९ ॥

कृतो लोकपरोक्षोऽयं सम्बन्धो वै त्वया सह ।
तस्मादेतन्मया देवि त्वच्छुद्ध्यर्थं विचारितम् ॥ ४० ॥

देवि ! लोकोंमें कोई नहीं जानता, कि मैंने तुमसे विवाह किया है, इस हेतु तुम्हारी शुद्धिके निमित्त मैंने ऐसा व्यवहार किया ॥ ४० ॥

मन्यते चैव लोकस्ते स्त्रीभावान्मयि संगतम् ।
पुत्रश्चायं वृतो राज्ये मया तस्माद्विचारितम् ॥ ४१ ॥

और लोग ऐसा समझ सकते हैं, कि केवल सुखकी अभिलाषासे इनका सङ्गम हुआ, विवाह नहीं हुआ, यह विना विधिसे उत्पन्न हुआ पुत्र राज्यका अधिकारी हुआ है, बस लोकापवादको दूर करनेके लिये ऐसा चरित्र प्रकट किया ॥ ४१ ॥

यच्च कोपितयात्यर्थं त्वयोक्तोऽस्म्यप्रियं प्रिये ।
प्रणयिन्या विशालाक्षि तत्क्षान्तं ते मया शुभे ॥ ४२ ॥

हे प्रिय विशालाक्षी ! तुमने क्रोधित होकर मुझे जो अप्रिय बातें कही हैं, हे शुभे ! तुम मेरी प्यारी हो, इसलिये उन सबोंको क्षमा करता हूं ॥ ४२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तामेवमुक्त्वा राजर्षिर्दुःषन्तो महिषीं प्रियाम्।
वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास भारत ॥ ४३ ॥

हे भारत ! राजर्षि दुःषन्तने प्यारी महिषी शकुन्तलासे उस प्रकार कहकर अन्न, पान और वस्त्रादिकोंसे उसका सम्मान किया ॥ ४३ ॥

दुःषन्तश्च ततो राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा।
भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४४ ॥

उसके बाद राजा दुःषन्तने शकुन्तलाके गर्भजात पुत्रको "भरत" नाम देकर युवराजके पदमें अभिषिक्त किया ॥ ४४ ॥

तस्य तत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः।
भास्वरं दिव्यमजितं लोकसंनादनं महत् ॥ ४५ ॥

तबसे उन महात्मा भरतके प्रज्वलित, जीतनेके अयोग्य, दिव्य और लोकोंमें प्रख्यात महत् चक्र प्रवर्तित हुआ ॥ ४५ ॥

स विजित्य महीपालांश्चकार वशवर्तिनः।
चचार च सतां धर्मं प्राप चानुत्तमं यशः ॥ ४६ ॥

उसने महीपालोंको जीतकर वशमें किया और सज्जनोंके धर्मका अनुष्ठान करने लगे, उनका सुन्दर यश भूमण्डलमें फैल गया ॥ ४६ ॥

स राजा चक्रवर्त्यासीत्सार्वभौमः प्रतापवान्।
ईजे च बहुभिर्यज्ञैर्यथा शक्रो मरुत्पतिः ॥ ४७ ॥

वह महा प्रतापी और सार्वभौम चक्रवर्ती हुए; और देवराज इन्द्रकी भांति बहुयज्ञानुष्ठान किया ॥ ४७ ॥

याजयामास तं कण्वो दक्षवद्भूरिदक्षिणम्।
श्रीमान्गोवितततं नाम वाजिमेधमवाप सः।
यस्मिन्सहस्रं पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ४८ ॥

महर्षि कण्वने उनसे प्रचुर दक्षिणा-युक्त यज्ञ कराया। उन श्रीमान् भरतने गोवितत नामक अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें भगवान् ऋषि कण्वको सहस्र पद्म धन दान दिया था ॥ ४८ ॥

भरताद्भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम्।
अपरे ये च पूर्वे च भारता इति विश्रुताः ॥ ४९ ॥

इसी भरतसे यह भरतवंश प्रसिद्ध हुआ, जो आगे चलकर भारतके नामसे प्रसिद्ध हुए, भरतसे पूर्व और बादमें जितने भी मनुष्य उत्पन्न हुए वे सब भारतके नामसे प्रसिद्ध हुए ॥४९॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भरतस्यान्ववाये हि देवकल्पा महौजसः ।
बभूवुर्ब्रह्मकल्पाश्च बहवो राजसत्तमाः ॥ ५० ॥

भरतके वंशमें देवोंके समान महा ओजस्वी ब्रह्मकल्प अनेक राजश्रेष्ठोंने जन्म लिया ॥५०॥

येषामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वशः ।
तेषां तु ते यथामुख्यं कीर्तयिष्यामि भारत ।
महाभागान्देवकल्पान्सत्यार्जवपरायणान् ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ २६१६ ॥

उन सबोंके नाम अगणित हैं । हे भारत! उनमें जो प्रधान, महाभाग्यवान् देवकल्प और सत्यशील और आर्जवपरायण हैं, उन्हींके नाम कहूंगा ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ ॥ २६१६ ॥

: ७० :

वैशम्पायन उवाच

प्रजापतेस्तु दक्षस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ।
भरतस्य कुरोः पूरोरजमीढस्य चान्वये ॥ १ ॥
यादवानामिमं वंशं पौरवाणां च सर्वशः ।
तथैव भारतानां च पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– प्रजापति दक्ष, वैवस्वत मनु, भरत, कुरु, पूरु, अजमीढके कुलमें यादव और सम्पूर्ण पुरुवंशियों एवं भरतवंशियोंकी पवित्र महत् स्वस्त्ययनयुक्त, धन और यश तथा आयु देनेवाली संपूर्ण वंशकी कथा, हे अनघ ! तुमसे कहता हूं ॥ १–२ ॥

तेजोभिरुदिताः सर्वे महर्षिसमतेजसः ।
दश प्रचेतसः पुत्राः सन्तः पूर्वजनाः स्मृताः ।
मेघजेनाग्निना ये ते पूर्वं दग्धा महौजसः ॥ ३ ॥

प्रचेताके दस पुत्र थे जो पूर्वज माने जाते हैं । वे सब तेजसे प्रज्ज्वलित, महर्षिके समान तेजस्वी और साधु थे, मेघसे निकली हुई आगसे अत्यन्त तेजस्वी उन्होंने पहिले वृक्ष–औषधियां जला डाली थीं ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षो दक्षादिमाः प्रजाः।
संभूताः पुरुषव्याघ्र स हि लोकपितामहः ॥ ४ ॥

उन दसोंसे प्राचेतस प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए थे। दक्षसे यह सब प्रजायें उत्पन्न हुई हैं। हे पुरुषव्याघ्र! वह दक्ष ही लोकोंके पितामह हैं ॥ ४ ॥

वीरिण्या सह संगम्य दक्षः प्राचेतसो मुनिः।
आत्मतुल्यानजनयत्सहस्रं संशितव्रतान् ॥ ५ ॥

प्राचेतस मुनि दक्षने वीरिणी नामकी पत्नीके साथ मिलकर अपने सदृश व्रतशील सहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५ ॥

सहस्रसंख्यान्समितान्सुतान्दक्षस्य नारदः।
मोक्षमध्यापयामास सांख्यज्ञानमनुत्तमम् ॥ ६ ॥

ऋषि नारदने दक्षसे जन्म लिये हुए उन सहस्र पुत्रोंको मोक्षसाधन और अत्युत्तम सांख्य-ज्ञानकी शिक्षा दी ॥ ६ ॥

ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसंदधे।
प्रजापतिः प्रजा दक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥ ७ ॥

हे जनमेजय! बादमें उन प्रजापति दक्षने बहुत सारी प्रजा रचनेकी इच्छासे पचास कन्याओंको पुत्रिका बनाया ॥ ७ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ८ ॥

उन पचास कन्याओंमेंसे दस धर्मको, तेरह कश्यपको और समयदर्शानेवाली सत्ताइस कन्यायें चन्द्रको दीं ॥ ८ ॥

त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा।
मारीचः कश्यपस्तस्यामादित्यान्समजीजनत्।
इन्द्रादीन्वीर्यसंपन्नान्विवस्वन्तमथापि च ॥ ९ ॥

कश्यपकी तेरह पत्नियोंमेंसे दाक्षायणी अदिति सबसे बडी थी; उस अदितिने मरीचिके पुत्र कश्यपसे मिलकर वीर्यवान् इन्द्रादि देवता और विवस्वान् सूर्यको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

विवस्वतः सुतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रभुः।
मार्तण्डश्च यमस्यापि पुत्रो राजन्नजायत ॥ १० ॥

विवस्वान्से वैवस्वत यम पुत्ररूपमें पैदा हुए और, हे राजन्! यमके भी मार्तण्ड पुत्ररूपमें हुए ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः ।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ॥ ११ ॥

मार्तण्डके पुत्र मनु बडे बुद्धिमान् और धर्मात्मा थे, उन्हींसे यह मानव-वंश प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित हुआ है । ब्राह्मण क्षत्रियादि मानवोंने उन्हीं मनुसे जन्म लिया ॥ ११ ॥

तत्राभवत्तदा राजन्ब्रह्म क्षत्रेण संगतम् ।
ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमदीधरन् ॥ १२ ॥

हे महाराज ! अनन्तर ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंसे संगठित हुए । सम्पूर्ण गुणोंमें मनुज ब्राह्मण-गणने साङ्गवेद धारण किया ॥ १२ ॥

वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ।
करूषमथ शर्यातिं तथैवात्राष्टमीमिलाम् ॥ १३ ॥
पृषध्रनवमानाहुः क्षत्रधर्मपरायणान् ।
नाभागारिष्टदशमान्मनोः पुत्रान्महाबलान् ॥ १४ ॥

मनुके वेन, धृष्णु, नरिष्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, करूष, शर्याति और आठवीं इला, क्षत्रिय-धर्मके पालनमें सदा रत रहनेवाले पृषध्रको नौवां और महाबली नाभागको दसवां पुत्र कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

पञ्चाशतं मनोः पुत्रास्तथैवान्येऽभवन्क्षितौ ।
अन्योन्यभेदात्ते सर्वे विनेशुरिति नः श्रुतम् ॥ १५ ॥

इनके अतिरिक्त इस पृथ्वीमें उन मनुके और पचास पुत्र हुए थे, सुना है, कि वे सब आपसमें लडकर नष्ट हो गए ॥ १५ ॥

पूरूरवास्ततो विद्वानिलायां समपद्यत ।
सा वै तस्याभवन्माता पिता चेति हि नः श्रुतम् ॥ १६ ॥

अनन्तर विद्वान् पुरूरवाने इलासे जन्म लिया था; हमने सुना है, कि इला ही पुरूरवाकी माता और पिता थी ॥ १६ ॥

त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानभ्यन्पुरूरवाः ।
अमानुषैर्वृतः सत्त्वैर्मानुषः सन्महायशाः ॥ १७ ॥

महा यशस्वी पुरूरवाने मनुष्य होने पर भी अमनुष्य साथियोंकी सहायतासे महासागरके तेरह द्वीपोंको अधिकारमें कर लिया था ॥ १७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विप्रैः स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मत्तः पुरूरवाः।
जहार च स विप्राणां रत्नान्युत्क्रोशतामपि ॥ १८ ॥

पर बादमें अपने बलके घमंडमें आकर उन्मत्त होकर पुरूरवाने ब्राह्मणोंसे झगडा किया और विप्रोंके चिल्लाचिल्लाकर रोने पर भी उनका सम्पूर्ण रत्न हर लिया था ॥ १८ ॥

सनत्कुमारस्तं राजन्ब्रह्मलोकादुपेत्य ह।
अनुदर्शयां ततश्चक्रे प्रत्यगृह्णान्न चाप्यसौ ॥ १९ ॥

हे राजन् ! तब ब्रह्मलोकसे सनत्कुमारने आकर उनको श्रुतिके अनुसार उपदेश किया; उस पर भी उन्होंने उनके उपदेश पर ध्यान नहीं दिया ॥ १९ ॥

ततो महर्षिभिः क्रुद्धैः शप्तः सद्यो व्यनश्यत।
लोभान्वितो मदबलान्नष्टसंज्ञो नराधिपः ॥ २० ॥

तब लोभी, बलके घमण्डके कारण नष्ट हुई हुई बुद्धिवाले राजा पुरूरवा क्रुद्ध हुए हुए ब्राह्मणोंके द्वारा शाप पाकर उसी क्षण नष्ट हो गए ॥ २० ॥

स हि गन्धर्वलोकस्थ उर्वश्या सहितो विराट्।
आनिनाय क्रियार्थेऽग्नीन्यथावद्विहितांस्त्रिधा ॥ २१ ॥

वह अत्यन्त तेजस्वी पुरूरवा उर्वशीके साथ गन्धर्व लोकसे क्रियाके लिये विधिपूर्वक दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन प्रकारके अग्निको लाये थे ॥ २१ ॥

षट् पुत्रा जज्ञिरेऽथैलादायुर्धीमानमावसुः।
दृढायुश्च वनायुश्च श्रुतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ २२ ॥

इलापुत्र पुरूरवाके वीर्य और उर्वशीके गर्भसे छः पुत्रोंने जन्म लिया था, उनके नाम आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु और श्रुतायु थे ॥ २२ ॥

नहुषं वृद्धशर्माणं रजिं रम्भमनेनसम्।
स्वर्भानवीसुतानेतानायोः पुत्रान्प्रचक्षते ॥ २३ ॥

आयुके वीर्य और स्वर्भानुपुत्रीके गर्भसे नहुष, वृद्धशर्मा, रजी, रंभ और अनेना यह पांच पुत्र हुए ॥ २३ ॥

आयुषो नहुषः पुत्रो धीमान्सत्यपराक्रमः।
राज्यं शशास सुमहद्धर्मेण पृथिवीपतिः ॥ २४ ॥

आयुके पुत्र नहुष धीमान् तथा सच्चे पराक्रमी थे। उस राजाने उत्तम रीतिसे धर्मानुसार राज्यका शासन किया ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पितॄन्देवानृषीन्विप्रान्गन्धर्वोरगराक्षसान् ।
नहुषः पालयामास ब्रह्मक्षत्रमथो विशः ॥ २५ ॥

नहुषने पितृगण, देवगण, ऋषिगण, विप्रगण और गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंका पालन किया था ॥ २५ ॥

स हत्वा दस्युसंघातानृषीन्करमदापयत् ।
पशुवच्चैव तान्पृष्ठे वाहयामास वीर्यवान् ॥ २६ ॥

उन्होंने अपने भुजबलसे लुटेरोंको नष्ट करके ऋषियोंको करदाता बनाया, और एक समय उस वीर्यवान्‌ने उन ऋषियोंको पशुकी भांति वाहन बनाया ॥ २६ ॥

कारयामास चेन्द्रत्वमभिभूय दिवौकसः ।
तेजसा तपसा चैव विक्रमेणौजसा तथा ॥ २७ ॥

वह तेज, तप, बल और विक्रमसे देवोंको हराकर इन्द्रके पदपर आरूढ हुए थे ॥ २७ ॥

यतिं ययातिं संयातिमायातिं पाञ्चमुद्भवम् ।
नहुषो जनयामास षट् पुत्रान्प्रियवाससि ॥ २८ ॥

उन्होंने यति, ययाति, संयाति, आयाति, पांच और उद्भव यह छः प्रिय वस्त्रोंमें लिपटे हुए पुत्र उत्पन्न किए ॥ २८ ॥

ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत्सत्यपराक्रमः ।
स पालयामास महीमीजे च विविधैः सवैः ॥ २९ ॥

सत्य पराक्रमी नहुषपुत्र ययाति सम्राट् हुए; उन्होंने पृथ्वीका पालन कर अनेक यज्ञ किये ॥ २९ ॥

अतिशक्त्या पितॄनर्चन्देवांश्च प्रयतः सदा ।
अन्वगृह्णात्प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः ॥ ३० ॥

आत्मवान् होकर उन्होंने अति शक्तिसे देवगण और पितृगणकी उपासना की। अजेय ययातिने सम्पूर्ण प्रजाओं पर दया प्रकट की ॥ ३० ॥

तस्य पुत्रा महेष्वासाः सर्वैः समुदिता गुणैः ।
देवयान्यां महाराज शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥

हे महाराज! देवयानी और शर्मिष्ठाके गर्भसे उनके सर्वगुणयुक्त बडे धनधारी पुत्रोंने जन्म लिया था ॥ ३१ ॥

देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेव च ।
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठायां प्रजज्ञिरे ॥ ३२ ॥

उनमें देवयानीसे यदु और तुर्वसुका जन्म हुवा; द्रुह्यु, अनु और पुरु इन्होंने शर्मिष्ठाके गर्भसे जन्म लिया ॥ ३२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स शाश्वतीः समा राजन्प्रजा धर्मेण पालयन्।
जरामार्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम् ॥ ३३ ॥

हे राजन्! ययाति बहुत वर्षोंतक धर्मानुसार प्रजाका पालन कर अन्तमें रूपका नाश करनेवाले भयंकर बुढापेसे जकड लिए गए ॥ ३३ ॥

जराभिभूतः पुत्रान्स राजा वचनमब्रवीत्।
यदुं पूरुं तुर्वसुं च द्रुह्युं चानुं च भारत ॥ ३४ ॥

हे महाराज! तब राजा जरासे जकडे जाकर यदु, पूरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु इन पांच पुत्रोंको बुलाकर यह वचन बोले ॥ ३४ ॥

यौवनेन चरन्कामान्युवा युवतिभिः सह।
विहर्तुमहमिच्छामि साह्यं कुरुत पुत्रकाः ॥ ३५ ॥

कि मैं युवा बनकर अपने यौवनसे युवतियोंके साथ मनमाने भोगकर विहार करना चाहता हूं, हे पुत्र! तुम उस विषयमें सहायता दो ॥ ३५ ॥

तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो यदुरब्रवीत्।
किं कार्यं भवतः कार्यमस्माभिर्यौवनेन च ॥ ३६ ॥

तब देवयानीके गर्भसे उत्पन्न सबसे बडे पुत्र यदुने कहा, कहिये, हम अपने यौवनसे आपका कौनसा कार्य करें ॥ ३६ ॥

ययातिरब्रवीत्तं वै जरा मे प्रतिगृह्यताम्।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥ ३७ ॥

ययाति उससे बोले, कि तुम मेरे बुढापेको ले लो और मैं तुम्हारे यौवनसे विषयोंका भोग करूं ॥ ३७ ॥

यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः।
कामार्थः परिहीणो मे तप्येऽहं तेन पुत्रकाः ॥ ३८ ॥

हे पुत्र! मैं दीर्घयज्ञमें दीक्षित था, उस कालमें मुनि शुक्राचार्यके शापसे जराग्रस्त हुआ हूं, इस कारण मेरे काम अर्थ क्षीण हो रहे हैं, इसी कारण मैं अत्यन्त संतापित हो रहा हूं ॥ ३८ ॥

मामकेन शरीरेण राज्यमेकः प्रशास्तु वः।
अहं तन्वाभिनवया युवा कामानवाप्नुयाम् ॥ ३९ ॥

सो तुममेंसे कोई मेरे इस जराग्रस्त शरीरको लेकर राज्यशासन करे, मैं फिर युवा बनकर नये शरीरसे मनमाना भोग करूं ॥ ३९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न ते तस्य प्रत्यगृह्णन्यदुप्रभृतयो जराम् ।
तमब्रवीत्ततः पूरुः कनीयान्सत्यविक्रमः ॥ ४० ॥

यदु आदि भाइयोंमेंसे किसीने उनके बुढापेको नहीं लिया । तब छोटे पुत्र सत्य-विक्रमी पूरुने उनसे कहा ॥ ४० ॥

राजंश्चराभिनवया तन्वा यौवनगोचरः ।
अहं जरां समास्थाय राज्ये स्थास्यामि तेऽऽज्ञया ॥ ४१ ॥

महाराज ! आप युवावस्थासे पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त नये शरीरसे विहार करिये और मैं आपकी आज्ञासे बुढापा लेकर राज्यपर बैठूंगा ॥ ४१ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्यसमाश्रयात् ।
संचारयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि ॥ ४२ ॥

तब पूरुके यह बात कहनेपर राजर्षि ययातिने तप और वीर्यके बलसे उस महात्मा पुत्रमें बुढापा प्रविष्ट कराया ॥ ४२ ॥

पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः ।
ययातेनापि वयसा राज्यं पूरुरकारयत् ॥ ४३ ॥

राजा अपने पुत्र पूरुका यौवन पाकर युवा बने और पूरु ययातिकी वृद्धावस्था लेकरके राज्यशासन करने लगे ॥ ४३ ॥

ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः ।
अतृप्त एव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥ ४४ ॥

तब एवं मनमाने भोगसे तृप्त न हो करके अपने पुत्र पूरूसे बोले ॥ ४४ ॥

त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः ।
पौरवो वंश इति ते ख्यातिं लोके गमिष्यति ॥ ४५ ॥

कि तुम्हींसे मैं पुत्रवान् हुआ हूं; तुम्हीं मेरे वंशको आगे चलानेवाले पुत्र हो, यह वंश तुम्हारे नामहीसे प्रख्यात अर्थात् लोकोंमें—पौरव वंशके नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ४५ ॥

ततः स नृपशार्दूलः पूरुं राज्येऽभिषिच्य च ।
कालेन महता पश्चात्कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ २६६२ ॥

अनन्तर नृपसिंह ययाति पूरुको राज्यमें अभिषिक्त करके ययाति हजारों वर्षोंतक भोग भोग-कर इस प्रकार किसीसे न हारनेवाले बहुत समयके बाद कालधर्म मृत्युको प्राप्त हुए ॥४६॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ २६६२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७१ :

जनमेजय उवाच

ययातिः पूर्वकोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः।
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् ॥ १ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण द्विजोत्तम।
आनुपूर्व्या च मे शंस पूरोर्वंशकरान्पृथक् ॥ २ ॥

जनमेजय बोले– प्रजापतिसे लेकर दसवें स्थानपर गिने जानेवाले मेरे पूर्वज ययातिने अत्यन्त दुर्लभ शुक्र कन्या (ब्राह्मणी देवयानी) किस प्रकार प्राप्त की ? हे द्विजश्रेष्ठ! यह कथा विस्तारसे सुननेकी मेरी इच्छा है। पुरूके वंशको बढानेवाले अलग अलग राजाओंकी वंशावली मुझे क्रमसे सुनाइए ॥ १–२ ॥

वैशंपायन उवाच

ययातिरासीद्राजर्षिर्देवराजसमद्युतिः।
तं शुक्रवृषपर्वाणौ वव्राते वै यथा पुरा ॥ ३ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतो जनमेजय।
देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे जनमेजय ! पूर्वकालमें देवराजके समान तेजस्वी ययाति नामक एक राजर्षि थे, उन्हें शुक्र और वृषपर्वाने जिस प्रकार वरण किया था और नहुषपुत्र ययातिसे जिसप्रकार देवयानीका मिलन हुआ था, वह पूछनेवाले आपसे कहता हूं, सुनिये ॥ ३-४ ॥

सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः।
ऐश्वर्यं प्रति संघर्षस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५ ॥

इस चराचरसहित त्रिलोकके ऐश्वर्य पानेके लिए सुरों और असुरोंमें आपसमें लडाई हुई ॥५॥

जिगीषया ततो देवा वव्रिरेऽङ्गिरसं मुनिम्।
पौरोहित्येन याज्यार्थे काव्यं तूशनसं परे।
ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यस्पर्धिनौ भृशम् ॥ ६ ॥

विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे देवोंने याजनकार्यके निमित्त अङ्गिराके पुत्र मुनि बृहस्पतिको पुरोहित चुना, असुरोंने कविपुत्र शुक्रको नियुक्त किया; वे दोनों पुरोहित ब्राह्मण नित्य आपसमें बहुत स्पर्धा किया करते थे ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र देवा निजघ्नुर्यान्दानवान्युधि संगतान् ।
तान्पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात् ।
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयाञ्चक्रिरे सुरान् ॥ ७ ॥

तब देवतालोग युद्धस्थलमें उपस्थित हुए हुए जिन दानवोंको मार डालते थे, कविके पुत्र शुक्र विद्याके बलसे फिर उनको जिला देते थे; इस प्रकार वे फिर उठकर देवोंसे युद्ध करने लगते थे ॥ ७ ॥

असुरास्तु निजघ्नुर्यान्सुरान्समरमूर्धनि ।
न तान्संजीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ८ ॥

पर असुरलोग युद्धमें जिन देवोंको मार गिराते थे, सरल बुद्धिवाले बृहस्पति उनको जिला नहीं पाते थे ॥ ८ ॥

न हि वेद स तां विद्यां यां काव्यो वेद वीर्यवान् ।
संजीवनीं ततो देवा विषादमगमन्परम् ॥ ९ ॥

क्योंकि कविपुत्र वीर्यवान् शुक्र जो सञ्जीवनी विद्या जानते थे, बृहस्पति उसे नहीं जानते थे; इससे देवगण बडे दुःखी हुए ॥ ९ ॥

ते तु देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा ।
ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठं पुत्रं बृहस्पतेः ॥ १० ॥

तब देवोंने कविपुत्र उशनाके भयसे कातर होकर बृहस्पतिके बडे बेटे कचके पास जाकर कहा ॥ १० ॥

भजमानान्भजस्वास्मान्कुरु नः साह्यमुत्तमम् ।
यासौ विद्या निवसति ब्राह्मणेऽमिततेजसि ।
शुक्रे तामाहर क्षिप्रं भागभाङ्नो भविष्यसि ॥ ११ ॥

कि हमने तुम्हारी शरण ली है, अतः तुम हमें बचाओ, तुम हमारी सहायता करो । अति तेजस्वी ब्राह्मण शुक्रमें जो सञ्जीवनी विद्या निवास करती है, उसे तुम शीघ्र हर लाओ, तब तुम भी हमारे यज्ञांशके भागी बनोगे ॥ ११ ॥

वृषपर्वसमीपे स शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विजः
रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान् ॥ १२ ॥

तुम वृषपर्वाके निकट उन ब्राह्मण शुक्रको देख सकोगे, वह वहां दानवोंकी ही रक्षा करते हैं; वे देवोंकी रक्षा नहीं करते ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमाराधयितुं शक्तो भवान्पूर्ववयाः कविम् ।
देवयानीं च दयितां सुतां तस्य महात्मनः ॥ १३ ॥
त्वमाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चन विद्यते ।
शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दमेन च ।
देवयान्यां हि तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

तुम्हारी अवस्था कम है, इसलिए तुम ज्ञानी शुक्रकी आराधना कर सकोगे और तुम्हीं उन महात्माकी प्रिय कन्या देवयानीकी उपासना कर सकोगे; इस विषयमें तुम्हारे सिवाय और कोई दूसरा समर्थ नहीं है। देवयानीके तुम्हारी शीलता, दाक्षिण्य, मधुरता, आचार और दमसे सन्तुष्ट हो जाने पर तुम उस सञ्जीवनी विद्याको अवश्य प्राप्त करोगे ॥ १३–१४ ॥

तथेत्युक्त्वा ततः प्रायाद्बृहस्पतिसुतः कचः ।
तदाभिपूजितो देवैः समीपं वृषपर्वणः ॥ १५ ॥

तब "अच्छा, ऐसा ही होगा" कहकर बृहस्पतिके पुत्र कच देवोंसे पूजे जानेके पश्चात् वृषपर्वाके निकट पधारे ॥ १५ ॥

स गत्वा त्वरितो राजन्देवैः सम्प्रेषितः कचः ।
असुरेन्द्रपुरे शुक्रं दृष्ट्वा वाक्यमुवाच ह ॥ १६ ॥

हे राजन्! देवोंसे भेजे हुए वह कच शीघ्र जाकर असुरराज वृषपर्वाके नगरमें शुक्रको देखकरके बोले ॥ १६ ॥

ऋषेरंगिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद्बृहस्पतेः ।
नाम्ना कच इति ख्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान् ॥ १७ ॥

मैं ऋषि अङ्गिराका पौत्र और बृहस्पतिका औरस पुत्र हूं। मैं कच नामसे प्रसिद्ध हूँ, आप मुझको शिष्यके रूपमें स्वीकार करें ॥ १७ ॥

ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरौ ।
अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन्सहस्रं परिवत्सरान् ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन्! मैं आपको गुरु मानकर सहस्र वर्षोंतक परम ब्रह्मचर्यका पालन करूंगा, आप आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥

शुक्र उवाच

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः ।
अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः ॥ १९ ॥

शुक्र बोले– हे कच! तुम्हारा स्वागत है, तुम्हारी बात मान लेता हूँ, तुम मेरे आदरके पात्र, हो अतः मैं तुम्हारी पूजा करूंगा, तुम्हारे समादर करनेसे बृहस्पति भी पूजे जायें ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद्व्रतम् ।
आदिष्टं कविपुत्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम् ॥ २० ॥

वैशम्पायन बोले– तब कचने "ऐसा ही हो" यह कहकर कविपुत्र उशनस शुक्रके द्वारा बताये हुए उस ब्रह्मचर्यव्रतको स्वीकार किया ॥ २० ॥

व्रतस्य व्रतकालं स यथोक्तं प्रत्यगृह्णत ।
आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत ॥ २१ ॥

हे भारत ! कच भी शुक्र और देवयानीकी आराधना करते हुए व्रतके समयके प्राप्त होने-पर, शुक्र जो कहते, उसे किया करता था ॥ २१ ॥

नित्यमाराधयिष्यंस्तां युवा यौवनगोऽऽमुखे ।
गायन्नृत्यन्वादयंश्च देवयानीमतोषयत् ॥ २२ ॥

तरुण कच भी शुक्र और देवयानी दोनोंकी आराधना करता हुआ युवावस्थामें आई हुई देवयानीको गाना, नाचना, बजाना आदिसे सन्तुष्ट किया करता था ॥ २२ ॥

संशीलयन्देवयानीं कन्यां संप्राप्तयौवनाम् ।
पुष्पैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भारत ॥ २३ ॥

हे भारत ! उत्तम उत्तम काम करता हुआ कच तारुण्यावस्थाको प्राप्त हुई हुई कन्या देवयानीको फूल और फल आदि दे देकर प्रसन्न किया करता था ॥ २३ ॥

देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतचारिणम् ।
अनुगायमाना ललना रहः पर्यचरत्तदा ॥ २४ ॥

सुन्दरी देवयानी भी उस एकान्तमें गीत गा गाकर नियम पूर्वक व्रतका आचरण करनेवाले उन ब्राह्मण कुमारकी सेवा करने लगी ॥ २४ ॥

पञ्च वर्षशतान्येवं कचस्य चरतो व्रतम् ।
तत्रातीयुरथो बुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार कचके व्रतानुष्ठान करते हुए, पांच सौ वर्ष बीत गये। तब एक दिन दानवोंने उस कचको जानकर उसका पीछा किया ॥ २५ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येकसमर्षिताः।
जघ्नुर्बृहस्पतेर्द्वेषाद्विद्यारक्षार्थमेव च।
हत्वा शालावृकेभ्यश्च प्रायच्छंस्तिलशः कृतम् ॥ २६ ॥

तब एकदिन निर्जन वनमें अकेले गौकी रक्षा करनेवाले कचको देखकर सञ्जीवनी विद्याकी रक्षाके लिये और बृहस्पतिसे द्वेष करनेके कारण क्रुद्ध हुए हुए दानवोंने उस मार डाला; और उसके टुकडे टुकडे करके भेडियोंके आगे डाल दिया ॥ २६ ॥

ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाः स्वं निवेशनम्।
ता दृष्ट्वा रहिता गास्तु कचेनाभ्यागता वनात्।
उवाच वचनं काले देवयान्यथ भारत ॥ २७ ॥

हे भारत ! इसके बाद गायें रखवालेके विना ही अपने घर लौट आईं, कचके विना ही वनसे लौटकर आई हुई गायोंको देखकर देवयानी ठीक समयपर पितासे यह वचन बोली ॥ २७ ॥

अहुतं चाग्निहोत्रं ते सूर्यश्चास्तं गतः प्रभो।
अगोपाश्चागता गावः कचस्तात न दृश्यते ॥ २८ ॥

हे प्रभो पिता ! सूर्यदेव अस्ताचलको चले गए हैं, आपका अग्निहोत्र भी जल गया है और गायें रखवालेसे रहित होकर लौट आई हैं, पर कच नहीं दीख पडता ॥ २८ ॥

व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति।
तं विना न च जीवेयं कचं सत्यं ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥

हे पिता ! मुझको निश्चय जान पडता है, कि या तो कच मर गया है या मारा गया है, सच कहती हूं, कि विना कचके मैं जी नहीं सकूंगी ॥ २९ ॥

शुक्र उवाच

अयमेहीति शब्देन मृतं संजीवयाम्यहम् ॥ ३० ॥

शुक्र बोले– "हे कच ! चले आओ, तुम मरे हो, मैं तुमको जिलाता हूं ॥ ३० ॥

वैशंपायन उवाच

ततः संजीवनीं विद्यां प्रयुज्य कचमाह्वयत्।
आहूतः प्रादुरभवत्कचोऽरिष्टोऽथ विद्यया।
हतोऽहमिति चाचख्यौ पृष्टो ब्राह्मणकन्यया ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन बोले– यह कहकर मृत-सञ्जीवनी विद्या पढकर कचको बुलाया। कच बुलाये जाते ही विद्याके कारण स्वस्थ होकर प्रकट हो गए और ब्राह्मण कन्या देवयानी द्वारा पूछे जानेपर बोले कि मैं मार दिया गया था ॥ ३१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहारो यदृच्छया ।
वनं ययौ ततो विप्रो ददृशुर्दानवाश्च तम् ॥ ३२ ॥

अनन्तर ब्राह्मण कच फिर देवयानीकी आज्ञासे फूल चुननेके लिये अपनी इच्छानुसार वनमें गये और दानवोंने फिर उनको देख लिया ॥ ३२ ॥

ततो द्वितीयं हत्वा तं दग्ध्वा कृत्वा च चूर्णशः ।
प्रायच्छन्ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तदा ॥ ३३ ॥

इसके बाद असुरोंने दूसरी बार कचको मारकर जलाकर और चूर्ण कर मदिरामें मिलाकरके उन ब्राह्मण शुक्रहीको पिला दिया ॥ ३३ ॥

देवयान्यथ भूयोऽपि वाक्यं पितरमब्रवीत् ।
पुष्पाहारः प्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते ॥ ३४ ॥

तब देवयानीने फिर पितासे यह वाक्य कहा, कि पिता ! मैंने कचको फूल चुननेके लिये भेजा था, अब भी उसे आते नहीं देखती हूं ॥ ३४ ॥

शुक्र उवाच

बृहस्पतेः सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः ।
विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवाणि किम् ॥ ३५ ॥

शुक्र बोले– बेटी ! बृहस्पतिका पुत्र कच मर गया है; मैं क्या करूं ? विद्याके बलसे बार बार उसको जिलानेपर भी असुरलोग उसको मार डालते हैं ॥ ३५ ॥

मैवं शुचो मा रुद देवयानि न त्वादृशी मर्त्यमनुप्रशोचेत् ।
सुराश्च विश्वे च जगच्च सर्वमुपस्थितां वैकृतिमानमन्ति ॥ ३६ ॥

देवयानि ! तुम शोक न करो, मत रोओ, तुम्हारे समान प्रभावशीला नारी किसी नश्वर जनके लिये कभी शोक प्रकट नहीं करती, क्योंकि सभी देव और सारा जगत् उपस्थित विकृतिको प्राप्त होते ही हैं ॥ ३६ ॥

देवयान्युवाच

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो बृहस्पतिश्चापि पिता तपोधनः ।
ऋषेः पुत्रं तमथो वापि पौत्रं कथं न शोचेयमहं न रुद्याम् ॥ ३७ ॥

देवयानी बोली– अत्यंत बूढे अङ्गिरा जिनके पितामह और तपोधन बृहस्पति जिनके पिता हैं, ऐसे ऋषिके पौत्र और ऋषिके पुत्र उन कचके लिये क्यों नहीं शोक करूं ? अथवा क्यों न रोऊं ॥ ३७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः॥ ३८॥

अहा! वह ब्रह्मचारी तपोधन था, वह कर्ममें सदा उत्साही और दक्ष था; पिता! मैं फिर भोजन न करके उस कचका मार्ग ही अपनाऊंगी अर्थात् अनशन करके प्राण त्याग दूंगी। क्योंकि, हे तात! उनका स्वरूप मुझे बडा प्रिय लगता है॥ ३८॥

शुक्र उवाच

असंशयं मामसुरा द्विषन्ति ये मे शिष्यं नागसं सूदयन्ति।
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रास्ते मां यथा प्रस्तुतं दानवैर्हि।
अप्यस्य पापस्य भवेदिहान्तः कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम्॥ ३९॥

शुक्र बोले– असुरलोग निश्चित ही मुझसे द्वेष किया करते हैं, जो मेरे निरपराधी शिष्यको वे मार डालते हैं, कुटिलात्मा असुरलोग मुझको ही ब्रह्महत्याके पापसे पापी बनाते हैं और सदा मेरा विरुद्धाचरण करते हैं; ब्रह्महत्या किसको नहीं जला देती है? वह तो इन्द्रको भी भस्म कर सकती है, क्या यह पाप कभी नष्ट होता है?॥ ३९॥

वैशंपायन उवाच

संचोदितो देवयान्या महर्षिः पुनराह्वयत्।
संरम्भेणैव काव्यो हि बृहस्पतिसुतं कचम्॥ ४०॥

वैशम्पायन बोले– देवयानीसे प्रेरित किए जानेपर कविके पुत्र महर्षि शुक्रने असुरोंपर क्रोध करते हुए बृहस्पतिके पुत्र कचको बुलाया॥ ४०॥

गुरोर्भीतो विद्यया चोपहूतः शनैर्वाचं जठरे व्याजहार।
तमब्रवीत्केन पथोपनीतो ममोदरे तिष्ठसि ब्रूहि विप्र॥ ४१॥

तब उनके सञ्जीवनी विद्यासे कचको बुलानेपर कचने गुरुके पेटमें रहकर गुरुहत्याके भयसे धीरे धीरे उत्तर दिया। उसपर शुक्र बोले– हे विप्र! यह कहो, कि तुम कौन पथसे मेरे पेटमें जा घुसे हो॥ ४१॥

कच उवाच

भवत्प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः स्मरे च सर्वं यच्च यथा च वृत्तम्।
न त्वेवं स्यात्तपसो व्ययो मे ततः क्लेशं घोरमिमं सहामि॥ ४२॥

कच बोले– हे गुरो! आपकी कृपासे मेरी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई है, जो जो जिस जिस प्रकारसे हुआ, वह सब मुझे स्मरण है; इसलिये, कि कहीं गुरुके पेटको फाडनेके कारण तप घट न जाय, इसलिए पेटमें बसनेके इस अपार कष्टको सह रहा हूं॥ ४२॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य ।
ब्राह्मीं मायामासुरी चैव माया त्वयि स्थिते कथमेवातिवर्तेत् ॥ ४३ ॥

हे काव्य ! असुरोंने मुझको मारकर, जलाकर और चूर्ण करके मदिरामें घोलकर आपको दे दिया था, पर, हे विप्र ! आपके रहते हुए असुरोंकी यह माया ब्राह्मणिक मायासे कैसे बढ सकेगी ? ॥ ४३ ॥

शुक्र उवाच

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से वधेन मे जीवितं स्यात्कचस्य ।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनेन इष्येत्कचो मद्गतो देवयानि ॥ ४४ ॥

तब शुक्रने देवयानीसे कहा– वत्से देवयानि ! इस समय तुम्हारा क्या प्रियानुष्ठान करूं ? मेरे नाश होनेसे कच जी सकता है, क्योंकि कच मेरे पेटके भीतर है; मेरा पेट विना फाडे किसी दूसरे उपायसे वह बाहर नहीं निकल सकेगा ॥ ४४ ॥

देवयान्युवाच

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः ।
कचस्य नाशे मम नास्ति शर्म तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता ॥ ४५ ॥

देवयानी बोली– कचका नाश और आपकी मृत्यु यह दोनों ही शोक अग्निवत् मुझको जलाने लगेंगे; कचके नाश होनेसे मुझे सुख नहीं है और आपके मर जाने पर मैं जी नहीं सकूंगी ॥ ४५ ॥

शुक्र उवाच

संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पतेः सुत यत्त्वां भक्तं भजते देवयानी ।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य ॥ ४६ ॥

तब शुक्रने कचसे कहा– हे बृहस्पतिपुत्र कच ! तुम बृहस्पतिके पुत्रके रूपमें प्रख्यात हो और देवयानी भी तुमसे प्रेम करती है, ऐसी दशामें यदि तुम कचके स्वरूपमें इन्द्र न हो, तो आज ही यह सञ्जीवनी विद्या तुम प्राप्त करो ॥ ४६ ॥

न निवर्तेत्पुनर्जीवन्कश्चिदन्यो ममोदरात् ।
ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद्विद्यामवाप्नुहि ॥ ४७ ॥

केवल ब्राह्मणको छोडकर दूसरा कोई भी मेरे पेटमें जाकर फिर जीवित होकर नहीं निकल सकता (इससे स्पष्ट होता है कि तुम ब्राह्मण कच ही हो इन्द्र नहीं) इसलिए तुम यह विद्या लो, मैं तुमको जीवन देता हूं ॥ ४७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुत्रो भूत्वा भावय भावितो मामस्माद्देहादुपनिष्क्रम्य तात।
समीक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां गुरोः सकाशात्प्राप्य विद्यां सविद्यः ॥ ४८ ॥

हे तात! तुम जीवित होकर तथा मेरी देहसे निकल कर और पुत्ररूपी होकर मुझको जिलाओ, गुरुसे विद्या लाभ करके विद्यावान् होकर धर्मपथ पर दृष्टि रखना, अकृतज्ञ न होना! ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच

गुरोः सकाशात्समवाप्य विद्यां भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः।
कचोऽभिरूपो दक्षिणं ब्राह्मणस्य शुक्रात्यये पौर्णमास्यामिवेन्दुः ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन बोले– ब्राह्मण कच गुरुसे सञ्जीवनी विद्या प्राप्त कर, जिस प्रकार शुक्लपक्षके अन्तिम दिन पौर्णमासीके दिन पूर्ण चन्द्रमा प्रकट होता है, वैसे ही ब्राह्मण शुक्रकी दायीं कोखको फाडकर उसी क्षण साक्षात् निकल आया ॥ ४९ ॥

दृष्ट्वा च तं पतितं ब्रह्मराशिमुत्थापयामास मृतं कचोऽपि।
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच ॥ ५० ॥
ऋतस्य दातारमनुत्तमस्य निधिं निधीनां चतुरन्वयानाम्।
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयं पापाँल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठान् ॥ ५१ ॥

बाहर निकल कर कचने भी ज्ञानके भण्डार शुक्रको मरकर गिरा हुआ देखकर सञ्जीवनी विद्यासे जिलाया और सिद्ध हुई हुई विद्याको प्राप्त करके कच गुरु शुक्रको प्रणाम करके बोला– जो लोग विद्या प्राप्त करके श्रेष्ठतम सत्यका उपदेश देनेवाले और निधिकी निधि तथा चारों वेदोंका ज्ञान देनेवाले पूजनीय गुरुका समादर नहीं करते हैं, वे इस लोकमें अप्रतिष्ठा प्राप्त कर अन्तमें पापयुक्त लोगोंको प्राप्त करते हैं ॥ ५०–५१ ॥

वैशम्पायन उवाच

सुरापानाद्भ्रञ्शनां प्रापयित्वा संज्ञानाशं चैव तथातिघोरम्।
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं पीतं तदा सुरया मोहितेन ॥ ५२ ॥
समन्युरुत्थाय महानुभावस्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद सुरापानं प्रति वै जातशङ्कः ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन बोले– शराब पीनेके कारण शुक्राचार्य ठगे गए, उनकी बुद्धिका पूरी तरह नाश हो गया और उस सुराके कारण उन्मत्त होकर वे सुन्दर कचको भी पी गए, यह देखकर महा प्रभावशाली शुक्राचार्य क्रोधित होकर उठे और ब्राह्मणोंका हित करनेकी इच्छासे सुरापानके बारेमें सशंकित होकर शुक्र स्वयं यह वाक्य बोले ॥ ५२-५३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चिन्मोहात्सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मो ब्रह्महा चैव स स्यादस्मिँल्लोके गर्हितः स्यात्परे च ॥ ५४ ॥

आजसे जो ब्राह्मण मोहवश मदिरा पान करेगा, वह मन्दबुद्धि ब्राह्मण धर्मसे च्युत और ब्रह्महत्याके पापमें लिप्त होकर इसलोक और परलोकमें निन्दनीय होगा ॥ ५४ ॥

मया चेमां विप्रधर्मोक्तिसीमां मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां देवा लोकाश्चोपशृण्वन्तु सर्वे ॥ ५५ ॥

मैंने ब्राह्मणोंके धर्मके विषयमें यह सीमा और मर्यादा जगत्में स्थापित कर दी है, इसको साधु लोग, ब्राह्मण लोग, देवलोग और गुरुकी सेवा करनेवाले सब कोई सुनें ॥ ५५ ॥

इतीदमुक्त्वा स महानुभावस्तपानिधीनां निधिरप्रमेयः ।
तान्दानवान्दैवविमूढबुद्धीनिदं समाहूय वचोऽभ्युवाच ॥ ५६ ॥

यह कहकर अप्रमेय, तपोनिधियोंकी निधि और महानुभाव शुक्र दैवसे मूढबुद्धि हुए हुए उन दानवोंको बुलवाकर यह बात बोले ॥ ५६ ॥

आचक्षे वो दानवा बालिशाः स्थ सिद्धः कचो वत्स्यति मत्सकाशे ।
संजीवनीं प्राप्य विद्यां महार्थां तुल्यप्रभावो ब्रह्मणा ब्रह्मभूतः ॥ ५७ ॥

हे दानवो ! सुनो, तुमसे कहता हूं, तुमने अति मूर्खके समान कार्य किया है । यह ब्राह्मण कच इस क्षण महान् अर्थवाली सञ्जीवनी विद्या पाकर सिद्ध होकर मेरे पास रहेंगे और ये ब्रह्मके कारण ज्ञानी हुए हुए कच मेरे तुल्य प्रभावी होंगे ॥ ५७ ॥

गुरोरुष्य सकाशे तु दश वर्षशतानि सः ।
अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम् ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ २७२० ॥

इसके बाद कचने गुरुके यहां सहस्रवर्ष रहकर गुरुकी आज्ञा लेकर स्वर्गधाममें जानेकी इच्छा की ॥ ५८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ २७२० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७२ :

वैशम्पायन उवाच

समावृत्तव्रतं तं तु विसृष्टं गुरुणा तदा।
प्रस्थितं त्रिदशावासं देवयान्यब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– कचका गुरुकुलमें बसनेका ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होनेपर वह गुरुके आज्ञा देनेपर स्वर्गको जानेवाले कचसे देवयानी बोली ॥ १ ॥

ऋषेरङ्गिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च।
भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च ॥ २ ॥

हे ऋषि अङ्गिराके पौत्र ! तुम चरित्र, कुल, विद्या, दम और तपसे तेजस्वी हो रहे हो ॥ २ ॥

ऋषिर्यथाङ्गिरा मान्यः पितुर्मम महायशाः।
तथा मान्यश्च पूज्यश्च भूयो मम बृहस्पतिः ॥ ३ ॥

महायशस्वी महर्षि अङ्गिरा जिस प्रकार मेरे पिताके लिए माननीय हैं, वैसे ही बृहस्पति भी मेरे लिए माननीय और पूजनीय हैं ॥ ३ ॥

एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद्ब्रवीमि तपोधन।
व्रतस्थे नियमोपेते तथा वर्ताम्यहं त्वयि ॥ ४ ॥

यह समझ कर जो कुछ कहती हूं, हे तपोधन ! तुम सुनो, तुम जब व्रताचारी और नियमान्वित थे, तबसे मैंने तुमसे (प्रेमके कारण) वैसा व्यवहार किया ॥ ४ ॥

स समावृत्तविद्यो मां भक्तां भजितुमर्हसि।
गृहाण पाणिं विधिवन्मम मन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ५ ॥

इस समय तुम ब्रह्मचर्यसे निवृत्त होकर विवाहके योग्य हो गए हो, अतः अब तुम्हारी सेवा करनेवाली मुझे स्वीकार करो और विधिपूर्वक मन्त्र पढकर मेरा हाथ पकड लो ॥ ५ ॥

कच उवाच

पूज्यो मान्यश्च भगवान्यथा तव पिता मम।
तथा त्वमनवद्याङ्गि पूजनीयतरा मम ॥ ६ ॥

कच बोले– हे अनिन्दिताङ्गी ! तुम्हारे पिता भगवान् शुक्र जिस प्रकार मेरे लिए पूजनीय और माननीय हैं, वैसे ही तुम भी मेरी उनसे भी अधिक पूजनीया हो ॥ ६ ॥

आत्मप्राणैः प्रियतमा भार्गवस्य महात्मनः।
त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम ॥ ७ ॥

हे भद्रे ! तुम मेरे गुरु महात्मा भार्गवके प्राणसे भी प्यारी कन्या हो, अतः तुम मेरी गुरुकी पुत्री होनेसे धर्मानुसार सदा पूज्यतमा हो ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव।
देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

हे देवयानि ! तुम्हारे पिता शुक्र मेरे गुरु हैं, वह जिस प्रकार मेरे लिए सदा माननीय हैं, तुम भी वैसेही मेरी माननीया हो; इस दशामें तुम्हें मुझसे ऐसा कहना नहीं चाहिये ॥८॥

देवयान्युवाच

गुरुपुत्रस्य पुत्रो वै न तु त्वमसि मे पितुः।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम ॥ ९ ॥

देवयानी बोली– हे द्विजोत्तम ! अंगिराऋषिके पुत्र जो बृहस्पति हैं उनके तुम पुत्र हो, मेरे पिताके पुत्र नहीं हो, इसलिए, हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम मेरे पूजनीय और माननीय हो ॥९॥

असुरैर्हन्यमाने च कच त्वयि पुनः पुनः।
तदा प्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमेव स्मरस्व मे ॥ १० ॥

हे कच ! जब असुरों द्वारा तुम बार बार मारे जाते थे तबसे तुमपर मेरी जितनी प्रीति है उसे तुम याद करो ॥ १० ॥

सौहार्दे चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम्।
न मामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसम् ॥ ११ ॥

मित्रता तथा प्रेमसे तुमपर मेरी कितनी भक्ति है उसे तुम अवश्यही जानो, हे धर्मज्ञ ! मैं तेरी भक्ति करनेवाली और निर्दोषी हूं, अतः मुझको त्यागना तुमको उचित नहीं ॥११॥

कच उवाच

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनक्षि शुभव्रते।
प्रसीद सुभ्रु त्वं मह्यं गुरोर्गुरुतरी शुभे ॥ १२ ॥

कच बोले– हे शुभव्रते ! न करने योग्य कार्यमें तुम मुझको नियुक्त कर रही हो, यह उचित नहीं है। हे अच्छे भौंहवाली सुन्दरी ! हे शुभे ! मुझपर प्रसन्न होओ, तुम मेरी दृष्टिमें गुरुसे भी अधिक श्रेष्ठ हो ॥ १२ ॥

यत्रोषितं विशालाक्षि त्वया चन्द्रनिभानने।
तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भामिनि ॥ १३ ॥

हे भद्रे ! हे विशाल आंखोंवाली ! चन्द्रमुखि, भामिनी सुन्दरी ! तुमने कविपुत्र शुक्रके जिस कोखमें वास किया था, मैं भी उसी कोखमें रह चुका हूं ॥ १३ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः शुभानने ।
सुखमस्म्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम ॥ १४ ॥

इससे धर्मानुसार तुम मेरी बहिन हो चुकी हो, अतः, हे सुन्दर मुखवाली ! तुम ऐसा न कहो, हे भद्रे ! तुम्हारे यहां मैं परम सुखसे था, (क्योंकि मैंने तुमसे विवाह करना स्वीकार नहीं किया है, इसलिए अतः मुझपर क्रोध न करो) ॥ १४ ॥

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमाशंस मे पथि ।
अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे ।
अप्रमत्तोत्थिता नित्यमाराधय गुरुं मम ॥ १५ ॥

अब जाऊंगा, तुमसे विदा मांगता हूं, यह शुभ कामना करो कि मार्गमें मेरा मंगल होवे । (मेरा प्रसंग यदि कभी आये तो) धर्मसे विरुद्ध न जानेवाली कथाके अवसरमें मेरा स्मरण किया करना और सावधान तथा उत्साहशील होकर मेरे गुरुकी नित्य पूजा किया करना ॥ १५ ॥

देवयान्युवाच

यदि मां धर्मकामार्थे प्रत्याख्यास्यसि चोदितः ।
ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति ॥ १६ ॥

देवयानी बोली– धर्म और कामके बारेमें मेरे द्वारा (प्रणय) भिक्षा मांगने पर भी तुम (भिक्षा देनेसे) इन्कार करते हो, इसलिए, हे कच ! यह संजीवनी विद्या तुम्हें सिद्ध अर्थात् फलदायक नहीं होगी ॥ १६ ॥

कच उवाच

गुरुपुत्रीति कृत्वाहं प्रत्याचक्षे न दोषतः ।
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः काममेवं शपस्व माम् ॥ १७ ॥

कच बोले– मैं तुमको गुरुपुत्री समझ कर ही नहीं स्वीकार कर रहा, कोई अन्य दोष समझ करके ही ऐसा नहीं कर रहा, इसके अलावा इस विषयमें गुरुने मुझे आज्ञा नहीं दी है, इसलिए तुम जो चाहती हो शाप दो ॥ १७ ॥

आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया ।
शप्तो नार्होऽस्मि शापस्य कामतोऽद्य न धर्मतः ॥ १८ ॥

हे देवयानि ! ऋषियोंका जैसा धर्म है, उसके अनुसार मेरे व्यवहार करनेसे धर्मानुसार मैं शापके योग्य नहीं हूं, उस पर भी तुम कामके वश होकर यह शाप दे रही हो, धर्मपूर्वक नहीं ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्माद्भवत्या यः कामो न तथा स भविष्यति ।
ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति ॥ १९ ॥

पर तुमने कामके वश होकर मुझको शाप दिया, इसलिए तुम्हारी कामना पूरी नहीं होगी-कोई ऋषिपुत्र तुमसे विवाह नहीं करेगा ॥ १९ ॥

फलिष्यति न ते विद्या यत्त्वं मामात्थ तत्तथा ।
अध्यापयिष्यामि तु यं तस्य विद्या फलिष्यति ॥ २० ॥

और तुमने जो शाप दिया, कि तुम्हारी वह विद्या सफल नहीं होगी, वह सत्यही होगा, पर मैं जिसको वह विद्या पढाऊंगा, उसकी वह विद्या अवश्य सफल होगी ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठो देवयानीं कचस्तदा ।
त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले– द्विजोंमें श्रेष्ठ और उत्तम कच देवयानीसे ऐसा कहकर वेगसे स्वर्गके राजा इन्द्रके घर गये ॥ २१ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
बृहस्पतिं समाज्येदं कचमाहुर्मुदान्विताः ॥ २२ ॥

सदा इन्द्रको आगे रखनेवाले देवता उनको आते देखकर बृहस्पतिकी ओर प्रीतिसे देखके कचसे प्रसन्न होकर बोले, ॥ २२ ॥

यत्त्वमस्मद्धितं कर्म चकर्थ परमाद्भुतम् ।
न ते यशः प्रणशिता भागभाङ् नो भविष्यसि ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ २७४३ ॥

क्योंकि तुमने अत्यन्त आश्चर्यकारक और हमारे लिए हितकारी कार्य किया है, इससे तुम्हारा यश सदा स्थायी होगा और तुम हमारे यज्ञके अंशके भागी होगे ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ २७४३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७३ :

वैशम्पायन उवाच

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः।
कचादधीत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भरतश्रेष्ठ ! संजीवनी विद्या प्राप्त करके लौटकर आए हुए कचको देखकर आनन्दित हुए हुए देव परमसन्तुष्ट चित्तसे उनसे वह विद्या पढकर कृतार्थ हुए ॥१॥

सर्व एव समागम्य शतक्रतुमथाब्रुवन्।
कालस्ते विक्रमस्याद्य जहि शत्रून्पुरन्दर ॥ २ ॥

इसके बाद सब देवता देवराजके निकट आकर बोले, कि हे पुरन्दर ! आपके विक्रम प्रगट करनेका यही समय है, इसी क्षण शत्रुकुलको नष्ट कीजिये ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु सहितैस्त्रिदशैर्मघवांस्तदा।
तथेत्युक्त्वोपचक्राम सोऽपश्यत वने स्त्रियः ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण देवोंके मिलकर ऐसा कहनेपर इन्द्र 'तथास्तु' कहके शत्रुओंको नष्ट करनेके निमित्त चले और उन्होंने वनमें स्त्रियोंको देखा ॥ ३ ॥

क्रीडन्तीनां तु कन्यानां वने चैत्ररथोपमे।
वायुभूतः स वस्त्राणि सर्वाण्येव व्यमिश्रयत् ॥ ४ ॥

चैत्ररथके समान सुन्दर एक वनमें खेलती हुई कन्याओंके सभी कपडोंको उन इन्द्रने वायुका स्वरूप लेकर एक दूसरेसे मिला दिया ॥ ४ ॥

ततो जलात्समुत्तीर्य कन्यास्ताः सहितास्तदा।
वस्त्राणि जगृहुस्तानि यथासन्नान्यनेकशः ॥ ५ ॥

इसके बाद सब कन्यायें एकही साथ जलसे निकलीं और जिसको जो वस्त्र मिला, वही उसने पहिन लिया ॥ ५ ॥

तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा।
व्यतिमिश्रमजानन्ती दुहिता वृषपर्वणः ॥ ६ ॥

तब राजा वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाने वस्त्रोंकी मिलावट न जानकर देवयानीका वस्त्र ले लिया ॥ ६ ॥

ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत।
देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते ॥ ७ ॥

हे राजेन्द्र ! तब उसके कारण वहां शर्मिष्ठा और देवयानी दोनोंका आपसमें झगडा खडा हो गया ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देवयान्युवाच

कस्माद्गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममासुरि ।
समुदाचारहीनाया न ते श्रेयो भविष्यति ॥ ८ ॥

देवयानी बोली– असुरपुत्री ! तू शिष्या होकर मेरा वस्त्र क्यों ले रही है ? शिष्टाचारसे रहित तेरा कभी भी मङ्गल नहीं होगा ॥ ८ ॥

शर्मिष्ठोवाच

आसीनं च शयानं च पिता ते पितरं मम ।
स्तौति वन्दति चाभीक्ष्णं नीचैः स्थित्वा विनीतवत् ॥ ९ ॥

शर्मिष्ठा बोली– मेरे पिता जब बैठे वा सोये रहते हैं, तेरे पिता तब नीचे खडे होकर नम्र-भावसे भाटकी भांति सदा उनकी स्तुति किया करते हैं ॥ ९ ॥

याचतस्त्वं हि दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः ।
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥ १० ॥

तू मांगनेवाले, स्तुति करनेवाले और दान लेनेवालेकी लडकी है और मैं स्तुत होनेवाले, देने-वाले और कभी दान न लेनेवालेकी लडकी हूँ ॥ १० ॥

अनायुधा सायुधाया रिक्ता क्षुभ्यसि भिक्षुकि ।
लप्स्यसे प्रतियोद्धारं न हि त्वां गणयाम्यहम् ॥ ११ ॥

हे भीख मांगनेवाली ! (यह ध्यान रख) तू अस्त्रसे रहित है और मेरे पास अस्त्र हैं । इस-लिए तू बेकार ही नाराज हो रही है । तू चाहे क्रोध कर, क्षुब्ध हो, तू अपने समान ही प्रतियोद्धाको प्राप्त करेगी, मैं तो तुझे कुछ गिनती ही नहीं हूं ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

समुच्छ्रयं देवयानीं गतां सक्तां च वाससि ।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे ततः स्वपुरमाव्रजत् ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले– शर्मिष्ठाने वस्त्रके लिये देवयानीकी बडी आसक्ति देखकर उसको कूपमें डाल दिया और अपने नगरको चली गई ॥ १२ ॥

हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया ।
अनवेक्ष्य ययौ वेश्म क्रोधवेगपरायणा ॥ १३ ॥

पापचित्तवाली शर्मिष्ठा यह समझकर, कि देवयानी मर गयी है; उसे न देख करके ही क्रोधसे अपने घर चली गयी ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथ तं देशमभ्यागाद्ययातिर्नहुषात्मजः।
श्रान्तयुग्यः श्रान्तहयो मृगलिप्सुः पिपासितः ॥ १४ ॥

उसके बाद थके वाहन और घोडोंवाला हिरणका अभिलाषी प्यासा नहुषपुत्र ययाति मृगयाके लिये उस वनमें आया ॥ १४ ॥

स नाहुषः प्रेक्षमाण उदपानं गतोदकम्।
ददर्श कन्यां तां तत्र दीप्तामग्निशिखामिव ॥ १५ ॥

उस ययातिने जलकी खोज करते हुए एक सूखा कूंआ पाया और उसमें अग्निकी शिखा समान तेजयुक्त एक कन्याको देखा ॥ १५ ॥

तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्यामसुरवर्णिनीम्।
सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना ॥ १६ ॥

नृपोत्तम ययातिने उस दिव्यदेह धारण करनेवाली कन्याको देखकरके ही मन हरनेवाली मीठी बोलीसे समझाकर उससे पूछा ॥ १६ ॥

का त्वं ताम्रनखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला।
दीर्घं ध्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छ्वसिषि चातुरा ॥ १७ ॥

तांबेके रङ्गकी नखवाली सुन्दर, मली हुई मणिके कुण्डलवाली युवती नारी! तुम कौन हो? क्यों ऐसी चिन्ता कर रही हो? क्यों कातर होकर शोक प्रकाश कर रही हो? ॥१७॥

कथं च पतितास्यस्मिन्कूपे वीरुत्तृणावृते।
दुहिता चैव कस्य त्वं वद सत्यं सुमध्यमे ॥ १८ ॥

और इस घासपातसे ढंपे हुए कूपमें कैसे गिर गयी? तुम किसकी बेटी हो? हे सुन्दरी! यह सब सच बोलो ॥ १८ ॥

देवयान्युवाच

योऽसौ देवैर्हतान्दैत्यानुत्थापयति विद्यया।
तस्य शुक्रस्य कन्याहं स मां नूनं न बुध्यते ॥ १९ ॥

देवयानी बोली– देवोंसे दैत्योंके मारे जानेपर उन मरे दैत्योंको जो विद्याके बलसे जिलाते हैं, मैं उन शुक्रकी कन्या हूं, वह मेरी यह दशा जान नहीं सके हैं ॥ १९ ॥

एष मे दक्षिणो राजन्पाणिस्ताम्रनखाङ्गुलिः।
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः ॥ २० ॥

हे राजन्! इस तांबेके रंगवाले नखवाली उंगली युक्त दाहिने हाथको पकडकर मुझे निकालिये, क्योंकि आप सुवंशी हैं ऐसा मेरा विचार है ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जानामि हि त्वां संशान्तं वीर्यवन्तं यशस्विनम् ।
तस्मान्मां पतितामस्मात्कूपादुद्धर्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

और निश्चय जानती हूं, कि आप बडे धीर, वीर्य और यशवाले हैं, इससे कुंएमें गिरी हुई मुझे आप इस कूपसे निकाल सकते हैं ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

तामथ ब्राह्मणीं स्त्रीं च विज्ञाय नहुषात्मजः ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततोऽवटात् ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले– नहुषपुत्र राजा ययातिने उसको ब्राह्मणकी कन्या जानकर उसका दाहिना हाथ पकडकर उसे कूपसे निकाला ॥ २२ ॥

उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात्कूपान्नराधिपः ।
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं ययौ ॥ २३ ॥

वह राजा ययाति उस सुन्दरी देवयानीको उस कुंएसे शीघ्रतासे निकालकर उचित सम्भाषण कर उसी क्षण अपने नगरको चला गया ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच

त्वरितं घूर्णिके गच्छ सर्वमाचक्ष्व मे पितुः ।
नेदानीं हि प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः ॥ २४ ॥

देवयानी बोली– हे घूर्णिके ! तू शीघ्र जाकर मेरे पितासे सब बातें कह कि मैं अब राजा वृषपर्वाके नगरमें नहीं घुसूंगी ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

सा तु वै त्वरितं गत्वा घूर्णिकासुरमन्दिरम् ।
दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं सम्भ्रमाविष्टचेतना ॥ २५ ॥

वैशम्पायन बोले– वह दासी घूर्णिका द्रुत वेगसे असुर मन्दिरमें जाकर शुक्रको देखकरके संभ्रमसे युक्त मनवाली होकर बोली ॥ २५ ॥

आचक्षे ते महाप्राज्ञ देवयानी वने हता ।
शर्मिष्ठया महाभाग दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ २६ ॥

हे महाभाग ! श्रेष्ठ ब्रह्मन् ! वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाके द्वारा वनमें मारी गई देवयानीने आपसे कहा है ॥ २६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तत्र शर्मिष्ठया हताम् ।
त्वरया निर्ययौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने ॥ २७ ॥

शर्मिष्ठाके द्वारा अपनी पुत्रीके घायल होनेकी बात सुनकर शुक्र वनमें कन्याको ढूंढनेके लिये दुःखी चित्तसे वेगपूर्वक चले ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं ततो वने ।
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥

तब वनमें अपनी पुत्री देवयानीको देखकर स्नेहवश दुःखित हृदयसे उसे गलेसे लगाकर कविके पुत्र शुक्र बोले– ॥ २८ ॥

आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखे जनाः ।
मन्ये दुश्चरितं तेऽस्ति यस्येयं निष्कृतिः कृता ॥ २९ ॥

सभी जन निज दोष और गुणके अनुसार दुःख और सुख भोगते हैं; मैं समझता हूं, कि तुमने कोई बुरा कार्य किया होगा, उसीका यह फल तुम्हें मिला है ॥ २९ ॥

देवयान्युवाच

निष्कृतिर्मेऽस्तु वा मास्तु शृणुष्वावहितो मम ।
शर्मिष्ठया यदुक्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ।
सत्यं किलैतत्सा प्राह दैत्यानामसि गायनः ॥ ३० ॥

देवयानी बोली– यह मेरे कर्मका फल हो या न हो, वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाने मुझसे जैसा कहा है, उसको ध्यान देकर सुनिये । शर्मिष्ठाने कहा है, कि आप दैत्योंके भाट हैं, क्या सच है ? ॥ ३० ॥

एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
वचनं तीक्ष्णपरुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ॥ ३१ ॥

और क्रोधसे आंखें लालकर अति कटीली और कडवी बातोंसे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने मुझसे यह भी कहा ॥ ३१ ॥

स्तुवतो दुहिता हि त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः ।
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥ ३२ ॥

कि तुम स्तुति पाठ करनेवाले, सदा मांगनेवाले और दान लेनेवालेकी पुत्री हो और मैं स्तुति किये जाते हुए, सदा दान देनेवाले पर कभी न मांगनेवालेकी पुत्री हूँ ॥ ३२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इति मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः ।
क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णा पुनः पुनः ॥ ३३ ॥

अहङ्कारसे भरी हुई वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाने क्रोधसे आंखें लाल करके बार बार मुझसे ऐसा कहा ॥ ३३ ॥

यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः ।
प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता हि सखी मया ॥ ३४ ॥

पिता ! मैंने सखीसे यह बात कही है, कि यदि मैं स्तुतिपाठ करनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी हूं, तो शर्मिष्ठाको प्रसन्न करूंगी ॥ ३४ ॥

शुक्र उवाच

स्तुवतो दुहिता न त्वं भद्रे न प्रतिगृह्णतः ।
अस्तोतुः स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि ॥ ३५ ॥

शुक्र बोले– कल्याणी देवयानि ! तुम स्तुति पढनेवाले, वा दान लेनेहारेकी बेटी नहीं हो, स्तुति न पढनेवाले और दूसरोंके द्वारा स्तुति किये जानेवाले जनकी तुम कन्या हो ॥३५॥

वृषपर्वैव तद्वेद शक्रो राजा च नाहुषः ।
अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ २७७९ ॥

वृषपर्वाके समान इन्द्र और नहुषपुत्र ययाति आदि सब लोग जानते हैं, मेरा बल विरोधवर्जित, अचिंत्य और ऐश्वरिक है ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ २७७९ ॥

: ७४ :

शुक्र उवाच

यः परेषां नरो नित्यमतिवादांस्तितिक्षति ।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ १ ॥

शुक्र बोले–जो अन्य जनसे निन्दित होकर निन्दाकी बातको हमेशा सह लेते हैं, देवयानि ! तुम समझ लो, कि उन्होंने ही इस सम्पूर्ण जगत्का जय कर लिया ॥ १ ॥

यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा ।
स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते ॥ २ ॥

जो उबलते हुए क्रोधको शासित घोडेके समान वशमें कर लेता है, वही साधुओंसे सारथि कहा जाता है, जो केवल रास पकडे रहता है वह सारथि नहीं कहाता ॥ २ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन निरस्यति।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ ३ ॥

जो क्षमासे चढे हुए क्रोधको दूर कर देता है, देवयानि! तुम समझ लो, कि वह ही इस सम्पूर्ण जगत्का जय कर सकता है ॥ ३ ॥

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयेह निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ४ ॥

जो सर्पके द्वारा केंचुली छोडनेकी भांति चढे हुए क्रोधको क्षमासे रोक लेते हैं, वेही पुरुष कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

यः संधारयते मन्युं योऽतिवादांस्तितिक्षति।
यश्च तप्तो न तपति दृढं सोऽर्थस्य भाजनम् ॥ ५ ॥

जो क्रोधको रोकते हैं और निन्दाको सह लेते हैं, तथा आप दुःखित होने पर भी औरोंको दुःख नहीं देते हैं, वही पुरुषार्थके भागी हैं ॥ ५ ॥

यो यजेदपरिश्रान्तो मासि मासि शतं समाः।
न क्रुद्ध्येच्च सर्वस्य तयोरक्रोधनोऽधिकः ॥ ६ ॥

जो विना थके महीने महीने यागकी क्रिया करते हैं और जो अक्रोधी रहते हैं इन दोनोंमें अक्रोधी पुरुष ही श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

यत्कुमारा कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः।
न तत्प्राज्ञोऽनुकुर्वीत विदुस्ते न बलाबलम् ॥ ७ ॥

अज्ञान बालक बालिका आपसमें जो शत्रुता किया करते हैं, प्राज्ञलोग उसका अनुकरण नहीं करते, क्योंकि वे बालक बालिका बलाबलको नहीं जानते ॥ ७ ॥

देवयान्युवाच

वेदाहं तात बालापि धर्माणां यदिहान्तरम्।
अक्रोधे चातिवादे च वेद चापि बलाबलम् ॥ ८ ॥

देवयानी बोली– पिता! मैं बालिका होने पर भी धर्मका जो मर्म है, उसे जानती हूं और अक्रोध और क्रोधके विषयमें बलाबल भी जानती हूं ॥ ८ ॥

शिष्यस्याशिष्यवृत्तेर्हि न क्षन्तव्यं बुभूषता।
तस्मात्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते ॥ ९ ॥

पर जो शिष्य होकर भी शिष्यके समान व्यवहार नहीं करता, मङ्गलेच्छुक जनको उसे क्षमा नहीं करना चाहिये और ऐसे संकुचित और निकृष्ट व्यवहारवाले देशमें वसनेकी मेरी इच्छा नहीं होती ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुमांसो ये हि निन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च ।
न तेषु निवसेत्प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु ॥ १० ॥

जो पुरुष कुल और चारित्रके विषयमें निन्दा करते हैं, उन पापबुद्धियोंके साथ मङ्गलार्थी बुद्धिमान् जन कभी न रहे ॥ १० ॥

ये त्वेनमभिजानन्ति वृत्तेनाभिजनेन च ।
तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ११ ॥

जो साधु कुल और शीलको जानते हैं उनके साथ ही रहना उचित है, और वह वास ही श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ ११ ॥

वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः ।
न ह्यतो दुष्करतरं मन्ये लोकेष्वपि त्रिषु ।
यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपासते ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ २७९१ ॥

वृषपर्वाकी कन्याके द्वारा कही गई बात अति कठोर और कटीली है। मैं जानती हूं, कि तीनों लोकोंमें इससे अधिक असाध्य कार्य कोई दूसरा नहीं है, कि जो धनहीन जन शत्रुओंकी प्रज्वलित श्री देखकर उनकी उपासना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ २७९१ ॥

: ७५ :

वैशंपायन उवाच

ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह ।
वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर भृगुश्रेष्ठ काव्य शुक्र क्रोधसे बैठे हुए वृषपर्वाके पास पहुंच करके बिना विचारके यह कहने लगे ॥ १ ॥

नाधर्मश्चरितो राजन्सद्यः फलति गौरिव ।
पुत्रेषु वा नप्तृषु वा न चेदात्मनि पश्यति ।
फलत्येव ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे ॥ २ ॥

राजन्! अधर्माचरण करनेसे उसी दिन उसका फल दीख तो नहीं पडता है, पर जिस प्रकार धरतीको जोतने बोनेसे धरती उचित समयमें फल देती है, उसी प्रकार अधर्म भी धीरे धीरे फल देता है। जिस प्रकार अधिक भोजन करनेसे उसी क्षण हानि न होनेपर भी अन्तमें अवश्य ही हानि होती है, वैसे ही पापकार्यका फल यदि अपनेमें न दीख पडता हो, तो पुत्र वा पौत्रमें वह अवश्य ही दीख पडेगा ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यदघातयथा विप्रं कचमांगिरसं तदा।
अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम् ॥ ३ ॥

हे वृषपर्वन्! मेरे घरमें रहते हुए धर्मज्ञ, गुरु-सेवक और निष्पापी ब्राह्मण बृहस्पति पुत्र कचका तुमने वध किया था ॥ ३ ॥

वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम।
वृषपर्वन्निबोधेदं त्यक्ष्यामि त्वां सबान्धवम्।
स्थातुं त्वद्विषये राजन्न शक्ष्यामि त्वया सह ॥ ४ ॥

वधके अयोग्य उस कचके वधके कारण और मेरी पुत्रीके भी वधके कारण तुम निश्चय जानना, कि तुमको और तुम्हारे बान्धवोंको मैं त्याग दूंगा। और, हे वृषपर्वा! तुम्हारे राज्यमें मैं न रह सकूंगा ॥ ४ ॥

अहो मामभिजानासि दैत्य मिथ्याप्रलापिनम्।
यथेममात्मनो दोषं न नियच्छस्युपेक्षसे ॥ ५ ॥

अहो दैत्यराज! जो कि तुम मुझको निरर्थक प्रलाप करनेवाला समझते हो, पर यह तुम्हारा अपना दोष है, उसे तुम न सुधारकर उसकी उपेक्षा करते हो ॥ ५ ॥

वृषपर्वोवाच

नाधर्मं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च तत्प्रसीदतु नो भवान् ॥ ६ ॥

वृषपर्वा बोले- हे भार्गव! मैं आपको झूठ बोलनेवाला वा अधार्मिक नहीं समझता; आपहीमें सत्य और धर्म टिके हुए हैं, अतः आप मुझपर प्रसन्न होवें ॥ ६ ॥

यद्यस्मानपहाय त्वमितो गच्छसि भार्गव।
समुद्रं संप्रवेक्ष्यामो नान्यदस्ति परायणम् ॥ ७ ॥

हे भार्गव! यदि आप हमको छोडकर यहांसे चले जायेंगे, तो हम समुद्रमें डूबकर मर जाएंगे, क्योंकि आपके विना हमारी कोई और गति नहीं है ॥ ७ ॥

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा द्रवतासुराः।
दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहं दयिता हि मे ॥ ८ ॥

शुक्र बोले- असुरगण! तुम चाहे समुद्रमें डूबो वा किसी दिशामें भाग जाओ, पर मैं बेटीका अनिष्टाचरण सह नहीं सकूंगा, क्योंकि वह बेटी मेरी बडी स्नेहपात्री है ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रसाद्यतां देवयानी जीवितं ह्यत्र मे स्थितम् ।
योगक्षेमकरस्तेऽहमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ९ ॥

बृहस्पति जैसे इन्द्रके यागके निर्वाह करनेवाले हैं, मैं भी तुम्हारे लिए वैसा हूं, पर मेरा जीवन देवयानीके अधीन है, अतएव देवयानीको प्रसन्न करो ॥ ९ ॥

वृषपर्वोवाच

यत्किंचिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव ।
भुवि हस्तिगवाश्वं च तस्य त्वं मम चेश्वरः ॥ १० ॥

वृषपर्वा बोले– हे भार्गव ! इस भूमण्डलमें असुरोंके हाथी, गौ, घोडे और जितना धन सम्पद् हैं, आप उन सबोंके और मेरे भी ईश्वर हैं ॥ १० ॥

शुक्र उवाच

यत्किंचिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर ।
तस्येश्वरोऽस्मि यदि ते देवयानी प्रसाद्यताम् ॥ ११ ॥

शुक्र बोले– हे महासुर ! असुरराजोंका जितना ऐश्वर्य है, यदि मैं सबका अधीश हूं, तो (मेरी आज्ञा है कि तुम) देवयानीको प्रसन्न करो ॥ ११ ॥

देवयान्युवाच

यदि त्वमीश्वरस्तात राज्ञो वित्तस्य भार्गव ।
नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा तु वदतु स्वयम् ॥ १२ ॥

देवयानी बोली– हे पिता ! मैं भलीभांति नहीं जानती हूं, कि आप दैत्यराजकी सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधीश हैं, अतः राजा स्वयं (मेरे सामने) यह बात कहें ॥ १२ ॥

वृषपर्वोवाच

यं काममभिकामासि देवयानि शुचिस्मिते ।
तत्तेऽहं संप्रदास्यामि यदि चेदपि दुर्लभम् ॥ १३ ॥

वृषपर्वा बोले– हे सुन्दर मुस्कराहटोंवाली देवयानि ! तुम्हारी जो कामना हो, सो कहो, यदि वह दुर्लभ भी हो, तो भी मैं उसे पूरी करूंगा ॥ १३ ॥

देवयान्युवाच

दासीं कन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये ।
अनु मां तत्र गच्छेत्सा यत्र दास्यति मे पिता ॥ १४ ॥

देवयानी बोली– मैं कामना करती हूं, कि सहस्र कन्याओंके साथ शर्मिष्ठा मेरी दासी बने, मेरे पिता मुझको जहां दान करें, शर्मिष्ठा भी वहां मेरे साथ जाये ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वृषपर्वोवाच

उत्तिष्ठ हे संग्रहीत्रि शर्मिष्ठां शीघ्रमानय।
यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम् ॥ १५ ॥

वृषपर्वा निकटकी दासीसे बोले– दासी ! उठो, शीघ्र जाकर शर्मिष्ठाको ले लाओ, देवयानी जो कामना कर रही है, शर्मिष्ठा उसे पूरी करे ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठां वाक्यमब्रवीत्।
उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह ॥ १६ ॥

वैशम्पायन बोले– तब दासीने शर्मिष्ठाके पास जाकर यह वाक्य कहा; हे भद्रे ! शर्मिष्ठे ! उठो; बन्धुओंका कल्याण करो ॥ १६ ॥

त्यजति ब्राह्मणः शिष्यान्देवयान्या प्रचोदितः।
सा यं कामयते कामं स कार्योऽद्य त्वयानघे ॥ १७ ॥

ब्राह्मण शुक्र देवयानीसे प्रेरित होकर अपने शिष्य दैत्योंको त्याग रहे हैं। हे अनघे ! आज वह शुक्रकन्या जो कामना करे वह तुम्हें पूरी करनी पडेगी ॥ १७ ॥

शर्मिष्ठोवाच

सा यं कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम्।
मा त्वेवापगमच्छुक्रो देवयानी च मत्कृते ॥ १८ ॥

शर्मिष्ठा बोली– आज देवयानी जो कामना करेगी उसको मैं पूरी करनेको तैय्यार हूं, मेरे दोषके कारण शुक्र और देवयानी हमसे दूर न जायें ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कन्यासहस्रेण वृता शिबिकया तदा।
पितुर्नियोगात्त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात् ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले– तब पिताकी आज्ञा पाकर पालकीपर चढकर सहस्र कन्याओंसे घिरी हुई वह शर्मिष्ठा अपने उत्तम पुरसे शीघ्र निकली ॥ १९ ॥

शर्मिष्ठोवाच

अहं कन्यासहस्रेण दासी ते परिचारिका।
अनु त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ॥ २० ॥

और देवयानीके पास आकर शर्मिष्ठा बोली– मैं सहस्र कन्याओंके साथ तुम्हारी सेवा करनेवाली दासी हूं, तुम्हारे पिता जहां तुमको दान करेंगे, मैं वहां तुम्हारे साथ जाऊंगी ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देवयान्युवाच

स्तुवतो दुहिता तेऽहं बन्दिनः प्रतिगृह्णतः ।
स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि ॥ २१ ॥

देवयानी बोली– मैं तुम्हारी स्तुति पढनेवाले भाट और दान लेनेवालेकी कन्या हूं; तुम स्तुति किये जानेवालेकी पुत्री हो, फिर तुम क्यों दासी बनोगी ? ॥ २१ ॥

शर्मिष्ठोवाच

येन केनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत् ।
अतस्त्वामनुयास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ॥ २२ ॥

शर्मिष्ठाने उत्तर दिया– जिस उपायसे दुःखी बन्धुवर्ग सुख प्राप्त करें, वही मुझको करना होगा, इसलिए तुम्हारे पिता जहां तुम्हारा दान करेंगे, मैं वहां तुम्हारे पीछे पीछे चलूंगी ॥२२॥

वैशम्पायन उवाच

प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः ।
देवयानी नृपश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

वैशम्पायन बोले– हे नृपश्रेष्ठ ! वृषपर्वाकी बेटीके दासीपन स्वीकार करने पर देवयानी पिताके पास जाकर यह वाक्य बोली ॥ २३ ॥

प्रविशामि पुरं तात तुष्टास्मि द्विजसत्तम ।
अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलं च ते ॥ २४ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अब मैं सन्तुष्ट हूं, अतः अब मैं नगरको जाऊंगी, मैं जान चुकी, कि आपका विज्ञान और विद्याका बल अव्यर्थ है ॥ २४ ॥

एवमुक्तो दुहित्रा स द्विजश्रेष्ठो महायशाः ।
प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ २८१६ ॥

महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्र पुत्रीकी यह बात सुनकर सब दानवोंसे पूजे जाकर प्रसन्नचित्तसे असुरपुरको पधारे ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥ २८१६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७६ :

वैशम्पायन उवाच

अथ दीर्घस्य कालस्य देवयानी नृपोत्तम।
वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—हे नृपोत्तम! तदनन्तर बहुकालके पश्चात् सुन्दरी देवयानी खेलनेके निमित्त पूर्व कथित उसी वनमें गयी ॥ १ ॥

तेन दासीसहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा।
तमेव देशं संप्राप्ता यथाकामं चचार सा।
ताभिः सखीभिः सहिता सर्वाभिर्मुदिता भृशम् ॥ २ ॥

तब सहस्र दासी और शर्मिष्ठाके साथ उसी जंगलमें पहुंचकर मनमाना घूमने लगी। वह वहीं सम्पूर्ण सहेलियोंके साथ परम आनन्द भोगने लगी ॥ २ ॥

क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधुमाधवीम्।
खादन्त्यो विविधान्भक्ष्यान्विदशन्त्यः फलानि च ॥ ३ ॥

वे सब मधु—वृक्षका मधु पीकर आपसमें मिलकर खेलने लगीं तथा भांति भांतिके फलोंको चबाते हुए भांति भांतिकी भोजनीय सामग्री खाने लगीं ॥ ३ ॥

पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया।
तमेव देशं संप्राप्तो जलार्थी श्रमकर्शितः ॥ ४ ॥

ऐसे समयमें ही शिकार खेलनेकी इच्छावाला नहुषपुत्र राजा ययाति थकावटसे जलपानार्थी होकर स्वेच्छापूर्वक वहीं आ पहुंचा ॥ ४ ॥

ददृशे देवयानीं च शर्मिष्ठां ताश्च योषितः।
पिबन्तीर्ललमानाश्च दिव्याभरणभूषिताः ॥ ५ ॥

उन्होंने वहां देवयानी, शर्मिष्ठा और अनुपम रूपवती दिव्य आभूषणोंसे सजी धजी मधु-पानसे उन्मत्ता खेलती हुई कामिनियोंको देखा ॥ ५ ॥

उपविष्टां च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम्।
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम्।
शर्मिष्ठया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः ॥ ६ ॥

मधुर हासिनी, अनुपम रूपवती, नारियोंमें प्रधान उन बालाओंमें बैठी हुई शर्मिष्ठा द्वारा पांवआदि दाबकर सेवा करवाती हुई देवयानीको देखा ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते ।
गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छामि वामहम् ॥ ७ ॥

(यह देखकर) राजा ययाति निकट जाकर बोले, शुभे ! तुम दो कन्या तथा दो सहस्र कन्याओंसे घिरी हुई हो, मैं तुम दोनोंके नाम गोत्र जानना चाहता हूं ॥ ७ ॥

देवयान्युवाच

आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप ।
शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम् ॥ ८ ॥

देवयानी बोली—हे नराधिप ! मैं कहती हूं, मेरी बात ध्यानसे सुनिये । जो असुरोंके गुरु शुक्र नामसे प्रख्यात हैं, मुझे उनकी कन्या समझो ॥ ८ ॥

इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी ।
दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥ ९ ॥

यह वृषपर्वा नामक दैत्यराजकी दुहिता है, इसका नाम शर्मिष्ठा है, यह मेरी सहेली और दासी है, मैं जहां जाती हूं, यह मेरे साथ जाती है ॥ ९ ॥

ययातिरुवाच

कथं नु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी ।
असुरेन्द्रसुता सुभ्रु परं कौतूहलं हि मे ॥ १० ॥

ययाति बोले— हे सुन्दर भौहोंवाली ! यह जाननेके लिये मेरा कौतूहल बढ रहा है, कि दैत्य-राजकी यह सुन्दरी दुहिता तुम्हारी दासी और सखी कैसे हुई ? ॥ १० ॥

देवयान्युवाच

सर्व एव नरव्याघ्र विधानमनुवर्तते ।
विधानविहितं मत्वा मा विचित्राः कथाः कृथाः ॥ ११ ॥

देवयानी बोली— हे नरव्याघ्र ! सभी कुछ दैव ही के वशीभूत है, इसलिए सब कुछ दैवाधीन मानकर कुछ भी आश्चर्य मत करो ॥ ११ ॥

राजवद्रूपवेषौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च ।
किंनामा त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे ॥ १२ ॥

आपका रूप और वेष राजाकी भांति देखती हूं, आप वैदिक वाक्य कह रहे हैं; मुझसे कहिये, कि आप कौन, किनके पुत्र और कहांसे आते हैं ? ॥ १२ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

ब्रह्मचर्येण कृत्स्नो मे वेदः श्रुतिपथं गतः।
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः ॥ १३ ॥

ययाति बोले– मैंने ब्रह्मचर्य व्रत लेकर सम्पूर्ण वेद पाठ किये हैं; मैं राजा और राजपुत्र हूं, मेरा नाम ययाति है ॥ १३ ॥

देवयान्युवाच

केनास्यर्थेन नृपते इमं देशमुपागतः।
जिघृक्षुर्वारिजं किंचिदथवा मृगलिप्सया ॥ १४ ॥

देवयानी बोली– कहिये, आप जलकी मछली आदि मारने, वा मृगयाकी इच्छासे अथवा अन्य किस कारणसे इस जंगलमें आये हैं? १४ ॥

ययातिरुवाच

मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमुपागतः।
बहु चाप्यनुयुक्तोऽस्मि तन्मानुज्ञातुमर्हसि ॥ १५ ॥

ययाति बोले– हे भद्रे! मृगयाके लिये निकल कर मैं यहां जल पीनेके लिए आया हूं, इस समय नाना प्रकारसे थका हुआ हूं। आज्ञा हो, तो चला जाऊं ॥ १५ ॥

देवयान्युवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठया सह।
त्वदधीनास्मि भद्रं ते सखा भर्ता च मे भव ॥ १६ ॥

देवयानी बोली– इन दो सहस्र कन्याओं और दासी शर्मिष्ठाके साथ मैं आपके अधीन हूं, आपका मङ्गल हो, आप मेरे सखा और भर्त्ता होवें ॥ १६ ॥

ययातिरुवाच

विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वामर्होऽस्मि भामिनि।
अविवाह्या हि राजानो देवयानि पितुस्तव ॥ १७ ॥

ययाति बोले– हे शुक्रनन्दिनी, भामिनी, देवयानि! तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं तुम्हारे योग्य पात्र नहीं हूं, तुम्हारे पिता जैसे हैं उससे राजालोग तुम्हारे विवाहके योग्य नहीं हो सकते ॥ १७ ॥

देवयान्युवाच

संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं च ब्रह्मसंहितम्।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाङ्ग वहस्व माम् ॥ १८ ॥

देवयानी बोली– ब्राह्मणके साथ क्षत्रिय और क्षत्रियके साथ ब्राह्मण मिले हुए हैं। हे नहुषपुत्र! आपभी उसके अनुसार ऋषि और ऋषिपुत्र हैं, इसलिए आप मुझसे विवाह कीजिये ॥१८॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वराङ्गने ।
पृथग्धर्माः पृथक्शौचास्तेषां तु ब्राह्मणो वरः ॥ १९ ॥

ययाति बोले– हे वराङ्गने ! चारों वर्ण एक ब्रह्माकी देहसे उत्पन्न तो हुए हैं, पर उनमेंसे हरेकके धर्म और शौचादि अलग अलग निर्दिष्ट हैं, उनमें ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

देवयान्युवाच

पाणिधर्मो नाहुषायं न पुंभिः सेवितः पुरा ।
तं मे त्वमग्रहीरग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ॥ २० ॥

देवयानी बोली– हे नहुष-पुत्र ! किसी और पुरुषने पहिले मेरा हाथ नहीं थामा है, आपहीने सबसे पहिले मेरा पाणिग्रहण किया है, इससे आपको ही पतित्वमें वरण करती हूं ॥ २० ॥

कथं नु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान्स्पृशेत् ।
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया ॥ २१ ॥

आपने ऋषि अथवा ऋषिपुत्र होकरके स्वयं मेरा पाणिग्रहण किया है और मुझ मनस्विनीके हाथका कोई दूसरा पुरुष स्पर्श कैसे करेगा ? ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता ॥ २२ ॥

ययाति बोले– ज्ञानी पुरुष जानते हैं, कि ब्राह्मण क्रोधपूरित विषयुक्त चारों ओर मुखद्वारा अग्नि निकालनेवाले सर्प और तेज शस्त्रसे भी ज्यादा भयंकर होते हैं ॥ २२ ॥

देवयान्युवाच

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ॥ २३ ॥

देवयानीने पूछा– हे पुरुषर्षभ ! ब्राह्मण क्रोधपूरित तेज विषयुक्त और मुखसे चिनगारी निकालनेवाले सर्प और तेज शस्त्रसे भी ज्यादा भयंकर होते हैं यह बात आपने कैसे कही ? ॥ २३ ॥

ययातिरुवाच

एकमाशीविषो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः ॥ २४ ॥

ययाति बोले– सर्पके काटनेसे एक ही मनुष्य मरता है और शस्त्रसे भी एक ही मनुष्य मारा जाता है, पर ब्राह्मण तो क्रोधित होकर राज्य और नगरको एकही समयमें नष्ट कर डालता है ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद्भीरु मतो मम।
अतोऽदत्तां च पित्रा त्वां भद्रे न विवहाम्यहम् ॥ २५ ॥

हे भद्रे ! मैं इन कारणोंसे ब्राह्मणको बडा भयंकर समझता हूं, इसलिए हे भीरु ! तुम्हारे पिताके विना दान किये मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता ॥ २५ ॥

देवयान्युवाच

दत्तां वहस्व पित्रा मां त्वं हि राजन्वृतो मया।
अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः ॥ २६ ॥

देवयानी बोली– महाराज ! मैंने आपको वरण किया है, इसलिए दी गई मुझे अपनाइये। अब आपके न मांगने पर भी पिताके दान करने पर मुझे ग्रहण करनेमें भयकी क्या बात है ? ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच

त्वरितं देवयान्याथ प्रेषितं पितुरात्मनः।
श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन बोले– तब देवयानीने वेगपूर्वक पितासे संपूर्ण वृत्तान्त कहनेकी आज्ञा दी। वह सब वृत्तान्त सुनकर वनमें आकर भार्गव शुक्रने राजाको अपना दर्शन दिया ॥ २७ ॥

दृष्ट्वैव चागतं शुक्रं ययातिः पृथिवीपतिः।
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥ २८ ॥

पृथ्वीनाथ ययाति ब्राह्मण शुक्रको आया देखकर उन कविपुत्र शुक्रको शिर नवा करके प्रणाम कर दोनों हाथोंको जोडके खडे रहे ॥ २८ ॥

देवयान्युवाच

राजायं नाहुषस्तात दुर्गे मे पाणिमग्रहीत्।
नमस्ते देहि मामस्मै नान्यं लोके पतिं वृणे ॥ २९ ॥

देवयानी बोली– पिता ! इन राजा नहुषके पुत्रने विपत्कालमें मेरा पाणिग्रहण किया था, अतः मैं सिर नंवाकर प्रार्थना करती हूं, कि आप इस पात्रके लिए मुझे दीजिये, किसी औरको मैं नहीं वरूंगी ॥ २९ ॥

शुक्र उवाच

वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं ममेष्टया।
गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ॥ ३० ॥

शुक्र बोले– हे वीर नहुषपुत्र ! मेरी इस प्रिय कन्याने तुमको पति वरण किया है, मेरे द्वारा दी गई इसको तुम अपनी पटरानी बनाओ ॥ ३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

अधर्मो न स्पृशेदेवं महान्मामिह भार्गव ।
वर्णसंकरजो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम् ॥ ३१ ॥

ययाति बोले– हे ब्राह्मण भार्गव ! मैं आपसे यह वर मांगता हूं, कि इस विषयमें वर्ण-सङ्करके कारण होनेवाला महान् अधर्म मुझको स्पर्श न करे ॥ ३१ ॥

शुक्र उवाच

अधर्मात्त्वां विमुञ्चामि वरयस्व यथेप्सितम् ।
अस्मिन्विवाहे मा ग्लासीरहं पापं नुदामि ते ॥ ३२ ॥

शुक्र बोले– मैं तुमको अधर्मसे बचाता हूं, तुम मनमाना वर मांगो, इस विवाहसे तुम दुःखी मत होओ, तुम्हारा सम्पूर्ण पाप दूर किये देता हूं ॥ ३२ ॥

वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं सुमध्यमाम् ।
अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

तुम इस सुन्दरी देवयानीसे धर्मानुसार विवाह कर लो, इसके साथ रहकर तुम अपार प्रीति पाओगे ॥ ३३ ॥

इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
संपूज्या सततं राजन्मा चैनां शयने ह्वयेः ॥ ३४ ॥

और यह कुमारी वृषपर्वाकी दुहिता शर्मिष्ठा भी तुम्हारी सदा पूज्य बनी रहे, परंतु, हे राजन्! इसको बिस्तरे पर कभी न बुलाना ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
जगाम स्वपुरं हृष्टो अनुज्ञातो महात्मना ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ २८५१ ॥

वैशम्पायन बोले– शुक्रकी यह बात सुनकर राजा ययातिने उनकी प्रदक्षिणा करके और महात्मा शुक्रकी आज्ञा पाकर प्रसन्न चित्तसे अपनी राजधानीको पधारे ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ २८५१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७७ :

वैशम्पायन उवाच

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसन्निभम्।
प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद ययातिने महेन्द्रकी पुरीसी अपनी पुरीमें पहुंचकर अन्तःपुरमें प्रवेश कराकर देवयानीको योग्य वासस्थान दिया ॥ १ ॥

देवयान्याश्चानुमते तां सुतां वृषपर्वणः।
अशोकवनिकाभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत् ॥ २ ॥

और देवयानीकी अनुमतिसे अशोक वनके निकट घर बनवाकर उसमें वृषपर्वाकी पुत्रीके लिए वासस्थान बनवा दिया ॥ २ ॥

वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठामासुरायणीम्।
वासोभिरन्नपानैश्च संविभज्य सुसत्कृताम् ॥ ३ ॥

और दो सहस्र दासीके साथ उस असुर पुत्री शर्मिष्ठाके लिए वस्त्र, अलङ्कार अन्नपानादिसे यथोचित विभाग करके उसे आदर सत्कारपूर्वक रखा ॥ ३ ॥

देवयान्या तु सहितः स नृपो नहुषात्मजः।
विजहार बहूनब्दान्देववन्मुदितो भृशम् ॥ ४ ॥

इसके बाद वह नहुषपुत्र राजा ययातिने देवयानीसे विहार करते हुए देवोंके समान प्रसन्न होकर बहुतवर्ष बिताये ॥ ४ ॥

ऋतुकाले तु संप्राप्ते देवयानी वराङ्गना।
लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारं च व्यजायत ॥ ५ ॥

यथासमय देवयानीका ऋतुकाल आनेपर सुन्दरी देवयानीने गर्भ धारण किया; इससे उसके एक सुकुमार पुत्रका जन्म हुआ ॥ ५ ॥

गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा चान्वचिन्तयत् ॥ ६ ॥
ऋतुकालश्च संप्राप्तो न च मेऽस्ति पतिर्वृतः।
किं प्राप्तं किं नु कर्तव्यं किं वा कृत्वा कृतं भवेत् ॥ ७ ॥

सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर यौवनको प्राप्त हुई हुई वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाका ऋतुकाल आ पहुंचा। तब वह सोचने लगी, कि मेरा ऋतुकाल आ पहुंचा है, पर विवाह किया हुआ पति नहीं है, क्या होगा! क्या करूं! अथवा कैसे कार्य पूरा होगा? ॥ ६–७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देवयानी प्रजातासौ वृथाहं प्राप्तयौवना ।
यथा तया वृतो भर्ता तथैवाहं वृणोमि तम् ॥ ८ ॥

देवयानीने पुत्र प्रसव किया है, मेरी यौवनदशा व्यर्थ ही बीती जा रही है, अतः देवयानीने जिस प्रकार राजाको पतिरूपमें वरण किया है, उसी प्रकार मैं भी उसीको वरूंगी ॥ ८ ॥

राज्ञा पुत्रफलं देयमिति मे निश्चिता मतिः ।
अपीदानीं स धर्मात्मा इयान्मे दर्शनं रहः ॥ ९ ॥

मुझको निश्चय जान पडता है, कि राजासे पुत्ररूपी फल प्राप्त करूंगी, अब उन धर्मात्माको एकान्तमें पाऊं तब ठीक हो ॥ ९ ॥

अथ निष्क्रम्य राजासौ तस्मिन्काले यदृच्छया ।
अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठां प्राप्य विष्ठितः ॥ १० ॥

वैशम्पायन बोले– तब उस समय राजा इच्छानुसार महलसे निकलकर अशोकवनके निकट पहुंचकर शर्मिष्ठाको देखकर बैठ गये ॥ १० ॥

तमेकं रहिते दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी ।
प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥

मधुरहासिनी शर्मिष्ठा एकान्तमें उनको अकेले पाकरके उनके पास जाकर दोनों हाथ जोड-कर उनसे यह वचन बोली ॥ ११ ॥

सोमस्येन्द्रस्य विष्णोर्वा यमस्य वरुणस्य वा ।
तव वा नाहुष कुले कः स्त्रियं स्प्रष्टुमर्हति ॥ १२ ॥

हे नहुषपुत्र ! चन्द्र, इन्द्र, विष्णु, यम वा वरुणके और आपके अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रीको भला कौन देख सकता है ? ॥ १२ ॥

रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन्वेत्थ मां सदा ।
सा त्वां याचे प्रसाद्याहमृतुं देहि नराधिप ॥ १३ ॥

हे राजन् ! आप मेरे रूप, कुल और शीलकी बात सदासे जानते हैं, अतः हे नराधिप ! मैं आपको प्रसन्न करके प्रार्थना करती हूं, आप मेरे ऋतुकी रक्षा कीजिये ॥ १३ ॥

ययातिरुवाच

वेद्मि त्वां शीलसंपन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम् ।
रूपे च ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निन्दितम् ॥ १४ ॥

ययाति बोले– सुशीला, अनिन्दनीया, दानवकन्या तुम्हें जानता हूँ, तुम्हारा रूप सूईके अगले भागके जितना भी निन्दायोग्य नहीं है ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अब्रवीदुशना काव्यो देवयानीं यदावहम्।
नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी ॥ १५ ॥

पर मैंने जब देवयानीसे विवाह किया था, तब भगवान् उशनाने कहा था, कि तुम इस वृषपर्वाकी कन्याको बिस्तर पर मत बुलाना ॥ १५ ॥

शर्मिष्ठोवाच

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १६ ॥

शर्मिष्ठा बोली– हे राजन्! हंसीमें, स्त्रीसे मिलनेमें और विवाहके समय और प्राण जानेकी संभावनामें, और सब धनके अपहरणके समय इन पांच स्थानमें झूठी बात कहनेसे पाप नहीं लगता ॥ १६ ॥

पृष्टं तु साक्ष्ये प्रवदन्तमन्यथा वदन्ति मिथ्योपहितं नरेन्द्र।
एकार्थतायां तु समाहितायां मिथ्या वदन्तमनृतं हिनस्ति ॥ १७ ॥

हे नरेन्द्र! लोगोंका ऐसा कहना, कि पूछे जाकर झूठी बात कहनेसे मनुष्य पतित होता है, यह बात गलत है; (क्योंकि गौ, ब्राह्मण, स्त्री, दीन, अनाथ आदिके लिये विशेष विशेष स्थानोंमें झूठी साक्षी देनेसे पुण्यभी होता है) जिस स्थलमें दोनोंका एकार्थ समाधान करना हो, वहां झूठी बात दोषकी होती है ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

राजा प्रमाणं भूतानां स नश्येत मृषा वदन्।
अर्थकृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ १८ ॥

ययाति बोले– राजा प्रजाओंके लिए आदर्श रूप होता है, वह झूठ बोलनेसे नष्ट हो जाता है, अतएव यदि धनका कष्ट भोगना भी पडे, तो भी मिथ्या कहनेका मुझमें साहस नहीं होता ॥ १८ ॥

शर्मिष्ठोवाच

समावेतौ मतौ राजन्पतिः सख्याश्च यः पतिः।
समं विवाहमित्याहुः सख्या मेऽसि पतिर्वृतः ॥ १९ ॥

शर्मिष्ठा बोली– हे राजन्! सहेलीका पति और अपना पति दोनों समान हैं। दो सहेलियोंमें एकका विवाह होनेसे दोनोंका विवाह सिद्ध होता है; पहिले मेरी सहेलीने आपको वरण किया है, उससेही आप मेरे भी पति हो गये हैं ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

दातव्यं याचमानेभ्य इति मे व्रतमाहितम् ।
त्वं च याचसि मां कामं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ २० ॥

ययाति बोले– मेरा यह एक व्रत है, कि मांगनेवाला जन जो मांगेगा मैं वही दे दूंगा, तुम मुझसे मांग रही हो, अतः कहो तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करूं ॥ २० ॥

शर्मिष्ठोवाच

अधर्मात्त्राहि मां राजन्धर्मं च प्रतिपादय ।
त्वत्तोऽपत्यवती लोके चरेयं धर्ममुत्तमम् ॥ २१ ॥

शर्मिष्ठा बोली– हे महाराज ! आप मुझे अधर्मसे बचावें और धर्मकी रक्षा करें। आपसे पुत्रवती होकर मैं संसारमें भली भांति धर्मानुष्ठान करूं ॥ २१ ॥

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ २२ ॥

राजन् ! भार्या, दास और पुत्र यह तीन धनवान् नहीं होते, पर यह जो धन उपार्जन करते हैं, वह धन उनका होता है, जिनके वे अधीन हैं ॥ २२ ॥

देवयान्या भुजिष्यास्मि वश्या च तव भार्गवी ।
सा चाहं च त्वया राजन्भरणीये भजस्व माम् ॥ २३ ॥

हे राजन् ! मैं देवयानीकी दासी और भार्गवकन्या देवयानी आपके वशमें है, इसप्रकार देवयानी और मैं दोनों आपके उपभोगके लिए योग्य हैं, इसलिए आप मेरा उपभोग करें ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु राजा स तथ्यमित्येव जज्ञिवान् ।
पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रत्यपादयत् ॥ २४ ॥

वैशम्पायन बोले– राजाने शर्मिष्ठाकी बात सुनकर उसे ठीक जान करके शर्मिष्ठाकी पूजा की और उसका मनोरथ सफल करके धर्मरक्षा की ॥ २४ ॥

समागम्य च शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च ।
अन्योन्यमभिसंपूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम् ॥ २५ ॥

इच्छानुरूप सङ्गमसे शर्मिष्ठाका मनोरथ पूरा होनेपर वे दोनों उचित सम्मानसे सम्भाषण-कर योग्य स्थानोंमें चले गये २५ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिन्समागमे सुभ्रूः शर्मिष्ठा चारुहासिनी।
लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्नृपतिसत्तमात् ॥ २६ ॥

हे राजन् ! प्रसन्ननेत्रा, सुन्दर भौंहवाली मधुरहासिनी शर्मिष्ठा उस पहिले संगम ही में उन नृपोत्तमसे गर्भवती हुई ॥ २६ ॥

प्रजज्ञे च ततः काले राजन्राजीवलोचना।
कुमारं देवगर्भाभं राजीवनिभलोचनम् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ २८७८ ॥

और कमलके समान सुन्दर आंखोंवाली उसने उचित समयमें देवकुमारके समान कमलके समान सुन्दर प्रसन्न नेत्रवाला एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ २८७८ ॥

: ७८ :

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा कुमारं जातं तु देवयानी शुचिस्मिता।
चिन्तयामास दुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! शर्मिष्ठाके पुत्र जन्मा है, यह सुनकर मधुर मुस्कानवाली देवयानी दुःखीचित्त हुई ॥ १ ॥

अभिगम्य च शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम्।
किमिदं वृजिनं सुभ्रु कृतं ते कामलब्धया ॥ २ ॥

और शर्मिष्ठाके समीप जाकर देवयानी यह बोली– हे सुन्दर भौंहवाली ! तुमने कामके वशीभूत होकर यह कैसा पापकर्म कर डाला है ? ॥ २ ॥

शर्मिष्ठोवाच

ऋषिरभ्यागतः कश्चिद्धर्मात्मा वेदपारगः।
स मया वरदः कामं याचितो धर्मसंहितम् ॥ ३ ॥

शर्मिष्ठा बोली– हे सुन्दरी ! मेरे पास कोई धर्मात्मा वेदज्ञ एक ऋषि आये थे, उनके वर देनेको उद्यत होनेपर मैंने धर्मानुसार उनसे ऋतु रक्षाकी प्रार्थना की थी ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते ।
तस्माद्दर्षेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

हे पवित्र मुस्कराहटोंवाली ! मैं अन्यायपूर्वक काम-चारिणी नहीं हुई हूं । मैं सच कहती हूं, कि मेरा गर्भोत्पन्न यह पुत्र उन ऋषिका ही पुत्र है ॥ ४ ॥

देवयान्युवाच

शोभनं भीरु सत्यं चेदथ स ज्ञायते द्विजः ।
गोत्रनामाभिजनतो वेत्तुमिच्छामि तं द्विजम् ॥ ५ ॥

देवयानी बोली– हे भीरु ! यदि यह सच हो तो अच्छा है, पर क्या तुम उन ब्राह्मणको जानती हो ? मैं उस ब्राह्मणका नाम, गोत्र और कुल जानना चाहती हूं ॥ ५ ॥

शर्मिष्ठोवाच

ओजसा तेजसा चैव दीप्यमानं रविं यथा ।
तं दृष्ट्वा मम संप्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मिते ॥ ६ ॥

शर्मिष्ठा बोली– हे सुन्दर स्मितवाली ! वह ब्राह्मण ओज और तेजसे सूर्यके समान तेजस्वी, थे उनको देखकर उनसे कुछ पूछनेका मुझे साहस नहीं हुआ ॥ ६ ॥

देवयान्युवाच

यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम ।
अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात् ॥ ७ ॥

देवयानी बोली– हे शर्मिष्ठे ! यदि ऐसा हो और यदि तुमने अति श्रेष्ठ ब्राह्मणसे पुत्रलाभ किया हो, तो तुमपर मेरे क्रोधका कोई कारण नहीं है ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

अन्योन्यमेवमुक्त्वा तु संप्रहस्य च ते मिथः ।
जगाम भार्गवी वेश्म तथ्यमित्येव जज्ञुषी ॥ ८ ॥

वैशम्पायन बोले– वे दोनों एकान्तमें ऐसा कहकर हंसी मजाक करके देवयानी यह बात ठीक जानकर निज पुरीको चली गई ॥ ८ ॥

ययातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः ।
यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ ॥ ९ ॥

अनन्तर राजर्षि ययातिने देवयानीके गर्भसे दूसरे इन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) के समान यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च त्रीन्कुमारानजीजनत् ॥ १० ॥

उसी राजर्षिसे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु यह तीन कुमार प्रसूत किये ॥ १० ॥

ततः काले तु कस्मिंश्चिद्देवयानी शुचिस्मिता।
ययातिसहिता राजन्निर्जगाम महावनम् ॥ ११ ॥

हे राजन् ! अनन्तर कुछ काल बीतनेपर सुन्दरी देवयानी ययातिके साथ उस महा वनको गयी ॥ ११ ॥

ददर्श च तदा तत्र कुमारान्देवरूपिणः।
क्रीडमानान्सुविश्रब्धान्विस्मिता चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥

वहां निर्भीकतासे खेलते हुए देवके समान तीन कुमारोंको देखकर देवयानीने अचरज मानकर राजासे पूछा ॥ १२ ॥

कस्यैते दारका राजन्देवपुत्रोपमाः शुभाः।
वर्चसा रूपतश्चैव सदृशा मे मतास्तव ॥ १३ ॥

राजन्, देवकुमारके समान यह कुमार किसकी सन्तानें हैं, मुझको जान पडता है, कि रूप और तेजमें यह तुम्हारे ही समान हैं ॥ १३ ॥

एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान्पर्यपृच्छत।
किंनामधेयगोत्रो वः पुत्रका ब्राह्मणः पिता।
विब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुमिच्छामि तं ह्यहम् ॥ १४ ॥

देवयानीने राजासे यह बात कहकर कुमारोंसे पूछा, बालको ! तुम्हारे नाम क्या हैं ? तुमने किस गोत्रमें जन्म लिया है ? कौनसा ब्राह्मण तुम्हारा पिता है ? सच सच कहो, मैं उसे सुनना चाहती हूं ॥ १४ ॥

तेऽदर्शयन्प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम्।
शर्मिष्ठां मातरं चैव तस्याचख्युश्च दारकाः ॥ १५ ॥

बालकोंने उङ्गलियोंसे उन राजश्रेष्ठ ययातिहीको दिखाया और कहा कि शर्मिष्ठा हमारी माता है ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्युक्त्वा सहितास्ते तु राजानमुपचक्रमुः।
नाभ्यनन्दत तान्राजा देवयान्यास्तदान्तिके।
रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्ततः ॥ १६ ॥

लडके यह बात कह करके सब मिलकर राजाके पास गये, पर राजाने तब देवयानीके सामने उनका आदर नहीं किया। तब वे रोते हुए शर्मिष्ठाके पास जा पहुंचे ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा तु तेषां बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति।
बुद्ध्वा च तत्त्वतो देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥

देवी देवयानी राजापर लडकोंकी प्रीति देखकर सत्य तत्त्व जानकर शर्मिष्ठासे यह बोली ॥१७॥

मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम।
तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि किम् ॥ १८ ॥

तुमने मेरी अधीना होकर भी मेरा अप्रिय कार्य क्यों किया ? तुमने वही असुर-धर्मका आश्रय लिया, क्या मुझसे नहीं डरती ? ॥ १८ ॥

शर्मिष्ठोवाच

यदुक्तमृषिरित्येव तत्सत्यं चारुहासिनि।
न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते ॥ १९ ॥

शर्मिष्ठा बोली– हे मधुरहासिनी ! मैंने जो अपने प्रेमीको ऋषि बताया था, वह बात झूठी नहीं है; मैंने न्याय और धर्मके अनुसार ही व्यवहार किया है, अतः तुमसे नहीं डरती ॥१९॥

यदा त्वया वृतो राजा वृत एव तदा मया।
सखीभर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने ॥ २० ॥

हे शोभने ! तुमने जब इन राजाको पतिके रूपमें वरण किया था, मैंने भी तभी इनको वर लिया था, क्योंकि सहेलीके भर्ता धर्मानुसार उस स्त्रीके भी भर्ता होते हैं ॥ २० ॥

पूज्यासि मम मान्या च ज्येष्ठा श्रेष्ठा च ब्राह्मणी।
त्वत्तोऽपि मे पूज्यतमो राजर्षिः किं न वेत्थ तत् ॥ २१ ॥

तुम ब्राह्मणी और बडी हो, अतः मेरी पूजनीया और माननीया हो, पर क्या तुम यह नहीं जानती कि यह राजर्षि मेरे लिए तुमसे भी अधिक पूजनीय हुए हैं ? ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम्।
राजन्नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे कृतं त्वया ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले– तब देवयानी शर्मिष्ठाकी यह बात सुनकर राजासे बोली, कि राजन् ! अब फिर मैं यहां नहीं रहूंगी। तुमने मेरा अप्रिय कार्य किया है ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम्।
त्वरितं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा ॥ २३ ॥
अनुवव्राज संभ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन्नृपः।
न्यवर्तत न चैव स्म क्रोधसंरक्तलोचना ॥ २४ ॥

श्यामा अर्थात् सुन्दरी देवयानीको इतना कहकर आंसूभरी आंखोंसे एकायक उठ कर उसी क्षण शुक्रके पास जाती हुई देखकर व्यथित होकर राजा भारी हृदयसे सम्मानसहित समझाते हुए उसके पीछे चलने लगे, पर क्रोधसे लाल आंखोंवाली वह देवयानी किसी भी प्रकार न लौटी ॥ २३–२४ ॥

अविब्रुवन्ती किंचित्तु राजानं चारुलोचना।
अचिरादेव संप्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम् ॥ २५ ॥

तब राजाको कोई उत्तर न देकरके ही आंसुभरे नेत्रोंसे उसीक्षण उशनसके पुत्र शुक्रके पास जा पहुंची ॥ २५ ॥

सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता।
अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम् ॥ २६ ॥

पिताको देखकर प्रणाम कर सामने खडी हो गई, उसके बाद ययातिने भी भार्गवकी पूजा की ॥ २६ ॥

देवयान्युवाच

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम्।
शर्मिष्ठयातिवृत्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ २७ ॥

देवयानी बोली– हे पिता! अधर्मने धर्मको जीत लिया है, नीचकी वृद्धि हुई है, वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने मेरा उल्लंघन किया है ॥ २७ ॥

त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञानेन ययातिना।
दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते ॥ २८ ॥

हे पिता! इस ययातिने शर्मिष्ठाके गर्भसे तीन पुत्रोंको जन्म दिया है, मैं दुर्भागी हूं, क्योंकि मेरे केवल दो ही पुत्र हुए हैं, हे तात! यह सच बात मैं आपसे कहती हूँ ॥ २८ ॥

धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह।
अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत्कथयामि ते ॥ २९ ॥

हे भार्गव काव्य! यह राजा धर्मज्ञके रूपमें प्रख्यात हैं, पर यह भी आपसे कह देती हूं, कि इन्होंने मर्यादाका अतिक्रमण किया है ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शुक्र उवाच

धर्मज्ञः सन्महाराज योऽधर्ममकृथाः प्रियम्।
तस्माज्जरा त्वामचिराद्धर्षयिष्यति दुर्जया ॥ ३० ॥

शुक्र बोले– महाराज ! तुमने धर्मज्ञ होकर भी अधर्मको प्रिय जाना, अतः विना विलम्ब, कभी न जीते जानेवाला बुढापा तुमको नष्ट करेगा ॥ ३० ॥

ययातिरुवाच

ऋतुं वै याचमानाया भगवन्नान्यचेतसा।
दुहितुर्दानवेन्द्रस्य धर्म्यमेतत्कृतं मया ॥ ३१ ॥

ययाति बोले– भगवन् ! दानवेन्द्रकी पुत्रीने अनन्य चित्तसे ऋतुरक्षाकी प्रार्थना की थी, उसपर मैंने धर्मकार्य जान करके ही ऐसा किया है, कामके वशीभूत होकर नहीं किया ॥३१॥

ऋतुं वै याचमानाया न ददाति पुमान्वृतः।
भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन्स इह ब्रह्मवादिभिः ॥ ३२ ॥

ब्रह्मन् ! किसी कामिनीके ऋतुरक्षाकी प्रार्थना करनेपर जो पुरुष ऋतुकी रक्षा नहीं करता, ब्रह्मवादी ब्राह्मणगण उसको भ्रूणहत्याका पापी बताते हैं ! ॥ ३२ ॥

अभिकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः।
नोपैति स च धर्मेषु भ्रूणहेत्युच्यते बुधैः ॥ ३३ ॥

समागमके योग्य कामिनीके कामवती होनेपर और एकान्त मिलनेकी प्रार्थना करनेपर जो पुरुष उससे नहीं मिलता, पण्डितलोग धर्मशास्त्रोंमें उसको भ्रूणहत्याकारी कहते हैं ॥३३॥

इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्वह।
अधर्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान् ॥ ३४ ॥

हे भार्गव ! मैं अधर्मके भयसे भीत होकर इन सब कारणोंकी भली भांति आलोचना करके शर्मिष्ठासे मिला हूं ॥ ३४ ॥

शुक्र उवाच

नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव।
मिथ्याचारस्य धर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष ॥ ३५ ॥

शुक्र बोले– पृथ्वीनाथ ! नहुष पुत्र ययाते ! तुम मेरे अधीन हो, इसलिए तुम्हें पहले मुझसे आज्ञा लेनी चाहिए थी। तुमने वह नहीं किया है, धर्मविषयमें ऐसा मिथ्याचार करनेसे चोरीके दोषका दोषी बनना पडता है ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

क्रुद्धेनोशनसा शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा ।
पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन बोले-- तब शुक्रके क्रोधयुक्त होकर शाप देनेपर नहुषपुत्र ययाति उसी क्षण पूर्व अवस्थाको छोडकर बुढापेको प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥

ययातिरुवाच

अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह ।
प्रसादं कुरु मे ब्रह्मञ्जरेयं मा विशेत माम् ॥ ३७ ॥

तब ययाति बोले-- हे भार्गव ! मैं यौवन दशामें देवयानीसे तृप्त नहीं हुआ हूं, हे ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न होवें, कि यह बुढापा मुझमें प्रविष्ट न हो ॥ ३७ ॥

शुक्र उवाच

नाहं मृषा ब्रवीम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप ।
जरां त्वेतां त्वमन्यस्मै संक्रामय यदीच्छसि ॥ ३८ ॥

शुक्र बोले– हे पृथ्वीपाल ! मेरी बात झूठी नहीं ठहरती है, तुम बुढापेसे ग्रसित हुए हो, पर चाहो तो इस बुढापेको दूसरे जनमें स्थापित कर सकोगे ॥ ३८ ॥

ययातिरुवाच

राज्यभाक्स भवेद्ब्रह्मन्पुण्यभाक्कीर्तिभाक्तथा ।
यो मे दद्याद्वयः पुत्रस्तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ३९ ॥

ययाति बोले– हे ब्रह्मन् ! अनुमति दीजिये, कि मेरा जो पुत्र मुझको अपना यौवन देगा, वही पुत्र राज्यभागी, पुण्यभागी और कीर्ति-भागी होगा ॥ ३९ ॥

शुक्र उवाच

संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मज ।
मामनुध्याय भावेन न च पापमवाप्स्यसि ॥ ४० ॥

शुक्र बोले-- हे नहुष पुत्र ! तुम एक चित्तसे मेरा ध्यान करके इच्छानुसार बुढापेको दूसरेमें प्रविष्ट करा सकोगे, उससे तुम पापके भागी नहीं होगे ॥ ४० ॥

वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति ।
आयुष्मान्कीर्तिमांश्चैव बह्वपत्यस्तथैव च ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ २९१८ ॥

जो पुत्र तुमको अपनी युवावस्था देगा, वह आयुष्मान्, कीर्तिमान्, राज्याधिकारी और अनेक सन्तानयुक्त होगा ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ २९१८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ७९ :

वैशम्पायन उवाच

जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि ।
पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद राजा ययाति बुढापेसे ग्रसित होकर निजपुरमें जाकर बडे और श्रेष्ठ पुत्र यदुसे यह बात बोले ॥ १ ॥

जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥ २ ॥

हे तात ! शुक्रके शापसे प्राप्त इस बुढापेके कारण (मेरे शरीरमें) झुर्रियां पड गई हैं और केश पक गये हैं, पर मैं यौवनके भोगसे भलीभांति तृप्त नहीं हुआ हूं ॥ २ ॥

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥ ३ ॥

इसलिए हे यदु ! अतएव तुम मेरे इस बुढापेके साथ पापको ले लो, तुम्हारे यौवनसे मैं कामके विषय भोगूं ॥ ३ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनस्ते यौवनं त्वहम् ।
दत्त्वा स्वं प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ४ ॥

और सहस्र वर्ष पूरे हो जाने पर मैं तुम्हारा यौवन तुमको लौटा देकर अपनी जराके साथ पाप वापस ले लूंगा ॥ ४ ॥

यदुरुवाच

सितश्मश्रुशिरा दीनो जरया शिथिलीकृतः ।
वलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः ॥ ५ ॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवनैः ।
सहोपजीविभिश्चैव तां जरां नाभिकामये ॥ ६ ॥

यदु बोले– जिस बुढापेसे लोग सफेद दाढीयुक्त, दीन, शिथिल अवयववाले तथा झुर्रियोंसे युक्त शरीरवाले, दुर्दशावाले दुर्बल, पतले किसी भी कार्यको करनेमें असमर्थ और तरुणों तथा साथियोंसे अनादृत होते हैं, उस जराको मैं भोगना नहीं चाहता ॥ ५–६ ॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्मादराज्यभाक्तात प्रजा ते वै भविष्यति ॥ ७ ॥

ययाति बोले– हे पुत्र ! मेरे हृदयसे जन्म ले करके भी तुमने अपनी अवस्था नहीं दी, अतः तुम्हारे वंशमें कोई राज्याधिकारी नहीं होगा ॥ ७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक ॥ ८ ॥

(तब तुर्वसुसे बोले) हे पुत्र तुर्वसो ! तुम मेरी इस जराके साथ पापको लेलो, मैं तुम्हारे यौवनसे विषय भोगूं ॥ ८ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम्।
स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ९ ॥

बादमें सहस्र वर्ष पूरे होनेपर तुम्हारा यौवन तुमको देकर अपनी जराके साथ पाप ले लूंगा ॥ ९ ॥

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्।
बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीम् ॥ १० ॥

तुर्वसुने उत्तर दिया– हे पिता ! जिससे मनमाने भोगसे हाथ धोना पडता है, जिससे बल और रूप बिगड जाता है, जिससे बुद्धि जाती रहती है और जिससे प्राण नष्ट हो जाता है, उस बुढापेको मैं नहीं चाहता हूं ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्मात्प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥ ११ ॥

ययाति बोले– हे तुर्वसो ! तुमने मेरे हृदयसे जन्म लेकरके भी अपनी अवस्था नहीं दी, इसलिए तुम्हारी प्रजा सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जायगी ॥ ११ ॥

संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च।
पिशिताशिषु चान्त्येषु मूढ राजा भविष्यसि ॥ १२ ॥

और जिनके आचार और धर्म बहुत संकीर्ण हैं, जो लोग अति लोभाचारी और मांस खानेवाले हैं, उन नीच कुलमें जन्मे हुए लोगोंमें, हे मूर्ख ! तुम राजा होओगे ॥ १२ ॥

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च।
पशुधर्मिषु पापेषु म्लेच्छेषु प्रभविष्यसि ॥ १३ ॥

जो अपने गुरुकी पत्नीसे आसक्त हैं, जिनके आचार पक्षियोंकी भांति हैं और जो पापिष्ठ पशुधर्मी तथा म्लेच्छ हैं, उनके तुम राजा होगे ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः ।
शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले– ययाति अपने पुत्र तुर्वसुको इस प्रकार शाप देकर शर्मिष्ठाके पुत्र द्रुह्युसे यह वचन बोले ॥ १४ ॥

दुरुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ।
जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं ददस्व च ॥ १५ ॥

हे दुरुह्यो ! सहस्र वर्षके लिये मेरे रङ्ग तथा रूपका नाश करनेवाली इस जराको लेकर अपना यौवन मुझे दो ॥ १५ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वं चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥ १६ ॥

जब सहस्र वर्ष पूरे हो जाएंगे तब तुम्हारा यौवन तुमको देकर फिर अपने पापके साथ जराको ले लूंगा ॥ १६ ॥

दुरुह्युरुवाच

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुंक्ते न च स्त्रियम् ।
वाग्भङ्गश्चास्य भवति तज्जरां नाभिकामये ॥ १७ ॥

दुरुह्यु बोला– जराग्रस्त जन जीर्ण शरीर धारी होनेके कारण घोडे, रथ, हाथी, स्त्री आदिको भोग नहीं सकता और उसकी वाणी भी बिगड जाती है, अतः मैं बुढापेको नहीं चाहता ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्माद्दुरुह्यो प्रियः कामो न ते संपत्स्यते क्वचित् ॥ १८ ॥

ययाति बोले– दुरुह्यो ! तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करके भी अपनी अवस्था नहीं दी, सो तुम्हारी अति प्रिय इच्छा भी कभी पूरी नहीं होगी ॥ १८ ॥

उडुपप्लवसंतारो यत्र नित्यं भविष्यति ।
अराजा भोजशब्दं त्वं तत्रावाप्स्यसि सान्वयः ॥ १९ ॥

तुम वंशसहित उस देशमें रहोगे कि जहां सदा बेडे और नावोंपरसे जाना पडता है, वहां लोग तुम्हें राजा न कहकर भोज कहा करेंगे ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
एकं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥ २० ॥

अनन्तर अनु नामक पुत्रसे बोले– हे अनो ! तुम मेरे पापके सहित यह बुढापा ले लो, मैं तुम्हारे यौवनसे एक सहस्र वर्षतक विषय भोगूं ॥ २० ॥

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुवदादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा।
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये ॥ २१ ॥

अनुने उत्तर दिया– जराग्रस्त जन अकालमें ही बच्चेके समान अशुचि शरीरसे अन्न ग्रहण करते हैं, उचित समयमें अग्निमें आहुति भी नहीं दे सकते, इससे जराको नहीं ले सकूंगा ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥ २२ ॥

ययाति बोले– तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करके भी अपनी युवावस्था नहीं दी, इस हेतु तुमने जो जराके दोष कहे हैं, उन्हींको प्राप्त करोगे ॥ २२ ॥

प्रजाश्च यौवनप्राप्ता विनशिष्यन्त्यनो तव।
अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि ॥ २३ ॥

हे अनो ! तुम्हारी प्रजा यौवनमें पहुंचते ही मर जायगी और तुम भी श्रुति और स्मृतिके अनुसार अग्निकार्य्यसे वर्जित होवोगे ॥ २३ ॥

पूरो त्वं मे प्रियः पुत्रस्त्वं वरीयान्भविष्यसि।
जरा वली च मे तात पलितानि च पर्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥ २४ ॥

(अनन्तर पूरुसे बोले)– हे पूरो ! तुम मेरे प्यारे पुत्र हो, तुम्हीं सबसे श्रेष्ठ होगे, तात ! बुढापे झुर्रिया और सफेदीने मुझपर चढाई कर दी है, मैं शुक्रके शापसे जराग्रस्त होनेके कारण यौवनसे भलीभांति तृप्त नहीं हो सका हूं ॥ २४ ॥

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
कंचित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव ॥ २५ ॥

हे पूरो ! तुम मेरे पापके साथ इस जराको ले लो, मैं तुम्हारे यौवनसे कुछ दिनोंतक विषय भोगूं ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ २६ ॥

बादमें सहस्र वर्ष पूरे होनेपर तुम्हारा यौवन तुमको देकर निज पापके साथ जराको ले लूंगा ॥ २६ ॥

वैशंपायन उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा ।
यथात्थ मां महाराज तत्करिष्यामि ते वचः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन बोले-- पिताकी यह बात सुनते ही पूरुने विनयतासे उत्तर दिया, हे महाराज ! आपने जैसी आज्ञा दी है, मैं वही बात करूंगा ॥ २७ ॥

प्रतिपत्स्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह ।
गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान् ॥ २८ ॥

हे राजन् ! मैं आपके पापके साथ जराको ले लूंगा । हे राजन् ! आप मेरा यौवन ले लें और मनमाना विषय भोगिये ! ॥ २८ ॥

जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।
यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथात्थ माम् ॥ २९ ॥

मैं आपकी अवस्था और रूपको धरकर जराग्रस्त होकर आपको यौवन देकर आपकी आज्ञा-के अनुसार कार्य करूंगा ॥ २९ ॥

ययातिरुवाच

पूरो प्रीतोऽस्मि ते वत्स प्रीतश्चेदं ददामि ते ।
सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ २९४९ ॥

ययाति बोले– बेटा पूरो ! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ, प्रीतिचित्तसे तुम्हें यह वर देता हूं, कि तुम्हारे राज्यमें प्रजा सभी कामनाओंको पाकर समृद्ध होगी ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें उनासीवां अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ ॥ २९४९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ८० :

वैशम्पायन उवाच

पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः।
प्रीतियुक्तो नृपश्रेष्ठश्चचार विषयान्प्रियान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– नहुषपुत्र राजश्रेष्ठ ययाति प्रीतियुक्त होकर पूरुके यौवनसे प्रिय विषयोंको भोगने लगे ॥ १ ॥

यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम्।
धर्माविरुद्धान्राजेन्द्रो यथार्हति स एव हि ॥ २ ॥

हे राजेन्द्र ! उनकी जैसी कामना और जैसा उत्साह था, वह उसके अनुसार उचित समय-में यथायोग्य धर्मसे विना विरोध किये वे सुख भोगने लगे ॥ २ ॥

देवानतर्पयद्यज्ञैः श्राद्धैस्तद्वत्पितॄनपि।
दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥ ३ ॥
अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च परिपालनैः।
आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्संनिग्रहेण च ॥ ४ ॥

वह यज्ञोंसे देवोंको, श्राद्धसे पितरोंको, मनमानी कृपासे दीनोंको, कामनाओंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंको, अन्नपानसे अतिथियोंको, भले प्रकार पालनसे प्रजाओंको और अनिर्दयतासे शूद्रोंको भली भांति तृप्त कर और लुटेरोंको वशमें करके ॥ ३–४ ॥

धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन्।
ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ ५ ॥

तथा धर्मसे संपूर्ण प्रजाओंको अनुरक्त करके ययाति दूसरे देवराजके समान प्रजाको पालने लगे ॥ ५ ॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः।
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥ ६ ॥

सिंहवत् विक्रमी वह राजा विषयमें आसक्त होकर धर्मसे विना विरोध किये उत्तम सुखका भली प्रकार भोग करने लगे ॥ ६ ॥

स संप्राप्य शुभान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः।
कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः ॥ ७ ॥

वह अच्छी कामनाकी सामग्री पाकर सन्तुष्ट हुए, पर यह स्मरण कर कि, मेरी यौवनावस्था सहस्र वर्षमें पूरी होजायगी अति खेदयुक्तभी हुए ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परिसंख्याय कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान् ।
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥ ८ ॥

वीर्यवान् और कालको जाननेवाले राजर्षि कला काष्ठा आदि कालको गिनकर सहस्र वर्षोंको पूरा हुआ जानकर पुत्र पूरुसे बोले ॥ ८ ॥

यथाकामं यथोत्साहं यथाकालमरिंदम ।
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ॥ ९ ॥

हे अरिन्दम पुत्र ! मैं तुम्हारे यौवनसे अभिलाषा और उत्साहके अनुसार उचित कालमें विषय भोग चुका हूं । ॥ ९ ॥

पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम् ।
राज्यं चैव गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः ॥ १० ॥

हे पूरो ! तुम्हीं मेरे प्रियकार्य करनेहारे पुत्र हो, मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारा कल्याण होगा, तुम अपना यह यौवन लेकर इस राज्यको भी स्वीकार करो ॥ १० ॥

प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा ।
यौवनं प्रतिपेदे च पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥ ११ ॥

अनन्तर नहुषपुत्र ययातिने जराको ले लिया और पूरुने भी फिर अपना यौवन प्राप्त कर लिया ॥ ११ ॥

अभिषेक्तुकामं नृपतिं पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥ १२ ॥

राजाके कनिष्ठ पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करनेकी अभिलाषा प्रगट करने पर ब्राह्मणादि चारों वर्णोंने राजाके समीप आकर यह कहा ॥ १२ ॥

कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो ।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रदास्यसि ॥ १३ ॥

हे प्रभो ! शुक्रके नाती देवयानीसे जन्मे ज्येष्ठ यदुको छोड कर पूरुको क्यों राज्य देना चाहते हैं ? ॥ १३ ॥

यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः ।
शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पूरुरेव च ॥ १४ ॥

यदु आपके ज्येष्ठ पुत्र, तुर्वसु दूसरे और शर्मिष्ठाके गर्भमें उत्पन्न द्रुह्यु तीसरे, अनु चौथे और पूरु सबसे कनिष्ठ हैं ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति।
एतत्संबोधयामस्त्वां धर्मं त्वमनुपालय ॥ १५ ॥

अतएव ज्येष्ठोंको छोडकर कनिष्ठ कैसे राज्याधिकारी हो सकता है? हमने यह आवेदन किया है, आप यथायोग्य धर्मका पालन कीजिये ॥ १५ ॥

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः।
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन ॥ १६ ॥

ययाति बोले– हे ब्राह्मणादि वर्णो! तुम सब मेरी बात सुनो, मैं ज्येष्ठको किसी प्रकार राज्य नहीं दूंगा ॥ १६ ॥

मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥ १७ ॥

ज्येष्ठ यदुने मेरी आज्ञा नहीं पाली है। जो पुत्र पिताके प्रतिकूल आचरण करता है, साधुओंके मतसे वह पुत्र नहीं माना जाता ॥ १७ ॥

मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः।
स पुत्रः पुत्रवच्चश्च वर्तते पितृमातृषु ॥ १८ ॥

जो पुत्र माता और पिताकी आज्ञासे चलनेवाला तथा हितकारी है, और पिता माता पर पुत्रके समान स्नेह करता है, वही पुत्र पुत्र है ॥ १८ ॥

यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च।
द्रुह्युना चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥ १९ ॥

यदुने मेरी अवज्ञा की है, तथा उसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु, अनुने भी मेरे प्रति बडा अनादर प्रगट किया है ॥ १९ ॥

पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः।
कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम।
मम कामः स च कृतः पूरुणा पुत्ररूपिणा ॥ २० ॥

पूरुने मेरी बातको विशेष मानकर मेरी जराको ले लिया था, इससे पूरु कनिष्ठ होनेसे भी मेरा उत्तराधिकारी दायाद होगा। पुत्ररूपी पूरुने मेरी अभिलाषा पूरी की है ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ।
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः ।
भवतोऽनुनयाम्येवं पुरू राज्येऽभिषिच्यताम् ॥ २१ ॥

और कविपुत्र उशना शुक्रने स्वयं मुझको यह वर दिया है, कि जो पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी होगा, वही राज्याधिकारी होगा; अतएव तुमसे विनय करता हूं, कि तुम पूरुको राज्य-पर बैठाओ ॥ २१ ॥

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभो ॥ २२ ॥

तब प्रजाओंने कहा - हे प्रभो ! जो पुत्र गुणयुक्त साधु, श्रेष्ठ और सदा पिता माताका हित-कारी होता है, वह कनिष्ठ होने परभी संपूर्ण कल्याणका पात्र हो सकता है ॥ २२ ॥

अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतः प्रियकृत्तव ।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥ २३ ॥

अतएव आपका प्रियकारी पुत्र पूरु इस राज्यको प्राप्त करनेके योग्य है, इस विषयमें शुक्रने भी वर दिया है, अतः उसका उत्तर नहीं दिया जा सकता ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ।
अभ्यषिञ्चत्ततः पूरुं राज्ये स्वे सुतमात्मजम् ॥ २४ ॥

वैशम्पायन बोले– पुरवासी और जनपदवासियोंके सन्तुष्ट होकर वैसा कहने पर नहुष पुत्र ययातिने अपने पुत्र पूरुको राज्य पर अभिषिक्त किया ॥ २४ ॥

दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः ।
पुरात्स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ॥ २५ ॥

राजा ययाति पूरुको राज्य देकर वनवासके लिये दीक्षित हो करके ब्राह्मण और तपस्वियोंके साथ पुरसे निकले ॥ २५ ॥

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः सुताः ।
द्रुह्योरपि सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥ २६ ॥

राजा ययातिके पुत्रोंमें यदुके वंशसे यादव, तुर्वसुके वंशसे यवन, द्रुह्युके वंशसे भोज और अनुके वंशसे म्लेच्छ जातिने जन्म लिया ॥ २६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति।
एतत्संबोधयामस्त्वां धर्मं त्वमनुपालय ॥ १५ ॥

अतएव ज्येष्ठोंको छोडकर कनिष्ठ कैसे राज्याधिकारी हो सकता है? हमने यह आवेदन किया है, आप यथायोग्य धर्मका पालन कीजिये ॥ १५ ॥

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः।
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन ॥ १६ ॥

ययाति बोले– हे ब्राह्मणादि वर्णो! तुम सब मेरी बात सुनो, मैं ज्येष्ठको किसी प्रकार राज्य नहीं दूंगा ॥ १६ ॥

मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥ १७ ॥

ज्येष्ठ यदुने मेरी आज्ञा नहीं पाली है। जो पुत्र पिताके प्रतिकूल आचरण करता है, साधुओंके मतमें वह पुत्र नहीं माना जाता ॥ १७ ॥

मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः।
स पुत्रः पुत्रवच्चश्च वर्तते पितृमातृषु ॥ १८ ॥

जो पुत्र माता और पिताकी आज्ञासे चलनेवाला तथा हितकारी है, और पिता माता पर पुत्रके समान स्नेह करता है, वही पुत्र पुत्र है ॥ १८ ॥

यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च।
द्रुह्युना चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥ १९ ॥

यदुने मेरी अवज्ञा की है, तथा उसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु, अनुने भी मेरे प्रति बडा अनादर प्रगट किया है ॥ १९ ॥

पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः।
कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम।
मम कामः स च कृतः पूरुणा पुत्ररूपिणा ॥ २० ॥

पूरुने मेरी बातको विशेष मानकर मेरी जराको ले लिया था, इससे पूरु कनिष्ठ होनेसे भी मेरा उत्तराधिकारी दायाद होगा। पुत्ररूपी पूरुने मेरी अभिलाषा पूरी की है ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ।
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः ।
भवतोऽनुनयाम्येवं पुरू राज्येऽभिषिच्यताम् ॥ २१ ॥

और कविपुत्र उशना शुक्रने स्वयं मुझको यह वर दिया है, कि जो पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी होगा, वही राज्याधिकारी होगा; अतएव तुमसे विनय करता हूं, कि तुम पूरुको राज्य-पर बैठाओ ॥ २१ ॥

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभो ॥ २२ ॥

तब प्रजाओंने कहा - हे प्रभो ! जो पुत्र गुणयुक्त साधु, श्रेष्ठ और सदा पिता माताका हित-कारी होता है, वह कनिष्ठ होने परभी संपूर्ण कल्याणका पात्र हो सकता है ॥ २२ ॥

अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतः प्रियकृत्तव ।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥ २३ ॥

अतएव आपका प्रियकारी पुत्र पूरु इस राज्यको प्राप्त करनेके योग्य है, इस विषयमें शुक्रने भी वर दिया है, अतः उसका उत्तर नहीं दिया जा सकता ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ।
अभ्यषिञ्चत्ततः पूरुं राज्ये स्वे सुतमात्मजम् ॥ २४ ॥

वैशम्पायन बोले– पुरवासी और जनपदवासियोंके सन्तुष्ट होकर वैसा कहने पर नहुष पुत्र ययातिने अपने पुत्र पूरुको राज्य पर अभिषिक्त किया ॥ २४ ॥

दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः ।
पुरात्स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ॥ २५ ॥

राजा ययाति पूरुको राज्य देकर वनवासके लिये दीक्षित हो करके ब्राह्मण और तपस्वियोंके साथ पुरसे निकले ॥ २५ ॥

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः सुताः ।
द्रुह्योरपि सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥ २६ ॥

राजा ययातिके पुत्रोंमें यदुके वंशसे यादव, तुर्वसुके वंशसे यवन, द्रुह्युके वंशसे भोज और अनुके वंशसे म्लेच्छ जातिने जन्म लिया ॥ २६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव।
इदं वर्षसहस्राय राज्यं कारयितुं वशी ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ २९७६ ॥

हे पृथ्वीनाथ! जिस वंशसे आपने संयतेन्द्रिय होकर सहस्र वर्ष राज्य करनेके लिये जन्म लिया है, वह पौरव वंश पूरुहीसे उत्पन्न हुआ है ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ २९७६ ॥

: ८१ :

वैशंपायन उवाच

एवं स नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम्।
राज्येऽभिषिच्य मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– नहुषपुत्र राजा ययाति इस प्रकार अपने प्रिय पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर प्रसन्नचित्तसे वानप्रस्थाश्रमका आश्रय कर मुनि हो गये ॥ १ ॥

उषित्वा च वने वासं ब्राह्मणैः सह संश्रितः।
फलमूलाशनो दान्तो यथा स्वर्गमितो गतः ॥ २ ॥

वह जितेन्द्रिय संयतव्रत और फलमूल भक्षी होकर ब्राह्मणोंके साथ कुछ काल वनमें रहकर स्वर्गको पधारे ॥ २ ॥

स गतः सुरवासं तं निवसन्मुदितः सुखम्।
कालस्य नातिमहतः पुनः शक्रेण पातितः ॥ ३ ॥

स्वर्गमें जाकर उन्होंने कुछकाल परम सुखसे काटा। पर बादमें थोड़े समयके बाद देवराजने फिर उनको स्वर्गसे नीचे गिरा दिया ॥ ३ ॥

निपतन्प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम्।
स्थित आसीदन्तरिक्षे स तदेति श्रुतं मया ॥ ४ ॥

सुना है, कि वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलको प्राप्त नहीं हुए थे, अपितु आकाशहीमें ठहर गए थे ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतिः ।
राज्ञा वसुमता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान् ।
प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि ॥ ५ ॥

बादमें ऐसा सुना जाता है कि उस वीर्यवान् राजाने वसुमान्, अष्टक, प्रतर्दन और शिबिके साथ एकत्र होकर फिर स्वर्गारोहण किया ॥ ५ ॥

जनमेजय उवाच

कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः ।
सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कथ्यमानं त्वया विप्रं विप्रर्षिगणसंनिधौ ॥ ६ ॥

जनमेजय बोले-- यह कथा आद्योपान्त भली प्रकार सुनना चाहता हूं, कि महीपति ययाति किस कार्यसे फिर देवलोकको प्राप्त हुए, आप इन ब्राह्मणों और ऋषियोंके सामने कहिये ॥६॥

देवराजसमो ह्यासीद्ययातिः पृथिवीपतिः ।
वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः ॥ ७ ॥
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि दिवि चेह च सर्वशः ॥ ८ ॥

वह कुरुवंशके बढानेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी पृथ्वीपति ययाति देवराजके सदृश थे; सर्वत्र फैले हुए यशवाले, सत्य कीर्तिवाले उन महात्माके इस लोक और परलोककी संपूर्ण कथा सुननेका अभिलाषी हूं ॥ ७–८ ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तरां कथाम् ।
दिवि चेह च पुण्यार्थां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ९ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन्! स्वर्गमें और इस लोकमें पुण्य उपजानेवाली सर्व पापनाशिनी राजा ययातिकी उत्तर अर्थात् बादकी कथा आपसे कहता हूं, सुनिये ॥ ९ ॥

ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।
राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राज वनं तदा ॥ १० ॥

तब नहुष–पुत्र राजा ययाति कनिष्ठपुत्र पूरुको राज्यपर अभिषिक्त कर प्रसन्न होकर वनको चले गए ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अन्तेषु स विनिक्षिप्य पुत्रान्यदुपुरोगमान् ।
फलमूलाशनो राजा वने संन्यवसच्चिरम् ॥ ११ ॥

और यदु आदि पुत्रोंको नीच देशमें स्थापित करके फलमूलभक्षक होकरके बहुकालतक वनमें रहे ॥ ११ ॥

संशितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन्पितृदेवताः ।
अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन्वानप्रस्थविधानतः ॥ १२ ॥

उसकालमें उन्होंने संयतात्मा और जितक्रोध होकर देवता और पितरोंका तर्पण करते हुए वानप्रस्थकी विधिसे विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दी ॥ १२ ॥

अतिथीन्पूजयामास वन्येन हविषा विभुः ।
शिलोञ्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः ॥ १३ ॥

वह राजा वनके फल मूल और घृतसे अतिथियोंकी पूजा किया करते थे। विभु शिल और उञ्छवृत्ति अवलम्बन कर शस्यको चुन चुनकर शेष अन्नका भोजन करते थे ॥ १३ ॥

पूर्णं वर्षसहस्रं च एवंवृत्तिरभून्नृपः ।
अब्भक्षः शरदस्त्रिंशदासीन्नियतवाङ्मनाः ॥ १४ ॥

इस प्रकारकी वृत्तिसे उस राजाने पूरे सहस्र वर्ष व्यतीत किये थे; आगे उन्होंने संयतचित्त होकर कुछ न खाते हुए तीस वर्ष काटे ॥ १४ ॥

ततश्च वायुभक्षोऽभूत्संवत्सरमतन्द्रितः ।
पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे संवत्सरं नृपः ॥ १५ ॥

अनन्तर तन्द्रा रहित होकर वर्षभर वायु पीकर जीवित रहे; अन्तमें एक वर्ष पञ्चाग्निके बीचमें तपस्या की ॥ १५ ॥

एकपादस्थितश्चासीत्षण्मासाननिलाशनः ।
पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामावृत्य रोदसी ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ २९९२ ॥

छः महीने वायुका भक्षण करते हुए एक पांवके बल खडे रहे, अनन्तर पुण्यकीर्ति नहुष-नन्दनने आकाश-मण्डलको चमका कर स्वर्गारोहण किया ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इक्क्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥ २९९२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ८२ :

वैशम्पायन उवाच

स्वर्गतः स तु राजेन्द्रो निवसन्देवसद्मनि ।
पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– वह राजेन्द्र ययाति देव, साध्य, मरुत और वसुओंसे भली भांति पूजे जाकर देवालयमें रहने लगे ॥ १ ॥

देवलोकाद्ब्रह्मलोकं संचरन्पुण्यकृद्वशी ।
अवसत्पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः ॥ २ ॥

और देवलोकसे ब्रह्मलोकमें विचरते हुए पुण्यकारी, जितेन्द्रिय उस पृथ्वीपतिने इस प्रकारसे बहुतकाल स्वर्गवास किया, ऐसा सुना जाता है ॥ २ ॥

स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागमत् ।
कथान्ते तत्र शक्रेण पृष्टः स पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥

एक समय वह नृपश्रेष्ठ ययाति देवराजके पास गए, तब बातचीतके अन्तमें इन्द्रने उनसे पूछा ॥ ३ ॥

शक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव रूपेण राजञ्जरां गृहीत्वा प्रचचार भूमौ ।
तदा राज्यं संप्रदायैव तस्मै त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम् ॥ ४ ॥

इन्द्र बोले– राजन् ! जब पूरु तुम्हारा स्वरूप धरकर और बुढापा लेकर भूमण्डलमें घूमे फिरे थे, तब सच कहो तुमने उनको राज्य देकर क्या कहा था ॥ ४ ॥

ययातिरुवाच

गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव ।
मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्त्याधिपास्तव ॥ ५ ॥

ययाति बोले– (तब मैंने पूरुसे यह कहा था, कि) गङ्गा और यमुनाके बीचमें जितने देश हैं, वह सभी तुम्हारे हैं, इन दोनों नदियोंके बीचके भूमण्डलके तुम्हीं राजा हो और तुम्हारे दूसरे भाई नीच जातियोंके राजा हैं ॥ ५ ॥

अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।
अमानुषेभ्यो मानुषाश्च प्रधाना विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः ॥ ६ ॥

और यह उपदेश भी किया था, कि क्रोधीसे अक्रोधी श्रेष्ठ, अक्षमीसे क्षमी श्रेष्ठ, नीच जीवसे मनुष्य जाति श्रेष्ठ और अविद्वान् जनसे विद्वान्जन श्रेष्ठ कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ७ ॥

किसीके आक्रोश करने पर बदलेमें आक्रोश मत करना, क्योंकि सहनशील जनका मन्युही आक्रोशकारीको जला देती है और उस क्षमाशील जनको पुण्य भी प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुशतीं पापलोक्याम् ॥ ८ ॥

औरोंके पीडा देनेवाला वा निष्ठुर वाणी कहनेवाला न होना, अभिचार आदि नीच उपायोंसे शत्रुको वशमें न लाना और जिस बातसे औरोंके चित्तमें दुःख पहुंचनेकी संभावना हो, ऐसी जलानेवाली पापयुक्त बात भी किसीसे न कहना ॥ ८ ॥

अरुन्तुदं पुरुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम् ॥ ९ ॥

जो जन वाक्यरूपी कांटोंसे मनुष्योंको बींधता है, जिसके मुखमें औरको पीडा पहुंचानेवाला वाक्यरूपी राक्षस बैठा है, ऐसे कडे कहनेवाले निष्ठुरजनको देखनेसे भी लक्ष्मी छूट जाती है ॥ ९ ॥

सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्यात्सद्भिस्तथा पृष्ठतो रक्षितः स्यात्।
सदासतामतिवादांस्तितिक्षेत्सतां वृत्तं चाददीतार्यवृत्तः ॥ १० ॥

सुचरित्रजन असाधुओंसे लाञ्छित होनेसे भी सदा साधुओंसे पहिले पूजित और पीछेसे रक्षित भी होते हैं। इसलिए उत्तम चरित्रवाले जन हमेशा दुष्टोंके कटुशब्दोंको सुनकर भी उन्हें सहता और दुष्टोंको क्षमा करता रहे और सज्जनोंके आचरणको ही अपने जीवनमें उतारता जाए ॥ १० ॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ११ ॥

मुखसे वाक्यरूपी तेजबाण निकलकर अन्यके मर्मस्थान हीमें गिरते हैं, उससे जो जन घायल होता है, वह दिन रात मनके दुःखसे दुःखी रहता है, अतएव पण्डित जन किसीके मर्म पर जाकर गिरनेवाले वह वाक्यबाण नहीं मारते ॥ ११ ॥

न हीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
यथा मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥ १२ ॥

सब जीवोंसे मित्रता, दान और मीठी बात इनके समान धन तीनों भुवनमें दूसरा नहीं है ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मात्सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित् ।
पूज्यान्संपूजयेद्दद्यान्न च याचेत्कदाचन ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ३००५ ॥

अतएव सदा शान्त वचन कहना चाहिए, कदापि निष्ठुर बात नहीं कहनी चाहिए, पूजनीय जनकी पूजा करनी और दानशील होना, कभी भीख नहीं मांगना चाहिए ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बयासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८२ ॥ ३००५ ॥

: ८३ :

इन्द्र उवाच

सर्वाणि कर्माणि समाप्य राजन्गृहान्परित्यज्य वनं गतोऽसि ।
तत्त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र केनासि तुल्यस्तपसा ययाते ॥ १ ॥

इन्द्र बोले– हे राजन् नहुष-पुत्र ययाति ! जब तुम सम्पूर्ण कर्म पूरे कर गृहाश्रमको त्याग कर वनमें सिधारे, तब मैं तुमसे पूछता हूं कि तपस्यामें तुम किसके सदृश हो ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

नाहं देवमनुष्येषु न गन्धर्वमहर्षिषु ।
आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित्पश्यामि वासव ॥ २ ॥

ययाति बोले– हे वासव ! देव, मानव, गन्धर्व और महर्षियोंमें मैं अपने समान तपस्वी किसीको नहीं देखता ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच

यदावमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च पापीयसश्चाविदितप्रभावः ।
तस्माल्लोका अन्तवन्तस्तवेमे क्षीणे पुण्ये पतितास्यद्य राजन् ॥ ३ ॥

इन्द्र बोले– हे राजन् ! तुमने औरोंके प्रभाव न जान करकेही अपनेसे श्रेष्ठ, तुल्य और अधम सबोंका अपमान किया, इस हेतु तुम्हारा पुण्यक्षय हो गया, उसके साथ ही तुम्हारे इस स्वर्गभोगका भी अन्त हुआ, इसलिये तुम आज ही देवलोकसे नीचे गिरोगे ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

सुरर्षिगन्धर्वनरावमानात्क्षयं गता मे यदि शक्र लोकाः ।
इच्छेयं वै सुरलोकाद्विहीनः सतां मध्ये पतितुं देवराज ॥ ४ ॥

ययाति बोले– हे देवराज ! देव, ऋषि, गन्धर्व और मनुष्योंका अपमान प्रगट करनेसे यदि मेरा स्वर्ग–भोगका अन्त हुआ हो, तो देवलोकसे च्युत होकर साधु–समाजमें गिरना चाहता हूं ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इन्द्र उवाच

सतां सकाशे पतितासि राजंश्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धासि भूयः।
एवं विदित्वा तु पुनर्ययाते न तेऽवमान्याः सदृशः श्रेयसश्च ॥ ५ ॥

इन्द्र बोले– हे राजन्! तुम स्वर्गसे भ्रष्ट होकर साधुओंके निकट गिरोगे और वहां फिर प्रतिष्ठा लाभ कर सकोगे। हे ययाते! तुमको अब धर्मका मर्म ज्ञात हुआ है, सो फिर कभी तुल्य और श्रेष्ठ जनोंका अनादर मत करना ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रहायामरराजजुष्टान्पुण्याँल्लोकान्पतमानं ययातिम्।
संप्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्तमुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– तब राजा ययाति देवराजसे सुशोभित पुण्यलोकको छोडकर गिर रहे थे कि ऐसे समयमें साधुके रक्षक राजर्षिश्रेष्ठ अष्टक उनको देखकर बोले ॥ ६ ॥

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः स्वतेजसा दीप्यमानो यथाग्निः।
पतस्युदीर्णाम्बुधरान्धकारात्खात्खेचराणां प्रवरो यथार्कः ॥ ७ ॥

अपने तेजसे अग्नि समान प्रज्वलित, इन्द्रके सदृश रूप–यौवनयुक्त और आकाशमें चरनेवालोंमें श्रेष्ठ, सूर्यके समान तुम कौन मेघरूपी अंधियारेको हटाते हुए आकाशसे गिर रहे हो? ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात्पतन्तं वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम्।
किं नु स्विदेतत्पततीति सर्वे वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः ॥ ८ ॥

अग्नि वा सूर्यके समान प्रकाशमान तुमको सूर्यके मार्गसे गिरते हुए देखकर हम सभी लोग मोहित होकर "यह क्या गिर रहा है" कहके तर्क वितर्क कर रहे हैं ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा च त्वां विष्ठितं देवमार्गे शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम्।
अभ्युद्गतास्त्वां वयमद्य सर्वे तत्त्वं पाते तव जिज्ञासमानाः ॥ ९ ॥

हम सब तुमको उपेन्द्र, इन्द्र और सूर्यके सदृश प्रभावी और देवमार्गमें स्थित देखकर तुम्हारे गिरनेके कारण जाननेके लिये उठ खडे हुए हैं ॥ ९ ॥

न चापि त्वां धृष्णुमः प्रष्टुमग्रे न च त्वमस्मान्पृच्छसि ये वयं स्मः।
तत्त्वां पृच्छामः स्पृहणीयरूपं कस्य त्वं वा किंनिमित्तं त्वमागाः ॥ १० ॥

उत्तम रूपवान् पहिले तुमसे तुम्हारा परिचय पूछनेकी धृष्टता हम नहीं कर सकते पर आप यह भी नहीं पूछते कि हम कौन हैं; इस हेतुसे पूछते हैं, कि तुम किसके पुत्र हो? और क्यों आ रहे हो? ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ त्यजाशु देवेन्द्रसमानरूप ।
त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे नालं प्रसोढुं बलहापि शक्रः ॥ ११ ॥

हे इन्द्रके समान प्रभावी ! तुम्हारा भय दूर होवे, तुम खेद और मोहको झट दूर करो, तुम्हारे इन साधुओंके पास ठहरनेसे बलनाशी इन्द्र भी तुमको सता नहीं सकेंगे ॥ ११ ॥

सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां सतां सदैवामरराजकल्प ।
ते संगताः स्थावरजङ्गमेशाः प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु ॥ १२ ॥

हे अमरराज इन्द्रके समान ! सुखसे च्युत हुए हुए सज्जनोंकी साधु--लोगही भली भांति सदा रक्षा करते हैं, इस स्थानमें उन चराचर भूतोंके प्रभु वे साधु भी बहुत एकत्र हैं, अतएव तुम अपने समान सज्जनोंके निकटही आ पहुंचे हो ॥ १२ ॥

प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः ।
प्रभुः सूर्यः प्रकाशित्वे सतां चाभ्यागतः प्रभुः ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ३०१६ ॥

जिस प्रकार अग्नि ताप देनेमें समर्थ हैं, भूमि बीज आदिके बोनेके लिए उपयुक्त है और सूर्य अंधेरा दूर करनेमें समर्थ है, उसी प्रकार साधुओंके लिए अतिथि जन प्रभु होते हैं ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ ३०१६ ॥

: ८४ :

ययातिरुवाच

अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सर्वभूतावमानात् ।
प्रभ्रंशितः सुरसिद्धर्षिलोकात्परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः ॥ १ ॥

ययाति बोले– मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता हूं, मेरा नाम ययाति है । मैंने सब जीवों का अपमान किया था, इस हेतु पुण्य घटनेसे सुर, सिद्ध और ऋषिलोकसे च्युत होकर गिर रहा हूं; ॥ १ ॥

अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्यस्तेनाभिवादं भवतां न प्रयुञ्जे ।
यो विद्यया तपसा जन्मना वा वृद्धः स पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥ २ ॥

मैं तुमसे आयुमें ज्येष्ठ हूं, इस हेतु मैंने तुमको नमस्कार नहीं किया, क्योंकि जो जन विद्या या तपस्या अथवा जन्मसे वृद्ध होते हैं वही द्विजातियोंमें पूजनीय होते हैं ॥ २ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अष्टक उवाच

अवादीश्चेद्वयसा यः स वृद्ध इति राजन्नाभ्यवदः कथंचित्।
यो वै विद्वान्वयसा सन्स वृद्धः स एव पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥ ३ ॥

अष्टक बोले– हे राजन्! तुमने जो कहा, कि जो जन आयुमें वृद्ध होते हैं, वह पूजनीय होते हैं, यह गलत है, क्योंकि ऐसा कहा है, कि जो जन विद्या और तपस्यासे वृद्ध है, वही द्विजोंमें पूजनीय होते हैं ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहुस्तद्वर्ततेऽप्रवणे पापलोक्यम्।
सन्तोऽसतां नानुवर्तन्ति चैतद्यथा आत्मैषामनुकूलवादी ॥ ४ ॥

ययाति बोले– विद्या और तपस्यादि कर्मके विषयमें अहङ्कारको पण्डितोंने नरक उपजानेवाला पाप कहा है, वह अहङ्कार स्वतन्त्र जनमें ही वर्तता है, साधु लोग उन स्वतन्त्र असाधुओंके समान अहंकारके वशमें नहीं होते, पूर्वकालके सज्जन भी ऐसे थे; मैं वैसा न करके ही स्वर्गसे च्युत हुआ हूं ॥ ४ ॥

अभूद्धनं मे विपुलं महद्वै विचेष्टमानो नाधिगन्ता तदस्मि।
एवं प्राधार्यात्महिते निविष्टो यो वर्तते स विजानाति जीवन् ॥ ५ ॥

हे ऋषे! मुझमें पुण्यरूपी प्रचुर धन संचित था, वह मेरे अहंकारहीसे नष्ट हुआ है, इस समय विशेष प्रयत्न करके भी उसको फिर पा नहीं सकता। जो मेरी ऐसी गति देखकर आत्महित साधनेमें प्रयत्नशील होंगे, वही बुद्धिमान हैं ॥ ५ ॥

नानाभावा बहवो जीवलोके दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः।
तत्तत्प्राप्य न विहन्येत धीरो दिष्टं बलीय इति मत्वात्मबुद्ध्या ॥ ६ ॥

इस जीवलोकमें नाना भावनावाले अनेक जन हैं, क्योंकि सभी दैवाधीन हैं, इससे उनकी चेष्टा और योग्यता सभी विनष्ट होजाती है। अतएव धीर पुरुष अपनी बुद्धिसे अदृष्टका बल समझकर सुख वा दुःख आनेपर उनसे क्रोध या द्वेष करके आत्मशक्ति क्षीण नहीं करते ॥ ६ ॥

सुखं हि जन्तुर्यदि वापि दुःखं दैवाधीनं विन्दते नात्मशक्त्या।
तस्माद्दिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कदाचित् ॥ ७ ॥

प्राणी सुख वा दुःख अपने पूर्वकृतकर्मोंके या भाग्यके अनुसार ही भोगते हैं, अपनी आत्मशक्तिके अनुसार नहीं। अतएव दैवको औरोंसे बली जानकर सुख दुःखमें प्रसन्न वा दुःखी होना किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुःखे न तप्येन्न सुखेन हृष्येत्समेन वर्तेत सदैव धीरः ।
दिष्टं बलीय इति मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कदाचित् ॥ ८ ॥

धीर जन दुःख भोगनेके कालमें दुःखी वा सुख भोगनेके कालमें प्रसन्न नहीं होते, सदा एकभावसे रहते हैं; वह भाग्य बडा बलवान् है यह जानकर किसी प्रकार भी संतोष असंतोषमें लिप्त नहीं होते ॥ ८ ॥

भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित्संतापो मे मानसो नास्ति कश्चित् ।
धाता यथा मां विदधाति लोके ध्रुवं तथाहं भवितेति मत्वा ॥ ९ ॥

हे अष्टक ! विधाताने मुझे जैसा बना दिया है, वैसा ही मैं बनूंगा, यह सोचकर मैं कभी भयसे मोहित नहीं हुआ और मेरा मानसिक कोई सन्ताप भी नहीं है ॥ ९ ॥

संस्वेदजा अण्डजा उद्भिदाश्च सरीसृपाः कृमयोऽथाप्सु मत्स्याः ।
तथाश्मानस्तृणकाष्ठं च सर्वं दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ते ॥ १० ॥

देखो, पसीनेसे, अण्डेसे और भूमि फोडकर उत्पन्न होनेवाले, सर्प, बिच्छू, मछली आदि जलके और स्थलके कीट, पत्थर और तृण काष्ठादि पदार्थ हैं सभी नियतिके अन्तमें अपनी अपनी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं ॥ १० ॥

अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा कस्मात्संतापमष्टकाहं भजेयम् ।
किं कुर्यां वै किं च कृत्वा न तप्ये तस्मात्संतापं वर्जयाम्यप्रमत्तः ॥ ११ ॥

हे अष्टक ! सुख दुःख अनित्य हैं, अतएव क्यों उनसे तापित हूंगा ? यह विचार कर कि क्या करूं, क्या करनेसे संताप जाता रहेगा, अप्रमत्त होकर संतापका विसर्जन कर दिया है ॥ ११ ॥

अष्टक उवाच

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्र प्रधानास्त्वया भुक्ता यं च कालं यथा च ।
तन्मे राजन्ब्रूहि सर्वं यथावत्क्षेत्रज्ञवद्भाषसे त्वं हि धर्मान् ॥ १२ ॥

अष्टकने पूछा– हे पृथ्वीपते ! तुम क्षेत्रज्ञ आदिके समान धर्मकी कथा कह रहे हो, अतएव तुमने जितने कालमें जिस प्रकारसे जिन जिन प्रधान लोकोंका भोग किया है, वह सब मुझसे कहो ॥ १२ ॥

ययातिरुवाच

राजाहमासमिह सार्वभौमस्ततो लोकान्महतो अजयं वै ।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १३ ॥

ययाति बोले– मैं इसलोकमें सार्वभौम राजा था, उसके बाद महत् लोकको जीता, वहां सहस्र वर्षतक वास किया, पश्चात् मैंने परमलोकको प्राप्त किया ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनायताम्।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १४ ॥

उसके बाद सहस्र द्वारयुक्त सौ योजन फैली हुई सुन्दर इन्द्रपुरीमें सहस्र वर्षतक वास किया, अनन्तर दूसरे लोकको प्राप्त किया ॥ १४ ॥

ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम्।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १५ ॥

जो उससे भी श्रेष्ठ दुष्प्राप्य दिव्य अजर लोकपति प्रजापतिलोकको प्राप्त कर वहां भी सहस्र वर्ष वास किया, आगे उससे भी परम लोकको पाया ॥ १५ ॥

देवस्य देवस्य निवेशने च विजित्य लोकानवसं यथेष्टम्।
संपूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १६ ॥

देव-देवके घरमें विहार कर देवोंसे पूजे जाकर तथा देवोंके तुल्य प्रभावी और तुल्य द्युतिमान् होकर मनमाने लोकोंमें वास किया ॥ १६ ॥

तथावसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विहरन्पुण्यगन्धान्पश्यन्नगान्पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥ १७ ॥

अन्तमें कामरूपी होकर दश लक्ष वर्ष नन्दनवनमें वास किया, सुगन्धवाले फूल लगे हुए मनोहर वृक्षदल और पर्वतोंको देखता हुआ अप्सराओंके साथ विहार करने लगा ॥ १७ ॥

तत्रस्थं मां देवसुखेषु सक्तं कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ १८ ॥

इस प्रकार स्वर्गीय सुखमें आसक्त रहनेमें बहुत काल व्यतीत हुआ। अनन्तर उग्ररूपी देवदूतने मेरे पास आकर "च्युत हो" यह बात उच्च प्लुतस्वरसे तीन बार कही ॥ १८ ॥

एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात्क्षीणपुण्यः।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणामनुक्रोशाच्छोचतां मानवेन्द्र ॥ १९ ॥

हे राजसिंह! मैं इतना ही मात्र जानता हूं, आगे उसीक्षण मैं अल्प पुण्यवान् होकर नन्दन वनसे च्युत हुआ। हे नरेन्द्र! तब शोक करनेवाले सुरोंका यह खेद वाक्य आकाश-मार्गमें सुना ॥ १९ ॥

अहो कष्टं क्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृत्पुण्यकीर्तिः।
तानब्रुवं पतमानस्ततोऽहं सतां मध्ये निपतेयं कथं नु ॥ २० ॥

हाय! कैसे दुःखकी बात है! वह देखो, पुण्य-कारी, पुण्य-कीर्तिमान् ययाति क्षीणपुण्य होकर गिर रहे हैं! तब मैंने गिरते हुए ही उनसे पूछा, कि मैं साधु समाजमें कैसे गिर सकता हूं? ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तैराख्याता भवतां यज्ञभूमिः समीक्ष्य चैनां त्वरितमुपागतोऽस्मि ।
हविर्गन्धं देशिकं यज्ञभूमेर्धूमापाङ्गं प्रतिगृह्य प्रतीतः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ३०३७ ॥

अनन्तर जिन्होंने मुझको तुम्हारी यह यज्ञ-भूमि दिखायी; इस यज्ञ भूमिमें धुंएसे सूचित उपदेश करनेवालेकी भांति हविका गन्ध सूंघकर प्रसन्नचित्त होकर इस यज्ञभूमिमें शीघ्र चला आया ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ ३०३७ ॥

: ८५ :

अष्टक उवाच

यदावसो नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तत्त्वं वसुधामन्वपद्यः ॥ १ ॥

अष्टक बोले— हे सत्यशील ! तुम कामरूपी होकर दश लक्ष वर्ष नन्दनवनमें वसे थे, अनन्तर किस हेतु उसको छोडकर भूतलमें उतरे ? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत्स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः सेश्वरा देवसङ्घाः ॥ २ ॥

ययाति बोले— जिस प्रकार इस लोकमें भी किसीके स्वल्पवित्त होनेपर उसको ज्ञाति, मित्र और स्वजनगण त्याग देते हैं, उसी प्रकार वहां मनुष्योंके क्षीण-पुण्य होनेपर ऐश्वर्यवान् देवगण उनको उसी क्षण त्याग देते हैं ॥ २ ॥

अष्टक उवाच

कथं तस्मिन्क्षीणपुण्या भवन्ति संमुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।
किंविशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे ॥ ३ ॥

अष्टकने कहा— उस देवलोकमें वहांके लोग क्षीण-पुण्य कैसे होते हैं ? इस विषयमें मुझे बडी शङ्का हो रही है । फिर यह भी मुझसे कहो, कि किस पुण्यके करनेसे कौनसे प्रजापति-धाममें लोग जाते हैं, क्योंकि तुम क्षेत्रज्ञ हो ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनायताम्।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १४ ॥

उसके बाद सहस्र द्वारयुक्त सौ योजन फैली हुई सुन्दर इन्द्रपुरीमें सहस्र वर्षतक वास किया, अनन्तर दूसरे लोकको प्राप्त किया ॥ १४ ॥

ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम्।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १५ ॥

जो उससे भी श्रेष्ठ दुष्प्राप्य दिव्य अजर लोकपति प्रजापतिलोकको प्राप्त कर वहां भी सहस्र वर्ष वास किया, आगे उससे भी परम लोकको पाया ॥ १५ ॥

देवस्य देवस्य निवेशने च विजित्य लोकानवसं यथेष्टम्।
संपूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १६ ॥

देव-देवके घरमें विहार कर देवोंसे पूजे जाकर तथा देवोंके तुल्य प्रभावी और तुल्य द्युतिमान् होकर मनमाने लोकोंमें वास किया ॥ १६ ॥

तथावसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विहरन्पुण्यगन्धान्पश्यन्नगान्पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥ १७ ॥

अन्तमें कामरूपी होकर दश लक्ष वर्ष नन्दनवनमें वास किया, सुगन्धवाले फूल लगे हुए मनोहर वृक्षदल और पर्वतोंको देखता हुआ अप्सराओंके साथ विहार करने लगा ॥ १७ ॥

तत्रस्थं मां देवसुखेषु सक्तं कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ १८ ॥

इस प्रकार स्वर्गीय सुखमें आसक्त रहनेमें बहुत काल व्यतीत हुआ। अनन्तर उग्ररूपी देवदूतने मेरे पास आकर "च्युत हो" यह बात उच्च प्लुतस्वरसे तीन बार कही ॥ १८ ॥

एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात्क्षीणपुण्यः।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणामनुक्रोशाच्छोचतां मानवेन्द्र ॥ १९ ॥

हे राजसिंह! मैं इतना ही मात्र जानता हूं, आगे उसीक्षण मैं अल्प पुण्यवान होकर नन्दन वनसे च्युत हुआ। हे नरेन्द्र! तब शोक करनेवाले सुरोंका यह खेद वाक्य आकाश-मार्गमें सुना ॥ १९ ॥

अहो कष्टं क्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृत्पुण्यकीर्तिः।
तानब्रुवं पतमानस्ततोऽहं सतां मध्ये निपतेयं कथं नु ॥ २० ॥

हाय! कैसे दुःखकी बात है! वह देखो, पुण्य-कारी, पुण्य-कीर्तिमान् ययाति क्षीणपुण्य होकर गिर रहे हैं! तब मैंने गिरते हुए ही उनसे पूछा, कि मैं साधु समाजमें कैसे गिर सकता हूं? ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तैराख्याता भवतां यज्ञभूमिः समीक्ष्य चैनां त्वरितमुपागतोऽस्मि ।
हविर्गन्धं देशिकं यज्ञभूमेर्धूमापाङ्गं प्रतिगृह्य प्रतीतः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ३०३७ ॥

अनन्तर जिन्होंने मुझको तुम्हारी यह यज्ञ-भूमि दिखायी; इस यज्ञ भूमिमें धुंएसे सूचित उपदेश करनेवालेकी भांति हविका गन्ध सूंघकर प्रसन्नचित्त होकर इस यज्ञभूमिमें शीघ्र चला आया ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ ३०३७ ॥

: ८५ :

अष्टक उवाच

यदावसो नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तत्त्वं वसुधामन्वपद्यः ॥ १ ॥

अष्टक बोले– हे सत्यशील ! तुम कामरूपी होकर दश लक्ष वर्ष नन्दनवनमें बसे थे, अनन्तर किस हेतु उसको छोडकर भूतलमें उतरे ? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत्स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः सेश्वरा देवसङ्घाः ॥ २ ॥

ययाति बोले– जिस प्रकार इस लोकमें भी किसीके स्वल्पवित्त होनेपर उसको ज्ञाति, मित्र और स्वजनगण त्याग देते हैं, उसी प्रकार वहां मनुष्योंके क्षीण-पुण्य होनेपर ऐश्वर्यवान् देवगण उनको उसी क्षण त्याग देते हैं ॥ २ ॥

अष्टक उवाच

कथं तस्मिन्क्षीणपुण्या भवन्ति संमुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।
किंविशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे ॥ ३ ॥

अष्टकने कहा– उस देवलोकमें वहांके लोग क्षीण-पुण्य कैसे होते हैं ? इस विषयमें मुझे बडी शङ्का हो रही है । फिर यह भी मुझसे कहो, कि किस पुण्यके करनेसे कौनसे प्रजापति-धाममें लोग जाते हैं, क्योंकि तुम क्षेत्रज्ञ हो ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनायताम्।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १४ ॥

उसके बाद सहस्र द्वारयुक्त सौ योजन फैली हुई सुन्दर इन्द्रपुरीमें सहस्र वर्षतक वास किया, अनन्तर दूसरे लोकको प्राप्त किया ॥ १४ ॥

ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम्।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १५ ॥

जो उससे भी श्रेष्ठ दुष्प्राप्य दिव्य अजर लोकपति प्रजापतिलोकको प्राप्त कर वहां भी सहस्र वर्ष वास किया, आगे उससे भी परम लोकको पाया ॥ १५ ॥

देवस्य देवस्य निवेशने च विजित्य लोकानवसं यथेष्टम्।
संपूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १६ ॥

देव-देवके घरमें विहार कर देवोंसे पूजे जाकर तथा देवोंके तुल्य प्रभावी और तुल्य द्युतिमान् होकर मनमाने लोकोंमें वास किया ॥ १६ ॥

तथावसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विहरन्पुण्यगन्धान्पश्यन्नगान्पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥ १७ ॥

अन्तमें कामरूपी होकर दश लक्ष वर्ष नन्दनवनमें वास किया, सुगन्धवाले फूल लगे हुए मनोहर वृक्षदल और पर्वतोंको देखता हुआ अप्सराओंके साथ विहार करने लगा ॥ १७ ॥

तत्रस्थं मां देवसुखेषु सक्तं कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ १८ ॥

इस प्रकार स्वर्गीय सुखमें आसक्त रहनेमें बहुत काल व्यतीत हुआ। अनन्तर उग्ररूपी देवदूतने मेरे पास आकर "च्युत हो" यह बात उच्च प्लुतस्वरसे तीन बार कही ॥ १८ ॥

एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात्क्षीणपुण्यः।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणामनुक्रोशाच्छोचतां मानवेन्द्र ॥ १९ ॥

हे राजसिंह! मैं इतना ही मात्र जानता हूं, आगे उसीक्षण मैं अल्प पुण्यवान होकर नन्दन वनसे च्युत हुआ। हे नरेन्द्र! तब शोक करनेवाले सुरोंका यह खेद वाक्य आकाश-मार्गमें सुना ॥ १९ ॥

अहो कष्टं क्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृत्पुण्यकीर्तिः।
तानब्रुवं पतमानस्ततोऽहं सतां मध्ये निपतेयं कथं नु ॥ २० ॥

हाय! कैसे दुःखकी बात है! वह देखो, पुण्य-कारी, पुण्य-कीर्तिमान् ययाति क्षीणपुण्य होकर गिर रहे हैं! तब मैंने गिरते हुए ही उनसे पूछा, कि मैं साधु समाजमें कैसे गिर सकता हूं? ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तैराख्याता भवतां यज्ञभूमिः समीक्ष्य चैनां त्वरितमुपागतोऽस्मि ।
हविर्गन्धं देशिकं यज्ञभूमेर्धूमापाङ्गं प्रतिगृह्य प्रतीतः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ३०३७ ॥

अनन्तर जिन्होंने मुझको तुम्हारी यह यज्ञ-भूमि दिखायी; इस यज्ञ भूमिमें धुंएसे सूचित उपदेश करनेवालेकी भांति हविका गन्ध सूंघकर प्रसन्नचित्त होकर इस यज्ञभूमिमें शीघ्र चला आया ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ ३०३७ ॥

: ८५ :

अष्टक उवाच

यदावसो नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तत्त्वं वसुधामन्वपद्यः ॥ १ ॥

अष्टक बोले– हे सत्यशील ! तुम कामरूपी होकर दश लक्ष वर्ष नन्दनवनमें बसे थे, अनन्तर किस हेतु उसको छोडकर भूतलमें उतरे ? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत्स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः सेश्वरा देवसङ्घाः ॥ २ ॥

ययाति बोले– जिस प्रकार इस लोकमें भी किसीके स्वल्पवित्त होनेपर उसको ज्ञाति, मित्र और स्वजनगण त्याग देते हैं, उसी प्रकार वहां मनुष्योंके क्षीण-पुण्य होनेपर ऐश्वर्यवान् देवगण उनको उसी क्षण त्याग देते हैं ॥ २ ॥

अष्टक उवाच

कथं तस्मिन्क्षीणपुण्या भवन्ति संमुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।
किंविशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे ॥ ३ ॥

अष्टकने कहा– उस देवलोकमें वहांके लोग क्षीण-पुण्य कैसे होते हैं ? इस विषयमें मुझे बडी शङ्का हो रही है । फिर यह भी मुझसे कहो, कि किस पुण्यके करनेसे कौनसे प्रजापति-धाममें लोग जाते हैं, क्योंकि तुम क्षेत्रज्ञ हो ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव सर्वे।
ये कङ्कगोमायुबलाशनार्थं क्षीणा विवृद्धिं बहुधा व्रजन्ति ॥ ४ ॥

ययाति बोले– हे नरदेव ! जो लोग अपनी उन्नति निज मुखसे प्रगट करते हैं, वे क्षीण-पुण्य होकर देवलोकसे इस भूतलरूपी नरकमें गिरकर भोगकी अभिलाषासे थक जाते हैं, और पक्षी सियार आदिके भोजनके निमित्त कष्टदायी नाना प्रकारके शरीर प्राप्त करते हैं ॥४॥

तस्मादेतद्वर्जनीयं नरेण दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतद्भूयश्चेदानीं वद किं ते वदामि ॥ ५ ॥

हे नरेन्द्र ! इस कारणसे दोषयुक्त और लोकोंमें निन्दाके योग्य कर्म त्याग देना चाहिए। हे पृथ्वीनाथ ! तुमसे सब कुछ कह चुका; कहो, अब क्या कहना होगा ॥ ५ ॥

अष्टक उवाच

यदा तु तान्वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति न भौममन्यं नरकं शृणोमि ॥ ६ ॥

अष्टक बोले– जब गिद्ध शितिकण्ठ आदि पक्षी और पतिङ्गे मनुष्योंको खा लेते हैं, तब किस प्रकारसे जीव वर्तमान रहता है ? फिर कैसे प्रगट होता है ? और रौरव, वैतरणी आदि जो नरक प्रसिद्ध हैं, उनके अतिरिक्त भौम नरक क्या है ? यह सब सुनना चाहता हूं ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच

ऊर्ध्वं देहात्कर्मणा जृम्भमाणाद्व्यक्तं पृथिव्यामनुसंचरन्ति।
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥ ७ ॥

ययाति बोले– सम्पूर्ण जीव अनुष्ठान किये हुए कर्मके अनुसार देह छोडनेके बाद माताकी कोखमें जन्म लेकर उस स्थानमें संपूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग युक्त देहकी उत्पत्ति होनेपर प्रसव किये जाकर प्रकाश रूपसे पृथ्वीमें चलते फिरते रहते हैं, वही जीवके लिये भौम नरक कहा जाता है, क्योंकि इस प्रकारसे वहां गिरनेसे अपनी अवस्थाकी वृद्धि नहीं देखते, अज्ञानवश केवल विषयके भोगहीमें वर्षोंको व्यतीत किया करते हैं ॥ ७ ॥

षष्टिं सहस्राणि पतन्ति व्योम्नि तथा अशीतिं परिवत्सराणि।
तान्वै तुदन्ति प्रपतनः प्रपातं भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ॥ ८ ॥

कोई जीव निजके किये हुए कर्मके अनुसार कुछकाल स्वर्ग भोग कर स्वर्गसे गिरनेके कालमें साठ सहस्र वा अस्सी सहस्र वर्ष भी आकाशमें रहकर कष्ट भोगते हैं, गिरनेवाले उन जीवों-को बडे बडे दांतवाले भयङ्कर हस्ती, भैंसे और राक्षस लोग हिंसा करते रहते हैं ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अष्टक उवाच

यदेनसस्ते पतनस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ९ ॥

अष्टक बोले– जो लोग पापके हेतु स्वर्गसे च्युत होते हैं, काटनेवाले भयावने भौम राक्षसोंके द्वारा उनकी हिंसा करने पर वे कैसे बने रहते हैं ? कैसे इन्द्रियादि युक्त होते हैं ? अथवा कैसे गर्भमें जाकर जन्म लेते हैं ॥ ९ ॥

ययातिरुवाच

अस्त्रं रेतः पुष्पफलानुवृत्तमन्वेति तद्वै पुरुषेण सृष्टम् ।
स वै तस्या रज आपद्यते वै स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥ १० ॥

ययाति बोले– सूक्ष्म भूतसे आवृत्त जीव जलयुक्त शरीर धरकर वीर्यका स्वरूप प्राप्त करता है; पुरुषसे गिराये जाकर वह वीर्य स्त्रीके शोणितसे मिलने पर फल फूलके "रज" संज्ञा पाता है । रज स्त्रीके पेटमें गर्भके स्वरूपमें उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

वनस्पतींश्चौषधीश्चाविशन्ति अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदं चापि सर्वमेवंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ११ ॥

जीवगण पहिले जल, वायु, पृथिवी, आकाश और तेज इन पांच महाभूतोंमें प्रविष्ट होते हैं, आगे वनस्पति और औषधिमें व्याप्त होते हैं, अनन्तर शुक्र और शोणितके स्वरूपको पाकर गर्भोत्पत्ति करते हैं । क्रमसे दो पाये चार पाये आदिके शरीर प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥

अष्टक उवाच

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भ उताहो स्वित्स्वेन कामेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमेतामाचक्ष्व मे संशयात्प्रब्रवीमि ॥ १२ ॥

अष्टक बोले– जब जीव नरयोनिको प्राप्त करता है, क्या तब अपने इच्छानुसार शरीरहीको लेकर माताकी कोखमें घुसता है ? अथवा कोई अन्य भौतिक शरीर धरकर घुसता है ? यह मुझसे कहिये, मैं शङ्कायुक्त होकर पूछता हूं ॥ १२ ॥

शरीरदेहादिसमुच्छ्रयं च चक्षुःश्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत्तत्त्वं सर्वमाचक्ष्व पृष्टः क्षेत्रज्ञं त्वां तात मन्याम सर्वे ॥ १३ ॥

और जीवोंके क्यों शरीर देह आदि होते हैं ? अथवा अपने आंख, कान आदि संपूर्ण इंद्रिय, रूप और शब्दादि विषयोंका ज्ञान कैसे लाभ करते हैं ? हे पिता ! हम तुमको क्षेत्रज्ञ समझ कर पूछ रहे हैं, तुम सब सच्ची रीतिसे कहो ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

वायुः ससुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुषक्तम् ।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम् ॥ १४ ॥

ययाति बोले– पांच प्राण, मन, बुद्धि और दश इन्द्रिययुक्त अपञ्चीकृत भूतसे बने बनाये सूक्ष्म शरीरमें वीर्यके स्वरूपको धारण कर स्त्रियोंकी ऋतुमें पुष्परससे अनुसंबद्ध गर्भाश्रित वह जीव तन्मात्रके अधिकारसे युक्त किसी विशेष वायुसे उत्कृष्टता और क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

स जायमानो विगृहीतगात्रः षड्ज्ञाननिष्ठायतनो मनुष्यः
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं सर्वं रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥ १५ ॥

आगे जब संपूर्ण आकार पाकर छ प्रकारके ज्ञानसे युक्त मनुष्यके आकारमें जन्म लेता है, तब कानसे शब्दका ज्ञान करता है, चक्षुसे रूप देखता है ॥ १५ ॥

घ्राणेन गन्धं जिह्वयाथो रसं च त्वचा स्पर्शं मनसा वेद भावम् ।
इत्यष्टकेहोपचितिं च विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे ॥ १६ ॥

नाकसे गंध सूंघता है, जिह्वासे स्वाद लेता है, त्वचासे अनुभव कर सकता है और मनसे पदार्थोंको जान सकता है । हे अष्टक ! जीवात्माका सूक्ष्मरूपी वह लिङ्ग शरीर इस प्रकार स्थूल शरीरमें आ पहुंचता है ॥ १६ ॥

अष्टक उवाच

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वापि निघृष्यते वा ।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ॥ १७ ॥

अष्टक बोले– जो पुरुष मर जाता है, लोग उसको जलाते वा गाडते हैं, अथवा अन्य किसी प्रकारसे उसके शरीरको नष्टकर डालते हैं, सो स्थूल शरीरके साथ लिङ्ग शरीर भी नष्ट हो जाता है, अतएव वह लिङ्ग शरीर नाशको प्राप्त कर मांस पिण्डरूपी स्थूलदेहको चेतनायुक्त कैसे करता है ? ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

हित्वा सोऽसून्सुप्तवन्निष्टनित्वा पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं च ।
अन्यां योनिं पवनाग्रानुसारी हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥ १८ ॥

ययाति बोले– हे राजसिंह ! जीवात्मा मृत्युके कालमें पवनके आगे चलनेवाले पञ्च प्राणादि लिङ्ग शरीरको धारण करके निद्रितकी भांति स्थूलदेहको छोडकर सुकृत और दुष्कृतको आगे करके अन्य योनिमें जन्म लेता है ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुण्यां योनिं पुण्यकृतो व्रजन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापा न मे विवक्षास्ति महानुभाव ॥ १९ ॥

उनमें पुण्यात्मा पुरुष पुण्ययोनिमें जन्म लेता है और पापकारी पुरुष पाप योनिमें कीट पतङ्गादिके स्वरूपमें उत्पन्न होते हैं, इससे अधिक और कुछ कहनेकी मेरी इच्छा नहीं है ॥ १९ ॥

चतुष्पदा द्विपदाः षट्पदाश्च तथाभूता गर्भभूता भवन्ति।
आख्यातमेतन्निखिलेन सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥ २० ॥

राजसिंह ! छः पाये, चार पाये, दो पाये आदि जीवगण इस प्रकारसे गर्भमें आविर्भूत होते हैं। मैं सब कुछ कथा तुमसे कह चुका, कहो और क्या पूछना चाहते हो ॥ २० ॥

अष्टक उवाच

किं स्वित्कृत्वा लभते तात लोकान्मर्त्यः श्रेष्ठांस्तपसा विद्यया वा।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुभाँल्लोकान्येन गच्छेत्क्रमेण ॥ २१ ॥

अष्टक बोले– हे तात ! तपस्या और विद्या इन दोनोंमें किससे मनुष्य श्रेष्ठलोक प्राप्त करता है और जिस क्रमसे शुभ लोकमें जाया जाता है, वह सब सत्यरूपसे कहो ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

तपश्च दानं च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥ २२ ॥

ययाति बोले– तपस्या दान, शम, दम, लज्जा, ऋजुता और सर्व जीवों पर कृपा ये सब तमसे अभिभूत अहंकारी मनुष्यके नष्ट हो जाते हैं, ऐसा सज्जन पुरुष कहते हैं ॥ २२ ॥

अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम्।
तस्यान्तवन्तश्च भवन्ति लोका न चास्य तद्ब्रह्म फलं ददाति ॥ २३ ॥

जो जन पढ करके मैं ही पण्डित हूं इस प्रकारके अहंकारसे विद्यासे औरोंके यशको लोप करता है, उसका ज्ञान उसे कुछ भी फल नहीं देता और उसके लोक नष्ट हो जाते हैं ॥ २३ ॥

चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ २४ ॥

अग्निहोत्र, मौनव्रत, अध्ययन, यज्ञ चार प्रकारके कर्म शुभ करनेवाले तो हैं, पर अहंकारके साथ यह सब कर्म किये जाने पर अनुचित रूपसे आचरित होकर भय देनेवाले होते हैं ॥ २४ ॥

न मान्यमानो मुदमाददीत न संतापं प्राप्नुयाच्चावमानात्।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते ॥ २५ ॥

मनुष्य अति सम्मानका पात्र होनेसे भी हर्ष युक्त न होवे और अपमानित होनेसे खेदयुक्त भी न बने, क्योंकि इन लोकमें साधु–लोगही साधु–लोगोंकी पूजा किया करते हैं, असाधु-लोग कभी साधुओंके समान आचरण नहीं करते ॥ २५ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे व्रतम्।
इत्यस्मिन्नभयान्याहुस्तानि वर्ज्यानि नित्यशः ॥ २६ ॥

पण्डितोंने ऐसा कहा है, कि इस प्रकार अहङ्कारसे दान देने, यज्ञ करने, पाठ करने और व्रत करने पर भी मनुष्यकी सुगति नहीं होती, अतएव सर्वप्रकारसे अहङ्कारको छोडना ही उचित है ॥ २६ ॥

येनाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसमानभक्तम्।
तन्निःश्रेयस्तैजसं रूपमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ३०६६ ॥

पर जो विद्वान्लोग अदृश्य और अपने समान साधुओंके मङ्गलकारी सनातन ब्रह्मको संयत चित्त होकर अपना आश्रय करके जानते हैं, वे समाधिसे उस ब्रह्मके साथ एकत्र भाव प्राप्त कर अच्छी शांति अर्थात् मुक्तिलाभ करते हैं ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पिच्चासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ ३०६६ ॥

: ८६ :

अष्टक उवाच

चरन्गृहस्थः कथमेति देवान्कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा।
वानप्रस्थः सत्पथे संनिविष्टो बह्वन्यस्मिन्संप्रति वेदयंति ॥ १ ॥

अष्टक बोले– वैदिकगण इस विषयमें भांति भांतिकी बातें कहा करते हैं कि गृही, भिक्षु, ब्रह्मचारी, आचार्य और वानप्रस्थ, सुपथमें रहकर कैसे आचरण करनेसे देवोंको प्राप्त करनेको समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्यः पूर्वोत्थायी चरमं चोपशायी।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी ॥ २ ॥

ययाति बोले– ब्रह्मचारी गुरुके घरमें वासकर गुरुके बुलाने पर अध्ययन करे, गुरुके कार्यमें सदा उत्साही बने रहे, बडे सवेरे गुरुके उठनेके पहिले उठे, रातको गुरुके सोनेके पीछे सोवे और धीर, जितेन्द्रिय, धीरजयुक्त बकवादवर्जित पठनशील होवे, तो उसका ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन्भोजयेच्च ।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ॥ ३ ॥

प्राचीन उपनिषदोंमें कहा है, कि, गृहीजन धर्मानुसार धनार्जन करके नित्य नैमित्तिकादि करके अतिथियोंको भोजन करावे और किसीके द्वारा न दिए जाने तक किसीसे कुछ न ले ॥ ३ ॥

स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ॥ ४ ॥

वनवासीजन निज शक्तिसे प्राप्त किये हुए फल मूल पर जीते हुए, पापकार्यसे निवृत्त, दानशील, नियमित भक्षक सदा क्रियाशील और परायी हिंसा आदिसे रहित होनेसे मुनिके स्वरूपमें अच्छी सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

अशिल्पजीवी नगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अनोकसारी लघुरल्पचारश्चरन्देशानेकचरः स भिक्षुः ॥ ५ ॥

जो घर बना कर न रहनेवाले नित्य जितेन्द्रिय और थोडे वस्त्र पहिनेवाले होते हैं और शिल्पसे जीविका नहीं करते हैं । जो बिना घर बनाये सर्वत्र संचार करते हैं और स्वल्प चलते हैं, पर तिसपरभी नाना देशोंमें घूमते हैं वही भिक्षु कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

रात्र्या यया चाभिजिताश्च लोका भवन्ति कामा विजिताः सुखाश्च ।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ॥ ६ ॥

जिस समय सब विषय तुच्छ हो जाते हैं और सुखदेनेवाली वस्तुयें छोड दी जाती हैं, विद्वान् जन उस समयहीमें संयत होकर ब्रह्मनिष्ठाके निमित्त वनमें जानेकी चेष्टा करें ॥६॥

दशैव पूर्वान्दश चापरांस्तु ज्ञातीन्सहात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृते दधाति विमुच्यारण्ये स्वशरीरधातून् ॥ ७ ॥

वानप्रस्थजन निज शरीर और संपूर्ण इंद्रियोंको वनमें छोड दें तो ऊपरके पितृपितामहादि दश पुरुषोंको, नीचेकी पुत्र पौत्रादि दश पीढियोंको तथा निजको परब्रह्ममें लीन करते हैं ॥ ७ ॥

अष्टक उवाच

कति स्विदेव मुनयो मौनानि कति चाप्युत ।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ८ ॥

अष्टक बोले- हम यह सुनना चाहते हैं कि मुनि कितने प्रकारके होते हैं और मौनव्रतभी कितने प्रकारके होते हैं । अतः वह कहो ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप ॥ ९ ॥

ययाति बोले– हे जनाधिप! वनमें वसनेसे सम्पूर्ण ग्रामकी वस्तु जिनके समीप रहती है और ग्राममें टिकने पर भी संपूर्ण वनके पदार्थ जिनके सामने आते हैं, उनका नाम मुनि है ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

कथं स्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ॥ १० ॥

अष्टक बोले– वनमें वसनेसे ग्रामकी वस्तु और ग्राममें वसनेसे वनकी वस्तु कैसे सामने आ सकती हैं? ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत्।
तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ॥ ११ ॥

ययाति बोले– मुनिके वनमें वसनेसे उनको ग्रामकी वस्तु इकट्ठी करनी नहीं पडती, उनके योगबलसे स्वयं संपूर्ण पदार्थ सामने आजाते हैं, ॥ ११ ॥

अनग्निरनिकेतश्च अगोत्रचरणो मुनिः।
कौपीनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च चीवरम् ॥ १२ ॥

वे अग्नि रहित, घर रहित और गोत्र आदियोंसे रहित मुनि होते हैं एवं कौपीन तथा उसके ढंपनेके योग्य वस्त्रमात्रको लेते हैं ॥ १२ ॥

यावत्प्राणाभिसंधानं तावदिच्छेच्च भोजनम्।
तथास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः ॥ १३ ॥

और उतनाही भोजन करते हैं, कि जिससे केवल प्राण धारण हो सके, उनके ग्राममें वसनेसेभी वनके व्यवहार सब उनके वशमें हो जाते हैं; ॥ १३ ॥

यस्तु कामान्परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः।
आतिष्ठेत मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १४ ॥

जो मुनि संपूर्ण कर्म और कामना त्यागकर जितेन्द्रिय होकर मौनव्रत आश्रय किये रहता है, वह लोकमें सिद्धिको प्राप्त करता है; ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलंकृतम् ।
असितं सितकर्मस्थं कस्तं नार्चितुमर्हति ॥ १५ ॥

शुद्ध दांत (शुद्धाहार) वाले, कटे हुए नखूनोंवाले (हिंसारहित), नित्य स्नान किए हुए (शुद्धचित्त), शमदमादि अलंकारोंसे युक्त काले होते (वासनादि रहित) हुए भी, शुभ्र (उत्तम) कर्मवाले मुनिको कौनसा जन न पूजेगा ? ॥ १५ ॥

तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः ।
यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः ।
अथ लोकमिमं जित्वा लोकं विजयते परम् ॥ १६ ॥

जो क्षमाशील और तपस्यासे दुबले पतले और जिनका मांस हड्डी और रक्त क्षीण हो गया है तथा जब मौनकी भली भांति आश्रय किये हुए मुनि अद्वैतभावके अवलम्बनसे द्वन्द्व वर्जित होते हैं, तब वे इस लोकको जीतकर परलोकमें भी जयको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।
अथास्य लोकः पूर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ३०८३ ॥

गायके समान मुनि जब मुखसे भक्ष्य पदार्थोंको खाता है, तब ये सब लोक उसीके होते हैं और वह मोक्षको प्राप्त होता है (अर्थात् जिस प्रकारसे गौ आदि पशु, हाथ पांव आदिकी चेष्टासे भोजनको न बटोर कर केवल मुखसे आहार निर्वाह करते हैं, उस ही प्रकार जब मुनि प्रत्यगात्मामें एकाग्र होकर बिन मांगे पहुंची हुई भोजनकी सामग्रीको प्राण धरनेहीके निमित्त मुखसे उठाते हैं, हाथ पांवसे कोई चेष्टा नहीं करते, ऐसी अवस्था होनेसे उनके सामने संपूर्ण लोग अमृतके स्वरूप होते हैं) ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छियासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ ३०८३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ८७ :

अष्टक उवाच

कतरस्त्वेतयोः पूर्वं देवानामेति सात्म्यताम्।
उभयोर्धावतो राजन्सूर्याचन्द्रमसोरिव ॥ १ ॥

अष्टक बोले– सूर्य और चन्द्रके समान दौडनेवाले यति और वानप्रस्थ इन दोनोंमें कौन पहिले देववत् अर्थात् मुक्त हो सकते हैं ? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

अनिकेतो गृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः।
ग्राम एव वसन्भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः ॥ २ ॥

ययाति बोले– गृहस्थोंमें रहता हुआ भी घरमें न रहनेवाला, कामाचरण करनेवालोंके बीचमें रहते हुए भी संयमी, गांवोंमें रहते हुए भी भिक्षावृत्तिसे रहनेवाला यति पहिले मुक्त होता है ॥ २ ॥

अप्राप्य दीर्घमायुस्तु यः प्राप्तो विकृतिं चरेत्।
तप्येत यदि तत्कृत्वा चरेत्सोऽन्यत्ततस्तपः ॥ ३ ॥

दीर्घायु न मिलनेके कारण जिसकी तपस्या बीचमें ही टूट जाती है, उसे यदि अपने किये हुए कामपर पश्चात्ताप हो तो वह फिर उत्तम तपस्या करके मुक्त होता है ॥ ३ ॥

यद्वै नृशंसं तदपथ्यमाहुर्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः।
अस्वोऽप्यनीशश्च तथैव राजंस्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम् ॥ ४ ॥

हे राजन् ! मोक्षकी खोज न करके अनित्य स्वर्ग भोगनेके लिये जिस धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, उस धर्मको पण्डितोंने अजितेन्द्रिय जनके धनके सदृश कष्टदायी और असत्य करके कहा है; पर जिस निष्काम धर्मसे मोक्षफलकी प्राप्ति होती है, उसीको उचित पथ और समाधि करके कहा है, एवम् उसी पर चलना योग्य है ॥ ४ ॥

अष्टक उवाच

केनासिः दूत प्रहितोऽद्य राजन्युवा स्रग्वी दर्शनीयः सुवर्चाः।
कुत आगतः कतरस्यां दिशि त्वमुताहो स्वित्पार्थिवं स्थानमस्ति ॥ ५ ॥

अष्टक बोले– हे राजन् ! मालाधारी, सुतेजस्वी और परम सुन्दर युवा पुरुष तुम कहांसे आये हो ! और किस जनके दूतरूपी होकर किस ओर भेजे गये हो ? अथवा पृथ्वीहीमें तुम्हारा जाने योग्य स्थान कौनसा है ? ॥ ५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद्विप्रकीर्णः ।
उक्त्वाहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरं त्वरन्ति मां ब्राह्मणा लोकपालाः ॥ ६ ॥

ययाति बोले– मैं क्षीणपुण्य होनेसे स्वर्गसे च्युत होकर इस भौम नरकमें गिरनेके लिये आकाशसे प्रवेश कर रहा हूं; तुम्हारे साथ वार्तालाप करके गिरूंगा, इस लिये लोक-पाल लोग मुझसे शीघ्रता करनेके लिए कहते हैं ॥ ६ ॥

सतां सकाशे तु वृतः प्रपातस्ते संगता गुणवन्तश्च सर्वे ।
शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैष पतिष्यता भूमितले नरेंद्र ॥ ७ ॥

हे नरेंद्र ! भूतलमें गिरनेके पहिले इंद्रसे प्रार्थना करनेपर मैंने उनसे एक वर पाया था कि तुम गुणवन्त और संगत साधुमण्डलोंके समीप गिरोगे ॥ ७ ॥

अष्टक उवाच

पृच्छामि त्वां मा प्रपत प्रपातं यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ८ ॥

अष्टक बोले– हे पृथ्वीनाथ ! तुम मत गिरो । मुझको जान पडता है, कि तुम धर्मके फलरूपी सब सिद्ध स्थानोंको जानते हो, अतएव पूछता हूं, कि स्वर्गलोक अथवा नक्षत्र लोकादिमें मेरे पुण्यसे उपार्जित कोई भोगनेका स्थान है वा नहीं ? ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच

यावत्पृथिव्यां विहितं गवाश्वं सहारण्यैः पशुभिः पर्वतैश्च ।
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह ॥ ९ ॥

ययाति बोले– हे नरेन्द्रसिंह ! सुनो, इस भूमण्डलमें गौ, घोडे और जितने वनके और पार्वतीय पशु हैं, देवलोकमें उतने ही तुम्हारे पुण्यसे उपार्जन किये हुए स्थान हैं ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रममित्रसाह ॥ १० ॥

अष्टक बोले– हे शत्रुनाशी राजेन्द्र ! यदि अन्तरिक्षलोक या द्युलोकमें अथवा स्वर्गधाममें मेरे पुण्यसे उपार्जन किये हुए स्थान हों, तो वह सब तुमको दे देता हूं, मत गिरो, उनको अधिकारमें लाओ ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

नास्मद्विधोऽब्राह्मणो ब्रह्मविच्च प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य।
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्यस्तथाददं पूर्वमहं नरेन्द्र ॥ ११ ॥

ययाति बोले– हे राजश्रेष्ठ! मेरे जैसे अब्राह्मण वेदाचारी जन कभी दान नहीं स्वीकार करते। हे नरेन्द्र! ब्राह्मणोंको जैसा दान देना होता है मैंने पहिले वैसा दान दिया है॥११॥

नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवेद्या चापि स्याद्ब्राह्मणी वीरपत्नी।
सोऽहं यदैवाकृतपूर्वं चरेयं विवित्समानः किमु तत्र साधु ॥ १२ ॥

अब्राह्मण दीन होकर कभी जीवित नहीं रहता, भिक्षा ब्राह्मणोंकी वीरपत्नी हो। अहो! मैं सुकर्म करनेका अभिलाषी होकर, जो कार्य मैंने पहिले कभी नहीं किया था, वही काम अब कैसे करूं? ॥ १२ ॥

प्रतर्दन उवाच

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १३ ॥

अनन्तर वहां टिके हुए प्रतर्दन नामक एक राजाने कहा, कि हे स्पृहणीय-रूप-धारिन्! मैं प्रतर्दन हूं, तुमसे पूछता हूं, कि यदि नक्षत्रलोक वा देवलोकमें मेरे पुण्यसे उपार्जन किया हुआ स्थान हो, तो कहो; मुझको समझ पडता है, कि धर्मानुष्ठानसे उपार्जन किए हुए संपूर्ण सिद्ध स्थान तुम्हें ज्ञात हैं ॥ १३ ॥

ययातिरुवाच

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र अप्येकैकः सप्त सप्ताप्यहानि।
मधुच्युतो घृतपृक्ता विशोकास्ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥ १४ ॥

ययाति बोले– हे नरेन्द्र! मधु और घृतसे भरपूर परम सुख देनेवाले इतने अधिक स्थान तुम्हारे हैं, कि हर स्थानमें सात सात दिन रहनेसे भी उनका अन्त नहीं हो सकता ॥१४॥

प्रतर्दन उवाच

तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः ॥ १५ ॥

प्रतर्दन बोले– यदि नक्षत्रलोक वा स्वर्गमें मेरे पुण्यसे उपार्जन किये हुए स्थान हों, तो वह सब तुमको दे देता हूं, वह सब तुम्हारे ही होवें, तुम और न गिरो, मोहवर्जित होकर शीघ्र वहां जाकर रहो ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

न तुल्यतेजाः सुकृतं कामयेत योगक्षेमं पार्थिव पार्थिवः सन् ।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वांश्चरेन्नृशंसं न हि जातु राजा ॥ १६ ॥

ययाति बोले– पृथ्वीनाथ ! तुल्य तेजयुक्त भूपाल होकरके कोई दूसरे राजासे योगक्षेम करनेवाले सुकृतकी प्रार्थना नहीं करते; ज्ञानी राजा दैवकी आज्ञासे विपद्ग्रस्त होनेपर भी कभी निष्ठुर व्यवहार न करे ॥ १६ ॥

धर्म्यं मार्गं चेतयानो यशस्यं कुर्यान्नृपो धर्ममवेक्षमाणः ।
न मद्विधो धर्मबुद्धिः प्रजानन्कुर्यादेवं कृपणं मां यथात्थ ।
कुर्यामपूर्वं न कृतं यदन्यैर्विवित्समानः किमु तत्र साधु ॥ १७ ॥

राजाको धर्मकी ओर दृष्टि रखकर धर्मके मार्गपर चलते हुए यशदायी कार्य करना चाहिये । पर तुम जो कहते हो, वह दीन कर्म है, अतएव मेरे ऐसे धर्मज्ञ जनको जान बूझकर यह कर्म नहीं करना चाहिए । दूसरे राजाओंने जो दान लेनेका कार्य कभी नहीं किया है, मैं सुकर्म करनेका अभिलाषी होकर वह क्यों करूं ? ॥ १७ ॥

ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं नृपोत्तमो वसुमनाब्रवीत्तम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ३१०१ ॥

नृपति ययाति ऐसा कह रहे थे, कि उसी समयमें वसुमना नामक नृपोत्तम उनसे बोले ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सतासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥ ३१०१ ॥

: ८८ :

वसुमना उवाच

पृच्छामि त्वां वसुमना रौशदश्विर्यद्यस्ति लोको दिवि मह्यं नरेन्द्र ।
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन्क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १ ॥

वसुमना बोले– हे नरेंद्र ! मैं औशदश्वि वसुमान, तुमसे पूछता हूं, कि यदि नक्षत्रमण्डल वा स्वर्गधाममें मेरे पुण्यसे उपार्जित प्रख्यात स्थान हों, तो कहो; हे महात्मन् ! मुझको जान पडता है, कि तुम्हें धर्मसे लाभ करने योग्य सम्पूर्ण पुण्यलोक ज्ञात हैं ॥ १ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च यत्तेजसा तपते भानुमांश्च ।
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥ २ ॥

ययाति बोले– सूर्यदेव आकाशमण्डल, पृथ्वी और दिशाओंमें जितना स्थान तापयुक्त करते हैं, देवलोकमें उतने अनन्त पुण्यलोक तुम्हारी प्रतीक्षामें हैं । २ ॥

वसुमना उवाच

तांस्ते ददामि पत मा प्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
क्रीणीष्वैनांस्तृणकेनापि राजन्प्रतिग्रहस्ते यदि सम्यक्प्रदुष्टः ॥ ३ ॥

वसुमना बोले– हे राजन् ! वह सब पुण्यलोक तुमको दान देता हूं, वह तुम्हारे ही होवें, तुम मत गिरो, हे धीमान् ! यदि तुमको दान लेना नीच कर्म जान पडे तो तुम वह सब लोक तिनका देकर मोल ले लो ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

न मिथ्याहं विक्रयं वै स्मरामि वृथा गृहीतं शिशुकाच्छङ्कमानः ।
कुर्यां न चैवाकृतपूर्वमन्यैर्विचित्समानः किमु तत्र साधु ॥ ४ ॥

ययाति बोले– मैंने कभी झूठ बोलकर बिक्री नहीं की और छोटे बच्चेसे भी कोई चीज मुफ्तमें लेनेका स्मरण मुझे नहीं है और राजाओंने जो कभी नहीं की, वह मैं सुकर्म करनेका अभिलाषी होकर कैसे करूं ? ॥ ४ ॥

वसुमना उवाच

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राजन्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते ।
अहं न तान्वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र सर्वे लोकास्तव ते वै भवन्तु ॥ ५ ॥

वसुमना बोले– हे राजन् ! यदि तुमको मोल लेना अभीष्ट न हो तो भी मेरे दिये हुए वह सब पुण्यलोक ले लो, हे नरेंद्र ! मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊंगा, वह सब लोक तुम्हारे होवें ॥ ५ ॥

शिबिरुवाच

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्तीह तात ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ६ ॥

अनन्तर शिवि नामक नृपोत्तमने कहा– मैं उशीनरका पुत्र शिवि हूं, तुमसे पूछता हूं, कि नक्षत्रलोक वा देवलोकमें यदि मेरे पुण्यार्जित स्थान होवें, तो कहो; हे तात ! मुझको जान पडता है, कि धर्मार्जित उन सब पुण्यलोकोंसे तुम ज्ञात हो ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि विद्वन्परीप्समानान्नावमंस्था नरेन्द्र ।
तेनानन्ता दिवि लोकाः श्रितास्ते विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥ ७ ॥

ययाति बोले– हे नरेंद्र ! तुमने कभी वाक्यसे वा मनसे साधु याचक जनका अनादर नहीं किया है, इस कारण देवलोकमें बिजलीके समान ध्वनि युक्त प्रख्यात अनन्त महत् स्थान तुम्हारे लिये हैं ॥ ७ ॥

शिबिरुवाच

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राजन्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते ।
न चाहं तान्प्रतिपत्स्येह दत्त्वा यत्र गत्वा त्वमुपास्से ह लोकान् ॥ ८ ॥

शिबि बोले– हे राजन् ! तुमको मोल लेना अभीष्ट न हो, तो वह सब पुण्यलोक दान कर देता हूं, तुम ले लो, मैं उन्हें देकर फिर लौटा न लूंगा, उन स्थानोंमें जाने जानकर तुम आरामसे रहो ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः ।
तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि दायम् ॥ ९ ॥

ययाति बोले– हे नरदेव ! तुम इंद्रके समान प्रभावी हो और तुम्हारे सब पुण्यलोक भी अनन्त हैं, पर हे शिबे ! अन्यके दिये हुए पुण्यलोकमें मैं रमना नहीं चाहता, अतएव तुम्हारा यह दान मुझे स्वीकृत नहीं है ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान्नः प्रतिनन्दसि ।
सर्वे प्रदाय भवते गन्तारो नरकं वयम् ॥ १० ॥

अष्टक बोले– हे राजन् ! हम सबोंसे हरेकने निज निज पुण्यार्जित लोक अलग अलग तुमको दान कर दिये, उनका यदि लेना सम्मत तुमको न हो, तो हम सब एकत्र होकर अपने संपूर्ण पुण्यलोक तुमको देकर भौमनरकमें जानेके लिए तैय्यार हैं ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

यदर्हाय ददध्वं तत्सन्तः सत्यानृशंस्यतः ।
अहं तु नाभिधृष्णोमि यत्कृतं न मया पुरा ॥ ११ ॥

ययाति बोले– हे सत्यप्रिय साधुओ ! मैंने जो पहिले कभी नहीं किया है, वह स्वीकार नहीं करूंगा, मैं जिस विषयके योग्य हूं, वही पदार्थ तुम मुझे दो क्योंकि सज्जन केवल सत्यको ही उत्तम मानते हैं ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अष्टक उवाच

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः।
उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव ॥ १२ ॥

अष्टक बोले– उस आकाशमण्डलमें सुवर्णमय ये पांच रथ किसके हैं, जो ऊंचाई पर होते हुए भी प्रदीप्त अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रहे हैं ? ॥ १२ ॥

ययातिरुवाच

युष्मानेते हि वक्ष्यन्ति रथाः पञ्च हिरण्मयाः।
उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव ॥ १३ ॥

ययाति बोले– वह जो अग्निशिखाके सदृश प्रज्वलित उच्च, पांच रथ आकाशमण्डलमें प्रगट हो रहे हैं, वे तुम लोगोंको बैठाकर देवताओंके यहां ले जायेंगे ॥ १३ ॥

अष्टक उवाच

आतिष्ठस्व रथं राजन्विक्रमस्व विहायसा।
वयमप्यनुयास्यामो यदा कालो भविष्यति ॥ १४ ॥

अष्टक बोले– हे राजन् ! तुम रथ पर बैठो और आकाशपथको पधारो, जब काल उपस्थित होगा, तब हम भी तुम्हारे पीछे आयेंगे ॥ १४ ॥

ययातिरुवाच

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सहस्वर्गजितो वयम्।
एष नो विरजाः पन्था दृश्यते देवसद्मनः ॥ १५ ॥

ययाति बोले– इसी क्षण हम सभी निष्पाप और स्वर्गजयकारी हुए हैं, अतएव हमको एकत्र होकर चलना पडेगा, वह देखो, देवलोकका निर्मल पथ दीख पडता है ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तेऽधिरुह्य रथान्सर्वे प्रयाता नृपसत्तमाः।
आक्रमन्तो दिवं भाभिर्धर्मेणावृत्य रोदसी ॥ १६ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद वे सब नरेश धर्मके प्रभावसे आकाशमण्डलको व्याप्त करके रथों पर आरूढ होकर पधारे ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अष्टक उवाच

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽस्मि गन्ता सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा ।
कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽयमेकोऽत्यगात्सर्ववेगेन वाहान् ॥ १७ ॥

अष्टक बोले– मैंने सोचा था, कि महात्मा देवराज सब प्रकारसे मेरे मित्र हैं, अतएव मैं ही पहिले अकेला जाऊंगा, पर यह उशीनरके पुत्र शिबि अकेले क्यों हम सबको छोडकर वेगसे चले गए ? ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

अददाद्देवयानाय यावद्वित्तमविन्दत ।
उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि नः शिबिः ॥ १८ ॥

ययाति बोले– इस उशीनरके पुत्र शिबिने ब्रह्मलोक पानेके निमित्त जितना धन पाया था वह सब दान कर दिया था, सो यह हमसे भी श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

दानं तपः सत्यमथापि धर्मो ह्रीः श्रीः क्षमा सौम्य तथा तितिक्षा ।
राजन्नेतान्यप्रतिमस्य राज्ञः शिबेः स्थितान्यनृशंसस्य बुद्ध्या ।
एवंवृत्तो ह्रीनिषेधश्च यस्मात्तस्माच्छिबिरत्यगाद्वै रथेन ॥ १९ ॥

हे राजन् ! दान, तपस्या, सत्य, धर्म, लज्जा, श्री, क्षमा, सौम्यता और तितिक्षा यह सब गुण उपमा-रहित राजा शिबिके इतने हैं, कि बुद्धिसे उनका नाप नहीं हो सकता; शिबि इतने गुणशाली और लज्जाके भारसे नम्र होनेहीसे उनका रथ हमको छोडकर चला गया है ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम् ।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कस्यासि सुतश्च कस्य ।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यः क्षत्रियो ब्राह्मणो वा ॥ २० ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर अष्टकने कौतूहलयुक्त होकर इन्द्र सदृश मातामहसे फिर पूछा, कि हे नृपते ! मैं पूछता हूं सच कहो, कि तुम कहांसे आये हो ? किसकी सन्तान और स्वयं किसके हो ? तुमने जो कार्य किया है, वह जग मण्डलमें तुम्हारे विना ब्राह्मण वा क्षत्रिय कोई नहीं कर सकता है ॥ २० ॥

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम् ।
गुह्यमर्थं मामकेभ्यो ब्रवीमि मातामहोऽहं भवतां प्रकाशः ॥ २१ ॥

ययाति बोले– मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता हूं, मेरा नाम ययाति है, मैं इस धरती मण्डलमें सार्वभौम राजा था; तुम मेरे परम आत्मजन हो, तुमसे स्पष्ट यह गुप्त बात कहता हूं, कि मैं तुम्हारा मातामह हूं ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय प्रत्ये बद्ध्वा ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः।
मेध्यानश्वानेकशफान्सुरूपांस्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥ २२ ॥

मैंने संपूर्ण भूमण्डलको जीतकर ब्राह्मणोंको बांध कर दान किया, पवित्र और सुन्दर एक खुरवाले घोडे देवोंके नामसे उत्सर्ग कर दिये थे; जो ऐसा करते हैं, देवगण उन पुण्यवान् जनोंकी उपासना करते हैं ॥ २२ ॥

अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलां वाहनस्य।
गोभिः सुवर्णेन धनैश्च मुख्यैस्तत्रासन्गाः शतमर्बुदानि ॥ २३ ॥

वाहन, गौ, सुवर्ण तथा दूसरे और उत्कृष्ट धनोंसे भरी पूरी यह पृथ्वी और सौ अर्बुद गौ ब्राह्मणोंको दान कर दी थी ॥ २३ ॥

सत्येन मे द्यौश्च वसुंधरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति।
सर्वे च देवा मुनयश्च लोकाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥ २४ ॥

और मेरी कथित बात कभी निष्फल नहीं हुई; मेरे सत्यसे आकाशमण्डल तथा धरती बनी है और मर्त्यलोकमें अग्नि जल रही है, इस हेतु साधुलोग सत्यहीकी पूजा करते हैं। यह मुझे निश्चय है, कि मुनिगण और देवगण एक सत्यनिष्ठाहीसे पूज्य होते हैं ॥ २४ ॥

यो नः स्वर्गजितः सर्वान्यथावृत्तं निवेदयेत्।
अनसूयुर्द्विजाग्रेभ्यः स लभेन्नः सलोकताम् ॥ २५ ॥

जो जन द्वेषरहित होकर हमारे इस स्वर्ग प्राप्तिका वृत्तान्त आद्योपान्त संपूर्ण ब्राह्मणोंको सुनावेगा, वह हमारे पुण्यार्जित स्थानको प्राप्त करेगा ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं राजा स महात्मा ह्यतीव स्वैर्दौहित्रैस्तारितोऽमित्रसाहः।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ३१२७ ॥

वैशम्पायन बोले– अति महात्मा शत्रुनाशी, उदारकर्मी राजा ययाति नातियोंसे रक्षित होकर कीर्तिसे पृथ्वी छोडकरके मित्रोंके साथ अपने कर्मोंसे पृथ्वीको व्याप्त करके स्वर्गको गए ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥ ३१२७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ८९ :

जनमेजय उवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि पूरोर्वंशकरान्नृपान्।
यद्वीर्या यादृशाश्चैव यावन्तो यत्पराक्रमाः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– भगवन्! पुरुवंशी राजाओंमें जिनका जैसा विक्रम और वीर्य था और जो जैसे थे, वह सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥

न ह्यस्मिञ्शीलहीनो वा निर्वीर्यो वा नराधिपः।
प्रजाविरहितो वापि भूतपूर्वः कदाचन ॥ २ ॥

इस वंशमें कोई राजा पहले कभी कुचरित्र, वीर्यवर्जित अथवा प्रजारहित नहीं हुआ ॥ २ ॥

तेषां प्रथितवृत्तानां राज्ञां विज्ञानशालिनाम्।
चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ ३ ॥

हे तपोधन! प्रख्यात चरित्र और विज्ञानयुक्त उन राजाओंके चरित्र विस्तृत रूपसे सुनने की इच्छा हो रही है ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हंत ते कथयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
पूरोर्वंशधरान्वीराञ्शक्रप्रतिमतेजसः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन्! पूरुवंशका वृत्तान्त जो हमसे पूछा, अतः उन देवराजके समान तेजस्वी पूरुके वंशधरोंका वृत्तान्त कह सुनाता हूँ ॥ ४ ॥

प्रवीरेश्वररौद्राश्वस्त्रयः पुत्रा महारथाः
पूरोः पौष्ट्यामजायन्त प्रवीरस्तत्र वंशकृत् ॥ ५ ॥

पूरुकी पौष्टि नाम्नी महिषीसे प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व इन तीन महारथी पुत्रोंका जन्म हुआ था, उनमें प्रवीर वंशधर हुए ॥ ५ ॥

मनस्युरभवत्तस्माच्छूरः श्येनीसुतः प्रभुः।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता राजीवलोचनः ॥ ६ ॥

प्रवीरके वीर्य और श्येनीके गर्भसे शूर मनस्यु नामक पुत्रने जन्म लिया; प्रसन्ननेत्रयुक्त सर्व-प्रभु मनस्युने चार समुद्रतक पृथ्वीका शासन किया ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुभ्रूः संहननो वाग्मी सौवीरीतनयास्त्रयः।
मनस्योरभवन्पुत्राः शूराः सर्वे महारथाः ॥ ७ ॥

मनस्युके वीर्य और सौवीरीके गर्भसे सुभ्रू, संहनन और वाग्मी यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, वे सभी शूर और महारथी थे ॥ ७ ॥

रौद्राश्वस्य महेष्वासा दशाप्सरसि सूनवः।
यज्वानो जज्ञिरे शूराः प्रजावन्तो बहुश्रुताः।
सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ८ ॥

मनस्वी रौद्राश्वके वीर्य और अप्सराके गर्भसे दस पुत्रोंने जन्म लिया था; वे सभी सर्व शास्त्रोंमें निपुण, धर्मशील, बडे धनुषधारी, यागशील, शूर, प्रजायुक्त और सर्व शास्त्रज्ञ हुए ॥ ८ ॥

ऋचेपुरथ कक्षेपुः कृकणेपुश्च वीर्यवान्।
स्थण्डिलेपुर्वनेपुश्च स्थलेपुश्च महारथः ॥ ९ ॥

उनसे ऋचेपु, कक्षेपु, वीर्यवान् कृकणेपु, स्थण्डिलेपु, वनेपु, महारथी स्थलेपु ॥ ९ ॥

तेजेपुर्बलवान्धीमान्सत्येपुश्चेन्द्रविक्रमः।
धर्मेपुः संनतेपुश्च दशमो देवविक्रमः।
अनाधृष्टिसुतास्तात राजसूयाश्वमेधिनः ॥ १० ॥

बलवान् तेजेपु, धीमान् सत्येपु, इन्द्रके समान विक्रमी धर्मेपु और देवसदृश पराक्रमी दसवें सन्नतेपु, इन दस पुत्रोंने जन्म लिया था। अनाधृष्टिके पुत्र राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करनेवाले थे ॥ १० ॥

मतिनारस्ततो राजा विद्वांश्चर्चेपुतोऽभवत्।
मतिनारसुता राजंश्चत्वारोऽमितविक्रमाः।
तंसुर्महानतिरथो द्रुह्युश्चाप्रतिमद्युतिः ॥ ११ ॥

विद्वान् राजा मतिनारने ऋचेपु अनाधृष्टिसे जन्म लिया, हे राजन्! मतिनारके औरससे तंसु, महान्, अतिरथ और महा द्योतवान् द्रुह्यु यह चार अति पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥

तेषां तंसुर्महावीर्यः पौरवं वंशमुद्वहन्।
आजहार यशो दीप्तं जिगाय च वसुन्धराम् ॥ १२ ॥

उनमें तंसु अति वीर्यवान् और पूरु वंशके वर्धक थे, उन्होंने भूमण्डलको जीत कर प्रदीप्त यशका उपार्जन किया! ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इलिनं तु सुतं तंसुर्जनयामास वीर्यवान् ।
सोऽपि कृत्स्नामिमां भूमिं विजिग्ये जयतां वरः ॥ १३ ॥

वीर्यवान् तंसुने इलिन नामक पुत्रको जन्म दिया; जयशील उन तंसुके पुत्रने भी सम्पूर्ण धरतीतलको जीत लिया ॥ १३ ॥

रथन्तर्यां सुतान्पञ्च पञ्चभूतोपमांस्ततः ।
इलिनो जनयामास दुःषन्तप्रभृतीन्नृप ॥ १४ ॥

अनंतर रथन्तरीके गर्भ और राजा इलिनके वीर्यसे पञ्चभूतोंके समान दुःषन्त आदि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥

दुःषन्तं शूरभीमौ च प्रपूर्वं वसुमेव च ।
तेषां ज्येष्ठोऽभवद्राजा दुःषन्तो जनमेजय ॥ १५ ॥

उनके नाम दुःषन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु थे । हे जनमेजय ! उनमेंसे श्रेष्ठ दुःषन्त राजा हुए ॥ १५ ॥

दुःषन्ताद्भरतो जज्ञे विद्वाञ्शाकुन्तलो नृपः ।
तस्माद्भरतवंशस्य विप्रतस्थे महद्यशः ॥ १६ ॥

दुःषन्तसे शकुन्तलाके गर्भसे विद्वान् भरतने जन्म लिया, उनसेही भरतवंशका महान् यश फैला ॥ १६ ॥

भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् ।
नाभ्यनन्दत तान्राजा नानुरूपा ममेत्युत ॥ १७ ॥

भूपाल भरतके तीन महिषियोंसे नौ पुत्रोंने जन्म लिया, वे मुझ राजाके योग्य पुत्र नहीं हुए यह कहके राजा उनपर असंतुष्ट थे ॥ १७ ॥

ततो महद्भिः क्रतुभिरीजानो भरतस्तदा ।
लेभे पुत्रं भरद्वाजाद्भुमन्युं नाम भारत ॥ १८ ॥

हे भारत ! तब राजा भरतने महायज्ञका अनुष्ठान करके भरद्वाजसे भुमन्यु नाम पुत्र प्राप्त किया ॥ १८ ॥

ततः पुत्रिणमात्मानं ज्ञात्वा पौरवनन्दनः ।
भुमन्युं भरतश्रेष्ठ यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ १९ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तब पौरवनन्दन भरतने अपनेको पुत्रवान् जानकर उस भुमन्यु नामक पुत्रको यौवराज्यपर अभिषिक्त किया ॥ १९ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततस्तस्य महीन्द्रस्य वितथः पुत्रकोऽभवत्।
ततः स वितथो नाम भुमन्योरभवत्सुतः ॥ २० ॥

तब उस श्रेष्ठ राजाके वितथ नामका पुत्र हुआ। वह वितथ नामका भुमन्युका पुत्र हुआ ॥ २० ॥

सुहोत्रश्च सुहोता च सुहविः सुयजुस्तथा।
पुष्करिण्यामृचीकस्य भुमन्योरभवन्सुताः ॥ २१ ॥

ऋचीककी पुष्करिणीमें भुमन्यसे सुहोत्र, सुहोता, सुहवि, सुयजु, इन सब पुत्रोंने जन्म लिया ॥ २१ ॥

तेषां ज्येष्ठः सुहोत्रस्तु राज्यमाप महीक्षिताम्।
राजसूयाश्वमेधाद्यैः सोऽयजद्बहुभिः सवैः ॥ २२ ॥

इनमेंसे सुहोत्र ज्येष्ठपुत्र थे, सो उन्होंने राजाओंका राज्य पाया। उसने राजसूय अश्वमेध आदि नाना यज्ञ किए ॥ २२ ॥

सुहोत्रः पृथिवीं सर्वां बुभुजे सागराम्बराम्।
पूर्णां हस्तिगवाश्वस्य बहुरत्नसमाकुलाम् ॥ २३ ॥

और हाथी और घोडोंसे भरी, नाना रत्नोंसे भरपूर, समुद्रसे घिरी सम्पूर्ण पृथ्वीका भोग किया ॥ २३ ॥

ममज्जेव मही तस्य भूरिभारावपीडिता।
हस्त्यश्वरथसंपूर्णा मनुष्यकलिला भृशम् ॥ २४ ॥

तब हाथी, घोडे और रथोंसे पूरित और अगणित मनुष्योंसे विकल होकर अति भारसे पीडित होनेके कारण पृथ्वी डूबने सी लगी ॥ २४ ॥

सुहोत्रे राजनि तदा धर्मतः शासति प्रजाः।
चैत्ययूपाङ्किता चासीद्भूमिः शतसहस्रशः।
प्रवृद्धजनसस्या च सहदेवा व्यरोचत ॥ २५ ॥

राजा सुहोत्रके धर्मानुसार प्रजा शासन करनेसे धरतीमण्डल सैकडों सहस्रों स्थानोंमें देवालय और यज्ञके यूपोंसे चित्रित और मनुष्य, धान्य और देवोंसे सुशोभित हुआ ॥ २५ ॥

ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात्पृथिवीपतेः।
अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत ॥ २६ ॥

हे भारत! पृथ्वीनाथ सुहोत्रसे स्त्री ऐक्ष्वाकीने अजमीढ, सुमीढ और पुरुमीढ यह तीन पुत्र प्रसव किये ॥ २६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अजमीढो वरस्तेषां तस्मिन्वंशः प्रतिष्ठितः ।
षट् पुत्रान्सोऽप्यजनयत्तिसृषु स्त्रीषु भारत ॥ २७ ॥

उनमेंसे अजमीढ ज्येष्ठ पुत्र थे, उनसे ही वंश प्रतिष्ठित हुआ । हे भारत ! अजमीढने तीन रानियोंसे छः पुत्र उत्पन्न किये ॥ २७ ॥

ऋक्षं धूमिन्यथो नीली दुःषन्तपरमेष्ठिनौ ।
केशिन्यजनयज्जह्नुमुभौ च जनरूपिणौ ॥ २८ ॥

उनमें धुमिनीके गर्भसे ऋक्ष, नीलीके गर्भसे दुःषन्त तथा परमेष्ठी और केशिनीके गर्भसे जन्हु, जन और रूपिन इन तीन पुत्रोंने जन्म लिया ॥ २८ ॥

तथेमे सर्वपाञ्चाला दुःषन्तपरमेष्ठिनोः ।
अन्वयाः कुशिका राजञ्जह्नोरमिततेजसः ॥ २९ ॥

दुःषन्त और परमेष्ठीके वंशमें यह सब पाञ्चाल राजा उत्पन्न हुए । अमिततेजस्वी जन्हुके वंशसे कुशिकोंने जन्म लिया ॥ २९ ॥

जनरूपिणयोर्ज्येष्ठमृक्षमाहुर्जनाधिपम् ।
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे राजन्वंशकरस्तव ॥ ३० ॥

जनाधिप ऋक्ष, जन और रूपिनसे ज्येष्ठ थे, ऋक्षसे तुम्हारा वंश बढानेवाले संवरण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥

आर्क्षे संवरणे राजन्प्रशासति वसुंधराम् ।
संक्षयः सुमहानासीत्प्रजानामिति शुश्रुमः ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! हमने सुना है कि जब ऋक्षपुत्र सम्वरणने धरतीका शासन किया था, तब प्रजाका महान् क्षय होने लगा ॥ ३१ ॥

व्यशीर्यत ततो राष्ट्रं क्षयैर्नानाविधैस्तथा ।
क्षुन्मृत्युभ्यामनवृष्ट्या व्याधिभिश्च समाहतम् ।
अभ्यघ्नन्भारतांश्चैव सपत्नानां बलानि च ॥ ३२ ॥

क्षुधा, मृत्यु, अनावृष्टि और व्याधि आदि नाना कारणोंसे प्रजाके लोप होनेपर राष्ट्र नष्ट हो गया, शत्रुपक्षकी सेना भारतपक्षीय योद्धोंको मारने लगी ॥ ३२ ॥

चालयन्वसुधां चैव बलेन चतुरङ्गिणा ।
अभ्ययात्तं च पाञ्चाल्यो विजित्य तरसा महीम् ।
अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एनं समरेऽजयत् ॥ ३३ ॥

पाञ्चालके राजा पराक्रमसे भूमण्डलको जीतकर चतुरङ्गिणी सेनासे पृथ्वीको कंपाते हुए हुए राजा संवरणके निकट आ पहुंचे; और युद्धस्थलमें दश अक्षौहिणी सेनासे राजा सम्वरणको पराजित किया ॥ ३३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः सदारः सामात्यः सपुत्रः ससुहृज्जनः ।
राजा संवरणस्तस्मात्पलायत महाभयात् ॥ ३४ ॥

तब वह राजा संवरण भयसे स्त्री, पुत्र, मंत्री और मित्रोंके साथ भाग गया ॥ ३४ ॥

सिन्धोर्नदस्य महतो निकुञ्जे न्यवसत्तदा ।
नदीविषयपर्यन्ते पर्वतस्य समीपतः ।
तत्रावसन्बहून्कालान्भारता दुर्गमाश्रिताः ॥ ३५ ॥

सिंधु नामक महानदीके तटसे पर्वतके निकट तक फैली हुई एक कुंजमें छिपकर रहने लगा, भारतगण उस दुर्गके आश्रयसे बहुत समय तक रहे ॥ ३५ ॥

तेषां निवसतां तत्र सहस्रं परिवत्सरान् ।
अथाभ्यगच्छद्भरतान्वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उनके वहां रहते हुए एक हजार वर्ष बीत गए, तो एक समय भगवान् ऋषि वसिष्ठ उनके पास आये ॥ ३६ ॥

तमागतं प्रयत्नेन प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च ।
अर्घ्यमभ्याहरंस्तस्मै ते सर्वे भारतास्तदा ।
निवेद्य सर्वमृषये सत्कारेण सुवर्चसे ॥ ३७ ॥

भरतवंशी लोगोंने उनको आया देखकर यत्नके साथ नमस्कार करके अर्घ दिया और उस तेजस्वी ऋषिका सत्कार करके सब कहा ॥ ३७ ॥

तं समामष्टमीमुष्टं राजा वव्रे स्वयं तदा ।
पुरोहितो भवन्नोऽस्तु राज्याय प्रयतामहे ।
ओमित्येवं वसिष्ठोऽपि भारतान्प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥

आगे उन बडे तेजस्वी ऋषिके बैठने पर राजाने उनका वरण किया कि आप हमारे पुरोहित होवें; हम राज्यको फिर पानेका यत्न करना चाहते हैं। वसिष्ठने इन भरतवंशियोंके निकट वह स्वीकार किया ॥ ३८ ॥

अथाभ्यषिञ्चत्साम्राज्ये सर्वक्षत्रस्य पौरवम् ।
विषाणभूतं सर्वस्यां पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ ३९ ॥

और सम्पूर्ण भूमण्डलकी चोटीके समान श्रेष्ठ पौरव संवरणको क्षत्रियोंके आधिपत्यरूपी साम्राज्यपर अभिषिक्त किया ऐसा हमने सुना है ॥ ३९ ॥

भरताध्युषितं पूर्वं सोऽध्यतिष्ठत्पुरोत्तमम् ।
पुनर्बलिभृतश्चैव चक्रे सर्वमहीक्षितः ॥ ४० ॥

भूपाल संवरण भरतके पहिले बसे हुए सुन्दर नगरमें फिर अधिष्ठान बना करके संपूर्ण भूपालोंको करदाता बनाने लगे ॥ ४० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः स पृथिवीं प्राप्य पुनरीजे महाबलः ।
आजमीढो महायज्ञैर्बहुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ ४१ ॥

अजमीढके पौत्र महाबली संवरण फिर पृथ्वीको प्राप्तकर बहुत दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करने लगे ॥ ४१ ॥

ततः संवरणात्सौरी सुषुवे तपती कुरुम् ।
राजत्वे तं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे ॥ ४२ ॥

अनन्तर सूर्यपुत्री तपतीने भूपति श्रेष्ठ संवरणसे कुरु नामक पुत्र प्रसव किया । हे राजन् ! सम्पूर्ण प्रजाओंने कुरुको धर्मज्ञ देखकर वरण किया ॥ ४२ ॥

तस्य नाम्नाभिविख्यातं पृथिव्यां कुरुजाङ्गलम् ।
कुरुक्षेत्रं स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः ॥ ४३ ॥

उन महातपा कुरुकी तपस्यासे कुरुजाङ्गल नामक स्थान पवित्र और उनके नामके अनुसार कुरुक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४३ ॥

अश्ववन्तमभिष्वन्तं तथा चित्ररथं मुनिम् ।
जनमेजयं च विख्यातं पुत्रांश्चास्यानुशुश्रुमः ।
पञ्चैतान्वाहिनी पुत्रान्व्यजायत मनस्विनी ॥ ४४ ॥

वाहिनी नाम्नी उनकी मनस्विनी रानीने उनसे अश्ववन्त, अभिष्वत, चित्ररथ, मुनि और प्रख्यात जनमेजय यह पांच पुत्र प्रसव किये ॥ ४४ ॥

अभिष्वतः परिक्षित्तु शबलाश्वश्च वीर्यवान् ।
अभिराजो विराजश्च शाल्मलश्च महाबलः ॥ ४५ ॥

अभिष्वतके परिक्षित्, शबलाश्व, वीर्यवंत अभिराज, विराज, महाबली, शाल्मल ॥ ४५ ॥

उच्चैःश्रवा भद्रकारो जितारिश्चाष्टमः स्मृतः ।
एतेषामन्ववाये तु ख्यातास्ते कर्मजैर्गुणैः ॥ ४६ ॥

उच्चैःश्रवा, भद्रकार और जितारी यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए; इनके वंशमें कर्मसे उत्पन्न हुए हुए गुणसे प्रसिद्ध हुए ॥ ४६ ॥

जनमेजयादयः सप्त तथैवान्ये महाबलाः ।
परिक्षितोऽभवन्पुत्राः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ॥ ४७ ॥

जनमेजय आदि सात और दूसरे अनेक महाबलियोंने जन्म लिया । परिक्षित्के सभी पुत्र धर्म और अर्थके ज्ञानी थे ॥ ४७ ॥

कक्षसेनोग्रसेनौ च चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
इन्द्रसेनः सुषेणश्च भीमसेनश्च नामतः ॥ ४८ ॥

उनके नाम कक्षसेन, उग्रसेन, वीर्यशाली, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण और भीमसेन थे ॥४८॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जनमेजयस्य तनया भुवि ख्याता महाबलाः ।
धृतराष्ट्रः प्रथमजः पाण्डुर्बाह्लीक एव च ॥ ४९ ॥

जनमेजयके पुत्र महाबलशाली पृथ्वीभरमें प्रख्यात प्रथम धृतराष्ट्र, पाण्डु, बाह्लीक, ॥४९॥

निषधश्च महातेजास्तथा जाम्बूनदो बली ।
कुण्डोदरः पदातिश्च वसातिश्चाष्टमः स्मृतः ।
सर्वे धर्मार्थकुशलाः सर्वे भूतहिते रताः ॥ ५० ॥

महातेजस्वी निषध, बलशाली जांबुनद, कुण्डोदर, पदाति और अष्टम वसाति हैं, ये सभी धर्म और अर्थमें कुशल और सब प्राणियोंके हितकारी थे ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्रोऽथ राजासीत्तस्य पुत्रोऽथ कुण्डिकः ।
हस्ती वितर्कः क्राथश्च कुण्डलश्चापि पञ्चमः ।
हविःश्रवास्तथेन्द्राभः सुमन्युश्चापराजितः ॥ ५१ ॥

इनमें धृतराष्ट्र राजा हुए । कुण्डिक, हस्ती, वितर्क, क्राथ, पांचवां कुण्डल, हविःश्रवा, इन्द्राभ और अपराजित सुमन्यु यह धृतराष्ट्रके पुत्र हैं ॥ ५१ ॥

प्रतीपस्य त्रयः पुत्रा जज्ञिरे भरतर्षभ ।
देवापिः शन्तनुश्चैव बाह्लीकश्च महारथः ॥ ५२ ॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! देवापि, शन्तनु और बाह्लीक, इन तीन महारथी पुत्रोंने प्रतीपसे जन्म लिया ॥ ५२ ॥

देवापिस्तु प्रवव्राज तेषां धर्मपरीप्सया ।
शन्तनुश्च महीं लेभे बाह्लीकश्च महारथः ॥ ५३ ॥

उनमें देवापिने धर्मलाभके लिये प्रव्रज्या ग्रहण की और महारथी शन्तनु तथा बाह्लीक भूमण्डलके अधीश हुए ॥ ५३ ॥

भरतस्यान्वये जाताः सत्त्ववन्तो महारथाः ।
देवर्षिकल्पा नृपते बहवो राजसत्तमाः ॥ ५४ ॥

हे नृपते ! देवर्षिसदृश सत्वयुक्त महारथी बहुतेरे भूपालोंने भरतवंशमें जन्म लिया ॥ ५४ ॥

एवंविधाश्चाप्यपरे देवकल्पा महारथाः ।
जाता मनोरन्ववाये ऐलवंशविवर्धनाः ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ३१८२ ॥

ऐसे देवर्षि सदृश ऐलवंशकी वृद्धि करनेवाले बहुतसे महारथी भूपतियोंने मनुवंशमें जन्म लिया ॥ ५५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ ३१८२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ९० :

जनमेजय उवाच

श्रुतस्त्वत्तो मया विप्र पूर्वेषां संभवो महान् ।
उदाराश्चापि वंशेऽस्मिन्राजानो मे परिश्रुताः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! आपसे पूर्वज पुरुषोंकी महान् उत्पत्तिकी कथा सुनी और इस वंशके उदारचरित राजाओंके वृत्तान्तोंको भी सुना ॥ १ ॥

किंतु लघ्वर्थसंयुक्तं प्रियाख्यानं न मामति ।
प्रीणात्यतो भवान्भूयो विस्तरेण ब्रवीतु मे ॥ २ ॥

पर यह परमप्रिय उपाख्यान संक्षेपमें कहा गया है, उससे भली प्रकार तृप्त नहीं हुआ हूं, आप फिर विस्तृत रूपसे कहिये ॥ २ ॥

एतामेव कथां दिव्यामा प्रजापतितो मनोः ।
तेषामाजननं पुण्यं कस्य न प्रीतिमावहेत् ॥ ३ ॥

प्रजापति मनुसे लेकर सम्पूर्ण राजाओंके पवित्र जन्म–वृत्तान्त रूपी यह दिव्य कथा सुननेमें किस मनुष्यकी प्रीति नहीं हो ? ॥ ३ ॥

सद्धर्मगुणमाहात्म्यैरभिवर्धितमुत्तमम् ।
विष्टभ्य लोकांस्त्रीनेषां यशः स्फीतमवस्थितम् ॥ ४ ॥

उनके सुधर्म, गुण और महात्म्यसे बढा हुआ यश तीनों लोकमें व्याप्त होकर और बढकर आजतक विद्यमान है; ॥ ४ ॥

गुणप्रभाववीर्यौजःसत्त्वोत्साहवतामहम् ।
न तृप्यामि कथां शृण्वन्नमृतास्वादसंमिताम् ॥ ५ ॥

गुण, प्रभाव, वीर्य, ओज, शक्ति, उत्साहसे युक्त उनकी अमृत सदृश मीठी कथा संक्षेपमें सुनकर भली प्रकार तृप्त नहीं हो सका हूं ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन्पुरा सम्यङ् मया द्वैपायनाच्छ्रुतम् ।
प्रोच्यमानमिदं कृत्स्नं स्ववंशजननं शुभम् ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! मैंने पहिले द्वैपायनसे आपके शुभवंशके वृत्तान्तोंको जैसा सुना था, वह सब कहता हूं, सुनिये ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दक्षस्यादितिः। अदितेर्विवस्वान्। विवस्वतो मनुः। मनोरिला। इलायाः पुरूरवाः। पुरूरवस आयुः। आयुषो नहुषः। नहुषस्ययययातिः ॥ ७ ॥ ययातेर्द्वे भार्ये बभूवतुः। उशनसो दुहिता देवयानी वृषपर्वणश्च दुहिता शर्मिष्ठा नाम। अत्रानुवंशो भवति ॥ ८ ॥

दक्षसे अदिति, अदितिसे विवस्वान्, विवस्वानसे मनु, मनुसे इला, इलासे पुरूरवा, पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष और नहुषसे ययातिने जन्म लिया था ॥ ७ ॥ ययातिके दो स्त्रियां थीं, शुक्रकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा। इस स्थानमें वंशकी कथा—सम्बन्धी श्लोक है ॥ ८ ॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ९ ॥

देवयानीने यदु और तुर्वसु इन दो पुत्रोंको और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु इन तीन पुत्रोंको जन्म दिया था ॥ ९ ॥

तत्र यदोर्यादवाः। पूरोः पौरवाः ॥ १० ॥ पूरोर्भार्या कौसल्या नाम। तस्यामस्य जज्ञे जनमेजयो नाम। यस्त्रीनश्वमेधानाजहार। विश्वजिता चेष्ट्वा वनं प्रविवेश ॥ ११ ॥ जनमेजयः खल्वनन्तां नामोपयेमे माधवीम्। तस्यामस्य जज्ञे प्राचिन्वान्। यः प्राचीं दिशं जिगाय यावत्सूर्योदयात्। ततस्तस्य प्राचिन्वत्वम् ॥ १२ ॥ प्राचिन्वान्खल्वश्मकीमुपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे संयातिः ॥ १३ ॥ संयातिः खलु दृषद्वतो दुहितरं वराङ्गीं नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे अहंपातिः ॥ १४ ॥

आगे यदुसे यादव वंश और पूरुसे पौरव वंश उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ पूरुकी भार्याका नाम कौसल्या था। उससे जनमेजय नामवालेने जन्म लिया। उन्होंने तीन बार अश्वमेध और एकबार विश्वजित यज्ञ करके वनमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ उन्होंने माधवकी अनन्ता नाम्नी कन्यासे विवाह किया। उससे प्राचिन्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सूर्योदयके होने तक प्राची दिशा जीतनेके कारण उनका नाम प्राचिन्वान् हुआ ॥ १२ ॥ प्राचिन्वानने अश्मकी नाम्नी कन्यासे विवाह किया। उनसे संयातिकी उत्पत्ति हुई ॥ १३ ॥ संयातिने दृषद्वतकी कन्या वराङ्गीसे विवाह किया। उसके गर्भसे अहंपातिने जन्म लिया ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अहंपातिस्तु खलु कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भानुमतीं नाम। तस्यामस्य जज्ञे सार्वभौमः ॥ १५ ॥ सार्वभौमः खलु जित्वा-जहार कैकेयीं सुनन्दां नाम। तस्यामस्य जज्ञे जयत्सेनः ॥१६॥ जयत्सेनः खलु वैदर्भीमुपयेमे सुषुवां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अराचीनः ॥ १७॥ अराचीनोऽपि वैदर्भीमेवापरामुपयेमे मर्यादां नाम। तस्यामस्य जज्ञे महाभौमः ॥ १८ ॥

अहंपातिने कृतवीर्यकी कन्या भानुमतिका पाणिग्रहण किया; भानुमतिके गर्भसे सार्वभौमने जन्म लिया ॥ १५ ॥ सार्वभौमने कैकेयराजको जीतकर उनकी पुत्री सुनन्दाको हर लिया। उसके गर्भसे जयत्सेनकी उत्पत्ति हुई ॥ १६ ॥ जयत्सेनने विदर्भराजकुमारी सुषुवाका पाणिग्रहण किया। उससे अराचीनका जन्म हुआ ॥ १७॥ अराचीनने दूसरी वैदर्भी मर्यादा नाम्नी कन्यासे विवाह किया। इससे महाभौमका जन्म हुआ ॥ १८ ॥

महाभौमः खलु प्रासेनजितीमुपयेमे सुयज्ञां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अयुतनायी। यः पुरुषमेधानामयुतमानयत्। तदस्यायुत-नायित्वम् ॥ १९ ॥ अयुतनायी खलु पृथुश्रवसो दुहितरमुप-येमे भासां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अक्रोधनः ॥ २० ॥ अक्रो-धनः खलु कालिङ्गीं करण्डुं नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे देवातिथिः ॥ २१ ॥ देवातिथिः खलु वैदेहीमुपयेमे मर्यादां नाम। तस्यामस्य जज्ञे ऋचः ॥ २२ ॥

महाभौमने प्रसेनजित्की कन्या सुयज्ञासे विवाह किया। उससे अयुतनायीका जन्म हुआ; इनके अयुत नरमेध यज्ञ करनेसे इनका नाम अयुतनायी हुआ ॥ १९ ॥ अयुतनायीने पृथुश्रवाकी कन्या भासासे विवाह किया; इससे भासाके गर्भसे अक्रोधनने जन्म लिया ॥ २० ॥ कलिङ्ग राजकन्या करण्डुके साथ अक्रोधनका विवाह हुआ, उसके गर्भसे देवातिथिने जन्म लिया ॥ २१ ॥ देवातिथिने विदेह राजपुत्री मर्यादासे विवाह किया। मर्यादाके गर्भसे ऋचने जन्म लिया ॥ २२ ॥

ऋचः खल्वाङ्गेयीमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यां पुत्रमजनयद्-ऋक्षम् ॥ २३ ॥ ऋक्षः खलु तक्षकदुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम। तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयामास ॥ २४ ॥ मतिनारः

ऋचने अङ्गराजकी सुदेवा नाम्नी कन्यासे विवाह किया। सुदेवाने ऋक्ष नामक पुत्र प्रसूत किया ॥ २३ ॥ तक्षककी पुत्री ज्वालाके साथ ऋक्षका विवाह हुआ। उस ज्वालाके गर्भसे

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खलु सरस्वत्यां द्वादशवार्षिकं सत्रमाजहार ॥ २५ ॥ निवृत्ते च सत्रे सरस्वत्यभिगम्य तं भर्तारं वरयामास। तस्यां पुत्रमजनयत्तंसुं नाम ॥ २६ ॥ अत्रानुवंशो भवति ॥ २७ ॥

मतिनारने जन्म लिया ॥ २४ ॥ मतिनारने सरस्वती नदीके तटपर बारह वर्षमें अनुष्ठान होनेवाले यज्ञका अनुष्ठान किया था ॥ २५ ॥ उस महायज्ञके समाप्त होनेपर सरस्वतीने आकर उनको पतित्वमें वरण किया। इससे सरस्वतीके गर्भसे तंसु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ इस स्थानमें वंश कथाका श्लोक है ॥ २७ ॥

तंसुं सरस्वती पुत्रं मतिनारादजीजनत्।
इलिनं जनयामास कालिन्द्यां तंसुरात्मजम् ॥ २८ ॥

सरस्वतीने मतिनारसे तंसुनामक पुत्रको प्रसव किया। तंसुने कालिन्दीसे इलिन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २८ ॥

इलिनस्तु रथन्तर्यां दुःषन्ताद्यान्पञ्च पुत्रानजनयत् ॥ २९ ॥
दुःषन्तः खलु विश्वामित्रदुहितरं शकुन्तलां नामोपयेमे।
तस्यामस्य जज्ञे भरतः। तत्र श्लोकौ भवतः ॥ ३० ॥

राजा इलिनने और रथन्तरीमें गर्भसे दुःषन्तादि पांच पुत्र पैदा किए ॥ २९ ॥ दुःषन्तने विश्वामित्रकी कन्या शकुन्तलासे विवाह किया। उससे भरतका जन्म हुआ। इस स्थलमें वंशानुकीर्तनके दो श्लोक हैं ॥ ३० ॥

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्व पुत्रं दुःषन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ ३१ ॥

"हे दुःषन्त! माता चमडेके कोशके समान है, उसमें पिता स्वयं पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, अतएव पुत्रको पोषो, पालो, शकुन्तलाका अनादर मत करो ॥ ३१ ॥

रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ ३२ ॥

हे नरदेव! निज वीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तान यमराजके घरसे उद्धार करती है और तुम्हींने यह गर्भाधान किया है; वह सच है, शकुन्तलाने जो कहा है ॥ ३२ ॥

ततोऽस्य भरतत्वम् ॥ ३३ ॥ भरतः खलु काशेयीमुपयेमे सार्वसेनीं सुनन्दां नाम। तस्यामस्य जज्ञे भुमन्युः ॥ ३४ ॥

अतएव हे पौरव! इस हेतु दुःषन्तके पुत्रका नाम भरत हुआ ॥ ३३ ॥ भरतने काशीराज सर्वसेनकी पुत्री सुनन्दासे विवाह किया, इससे सुनन्दाके गर्भसे भुमन्युकी उत्पत्ति हुई ॥ ३४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भुमन्युः खलु दाशार्हीमुपयेमे जयां नाम । तस्यामस्य जज्ञे सुहोत्रः ॥ ३५ ॥ सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकुकन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम । तस्यामस्य जज्ञे हस्ती । य इदं हास्तिनपुरं मापयामास । एतदस्य हास्तिनपुरत्वम् ॥ ३६ ॥

भुमन्युने दशार्हकी कन्या जयासे विवाह किया । और उसमें सुहोत्र नामक पुत्रोत्पादन किया ॥ ३५ ॥ सुहोत्रने इक्ष्वाकुकी कन्या सुवर्णासे विवाह किया, उससे सुवर्णाके गर्भसे हस्ती नामक राजपुत्रका जन्म हुआ; जिन महाराज हस्तीने अपने नामसे हस्तिनापुर स्थापित किया; इसलिये हस्तिनापुर प्रख्यात हुआ है ॥ ३६ ॥

हस्ती खलु त्रैगर्तीमुपयेमे यशोधरां नाम । तस्यामस्य जज्ञे विकुण्ठनः ॥ ३७ ॥ विकुण्ठनः खलु दाशार्हीमुपयेमे सुदेवां नाम । तस्यामस्य जज्ञे अजमीढः ॥३८॥ अजमीढस्य चतुर्विंशं पुत्रशतं बभूव कैकेय्यां नागायां गान्धार्यां विमलायामृक्षायां चेति । पृथक्पृथग्वंशकरा नृपतयः । तत्र वंशकरः संवरणः ॥३९॥ संवरणः खलु वैवस्वतीं तपतीं नामोपयेमे । तस्यामस्य जज्ञे कुरुः ॥ ४० ॥

हस्तीने त्रिगर्त राजकन्या यशोधरासे विवाह किया । उससे विकुण्ठन नामक पुत्र उत्पन्न किया था ॥ ३७ ॥ विकुण्ठनने दशार्हकी पुत्री सुदेवासे विवाह किया, सुदेवाके गर्भसे अजमीढने जन्म लिया ॥ ३८ ॥ अजमीढके कैकेयी, नागा, गान्धारी, विमला और ऋक्षा इन पत्नियोंसे चौबीस सौ पुत्रोंका जन्म हुआ । वे सब भूपाल अलग अलग वंशधर हुए, उनमेंसे संवरणके पुत्रहीसे वंश प्रतिष्ठित था ॥ ३९ ॥ संवरणने सूर्य्यकी पुत्री तपतीसे विवाह किया । तपतीके गर्भसे कुरुका जन्म हुआ ॥ ४० ॥

कुरुः खलु दाशार्हीमुपयेमे शुभाङ्गीं नाम । तस्यामस्य जज्ञे विडूरथः ॥ ४१ ॥ विडूरथस्तु मागधीमुपयेमे संप्रियां नाम । तस्यामस्य जज्ञे अरुग्वान्नाम ॥ ४२ ॥ अरुग्वान्खलु मागधीमुपयेमे अमृतां नाम । तस्यामस्य जज्ञे परिक्षित् ॥ ४३ ॥ परिक्षित्खलु बाहुदामुपयेमे सुयशां नाम । तस्यामस्य जज्ञे भीमसेनः ॥ ४४ ॥

कुरुने दशार्हकी पुत्री शुभाङ्गीसे विवाह किया । शुभाङ्गीके गर्भसे विडूरथका जन्म हुआ ॥४१॥ मगध देशकी कन्या संप्रियासे विडूरथने विवाह किया । संप्रियाके गर्भसे अरुग्वान्ने जन्म लिया ॥ ४२ ॥ अरुग्वान्ने अमृता नाम्नी मगधराज कुमारीसे विवाह किया । उसके गर्भसे परिक्षित् नामक पुत्रोत्पादन किया ॥ ४३ ॥ परिक्षित्ने बहुदकी कन्या सुयशासे विवाह किया, सुयशाके गर्भसे भीमसेन नामक पुत्रने जन्म लिया ॥ ४४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भीमसेनः खलु कैकेयीमुपयेमे सुकुमारीं नाम। तस्यामस्य जज्ञे पर्यश्रवाः। यमाहुः प्रतीपं नाम ॥ ४५ ॥ प्रतीपः खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम। तस्यां पुत्रानुत्पादयामास देवापिं शन्तनुं बाह्लीकं चेति ॥४६॥ देवापिः खलु बाल एवारण्यं प्रविवेश। शन्तनुस्तु महीपालोऽभवत्। अत्राऽनुवंशो भवति ॥ ४७ ॥

भीमसेनने कैकेय राजकुमारी सुकुमारीसे विवाह किया। सुकुमारीके गर्भसे पर्यश्रवा नाम पुत्रका जन्म हुआ। जिसे प्रतीप भी कहते हैं ॥ ४५ ॥ प्रतीपने शैब्यराजकुमारी सुनन्दासे विवाह किया। उसके गर्भसे देवापि, शन्तनु और बाह्लीक यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥४६॥ देवापि बालपनहीमें वन चले गए। शन्तनु राजा हुए। इस स्थानमें वंश कीर्तनका श्लोक है ॥ ४७ ॥

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं स सुखमश्नुते।
पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः ॥ ४८ ॥

वह भूप हाथसे जिन जिन जीर्ण जनोंको स्पर्श करते थे, वे सब फिर युवा (शान्त-तनु) होकर सुख भोगते थे ॥ ४८ ॥

तदस्य शन्तनुत्वम् ॥ ४९ ॥ शन्तनुः खलु गङ्गां भागीरथीमुपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे देवव्रतः। यमाहुर्भीष्म इति ॥५०॥ भीष्मः खलु पितुः प्रियचिकीर्षया सत्यवतीमुदवहन्मातरम्। यामाहुर्गन्धकालीति ॥ ५१ ॥ तस्यां कानीनो गर्भः पराशराद्द्वैपायनः। तस्यामेव शन्तनोर्द्वौ पुत्रौ बभूवतुः। चित्राङ्गदो विचित्रवीर्यश्च ॥ ५२ ॥

इस हेतु इनका नाम शन्तनु हुआ ॥ ४९ ॥ शन्तनुने भागीरथी गङ्गासे विवाह किया। उससे गंगाके गर्भसे देवव्रतने जन्म लिया, जिनको सब भीष्म कहते हैं ॥ ५० ॥ भीष्मने पिताका प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे उनके साथ माता सत्यवतीका विवाह कर दिया, उस सत्यवतीका और एक नाम गन्धकाली भी प्रसिद्ध था ॥ ५१ ॥ पहिले सत्यवतीकी कन्यादशामें पराशरसे द्वैपायनका जन्म हुआ था; आगे शन्तनुके उसके गर्भमे दो और पुत्रोंने जन्म लिया, उनके नाम विचित्रवीर्य्य और चित्रांगद थे ॥ ५२ ॥

तयोरप्राप्तयौवन एव चित्राङ्गदो गन्धर्वेण हतः। विचित्रवीर्यस्तु राजा समभवत् ॥ ५३ ॥ विचित्रवीर्यः खलु कौसल्या-

चित्रांगद यौवनको प्राप्त करनेके पहिले ही गन्धर्वसे मार दिए गये थे। विचित्रवीर्य राजा हुए ॥ ५३ ॥ विचित्रवीर्यने कौशल्याके गर्भोत्पन्न काशिराजपुत्री अम्बिका और अम्बालिका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्मजे अम्बिकाम्बालिके काशिराजदुहितरावुपयेमे ॥ ५४ ॥ विचित्रवीर्यस्त्वनपत्य एव विदेहत्वं प्राप्तः ॥ ५५ ॥ ततः सत्यवती चिन्तयामास । दौःषन्तो वंश उच्छिद्यते इति ॥ ५६ ॥

इन दो कन्याओंसे विवाह किया ॥ ५४ ॥ पर वह सन्तान रहित ही परलोकको चले गए ॥ ५५ ॥ सत्यवती सोचने लगी कि दुःषन्तका वंश समाप्त होने वाला है ॥ ५६ ॥

सा द्वैपायनमृषिं चिन्तयामास ॥ ५७ ॥ स तस्याः पुरतः स्थितः किं करवाणीति ॥ ५८ ॥ सा तमुवाच । भ्राता तवानपत्य एव स्वर्यातो विचित्रवीर्यः । साध्वपत्यं तस्योत्पादयेति ॥ ५९ ॥ स परमित्युक्त्वा त्रीन्पुत्रानुत्पादयामास धृतराष्ट्रं पाण्डुं विदुरं चेति ॥ ६० ॥ तत्र धृतराष्ट्रस्य राज्ञः पुत्रशतं बभूव गान्धार्यां वरदानाद्द्वैपायनस्य ॥६१॥ तेषां धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां चत्वारः प्रधाना बभूवुर्दुर्योधनो दुःशासनो विकर्णश्चित्रसेन इति ॥ ६२ ॥

तब उसने निजपुत्र द्वैपायन ऋषिको स्मरण किया ॥५७॥ द्वैपायनने उसके सम्मुख उपस्थित होकर पूछा कि क्या करना होगा ? ॥ ५८ ॥ सत्यवती बोली– तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य बिना सन्तान ही परलोकको सिधार गए । उनके लिए उत्तम पुत्रोत्पादन करो ॥ ५९ ॥ द्वैपायनने स्वीकार किया ! अनन्तर उन्होंने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६० ॥ आगे द्वैपायनके वरदानके प्रभावसे गान्धारीके गर्भसे धृतराष्ट्रके सौ पुत्र हुए ॥ ६१ ॥ उन धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन यह चार पुत्र प्रधान थे ॥ ६२ ॥

पाण्डोस्तु द्वे भार्ये बभूवतुः कुन्ती माद्री चेत्युभे स्त्रीरत्ने ॥ ६३ ॥ अथ पाण्डुर्मृगयां चरन्मैथुनगतमृषिमपश्यन्मृग्यां वर्तमानम् । तथैवाऽप्लुतमनासादितकामरसमतृप्तं बाणेनाभिजघान ॥ ६४ ॥ स बाणविद्ध उवाच पाण्डुम् । चरता धर्म-

कुन्ती और माद्री यह दो स्त्री–रत्न पाण्डुकी भार्या थीं; ॥ ६३ ॥ अनन्तर एक समय पाण्डु मृगयाके निमित्त वनमें गये थे; वहां देखा, कि एक ऋषि मृगीसे मैथुन कर रहे हैं । तबतक कामरसके पूर्ण न होनेके कारण भली प्रकार तृप्त नहीं हुए थे, उन अद्भुत मृगरूपी ऋषि पर उन्होंने बाण मारा ॥ ६४ ॥ ऋषि बाणसे विद्ध होकर पाण्डुसे बोले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मिमं येन त्वयाभिज्ञेन कामरसस्याहमनवाप्तकामरसोऽभिहतस्तस्मात्त्वमप्येतामवस्थामासाद्यानवाप्तकामरसः पञ्चत्वमाप्स्यसि क्षिप्रमेवेति ॥६५॥ स विवर्णरूपः पाण्डुः शापं परिहरमाणो नोपासर्पत भार्ये ॥ ६६ ॥

कि तुमने धर्म और काम रसके अभिज्ञ होकर भी मुझको अपूर्ण मनोरथ देखने परभी मार डाला ! इस हेतु तुमभी इस अवस्थाको पाकर कामरसमें अतृप्त रह कर उसहीमें शीघ्र परलोकको सिधारोगे ॥ ६५ ॥ यह शाप सुनतेही उसी क्षण पीले पडे हुए पांडुने शापसे बचनेके लिये स्त्रीसे मिलना छोड दिया ॥ ६६ ॥

वाक्यं चोवाच। स्वचापल्यादिदं प्राप्तवानहम्। शृणोमि च नानपत्यस्य लोकाः सन्तीति ॥ ६७ ॥ सा त्वं मदर्थे पुत्रानुत्पादयेति कुन्तीमुवाच ॥ ६८ ॥ सा तत्र पुत्रानुत्पादयामास धर्माद्युधिष्ठिरं मारुताद्भीमसेनं शक्रादर्जुनमिति ॥ ६९ ॥ स तां हृष्टरूपः पाण्डुरुवाच। इयं ते सपत्न्यनपत्या। साध्वस्यामपत्यमुत्पाद्यतामिति ॥ ७० ॥

उन्होंने कुन्ती और माद्रीसे कहा, कि मैंने अपनी चपलतासे यह कुदशा प्राप्त की है; सुना है, कि पुत्रकी उत्पत्ति न होनेसे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६७ ॥ तब कुन्तीसे बोले, तुम मेरे लिये पुत्र उत्पन्न करो ॥ ६८ ॥ तब कुन्तीने पतिके उस नियोगके अनुसार धर्मसे युधिष्ठिर, पवनसे भीम और इन्द्रसे अर्जुन इस प्रकार तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६९ ॥ पाण्डु उसपर प्रसन्न होकर बोले, तुम्हारी सौत यह माद्री निःसन्तान है, तुम इसमें भी अच्छे पुत्र उत्पन्न कर दो ॥ ७० ॥

स एवमस्त्वित्युक्तः कुन्त्या ॥ ७१ ॥ ततो माद्र्यामश्विभ्यां नकुलसहदेवावुत्पादितौ ॥ ७२ ॥ माद्रीं खल्वलंकृतां दृष्ट्वा पाण्डुर्भावं चक्रे ॥ ७३ ॥ स तां स्पृष्ट्वैव विदेहत्वं प्राप्तः ॥७४॥ तत्रैनं चितास्थं माद्री समन्वारुरोह ॥ ७५ ॥

कुन्तीने वह स्वीकार कर "ठीक है" ऐसा कहा ॥७१॥ तब माद्रीने भी दोनों अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेव यह दो यमज पुत्र उत्पन्न किये ॥ ७२ ॥ एक समय पाण्डु माद्रीको गहनोंसे सजी हुई देखकर कामवश हो गये ॥ ७३ ॥ पर माद्रीके स्पर्श करते ही वे मर गए ॥ ७४ ॥ पाण्डुकी देह चिताकी आगमें जला दी जानेपर माद्री उनके पीछे सती हो गयी ॥ ७५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उवाच कुन्तीम्। यमयोरार्ययाप्रमत्तया भवितव्यमिति ॥७६॥ ततस्ते पञ्च पाण्डवाः कुन्त्या सहिता हास्तिनपुरमानीय तापसैर्भीष्मस्य विदुरस्य च निवेदिताः ॥ ७७॥ तत्रापि जतुगृहे दग्धुं समारब्धा न शक्ता विदुरमन्त्रितेन ॥ ७८ ॥ ततश्च हिडिम्बमन्तरा हत्वा एकचक्रां गताः ॥ ७९ ॥

और उस समय कुन्तीसे कहा, कि तुम सावधान होकर मेरी इन दो यमज सन्तानोंको पालना ॥ ७६ ॥ अनन्तर तपस्वीगणोंने कुन्तीके साथ पांचों पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें लाकर भीष्म और विदुरको सौंप दिया ॥ ७७ ॥ वे दुर्योधनके कारणसे जतुगृहमें जलनेवाले होने पर भी विदुरके परामर्शके प्रभावसे बाल बाल बच गए ॥ ७८ ॥ उसके बाद बीचमें हिडिम्बको मारकर एकचक्रा नगरीमें गये ॥ ७९ ॥

तस्यामप्येकचक्रायां बकं नाम राक्षसं हत्वा पाञ्चालनगरमभिगताः ॥ ८० ॥ तस्माद्द्रौपदीं भार्यामविन्दन्स्वविषयं चाजग्मुः कुशलिनः ॥ ८१ ॥ पुत्रांश्चोत्पादयामासुः । प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरः । सुतसोमं वृकोदरः । श्रुतकीर्तिमर्जुनः । शतानीकं नकुलः । श्रुतकर्माणं सहदेव इति ॥ ८२ ॥

उस एकचक्रा नगरीमें भी बक नामक राक्षसको मारकर पाञ्चाल नगरमें गये ॥ ८० ॥ वहां द्रौपदीको भार्याके रूपमें प्राप्त करके कुशलपूर्वक अपने राज्यमें लौट आए ॥ ८१ ॥ उन्होंने द्रौपदीके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न किए । उनमें युधिष्ठिरके वीर्यसे प्रतिविन्ध्य, भीमके वीर्यसे सुतसोम, अर्जुनके वीर्यसे श्रुतकीर्त्ति, नकुलके वीर्यसे शतानीक और सहदेवके वीर्यसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ ॥ ८२ ॥

युधिष्ठिरस्तु गोवासनस्य शैब्यस्य देविकां नाम कन्यां स्वयंवरे लेभे । तस्यां पुत्रं जनयामास यौधेयं नाम ॥ ८३ ॥ भीमसेनोऽपि काश्यां बलधरां नामोपयेमे वीर्यशुल्काम् । तस्यां पुत्रं सर्वगं नामोत्पादयामास ॥ ८४ ॥ अर्जुनः खलु द्वारवतीं गत्वा भगिनीं वासुदेवस्य सुभद्रां नाम भार्यामुदवहत्। तस्यां पुत्रमभिमन्युं नाम जनयामास ॥ ८५ ॥ नकुलस्तु चैद्यां करे-

युधिष्ठिरने गोवासन नामक शैब्य राजकी कन्या देविकाको स्वयंवरमें प्राप्त किया । उस देविकाके गर्भसे यौधेय नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥८३॥ भीमसेनने वीर्यरूपी शुल्कके द्वारा काशीराजकी पुत्री बलधरासे विवाह किया । उसके गर्भसे सर्वग नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ८४ ॥ अर्जुनने द्वारकामें जाकरके वासुदेवकी बहिन सुभद्रासे विवाह किया । और उस सुभद्रासे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ८५ ॥ नकुलने चेदिराज

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

णुवतीं नाम भार्यामुदवहत्। तस्यां पुत्रं निरमित्रं नामाजनयत् ॥८६॥ सहदेवोऽपि माद्रीमेव स्वयंवरे विजयां नामोपयेमे। तस्यां पुत्रमजनयत्सुहोत्रं नाम ॥ ८७ ॥

कुमारी करेणुमतीनाम्नी कन्यासे विवाह किया। उससे निरमित्र नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ८६ ॥ सहदेवने स्वयंवरमें मद्रराजकी कन्या विजयासे विवाह किया। विजयाके गर्भसे सुहोत्र नाम पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ८७ ॥

भीमसेनस्तु पूर्वमेव हिडिम्बायां राक्षस्यां घटोत्कचं नाम पुत्रं जनयामास ॥ ८८ ॥ इत्येते एकादश पाण्डवानां पुत्राः ॥ ८९ ॥ विराटस्य दुहितरमुत्तरां नामाभिमन्युरुपयेमे। तस्यामस्य परासुर्गर्भोऽजायत ॥ ९० ॥ तमुत्सङ्गेन प्रतिजग्राह पृथा नियोगात्पुरुषोत्तमस्य वासुदेवस्य। षाण्मासिकं गर्भमहमेनं जीवयिष्यामीति ॥ ९१ ॥ संजीवयित्वा चैनमुवाच। परिक्षीणे कुले जातो भवत्वयं परिक्षिन्नामेति ॥ ९२ ॥

भीमसेनने पहिले ही राक्षसी हिडिम्बासे घटोत्कच नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ८८ ॥ इस प्रकार पाण्डवोंके यह ग्यारह पुत्र थे ॥ ८९ ॥ अभिमन्युने विराट राजकी पुत्री उत्तरासे विवाह किया। उसके वीर्य और उत्तराके गर्भसे मरा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९० ॥ पुरुषोत्तम वासुदेवने "मैं इस छे मासके बालकको—संतानको जिलाऊंगा" कहके कुंतीसे कहा। उनकी आज्ञाके अनुसार कुन्तीने उस मरे हुए बालकको गोदमें लिया ॥ ९१ ॥ अनंतर उसे जीवित करके बोले— कुलके परिक्षीण होनेपर इस बालकने जन्म लिया है, इस हेतु इसका नाम परिक्षित् हो ॥ ९२ ॥

परिक्षित्तु खलु माद्रवतीं नामोपयेमे। तस्यामस्य जनमेजयः ॥ ९३ ॥ जनमेजयात्तु वपुष्टमायां द्वौ पुत्रौ शतानीकः शङ्कुश्च ॥ ९४ ॥ शतानीकस्तु खलु वैदेहीमुपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे पुत्रोऽश्वमेधदत्तः ॥ ९५ ॥

महाराज! परिक्षित्ने माद्रवतीसे विवाह किया। उससे जनमेजयने जन्म लिया ॥ ९३ ॥ जनमेजयने वपुष्टमा नाम्नी रानीसे शतानीक और शंकु यह दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९४ ॥ शतानीकने वैदेहीसे विवाह किया और उससे अश्वमेधदत्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्येष पूरोर्वंशस्तु पाण्डवानां च कीर्तितः ।
पुरोर्वंशमिमं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ३२७८ ॥

हे नृपते ! पूरु और पाण्डवोंकी यह वंश-कथा कह चुका । पूरुओंकी इस वंशावलीको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें नव्वेवां अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ ३२७८ ॥

: ९१ :

वैशम्पायन उवाच

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो राजासीत्पृथिवीपतिः ।
महाभिष इति ख्यातः सत्यवाक्सत्यविक्रमः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न महाभिष नामसे प्रख्यात सत्यवादी और सत्य विक्रमी एक राजा थे ॥ १ ॥

सोऽश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च ।
तोषयामास देवेन्द्रं स्वर्गं लेभे ततः प्रभुः ॥ २ ॥

उन्होंने सहस्र अश्वमेध और शत संख्यायुक्त वाजपेय यज्ञसे देवाधीश इन्द्रको सन्तुष्ट किया, इससे वह अन्तकालमें स्वर्गको पधारे ॥ २ ॥

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासाञ्चक्रिरे सुराः ।
तत्र राजर्षयो आसन्स च राजा महाभिषः ॥ ३ ॥

एक समय सुरलोग ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे; उस समय अनेक राजर्षि और राजा महाभिष उस स्थानमें उपस्थित थे ॥ ३ ॥

अथ गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।
तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥ ४ ॥

तब नदियोंमें प्रधान गङ्गा उस समय पितामहके निकट उपस्थित हुई, उनका चंद्रके समान शुभ्र वस्त्र पवनने ऊपर उठा दिया ॥ ४ ॥

ततोऽभवन्सुरगणाः सहसावाङ्मुखास्तदा ।
महाभिषस्तु राजर्षिरशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥ ५ ॥

देवताओंने देखते ही मुख नीचे कर लिये, राजर्षि महाभिष निःशङ्क चित्तसे उस नदीकी तरफ ताकते रहे ॥ ५ ॥

अपध्यातो भगवता ब्रह्मणा स महाभिषः ।
उक्तश्च जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ ६ ॥

इस हेतु भगवान् ब्रह्माने महाभिषको शाप देकर कहा, कि तुम मर्त्यलोकमें जन्म लोगे और कुछ काल बाद इस पुण्यलोकमें आओगे ॥ ६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स चिन्तयित्वा नृपतिर्नृपान्सर्वांस्तपोधनान्।
प्रतीपं रोचयामास पितरं भूरिवर्चसम् ॥ ७ ॥

नृपति महाभिषने राजालोग और दूसरे तपोधनोंके बारेमें कुछ काल सोच करके अति वर्चस्वी राजा प्रतीपके वीर्यसे जन्म लेनेकी अभिलाषा की ॥ ७ ॥

महाभिषं तु तं दृष्ट्वा नदी धैर्याच्च्युतं नृपम्।
तमेव मनसाध्यायमुपावर्तत्सरिद्वरा ॥ ८ ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा नदी नृपति महाभिषको उस प्रकार धैर्यसे च्युत हुआ हुआ देखकर उन्हींका मन ही मनमें ध्यान करती हुई चली गयी ॥ ८ ॥

सा तु विध्वस्तवपुषः कश्मलाभिहतौजसः।
ददर्श पथि गच्छन्ती वसून्देवान्दिवौकसः ॥ ९ ॥

उस नदीने जाते हुए पथमें स्वर्गधामवाले देव वसुओंको तेजसे रहित होकर अस्तव्यस्त शरीरसे युक्त देखा ॥ ९ ॥

तथारूपांश्च तान्दृष्ट्वा पप्रच्छ सरितां वरा।
किमिदं नष्टरूपाः स्थ कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ॥ १० ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ भागीरथीने उनको उस दशामें देखकर पूछा, कि तुम क्यों श्री भ्रष्ट हुए हो ? देवोंका मङ्गल तो है न ? ॥ १० ॥

तामूचुर्वसवो देवाः शप्ताः स्मो वै महानदि।
अल्पेऽपराधे संरम्भाद्वसिष्ठेन महात्मना ॥ ११ ॥

उससे वसुओंने कहा— हे महानदी ! महात्मा वसिष्ठने छोटेसे अपराधके कारण क्रोधित होकर हमें शाप दिया है ॥ ११ ॥

विमूढा हि वयं सर्वे प्रच्छन्नमृषिसत्तमम्।
सन्ध्यां वसिष्ठमासीनं तमत्यभिसृताः पुरा ॥ १२ ॥

ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ छिपकर सन्ध्योपासन कर रहे थे, हम मुग्ध चित्त होकरके उनको लांघ गये थे ॥ १२ ॥

तेन कोपाद्वयं शप्ता योनौ संभवतेति ह।
न शक्यमन्यथा कर्तुं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥ १३ ॥

इससे उन्होंने क्रोधयुक्त होकरके हमको शाप दिया है, कि तुम नरयोनिमें जन्म लो। ब्रह्मवादी महर्षिने जो कहा है, उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥ १३ ॥

त्वं तस्मान्मानुषी भूत्वा सूष्व पुत्रान्वसून्भुवि।
न मानुषीणां जठरं प्रविशेमाशुभं वयम् ॥ १४ ॥

अतएव तुम भूमण्डलमें मानवी बनकर हम वसुओंको पुत्ररूपमें उत्पन्न करो। हम मानवीके अशुभ पेटमें नहीं घुसना चाहते ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्युक्ता तान्वसून्गङ्गा तथेत्युक्त्वाब्रवीदिदम् ।
मर्त्येषु पुरुषश्रेष्ठः को वः कर्ता भविष्यति ॥ १५ ॥

गंगाने वसुओंकी बातको सुनकर "तथास्तु" कहकर उनसे पूछा कि मर्त्यलोकमें कौनसा श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारा जन्मदाता होगा ? ॥ १५ ॥

वसव ऊचुः

प्रतीपस्य सुतो राजा शन्तनुर्नाम धार्मिकः ।
भविता मानुषे लोके स नः कर्ता भविष्यति ॥ १६ ॥

वसु बोले– नरलोकमें प्रतीप नामक पृथ्वीनाथके पुत्र शंतनु नामसे एक बडे भारी राजा होंगे, वह हमारे जन्मदाता होंगे ॥ १६ ॥

गङ्गोवाच

ममाप्येवं मतं देवा यथावदत मानवाः ।
प्रियं तस्य करिष्यामि युष्माकं चैतदीप्सितम् ॥ १७ ॥

गंगा बोली– हे निष्पापी देवगण ! तुम मुझसे जैसा कहते हो, मेरा भी वही मत है; मैं उन शंतनु राजाका प्रिय करूंगी, साथ ही तुम्हारा भी प्रिय करूंगी ॥ १७ ॥

वसव ऊचुः

जातान्कुमारान्स्वानप्सु प्रक्षेप्तुं वै त्वमर्हसि ।
यथा नचिरकालं नो निष्कृतिः स्यात्त्रिलोकगे ॥ १८ ॥

वसु बोले– हे तीनों लोकोंमें जानेवाली ! जब हम तुम्हारे पुत्रके स्वरूपमें जन्म लें, तब तुम हमको जलमें फेंकना, ताकि सदा हमको मर्त्यलोकमें रहना न पडे ॥ १८ ॥

गङ्गोवाच

एवमेतत्करिष्यामि पुत्रस्तस्य विधीयताम् ।
नास्य मोघः संगमः स्यात्पुत्रहेतोर्मया सह ॥ १९ ॥

गंगा बोली– तुम जैसा कहते हो, वही करूंगी, पर पुत्र पानेकी अभिलाषावाले शंतनुका मुझसे मिलना व्यर्थ न हो, इस हेतु ऐसा करो, कि मेरा एक पुत्र जीवित रहे ॥ १९ ॥

वसव ऊचुः

तुरीयार्धं प्रदास्यामो वीर्यस्यैकैकशो वयम् ।
तेन वीर्येण पुत्रस्ते भविता तस्य चेप्सितः ॥ २० ॥

वसु बोले– हम अपनेसे हरेक अपने अपने तेजका आठवां भाग देंगे, उस तेजसे तुम्हारी और उनकी अभिलाषानुरूप एक पुत्र उत्पन्न होकर जीवित रहेगा ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स चिन्तयित्वा नृपतिर्नृपान्सर्वांस्तपोधनान्।
प्रतीपं रोचयामास पितरं भूरिवर्चसम् ॥ ७ ॥

नृपति महाभिषने राजालोग और दूसरे तपोधनोंके बारेमें कुछ काल सोच करके अति वर्चस्वी राजा प्रतीपके वीर्यसे जन्म लेनेकी अभिलाषा की ॥ ७ ॥

महाभिषं तु तं दृष्ट्वा नदी धैर्याच्च्युतं नृपम्।
तमेव मनसाध्यायमुपावर्तत्सरिद्वरा ॥ ८ ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा नदी नृपति महाभिषको उस प्रकार धैर्यसे च्युत हुआ हुआ देखकर उन्हींका मन ही मनमें ध्यान करती हुई चली गयी ॥ ८ ॥

सा तु विध्वस्तवपुषः कश्मलाभिहतौजसः।
ददर्श पथि गच्छन्ती वसून्देवान्दिवौकसः ॥ ९ ॥

उस नदीने जाते हुए पथमें स्वर्गधामवाले देव वसुओंको तेजसे रहित होकर अस्तव्यस्त शरीरसे युक्त देखा ॥ ९ ॥

तथारूपांश्च तान्दृष्ट्वा पप्रच्छ सरितां वरा।
किमिदं नष्टरूपाः स्थ कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ॥ १० ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ भागीरथीने उनको उस दशामें देखकर पूछा, कि तुम क्यों श्री भ्रष्ट हुए हो ? देवोंका मङ्गल तो है न ? ॥ १० ॥

तामूचुर्वसवो देवाः शप्ताः स्मो वै महानदि।
अल्पेऽपराधे संरम्भाद्वसिष्ठेन महात्मना ॥ ११ ॥

उससे वसुओंने कहा— हे महानदी ! महात्मा वसिष्ठने छोटेसे अपराधके कारण क्रोधित होकर हमें शाप दिया है ॥ ११ ॥

विमूढा हि वयं सर्वे प्रच्छन्नमृषिसत्तमम्।
सन्ध्यां वसिष्ठमासीनं तमत्यभिसृताः पुरा ॥ १२ ॥

ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ छिपकर सन्ध्योपासन कर रहे थे, हम मुग्ध चित्त होकरके उनको लांघ गये थे ॥ १२ ॥

तेन कोपाद्वयं शप्ता योनौ संभवतेति ह।
न शक्यमन्यथा कर्तुं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥ १३ ॥

इससे उन्होंने क्रोधयुक्त होकरके हमको शाप दिया है, कि तुम नरयोनिमें जन्म लो। ब्रह्मवादी महर्षिने जो कहा है, उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥ १३ ॥

त्वं तस्मान्मानुषी भूत्वा सूष्व पुत्रान्वसून्भुवि।
न मानुषीणां जठरं प्रविशेमाशुभं वयम् ॥ १४ ॥

अतएव तुम भूमण्डलमें मानवी बनकर हम वसुओंको पुत्ररूपमें उत्पन्न करो। हम मानवीके अशुभ पेटमें नहीं घुसना चाहते ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्युक्ता तान्वसून्गङ्गा तथेत्युक्त्वाब्रवीदिदम् ।
मर्त्येषु पुरुषश्रेष्ठः को वः कर्ता भविष्यति ॥ १५ ॥

गंगाने वसुओंकी बातको सुनकर "तथास्तु" कहकर उनसे पूछा कि मर्त्यलोकमें कौनसा श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारा जन्मदाता होगा ? ॥ १५ ॥

वसव ऊचुः

प्रतीपस्य सुतो राजा शन्तनुर्नाम धार्मिकः ।
भविता मानुषे लोके स नः कर्ता भविष्यति ॥ १६ ॥

वसु बोले– नरलोकमें प्रतीप नामक पृथ्वीनाथके पुत्र शंतनु नामसे एक बडे भारी राजा होंगे, वह हमारे जन्मदाता होंगे ॥ १६ ॥

गङ्गोवाच

ममाप्येवं मतं देवा यथावदत मानवाः ।
प्रियं तस्य करिष्यामि युष्माकं चैतदीप्सितम् ॥ १७ ॥

गंगा बोली– हे निष्पापी देवगण ! तुम मुझसे जैसा कहते हो, मेरा भी वही मत है; मैं उन शंतनु राजाका प्रिय करूंगी, साथ ही तुम्हारा भी प्रिय करूंगी ॥ १७ ॥

वसव ऊचुः

जातान्कुमारान्स्वानप्सु प्रक्षेप्तुं वै त्वमर्हसि ।
यथा नचिरकालं नो निष्कृतिः स्यात्त्रिलोकगे ॥ १८ ॥

वसु बोले– हे तीनों लोकोंमें जानेवाली ! जब हम तुम्हारे पुत्रके स्वरूपमें जन्म लें, तब तुम हमको जलमें फेंकना, ताकि सदा हमको मर्त्यलोकमें रहना न पडे ॥ १८ ॥

गङ्गोवाच

एवमेतत्करिष्यामि पुत्रस्तस्य विधीयताम् ।
नास्य मोघः संगमः स्यात्पुत्रहेतोर्मया सह ॥ १९ ॥

गंगा बोली– तुम जैसा कहते हो, वही करूंगी, पर पुत्र पानेकी अभिलाषावाले शंतनुका मुझसे मिलना व्यर्थ न हो, इस हेतु ऐसा करो, कि मेरा एक पुत्र जीवित रहे ॥ १९ ॥

वसव ऊचुः

तुरीयार्धं प्रदास्यामो वीर्यस्यैकैकशो वयम् ।
तेन वीर्येण पुत्रस्ते भविता तस्य चेप्सितः ॥ २० ॥

वसु बोले– हम अपनेसे हरेक अपने अपने तेजका आठवां भाग देंगे, उस तेजसे तुम्हारी और उनकी अभिलाषानुरूप एक पुत्र उत्पन्न होकर जीवित रहेगा ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न संपत्स्यति मर्त्येषु पुनस्तस्य तु संततिः ।
तस्मादपुत्रः पुत्रस्ते भविष्यति स वीर्यवान् ॥ २१ ॥

पर मर्त्यलोकमें उसका वंश नहीं रहेगा, वह तुम्हारी वीर्यवान् संतान निःसंतान होगी ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ते समयं कृत्वा गङ्गया वसवः सह ।
जग्मुः प्रहृष्टमनसो यथासंकल्पमञ्जसा ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ३३०० ॥

वैशम्पायन बोले– वसु गंगाके साथ ऐसी शर्त बांधकर उसी क्षण मनमाने स्थानको प्रसन्न चित्तसे पधारे ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें इक्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ ३३०० ॥

: ९२ :

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रतीपो राजा स सर्वभूतहिते रतः ।
निषसाद समा बह्वीर्गङ्गातीरगतो जपन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद सर्व भूतोंके हितमें रत भूपति प्रतीप बहुवर्षतक गंगाके किनारे जाकर जप करने लगे ॥ १ ॥

तस्य रूपगुणोपेता गङ्गा श्रीरिव रूपिणी ।
उत्तीर्य सलिलात्तस्माल्लोभनीयतमाकृतिः ॥ २ ॥

रूपगुणयुक्त अति लुभानेवाली लक्ष्मी जैसी रूपिणी गंगा उस जलसे निकल कर बाहर आई ॥ २ ॥

अधीयानस्य राजर्षेर्दिव्यरूपा मनस्विनी ।
दक्षिणं शालसङ्काशमूरुं भेजे शुभानना ॥ ३ ॥

सुमुखी, दिव्यरूपा, मनस्विनी वह गंगा पाठ करते हुए राजर्षिके शालवृक्षके समान विशाल दाहिनी जांघ पर जाकर बैठ गई ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रतीपस्तु महीपालस्तामुवाच मनस्विनीम् ।
करवाणि किं ते कल्याणि प्रियं यत्तेऽभिकांक्षितम् ॥ ४ ॥

महीपाल प्रतीप उस मनस्विनीसे बोले, हे कल्याणि ! तुम्हारा अभिलषित कौनसा प्रिय कार्य करूं ? ॥ ४ ॥

स्त्र्युवाच

त्वामहं कामये राजन्कुरुश्रेष्ठ भजस्व माम् ।
त्यागः कामवतीनां हि स्त्रीणां सद्भिर्विगर्हितः ॥ ५ ॥

नारी बोली– कुरुओंमें श्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी कामना करती हूं, अतः तुम मेरा सेवन करो । साधु-लोग इच्छावती कामिनीको त्याग देना दोषयुक्त कहा करते हैं ॥ ५ ॥

प्रतीप उवाच

नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वरवर्णिनि ।
न चासवर्णां कल्याणि धर्म्यं तद्विद्धि मे व्रतम् ॥ ६ ॥

प्रतीप बोले– हे सुंदरी, कल्याणि ! मेरा धर्मयुक्त व्रत यह है, कि मैं कामके वशमें होकर परायी नारी वा असवर्णा स्त्रीसे नहीं मिलता ॥ ६ ॥

स्त्र्युवाच

नाश्रेयस्यास्मि नागम्या न वक्तव्या च कर्हिचित् ।
भज मां भजमानां त्वं राजन्कन्यां वरस्त्रियम् ॥ ७ ॥

नारी फिर बोली– महाराज ! मैं अलक्षणा, मिलनेके अयोग्य वा निंदित स्त्री नहीं हूं; अतः हे राजन् ! तुम्हारी कामना करनेवाली मुझ श्रेष्ठ कन्यासे सम्बन्ध करो ॥ ७ ॥

प्रतीप उवाच

मयातिवृत्तमेतत्ते यन्मां चोदयसि प्रियम् ।
अन्यथा प्रतिपन्नं मां नाशयेद्धर्मविप्लवः ॥ ८ ॥

प्रतीप बोले– तुम जिस प्रिय कार्यके लिये मुझे प्रेरणा दे रही हो मैं उससे निवृत्त हूं, यदि इसक्षण उसका विरुद्धाचरण करूं, तो यह धर्म विरोध मुझको नष्ट कर देगा ॥ ८ ॥

प्राप्य दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्टा वराङ्गने ।
अपत्यानां स्नुषाणां च भीरु विद्ध्येतदासनम् ॥ ९ ॥

विशेष तुमने दक्षिण जांघ पर बैठ कर मेरा आलिङ्गन किया है, अतः हे भीरु वराङ्गने ! पुरुषकी दाहिनी जांघ पुत्र, कन्या और पुत्रवधूका आसन है यह तुम जानो ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सव्यतः कामिनीभागस्त्वया स च विवर्जितः।
तस्मादहं नाचरिष्ये त्वयि कामं वराङ्गने ॥ १० ॥

और बांयी जांघ प्रणयिनीके भोगनेके योग्य है; तुमने उस बांयी उरुको छोड दिया है इसलिए, हे सुन्दर अंगोंवाली। मैं तुमसे काम-युक्त आचरण नहीं कर सकता ॥ १० ॥

स्नुषा मे भव कल्याणि पुत्रार्थे त्वां वृणोम्यहम्।
स्नुषापक्षं हि वामोरु त्वमागम्य समाश्रिता ॥ ११ ॥

हे कल्याणि! क्यों कि तुम आकर मेरी पुत्रवधूके समान दाहिनी जांघ पर बैठी हो, अतः तुम मेरी पुत्रवधू होओ, अतएव अपने पुत्रके निमित्त तुमको चुनता हूँ ॥ ११ ॥

स्त्र्युवाच

एवमप्यस्तु धर्मज्ञ संयुज्येयं सुतेन ते।
त्वद्भक्त्यैव भजिष्यामि प्रख्यातं भारतं कुलम् ॥ १२ ॥

नारी बोली– हे धर्मज्ञ! तुम अपने पुत्रके साथ मेरा विवाह करनेके लिये जो कुछ कह रहे हो, वही होवे, मैं तुम्हारे पुत्रसे ही संयुक्त होऊं। तुम पर भक्ति करके मैं इस प्रसिद्ध भरत वंशकी सेवा करूंगी ॥ १२ ॥

पृथिव्यां पार्थिवा ये च तेषां यूयं परायणम्।
गुणा न हि मया शक्या वक्तुं वर्षशतैरपि।
कुलस्य ये वः प्रस्थितास्तत्साधुत्वमनुत्तमम् ॥ १३ ॥

भूमण्डलमें जितने भूपाल हैं, तुम्हीं उनकी गति हो। तुम्हारे इस वंशके जितने गुण हैं, वह मैं सैकडों वर्षोंमें भी नहीं कह सकती और इस वंशमें जो प्रख्यात थे, उनकी जितनी साधुता और श्रेष्ठता थी, वहभी नहीं कही जा सकती ॥ १३ ॥

स मे नाभिजनज्ञः स्यादाचरेयं च यद्विभो।
तत्सर्वमेव पुत्रस्ते न मीमांसेत कर्हिचित् ॥ १४ ॥

मेरे साथ यह एक शर्त करनी पडेगी, कि मैं जो कुछ करूंगी, तुम्हारा पुत्र उसकी कभी आलोचना नहीं कर सकेगा ॥ १४ ॥

एवं वसन्ती पुत्रे ते वर्धयिष्याम्यहं प्रियम्।
पुत्रैः पुण्यैः प्रियैश्चापि स्वर्गं प्राप्स्यति ते सुतः ॥ १५ ॥

मैं ऐसेही शर्तमें रहकर तुम्हारे पुत्रसे प्रेम बढाऊंगी, तुम्हारे पुत्र प्रणय, प्रियकार्य और पुत्रसे स्वर्गकी प्राप्ति करेंगे ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशंपायन उवाच

तथेत्युक्त्वा तु सा राजंस्तत्रैवान्तरधीयत।
पुत्रजन्म प्रतीक्षंस्तु स राजा तदधारयत् ॥ १६ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन्! गङ्गा ऐसा कहकर उसी स्थानमें लुप्त हो गई। राजाने पुत्रके जन्मकी प्रतीक्षा करके वही निश्चय किया ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु प्रतीपः क्षत्रियर्षभः।
तपस्तेपे सुतस्यार्थे सभार्यः कुरुनन्दन ॥ १७ ॥

उसी समयसे ही क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ कुरुकुलप्रदीप प्रतीप स्त्रीके सहित पुत्रके लिये तप करने लगे ॥ १७ ॥

तयोः समभवत्पुत्रो वृद्धयोः स महाभिषः।
शान्तस्य जज्ञे सन्तानस्तस्मादासीत्स शन्तनुः ॥ १८ ॥

बादमें दम्पतिके बुढापेमें उन महात्मा महाभिषने जन्म लिया, वृद्ध भूपालके शान्तचित्त होने पर उस कालमें उस सन्तानका जन्म हुआ, इस हेतु उनका नाम शंतनु हुआ ॥ १८ ॥

संस्मरंश्चाक्षयाँल्लोकान्विजातान्स्वेन कर्मणा।
पुण्यकर्मकृदेवासीच्छन्तनुः कुरुसत्तम ॥ १९ ॥

कुरुश्रेष्ठ शंतनु निज कर्मसे जीते गए अक्षय पुण्यलोकोंको मनमें स्मरण कर पुण्य कर्मों का ही अनुष्ठान करने लगे ॥ १९ ॥

प्रतीपः शन्तनुं पुत्रं यौवनस्थं ततोऽन्वशात्।
पुरा मां स्त्री समभ्यागाच्छन्तनो भूतये तव ॥ २० ॥

अनंतर राजा प्रतीप अपने पुत्र शंतनुको युवा देखकर बोले, "हे शंतनो! तुम्हारे मंगलके निमित्त पूर्वकालमें एक सुंदरी नारी मेरे पास आई थी ॥ २० ॥

त्वामाव्रजेद्यदि रहः सा पुत्र वरवर्णिनी।
कामयानाभिरूपाढ्या दिव्या स्त्री पुत्रकाम्यया।
सा त्वया नानुयोक्तव्या कासि कस्यासि वाङ्गने ॥ २१ ॥

हे पुत्र! वह अनुपम रूपवती युवती वरवर्णिनी अपनी इच्छासे सर्वत्र गमन करनेवाली दिव्य स्त्री यदि पुत्रकी कामनासे तुम्हारे पास एकान्तमें आवे, तो तुम उससे ऐसा मत पूछना, कि "हे अङ्गने? तुम कौन और किसकी बेटी हो? ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यच्च कुर्यान्न तत्कार्यं प्रष्टव्या सा त्वयानघ।
मन्नियोगाद्भजन्तीं तां भजेथा इत्युवाच तम् ॥ २२ ॥

हे अनघ ! वह कामिनी जो भी कर्म करे वह भी तुम उससे मत पूछना; मैं तुम्हें यह आज्ञा देता हूं, कि इस आज्ञाके अनुसार तुम उस भजनेवाले युवतीको स्वीकार करना।" इस प्रकार प्रतीपने शंतनुसे कहा ॥ २२ ॥

एवं संदिश्य तनयं प्रतीपः शन्तनुं तदा।
स्वे च राज्येऽभिषिच्यैनं वनं राजा विवेश ह ॥ २३ ॥

वैशम्पायन बोले– राजा प्रतीप तब अपने पुत्र शन्तनुको ऐसी आज्ञा देनेके बाद उसे अपने राज्यपर अभिषिक्त करके वनको पधारे ॥ २३ ॥

स राजा शन्तनुर्धीमान्ख्यातः पृथ्व्यां धनुर्धरः।
बभूव मृगयाशीलः सततं वनगोचरः ॥ २४ ॥

पृथ्वीमें श्रेष्ठ धनुर्धारीके रूपमें प्रसिद्ध धीमान् धरतीनाथ शन्तनु सदा वनमें जाकर मृगया करने लगे ॥ २४ ॥

स मृगान्महिषांश्चैव विनिघ्नन्राजसत्तमः।
गङ्गामनुचचारैकः सिद्धचारणसेविताम् ॥ २५ ॥

महाराज ! एक समय वह राजश्रेष्ठ मृग और भैंसका वध करते हुए सिद्धचारणोंसे सेवित गंगाके सामने अकेले घूम रहे थे ॥ २५ ॥

स कदाचिन्महाराज ददर्श परमस्त्रियम्।
जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षात्पद्मामिव श्रियम् ॥ २६ ॥
सर्वानवद्यां सुदतीं दिव्याभरणभूषिताम्।
सूक्ष्माम्बरधरामेकां पद्मोदरसमप्रभाम् ॥ २७ ॥

उसी समय साक्षात् लक्ष्मीके सदृश शरीरसे तेजस्वी कान्तिवती, अनिन्दिता, दिव्य आभूषणोंसे सजी, शोभा देनेवाले दांतोंसे सुशोभित, पद्मोदर सदृश सुन्दरी, पतला वस्त्र पहिने हुए किसी बहुत सुन्दर स्त्रीको उन्होंने देखा ॥ २६–२७ ॥

तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाभूद्विस्मितो रूपसंपदा।
पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत नराधिपः ॥ २८ ॥

उस रमणीको देखकर उसके रूपैश्वर्यसे राजा विस्मित हो गए और हर्षसे उनके रोंगटे खडे हो गए और उनके नेत्र उसे पीकर तृप्त नहीं हुए ॥ २८ ॥

सा च दृष्ट्वैव राजानं विचरन्तं महाद्युतिम्।
स्नेहादागतसौहार्दा नातृप्यत विलासिनी ॥ २९ ॥

और विलासिनी नारी भी राजाको अति उज्ज्वल रूपलावण्यसे चमकते और घूमते देखकर स्नेह और प्रेममें फंसकर अपनी देखनेकी लालसाको भली प्रकार पूर्ण नहीं कर सकी ॥२९॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तामुवाच ततो राजा सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ।
देवी वा दानवी वा त्वं गन्धर्वी यदि वाप्सराः ॥ ३० ॥

राजाने उसको मीठी बातोंसे समझाकर कहा, तुम चाहे देवी वा दानवी अथवा गन्धर्वी वा अप्सरा जो हो ॥ ३० ॥

यक्षी वा पन्नगी वापि मानुषी वा सुमध्यमे ।
या वा त्वं सुरगर्भाभे भार्या मे भव शोभने ॥ ३१ ॥

या पन्नगी, यक्षी वा मानवी जो हो, हे देवोंकी पुत्रीके समान कान्तिवाली शोभने ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम मेरी स्त्री बनो ॥ ३१ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञः सस्मितं मृदु वल्गु च ।
वसूनां समयं स्मृत्वा अभ्यगच्छदनिन्दिता ॥ ३२ ॥
उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा ।
भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा ॥ ३३ ॥

अनिन्दिता गङ्गा राजाकी मृदु और मनोहर वाणी मन्द हंसीके साथ सुनकर वसुओंके नियमको स्मरण करके उनके सामने गयी और बातोंसे भूपतिके चित्तको प्रसन्न करती हुई बोली, कि हे महीपाल ! मैं तुम्हारे वशमें रहनेवाली रानी बनूंगी ॥ ३२–३३ ॥

यत्तु कुर्यामहं राजञ्शुभं वा यदि वाशुभम् ।
न तद्वारयितव्यास्मि न वक्तव्या तथाप्रियम् ॥ ३४ ॥

पर मैं शुभ वा अशुभ जो कुछ भी कार्य करूं, तो भी तुम मुझे रोकने वा अप्रिय बात कहने नहीं पाओगे ॥ ३४ ॥

एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव ।
वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम् ॥ ३५ ॥

हे पृथ्वीपाल ! तुम यदि ऐसे नियमसे मेरे साथ रह सको तो मैं भी तुम्हारे साथ रहूंगी, यदि रोकोगे वा अप्रिय वाणी कहोगे तो निश्चय तुमको त्याग दूंगी ॥ ३५ ॥

तथेति राज्ञा सा तूक्ता तदा भरतसत्तम ।
प्रहर्षमतुलं लेभे प्राप्य तं पार्थिवोत्तमम् ॥ ३६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! राजाके द्वारा "ठीक है" कहकर वह बात मानने पर गङ्गाने उन भूपाल-श्रेष्ठको प्राप्त कर अपार आनन्द लाभ किया ॥ ३६ ॥

आसाद्य शन्तनुस्तां च बुभुजे कामतो वशी ।
न प्रष्टव्येति मन्वानो न स तां किंचिदूचिवान् ॥ ३७ ॥

भूपति शन्तनु भी उसको पाकर उसके वशमें होकर मनमाना भोग करने लगे; पूछना उचित न समझकर उससे कुछ पूछते नहीं थे ॥ ३७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स तस्याः शीलवृत्तेन रूपौदार्यगुणेन च।
उपचारेण च रहस्तुतोष जगतीपतिः ॥ ३८ ॥

वरन् उसकी शीलता, सुव्यवहार, सुन्दरता, उदारता और एकान्तकी सेवासे वह राजा सन्तुष्ट हुए ॥ ३८ ॥

दिव्यरूपा हि सा देवी गङ्गा त्रिपथगा नदी।
मानुषं विग्रहं श्रीमत्कृत्वा सा वरवर्णिनी ॥ ३९ ॥
भाग्योपनतकामस्य भार्येवोपस्थिताभवत्।
शन्तनो राजसिंहस्य देवराजसमद्युतेः ॥ ४० ॥

सुन्दरी दिव्यरूपा त्रिपथगा वह देवी गङ्गा नदी शोभनीय मानवी शरीर धरकर देवराजके समान तेजस्वी नृपसिंह शन्तनुके सौभाग्यसे उनका मनोरथ सफल करती हुई प्रिय पत्नी हुई ॥ ३९–४० ॥

संभोगस्नेहचातुर्यैर्हावलास्यैर्मनोहरैः।
राजानं रमयामास यथा रेमे तथैव सः ॥ ४१ ॥

वह सम्भोग, स्नेह, चतुरता, सुन्दर नाच और मनोहर हाव भावसे राजाका मन बहलाने लगी, राजाभी हर तरहसे उसका मन बहलाने लगे ॥ ४१ ॥

स राजा रतिसक्तत्वादुत्तमस्त्रीगुणैर्हृतः।
संवत्सरानृतून्मासान्न बुबोध न बह्वन्गतान् ॥ ४२ ॥

वह अच्छी स्त्रीके गुणके वशीभूत होकर क्रीडामें आसक्त रहनेसे यह जान नहीं सके, कि अनेक महीने, ऋतु और वर्ष बीत रहे हैं ॥ ४२ ॥

रममाणस्तया सार्धं यथाकामं जनेश्वरः।
अष्टावजनयत्पुत्रांस्तस्याममरवर्णिनः ॥ ४३ ॥

नरेशने उससे यथेच्छ क्रीडा करते हुए उसके गर्भसे क्रमशः देवोंके समान आठ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४३ ॥

जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि भारत।
प्रीणामि त्वाहमित्युक्त्वा गङ्गास्रोतस्यमज्जयत् ॥ ४४ ॥

हे भारत! जब जो पुत्र जन्म लेता था, तभी गङ्गा उसको जलमें डाल देती और कुमारको गंगाके सोतेमें डुबा देती थी, और कहती थी कि तुमको प्रसन्न करती हूं ॥ ४४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य तन्न प्रियं राज्ञः शन्तनोरभवत्तदा ।
न च तां किंचनोवाच त्यागाद्भीतो महीपतिः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार क्रमसे सात पुत्रोंको डाल देने पर गंगाका ऐसा निर्दयी व्यवहार राजाके लिये अति असन्तोषदायक होने लगा, पर इस भयसे, कि कहीं छोडकर चली न जाय, उससे कुछ कहते नहीं थे ॥ ४५ ॥

अथ तामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसितामिव ।
उवाच राजा दुःखार्तः परीप्सन्पुत्रमात्मनः ॥ ४६ ॥

अनन्तर आठवें पुत्रके जन्म लेने पर जब गङ्गा हंस रही थी, उसी समय राजा अति दुःखी होकर अपने पुत्रकी रक्षाके निमित्त उससे बोले ॥ ४६ ॥

मा वधीः कासि कस्यासि किं हिंससि सुतानिति ।
पुत्रघ्नि सुमहत्पापं मा प्रापस्तिष्ठ गर्हिते ॥ ४७ ॥

पुत्रको मत मारो, तुम कौन और किसकी बेटी हो ? क्यों पुत्रको मार डालती हो ? हे पुत्रघात करनेवाली निन्दनीये ! पुत्रको मारना बडा भारी पाप है, अतः तुम यह पाप मत करो ॥ ४७ ॥

स्त्र्युवाच

पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर ।
जीर्णस्तु मम वासोऽयं यथा स समयः कृतः ॥ ४८ ॥

नारी बोली– हे पुत्र-कामी ! पुत्रवान् जनोंमें श्रेष्ठ, तुम्हारे इस पुत्रको नहीं मारूंगी; पर मैंने जो शर्त बांधी थी, उसके अनुसार तुम्हारे पास मेरे रहनेका काल समाप्त हो गया है ॥ ४८ ॥

अहं गङ्गा जह्नुसुता महर्षिगणसेविता ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुषिताहं त्वया सह ॥ ४९ ॥

मैं महर्षियोंसे सेवित जन्हुकी कन्या गंगा हूं, देवताके कार्य साधनेके लिये मैंने तुमसे सहवास किया था ॥ ४९ ॥

अष्टेमे वसवो देवा महाभागा महौजसः ।
वसिष्ठशापदोषेण मानुषत्वमुपागताः ॥ ५० ॥

ये तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी महाभाग अष्टवसु देव वसिष्ठके शापके दोषसे मनुष्य होकर जन्मे थे ॥ ५० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेषां जनयिता नान्यस्त्वदृते भुवि विद्यते।
मद्विधा मानुषी धात्री न चैवास्तीह काचन ॥ ५१ ॥

इस मर्त्यलोकमें तुम्हारे सिवाय उनका जन्मदाता होने योग्य कोई नहीं और मेरे सिवाय कोई उनकी माता होने योग्य भी नहीं है ॥ ५१ ॥

तस्मात्तज्जननीहेतोर्मानुषत्वमुपागता।
जनयित्वा वसूनष्टौ जिता लोकास्त्वयाक्षयाः ॥ ५२ ॥

इस हेतु मैंने वसुओंकी माता होनेके लिये मानवी शरीरको धारण किया था, तुमने अष्टवसुओंको जन्म देकर अक्षयलोक जीत लिया है ॥ ५२ ॥

देवानां समयस्त्वेष वसूनां संश्रुतो मया।
जातं जातं मोक्षयिष्ये जन्मतो मानुषादिति ॥ ५३ ॥

वसुदेवोंसे मैंने यह प्रतिज्ञा की थी, कि जन्म लेते ही मैं उनको मानवी जन्मसे मुक्त करूंगी ॥ ५३ ॥

तत्ते शापाद्विनिर्मुक्ता आपवस्य महात्मनः।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुत्रं पाहि महाव्रतम् ॥ ५४ ॥

इसलिये उनको उस प्रकारसे जलमें डाल दिया था, इससे वे महात्मा आपव ऋषिके शापसे मुक्त हुए, इस समय तुम इस महाव्रत पुत्रको पालो; तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाती हूं ॥५४॥

एष पर्यायवासो मे वसूनां संनिधौ कृतः।
मत्प्रसूतं विजानीहि गङ्गादत्तमिमं सुतम् ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ३३५५ ॥

मैंने तुम्हारे लिये वसुओंके निकट एक पुत्र मांगा था, इससे हरेक वसुके आठवें भागसे इस पुत्रका जन्म हुआ है। सो मेरे प्रसव किये हुए, इस पुत्रको "गंगादत्त" अर्थात् गंगाका दिया हुआ जानना ॥ ५५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें बयानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ ३३५५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ९३ :

शांतनुरुवाच

आपवो नाम को न्वेष वसूनां किं च दुष्कृतम् ।
यस्याभिशापात्ते सर्वे मानुषीं तनुमागताः ॥ १ ॥

शन्तनु बोले– आपव नामके कौनसे ऋषि हैं ? और वसुओंने उनका कौनसा दोष किया था ? जिनके कारण उन्हें यह मानवी शरीर धारण करना पडा ॥ १ ॥

अनेन च कुमारेण गङ्गादत्तेन किं कृतम् ।
यस्य चैव कृतेनायं मानुषेषु निवत्स्यति ॥ २ ॥

और गंगाके द्वारा दिये गए इस पुत्रने कौनसा दोष किया था, कि उस कर्मफलसे वह मानवलोकमें वास करेगा ? ॥ २ ॥

ईशानाः सर्वलोकस्य वसवस्ते च वै कथम् ।
मानुषेषूदपद्यन्त तन्ममाचक्ष्व जाह्नवि ॥ ३ ॥

हे जाह्नवी ! वसुलोग सब लोकोंके ईश्वर हैं, इसलिए मुझे यह बताओ, कि वे मर्त्यलोकमें क्यों उत्पन्न हुए ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

सैवमुक्ता ततो गङ्गा राजानमिदमब्रवीत् ।
भर्तारं जाह्नवी देवी शन्तनुं पुरुषर्षभम् ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– इस प्रकार कही जानेपर देवी जाह्नवी गंगा पुरुषश्रेष्ठ पति राजा शन्तनुसे यह कहने लगी ॥ ४ ॥

यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भरतसत्तम ।
वसिष्ठो नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥ ५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें वरुणदेवने जिनको अपना पुत्र बना लिया था; वह वसिष्ठ नामक मुनि आपव नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ५ ॥

तस्याश्रमपदं पुण्यं मृगपक्षिगणान्वितम् ।
मेरोः पार्श्वे नगेन्द्रस्य सर्वर्तुकुसुमावृतम् ॥ ६ ॥

पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुमेरुके किनारे उनका पवित्र आश्रम था, वह आश्रम मृग पक्षियोंसे गूंजता हुआ और सदा सब ऋतुओंके फूलोंसे घिरा रहता था ॥ ६ ॥

स वारुणिस्तपस्तेपे तस्मिन्भरतसत्तम ।
वने पुण्यकृतां श्रेष्ठः स्वादुमूलफलोदके ॥ ७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ वही वरुणपुत्र मीठे फल मूल और जलयुक्त उस आश्रमके वनमें तप किया करते थे ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दक्षस्य दुहिता या तु सुरभीत्यतिगर्विता।
गां प्रजाता तु सा देवी कश्यपाद्भरतर्षभ ॥ ८ ॥

हे भरतर्षभ ! एक समय अति गर्वित सुरभी नाम्नी देवी दक्षपुत्रीने कश्यपके वीर्यसे एक गाय उत्पन्न की ॥ ८ ॥

अनुग्रहार्थं जगतः सर्वकामदुघां वराम्।
तां लेभे गां तु धर्मात्मा होमधेनुं स वारुणिः ॥ ९ ॥

जगत् पर अनुग्रह करनेके लिए धर्मात्मा वरुण पुत्र वसिष्ठने सब कामधेनुओंमें श्रेष्ठ उस गायको लेकर हवनधेनु बनायी ॥ ९ ॥

सा तस्मिंस्तापसारण्ये वसन्ती मुनिसेविते।
चचार रम्ये धर्म्ये च गौरपेतभया तदा ॥ १० ॥

सुरभीकी कन्या गौ उन मुनियोंसे सेवित, धर्मयुक्त और रमणीय उपवनमें वासकर निर्भय चित्तसे चरने लगी ॥ १० ॥

अथ तद्वनमाजग्मुः कदाचिद्भरतर्षभ।
पृथ्वाद्या वसवः सर्वे देवदेवर्षिसेवितम् ॥ ११ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर किसी समयमें पृथ्वादि देव वसुगण देवर्षिसेवित उस वनमें आए ॥ ११ ॥

ते सदारा वनं तच्च व्यचरन्त समन्ततः।
रेमिरे रमणीयेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १२ ॥

और वे अपनी अपनी स्त्रीके साथ उस वनमें विचरने लगे और रमणीय पर्वत और कुञ्जोंमें इधर उधर क्रीडा करने लगे ॥ १२ ॥

तत्रैकस्य तु भार्या वै वसोर्वासवविक्रम।
सा चरन्ती वने तस्मिन्गां ददर्श सुमध्यमा।
या सा वसिष्ठस्य मुनेः सर्वकामधुगुत्तमा ॥ १३ ॥

हे इन्द्रके समान विक्रमी ! उनमेंसे एक वसुकी सुन्दरी एक स्त्रीने उस वनमें घूमती हुई जो वसिष्ठ मुनिकी सब कामधेनुओंमें उत्तम सुरभीकी कन्या नन्दिनी थी उसको देखा ॥ १३ ॥

सा विस्मयसमाविष्टा शीलद्रविणसंपदा।
दिवे वै दर्शयामास तां गां गोवृषभेक्षण ॥ १४ ॥

शीलसम्पदसे भरी पूरी वह वसुकी स्त्री उसे देखकर आश्चर्य चकित रह गई। हे गौबैल समान आंखवाले ! उसने वह गाय अपने देवको भी दिखाई ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वापीनां च सुदोग्ध्रीं च सुवालधिमुखां शुभाम् ।
उपपन्नां गुणैः सर्वैः शीलेनानुत्तमेन च ॥ १५ ॥

वह गाय सबकामदुघाओंमें श्रेष्ठ, प्रशस्त थनवाली, अच्छी दुधारु, सुन्दर पूंछ और खुरयुक्त, शुभलक्षणा, सुशीला और सर्वगुणवती थी ॥ १५ ॥

एवंगुणसमायुक्तां वसवे वसुनन्दिनी ।
दर्शयामास राजेन्द्र पुरा पौरवनन्दन ॥ १६ ॥

हे पूरुके पुत्र राजेन्द्र ! वसुनन्दिनीने इस प्रकार गुणसे युक्त गायको अपने वसुको दिखाया ॥ १६ ॥

द्यौस्तदा तां तु दृष्ट्वैव गां गजेन्द्रेन्द्रविक्रम ।
उवाच राजंस्तां देवीं तस्या रूपगुणान्वदन् ॥ १७ ॥

हे गजेन्द्रके सामन विक्रमी पौरव–नन्दन ! द्यु नामक वसुने तब उस सुरभीकी पुत्रीको देख कर अपनी प्रेमिका देवीसे उसके रूप और गुणका वर्णन कर कहा ॥ १७ ॥

एषा गौरुत्तमा देवि वारुणेरसितेक्षणे ।
ऋषेस्तस्य वरारोहे यस्येदं वनमुत्तमम् ॥ १८ ॥

हे काली आंखोंवाली तथा कमलके समान सुन्दरी ! जिन ऋषिका यह उत्तम तपोवन है, यह देवी सुरभीकी पुत्री उन वरुणपुत्रकी उत्तम गौ है ॥ १८ ॥

अस्याः क्षीरं पिबेन्मर्त्यः स्वादु यो वै सुमध्यमे ।
दश वर्षसहस्राणि स जीवेत्स्थिरयौवनः ॥ १९ ॥

हे सुन्दरी ! जो मनुष्य इस नंदिनीका मीठा दूध पीयेगा, वह अटल यौवन पाकर दसहजार वर्ष तक जीवित रहेगा ॥ १९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा देवी नृपोत्तम सुमध्यमा ।
तमुवाचानवद्याङ्गी भर्तारं दीप्ततेजसम् ॥ २० ॥

हे नृपोत्तम ! सुमध्यमा अनिन्दित अंगोंवाली सुंदरी देवी वसुपत्नीने यह सुनकर अति तेजस्वी अपने पतिसे कहा ॥ २० ॥

अस्ति मे मानुषे लोके नरदेवात्मजा सखी ।
नाम्ना जिनवती नाम रूपयौवनशालिनी ॥ २१ ॥

मर्त्यलोकमें रूप–यौवनसे युक्त जिनवती नामक एक राजपुत्री मेरी सहेली है ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उशीनरस्य राजर्षेः सत्यसन्धस्य धीमतः।
दुहिता प्रथिता लोके मानुषे रूपसंपदा ॥ २२ ॥

वह धीमान् सत्यप्रेमी राजर्षि उशीनरकी बेटी है, वह अपनी रूप सम्पत्तिके कारण सम्पूर्ण मानव लोकमें प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥

तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां ममेप्सिताम्।
आनयस्वामरश्रेष्ठ त्वरितं पुण्यवर्धन ॥ २३ ॥

हे महाभाग ! उसके लिये मुझे बछडा-सहित इस गौको लेनेकी बडी अभिलाषा है। हे पुण्य बढानेवाले अमर श्रेष्ठ ! शीघ्र गौको लाइये ॥ २३ ॥

यावदस्याः पयः पीत्वा सा सखी मम मानद
मानुषेषु भवत्वेका जरारोगविवर्जिता ॥ २४ ॥

ताकि, हे मानद ! मेरी वह सहेली ही केवल इस गौका दूध पीकर मर्त्यलोकमें जराराहित और रोगवर्जित होगी ॥ २४ ॥

एतन्मम महाभाग कर्तुमर्हस्यनिन्दित।
प्रियं प्रियतरं ह्यस्मान्नास्ति मेऽन्यत्कथंचन ॥ २५ ॥

हे अनिन्दित महाभाग ! मेरा यह प्रियकार्य करना आपका कर्तव्य है, यही काम मेरे लिए अत्यन्त प्रिय है, इससे अधिक प्रिय मेरे लिए कुछ नहीं है ॥ २५ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्या देव्याः प्रियचिकीर्षया।
पृथ्वाद्यैर्भ्रातृभिः सार्धं द्यौस्तदा तां जहार गाम् ॥ २६ ॥

द्युनामक वसुने यह बात सुनकर अपनी प्रिय देवीका प्रिय अनुष्ठान करनेकी इच्छासे पृथु आदि भाइयोंके साथ उस कामधेनुको हर लिया ! ॥ २६ ॥

तया कमलपत्राक्ष्या नियुक्तो द्यौस्तदा नृप।
ऋषेस्तस्य तपस्तीव्रं न शशाक निरीक्षितुम्।
हृता गौः सा तदा तेन प्रपातस्तु न तर्कितः ॥ २७ ॥

हे भूप ! वह उस कालमें अपनी कमलनेत्रा स्त्रीकी बातोंमें आकर उन ऋषिकी कठोर तपस्याका भलीभांति निरीक्षण नहीं कर सका। उसने एकबार भी मनमें विचार नहीं किया कि इस गौके हरनेसे हमारा पतन होगा ॥ २७ ॥

अथाश्रमपदं प्राप्तः फलान्यादाय वारुणिः।
न चापश्यत गां तत्र सवत्सां काननोत्तमे ॥ २८ ॥

अनन्तर वरुणपुत्र ऋषि फल बटोरकर आश्रममें उपस्थित हुए; पर अपने सुहावने काननमें बछडा सहित उस गौको नहीं देखा ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः स मृगयामास वने तस्मिंस्तपोधनः ।
नाध्यगच्छच्च मृगयंस्तां गां मुनिरुदारधीः ॥ २९ ॥
ज्ञात्वा तथापनीतां तां वसुभिर्दिव्यदर्शनः ।
ययौ क्रोधवशं सद्यः शशाप च वसूंस्तदा ॥ ३० ॥

तब उदारधीमान् तपोधन वे ऋषि वनमें इधर उधर ढूंढने लगे । पर देरतक ढूंढने पर भी वे उस गायको नहीं पा सके । आगे दिव्य नेत्रसे जाना, कि वसुओंने गौ हर ली है, इससे उन्होंने उसी क्षण क्रोधयुक्त होकर वसुओंको यह शाप दिया ॥ २९-३० ॥

यस्मान्मे वसवो जह्रुर्गां वै दोग्ध्रीं सुवालधिम् ।
तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ॥ ३१ ॥

चूंकि वसुओंने मेरी सुलक्षणवती, अच्छी पूंछवाली, दुधारु कामधेनुको हर लिया है, इसलिए इसमें सन्देह नहीं, कि वे सब मर्त्यलोकमें जन्म लेंगे ॥ ३१ ॥

एवं शशाप भगवान्वसूंस्तान्मुनिसत्तमः ।
वशं कोपस्य संप्राप्त आपवो भरतर्षभ ॥ ३२ ॥

हे भरतकुलप्रदीप ! मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् आपवने क्रोधके वशमें होकर उन वसुओंको यह शाप दिया ॥ ३२ ॥

शप्त्वा च तान्महाभागस्तपस्येव मनो दधे ।
एवं स शप्तवान्राजन्वसूनष्टौ तपोधनः ।
महाप्रभावो ब्रह्मर्षिर्देवान्रोषसमन्वितः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार उन महाप्रभावशाली, ब्रह्मर्षि तपोधन ऋषिने क्रोधित होकर उन आठ वसुओंको शाप दिया, और इस प्रकार उन्हें शाप देकर उस महाभागने अपना मन फिर तपस्यामें लगाया ॥ ३३ ॥

अथाश्रमपदं प्राप्य तं स्म भूयो महात्मनः ।
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः ॥ ३४ ॥

वसुगण शापके वृत्तान्तसे ज्ञात होकर फिर उन महात्मा ऋषिके आश्रममें आकर उनकी उपासना करने लगे ॥ ३४ ॥

प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः पार्थिवर्षभ ।
न लेभिरे च तस्मात्ते प्रसादमृषिसत्तमात् ।
आपवात्पुरुषव्याघ्र सर्वधर्मविशारदात् ॥ ३५ ॥

हे पृथ्वीपालश्रेष्ठ पुरुषव्याघ्र ! वसुगणने आपवको प्रसन्न करनेके लिये बडी चेष्टा की, उस सब धर्मको जाननेवाले ऋषिश्रेष्ठ आपवसे प्रसन्नता प्राप्त न कर सके ॥ ३५ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उवाच च स धर्मात्मा सप्त यूयं धरादयः।
अनुसंवत्सराच्छापमोक्षं वै समवाप्स्यथ ॥ ३६ ॥

अनन्तर धर्मात्मा ऋषिने कहा, कि मैंने धर आदि तुम सबोंको जो शाप दिया है, वर्षभरमें तुम उस शापसे मुक्त हो सकोगे ॥ ३६ ॥

अयं तु यत्कृते यूयं मया शप्ताः स वत्स्यति।
द्यौस्तदा मानुषे लोके दीर्घकालं स्वकर्मणा ॥ ३७ ॥

पर तुम जिसके लिये शापग्रस्त हुए हो, वह द्युनामक वसु ही केवल निजकर्मके दोषसे मनुष्य-लोकमें दीर्घकालतक वसेगा ॥ ३७ ॥

नानृतं तच्चिकीर्षामि युष्मान्क्रुद्धो यदब्रुवम्।
न प्रजास्यति चाप्येष मानुषेषु महामनाः ॥ ३८ ॥

मैंने क्रोधित होकर तुमसे जो कहा है, उसे मिथ्या नहीं कर सकूंगा। यह महामना द्यु नामक वसु मर्त्यलोकमें सन्तान उत्पादन नहीं करेगा ॥ ३८ ॥

भविष्यति च धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः।
पितुः प्रियहिते युक्तः स्त्रीभोगान्वर्जयिष्यति
एवमुक्त्वा वसून्सर्वाञ्जगाम भगवानृषिः ॥ ३९ ॥

स्त्रीमिलन त्याग देगा, और धर्मात्मा सर्व शास्त्रोंमें पण्डित होकर पिताके प्रिय कार्यमें सदा नियुक्त रहेगा। भगवान् ऋषि सब वसुओंसे यह बात कहकर चले गये ॥ ३९ ॥

ततो मामुपजग्मुस्ते समस्ता वसवस्तदा।
अयाचन्त च मां राजन्वरं स च मया कृतः।
जाताञ्जातान्प्रक्षिपास्मान्स्वयं गङ्गे त्वमम्भसि ॥ ४० ॥

तब सब वसुओंने एकत्र होकर मेरे पास आकर प्रार्थनापूर्वक कहा, कि हे गंगे! हमारे जन्म लेते ही तुम स्वयं हमें जलमें डाल देना। हे राजश्रेष्ठ! शापसे ग्रसित वसुओंको शापसे बचानेके लिये मैंने वैसा किया है ॥ ४० ॥

एवं तेषामहं सम्यक् शप्तानां राजसत्तम।
मोक्षार्थं मानुषाल्लोकाद्यथावत्कृतवत्यहम् ॥ ४१ ॥

हे राजश्रेष्ठ! उन शापग्रस्त वसुओंको मनुष्यलोकसे छुडानेके लिए मैंने यह सब किया है ॥ ४१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अयं शापाद्दषेस्तस्य एक एव नृपोत्तम।
द्यौ राजन्मानुषे लोके चिरं वत्स्यति भारत ॥ ४२ ॥

हे नृपोत्तम भारत ! उन ऋषिके शापसे यह द्यु नामक वसु अकेले दीर्घकालतक मनुष्य-लोकमें बसेंगे ॥ ४२ ॥

एतदाख्याय सा देवी तत्रैवान्तरधीयत।
आदाय च कुमारं तं जगामाथ यथेप्सितम् ॥ ४३ ॥

देवी गंगा यह कहकर उसी स्थानपर अन्तर्हित हो गईं और उस कुमारको लेकर मनमाने स्थानको पधारीं ॥ ४३ ॥

स तु देवव्रतो नाम गाङ्गेय इति चाभवत्।
द्विनामा शंतनोः पुत्रः शंतनोरधिको गुणैः ॥ ४४ ॥

वह द्वि नामक वसु शन्तनुकी सन्तान होकर देवव्रत और गांगेय नामसे प्रसिद्ध हुए और शन्तनुसे भी अधिक गुणशील थे ॥ ४४ ॥

शंतनुश्चापि शोकार्तो जगाम स्वपुरं ततः।
तस्याहं कीर्तयिष्यामि शन्तनोरमितान्गुणान् ॥ ४५ ॥

इधर शन्तनुने शोकयुक्त होकर निज पुरमें प्रवेश किया। हे महाराज ! अब उन महात्मा भारत राजा शन्तनुके अनुपम गुण कहूंगा ॥ ४५ ॥

महाभाग्यं च नृपतेर्भारतस्य यशस्विनः।
यस्येतिहासो द्युतिमान्महाभारतमुच्यते ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ३४०१ ॥

साथ ही यशस्वी भरतवंशी राजा महाभाग्यकी कथा कहूंगा, जिनका देदीप्यमान इतिहास महाभारतके नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें तिरानवां अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ ॥ ३४०१ ॥

: ९४ :

वैशम्पायन उवाच

स एवं शन्तनुर्धीमान्देवराजर्षिसत्कृतः।
धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्रुतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– धीमान् शन्तनु सत्यवादी, सर्व लोकोंमें प्रसिद्ध और देवता तथा राजर्षियोंसे सत्कृत होते थे ॥ १ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दमो दानं क्षमा बुद्धिर्ह्रीर्धृतिस्तेज उत्तमम्।
नित्यान्यासन्महासत्त्वे शन्तनौ पुरुषर्षभे ॥ २ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! महासत्त्व शन्तनुमें दम, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य और उत्तम तेज यह सब गुण सदा विद्यमान थे ॥ २ ॥

एवं स गुणसंपन्नो धर्मार्थकुशलो नृपः
आसीद्भरतवंशस्य गोप्ता साधुजनस्य च ॥ ३ ॥

ऐसे सुगुणशाली, धर्मार्थपरायण वह राजा भरतवंश और साधु जनोंके रक्षक थे ॥ ३ ॥

कम्बुग्रीवः पृथुव्यंसो मत्तवारणविक्रमः।
धर्म एव परः कामादर्थाच्चेति व्यवस्थितः ॥ ४ ॥

वह शङ्खसी ग्रीवायुक्त, बृहत् स्कन्धधारी, उन्मत्त हस्तिवत् पराक्रमी, विक्रमी, काम और अर्थसे धर्म ही को श्रेष्ठ माननेवाले थे ॥ ४ ॥

एतान्यासन्महासत्त्वे शंतनौ भरतर्षभ।
न चास्य सदृशः कश्चित्क्षत्रियो धर्मतोऽभवत् ॥ ५ ॥

हे भरतवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ ! महासत्त्व शन्तनुमें यह सब गुण थे। कोई पृथ्वीपाल धर्मके विषयमें उनके समान नहीं हो सके ॥ ५ ॥

वर्तमानं हि धर्मे स्वे सर्वधर्मविदां वरम्।
तं महीपा महीपालं राजराज्येऽभ्यषेचयन् ॥ ६ ॥

भूपोंने उन राजाको धर्मपथमें वर्तमान और धार्मिकोंमें प्रधान देखकर राजाओंके प्रधान पद पर बैठाया ॥ ६ ॥

वीतशोकभयाबाधाः सुखस्वप्नविबोधनाः।
प्रति भारतगोप्तारं समपद्यन्त भूमिपाः ॥ ७ ॥

वे शोक, भय और बाधाओंसे रहित होकर सुखसे सोते और सुखसे जागते थे, इसलिए भारतवर्षाधिप शन्तनुको उन्होंने भारतका रक्षक समझा ॥ ७ ॥

शंतनुप्रमुखैर्गुप्ते लोके नृपतिभिस्तदा।
नियमात्सर्ववर्णानां ब्रह्मोत्तरमवर्तत ॥ ८ ॥

तब शन्तनु आदि भूपालोंसे प्रजा रक्षित और सुनियमसे होकर भलीभांति स्थापित होनेसे सब वर्णोंका धर्म बढने लगा ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः ।
ब्रह्मक्षत्रानुरक्ताश्च शूद्राः पर्यचरन्विशः ॥ ९ ॥

क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंकी सेवामें, वैश्य लोग क्षत्रियोंकी सेवामें और शूद्र लोग ब्राह्मण और क्षत्रियोंके अनुकूल रहकर वैश्योंकी सेवामें रत रहते थे ॥ ९ ॥

स हास्तिनपुरे रम्ये कुरूणां पुटभेदने ।
वसन्सागरपर्यन्तामन्वशाद्वै वसुंधराम् ॥ १० ॥

राजा शन्तनु कुरुवंशियोंकी रमणीय राजधानी हस्तिनापुरमें बसकर सागर सहित धरतीका शासन करने लगे ॥ १० ॥

स देवराजसदृशो धर्मज्ञः सत्यवागृजुः ।
दानधर्मतपोयोगाच्छ्रिया परमया युतः ॥ ११ ॥

धर्मशील, सत्यवादी और सरल स्वभावी राजा शन्तनु दान, धर्म और तपस्याके बलसे देवराजके समान श्रीमान् थे ॥ ११ ॥

अरागद्वेषसंयुक्तः सोमवत्प्रियदर्शनः ।
तेजसा सूर्यसंकाशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः कोपे क्षमया पृथिवीसमः ॥ १२ ॥

वह क्रोधद्वेष-वर्जित, देखनेमें चन्द्रमासे प्रिय, तेजमें सूर्य सदृश, वेगमें पवन समान, क्रोधमें यमराजकी भांति और क्षमागुणमें पृथ्वीके समान थे ॥ १२ ॥

वधः पशुवराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ।
शंतनौ पृथिवीपाले नावर्तत वृथा नृप ॥ १३ ॥

हे राजन् ! शंतनुके राजा होनेपर पशु, सुअर, मृग, पक्षी आदि जीव फिजूल नहीं मारे जाते थे ॥ १३ ॥

धर्मब्रह्मोत्तरे राज्ये शंतनुर्विनयात्मवान् ।
समं शशास भूतानि कामरागविवर्जितः ॥ १४ ॥

वह राज्यको अहिंसा रूपी ब्रह्मधर्मसे अलंकृत करके स्वयं काम क्रोधसे रहित, नम्र और यत्नशील होकर विना पक्षपातके सब प्राणियोंपर शासन करते थे ॥ १४ ॥

देवर्षिपितृयज्ञार्थमारभ्यन्त तदा क्रियाः ।
न चाधर्मेण केषांचित्प्राणिनामभवद्वधः ॥ १५ ॥

उन दिनों देव–यज्ञ, ऋषियज्ञ और पितृयज्ञकी क्रिया होने लगीं, कोई अधर्मसे किसी जीवको मारता नहीं था ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

असुखानामनाथानां तिर्यग्योनिषु वर्तताम्।
स एव राजा भूतानां सर्वेषामभवत्पिता ॥ १६ ॥

वह राजा दीन, दुःखी, अनाथ और पक्षी योनिमें जन्म लिये हुए सब जीवोंके पिताके समान थे ॥ १६ ॥

तस्मिन्कुरुपतिश्रेष्ठे राजराजेश्वरे सति।
श्रिता वागभवत्सत्यं दानधर्माश्रितं मनः ॥ १७ ॥

और उस कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ शंतनुके सम्राट् होनेपर वाणीने सत्यका तथा मनने दान-धर्मका आश्रय लिया ॥ १७ ॥

स समाः षोडशाष्टौ च चतस्रोऽष्टौ तथापराः।
रतिमप्राप्नुवन्स्त्रीषु बभूव वनगोचरः ॥ १८ ॥

और वह १६+८+४+८ = ३६ वर्ष तक स्त्री सम्भोगादि विषय सुख न प्राप्त होनेके कारण वनको गए ॥ १८ ॥

तथारूपस्तथाचारस्तथावृत्तस्तथाश्रुतः।
गाङ्गेयस्तस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना देवव्रतो वसुः ॥ १९ ॥

गंगाके गर्भसे जन्मे वसुरूप उनके पुत्र देवव्रत सुन्दरता, आचार चरित्र और विद्या सब विषयमें शंतनुके सदृश ही थे ॥ १९ ॥

सर्वास्त्रेषु स निष्णातः पार्थिवेष्वितरेषु च।
महाबलो महासत्त्वो महावीर्यो महारथः ॥ २० ॥
स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन्नदीम्।
भागीरथीमल्पजलां शंतनुर्दृष्टवान्नृपः ॥ २१ ॥

सब अन्य राजाओंके बीचमें महाबलवीर्यवान्, महासत्ववान्, महारथी और गदादि सब अस्त्रोंके चलानेमें निपुण नृपवर शन्तनुने एक समय एक मृगको बींधकर उसका पीछा करते हुए हुए नदी भागीरथी गंगाको स्वल्प जलयुक्त देखा ॥ २०–२१ ॥

तां दृष्ट्वा चिन्तयामास शंतनुः पुरुषर्षभः।
स्यन्दते किं न्वियं नाद्य सरिच्छ्रेष्ठा यथा पुरा ॥ २२ ॥

पुरुषश्रेष्ठ शन्तनु यह देखकर सोचने लगे, कि नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा आज पहिलेके समान क्यों नहीं बह रही है? ॥ २२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो निमित्तमन्विच्छन्ददर्श स महामनाः ।
कुमारं रूपसंपन्नं बृहन्तं चारुदर्शनम् ॥ २३ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम् ।
कृत्स्नां गङ्गां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम् ॥ २४ ॥

तब उसका कारण ढूंढते हुए उस महात्मा राजाने दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करते हुए, देव इन्द्रके समान तेजस्वी तथा तीक्ष्ण शस्त्रोंसे सारी गंगाको रोककर खडे हुए बहुत बडे, अति सुन्दर और रूपसे युक्त एक कुमारको देखा ॥ २३-२४ ॥

तां शरैरावृतां दृष्ट्वा नदीं गङ्गां तदन्तिके ।
अभवद्विस्मितो राजा कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ॥ २५ ॥

राजाने अपने पास ही में नदी गंगाको बाणोंसे रुकी हुई देखकरके बालकका अलौकिक आश्चर्य कार्य निहार कर आश्चर्यचकित हो गए ॥ २५ ॥

जातमात्रं पुरा दृष्टं तं पुत्रं शंतनुस्तदा ।
नोपलेभे स्मृतिं धीमानभिज्ञातुं तमात्मजम् ॥ २६ ॥

धीमान् शन्तनुने पहिले जन्मके समय ही पुत्रको देखा था, अतः इस क्षण अपने पुत्रको जानने योग्य कोई लक्षण उन्हें याद नहीं आया ॥ २६ ॥

स तु तं पितरं दृष्ट्वा मोहयामास मायया ।
संमोह्य तु ततः क्षिप्रं तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७ ॥

कुमारने पिताको देखकर ही मायासे उनको मुग्ध कर दिया और उन्हें मुग्ध करके वह कुमार उसी स्थानपर गायब हो गया ॥ २७ ॥

तदद्भुतं तदा दृष्ट्वा तत्र राजा स शंतनुः ।
शङ्कमानः सुतं गङ्गामब्रवीद्दर्शयेति ह ॥ २८ ॥

तब राजा शन्तनु वह आश्चर्य लीला देखकर शङ्कायुक्त होकरके गंगासे बोले, उस अन्तर्हित हुए कुमारको मुझे दिखाओ ॥ २८ ॥

दर्शयामास तं गङ्गा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलंकृतम् ॥ २९ ॥

गंगाने उत्तम रूप धरकर दाहिने हाथमें उस अलंकृत कुमारको पकडकर राजाको दिखाया ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अलंकृतामाभरणैररजोम्बरधारिणीम् ।
दृष्टपूर्वामपि सतीं नाभ्यजानात्स शंतनुः ॥ ३० ॥

निर्मल वस्त्रको भली भांति पहिने हुई और नाना आभूषणोंसे सजी हुई गंगाको पहिले देखने पर भी इस समय उन्होंने नहीं पहिचाना ! ॥ ३० ॥

गङ्गोवाच

यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्वं पुरा मय्यजायिथाः ।
स तेऽयं पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहान्तिकम् ॥ ३१ ॥

तब गंगा बोली– हे पुरुषव्याघ्र नृपते ! पहिले तुमने मेरे गर्भसे जो आठवां पुत्र प्राप्त किया था, यह वही पुत्र है । इसे अपने घर ले जाओ ॥ ३१ ॥

वेदानधिजगे साङ्गान्वसिष्ठादेव वीर्यवान् ।
कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि ॥ ३२ ॥

यह कुमार युद्धमें देवराजके समान, बडा धनुषधारी, अस्त्र विद्यामें दक्ष और वीर्यवान् है; तुम्हारे इस पुत्रने ऋषि वसिष्ठसे छओं अंगके सहित वेदोंको पढ लिया है ॥ ३२ ॥

सुराणां संमतो नित्यमसुराणां च भारत ।
उशना वेद यच्छास्त्रमयं तद्वेद सर्वशः ॥ ३३ ॥

हे भारत ! यह सुरोंको प्रिय है, उसी प्रकार असुरोंको भी प्रिय है । असुरोंके गुरु उशना जिन जिन शास्त्रोंको जानते हैं, इस पुत्रने वह सब पढ लिये हैं ॥ ३३ ॥

तथैवाङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः ।
यद्वेद शास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
तव पुत्रे महाबाहौ साङ्गोपाङ्गं महात्मनि ॥ ३४ ॥

और अंगिराके पुत्र तथा सुरासुरोंके द्वारा नमस्कारके योग्य बृहस्पति जो जो शास्त्र जानते हैं, इस पुत्रने वह सबभी सीख लिये हैं । अंग और उपांगों सहित वे सब शास्त्र महात्मा तथा विशाल भुजाओंवाले तेरे इस पुत्रमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ३४ ॥

ऋषिः परैरनाधृष्यो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
यदस्त्रं वेद रामश्च तदप्यस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ ३५ ॥

शत्रुओंसे अपराजित ऋषि जामदग्न्य राम जिन सब अस्त्रविद्याओंको जानते हैं, इस महाबाहु महात्मा पुत्रमें वह सब विद्यायें अधिष्ठित हुई हैं ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महेष्वासमिमं राजन्राजधर्मार्थकोविदम् ।
मया दत्तं निजं पुत्रं वीरं वीर गृहान्नय ॥ ३६ ॥

हे राजन्, हे वीर ! राजधर्म और अर्थज्ञानमें निपुण महाधनुर्धारी तुम्हारे इस वीर पुत्रको मैं देती हूं, इसे घर लेते जाओ ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शंतनुः ।
भ्राजमानं यथादित्यमाययौ स्वपुरं प्रति ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन बोले— राजा शन्तनु गंगासे ऐसी आज्ञा पाकर सूर्यके समान देदीप्यमान पुत्रको लेकर अपने नगरमें आये ॥ ३७ ॥

पौरवः स्वपुरं गत्वा पुरन्दरपुरोपमम् ।
सर्वकामसमृद्धार्थं मेने आत्मानमात्मना ।
पौरवेषु ततः पुत्रं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३८ ॥

और उन्होंने इन्द्रके नगर ऐसी पुरीमें प्रवेशकर अपनेको अति सम्पद्युक्त और सिद्धकाम समझा । अनन्तर पौरववंशके राज्यको भली प्रकार चलानेके निमित्त पुत्रको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥

पौरवाञ्शंतनोः पुत्रः पितरं च महायशाः ।
राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ ॥ ३९ ॥

हे भरतर्षभ ! महायशस्वी शन्तनुपुत्रने सुचरित्रसे अपने पिता, पौरवगण और प्रजावृन्द सबोंको आनन्दित किया ॥ ३९ ॥

स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः ।
वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः ॥ ४० ॥

अपरिमित विक्रमयुक्त महीपाल शन्तनुने अपने पुत्रके साथ आनन्दमें चार वर्ष व्यतीत किए ॥ ४० ॥

स कदाचिद्वनं यातो यमुनामभितो नदीम् ।
महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गन्धमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

किसी समय उन महीपति शन्तनुने यमुनातटके वनमें जाकर एक प्रकारकी अनजानी अच्छी गन्धका अनुभव किया ॥ ४१ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य प्रभवमन्विच्छन्विचचार समन्ततः।
स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् ॥ ४२ ॥

यह पता लगानेके लिये, कि कहांसे वह गन्ध आ रही थी, चारों ओर घूमघाम कर अन्तमें दाशोंकी एक देवरूपिणी कन्याको देखा ॥ ४२ ॥

तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्यामसितलोचनाम्।
कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि ॥ ४३ ॥

काली आंखवाली उस कन्याको देख करके उन्होंने पूछा, कि हे भीरु ! तुम कौन हो और किसकी बेटी हो ? और क्या करना चाहती हो ॥ ४३ ॥

साब्रवीद्दाशकन्यास्मि धर्मार्थं वाहये तरीम्।
पितुर्नियोगाद्भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः ॥ ४४ ॥

वह बोली– तुम्हारा मङ्गल हो, मैं दाशकन्या हूं, अपने पिता महात्मा दाशराजकी आज्ञासे मैं धर्मके लिये नाव चलाती हूं ॥ ४४ ॥

रूपमाधुर्यगन्धैस्तां संयुक्तां देवरूपिणीम्।
समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शंतनुः ॥ ४५ ॥

राजा शन्तनुने उस दाशकन्याको रूपवती, सुगन्धवती, मधुरतासे मोहिनी और देवरूपिणी देखकर मनही मनमें उसकी कामना की ॥ ४५ ॥

स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा।
पर्यपृच्छत्ततस्तस्याः पितरं चात्मकारणात् ॥ ४६ ॥

तब उसके पिताके पास जाकर उस राजाने वह कन्या मांगी और यह भी पूछा, कि मुझसे विवाह कर देनेमें संमत हो वा नहीं ॥ ४६ ॥

स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम्।
जातमात्रैव मे देया वराय वरवर्णिनी।
हृदि कामस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥ ४७ ॥

तब दाशराजने उस राजाको यह उत्तर दिया कि हे नरेश ! इस सुन्दरीने जब जन्म लिया है, तभी मैंने निश्चय किया था कि यह कन्या किसी वरको दी जायगी, पर मेरे हृदयमें मेरी कोई एक इच्छा है, हे राजन् ! उसे सुनिये ॥ ४७ ॥

यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ।
सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥ ४८ ॥

हे अनघ ! आप सत्यवादी हैं, अतएव यदि इस कन्याको आप मुझसे धर्मपत्नीके रूपमें मांगते हैं, तो आपको मेरी एक शर्त स्वीकार करनी होगी ॥ ४८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समयेन प्रदद्यां ते कन्यामहमिमां नृप ।
न हि मे त्वत्समः कश्चिद्वरो जातु भविष्यति ॥ ४९ ॥

हे नृप ! उसके अंगिकार करनेके बाद ही मैं कन्याको दान कर सकूंगा । मेरे लिये आपके समान सुपात्र फिर कभी नहीं मिलेगा ॥ ४९ ॥

शंतनुरुवाच

श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येयमहं न वा ।
दातव्यं चेत्प्रदास्यामि न त्वदेयं कथंचन ॥ ५० ॥

शन्तनु बोले– हे दाश ! कहो, तुम क्या वर मांगते हो । मैं सुनकर उस पर विचार करूंगा, यदि देने योग्य होगा तो दूंगा और न देने योग्य होगा तो नहीं दूंगा ॥ ५० ॥

दाश उवाच

अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपतिः ।
त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव ॥ ५१ ॥

दाशराजने कहा– हे पृथ्वीनाथ ! इस कन्याके गर्भसे जो पुत्र जन्म ले वही पुत्र आपके पीछे पृथ्वीका पालक राजा हो; अपने बाद उसीको अभिषिक्त करना होगा, दूसरे पुत्रको आप अभिषिक्त नहीं कर सकेंगे ॥ ५१ ॥

वैशंपायन उवाच

नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शंतनुः ।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥ ५२ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! राजा शन्तनु शरीरमें उत्पन्न कठिन कामपीडासे जलने परभी दाशको वह वर देनेको तैय्यार नहीं हुए ॥ ५२ ॥

स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः ।
प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं शोकोपहतचेतनः ॥ ५३ ॥

वह राजा उस दाश–कन्याके बारेमें सोचते हुए शोकसे चेतना रहित होकर हस्तिनापुरको लौट गये ॥ ५३ ॥

ततः कदाचिच्छोचन्तं शंतनुं ध्यानमास्थितम् ।
पुत्रो देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

थोडे समयके बाद एक समय उनके पुत्र देवव्रत शोकसे विह्वल होकर विचारमें मग्न अपने पिता शन्तनुके पास आकर यह वाक्य बोले ॥ ५४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सर्वतो भवतः क्षेमं विधेयाः सर्वपार्थिवाः।
तत्किमर्थमिहाभीक्ष्णं परिशोचसि दुःखितः।
ध्यायन्निव च किं राजन्नाभिभाषसि किंचन ॥ ५५ ॥

सब राजालोग सबप्रकारसे आपका कुशल करते हैं, इसपरभी आप यहां बैठे बैठे क्यों दुःखित होकर शोक प्रगट कर रहे हैं और किसी ध्यानमें रत रहते हुए आप मुझसे कुछ बोलते क्यों नहीं ? ॥ ५५ ॥

एवमुक्तः स पुत्रेण शंतनुः प्रत्यभाषत।
असंशयं ध्यानपरं यथा मात्थ तथास्म्युत ॥ ५६ ॥

पुत्रकी यह बात सुनकर शन्तनु बोले– इसमें सन्देह नहीं है, कि मैं सोचमें पडा हुआ हूं। तुम जैसे कह रहे हो, वैसा ही मैं शोकाकुल हूँ ॥ ५६ ॥

अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत।
अनित्यता च मर्त्यानामतः शोचामि पुत्रक ॥ ५७ ॥

ऐ भरत–कुल प्रदीप ! हमारे इस महत् वंशमें तुम्हीं एकमात्र सन्तान हो, मनुष्यकी अनित्यता समझ कर मैं शोकयुक्त हूं ॥ ५७ ॥

कथंचित्तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः ॥ ५८ ॥

हे गाङ्गेय ! यदि किसी प्रकार तुम पर कोई विपत्ति आ जाए तो हमारा वंश ही नहीं रहेगा, पर इसमें सन्देह नहीं, तुम एक पुत्र ही मेरे सैंकडों पुत्रोंसे श्रेष्ठ हो ॥ ५८ ॥

न चाप्यहं वृथा भूयो दारान्कर्तुमिहोत्सहे।
सन्तानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते।
अनपत्यतैकपुत्रत्वमित्याहुर्धर्मवादिनः ॥ ५९ ॥

इस हेतु मैं फिर विवाह करनेकी इच्छाभी नहीं करता, केवल वंशकी रक्षाके लिये इतनीही कामना करता हूं, कि तुम कुशलसे रहो; धर्मवादी लोग कहा करते हैं कि जिसके एक ही पुत्र है, वह निःसन्तानके समान ही है ॥ ५९ ॥

अग्निहोत्रं त्रयो वेदा यज्ञाश्च सहदक्षिणाः।
सर्वाण्येतान्यपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६० ॥

अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और दक्षिणायुक्त यज्ञ इन सबके अक्षय फल देनेवाले होने पर भी ये सब पुत्रके सोलह भागके एकांशके भी तुल्य नहीं होते ॥ ६० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमेव मनुष्येषु स्याच्च सर्वप्रजास्वपि ।
यदपत्यं महाप्राज्ञ तत्र मे नास्ति संशयः ।
एषा त्रयी पुराणानामुत्तमानां च शाश्वती ॥ ६१ ॥

और पुत्र जिस प्रकार मनुष्यके लिये कल्याण करनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध है, उस प्रकार पशु पक्षी आदि दूसरे जीवोंके लिये भी प्रसिद्ध हुआ है । हे महाप्राज्ञ ! इसमें मुझे संशय नहीं है, कि पुत्रसे स्वर्ग प्राप्त होता है । सब पुराणोंकी जड और देवोंके प्रमाणभूत जो वेद हैं उससे सदा इसका प्रमाण मिलता है ॥ ६१ ॥

त्वं च शूरः सदामर्षी शस्त्रनित्यश्च भारत ।
नान्यत्र शस्त्रात्तस्मात्ते निधनं विद्यतेऽनघ ॥ ६२ ॥

हे भारत ! तुम शूर, क्रोधयुक्त और अस्त्र चलानेमें सदा रत रहते हो, इससे, हे अनघ ! शस्त्रके अलावा और किसीसे तुम्हारे नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है ॥ ६२ ॥

सोऽस्मि संशयमापन्नस्त्वयि शान्ते कथं भवेत् ।
इति ते कारणं तात दुःखस्योक्तमशेषतः ॥ ६३ ॥

तुम्हारे मर जानेपर वंशकी कैसी गति होगी ? इसीलिये मैं संशययुक्त हूं । हे तात ! तुमको अपने दुःखके सम्पूर्ण कारण बता दिए हैं ॥ ६३ ॥

ततस्तत्कारणं ज्ञात्वा कृत्स्नं चैवमशेषतः ।
देवव्रतो महाबुद्धिः प्रययावनुचिन्तयन् ॥ ६४ ॥

महाबुद्धि देवव्रत राजासे वह सब कारण ज्ञात होनेपर सोचते हुए चले गए ॥ ६४ ॥

अभ्यगच्छत्तदैवाशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम् ।
तमपृच्छत्तदाभ्येत्य पितुस्तच्छोककारणम् ॥ ६५ ॥

उसी क्षण पिताका हित करनेवाले वृद्ध मन्त्रीके पास गए और देवव्रतने उससे पिताके उस शोकके कारणका वृत्तान्त पूछा ॥ ६५ ॥

तस्मै स कुरुमुख्याय यथावत्परिपृच्छते ।
वरं शशंस कन्यां तामुद्दिश्य भरतर्षभ ॥ ६६ ॥

हे भरतर्षभ ! इस कुरुराजके पुत्र देवव्रतके यथावत् पूछनेपर उस गन्धवती कन्याके लिये दाशराजने जो वर मांगा था, मन्त्रीने वह कह सुनाया ॥ ६६ ॥

ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा ।
अभिगम्य दाशराजानं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ॥ ६७ ॥

तब देवव्रतने वृद्ध क्षत्रियोंसे मिलकर स्वयं दाशराजके पास जाकरके पिताके लिये वह कन्या मांगी ॥ ६७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत्प्रतिपूज्य च ।
अब्रवीच्चैनमासीनं राजसंसदि भारत ॥ ६८ ॥

दाशराजने विधिपूर्वक पूजकर उनका स्वागत किया, और हे भारत ! देवव्रतके उस दाशराजकी सभामें बैठनेपर दाशराजने उनसे कहा ॥ ६८ ॥

त्वमेव नाथः पर्याप्तः शंतनो पुरुषर्षभ ।
पुत्रः पुत्रवतां श्रेष्ठः किं नु वक्ष्यामि ते वचः ॥ ६९ ॥

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! आप पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ और शन्तनुके एक मात्र पुत्र हैं; आप सबमें प्रधान हैं, अतः आपसे क्या कहूँ ॥ ६९ ॥

को हि संबन्धकं श्लाघ्यमीप्सितं यौनमीदृशम् ।
अतिक्रामन्न तप्येत साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ७० ॥

कन्याका पिता यदि साक्षात् देवराज इन्द्र भी हो, तो वह भी ऐसे मानयुक्त और प्रार्थनीय सम्बन्धको स्वीकार न करनेपर अवश्य ही सन्तापित होगा ॥ ७० ॥

अपत्यं चैतदार्यस्य यो युष्माकं समो गुणैः ।
यस्य शुक्रात्सत्यवती प्रादुर्भूता यशस्विनी ॥ ७१ ॥

जो आर्य तुम्हारे सदृश गुणवान् हैं, उन्हींके वीर्यसे इस सत्यवती नाम्नी सुन्दरी यशस्विनी कन्याने जन्म लिया है ॥ ७१ ॥

तेन मे बहुशस्तात पिता ते परिकीर्तितः ।
अर्हः सत्यवतीं वोढुं सर्वराजसु भारत ॥ ७२ ॥

उन्होंने बहुत बार मेरे पास आपके पिताका नाम लेकर कहा था, कि सब राजाओंमें वे ही सत्यवतीसे विवाह करनेके योग्य हैं ॥ ७२ ॥

असितो ह्यपि देवर्षिः प्रत्याख्यातः पुरा मया ।
सत्यवत्या भृशं ह्यर्थी स आसीदृषिसत्तमः ॥ ७३ ॥

ऋषिश्रेष्ठ देवर्षि असितने पहिले इस सत्यवतीके लिये बार बार प्रार्थना की थी, पर मैंने उन्हें भी मना कर दिया ॥ ७३ ॥

कन्यापितृत्वात्किंचित्तु वक्ष्यामि भरतर्षभ ।
बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलं ॥ ७४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मैं कन्याका पिता हूं, इसलिये यह एक बात कहना चाहता हूं, कि इसमें केवल एक बलवान् सपत्न दोष ही मुझे दिखाई देता है ॥ ७४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्यासुरस्य वा।
न स जातु सुखं जीवेत्त्वयि क्रुद्धे परंतप ॥ ७५ ॥

हे शत्रुको पीडा देनेवाले ! आप जिसके विरुद्ध हैं, चाहे वह गन्धर्व हो या असुर तथापि आपके क्रोधित होनेसे वह दीर्घकाल तक सुखसे जी नहीं सकेगा ॥ ७५ ॥

एतावानत्र दोषो हि नान्यः कश्चन पार्थिव।
एतज्जानीहि भद्रं ते दानादाने परंतप ॥ ७६ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! इस विषयमें केवल इतना ही दोष है, दूसरा कोई दोष नहीं है, हे परन्तप ! आपका मंगल होवे, देने और न देनेके विषयमें यही जानीये ॥ ७६ ॥

एवमुक्तस्तु गाङ्गेयस्तद्युक्तं प्रत्यभाषत।
शृण्वतां भूमिपालानां पितुरर्थाय भारत ॥ ७७ ॥

हे भारत ! गंगापुत्र देवव्रत दाशराजकी यह बात सुनकर पिताका हित करनेके लिए सब वृद्ध क्षत्रियोंके सामने बोले ॥ ७७ ॥

इदं मे मतमादत्स्व सत्यं सत्यवतां वर।
नैव जातो न वाजात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत् ॥ ७८ ॥

मेरा यह विचार सुन लो। हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! मैं सत्य कहता हूं ऐसा कोई मनुष्य नहीं जन्मा है, और ना ही आगे जन्म लेगा, जो इस प्रकार कह सके ॥ ७८ ॥

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ॥ ७९ ॥

तुम जो कहते हो, मैं वैसा ही करूंगा, तुम्हारी इस कन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह ही हमारा राजा होगा ॥ ७९ ॥

इत्युक्तः पुनरेवाथ तं दाशः प्रत्यभाषत।
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म राज्यार्थे भरतर्षभ ॥ ८० ॥

हे भरतर्षभ ! उनकी यह बात सुनकर राज्यके लिये कठोर कर्म करनेकी इच्छावाले दाशराजने फिर कहा ॥ ८० ॥

त्वमेव नाथः पर्याप्तः शंतनोरमितद्युतेः।
कन्यायाश्चैव धर्मात्मन्प्रभुर्दानाय चेश्वरः ॥ ८१ ॥

हे धर्मात्मन् ! अति प्रकाशमान् आप शन्तनु पक्षके कर्ता होकर आये हैं पर इस कन्या दानके भी आप ही कर्ता हैं ॥ ८१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इदं तु वचनं सौम्य कार्यं चैव निबोध मे।
कौमारिकाणां शीलेन वक्ष्याम्यहमरिंदम ॥ ८२ ॥

हे शान्तशील ! मेरी एक और बात आपको माननी पडेगी, वह आप सुनिए। हे अरिन्दम ! मैं कन्याके प्रेमसे ही यह कहता हूं ॥ ८२ ॥

यत्त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण।
राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत् ॥ ८३ ॥

हे सत्यधर्मशील ! इन राजाके बीचमें आपने सत्यवतीके निमित्त जो प्रतिज्ञा की, वह आप जैसे महानुभावके योग्य ही है ॥ ८३ ॥

नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन।
तवापत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयो महान् ॥ ८४ ॥

हे महाबाहो ! इस विषयमें मुझे कुछ भी शङ्का नहीं है, कि उसका विपरीत नहीं होगा, पर आपकी जो सन्तान होगी उसके लिये मुझे बडा संशय होता है ॥ ८४ ॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः।
प्रत्यजानात्तदा राजन्पितुः प्रियचिकीर्षया ॥ ८५ ॥

हे राजन् ! सत्य धर्मशील, सत्यव्रतधारी, गङ्गापुत्र देवव्रत दाशराजका अभिप्राय जानकर पिताकी प्रीतिके लिये प्रतिज्ञापूर्वक बोले ॥ ८५ ॥

देवव्रत उवाच

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम।
शृण्वतां भूमिपालानां यद्ब्रवीमि पितुः कृते ॥ ८६ ॥

देवव्रत बोले– हे नृपोत्तम दाशराज ! मैं पिताके लिये इन राजाओंके सम्मुख जो कहता हूं इस मेरे वचनको सुनो ॥ ८६ ॥

राज्यं तावत्पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिप।
अपत्यहेतोरपि च करोम्येष विनिश्चयम् ॥ ८७ ॥

हे राजन् ! मैंने पहिले ही राज्य छोड दिया है, अब पुत्रके बारेमें भी मैं प्रतिज्ञा करता हूं ॥ ८७ ॥

अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति।
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि ॥ ८८ ॥

हे दाश ! आजसे लेकर जीवनतकके लिये ब्रह्मचर्य अवलम्बन करूंगा। इससे मेरे निःसन्तान होने पर भी स्वर्गमें मेरे लोक अक्षय होंगे ॥ ८८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संप्रहृष्टतनूरुहः ।
ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन बोले– धर्मात्मा दाशराज उनकी वह बात सुनकर परमानन्दसे गदगद् होकर बोला कि मैं अपनी कन्या देता हूँ ॥ ८९ ॥

ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवा सर्षिगणास्तथा ।
अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ९० ॥

तब आकाशसे अप्सरागण, देवगण और ऋषिगण गंगानन्दन देवव्रतके वैसे भयानक संकल्पको सुनकर यह कहके, कि "यह भीष्म है" उनपर फूल वर्षाने लगे ॥ ९० ॥

ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम् ।
अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ॥ ९१ ॥

इसके बाद भीष्म पिताके लिये उस यशस्विनी योजनगन्धा कन्यासे बोले, हे माता ! रथपर चढो अब हम अपने घर चलें ॥ ९१ ॥

एवमुक्त्वा तु भीष्मस्तां रथमारोप्य भामिनीम् ।
आगम्य हास्तिनपुरं शंतनोः संन्यवेदयत् ॥ ९२ ॥

भीष्मने यह बात कह कर उस स्त्री गन्धवतीको रथपर चढाकर हस्तिनापुरमें आ करके शन्तनुसे सब कह सुनाया ॥ ९२ ॥

तस्य तद्दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः ।
समेताश्च पृथक्चैव भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ९३ ॥

राजगण भी सब मिल करके और हरेक मनुष्य पृथक् रूपसे उनके उस दुष्कर कार्यकी प्रशंसा करने लगे और बोले– यह भीष्म हैं ॥ ९३ ॥

तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म कृतं भीष्मेण शंतनुः ।
स्वच्छन्दमरणं तस्मै ददौ तुष्टः पिता स्वयम् ॥ ९४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ३४९५ ॥

महाराज शन्तनुने भीष्मके द्वारा किए गए उस दुःसाध्य कार्यको देखकर सन्तुष्ट होकरके पिताने स्वयं उनको इच्छामृत्युका वर दिया ॥ ९४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें चोरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ ३४९५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ९५ :

वैशम्पायन उवाच

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शंतनुर्नृपः।
तां कन्यां रूपसंपन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– विवाह हो जानेके अनन्तर राजा शन्तनुने उस रूपवती कन्या सत्यवतीको अपने घरमें प्रवेश कराया ॥ १ ॥

ततः शान्तनवो धीमान्सत्यवत्यामजायत।
वीरश्चित्राङ्गदो नाम वीर्येण मनुजानति ॥ २ ॥

उनके वीर्य और सत्यवतीके गर्भसे चित्रांगद नामक धीमान् वीर्यवान् पुरुष श्रेष्ठ एक वीर-पुत्रने जन्म लिया ॥ २ ॥

अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां पुनः प्रभुः।
विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ॥ ३ ॥

इसके बाद वीर्यवान् प्रभु शन्तनुने उस सत्यवतीसे विचित्रवीर्य नामक बडे धनुषधारी एक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

अप्राप्तवति तस्मिंश्च यौवनं भरतर्षभ।
स राजा शंतनुर्धीमान्कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ४ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! विचित्रवीर्यके वयःप्राप्त होनेके पहिले ही धीमान राजा शन्तनु कालके वशमें हो गए अर्थात् मर गए ॥ ४ ॥

स्वर्गते शंतनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिंदमम्।
स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः ॥ ५ ॥

शंतनुके स्वर्गको सिधार जानेपर भीष्मने सत्यवतीकी बात मानकर शत्रुको नष्ट करनेमें समर्थ चित्रांगदको राज्य पर अभिषिक्त किया ॥ ५ ॥

स तु चित्राङ्गदः शौर्यात्सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान्।
मनुष्यं न हि मेने स कंचित्सदृशमात्मनः ॥ ६ ॥

चित्रांगदने शूरतासे सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया ! वह किसी भी मनुष्यको अपने समान नहीं समझते थे ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं क्षिपन्तं सुरांश्चैव मनुष्यानसुरांस्तथा ।
गन्धर्वराजो बलवांस्तुल्यनामाभ्ययात्तदा ।
तेनास्य सुमहद्युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह ॥ ७ ॥

सुर असुर मनुष्योंको पराजित करते हुए उसे देखकर उन्हींके नामवाले गन्धर्वराजने उनके ऊपर आक्रमण कर दिया। तब शन्तनुके पुत्र चित्रांगदके साथ गन्धर्वराज चित्रांगदका कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ ॥ ७ ॥

तयोर्बलवतोस्तत्र गन्धर्वकुरुमुख्ययोः ।
नद्यास्तीरे हिरण्वत्याः समास्तिस्रोऽभवद्रणः ॥ ८ ॥

गंधर्वराज और कुरुराज दोनों महाबली थे; अतः तीन वर्षतक हिरण्वती नदीके तटपर दोनोंका युद्ध हुआ ॥ ८ ॥

तस्मिन्विमर्दे तुमुले शस्त्रवृष्टिसमाकुले ।
मायाधिकोऽवधीद्वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम् ॥ ९ ॥

उसमें शस्त्रवृष्टियुक्त घोर युद्धके अंतमें बडी बडी माया करनेवाले गन्धर्वराजने वीर कुरु-नंदनको मार दिया ॥ ९ ॥

चित्राङ्गदं कुरुश्रेष्ठं विचित्रशरकार्मुकम् ।
अन्ताय कृत्वा गन्धर्वो दिवमाचक्रमे ततः ॥ १० ॥

इस प्रकार कुरुओंमें श्रेष्ठ और विचित्र बाण और धनुषवाले चित्रांगदको मारकर गंधर्व द्युलोकको चला गया ॥ १० ॥

तस्मिन्नृपतिशार्दूले निहते भूरिवर्चसि ।
भीष्मः शान्तनवो राजन्प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥ ११ ॥

अति वर्चस्वी और राजाओंमें शेरके समान चित्रांगदके मार दिये जानेपर शंतनुनंदन भीष्मने उनकी सम्पूर्ण अंतक्रिया सम्पन्न की ॥ ११ ॥

विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयौवनम् ।
कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिञ्चदनन्तरम् ॥ १२ ॥

उसके पश्चात् उन महाभुज भीष्मने यौवन न पाये हुए बालक विचित्रवीर्यको कुरुराज्यके सिंहासन पर अभिषिक्त किया ॥ १२ ॥

विचित्रवीर्यस्तु तदा भीष्मस्य वचने स्थितः ।
अन्वशासन्महाराज पितृपैतामहं पदम् ॥ १३ ॥

महाराज ! विचित्रवीर्य भीष्मकी आज्ञानुसार पितापितामहके राज्यका शासन करने लगे ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स धर्मशास्त्रकुशलो भीष्मं शान्तनवं नृपः।
पूजयामास धर्मेण स चैनं प्रत्यपालयत् ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ३५०९ ॥

वह धर्मशास्त्रज्ञ शन्तनुपुत्र विचित्रवीर्य भीष्मको जिस प्रकार पूजते थे, भीष्मने भी वैसे ही धर्मानुसार उनका पालन किया ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें पिच्चानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥ ३५०९ ॥

: ९६ :

वैशम्पायन उवाच

हते चित्राङ्गदे भीष्मो बाले भ्रातरि चानघ।
पालयामास तद्राज्यं सत्यवत्या मते स्थितः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे कौरव! भ्राता चित्रांगदके मारे जानेपर भ्राता विचित्रवीर्यके बालक होनेके कारण भीष्म सत्यवतीके सलाहके अनुसार राज्य पर शासन करने लगे ॥ १ ॥

संप्राप्तयौवनं पश्यन्भ्रातरं धीमतां वरम्।
भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाकरोन्मतिम् ॥ २ ॥

अनन्तर भीष्मने बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विचित्रवीर्यको यौवन प्राप्त होते देखकर उनके विवाहका विचार किया ॥ २ ॥

अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरःसमाः।
शुश्राव सहिता राजन्वृण्वतीर्वै स्वयं वरम् ॥ ३ ॥

हे राजन्! तब उन्होंने सुना, कि काशीराजकी अप्सराके समान तीन कन्याएं एक साथ स्वयं वर चुननेवाली हैं ॥ ३ ॥

ततः स रथिनां श्रेष्ठो रथेनैकेन वर्मभृत्।
जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रति ॥ ४ ॥

तब महारथी कवचधारी रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म माताकी आज्ञा लेकर एक रथपर चढकर वाराणसी पुरी गये ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र राज्ञः समुदितान्सर्वतः समुपागतान् ।
ददर्श कन्यास्ताश्चैव भीष्मः शंतनुनन्दनः ॥ ५ ॥

उन्होंने वहां पहुंचकर देखा, कि सब ओरसे राजालोग आकर उपस्थित हुए हैं, और उनके बीचमें स्वयंवरकी अभिलाषिणी वे तीन कन्याएं भी विद्यमान हैं ॥ ५ ॥

कीर्त्यमानेषु राज्ञां तु नाम स्वथ सहस्रशः ।
भीष्मः स्वयं तदा राजन्वरयामास ताः प्रभुः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! हजारों राजाओंके नाम कहे जानेपर भीष्मने स्वयं उन तीन कन्याओंको चुना ॥ ६ ॥

उवाच च महीपालान्राजञ्जलदनिःस्वनः ।
रथमारोप्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ७ ॥

और, हे राजन् ! प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ उस भीष्मने उन कन्याओंको अपने रथपर चढाकर मेघ जैसी गंभीर आवाजमें कहा ॥ ७ ॥

आहूय दानं कन्यानां गुणवद्भ्यः स्मृतं बुधैः ।
अलंकृत्य यथाशक्ति प्रदाय च धनान्यपि ॥ ८ ॥

बुधोंने कहा है, कि गुणवान् वरको बुलवाकर यथाशक्ति कन्याको अलंकृत करके धनदान-पूर्वक प्रदान करना चाहिए ॥ ८ ॥

प्रयच्छन्त्यपरे कन्यां मिथुनेन गवामपि ।
वित्तेन कथितेनान्ये बलेनान्येऽनुमान्य च ॥ ९ ॥

कुछ लोग दो गौ देकर कन्यादान करते हैं । कोई कोई पण्डित धन देकर कन्यादान करते हैं, कोई कोई बलपूर्वक कन्याको ले जाते हैं, कोई कोई कन्याकी सम्मतिसे विवाह करते हैं ॥ ९ ॥

प्रमत्तामुपयान्त्यन्ये स्वयमन्ये च विन्दते ।
अष्टमं तमथो वित्त विवाहं कविभिः स्मृतम् ॥ १० ॥

कोई कोई प्रमत्ता कन्यासे मिलते हैं, कुछ लोग स्वयं जाकर कन्या प्राप्त करते हैं इस प्रकार विद्वानोंने आठ प्रकारके विवाह बताये हैं ॥ १० ॥

स्वयंवरं तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च ।
प्रमथ्य तु हृतामाहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ॥ ११ ॥

पर राजकुमारियोंके स्वयंवर हीकी प्रशंसा करते हैं और उसमें ही राजा जाते हैं; परन्तु धर्मवादी जन कहते हैं, कि स्वयंवरके स्थलसे विपक्षपक्षको हटाकर बलपूर्वक जो कन्या हरण की जाती हैं, वही श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ता इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः।
ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा।
स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ १२ ॥

इस कारण मैं बलपूर्वक इस स्थानसे कन्याओंको हरकर ले जा रहा हूं, हे राजवृंद ! तुममें जिसकी जितनी शक्ति हो, उसके अनुसार जयके लिये अथवा पराजयके लिए यत्नवान् होओ, हे राजाओ ! मैं युद्धके लिये निश्चित संकल्प किए हुए हूँ ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा महीपालान्काशिराजं च वीर्यवान्।
सर्वाः कन्याः स कौरव्यो रथमारोपयत्स्वकम्।
आमन्त्र्य च स तान्प्रायाच्छीघ्रं कन्याः प्रगृह्य ताः ॥ १३ ॥

वीर्यवान् कौरवनंदन भीष्म काशीराज और दूसरे महीपालोंसे ऐसा कहकर कन्याओंको अपने रथपर चढा करके राजाओंको युद्धार्थ बुलाकर उन कन्याओंको लेकर शीघ्र चले गए ॥१३॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्षिताः।
संस्पृशन्तः स्वकान्बाहून्दशंतो दशनच्छदान् ॥ १४ ॥

तब संपूर्ण राजगण क्रोधित होकर अपनी अपनी भुजाओंपर हाथ फेरते हुए तथा दांतोंसे होंठ काटते हुए उठ खडे हुए ॥ १४ ॥

तेषामाभरणान्याशु त्वरितानां विमुञ्चताम्।
आमुञ्चतां च वर्माणि संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ १५ ॥

और उनमेंसे किसी किसीने तो क्रोधवश ऐसी शीघ्रता की, कि उनके पहिने हुए आभूषण और कवचादि शरीरसे गिरने लगे और वहां एक कोलाहल मच गया ॥ १५ ॥

ताराणामिव संपातो बभूव जनमेजय।
भूषणानां च शुभ्राणां कवचानां च सर्वशः ॥ १६ ॥

उनके वह गिरते हुए, कवच और उज्ज्वल आभूषण ऐसे दिखाई पडे कि मानों तारे गिर रहे हों ॥ १६ ॥

सवर्मभिर्भूषणैस्ते द्राग्भ्राजद्भिरितस्ततः।
सक्रोधामर्षजिह्मभ्रूसकषायदृशस्तथा ॥ १७ ॥
सूतोपक्लृप्तान्रुचिरान्सदश्वोद्यतधूर्गतान्।
रथानास्थाय ते वीराः सर्वप्रहरणान्विताः।
प्रयान्तमेकं कौरव्यमनुसस्रुरुदायुधाः। ॥ १८ ॥

वह सब राजालोग इधर उधर कवच और अलङ्कारोंके गिर जानेसे क्रोध और अमर्षवश भौंहें चढाये और आंखें लाल लाल किए अस्त्रशस्त्र लेकर सारथियोंसे अच्छे घोडे जोते हुए, प्रस्तुत सुन्दर रथोंपर चढके अस्त्रशस्त्र उठाकर चले जाते हुए भीष्मका पीछा करते हुए चले ॥१७-१८॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः समभवद्युद्धं तेषां तस्य च भारत ।
एकस्य च बहूनां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १९ ॥

हे भारत ! तब अकेले भीष्मसे उन सब राजाओंका रोंयें खडा कर देनेवाला घोर युद्ध शुरू हुआ ॥ १९ ॥

ते त्विषून्दशसाहस्रांस्तस्मै युगपदाक्षिपन् ।
अप्राप्तांश्चैव तानाशु भीष्मः सर्वांस्तदाच्छिनत् ॥ २० ॥

राजा लोगोंने एक ही साथ भीष्मपर दश हजार बाण मारे, भीष्मने उसीक्षण अर्थात् उन बाणोंके आ पहुंचनेके पहले पथमें ही उन बाणोंको काट डाला ॥ २० ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे सर्वतः परिवारयन् ।
ववर्षुः शरवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥ २१ ॥

तब सब राजालोग चारों ओरसे उनको घेरकर, जिस प्रकार बादल पर्वतपर बिना रोक टोक जलधारा वर्षाते हैं, उसी प्रकार उनपर बाण बरसाने लगे ॥ २१ ॥

स तद्बाणमयं वर्षं शरैरावार्य सर्वतः ।
ततः सर्वान्महीपालान्प्रत्यविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥

तब भीष्मने बाणजालसे उन सब बाणोंकी वर्षा रोककर तीन तीन बाणोंसे हरेक महीपालको विद्ध किया ॥ २२ ॥

तस्याति पुरुषानन्याल्लाँघवं रथचारिणः ।
रक्षणं चात्मनः संख्ये शत्रवोऽप्यभ्यपूजयन् ॥ २३ ॥

तब रथपर चढे हुए राजालोगोंने शत्रुपक्षी होनेपर भी उनके अलौकिक आश्चर्य कार्य, शीघ्र हाथ चलानेका कौशल और आत्मरक्षाको देखकर उनकी प्रशंसा की ॥ २३ ॥

तान्विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रविशारदः ।
कन्याभिः सहितः प्रायाद्भारतो भारतान्प्रति ॥ २४ ॥

तब शस्त्र चलानेमें निपुण भरतवंशतिलक भीष्म युद्धमें राजाओंको पराजित कर कन्याओंके साथ अपने नगरकी ओर चले ॥ २४ ॥

ततस्तं पृष्ठतो राजञ्शाल्वराजो महारथः ।
अभ्याहनदमेयात्मा भीष्मं शान्तनवं रणे ॥ २५ ॥
वारणं जघने निघ्नन्दन्ताभ्यामपरो यथा ।
वाशितामनुसंप्राप्तो यूथपो बलिनां वरः ॥ २६ ॥

हे राजन् ! जिस प्रकार महाबली हस्तीदलपति किसी हस्तिनीके वशमें आए हुए दूसरे हाथीके दो जंघाको फाड कर हस्तिनीकी ओर दौडता है, उसी प्रकार अमेयात्मा महारथी शाल्वराज युद्धमें शन्तनुपुत्र भीष्मके पीछे दौडे ॥ २५–२६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्त्रीकाम तिष्ठ तिष्ठेति भीष्ममाह स पार्थिवः।
शाल्वराजो महाबाहुरमर्षेणाभिचोदितः ॥ २७ ॥

और वह स्त्रीकामी महाभुज राजा शाल्वराज क्रोधसे प्रेरित होकर "खडा रह, खडा रह" ऐसा कहने लगे ॥ २७ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रो भीष्मः परबलार्दनः।
तद्वाक्याकुलितः क्रोधाद्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २८ ॥

शत्रुबलको मथनेवाले पुरुषव्याघ्र भीष्म उस वाक्यसे आकुलित होकर क्रोधसे धूम रहित अग्निके समान जल उठे ॥ २८ ॥

क्षत्रधर्मं समास्थाय व्यपेतभयसंभ्रमः।
निवर्तयामास रथं शाल्वं प्रति महारथः ॥ २९ ॥

क्षत्रिय धर्ममें सच्चे निष्ठावान् उस महारथीने निडर और स्थिर चित्तवाले होकर अपने रथको शाल्वराजकी ओर मोड दिया ॥ २९ ॥

निवर्तमानं तं दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त भीष्मशाल्वसमागमे ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण राजालोग भीष्मको लौटते देखकर भीष्म और शाल्व दोनोंके युद्धको देखनेके लिये खडे हो गये ॥ ३० ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वाशितान्तरे।
अन्योन्यमभिवर्तेतां बलविक्रमशालिनौ ॥ ३१ ॥

ऋतुमती गौके लिये बलवान् दो बैल जिस प्रकार गर्जना करते हैं, वैसे ही महाबली पराक्रमी दोनों राजा आपसमें विक्रम प्रगट करते हुए एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे ॥३१॥

ततो भीष्मं शान्तनवं शरैः शतसहस्रशः।
शाल्वराजो नरश्रेष्ठः समवाकिरदाशुगैः ॥ ३२ ॥

नरोंमें श्रेष्ठ शाल्वराजने शतसहस्र शीघ्रगामी शरोंसे शन्तनुपुत्र भीष्मको ढक दिया ॥३२॥

पूर्वमभ्यर्दितं दृष्ट्वा भीष्मं शाल्वेन ते नृपाः।
विस्मिताः समपद्यन्त साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥ ३३ ॥

राजालोग पहिले ही शाल्वराजसे भीष्मको मथे जाते देखकर अचरज मानकर शाल्वका बार बार साधुवाद करने लगे ॥ ३३ ॥

लाघवं तस्य ते दृष्ट्वा संयुगे सर्वपार्थिवाः।
अपूजयन्त संहृष्टा वाग्भिः शाल्वं नराधिपाः ॥ ३४ ॥

और शाल्वराजकी रणमें चतुरताको अवलोकन कर प्रसन्नचित्तसे बडी प्रशंसा करने लगे ॥ ३४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्षत्रियाणां तदा वाचः श्रुत्वा परपुरंजयः ।
क्रुद्धः शान्तनवो भीष्मस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत ॥ ३५ ॥

तब शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले शन्तनुपुत्रने क्षत्रियोंकी वह प्रशंसाकी वाणी सुन करके क्रोधयुक्त होकर " ठहर, ठहर " कहकर ललकारा ॥ ३५ ॥

सारथिं चाब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्रैष पार्थिवः ।
यावदेनं निहन्म्यद्य भुजङ्गमिव पक्षिराट् ॥ ३६ ॥

और क्रोधपूर्वक सारथीसे बोले– जहां वह शाल्वराज है, वहां रथको ले चलो; जिस प्रकार गरुड सर्पको नष्ट करता है, उसी प्रकार मैं आज उसका पूर्ण नाश करूंगा ॥३६॥

ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग्योजयामास कौरवः ।
तेनाश्वांश्चतुरोऽमृद्नाच्छाल्वराज्ञो नराधिप ॥ ३७ ॥

उसके बाद कुरुनन्दन भीष्मने वारुणास्त्रको अपने धनुषपर जोडा और उससे शाल्वराजके चारों घोडे नष्ट किये ॥ ३७ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शाल्वराज्ञः स कौरवः ।
भीष्मो नृपतिशार्दूल न्यवधीत्तस्य सारथिम् ।
अस्त्रेण चाप्यथैकेन न्यवधीत्तुरगोत्तमान् ॥ ३८ ॥

और राजाओंमें सिंहके समान भीष्मने अस्त्रसे शाल्वराजके सम्पूर्ण अस्त्र दूरकर उनके सारथीको मार गिराया और एक अस्त्रसे उनके श्रेष्ठ घोडोंको मार गिराया ॥ ३८ ॥

कन्याहेतोर्नरश्रेष्ठ भीष्मः शांतनवस्तदा ।
जित्वा विसर्जयामास जीवन्तं नृपसत्तमम् ।
ततः शाल्वः स्वनगरं प्रययौ भरतर्षभ ॥ ३९ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! शन्तनुनन्दन भीष्मने कन्याओंके लिये इस प्रकार नृपश्रेष्ठ शाल्वराजको जीतकर जीवित ही छोड दिया तब राजा शाल्व अपने नगरको चले गए ॥ ३९ ॥

राजानो ये च तत्रासन्स्वयंवरदिदृक्षवः ।
स्वान्येव तेऽपि राष्ट्राणि जग्मुः परपुरंजय ॥ ४० ॥

शत्रुके नगरोंके विजयी जो सब भूप वहां स्वयंवर देखनेको आये थे, वे भी अपने अपने राज्यको पधारे ॥ ४० ॥

एवं विजित्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः ।
प्रययौ हास्तिनपुरं यत्र राजा स कौरवः ॥ ४१ ॥

महायोद्धा कुरुपुत्र भीष्म इस प्रकार उन कन्याओंको जीतकर हस्तिनापुरमें उस स्थानकी ओर चले जिस स्थानमें कौरवराज विचित्रवीर्य विराज रहे थे ॥ ४१ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोऽचिरेणैव कालेन अत्यक्रामन्नराधिप ।
वनानि सरितश्चैव शैलांश्च विविधद्रुमान् ॥ ४२ ॥

हे नराधिप ! भीष्मने स्वल्पकालमें ही वनों, जलों, पर्वतों और भांति भांतिके वृक्षयुक्त उपवनोंको पार कर लिया ॥ ४२ ॥

अक्षतः क्षपयित्वारीन्संख्येऽसंख्येयविक्रमः ।
आनयामास काश्यस्य सुताः सागरगासुतः ॥ ४३ ॥

और इस प्रकार अत्यन्त विक्रमी गंगाके पुत्र भीष्म शत्रुकुलको नष्टकर रणस्थलसे स्वयं अक्षत होकर काशीराजकी कन्याओंको ले आये ॥ ४३ ॥

स्नुषा इव स धर्मात्मा भगिन्य इव चानुजाः ।
यथा दुहितरश्चैव प्रतिगृह्य ययौ कुरून् ॥ ४४ ॥

वह धर्मशील भीष्म पुत्रवधू, छोटी बहिन और बेटीके समान उन कन्याओंको लेकर कौरवोंके पास आए ॥ ४४ ॥

ताः सर्वा गुणसंपन्ना भ्राता भ्रात्रे यवीयसे ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः ॥ ४५ ॥

पराक्रमसे हरकर लाई गई उन सर्वगुणसम्पन्न कन्याओंको भाई भीष्मने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यको दे दीं ॥ ४५ ॥

सतां धर्मेण धर्मज्ञः कृत्वा कर्मातिमानुषम् ।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे ।
सत्यवत्या सह मिथः कृत्वा निश्चयमात्मवान् ॥ ४६ ॥

वह धर्मज्ञ तथा आत्मवान् भीष्म उक्त प्रकार धर्मानुसार अलौकिक कार्य पूराकर भ्राता विचित्रवीर्यके विवाहके लिये सत्यवतीके साथ विचार करके प्रबन्ध करने लगे ॥ ४६ ॥

विवाहं कारयिष्यन्तं भीष्मं काशिपतेः सुता ।
ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्ध सती तदा ॥ ४७ ॥

विवाह करवानेके समय भीष्मसे उन कन्याओंमेंसे बडी तथा सती साध्वी काशीराजकी कन्या अम्बा यह बोली– ॥ ४७ ॥

मया सौभपतिः पूर्वं मनसाभिवृतः पतिः ।
तेन चास्मि वृता पूर्वमेष कामश्च मे पितुः ॥ ४८ ॥

मैं पहिले सौभराज्यके अधीश शाल्वको मन ही मनमें पति बना चुकी हूं, उन्होंने भी मन ही मनमें मुझको भार्या बनाया है, इसमें मेरे पिताकी इच्छा भी थी ॥ ४८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मया वरयितव्योऽभूच्छाल्वस्तस्मिन्स्वयंवरे ।
एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ ततस्त्वं धर्ममाचर ॥ ४९ ॥

उस स्वयंवर स्थलमें मैं शाल्वहीको वरमाल देती, आप धर्मशील हैं; यह विचारकर धर्मानुसार कार्य करें ॥ ४९ ॥

एवमुक्तस्तया भीष्मः कन्यया विप्रसंसदि ।
चिन्तामभ्यगमद्वीरो युक्तां तस्यैव कर्मणः ॥ ५० ॥

उस कन्याके विप्रोंकी सभामें यह बात कहने पर धर्मज्ञ वीर भीष्म यह सोचने लगे, कि इस विषयमें क्या करना चाहिए ॥ ५० ॥

स विनिश्चित्य धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम् ॥ ५१ ॥

उन्होंने वेदपारग ब्राह्मणोंसे सलाहकरके काशी नरेशकी अम्बा नाम्नी उस बडी कन्याको अपना अभीष्ट पूर्ण करनेकी आज्ञा दी ॥ ५१ ॥

अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५२ ॥

अनन्तर यथाविधि कर्मानुसार अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी काशीराजकी दो छोटी बेटियोंसे विचित्रवीर्यका विवाह कर दिया ॥ ५२ ॥

तयोः पाणिं गृहीत्वा स रूपयौवनदर्पितः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥ ५३ ॥

रूप यौवनयुक्त धर्मात्मा विचित्रवीर्य अम्बिका, अम्बालिकाका पाणिग्रहण कर कामानुवर्ती हो गए ॥ ५३ ॥

ते चापि बृहती श्यामे नीलकुञ्चितमूर्धजे ।
रक्ततुङ्गनखोपेते पीनश्रोणिपयोधरे ॥ ५४ ॥

घुंघराले नीले केशवाली, लाल और बडे बडे नखयुक्त, काली और सुलक्षणा कल्याणी अम्बिका और अम्बालिका दोनों पीननितम्बिनी और पीनपयोधरा थीं ॥ ५४ ॥

आत्मनः प्रतिरूपोऽसौ लब्धः पतिरिति स्थिते ।
विचित्रवीर्यं कल्याणं पूजयामासतुस्तु ते ॥ ५५ ॥

वे कल्याणकारक विचित्रवीर्यको अपने अनुरूप पति पाकर सन्तोषपूर्वक उनकी उपासना करने लगीं ॥ ५५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स चाश्विरूपसदृशो देवसत्त्वपराक्रमः।
सर्वासामेव नारीणां चित्तप्रमथनोऽभवत् ॥ ५६ ॥

अश्विनीकुमारके समान रूपवान् और देववत् विक्रमी विचित्रवीर्य दोनों नारियोंके चित्तोंको मथनेवाले बने ॥ ५६ ॥

ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन्पृथिवीपतिः।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्माणं समपद्यत ॥ ५७ ॥

वह उन नारियोंके साथ लगातार सात वर्षतक विहार कर यौवन कालहीमें भयानक क्षय रोगसे जकड लिए गये ॥ ५७ ॥

सुहृदां यतमानानामाप्तैः सह चिकित्सकैः।
जगामास्तमिवादित्यः कौरव्यो यमसादनम् ॥ ५८ ॥

तब विश्वासी चिकित्सकोंके द्वारा आरोग्यके लिये मित्रोंके यत्न करने पर भी कुरुकुलके प्रदीप विचित्रवीर्य कालके वशमें होकर अस्ताचलको गये और सूर्यके समान अदृश्य हो गए ॥५८॥

प्रेतकार्याणि सर्वाणि तस्य सम्यगकारयत्।
राज्ञो विचित्रवीर्यस्य सत्यवत्या मते स्थितः।
ऋत्विग्भिः सहितो भीष्मः सर्वैश्च कुरुपुङ्गवैः ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ३५६८ ॥

भीष्मने ऋत्विक् और सम्पूर्ण कौरवोंके साथ सत्यवतीकी सलाहके अनुसार राजा विचित्रवीर्यके सब प्रेतकर्म भली प्रकार किये ॥ ५९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें छियानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९६ ॥ ३५६८ ॥

: ९७ :

वैशम्पायन उवाच

ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी।
पुत्रस्य कृत्वा कार्याणि स्नुषाभ्यां सह भारत ॥ १ ॥
धर्मं च पितृवंशं च मातृवंशं च मानिनी।
प्रसमीक्ष्य महाभागा गाङ्गेयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत! अनन्तर महाभागा सत्यवती पुत्र शोकसे विह्वल, दीन और क्षुब्धचित्त होकर पुत्रवधुओंके साथ पुत्रकी और्ध्वदैहिक क्रिया पूरी कर मातृवंश और पितृवंशकी दशाका विचार कर धर्मको दृष्टिमें रखकरके भीष्मसे यह वचन बोली ॥ १–२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शंतनोर्धर्मनित्यस्य कौरव्यस्य यशस्विनः।
त्वयि पिण्डश्च कीर्तिश्च संतानं च प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥

धर्मशील यशस्वी कुरुवंशी नरेश शन्तनुका वंश, कीर्ति और पिण्ड एक तुम्हीं पर निर्भर है ॥३॥

यथा कर्म शुभं कृत्वा स्वर्गोपगमनं ध्रुवम्।
यथा चायुर्ध्रुवं सत्ये त्वयि धर्मस्तथा ध्रुवः ॥ ४ ॥

जिस प्रकार शुभ कर्मसे निश्चय ही स्वर्ग प्राप्त होता है, और सत्यशीलतासे निश्चयही आयु की वृद्धि होती है, उसी प्रकार तुममें निश्चय ही धर्म प्रतिष्ठित है ॥ ४ ॥

वेत्थ धर्मांश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च।
विविधास्त्वं श्रुतीर्वेत्थ वेत्थ वेदांश्च सर्वशः ॥ ५ ॥

हे धर्मज्ञ ! तुम धर्म और नानाप्रकारकी श्रुति और सम्पूर्ण वेदांगोंको संक्षेपमें और विस्तृत रूपसे जानते हो ॥ ५ ॥

व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं च लक्षये।
प्रतिपत्तिं च कृच्छ्रेषु शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ ६ ॥

शुक्र और अङ्गिराके समान तुममें धर्मशीलता और कुलाचार तथा विपत्कालमें विचार करनेका सामर्थ्य भी है ॥ ६ ॥

तस्मात्सुभृशमाश्वस्य त्वयि धर्मभृतां वर।
कार्ये त्वां विनियोक्ष्यामि तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

इसलिये, हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! मैं तुमपर बडा भरोसा रखकर तुमको किसी कार्यमें नियुक्त करूंगी। यह सुनकर तुम उसे पूरा करो ॥ ७ ॥

मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्यवान्सुप्रियश्च ते।
बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारा प्रिय भ्राता मेरा पुत्र वीर्यवान् विचित्रवीर्य पुत्र न होते ही बालपनमें स्वर्गको सिधार गया है ॥ ८ ॥

इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे।
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च भारत ॥ ९ ॥

हे भारत ! तुम्हारे भ्राताकी ये रानियां ये काशिराजकी कन्यायें रूपयौवनयुक्त शुभलक्षणा और पुत्रकामा हैं ॥ ९ ॥

तयोरुत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य नः।
मन्नियोगान्महाभाग धर्मं कर्तुमिहार्हसि ॥ १० ॥

हे महाभाग ! हमारे वंश परम्पराकी रक्षाके लिये मेरी आज्ञासे उन दोनों पुत्रवधुओंमें पुत्रोत्पादन कर धर्मरक्षा करो ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राज्ये चैवाभिषिच्यस्व भारताननुशाधि च।
दारांश्च कुरु धर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ॥ ११ ॥

तुम राज्यमें अभिषिक्त होकर भारत राज्यका शासन करो और धर्मानुसार विवाह कर लो। पितरोंको मत डुबाओ ॥ ११ ॥

तथोच्यमानो मात्रा च सुहृद्भिश्च परंतपः।
प्रत्युवाच स धर्मात्मा धर्म्यमेवोत्तरं वचः ॥ १२ ॥

माता और मित्रोंके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा और परन्तप भीष्मने धर्मसंयुक्त यह उत्तर दिया ॥ १२ ॥

असंशयं परो धर्मस्त्वया मातरुदाहृतः।
त्वमपत्यं प्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वै पराम् ॥ १३ ॥

हे माता! इसमें सन्देह नहीं है, कि तुमने जो कुछ कहा है वह धर्मयुक्त है, पर सन्तानके प्रति मेरी जो प्रतिज्ञा है वह भी तुमको ज्ञात है ॥ १३ ॥

जानासि च यथावृत्तं शुल्कहेतोस्त्वदन्तरे।
स सत्यवति सत्यं ते प्रतिजानाम्यहं पुनः ॥ १४ ॥
परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥ १५ ॥

हे सत्यवती! तुम्हारे शुल्क देनेके समय जो कुछ भी बात हुई थी, वह तुम जानती ही हो, उस सत्यकी रक्षाके लिये फिर भी प्रतिज्ञा करता हूं, कि तीनों लोक और देवलोकका राज्य भी त्याग सकता हूं, अथवा इससे भी अधिक जो कुछ हो, उसको भी छोड सकता हूं, परन्तु सत्यको किसी प्रकार छोड नहीं सकता ॥ १४–१५ ॥

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत् ॥ १६ ॥

भले ही पृथ्वी गन्धको छोड दे, जल अपने रसको छोड दे, ज्योति रूपको छोड दे, पवन स्पर्शगुणको छोड दे ॥ १६ ॥

प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्णताम्।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशः सोमः शीतांशुतां त्यजेत् ॥ १७ ॥

सूर्य अपने प्रकाशको छोड दे, पुच्छलतारा गर्मीको छोड दे, आकाश शब्दको छोड दे, चन्द्रमा ठंडी किरणको छोड दे ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट् ।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥ १८ ॥

इन्द्र विक्रमको त्याग दे और धर्मराज धर्मको त्याग दे परन्तु मैं सत्यको किसी प्रकार त्यागनेको प्रवृत्त नहीं होऊंगा ॥ १८ ॥

एवमुक्ता तु पुत्रेण भूरिद्रविणतेजसा ।
माता सत्यवती भीष्ममुवाच तदनन्तरम् ॥ १९ ॥

बहुत बलको धारण करनेवाले और तेजस्वी पुत्रके ऐसा कहनेपर माता सत्यवतीने उन भीष्मसे कहा ॥ १९ ॥

जानामि ते स्थितिं सत्ये परां सत्यपराक्रम ।
इच्छन्सृजेथास्त्रींल्लोकानन्यांस्त्वं स्वेन तेजसा ॥ २० ॥

हे सत्यपराक्रमी ! सत्यमें जो तुम्हारी परमनिष्ठा है, वह मैं जानती हूं । तुम इच्छा करते हुए अपने तेजसे एक अन्य त्रिलोक भी रच सकते हो ॥ २० ॥

जानामि चैवं सत्यं तन्मदर्थं यदभाषथाः ।
आपद्धर्ममवेक्षस्व वह पैतामहीं धुरम् ॥ २१ ॥

तुमने मेरे निमित्त जो सत्य प्रतिज्ञा की थी, उसे भी मैं जानती हूं; पर तुम इस विपद्की दशापर ध्यान देकर पैतृक वंशका भार वहन करो ॥ २१ ॥

यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत् ।
सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परंतप ॥ २२ ॥

हे परंतप ! ऐसा करो, कि जिससे तुम्हारे कुलका क्रम न टूटे और धर्म भी नष्ट न हो और मित्रवर्ग आनन्दित होवें ॥ २२ ॥

लालप्यमानां तामेवं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।
धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मो भूयोऽब्रवीदिदम् ॥ २३ ॥

विलाप करती हुई, दीन और पुत्र प्राप्तिके लिए अत्यधिक लोभी होनेके कारण धर्मके विरुद्ध बोलनेवाली उस सत्यवतीसे भीष्म फिर यह वचन बोले ॥ २३ ॥

राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मा नः सर्वान्व्यनीनशः ।
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ २४ ॥

हे राज्ञी ! तुम धर्मपर दृष्टि रखो, हम सबोंको नष्ट मत करो, क्योंकि क्षत्रियका असत्य व्यवहार धर्मशास्त्रमें प्रशंसित नहीं होता ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शंतनोरपि संतानं यथा स्यादक्षयं भुवि।
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥ २५ ॥

हे रानी ! आपसे ऐसा सनातन क्षत्रियधर्म कहता हूं, कि जिससे भूमण्डलमें शन्तनुका वंश अक्षय बना रहे ॥ २५ ॥

श्रुत्वा तं प्रतिपद्येथाः प्राज्ञैः सह पुरोहितैः।
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ३५९४ ॥

आप उसे सुनकर लोकयात्रा पर दृष्टि रख करके पुरोहित और उनके साथ, जो सब प्राज्ञ आपद् धर्मार्थ विषयोंमें पण्डित हैं उनसे विचारिये ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सत्तान्नवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥ ३५९४ ॥

: ९८ :

भीष्म उवाच

जामदग्न्येन रामेण पितुर्वधममृष्यता।
क्रुद्धेन च महाभागे हैहयाधिपतिर्हतः।
शतानि दश बाहूनां निकृत्तान्यर्जुनस्य वै ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे महाभागे ! पूर्वकालमें जमदग्निके कुमार रामने पिताके वधसे दुःखी होकर क्रोधसे हैहय देशके अधीश कार्तवीर्यार्जुनको मार डाला। उनके सहस्र भुजाओंको काट डाला ॥ १ ॥

पुनश्च धनुरादाय महास्त्राणि प्रमुञ्चता।
निर्दग्धं क्षत्रमसकृद्रथेन जयता महीम् ॥ २ ॥

उससे भी न शान्त होकर फिर रथपर भूमण्डलको जीतनेके लिये धनुष लेकर महास्त्रोंके प्रयोगसे बारबार क्षत्रियकुलको नष्ट किया ॥ २ ॥

एवमुच्चावचैरस्त्रैर्भार्गवेण महात्मना।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥ ३ ॥

उन महात्मा भृगुके पुत्र परशुरामने नाना अस्त्रोंसे इक्कीस बार धरतीको क्षत्रियोंसे खाली किया ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः संभूय सर्वाभिः क्षत्रियाभिः समन्ततः ।
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्नियतात्मभिः ॥ ४ ॥

तब सब स्थानोंकी सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने जितेन्द्रिय ब्राह्मणोंसे सन्तानें उत्पन्न करायीं ॥ ४ ॥

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ।
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः ।
लोकेऽप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः ॥ ५ ॥

वेदमें यह निश्चित है, कि जो जन विवाह करता है, उसके क्षेत्रमें सन्तान होनेसे उसकी ही होती है, अतएव धर्म जानकरके ही क्षत्रिय पत्नियोंने ब्राह्मणोंसे संसर्ग किया था; इससे ही लोकमें क्षत्रियोंकी फिर उत्पत्ति दिखाई देने लगी ॥ ५ ॥

अथोतथ्य इति ख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा ।
ममता नाम तस्यासीद्भार्या परमसंमता ॥ ६ ॥

पूर्वकालमें उतथ्य नामक बुद्धिमान् एक ऋषि थे; उनकी परम प्रिय ममता नामकी एक भार्या थी ॥ ६ ॥

उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम् ।
बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतां सोऽन्वपद्यत ॥ ७ ॥

एक समय उतथ्यके कनिष्ठ भ्राता देवोंके पुरोहित और परम तेजस्वी बृहस्पति उस ममताके पास गए ॥ ७ ॥

उवाच ममता तं तु देवरं वदतां वरम् ।
अन्तर्वत्नी अहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनारभ्यतामिति ॥ ८ ॥

तब ममता उन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ देवरसे बोली– तुम्हारे बडे भाईसे मैं गर्भवती हुई हूं; इसलिए तुम लौट जाओ ॥ ८ ॥

अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते ।
औतथ्यो वेदमत्रैव षडङ्गं प्रत्यधीयत ॥ ९ ॥

हे महाभाग बृहस्पते ! मेरे गर्भमें स्थित इस उतथ्य मुनिके पुत्रने कोखमें स्थित होकरकेही षडंग वेदका पाठ किया है ॥ ९ ॥

अमोघरेतास्त्वं चापि नूनं भवितुमर्हसि ।
तस्मादेवंगतेऽद्य त्वमुपारमितुमर्हसि ॥ १० ॥

तुम भी निश्चयसे अमोघ वीर्यवान् हो, इसलिये ऐसा होनेके कारण आज तुम लौट जाओ ॥ १० ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्तस्तया सम्यग्बृहत्तेजा बृहस्पतिः।
कामात्मानं तदात्मानं न शशाक नियच्छितुम् ॥ ११ ॥

ममताके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अतिप्रदीप्त तेजस्वी होने पर भी कामके वशमें होकर अपने चित्तको रोक नहीं सके ॥ ११ ॥

संबभूव ततः कामी तया सार्धमकामया।
उत्सृजन्तं तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १२ ॥

और कामना किए जानेके अयोग्य कामिनी पर भी अनुरागी हुए। अनन्तर वीर्य गिरानेमें उद्यत बृहस्पतिसे गर्भमें स्थित बालकने कहा ॥ १२ ॥

भोस्तात कन्यस वदे द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः।
अमोघशुक्रश्च भवान्पूर्वं चाहमिहागतः ॥ १३ ॥

हे तात! आप शान्त होवें; इस गर्भमें दोकी स्थिति संभव नहीं हो सकती। मैं पहिले यहां आया हूं और आप अमोघ वीर्यवान् हैं, अर्थात् आपका वीर्य व्यर्थ जानेवाला नहीं है ॥ १३ ॥

शशाप तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः।
उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः ॥ १४ ॥

यह सुनकर भगवान् ऋषि बृहस्पतिने क्रोधित होकर गर्भमें स्थित उतथ्य पुत्रको डांट कर शाप दिया ॥ १४ ॥

यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति।
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ १५ ॥

क्योंकि सब प्राणियोंके द्वारा चाहे जाने योग्य ऐसे उत्तम कालमें तुमने मुझको ऐसी बात कही है इसलिए तुम दीर्घ अंधेरेमें प्रविष्ट होगे अर्थात् अन्धे होगे ॥ १५ ॥

स वै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत।
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥ १६ ॥

महान् यशवाले बृहस्पतिके इस शापके कारण बृहस्पति सदृश तेजस्वी वह ऋषि जन्म लेकर दीर्घतमा नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १६ ॥

स पुत्राञ्जनयामास गौतमादीन्महायशाः।
ऋषेरुतथ्यस्य तदा सन्तानकुलवृद्धये ॥ १७ ॥

उस महायशस्वीने उतथ्य ऋषिके कुलको बढानेके लिये गौतमादि पुत्र उत्पन्न किये ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोभमोहाभिभूतास्ते पुत्रास्तं गौतमादयः ।
काष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गायां समवासृजन् ॥ १८ ॥

लोभ और मोहसे अभिभूत होकर गौतमादि पुत्रोंने अन्धे बापको बांधकर बेडे पर रख करके गङ्गामें बहा दिया ॥ १८ ॥

न स्यादन्धश्च वृद्धश्च भर्तव्योऽयमिति स्म ते ।
चिन्तयित्वा ततः क्रूराः प्रतिजग्मुरथो गृहान् ॥ १९ ॥

अनन्तर वे कुटिल पुत्र यह सोचते हुए घरको लौटे, कि अब हमें इस अन्धे और बूढेका भरण पोषण नहीं करना पडेगा ॥ १९ ॥

सोऽनुस्रोतस्तदा राजन्प्लवमान ऋषिस्ततः ।
जगाम सुबहून्देशानन्धस्तेनोडुपेन ह ॥ २० ॥

हे राजन् ! तब अन्धे ऋषि बेडे पर गङ्गाके सोतेमें बहते हुए, उस बेडेके द्वारा अनेक देशोंको गए ॥ २० ॥

तं तु राजा बलिर्नाम सर्वधर्मविशारदः ।
अपश्यन्मज्जनगतः स्रोतसाभ्याशमागतम् ॥ २१ ॥

स्नानके लिए गए हुए धार्मिक श्रेष्ठ बलि नामक एक राजाने प्रवाहके कारण निकट आये हुए, उन अन्धे ऋषिको देखा ॥ २१ ॥

जग्राह चैनं धर्मात्मा बलिः सत्यपराक्रमः ।
ज्ञात्वा चैवं स वव्रेऽथ पुत्रार्थं मनुजर्षभ ॥ २२ ॥

हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! सत्य पराक्रमी धर्मशील बलि उन्हें अपने घरमें लाये और उनका सब वृत्तान्त जानकर अपने पुत्रके लिये उनसे प्रार्थना कर बोले ॥ २२ ॥

संतानार्थं महाभाग भार्यासु मम मानद ।
पुत्रान्धर्मार्थकुशलानुत्पादयितुमर्हसि ॥ २३ ॥

हे मानद, महाभाग ! मेरे वंशकी रक्षाके लिये मेरी स्त्रियोंसे धर्म और अर्थमें कुशल सन्तान उत्पन्न कीजिये ॥ २३ ॥

एवमुक्तः स तेजस्वी तं तथेत्युक्तवानृषिः ।
तस्मै स राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां प्राहिणोत्तदा ॥ २४ ॥

तेजस्वी ऋषिने राजाकी यह बात सुनकर "तथास्तु" कहकर उनकी बात मान ली, तब राजाने उनके पास अपनी सुदेष्णा नामकी स्त्रीको भेजा ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अन्धं वृद्धं च तं मत्वा न सा देवी जगाम ह।
स्वां तु धात्रेयिकां तस्मै वृद्धाय प्राहिणोत्तदा ॥ २५ ॥

पर राजरानी सुदेष्णा उनको अन्धा और बूढा देखकर स्वयं उनके पास नहीं गई और उस वृद्धके पास अपनी एक दासीको भेजा ॥ २५ ॥

तस्यां काक्षीवदादीन्स शूद्रयोनावृषिर्वशी।
जनयामास धर्मात्मा पुत्रानेकादशैव तु ॥ २६ ॥

धर्मात्मा जितेन्द्रिय ऋषिने उस शूद्रयोनिमें काक्षीवदादि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये ॥२६॥

काक्षीवदादीन्पुत्रांस्तान्दृष्ट्वा सर्वानधीयतः।
उवाच तमृषिं राजा ममैत इति वीर्यवान् ॥ २७ ॥

तब एकवार वीर्यवान् राजाने काक्षीवदादि पुत्रोंको पढते देखकर उस अन्धे ऋषिसे कहा, कि "यह मेरे पुत्र हैं।" ॥ २७ ॥

नेत्युवाच महर्षिस्तं ममैवैत इति ब्रुवन्।
शूद्रयोनौ मया हीमे जाताः काक्षीवदादयः ॥ २८ ॥

परन्तु महर्षिने कहा, कि यह तुम्हारे पुत्र नहीं हैं; यह मेरे हैं, इन कक्षीवान् आदियोंने मुझसे शूद्र स्त्रीमें जन्म लिया है ॥ २८ ॥

अन्धं वृद्धं च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव।
अवमन्य ददौ मूढा शूद्रां धात्रेयिकां हि मे ॥ २९ ॥

सुदेष्णा नामकी तुम्हारी मूर्ख रानीने मुझको अन्धा और बूढा देखकर, अनादर करके शूद्रा दासीको भेज दिया था ॥ २९ ॥

ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम्।
बलिः सुदेष्णां भार्यां च तस्मै तां प्राहिणोत्पुनः ॥ ३० ॥

तब बलिने फिर उन ऋषिको प्रसन्न किया और अपनी स्त्री सुदेष्णाको उनके पास फिर भेजा ॥ ३० ॥

तां स दीर्घतमाङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवीमथाब्रवीत्।
भविष्यति कुमारस्ते तेजस्वी सत्यवागिति ॥ ३१ ॥

ऋषि दीर्घतमा देवी सुदेष्णाके अङ्गोंको स्पर्श कर बोले– तुम्हारे सत्यशील और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे! ॥ ३१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्राङ्गो नाम राजर्षिः सुदेष्णायामजायत ।
एवमन्ये महेष्वासा ब्राह्मणैः क्षत्रिया भुवि ॥ ३२ ॥
जाताः परमधर्मज्ञा वीर्यवन्तो महाबलाः ।
एतच्छ्रुत्वा त्वमप्यत्र मातः कुरु यथेप्सितम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ २६२७ ॥

तब उस सुदेष्णासे अंग नामका एक राजर्षि पैदा हुआ । इस प्रकार इस पृथ्वीपर बडे बडे धनुर्धारी बहुतेरे क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंके वीर्यसे जन्म लिया जो बहुत धर्मशील, पराक्रमी और महाबलवान् हुए । हे मा ! आप यह सुनकर जो मनमें चाहे करें ॥ ३२-३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥ ३६२७ ॥

: ९९ :

भीष्म उवाच

पुनर्भरतवंशस्य हेतुं सन्तानवृद्धये ।
वक्ष्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे माता ! भरतवंशकी सन्तान बढानेके लिये योग्य उपाय बताता हूं, इस मेरे कथनको सुनो ॥ १ ॥

ब्राह्मणो गुणवान्कश्चिद्धनेनोपनिमन्त्र्यताम् ।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत्प्रजाः ॥ २ ॥

किसी गुणवान् ब्राह्मणको धन देकर निमंत्रित कीजिए जो विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करे ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सत्यवती भीष्मं वाचा संसज्जमानया ।
विहसन्तीव सव्रीडमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले– तब भीष्मके इसप्रकारके कथनसे सत्यवती लज्जासे हंसती हुई भीष्मसे बोली ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
विश्वासात्ते प्रवक्ष्यामि सन्तानाय कुलस्य च।
न ते शक्यमनाख्यातुमापद्धीयं तथाविधा ॥ ४ ॥

हे महाभुज, भारत! तुम जो कहते हो, सब ठीक है। परन्तु तुम पर विश्वास करके अपने वंशकी वृद्धिके लिये कुछ कहूंगी, उस प्रकारके आपद्धर्मका तुम खण्डन नहीं कर सकोगे ॥४॥

त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं परा गतिः।
तस्मान्निशम्य वाक्यं मे कुरुष्व यदनन्तरम् ॥ ५ ॥

हमारे वंशमें तुम्ही धर्म, तुम्ही सत्य और तुम्ही परम गति हो, इसलिए मेरी सत्य बातको सुनकर आगे जैसा कर्तव्य होवे, वही करो ॥ ५ ॥

धर्मयुक्तस्य धर्मात्मन्पितुरासीत्तरी मम।
सा कदाचिदहं तत्र गता प्रथमयौवने ॥ ६ ॥

हे धर्मात्मन्! धार्मिक मेरे पिताकी एक नाव थी। एक समय मैं अपने नवयौवनके दिनोंमें उस नावके पास गई ॥ ६ ॥

अथ धर्मभृतां श्रेष्ठः परमर्षिः पराशरः।
आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन्यमुनां नदीम् ॥ ७ ॥

उसी समय धीमान् धार्मिक श्रेष्ठ परमर्षि पराशर यमुना नदीके पार उतरनेके लिये आकर मेरी नावपर चढे ॥ ७ ॥

स तार्यमाणो यमुनां मामुपेत्याब्रवीत्तदा।
सान्त्वपूर्वं मुनिश्रेष्ठः कामार्तो मधुरं बहु ॥ ८ ॥

मैं उन मुनिश्रेष्ठको यमुना पार करा रही थी, कि ऐसे समयमें वह कामवश होकर मीठी बातोंमें मुझको लुभाते हुए मेरे पास आकर बोले ॥ ८ ॥

तमहं शापभीता च पितुर्भीता च भारत।
वरैरसुलभैरुक्ता न प्रत्याख्यातुमुत्सहे ॥ ९ ॥

हे भारत! मैं पिताके भयसे और ऋषिके शापके भयसे मूल्यवान् वर पाकर उनकी बातको इन्कार नहीं सकी ॥ ९ ॥

अभिभूय स मां बालां तेजसा वशमानयत्।
तमसा लोकमावृत्य नौगतामेव भारत ॥ १० ॥

हे भारत! उन ऋषिने नावपर स्थित और बालिका रूप मुझे पाकर तेजसे विवश कर अंधेरेसे भूमण्डलको छाकर अपने वशमें कर लिया ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मत्स्यगन्धो महानासीत्पुरा मम जुगुप्सितः ।
तमपास्य शुभं गन्धमिमं प्रादात्स मे मुनिः ॥ ११ ॥

पहिले मेरे शरीरसे मछलीकी बडी बुरी गन्ध आती थी, पर उस मुनिने उसको हटाकर यह सुन्दर गन्ध मुझे दे दी ॥ ११ ॥

ततो मामाह स मुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम् ।
द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ १२ ॥

और तब वे मुनि मुझसे बोले– तुम इस यमुना नदीके द्वीप पर ही मेरे वीर्यसे पैदा हुए इस गर्भको छोडकर फिर कन्यावस्थाहीमें रहोगी ॥ १२ ॥

पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः ।
कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति स्मृतः ॥ १३ ॥

उससे यमुनाके द्वीप पर मेरी कन्यावस्थाके उस गर्भसे पराशरके पुत्र महर्षि महायोगी जन्म लेकर द्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १३ ॥

यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः ।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात्कृष्णत्वमेव च ॥ १४ ॥

वह भगवान् ऋषि तपके प्रभावसे चारों वेदोंके व्यास अर्थात् विभाग कर व्यास नामसे प्रख्यात हुए और कृष्णवर्ण होनेसे उनका नाम कृष्ण हुआ ॥ १४ ॥

सत्यवादी शमपरस्तपस्वी दग्धकिल्बिषः ।
स नियुक्तो मया व्यक्तं त्वया च अमितद्युते ।
भ्रातुः क्षेत्रेषु कल्याणमपत्यं जनयिष्यति ॥ १५ ॥

हे अति तेजस्वी भीष्म ! सत्यवादी शान्तशील बहुत बडे तपस्वी और पापरहित वे व्यास मेरे और तुम्हारे द्वारा नियुक्त होकर वह तुम्हारे भ्राताके क्षेत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं ॥ १५ ॥

स हि मामुक्तवांस्तत्र स्मरेः कृत्येषु मामिति ।
तं स्मरिष्ये महाबाहो यदि भीष्म त्वमिच्छसि ॥ १६ ॥

हे महाभुज ! उन्होंने पहिले मुझसे कहा था, कि यदि कोई कार्य आ पडे तो मुझे स्मरण करना । हे भीष्म ! यदि तुम चाहो, तो अब उनको स्मरण करूं ॥ १६ ॥

तव ह्यनुमते भीष्म नियतं स महातपाः ।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु पुत्रानुत्पादयिष्यति ॥ १७ ॥

हे भीष्म ! तुम्हारी सम्मति होनेसे वह महातपस्वी द्वैपायन अवश्य ही विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें सन्तान उत्पादन करेंगे ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महर्षेः कीर्तने तस्य भीष्मः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
धर्ममर्थं च कामं च त्रीनेतान्योऽनुपश्यति ॥ १८ ॥

उन महर्षि कृष्णद्वैपायनका नाम कहते ही भीष्मने दोनों हाथ जोडकर कहा, कि जो धर्म, अर्थ और काम इन विषयोंकी भली प्रकार आलोचना करता है ॥ १८ ॥

अर्थमर्थानुबन्धं च धर्मं धर्मानुबन्धनम्।
कामं कामानुबन्धं च विपरीतान्पृथक्पृथक्।
यो विचिन्त्य धिया सम्यग्व्यवस्यति स बुद्धिमान् ॥ १९ ॥

और इस प्रकार अर्थ और अर्थसे संबंधित, धर्म और धर्मसे संबंधित व्यवहारोंको तथा उनके विपरीत पृथक् पृथक् व्यवहारोंको जो अपनी बुद्धिसे विचार करके जानता और तदनुसार अनुष्ठान करता है वही बुद्धिमान् कहा जाता है ॥ १९ ॥

तदिदं धर्मयुक्तं च हितं चैव कुलस्य नः।
उक्तं भवत्या यच्छ्रेयः परमं रोचते मम ॥ २० ॥

आपने मेरे कुलके लिए हितजनक धर्मयुक्त और मङ्गलकारी जो वचन मुझसे कहा है उससे मैं पूर्ण रूपसे सहमत हूं ॥ २० ॥

ततस्तस्मिन्प्रतिज्ञाते भीष्मेण कुरुनन्दन।
कृष्णद्वैपायनं काली चिन्तयामास वै मुनिम् ॥ २१ ॥

हे कुरुनन्दन ! तब भीष्मके उस विषयमें सहमत होजानेपर कालीने मुनि कृष्णद्वैपायनका स्मरण किया ॥ २१ ॥

स वेदान्विब्रुवन्धीमान्मातुर्विज्ञाय चिन्तितम्।
प्रादुर्बभूवाविदितः क्षणेन कुरुनन्दन ॥ २२ ॥

धीमान् वेदव्यास वेदकी व्याख्या कर रहे थे, कि ऐसे समयमें माताकी चिन्ता जानकर क्षणमें ही माताके सम्मुख प्रगट हो गए ॥ २२ ॥

तस्मै पूजां तदा दत्त्वा सुताय विधिपूर्वकम्।
परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रस्नवैरभिषिच्य च।
मुमोच बाष्पं दाशेयी पुत्रं दृष्ट्वा चिरस्य तम् ॥ २३ ॥

आगे धीवरकी बेटीने पुत्रका विधिपूर्वक समादर कर हाथोंसे गले लगाकर स्तन दुग्धसे नहलाया और बहुत कालके बाद पुत्रको देखकर अश्रुजलसे आप भी नहा गयी ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तामद्भिः परिषिच्यार्तां महर्षिरभिवाद्य च ।
मातरं पूर्वजः पुत्रो व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ २४ ॥

पहले पैदा हुए हुए पुत्र व्यास दुःखिता माताको जलके छींटोंसे सांत्वना देकर प्रणाम-पूर्वक यह वचन बोले ॥ २४ ॥

भवत्या यदभिप्रेतं तदहं कर्तुमागतः ।
शाधि मां धर्मतत्त्वज्ञे करवाणि प्रियं तव ॥ २५ ॥

हे धर्मतत्त्वको जाननेवाली ! आपकी जैसी इच्छा है, उसको पूरी करनेके लिये मैं आया हूं, आप आज्ञा कीजिये, आपका प्रिय करूंगा ॥ २५ ॥

तस्मै पूजां ततोऽकार्षीत्पुरोधाः परमर्षये ।
स च तां प्रतिजग्राह विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ २६ ॥

अनन्तर पुरोहितने आकर उन परमर्षिकी यथाविधि पूजा की; उन्होंने भी मंत्रपूर्वक वह पूजा स्वीकार की ॥ २६ ॥

तमासनगतं माता पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ।
सत्यवत्यभिवीक्ष्यैनमुवाचेदमनन्तरम् ॥ २७ ॥

तब माता सत्यवतीने उनको आसन पर बैठे हुए देखकर कुशल पूछ करके यह कहा ॥२७॥

मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे ।
तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः ॥ २८ ॥

हे कवि ! पितासे जो उत्पन्न होते हैं, वे पिता माता दोनोंके लिए समान होते हैं । पुत्र पर पिताका जैसा अधिकार है, इसमें सन्देह नहीं है, कि माताका भी वैसा ही अधिकार रहता है ॥ २८ ॥

विधातृविहितः स त्वं यथा मे प्रथमः सुतः ।
विचित्रवीर्यो ब्रह्मर्षे तथा मेऽवरजः सुतः ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मर्षि ! दैवविधानसे पैदा हुए हुए तुम मेरे जिस प्रकार प्रथम पुत्र हो, विचित्रवीर्य भी उस प्रकार मेरा कनिष्ठ पुत्र था ॥ २९ ॥

यथैव पितृतो भीष्मस्तथा त्वमपि मातृतः ।
भ्राता विचित्रवीर्यस्य यथा वा पुत्र मन्यसे ॥ ३० ॥

और विचित्रवीर्य तथा भीष्म एक पिताके पुत्र होनेसे भीष्म जिस प्रकार विचित्रवीर्यके भ्राता हैं, उसी प्रकार तुम और विचित्रवीर्य एक मातासे होनेके कारण तुम भी विचित्र-वीर्यके भ्राता हो, आगे तुम जैसा मानो ॥ ३० ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अयं शान्तनवः सत्यं पालयन्सत्यविक्रमः।
बुद्धिं न कुरुतेऽपत्ये तथा राज्यानुशासने ॥ ३१ ॥

यह शन्तनु-पुत्र सत्यविक्रमी भीष्म सत्यका पालन करते हुए राज्यशासन एवं पुत्रोत्पादन करनेको सहमत नहीं होते ॥ ३१ ॥

स त्वं व्यपेक्षया भ्रातुः सन्तानाय कुलस्य च।
भीष्मस्य चास्य वचनान्नियोगाच्च ममानघ ॥ ३२ ॥
अनुक्रोशाच्च भूतानां सर्वेषां रक्षणाय च।
आनृशंस्येन यद्ब्रूयां तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥

अतएव हे अनघ ! अपने भाई विचित्रवीर्य पर स्नेहवश होके कुरुवंशकी रक्षा, प्रजाका पालन, भीष्मकी बात, मेरी आज्ञाको पूरा करने और सब जीवोंपर कृपा करनेके लिए अनिर्दयतासे मैं जो कुछ कहूं, उसे सुनकर तुम पूरा करो ॥ ३२-३३ ॥

यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे।
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च धर्मतः ॥ ३४ ॥

तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताकी देवकन्याके समान रूप और यौवनवती दो भार्या हैं, वे धर्मानुसार पुत्रकामा हैं ॥ ३४ ॥

तयोरुत्पादयापत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक।
अनुरूपं कुलस्यास्य संतत्याः प्रसवस्य च ॥ ३५ ॥

हे पुत्र ! तुम समर्थ हो, इसलिए उन दोनों रानियोंसे इस कुलकी परम्पराको बनाये रखनेके लिए अनुरूप पुत्रोंको उत्पन्न करो ॥ ३५ ॥

व्यास उवाच

वेत्थ धर्मं सत्यवति परं चापरमेव च।
यथा च तव धर्मज्ञे धर्मे प्रणिहिता मतिः ॥ ३६ ॥

व्यास बोले- हे धर्मको जाननेवाली सत्यवती ! आप अपर और पर दोनों प्रकारके धर्मोंको जिस प्रकार जानती हैं, उस विषयमें आपका चित्त भी उसी प्रकार धर्ममें स्थित है ॥ ३६ ॥

तस्मादहं त्वन्नियोगाद्धर्ममुद्दिश्य कारणम्।
ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत्पुरातनम् ॥ ३७ ॥

अतएव मैं आपकी आज्ञाके अनुसार धर्मको स्मरणकर आपकी इच्छा पूरी करूंगा, क्योंकि यह देवोंका धर्म है ॥ ३७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भ्रातुः पुत्रान्प्रदास्यामि मित्रावरुणयोः समान् ।
व्रतं चरेतां ते देव्यौ निर्दिष्टमिह यन्मया ॥ ३८ ॥

मैं भ्राताको मित्र–वरुणके सदृश पुत्र प्रदान करूंगा; पर वे दोनों देवियां मेरे बताए हुए व्रतका आचरण करें ॥ ३८ ॥

संवत्सरं यथान्यायं ततः शुद्धे भविष्यतः ।
न हि मामव्रतोपेता उपेयात्काचिदङ्गना ॥ ३९ ॥

वधूगण न्यायानुसार वर्ष भर व्रत किये रहें; तभी वे शुद्ध होंगी, क्योंकि व्रत न करके कोई नारी मेरे पास नहीं आसकेगी ॥ ३९ ॥

सत्यवत्युवाच

यथा सद्यः प्रपद्येत देवी गर्भं तथा कुरु ।
अराजकेषु राष्ट्रेषु नास्ति वृष्टिर्न देवताः ॥ ४० ॥

सत्यवती बोली– ऐसा करो, कि जिससे देवी राजरानियां जल्दी ही गर्भवती होवें। क्योंकि राजासे रहित राष्ट्रोंमें न वृष्टि होती है और न देवगण ही रहते हैं ॥ ४० ॥

कथमराजकं राष्ट्रं शक्यं धारयितुं प्रभो ।
तस्माद्गर्भं समाधत्स्व भीष्मस्तं वर्धयिष्यति ॥ ४१ ॥

हे प्रभो ! विना राजाके राज्यकी कैसे रक्षा हो सकती है ? अतएव तुम आज ही गर्भाधान करो, भीष्म उस गर्भजात बालकको बढायेंगे ॥ ४१ ॥

व्यास उवाच

यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया क्षिप्रमकालिकम् ।
विरूपतां मे सहतामेतदस्याः परं व्रतम् ॥ ४२ ॥

व्यास बोले– यदि विलम्ब न करके जल्दी ही पुत्र उत्पन्न करना है, तो वे रानियां मेरी कुरूपताको सहें, यही उनका परम व्रत होगा ॥ ४२ ॥

यदि मे सहते गन्धं रूपं वेषं तथा वपुः ।
अद्यैव गर्भं कौसल्या विशिष्टं प्रतिपद्यताम् ॥ ४३ ॥

यदि कौशल देशकी कुमारी अम्बिका मेरे गन्ध, रूप, वेश और शरीरको सह सके, तो वह आज ही विशेष गर्भ धारण कर सकेगी ॥ ४३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

समागमनमाकाङ्क्षन्निति सोऽन्तर्हितो मुनिः।
ततोऽभिगम्य सा देवी स्नुषां रहसि संगताम्।
धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम् ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार समागमकी इच्छा करते हुए वे मुनि गायब हो गए। सत्यवती पुत्रवधूके पास जाकर उससे एकान्तमें मिलकर उससे धर्म और अर्थसे युक्त और हितकारक यह बात बोली ॥ ४४ ॥

कौसल्ये धर्मतन्त्रं यद्ब्रवीमि त्वां निबोध मे।
भरतानां समुच्छेदो व्यक्तं मद्भाग्यसंक्षयात् ॥ ४५ ॥

हे कौसल्ये! तुमसे धर्मसम्मत जो बात कहती हूं, उसे सुनो। मेरे दुर्भाग्यसे भरतवंश समाप्त सा हो गया है ॥ ४५ ॥

व्यथितां मां च संप्रेक्ष्य पितृवंशं च पीडितम्।
भीष्मो बुद्धिमदान्मेऽत्र धर्मस्य च विवृद्धये ॥ ४६ ॥
सा च बुद्धिस्तवाधीना पुत्रि ज्ञातं मयेति ह।
नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर ॥ ४७ ॥

भीष्मने उससे मुझको पीडित देखकर और पिताके वंशको नष्ट होता हुआ विचारकरके धर्म बढानेके लिये मुझको एक उपाय बताया है, हे पुत्री! वह उपाय तुम्हारे अधीन है, यह मैं जानती हूँ। अतएव तुम विनष्ट भरतवंशका फिर उद्धार करो ॥ ४६–४७ ॥

पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम्।
स हि राज्यधुरं गुर्वीमुद्वक्ष्यति कुलस्य नः ॥ ४८ ॥

हे सुन्दरी! तुम देवराजके समान पुत्रका प्रसव करो, वह कुमार हमारे इस भारी राज्यके भारको संभाल लेगा ॥ ४८ ॥

सा धर्मतोऽनुनीयैनां कथंचिद्धर्मचारिणीम्।
भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनतिथींस्तथा ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ३६७६ ॥

सत्यवतीने उस धर्मचारिणीसे धर्मानुसार विनय करके किसी प्रकार सहमत कराके देव, ऋषि, ब्राह्मण और अतिथियोंको भोजन कराया ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥ ३६७६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १०० :

वैशम्पायन उवाच

ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा ।
संवेशयन्ती शयने शनकैर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर वधू कौशल्याके योग्यसमयमें ऋतुस्नान करने पर उसे भली प्रकार सजे हुए बिस्तर पर बैठाकर धीमे स्वरसे सत्यवती बोली ॥ १ ॥

कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वानुप्रवेक्ष्यति ।
अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे आगमिष्यति ॥ २ ॥

हे कौसल्ये ! तुम्हारे एक देवर हैं; वे तुम्हारा गर्भाधान करेंगे। वह आज रात्रिको तुम्हारे पास आवेंगे; तुम एकमन होकर उनकी प्रतीक्षा करो ॥ २ ॥

श्वश्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे ।
साचिन्तयत्तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान् ॥ ३ ॥

अम्बिका सासकी वह बात सुनकर उत्तम बिस्तर पर लेटकर भीष्म और दूसरे कुरुश्रेष्ठोंके बारेमें सोचने लगी ॥ ३ ॥

ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः ।
दीप्यमानेषु दीपेषु शयनं प्रविवेश ह ॥ ४ ॥

तब सत्य बात बोलनेवाले ऋषिने पहिले अम्बिकाके लिये नियुक्त होकर दीपोंके जलनेपर शयन घरमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥

तस्य कृष्णस्य कपिला जटा दीप्ते च लोचने ।
बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

अम्बिकाने उन कृष्णवर्ण पुरुषकी पिङ्गल जटा, बडी भारी दाढी और जलते हुए नेत्रोंको, बडी बडी भौंहों और मूछोंको देखकर आंखें मूंद लीं ॥ ५ ॥

संबभूव तया रात्रौ मातुः प्रियचिकीर्षया ।
भयात्काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

द्वैपायनने माताका प्रिय करनेके लिये उसके साथ रातमें संगम किया; पर काशीराजकी कन्या भयसे उनको देख नहीं सकी ॥ ६ ॥

ततो निष्क्रान्तमासाद्य माता पुत्रमथाब्रवीत् ।
अप्यस्यां गुणवान्पुत्र राजपुत्रो भविष्यति ॥ ७ ॥

तब व्यासके घरसे निकलने पर उनकी माताने उनसे पूछा– हे पुत्र ! क्या इस वधूसे गुणवान् राजपुत्र जन्म लेगा ? ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निशम्य तद्वचो मातुर्व्यासः परमबुद्धिमान्।
प्रोवाचातीन्द्रियज्ञानो विधिना संप्रचोदितः ॥ ८ ॥

इन्द्रियोंसे भी अतीत ज्ञान रखनेवाले परम बुद्धिमान् व्यास माताकी यह बात सुनकर विधिसे प्रेरित होकर यह बोले ॥ ८ ॥

नागायुतसमप्राणो विद्वान्राजर्षिसत्तमः।
महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति ॥ ९ ॥

यह गर्भमें स्थित बालक दस हजार हाथियोंके समान बलवान्, विद्वान्, राजर्षियोंमें श्रेष्ठ, महाभाग, महा वीर्यवान् और बुद्धिमान् होगा ॥ ९ ॥

तस्य चापि शतं पुत्रा भविष्यन्ति महाबलाः।
किं तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति ॥ १० ॥

और उससे भी सौ महाबलशाली सन्तानें उत्पन्न होंगी; पर माताके दोषसे वह अन्धा ही होगा ॥ १० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माता पुत्रमथाब्रवीत्।
नान्धः कुरूणां नृपतिरनुरूपस्तपोधन ॥ ११ ॥

उसकी वह बात सुनकर माता पुत्रसे बोली– हे तपोधन ! वह अन्धा पुरुष कुरुवंशके योग्य राजा नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितॄणां वंशवर्धनम्।
द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हसि ॥ १२ ॥

अतएव जाति और कुलके रक्षक, पितरोंके वंशधर और कुरुवंशका राजा हो सके, ऐसा एक दूसरा पुत्र उत्पन्न करो ॥ १२ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय निश्चक्राम महातपाः।
सापि कालेन कौसल्या सुषुवेऽन्धं तमात्मजम् ॥ १३ ॥

महातपस्वी व्यास उसे स्वीकृत कर चले गये। आगे समय आनेपर कौसल्याने ऋषिकथित एक अन्धा पुत्र उत्पन्न किया ॥ १३ ॥

पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः।
ऋषिमावाहयत्सत्या यथापूर्वमनिन्दिता ॥ १४ ॥

तब अनिन्दित देवी सत्यवतीने पूर्ववत् पुत्रवधूको आज्ञा देकर फिर उन ऋषिको बुलाया ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत ।
अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम् ।
विषण्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत ॥ १५ ॥

महर्षि पूर्ववत् विधिके अनुसार अम्बालिकाके पास आए और उन्होंने उससे समागम किया। हे भारत ! वह अम्बालिका भी उन ऋषिको आया हुआ देखकर दुःखी और पीली हो गयी ॥ १५ ॥

तां भीतां पाण्डुसंकाशां विषण्णां प्रेक्ष्य पार्थिव ।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

हे राजन् ! सत्यवतीके सुत व्यास उसको भीत, दुःखित और पीली देखकर यह वचन बोले ॥ १६ ॥

यस्मात्पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामपि ।
तस्मादेष सुतस्तुभ्यं पाण्डुरेव भविष्यति ॥ १७ ॥

चूंकि तुम मुझको विरूप देखकर पीली पड गई हो, इसलिए तुम्हारा यह पुत्र भी पीला ही होगा ॥ १७ ॥

नाम चास्य तदेवेह भविष्यति शुभानने ।
इत्युक्त्वा स निराक्रामद्भगवानृषिसत्तमः ॥ १८ ॥

हे शुभानने ! वह पुत्र पीला अर्थात् पाण्डु नामहीसे प्रख्यात होगा । भगवान् ऋषिश्रेष्ठ यह बात कहकर घरसे निकल आए ॥ १८ ॥

ततो निष्क्रान्तमालोक्य सत्या पुत्रमभाषत ।
शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्य पाण्डुताम् ॥ १९ ॥

उन्हें बाहर आया हुआ देखकर सत्यवतीने उनसे सन्तानकी बात पूछी । व्यासने माताको फिर पुत्रके पीला होनेकी कथा कह सुनायी ॥ १९ ॥

तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत ।
तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत ॥ २० ॥

सत्यवतीने वह सुनकर फिर उनसे और एक पुत्रकी प्रार्थना की; महर्षिने भी माताको उत्तर दिया "ठीक है" ॥ २० ॥

ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत् ।
पाण्डुं लक्षणसंपन्नं दीप्यमानमिव श्रिया ।
तस्य पुत्रा महेष्वासा जज्ञिरे पञ्च पाण्डवाः ॥ २१ ॥

उसके बाद समय आनेपर देवी अम्बालिकाने सुन्दर शोभासे देदीप्यमान पाण्डुवर्ण एक कुमारका प्रसव किया, जिनके पुत्र पांच पाण्डव बडे धनुर्धारी हुए ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत्।
सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम्।
नाकरोद्वचनं देव्या भयात्सुरसुतोपमा ॥ २२ ॥

अनन्तर बडी वधूका ऋतुकाल आनेपर सत्यवतीने उसको उन ऋषिके निकट जानेकी आज्ञा दी। पर ऋषिके शरीरका रूप और गन्धका स्मरण कर देवकन्याके समान उस रानीने भयके कारण सत्यवती देवीके वाक्यानुरूप कर्म नहीं किया ॥ २२ ॥

ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाप्सरोपमाम्।
प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता ॥ २३ ॥

तब उस काशीराजकी पुत्रीने अप्सराके समान एक दासीको अपने आभूषणोंसे अलंकृत कर कृष्ण द्वैपायनके निकट भेज दिया ॥ २३ ॥

दासी ऋषिमनुप्राप्तं प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च।
संविवेशाभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह ॥ २४ ॥

ऋषिके आनेपर दासी उठकर नमस्कारपूर्वक ऋषिकी आज्ञानुसार उनकी सेवा और सत्कार कर बिस्तर पर जा बैठी ॥ २४ ॥

कामोपभोगेन तु स तस्यां तुष्टिमगाद्ऋषिः।
तया सहोषितो रात्रिं महर्षिः प्रीयमाणया ॥ २५ ॥

महर्षि उस रात प्रसन्नतासे उसके सहवासमें कामको भोगकर उसपर अति प्रसन्न हुए ॥२५॥

उत्तिष्ठन्नब्रवीदेनामभुजिष्या भविष्यसि।
अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः।
धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ २६ ॥

और उठकर जानेके समय उससे बोले— तुम्हारा दासीपन मुक्त होगा। हे शुभे! तुम्हारे गर्भमें स्थित सन्तान धर्मात्मा, मङ्गलभाजन और यह बुद्धिमान् जनोंमें सबसे श्रेष्ठ होगी ॥ २६ ॥

स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः।
धृतराष्ट्रस्य च भ्राता पाण्डोश्चामितबुद्धिमान् ॥ २७ ॥

महाराज! कृष्णद्वैपायनके वीर्य और उसके गर्भसे धृतराष्ट्र और पाण्डुके भाई अत्यन्त बुद्धिमान् विदुरने जन्म लिया ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्मो विदुररूपेण शापात्तस्य महात्मनः ।
माण्डव्यस्यार्थतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ॥ २८ ॥
स धर्मस्यानृणो भूत्वा पुनर्मात्रा समेत्य च ।
तस्यै गर्भं समावेद्य तत्रैवान्तरधीयत ॥ २९ ॥

अर्थतत्त्व जाननेवाले और काम क्रोधसे रहित कृष्णद्वैपायनने महात्मा माण्डव्यके शापसे धर्मका विदुरके स्वरूपमें जन्म और अपने सामने उस गर्भकी कथा माताके निकट कहकर धर्मानुसार ऋणसे छुटकारा पाकर उस स्थानहीमें अन्तर्हित हो गए ॥ २८–२९ ॥

एते विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादपि ।
जज्ञिरे देवगर्भाभाः कुरुवंशविवर्धनाः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ३७०६ ॥

द्वैपायनके वीर्य और विचित्रवीर्यकी रानियोंमें कुरुकुलके बढानेवाले देवकुमारके समान कुमारोंने इस प्रकार जन्म लिया था ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें सौवां अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥ ३७०६ ॥

: १०१ :

जनमेजय उवाच

किं कृतं कर्म धर्मेण येन शापमुपेयिवान् ।
कस्य शापाच्च ब्रह्मर्षे शूद्रयोनावजायत ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– धर्मने ऐसा कौनसा कर्म किया था, कि उस कारण शापसे ग्रसित हुए और किस ब्रह्मर्षिके शापसे शूद्रयोनिमें उन्होंने जन्म लिया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

बभूव ब्राह्मणः कश्चिन्माण्डव्य इति विश्रुतः ।
धृतिमान्सर्वधर्मज्ञः सत्ये तपसि च स्थितः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– माण्डव्यके नामसे प्रसिद्ध सर्वधर्मज्ञ, धृतिमान्, सत्यनिष्ठ और तपमें रत रहनेवाले युक्त एक ब्राह्मण थे ॥ २ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स आश्रमपदद्वारि वृक्षमूले महातपाः।
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी तस्थौ मौनव्रतान्वितः ॥ ३ ॥

वे महातपस्वी और महायोगी आश्रमके द्वारपर स्थित वृक्षकी जडमें ऊर्ध्वबाहु और मौनी होकर बहुत दिनोंसे तप कर रहे थे ॥ ३ ॥

तस्य कालेन महता तस्मिंस्तपसि तिष्ठतः।
तमाश्रमपदं प्राप्ता दस्यवो लोप्त्रहारिणः।
अनुसार्यमाणा बहुभी रक्षिभिर्भरतर्षभ ॥ ४ ॥

इस प्रकार उनके तप करते हुए बहुतसा समय बीत गया, ऐसे समयमें एक दिन लुटेरे लूटी हुई वस्तुओंको लेकर उनके उस आश्रममें आये। हे भरतवंशश्रेष्ठ! बहुतसे सिपाही उन चोरोंका पीछा कर रहे थे ॥ ४ ॥

ते तस्यावसथे लोप्त्रं निदधुः कुरुसत्तम।
निधाय च भयाल्लीनास्तत्रैवान्वागते बले ॥ ५ ॥

अतः हे कुरुश्रेष्ठ! वे लुटेरे भयसे रखवालोंके आते न आते उस आश्रममें लूटे हुए धनको छिपाकर स्वयं भी वहीं छिप गये ॥ ५ ॥

तेषु लीनेष्वथो शीघ्रं ततस्तद्रक्षिणां बलम्।
आजगाम ततोऽपश्यंस्तमृषिं तस्करानुगाः ॥ ६ ॥

वहीं चोरोंके छिप जानेपर उनका पीछा करते हुए रखवाले भी उसी क्षण उस स्थानमें आपहुंचे और वहां उस ऋषिको देखा ॥ ६ ॥

तमपृच्छंस्ततो राजंस्तथावृत्तं तपोधनम्।
कतरेण पथा याता दस्यवो द्विजसत्तम।
तेन गच्छामहे ब्रह्मन्पथा शीघ्रतरं वयम् ॥ ७ ॥

हे राजन्! उन्होंने उस दशामें तपस्वी उस ऋषिको देखकर पूछा, हे द्विजवर! लुटेरे किस पथसे गये? हे ब्राह्मण! बता दीजिये, ताकि हम शीघ्र उस पथमें जा सकें ॥ ७ ॥

तथा तु रक्षिणां तेषां ब्रुवतां स तपोधनः।
न किंचिद्वचनं राजन्नवदत्साध्वसाधु वा ॥ ८ ॥

हे राजन्! रखवालोंके उस प्रकार पूछनेपर तपोधन माण्डव्यने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा ॥ ८ ॥

ततस्ते राजपुरुषा विचिन्वानास्तमाश्रमम्।
ददृशुस्तत्र संलीनांस्तांश्चोरान्द्रव्यमेव च ॥ ९ ॥

तब राजपुरुषोंने उस आश्रममें ढूंढते हुए चुराये हुए पदार्थोंके साथ चोरोंको छिपे हुए पाया ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः शङ्का समभवद्रक्षिणां तं मुनिं प्रति ।
संयम्यैनं ततो राज्ञे दस्यूंश्चैव न्यवेदयन् ॥ १० ॥

तब उन मुनिपर रखवालोंको सन्देह हो गया और उन्होंने लुटेरों और मुनिको बांधकर राजाके सामने ला खडा किया ॥ १० ॥

तं राजा सह तैश्चोरैरन्वशाद्वध्यतामिति ।
स वध्यघातैरज्ञातः शूले प्रोतो महातपाः ॥ ११ ॥

राजाने लुटेरोंके साथ मुनिको भी मारनेकी आज्ञा दी । जल्लादोंने महातपस्वी माण्डव्यको न जानकर शूलीपर चढा दिया; ॥ ११ ॥

ततस्ते शूलमारोप्य तं मुनिं रक्षिणस्तदा ।
प्रतिजग्मुर्महीपालं धनान्यादाय तान्यथ ॥ १२ ॥

उस ऋषिको शूली पर चढाकर वे सिपाही चुरायी हुई वस्तुओंको लेकर राजाके पास गये ॥ १२ ॥

शूलस्थः स तु धर्मात्मा कालेन महता ततः ।
निराहारोऽपि विप्रर्षिर्मरणं नाभ्युपागमत् ।
धारयामास च प्राणानृषींश्च समुपानयत् ॥ १३ ॥

धर्मात्मा विप्रर्षि बहुतकालतक शूलीपर चढे होने और विना भोजनके रहने पर भी मृत्युको प्राप्त नहीं हुए । वह तपके बलसे जीवित रहे और ऋषिओंको अपने पास बुलवाया ॥१३॥

शूलाग्रे तप्यमानेन तपस्तेन महात्मना ।
संतापं परमं जग्मुर्मुनयोऽथ परंतप ॥ १४ ॥

हे परंतप ! उन महात्माको शूलीके ऊपर तपमें मग्न देखकर वे मुनि अति दुःखी हुए ॥१४॥

ते रात्रौ शकुना भूत्वा संन्यवर्तन्त सर्वतः ।
दर्शयन्तो यथाशक्ति तमपृच्छन्द्विजोत्तमम् ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्किं पापं कृतवानसि ॥ १५ ॥

वे रातमें पक्षियोंका रूप धारण कर चारों ओरसे आए और उन्होंने अपने रूपको धारण कर द्विजोत्तमसे पूछा, हे ब्रह्मन् ! हम सुनना चाहते हैं, कि तुमने कौनसा पाप किया है ॥ १५ ॥

ततः स मुनिशार्दूलस्तानुवाच तपोधनान् ।
दोषतः कं गमिष्यामि न हि मेऽन्योऽपराध्यति ॥ १६ ॥

तब मुनियोंमें श्रेष्ठ माण्डव्यने उन तपोधनोंसे कहा, कि मैं किसको दोष लगाऊं, कोई और मनुष्य इस विषयमें दोषी नहीं है ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राजा च तमृषिं श्रुत्वा निष्क्रम्य सह मन्त्रिभिः।
प्रसादयामास तदा शूलस्थमृषिसत्तमम् ॥ १७ ॥

वह सुनकर राजा तब मन्त्रियोंके साथ वहां आकर उस शूलीपर स्थित ऋषि श्रेष्ठको प्रसन्न करनेके लिये विनयके साथ कहने लगे ॥ १७ ॥

यन्मयापकृतं मोहादज्ञानादृषिसत्तम।
प्रसादये त्वां तत्राहं न मे त्वं क्रोद्धुमर्हसि ॥ १८ ॥

मैंने मोहवश अज्ञानतासे आपका अपकार किया है, अब आपकी प्रसन्नताके लिये मैं प्रार्थना करता हूं, आप मुझपर क्रोधित न होवें ॥ १८ ॥

एवमुक्तस्ततो राज्ञा प्रसादमकरोन्मुनिः।
कृतप्रसादो राजा तं ततः समवतारयत् ॥ १९ ॥

राजाकी ऐसी बात सुनकर मुनि प्रसन्न हुए। भूपालने उनको प्रसन्न देखकर शूलीके खम्भेसे उतरवा दिया ॥ १९ ॥

अवतार्य च शूलाग्रात्तच्छूलं निश्चकर्ष ह।
अशक्नुवंश्च निष्कृष्टुं शूलं मूले स चिच्छिदे ॥ २० ॥

उन्हें शूलके अग्रभागसे उतार कर शूलको खींचा पर वह शूल खिंच नहीं पाया, तब देहके भीतर घुसी हुई शूलीकी जड काट डाली ॥ २० ॥

स तथान्तर्गतेनैव शूलेन व्यचरन्मुनिः।
स तेन तपसा लोकान्विजिग्ये दुर्लभान्परैः।
अणीमाण्डव्य इति च ततो लोकेषु कथ्यते ॥ २१ ॥

तब मुनि भीतर घुसी हुई शूलीको ले करके ही सर्वत्र विचरने लगे और कठोर तपस्या करने लगे; उससे औरोंके लिये दुर्लभ पुण्यलोकको जीत लिया। वह अणी अर्थात् शूलीके अगले भागको लिये रहनेके कारण अणीमाण्डव्यके नामसे लोकोंमें प्रसिद्ध हुए ॥ २१ ॥

स गत्वा सदनं विप्रो धर्मस्य परमार्थवित्।
आसनस्थं ततो धर्मं दृष्ट्वोपालभत प्रभुः ॥ २२ ॥

तत्त्वज्ञ ब्राह्मण अणीमाण्डव्य एक समय धर्मके पास गये। धर्मको वहां बैठे देखकर प्रभु अणीमाण्डव्य उनपर लाञ्छन लगाकर बोले ॥ २२ ॥

किं नु तद्दुष्कृतं कर्म मया कृतमजानता।
यस्येयं फलनिर्वृत्तिरीदृश्यासादिता मया।
शीघ्रमाचक्ष्व मे तत्त्वं पश्य मे तपसो बलम् ॥ २३ ॥

मैंने अज्ञानतासे कौनसा कुकर्म किया है, कि जिसका ऐसा फल मैंने पाया? इसका गूढ तत्त्व मुझे शीघ्र बताओ और फिर मेरी तपस्याका प्रभाव देखो ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्म उवाच

पतंगकानां पुच्छेषु त्वयेषीका प्रवेशिता ।
कर्मणस्तस्य ते प्राप्तं फलमेतत्तपोधन ॥ २४ ॥

धर्म बोले– तुमने एक दिन पतंगोंकी पूंछमें इषीका अर्थात् तिनका घुसा दिया था, हे तपोधन ! तुमने उस कर्मका ही यह फल प्राप्त किया है ॥ २४ ॥

अणीमाण्डव्य उवाच

अल्पेऽपराधे विपुलो मम दण्डस्त्वया कृतः ।
शूद्रयोनावतो धर्म मानुषः संभविष्यसि ॥ २५ ॥

हे धर्म ! मेरे इस छोटेसे अपराधका तुमने इतना भारी दण्ड दिया है । इस हेतु तुम मनुष्य होकर शूद्रयोनिमें जन्म लोगे ॥ २५ ॥

मर्यादां स्थापयाम्यद्य लोके धर्मफलोदयाम् ।
आ चतुर्दशकाद्वर्षान्न भविष्यति पातकम् ।
परेण कुर्वतामेवं दोष एव भविष्यति ॥ २६ ॥

आजसे मैं कर्मके फल भोगनेके विषयमें लोकोंमें यह मर्यादा स्थापित करता हूं, कि चौदह वर्षकी आयुतक पाप कर्म करनेसे भी पाप नहीं लगेगा ! चौदह वर्षके बाद ही पापकर्म करनेसे उसका फल भोगना पडेगा ॥ २६ ॥

वैशंपायन उवाच

एतेन त्वपराधेन शापात्तस्य महात्मनः ।
धर्मो विदुररूपेण शूद्रयोनावजायत ॥ २७ ॥

वैशम्पायन बोले– इस दोषके कारण और महात्मा अणीमाण्डव्यके शापसे धर्मने विदुरके स्वरूपमें शूद्रयोनिमें जन्म लिया ॥ २७ ॥

धर्मे चार्थे च कुशलो लोभक्रोधविवर्जितः ।
दीर्घदर्शी शमपरः कुरूणां च हिते रतः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ३७३४ ॥

वह धर्म और अर्थके विषयमें पण्डित, लोभ क्रोधसे रहित, शांत और दूरदर्शी होकर कुरुवंशके हित साधनेमें सदा उत्साही थे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ एकवां अध्याय समाप्त ॥ १०१ ॥ ॥ ३७३४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १०२ :

वैशम्पायन उवाच

तेषु त्रिषु कुमारेषु जातेषु कुरुजाङ्गलम्।
कुरवोऽथ कुरुक्षेत्रं त्रयमेतदवर्धत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उन तीन कुमारोंके जन्म लेने पर कौरवगण, कुरुजाङ्गल देश और कुरुक्षेत्र इन तीनोंकी पूरी उन्नति हुई ॥ १ ॥

ऊर्ध्वसस्याभवद्भूमिः सस्यानि फलवन्ति च।
यथर्तुवर्षी पर्जन्यो बहुपुष्पफला द्रुमाः ॥ २ ॥

तब भूमिमें बहुत शस्य उपजने लगे, शस्य फलयुक्त हुए, बादलोंके उचित समयमें वृष्टि करनेसे वृक्ष अपरिमित फल और फूलसे युक्त होने लगे ॥ २ ॥

वाहनानि प्रहृष्टानि मुदिता मृगपक्षिणः।
गन्धवन्ति च माल्यानि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥

उन दिनों सब वाहन प्रसन्न, मृग पक्षी प्रमुदित, पुष्प गन्धसे युक्त और फल अच्छे रससे युक्त होते थे ॥ ३ ॥

वणिग्भिश्चावकीर्यन्त नगराण्यथ शिल्पिभिः।
शूराश्च कृतविद्याश्च सन्तश्च सुखिनोऽभवन् ॥ ४ ॥

तब नगर उद्योगपतियों और शिल्पियोंसे भरा पूरा हो गया और शूरलोग, विद्वान्लोग और साधुगण सुखी हो गए ॥ ४ ॥

नाभवन्दस्यवः केचिन्नाधर्मरुचयो जनाः।
प्रदेशेष्वपि राष्ट्राणां कृतं युगमवर्तत ॥ ५ ॥

उस समय कोई लुटेरा उन राज्योंमे न था और न कोई अधर्मशील ही था, इसलिए राज्यके सब प्रदेशोंमें मानों सत्ययुगका राज्य हो गया था ॥ ५ ॥

दानक्रियाधर्मशीला यज्ञव्रतपरायणाः।
अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ता व्यवर्धन्त प्रजास्तदा ॥ ६ ॥

प्रजायें दानशील, धर्मशील, यज्ञशील और आपसमें प्रेमसे युक्त होकर विशेष बढने लगीं ॥६॥

कामक्रोधविहीनाश्च जना लोभविवर्जिताः।
अन्योन्यमभ्यवर्धन्त धर्मोत्तरमवर्तत ॥ ७ ॥

संपूर्ण जन क्रोध, लोभ और अभिमानसे रहित होकर परस्पर एक दूसरेको बढाने लगे। इस प्रकार धर्मकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तन्महोदधिवत्पूर्णं नगरं वै व्यरोचत ।
द्वारतोरणनिर्यूहैर्युक्तमभ्रचयोपमैः ।
प्रासादशतसंबाधं महेन्द्रपुरसंनिभम् ॥ ८ ॥

उस कालमें वह नगर बडे भारी समुद्रके समान भरा, सैंकडों बडे बडे भवनोंसे युक्त और बादल दलके सदृश द्वार और तोरणोंसे संयुक्त होकर अमरावतीकी सी अपूर्व शोभा पाने लगा ॥ ८ ॥

नदीषु वनखण्डेषु वापीपल्वलसानुषु ।
काननेषु च रम्येषु विजह्रुर्मुदिता जनाः ॥ ९ ॥

मानवगण नदी, वन, तडाग, सरोवर, रमणीय फुलवारी और पर्वतोंकी समभूमि पर प्रसन्न चित्तसे विहार करने लगे ॥ ९ ॥

उत्तरैः कुरुभिः सार्धं दक्षिणाः कुरवस्तदा ।
विस्पर्धमाना व्यचरंस्तथा सिद्धर्षिचारणैः ।
नाभवत्कृपणः कश्चिन्नाभवन्विधवाः स्त्रियः ॥ १० ॥

दक्षिण कुरु और उत्तर कुरु एक दूसरेके साथ स्पर्धा करते हुए सिद्ध, ऋषि और चारणोंके साथ विचरने लगे । उस नगरमें कोई कृपण नहीं था और कोई नारी विधवा नहीं होती थी ॥ १० ॥

तस्मिञ्जनपदे रम्ये बहवः कुरुभि कृताः ।
कूपारामसभावाप्यो ब्राह्मणावसथास्तथा ।
भीष्मेण शास्त्रतो राजन्सर्वतः परिरक्षिते ॥ ११ ॥

हे राजन् ! भीष्मसे शास्त्रानुसार चारों ओरसे सुरक्षित उस सुन्दर नगरमें कुरुओंके द्वारा बनाए गए कूप, उपवन, तडाग, सभा और ब्राह्मणोंकी बस्ती आदि थे ॥ ११ ॥

बभूव रमणीयश्च चैत्ययूपशताङ्कितः ।
स देशः परराष्ट्राणि प्रतिगह्याभिवर्धितः ।
भीष्मेण विहितं राष्ट्रे धर्मचक्रमवर्तत ॥ १२ ॥

भीष्मके विधानसे उस राज्यमें धर्मचक्र प्रवर्तित हुआ । सैंकडों यज्ञयूपोंसे चित्रित होकर वह राज्य अन्य राज्योंको नीचा दिखाकर अत्युन्नत हो गया था ॥ १२ ॥

क्रियमाणेषु कृत्येषु कुमाराणां महात्मनाम् ।
पौरजानपदाः सर्वे बभूवुः सततोत्सवाः ॥ १३ ॥

महात्मा कुरुकुमारोंसे किये जाते हुए कार्योंको देखकर जनपद और पुरवासी सब नित्य उत्सव करने लगे ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गृहेषु कुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप।
दीयतां भुज्यतां चेति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥ १४ ॥

हे नराधिप ! प्रधान कौरवों और पुरवासियोंके घरोंमें "खाओ, दो" की बात सदा सुनाई देने लगी ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः।
जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्परिपालिताः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र, पाण्डु और महामति विदुर जन्महीसे भीष्मसे पुत्रकी भांति पाले गए ॥ १५ ॥

संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः।
श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम् ॥ १६ ॥

वे जातिके योग्य संस्कारोंसे संस्कृत, व्रत तथा पठनमें नियुक्त, और श्रम तथा व्यायाममें पण्डित होकर उचित समयमें यौवनदशाको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥

धनुर्वेदेऽश्वपृष्ठे च गदायुद्धेऽसिचर्मणि।
तथैव गजशिक्षायां नीतिशास्त्रे च पारगाः ॥ १७ ॥

वे धनुर्वेदमें घुडसवारीमें, गदा-युद्धमें, खड्ग-चर्म चलानेमें, गजशिक्षामें और नीतिशास्त्रमें पण्डित हो गए ॥ १७ ॥

इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु चाभिभो।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्रमाः ॥ १८ ॥

वे वेद वेदाङ्गके तत्त्वज्ञ होकर इतिहास, पुराण और दूसरे नाना विषयोंकी शिक्षा आदि सब विषयोंमें पण्डित हो गए ॥ १८ ॥

पाण्डुर्धनुषि विक्रान्तो नरेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत्।
अत्यन्यान्बलवानासीद्धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १९ ॥

विक्रमी पाण्डु धनुर्विद्यामें सब मनुष्योंसे तेज निकले और महीपति धृतराष्ट्र बलमें सबसे श्रेष्ठ निकले ॥ १९ ॥

त्रिषु लोकेषु न त्वासीत्कश्चिद्विदुरसंमितः।
धर्मनित्यस्ततो राजन्धर्मे च परमं गतः ॥ २० ॥

हे राजन् ! तीनों लोकोंमें विदुरके समान धर्मशील और धर्मविषयमें परम तत्त्वज्ञ कोई दूसरा नहीं था ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रनष्टं शन्तनोर्वंशं समीक्ष्य पुनरुद्धृतम् ।
ततो निर्वचनं लोके सर्वराष्ट्रेष्ववर्तत ॥ २१ ॥

उस कालमें राजा शन्तनुके नष्ट होते हुए वंशको फिर उन्नत होते देखकर संपूर्ण राज्योंमें यह प्रशंसा होने लगी ॥ २१ ॥

वीरसूनां काशिसुते देशानां कुरुजाङ्गलम् ।
सर्वधर्मविदां भीष्मः पुराणां गजसाह्वयम् ॥ २२ ॥

कि वीर प्रसविनी स्त्रियोंमें दोनों काशीराजकी बेटियां, देशोंमें कुरुजाङ्गल, सर्व धर्मज्ञ जनोंमें भीष्म और नगरोंमें हस्तिनापुर श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद्राज्यं न प्रत्यपद्यत ।
करणत्वाच्च विदुरः पाण्डुरासीन्महीपतिः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्व्यधिशकततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ३७५७ ॥

धृतराष्ट्र जन्मान्ध होनेके कारण राज्याधिकारी न हो सके और विदुरको शूद्राणीके गर्भमें जन्म लेनेके कारण राज्यकी प्राप्ति नहीं हुई, अतः पाण्डु ही राज्याधिप हुए ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥ ३७५७ ॥

: १०३ :

भीष्म उवाच

गुणैः समुदितं सम्यगिदं नः प्रथितं कुलम् ।
अत्यन्यान्पृथिवीपालान्पृथिव्यामधिराज्यभाक् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हमारा यह सर्वगुण युक्त और सर्वत्र प्रख्यात कुरुकुल पृथ्वी भरमें दूसरे सब पृथ्वीपालोंपर अधिकार करता आया है ॥ १ ॥

रक्षितं राजभिः पूर्वैर्धर्मविद्भिर्महात्मभिः ।
नोत्सादमगमच्चेदं कदाचिदिह नः कुलम् ॥ २ ॥

प्राचीन धर्मशील, महात्मा राजाओंके द्वारा पहिलेसे रक्षित हमारा यह कुल कभी नष्ट नहीं हुआ ॥ २ ॥

मया च सत्यवत्या च कृष्णेन च महात्मना ।
समवस्थापितं भूयो युष्मासु कुलतन्तुषु ॥ ३ ॥

मेरे, सत्यवतीके और महात्मा कृष्णद्वैपायनके प्रयत्नसे तुम तीनोंमें कुलतन्तु फिर स्थापित हुआ है ॥ ३ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वर्धते तदिदं पुत्र कुलं सागरवद्यथा ।
तथा मया विधातव्यं त्वया चैव विशेषतः ॥ ४ ॥

अतः मेरा और विशेषकर तुम्हारा ऐसा प्रयत्न होना चाहिये, कि यह कुल सागरके सदृश बढे ॥ ४ ॥

श्रूयते यादवी कन्या अनुरूपा कुलस्य नः ।
सुबलस्यात्मजा चैव तथा मद्रेश्वरस्य च ॥ ५ ॥

सुना है, कि यदुवंशी शूरसेनकी कन्या, सुबलराजकी पुत्री और मद्रदेशाधिपकी बेटी, यह तीन कन्यायें हमारे वंशके योग्य हैं ॥ ५ ॥

कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च सर्वशः ।
उचिताश्चैव संबन्धे तेऽस्माकं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६ ॥

हे पुत्र ! क्षत्राणियोंमें श्रेष्ठ वे कन्यायें कुलीन, रूपवती, संरक्षकसहित और हर बातमें हमारे साथ सम्बन्धके योग्य हैं ॥ ६ ॥

मन्ये वरयितव्यास्ता इत्यहं धीमतां वरः ।
सन्तानार्थं कुलस्यास्य यद्वा विदुर मन्यसे ॥ ७ ॥

हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुर ! मैं समझता हूं, कि इस वंशकी सन्तानके निमित्त उन्हींसे विवाह करना उचित है, अथवा तुम्हारी समझमें जो अच्छा होवे, कहो ॥ ७ ॥

विदुर उवाच

भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः ।
तस्मात्स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरु यद्धितम् ॥ ८ ॥

विदुर बोले– आप हमारे पिता हैं, आप ही हमारी माता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं, अतएव आप ही स्वयं विचारकर जो इस वंशके लिए मंगलकारी हो वही कीजिये ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच

अथ शुश्राव विप्रेभ्यो गान्धारीं सुबलात्मजाम् ।
आराध्य वरदं देवं भगनेत्रहरं हरम् ।
गान्धारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभा ॥ ९ ॥

वैशम्पायन बोले– ब्राह्मणोंके मुखसे सुना, कि शुभ लक्षणयुक्त सुबलपुत्री गान्धारीने भगनेत्रके विनाशक एवं वर देनेवाले महादेवकी आराधना कर सौ पुत्र पानेका वर प्राप्त किया है ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इति श्रुत्वा च तत्त्वेन भीष्मः कुरुपितामहः ।
ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत ॥ १० ॥

हे भारत ! इस प्रकार कुरुओंके पितामह भीष्मने सुनकर गान्धारराजके निकट दूत भेजा ॥ १० ॥

अचक्षुरिति तत्रासीत्सुबलस्य विचारणा ।
कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्ध्या तु प्रसमीक्ष्य सः ।
ददौ तां धृतराष्ट्राय गान्धारीं धर्मचारिणीम् ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र अन्धे हैं यह जानकर गान्धार राजने बहुत विचार किया । पर उन्होंने कौरवोंके कुल, प्रसिद्धि और चरित्रको भली प्रकार देख करके धृतराष्ट्रको धर्मका आचरण करनेवाली गान्धारी नामकी कन्याको देनेका निश्चय किया ॥ ११ ॥

गान्धारी त्वपि शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम् ।
आत्मानं दित्सितं चास्मै पित्रा मात्रा च भारत ॥ १२ ॥

हे भारत ! अनन्तर गान्धारीने भी सुना, कि धृतराष्ट्र अन्धे हैं फिर भी उसके माता पिता उसे उस अन्धेको देना चाहते हैं ॥ १२ ॥

ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं शुभा ।
बबन्ध नेत्रे स्वे राजन्पतिव्रतपरायणा ।
नात्यश्नीयां पतिमहमित्येवं कृतनिश्चया ॥ १३ ॥

हे राजन् ! पतिव्रत धर्ममें परायण गांधारीने– " मैं भी पतिकी अपेक्षा ज्यादा भोगोंका उपभोग नहीं करूंगी " इस प्रकारका निश्चय करके एक कपडा लिया और उसके अनेक पर्त बनाकर उससे अपनी आंखोंको बांध दिया ॥ १३ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरभ्ययात् ।
स्वसारं परया लक्ष्म्या युक्तामादाय कौरवान् ॥ १४ ॥

इसके बाद गान्धारराजके कुमार शकुनि रूप और यौवनवती अपनी भगिनीको लेकर कौरवोंके निकट गया ॥ १४ ॥

दत्त्वा स भगिनीं वीरो यथार्हं च परिच्छदम् ।
पुनरायात्स्वनगरं भीष्मेण प्रतिपूजितः ॥ १५ ॥

वीर शकुनि धृतराष्ट्रको यथोचित वस्त्रादि देकर बहिनको सम्प्रदान करके भीष्मसे भली प्रकार आदर सत्कार पाकर अपने नगरको चला आया ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गान्धार्यपि वरारोहा शीलाचारविचेष्टितैः।
तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास भारत ॥ १६ ॥

हे भरतवंश तिलक ! सुन्दरी गान्धारी शीलता, सदाचार और यत्नसे सम्पूर्ण कौरवोंको सन्तुष्ट करने लगी ! ॥ १६ ॥

वृत्तेनाराध्य तान्सर्वान्पतिव्रतपरायणा।
वाचापि पुरुषानन्यान्सुव्रता नान्वकीर्तयत् ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ३७७४ ॥

पतिव्रता, उत्तम व्रतशील गान्धारी सुन्दर व्यवहारसे गुरुओंकी सेवा किया करती थी, वाक्यसे भी कभी अन्य पुरुषका नाम नहीं लेती थी ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥ ३७७४ ॥

: १०४ :

वैशंपायन उवाच

शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताभवत्।
तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– वसुदेवके पिता शूरनामक एक महात्मा यदुकुलमें श्रेष्ठ थे। उनकी पृथा नाम्नी एक कन्या थी। वह कन्या ऐसी रूपवती थी कि भूमण्डलमें कोई नारी उसके रूपकी बराबरी नहीं कर सकती थी ॥ १ ॥

पैतृष्वसेयाय स तामनपत्याय वीर्यवान्।
अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥

हे भारत ! उस वीर्यवान् शूरने अपने पुत्ररहित फुफेरे भाई भोजराजसे पहले यह प्रतिज्ञा की थी कि– "मेरी सर्व प्रथम जो सन्तान होगी, वह तुम्हें दे दूंगा।" ॥ २ ॥

अग्रजातेति तां कन्यामग्र्यानुग्रहकाङ्क्षिणे।
प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ॥ ३ ॥

उस प्रतिज्ञाके अनुसार मित्र शूरके प्रथम गर्भसे जन्मी हुई उस कन्याको अपने मित्र महात्मा और अनुग्रहके अभिलाषी कुन्तिभोजको दे दिया ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सा नियुक्ता पितुर्गेहे देवतातिथिपूजने
उग्रं पर्यचरद्घोरं ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ४ ॥

उस पिताके घरमें देवताओंकी सेवा और अतिथियोंके सत्कारमें नियुक्त उस पृथाने एक बार एक जितेन्द्रिय और क्रोधी ब्राह्मणकी सेवा की ॥ ४ ॥

निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।
तमुग्रं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत् ॥ ५ ॥

व्रतशील, उग्रस्वभावी और धर्मके गूढ तत्त्वोंके जाननेवाले ब्राह्मण दुर्वासाको प्रयत्नसे सेवा करके प्रसन्न किया ! ॥ ५ ॥

तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया ।
अभिचाराभिसंयुक्तमब्रवीच्चैव तां मुनिः ॥ ६ ॥

उस मुनिने भविष्यत्में आपद्धर्मकी बात सोचकर उसको अभिचारयुक्त मन्त्र दिया और उससे बोले ॥ ६ ॥

यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि ।
तस्य तस्य प्रभावेण पुत्रस्तव भविष्यति ॥ ७ ॥

तुम इस मन्त्रसे जिन जिन देवताओंको बुलाओगी उन उन देवताओंके प्रभावसे तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ७ ॥

तथोक्ता सा तु विप्रेण तेन कौतूहलात्तदा ।
कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ॥ ८ ॥

यशस्विनी बाला पृथाने दुर्वासाकी यह बात सुन करके अचरजसे कन्यावस्थाहीमें सूर्यदेवको बुलाया ॥ ८ ॥

सा ददर्श तमायान्तं भास्करं लोकभावनम् ।
विस्मिता चानवद्याङ्गी दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ ९ ॥

तब उस अनिन्दित अङ्गवालीने लोकभावन आदित्यको आते देखा और उस महान् आश्चर्यको देखकर चकित रह गई ॥ ९ ॥

प्रकाशकर्मा तपनः तस्यां गर्भं दधौ ततः ।
अजीजनत्ततो वीरं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
आमुक्तकवचः श्रीमान्देवगर्भश्रियावृतः ॥ १० ॥

प्रकाश करनेवाले सूर्यने उस पृथामें गर्भ स्थापित किया, उससे सब शस्त्रोंको धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ, कवच पहने हुए, श्रीमान् और देवके पुत्रके समान तेजस्वी एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्द्योतिताननः।
अजायत सुतः कर्णः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ ११ ॥

जन्मके साथ कवचकुण्डलोंको धारण करनेके कारण तेजस्वी मुखवाला वह पुत्र कर्ण नामसे सब लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ॥ ११ ॥

प्रादाच्च तस्याः कन्यात्वं पुनः स परमद्युतिः।
दत्त्वा च ददतां श्रेष्ठो दिवमाचक्रमे ततः ॥ १२ ॥

इसके बाद परम द्युतिमान् दानियोंमें श्रेष्ठ आदित्य फिर उसको कन्यावस्था देकर आकाशमें चले गये ॥ १२ ॥

गूहमानापचारं तं बन्धुपक्षभयात्तदा।
उत्ससर्ज जले कुन्ती तं कुमारं सलक्षणम् ॥ १३ ॥

अनन्तर बन्धुओंके डरसे उस बुरी लीलाको छिपानेके लिए कुन्तीने उस उत्तम लक्षणवाले कुमारको जलमें बहा दिया ॥ १३ ॥

तमुत्सृष्टं तदा गर्भं राधाभर्ता महायशाः।
पुत्रत्वे कल्पयामास सभार्यः सूतनन्दनः ॥ १४ ॥

अति यशस्वी सूतपुत्र राधापतिने अपनी स्त्रीकी सहमतिसे जलमें छोडे हुए बालकको उठाकर पुत्र बना लिया ॥ १४ ॥

नामधेयं च चक्राते तस्य बालस्य तावुभौ।
वसुना सह जातोऽयं वसुषेणो भवत्विति ॥ १५ ॥

उस बालकने वसु अर्थात् कुण्डल और कवचरूपी धनके साथ जन्म लिया था, इससे राधापति और उसकी स्त्रीने उस बालकका वसुषेण नाम रखा ॥ १५ ॥

स वर्धमानो बलवान्सर्वास्त्रेषूद्यतोऽभवत्।
आ पृष्ठतापादादित्यमुपतस्थे स वीर्यवान् ॥ १६ ॥

बलशाली और प्रभावशाली वह बालक ज्यों ज्यों बढने लगा, त्यों त्यों अस्त्र विद्याओंमें भी दक्ष होने लगा। वह वीर्यवान् बालक जबतक पीठ गरम नहीं हो जाती थी, तबतक सूर्यकी उपासना किया करता था ॥ १६ ॥

यस्मिन्काले जपन्नास्ते स वीरः सत्यसंगरः।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीत्तस्मिन्काले महात्मनः ॥ १७ ॥

उपासना करनेके समय रण कुशल, महात्मा वसुषेणके पास भूमण्डलमें ऐसी कोई चीज नहीं थी, जो वह ब्राह्मणोंको नहीं देते थे ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षार्थं भूतभावनः ।
कुण्डले प्रार्थयामास कवचं च महाद्युतिः ॥ १८ ॥

एक समय भूतभावन और महातेजस्वी देवराज इन्द्रने भिक्षाके लिए ब्राह्मणका वेष धरकर उससे कवच और कुंडल मांगा ॥ १८ ॥

उत्कृत्य विमनाः स्वाङ्गात्कवचं रुधिरस्रवम् ।
कर्णस्तु कुण्डले छित्त्वा प्रायच्छत्स कृताञ्जलिः ॥ १९ ॥

उसपर कर्णने हाथ जोडकर दुःखी होकर अपने शरीरसे रक्तयुक्त कवचको और अपने कानसे कुण्डलको काटकर इन्द्रको दे दिया ॥ १९ ॥

शक्तिं तस्मै ददौ शक्रः विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ।
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
यस्मै क्षेप्स्यसि रुष्टः सन्नोऽनया न भविष्यति ॥ २० ॥

इन्द्रने कर्णके इस प्रकार कार्यसे विस्मित होकर उनको शक्तिअस्त्र दिया और कहा, कि देव, असुर, मनुष्य, गंधर्व, उरग और राक्षस इनमेंसे जिस पर भी तुम रुष्ट होकर यह शक्ति फेंकोगे, वह जीवित नहीं बच सकता ॥ २० ॥

पुरा नाम तु तस्यासीद्वसुषेण इति श्रुतम् ।
ततो वैकर्तनः कर्णः कर्मणा तेन सोऽभवत् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ३७९५ ॥

सूर्यके पुत्र पहिले वसुषेण नामसे प्रसिद्ध थे पर कवच काटनेके कर्मसे कर्ण और वैकर्तनके नामसे प्रख्यात हुए ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौथा अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥ ३७९५ ॥

: १०५ :

वैशम्पायन उवाच

रूपसत्त्वगुणोपेता धर्मारामा महाव्रता ।
दुहिता कुन्तिभोजस्य कृते पित्रा स्वयंवरे ॥ १ ॥
सिंहदंष्ट्रं गजस्कन्धमृषभाक्षं महाबलम् ।
भूमिपालसहस्राणां मध्ये पाण्डुमविन्दत ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– कुंतिभोजकी कन्या पृथा रूपवती, सत्त्वगुणयुक्त, व्रतशील और धर्मप्रेमी थी, पिता द्वारा उसका स्वयंवर किया जानेपर उसने हजारों राजाओंमेंसे सिंहके सदृश, विक्रमी, हाथीके समान कंधोंवाले, बैलकी भांति नेत्रवाले, महाबली पाण्डुको ही चुना ॥ १-२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स तया कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरुनन्दनः।
युयुजेऽमितसौभाग्यः पौलोम्या मघवानिव ॥ ३ ॥

देवराज जिस प्रकार शचीके साथ मिले थे, उसके समान ही अतुल सौभाग्ययुक्त कुरुनन्दन कुन्तीभोजकी कन्यासे मिले ॥ ३ ॥

यात्वा देवव्रतेनापि मद्राणां पुटभेदनम्।
विश्रुता त्रिषु लोकेषु माद्री मद्रपतेः सुता ॥ ४ ॥
सर्वराजसु विख्याता रूपेणासदृशी भुवि।
पाण्डोरर्थे परिक्रीता धनेन महता तदा।
विवाहं कारयामास भीष्मः पाण्डोर्महात्मनः ॥ ५ ॥

देवव्रत भीष्मने भी जाकर तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मद्रराजकी पुत्री माद्रीको जो सब राजाओंमें प्रसिद्ध और रूपमें विश्वमें अद्वितीय थी, उसे पाण्डुके लिए बहुत धन देकर खरीद ली, और भीष्मने महात्मा पाण्डुके साथ उसका विवाह करवा दिया ॥ ४–५ ॥

सिंहोरस्कं गजस्कन्धमृषभाक्षं मनस्विनम्।
पाण्डुं दृष्ट्वा नरव्याघ्रं व्यस्मयन्त नरा भुवि ॥ ६ ॥

शेरके समान जांघ, हाथीके समान कंधे, बैलके समान आंखोंवाले इस नरश्रेष्ठ मनस्वी पाण्डुको देखकर पृथिवीके सब मनुष्य आश्चर्यचकित होते थे ॥ ६ ॥

कृतोद्वाहस्ततः पाण्डुर्बलोत्साहसमन्वितः।
जिगीषमाणो वसुधां ययौ शत्रूननेकशः ॥ ७ ॥

विवाह करके बल और उत्साहसे सम्पन्न पाण्डुने पृथ्वीको जीतनेकी इच्छासे अनेक शत्रुओंको परास्त किया ॥ ७ ॥

पूर्वमागस्कृतो गत्वा दशार्णाः समरे जिताः।
पाण्डुना नरसिंहेन कौरवाणां यशोभृता ॥ ८ ॥

कौरवोंके यश बढानेवाले नरोंमें सिंहरूपी पाण्डुने पहिले ही दोषी दशार्ण देशके राजाओंको लडाईमें परास्त किया ॥ ८ ॥

ततः सेनामुपादाय पाण्डुर्नानाविधध्वजाम्।
प्रभूतहस्त्यश्वरथां पदातिगणसंकुलाम् ॥ ९ ॥
आगस्कृत्सर्ववीराणां वैरी सर्वमहीभृताम्।
गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दार्वो राजगृहे हतः ॥ १० ॥

इसके बाद पाण्डुने रंगबिरंगे झण्डोंके साथ अगणित हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे बनी हुई सेनाको लेकर अनेक राजाओंको नुकसान पहुंचानेवाले सभी राजाओंके शत्रु मगधके रक्षक दार्व नामक राजाका राजमन्दिरहीमें वध किया ॥ ९-१० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः कोशं समादाय वाहनानि बलानि च ।
पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः ॥ ११ ॥

वहांसे कोष और बहुत वाहन और सेना लूटकर पाण्डुने मिथिलामें जाकरके विदेहवासियोंको परास्त किया ॥ ११ ॥

तथा काशिषु सुह्मेषु पुण्ड्रेषु भरतर्षभ ।
स्वबाहुबलवीर्येण कुरूणामकरोद्यशः ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर उन्होंने काशी, सुह्म और पुण्ड्रदेशमें जाकर अपने भुजवीर्यसे कौरव वंशका यश फैलाया ॥ १२ ॥

तं शरौघमहाज्वालमस्त्रार्चिषमरिन्दमम् ।
पाण्डुपावकमासाद्य व्यदह्यन्त नराधिपाः ॥ १३ ॥

तब बाणरूपी ज्वालाओंसे सुशोभित और शस्त्ररूपी तेजसे प्रज्ज्वलित शत्रुनाशी पाण्डुरूपी अग्निमें भूपाललोग जल जल कर मरने लगे ॥ १३ ॥

ते ससेनाः ससेनेन विध्वंसितबला नृपाः ।
पाण्डुना वशगाः कृत्वा कुरुकर्मसु योजिताः ॥ १४ ॥

सेना सहित पाण्डुने सेनासहित नरेशोंके बलको तोड कर और वशमें लाकर कौरवोंके अधिकारमें नियुक्त किया ॥ १४ ॥

तेन ते निर्जिताः सर्वे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
तमेकं मेनिरे शूरं देवेष्विव पुरन्दरम् ॥ १५ ॥

धरती भरके सब भूपोंने पाण्डुसे परास्त होकर मानवोंमें उनको ऐसा वीर समझा, कि जैसे देवोंमें इन्द्र है ॥ १५ ॥

तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः ।
उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च ॥ १६ ॥

वे सब राजा हाथ जोड उनको प्रणाम कर नाना रत्न और धनोंको लेकर पाण्डुके पास गए ॥ १६ ॥

मणिमुक्ताप्रवालं च सुवर्णं रजतं तथा ।
गोरत्नान्यश्वरत्नानि रथरत्नानि कुञ्जरान् ॥ १७ ॥
खरोष्ट्रमहिषांश्चैव यच्च किंचिदजाविकम् ।
तत्सर्वं प्रतिजग्राह राजा नागपुराधिपः ॥ १८ ॥

इनके अलावा वे राजा अस्त्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण, चांदी, उत्तम गौ, उत्तम घोडे, उत्तम रथ और हाथी, गदहे, ऊंट, भैंसे, बकरे इत्यादि नाना धन भेंट लेकर उनके सामने खडे हुए । हस्तिनापुरके नाथ पाण्डुने उन सबको ले लिया ॥ १७-१८ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तदादाय ययौ पाण्डुः पुनर्मुदितवाहनः।
हर्षयिष्यन्स्वराष्ट्राणि पुरं च गजसाह्वयम् ॥ १९ ॥

तब उन सबको लेकर वह अति प्रसन्न हो सेनाओंके साथ अपने राज्यकी प्रजा और पुरवासियोंको आनन्द देते हुए हस्तिनापुरमें लौट गये ॥ १९ ॥

शंतनो राजसिंहस्य भरतस्य च धीमतः।
प्रनष्टः कीर्तिजः शब्दः पाण्डुना पुनरुद्धृतः ॥ २० ॥

धीमान् भरत और राजाओंके सिंहरूपी शन्तनुकी नष्ट होती हुई कीर्तिका अब पाण्डुने फिर उद्धार किया ॥ २० ॥

ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जग्हुः कुरुधनानि च।
ते नागपुरसिंहेन पाण्डुना करदाः कृताः ॥ २१ ॥

जिन राजाओंने पहले कुरुवंशके धन और राज्य हर लिया था, अब हस्तिनापुरके राजा पाण्डुने उन राजाओंको कर देनेवाला बनाया ॥ २१ ॥

इत्यभाषन्त राजानो राजामात्याश्च संगताः।
प्रतीतमनसो हृष्टाः पौरजानपदैः सह ॥ २२ ॥

इस प्रकारकी बातें राजागण, मंत्रीगण और प्रसन्न मनवाले पुरजन सब मिलकर आपसमें कर रहे थे ॥ २२ ॥

प्रत्युद्ययुस्तं संप्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः।
ते नदूरमिवाध्वानं गत्वा नागपुरालयाः।
आवृतं ददृशुर्लोकं हृष्टा बहुविधैर्जनैः ॥ २३ ॥

तब पाण्डुके निकट आनेपर भीष्म आदि कौरव हृदयसे उनका स्वागत करनेको चले। वे हस्तिनापुरसे कुछ दूर जाकर राजाके साथियोंको बहुत तरहके जनोंसे घिरा देखकर प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

नानायानसमानीतै रत्नैरुच्चावचैस्तथा।
हस्त्यश्वरथरत्नैश्च गोभिरुष्ट्रैरथाविकैः।
नान्तं ददृशुरासाद्य भीष्मेण सह कौरवाः ॥ २४ ॥

नाना यानोंपर लाये गए बहुमूल्य रत्न, बडे बडे हाथी, घोडे, रथ, गाय, ऊंट तथा भेड आदि नाना धन रत्न इतने अधिक थे, कि भीष्म सहित कौरवोंने उनका अंत नहीं देखा ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कौसल्यानन्दवर्धनः ।
यथार्हं मानयामास पौरजानपदानपि ॥ २५ ॥

कोसल देशकी राजपुत्री अम्बालिकाके आनंदको बढानेवाले पांडुने अपने पिता स्वरूप भीष्मके पांव छूकर नगर तथा जनपदवासियोंका भी यथोचित सम्मान किया ॥ २५ ॥

प्रमृद्य परराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम् ।
पुत्रमासाद्य भीष्मस्तु हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ॥ २६ ॥

शत्रुओंके राष्ट्रोंको तोडकर सफल मनोरथवाले होकर घरको लौटे हुए अपने पुत्ररूप पांडुको पाकर भीष्म आनंदसे आंसू बहाने लगे ॥ २६ ॥

स तूर्यशतसंघानां भेरीणां च महास्वनैः ।
हर्षयन्सर्वशः पौरान्विवेश गजसाह्वयम् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ३८२२ ॥

पाण्डुने अनेक तूर्य और भोंपू आदिके घोर शब्दसे संपूर्ण पुरवासियोंको प्रसन्न कर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ ३८२२ ॥

: १०६ :

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम् ।
भीष्माय सत्यवत्यै च मात्रे चोपजहार सः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर पाण्डुने धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने भुजबलसे प्राप्त किये हुए धनको भीष्म, सत्यवती और माता अम्बालिकाको भेंटमें दे दिया ॥ १ ॥

विदुराय च वै पाण्डुः प्रेषयामास तद्धनम् ।
सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत् ॥ २ ॥

पाण्डुने कुछ धन विदुरके पास भी भेजा और उस धर्मात्मा पाण्डुने आत्मजनोंको भी धनसे सन्तुष्ट किया ॥ २ ॥

ततः सत्यवतीं भीष्मः कौसल्यां च यशस्विनीम् ।
शुभैः पाण्डुजितै रत्नैस्तोषयामास भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! भीष्मने पाण्डुके द्वारा जीत कर लाये हुए नाना रत्नोंसे सत्यवती और यशस्विनी कौसल्याको प्रसन्न किया ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ननन्द माता कौसल्या तमप्रतिमतेजसम्।
जयन्तमिव पौलोमी परिष्वज्य नरर्षभम् ॥ ४ ॥

शची जिस प्रकार जयन्तको गलेसे लगाकर सुखको प्राप्त करती है, वैसे ही कौसल्याने अतुल तेजस्वी नरश्रेष्ठ पाण्डुको गले लगा करके आनन्द पाया ॥ ४ ॥

तस्य वीरस्य विक्रान्तैः सहस्रशतदक्षिणैः।
अश्वमेधशतैरीजे धृतराष्ट्रो महासखैः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रने वीरवर पाण्डुके बलार्जित धनसे सैंकडों सहस्रों दक्षिणावाले सैंकडों अश्वमेध यज्ञ तथा अन्य महायज्ञ किए ॥ ५ ॥

संप्रयुक्तश्च कुन्त्या च माद्र्या च भरतर्षभ।
जिततन्द्रीस्तदा पाण्डुर्बभूव वनगोचरः ॥ ६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! आलस्यको जीते हुए पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके साथ संयुक्त होकर वनमें जा बसे ! ॥ ६ ॥

हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च।
अरण्यनित्यः सततं बभूव मृगयापरः ॥ ७ ॥

वह पाण्डु सुखदायी भवन और कोमल बिस्तर छोडकर वनमें सदा रहते हुए शिकार खेलने लगे ॥ ७ ॥

स चरन्दक्षिणं पार्श्वं रम्यं हिमवतो गिरेः।
उवास गिरिपृष्ठेषु महाशालवनेषु च ॥ ८ ॥

वह हिमालय पहाडके सुन्दर दाहिने भागमें घूमघाम कर बडे बडे साल वनोंसे शोभित पहाडकी चोटी पर रहने लगे ॥ ८ ॥

रराज कुन्त्या माद्र्या च पाण्डुः सह वने वसन्।
करेण्वोरिव मध्यस्थः श्रीमान्पौरन्दरो गजः ॥ ९ ॥

श्रीमान् पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके संग वनमें रहते हुए दो हथनियोंके बीचमें इन्द्रके हाथी ऐरावतके समान शोभा पाने लगे ॥ ९ ॥

भारतं सह भार्याभ्यां बाणखड्गधनुर्धरम्।
विचित्रकवचं वीरं परमास्त्रविदं नृपम्।
देवोऽयमित्यमन्यन्त चरन्तं वनवासिनः ॥ १० ॥

दो स्त्रियां साथ लिये, खड्ग, बाण और धनुष धारे हुए, परमास्त्र चलानेमें दक्ष, विचित्र कवचसे सुशोभित, विचरते हुए पाण्डुको देख करके वनवासी लोग देवता समझने लगे ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य कामांश्च भोगांश्च नरा नित्यमतन्द्रिताः ।
उपजह्रुर्वनान्तेषु धृतराष्ट्रेण चोदिताः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्रकी आज्ञासे मनुष्यगण सदा आलस्यसे रहित होकर वनमें उनके लिये कामना और भोगकी सामग्री पहुंचाने लगे ॥ ११ ॥

अथ पारशवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः ।
रूपयौवनसंपन्नां स शुश्रावापगासुतः ॥ १२ ॥

इधर गङ्गापुत्र भीष्मने सुना, कि महीपाल देवकके शूद्राणीके गर्भसे जन्मी हुई रूप और यौवनयुक्त एक कन्या है ॥ १२ ॥

ततस्तु वरयित्वा तामानाय्य पुरुषर्षभः ।
विवाहं कारयामास विदुरस्य महामतेः ॥ १३ ॥

तब पुरुषोंमें श्रेष्ठ उन्होंने राजा देवकसे मांगकर वह कन्या ला करके महामति विदुरका विवाह कर दिया ॥ १३ ॥

तस्यां चोत्पादयामास विदुरः कुरुनन्दनः ।
पुत्रान्विनयसंपन्नानात्मनः सदृशान्गुणैः ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ ३८३६ ॥

कुरुनन्दन विदुरने उस कन्यासे अपने समान गुण और नम्रतासे युक्त अनेक पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छठवां अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ ३८३६ ॥

: १०७ :

वैशंपायन उवाच

ततः पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां जनमेजय ।
धृतराष्ट्रस्य वैश्यायामेकश्चापि शतात्परः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे जनमेजय ! इसके बाद धृतराष्ट्रके वीर्य और गन्धारीके गर्भसे सौ पुत्र और वैश्याके गर्भसे एक और पुत्रने जन्म लिया ॥ १ ॥

पाण्डोः कुन्त्यां च माद्र्यां च पञ्च पुत्रा महारथाः ।
देवेभ्यः समपद्यन्त सन्तानाय कुलस्य वै ॥ २ ॥

और पाण्डुके वंशकी रक्षाके लिये देवोंने कुंती और माद्रीके गर्भसे महारथी पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जनमेजय उवाच

कथं पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां द्विजसत्तम।
कियता चैव कालेन तेषामायुश्च किं परम् ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा– हे द्विजश्रेष्ठ! गांधारीके गर्भसे कैसे और कितने दिनोंमें सौ पुत्र उत्पन्न हुए? उनकी आयु कितनी थी ॥ ३ ॥

कथं चैकः स वैश्यायां धृतराष्ट्रसुतोऽभवत्।
कथं च सदृशीं भार्यां गन्धारीं धर्मचारिणीम्।
आनुकूल्ये वर्तमानां धृतराष्ट्रोऽत्यवर्तत ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रने वैश्याके गर्भसे क्यों एक पुत्रको उत्पन्न किया? गांधारीके पतिव्रता और अपने पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली होने पर भी धृतराष्ट्रने अपनी पत्नीका अतिक्रमण क्यों किया? ॥ ४ ॥

कथं च शप्तस्य सतः पाण्डोस्तेन महात्मना।
समुत्पन्ना दैवतेभ्यः पुत्राः पञ्च महारथाः ॥ ५ ॥

महात्मा मृगरूपी मुनिके शाप देनेपर भी देवोंसे पाण्डुके पांच महारथी पुत्र कैसे उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

एतद्विद्वन्यथावृत्तं विस्तरेण तपोधन।
कथयस्व न मे तृप्तिः कथ्यमानेषु बन्धुषु ॥ ६ ॥

हे विद्वन् तपोधन! यह सब कथा विस्तृत रूपसे यथारीतिसे कहिये, अपने कुलका चरित्र सुनकर मैं तृप्त नहीं हूं ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

क्षुच्छ्रमाभिपरिग्लानं द्वैपायनमुपस्थितम्।
तोषयामास गान्धारी व्यासस्तस्यै वरं ददौ ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले– एक समय भगवान् द्वैपायनके भूख और थकावटसे कातर होकर गांधारीके पास आने पर गांधारीने उनको संतुष्ट किया था; तब व्यासने गांधारीको वर दिया ॥ ७ ॥

सा वव्रे सदृशं भर्तुः पुत्राणां शतमात्मनः।
ततः कालेन सा गर्भं धृतराष्ट्रादथाग्रहीत् ॥ ८ ॥

गांधारीने यह वर मांगा कि उसके पतिसे पतिके समान ही सौ पुत्र हों। अनन्तर गांधारी योग्य कालमें धृतराष्ट्रसे गर्भवती हुई ॥ ८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संवत्सरद्वयं तं तु गान्धारी गर्भमाहितम् ।
अप्रजा धारयामास ततस्तां दुःखमाविशत् ॥ ९ ॥

स्थापित किए गर्भको गांधारी दो वर्षतक बिना कुछ प्रसूत किए धारण किए रही, (उस पर भी कुछ प्रसूत न हुआ देखकर) वह बडी दुःखी हो गई ॥ ९ ॥

श्रुत्वा कुन्तीसुतं जातं बालार्कसमतेजसम् ।
उदरस्यात्मनः स्थैर्यमुपलभ्यान्वचिन्तयत् ॥ १० ॥

तब यह सुन कर कि कुंतीके बालसूर्यके समान पुत्र हुए हैं, अपने गर्भको स्थिर देखकर विचारमें पड गई ॥ १० ॥

अज्ञातं धृतराष्ट्रस्य यत्नेन महता ततः ।
सोदरं पातयामास गान्धारी दुःखमूर्च्छिता ॥ ११ ॥

तब दुःखसे मूर्च्छित होकर उसने धृतराष्ट्रके न जानते हुए बडे यत्नपूर्वक अपने गर्भको गिरा दिया ॥ ११ ॥

ततो जज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठीलेव संहता ।
द्विवर्षसंभृतां कुक्षौ तामुत्स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १२ ॥

उससे दो वर्षका वह गर्भ कटी हुई लोहेकी गेंदके समान मांस पिण्डके रूपमें भूमिपर गिरा और गांधारी उसे त्यागनेके लिए तैय्यार हुई ॥ १२ ॥

अथ द्वैपायनो ज्ञात्वा त्वरितः समुपागमत् ।
तां स मांसमयीं पेशीं ददर्श जपतां वरः ॥ १३ ॥

जपनेवालोंमें श्रेष्ठ द्वैपायनने उस बातको जानकर तुरन्त वहां पहुंच करके उस मांसपेशी-को देखा ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीत्सौबलेयीं किमिदं ते चिकीर्षितम् ।
सा चात्मनो मतं सत्यं शशंस परमर्षये ॥ १४ ॥

और तब सुबलराजकी कन्या गांधारीसे बोले– तुम यह क्या करनेको उद्यत हुई हो। गांधारीने महर्षिसे अपनी यह सच्ची इच्छा प्रगट कर दी ॥ १४ ॥

ज्येष्ठं कुन्तीसुतं जातं श्रुत्वा रविसमप्रभम् ।
दुःखेन परमेणेदमुदरं पातितं मया ॥ १५ ॥

कुन्तीके सूर्यके समान प्रकाशमान् एक ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ सुनकर अति दुःखसे मैंने गर्भ गिरा दिया है ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शतं च किल पुत्राणां वितीर्णं मे त्वया पुरा।
इयं च मे मांसपेशी जाता पुत्रशताय वै ॥ १६ ॥

आपने पहिले मुझको वर दिया था, कि सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, अब सौ पुत्रोंके बदले यह मांसपेशी पैदा हुई है ॥ १६ ॥

व्यास उवाच

एवमेतत्सौबलेयि नैतज्जात्वन्यथा भवेत्।
वितथं नोक्तपूर्वं मे स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ॥ १७ ॥

व्यास बोले– हे सुबलपुत्री ! जो कहा था, सोही होगा, कदापि बात मिथ्या नहीं होगी। हँसीमें भी मैंने कभी पहले झूठी बात नहीं कही है, फिर यह बात मिथ्या कैसे हो सकती है ॥ १७ ॥

घृतपूर्णं कुण्डशतं क्षिप्रमेव विधीयताम्।
शीताभिरद्भिरष्ठीलामिमां च परिषिञ्चत ॥ १८ ॥

अब घृतसे सौ घडे भरकर जल्दी ही तैय्यार करो और ठण्डे जलसे इस मांसपेशीको नहलाओ ॥ १८ ॥

वैशंपायन उवाच

सा सिच्यमाना अष्ठीला अभवच्छतधा तदा।
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां गर्भाणां पृथगेव तु ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले– तब नहलाते नहलाते उस मांसपेशीके सौ टुकडे हो गए और प्रत्येक भाग अंगूठेके पोरके समान था ॥ १९ ॥

एकाधिकशतं पूर्णं यथायोगं विशां पते।
मांसपेश्यास्तदा राजन्क्रमशः कालपर्ययात् ॥ २० ॥

हे प्रजापालक राजन् ! समयके आनेपर क्रमशः उस मांस पिण्डके एक सौ एक टुकडे पूर्ण हो गए ॥ २० ॥

ततस्तांस्तेषु कुण्डेषु गर्भानवदधे तदा।
स्वनुगुप्तेषु देशेषु रक्षां च व्यदधात्ततः ॥ २१ ॥

तब वह मांसपेशियां घीसे भरे घडोंमें रखकर भले अच्छे गुप्त स्थानमें भली भांति रख दी गई ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शशास चैव भगवान्कालेनैतावता पुनः ।
विघट्टनीयान्येतानि कुण्डानीति स्म सौबलीम् ॥ २२ ॥

भगवान् व्यास तब सुबलकन्यासे बोले– इतने समयके ही अर्थात् दो वर्ष बाद यह सब घडे खोलना ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तथा प्रतिविधाय च ।
जगाम तपसे धीमान्हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥ २३ ॥

धीमान् भगवान् द्वैपायन यह कहकर वह सब गर्भ स्थापन कराके फिर तपके लिये ऊंची ऊंची चट्टानोंवाले हिमाचलको चले गए ॥ २३ ॥

जज्ञे क्रमेण चैतेन तेषां दुर्योधनो नृपः ।
जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

इसके बाद योग्यकालमें उन टुकडोंमेंसे पहिले राजा दुर्योधनका जन्म हुआ, पर राजा युधिष्ठिर पहिले जन्म लेनेके कारण ज्येष्ठ थे ॥ २४ ॥

जातमात्रे सुते तस्मिन्धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।
समानीय बहून्विप्रान्भीष्मं विदुरमेव च ॥ २५ ॥

हे महाराज ! उस पुत्रके उत्पन्न होते ही राजा धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर और बहुतसे ब्राह्मणोंको बुलवाकर बोले ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरो राजपुत्रो ज्येष्ठो नः कुलवर्धनः ।
प्राप्तः स्वगुणतो राज्यं न तस्मिन्वाच्यमस्ति नः ॥ २६ ॥

हमारे वंश बढानेवाले राजपुत्र युधिष्ठिर ज्येष्ठ हैं, अतः वह अपने ही गुणसे राज्यको पानेके अधिकारी हैं, उस विषयमें मुझे कुछ कहना नहीं है ॥ २६ ॥

अयं त्वनन्तरस्तस्मादपि राजा भविष्यति ।
एतद्धि ब्रूत मे सत्यं यदत्र भविता ध्रुवम् ॥ २७ ॥

पर मेरे इस पुत्रने युधिष्ठिरके बाद जन्म लिया है, उससे क्या यह कुमार राजा हो सकेगा ? इस विषयमें जो ठीक हो, वह आप मुझसे सच सच कहिये ॥ २७ ॥

वाक्यस्यैतस्य निधने दिक्षु सर्वासु भारत ।
क्रव्यादाः प्राणदन्घोराः शिवाश्चाशिवशंसिनः ॥ २८ ॥

हे भारत ! इस बातके कहे जानेपर सभी दिशाओंमें सियार और मांस खानेवाले कुटिल जंतु अमङ्गलकारी शब्द मचाने लगे ॥ २८ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लक्षयित्वा निमित्तानि तानि घोराणि सर्वशः।
तेऽब्रुवन्ब्राह्मणा राजन्विदुरश्च महामतिः ॥ २९ ॥
व्यक्तं कुलान्तकरणो भवितैष सुतस्तव।
तस्य शान्तिः परित्यागे पुष्ट्या त्वपनयो महान् ॥ ३० ॥

चारों ओर यह सब अमङ्गल चिह्न देख करके ब्राह्मणगण और महामति विदुर धृतराष्ट्रसे बोले– यह स्पष्ट है कि आपका यह पुत्र कुलको समाप्त करनेवाला होगा, इसको त्याग देने-हीसे कुलकी शांति हो सकती है अन्यथा यदि आप इसका पोषण करेंगे, तो बहुत आपत्तिकारक होगा ॥ २९-३० ॥

शतमेकोनमप्यस्तु पुत्राणां ते महीपते।
एकेन कुरु वै क्षेमं लोकस्य च कुलस्य च ॥ ३१ ॥

हे महीपाल! आपके निन्यानव्वे पुत्र तो बचेंगे, आप एकको छोडकर इस वंश और जगत्का हित कीजिये ॥ ३१ ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ ३२ ॥

हे महाराज! कहा है, कि कुलकी रक्षाके लिये एकको त्याग दे, ग्रामकी भलाईके लिये कुलको त्याग दे, देशकी भलाईके लिये ग्रामको त्याग दे और आत्माके लिये पृथ्वीको त्याग देवे ॥ ३२ ॥

स तथा विदुरेणोक्तस्तैश्च सर्वैर्द्विजोत्तमैः।
न चकार तथा राजा पुत्रस्नेहसमन्वितः ॥ ३३ ॥

उन सब द्विजों और विदुरके ऐसा कहने पर भी राजा धृतराष्ट्रने पुत्रके स्नेहसे उनकी बात नहीं मानी ॥ ३३ ॥

ततः पुत्रशतं सर्वं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव।
मासमात्रेण संजज्ञे कन्या चैका शताधिका ॥ ३४ ॥

हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर महीने भरमें धृतराष्ट्रके सौ पुत्र और एक सौ एकवें कन्याने जन्म लिया ॥ ३४ ॥

गान्धार्यां क्लिश्यमानायामुदरेण विवर्धता।
धृतराष्ट्रं महाबाहुं वैश्या पर्यचरत्किल ॥ ३५ ॥

गांधारी जब बढते हुए गर्भकी पीडासे कातर थी, उस समय उस महाबाहु धृतराष्ट्रकी सेवा एक वैश्या अर्थात् वैश्य जातिकी एक स्त्री करती थी ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिन्संवत्सरे राजन्धृतराष्ट्रान्महायशाः ।
जज्ञे धीमांस्ततस्तस्यां युयुत्सुः करणो नृप ॥ ३६ ॥

उसी वर्ष, हे राजन् ! उस वैश्याके गर्भसे धृतराष्ट्रने अतियशस्वी और धीमान् युयुत्सु नामक एक करण पुत्र उत्पन्न किया (वैश्याके गर्भ और क्षत्रियके वीर्यसे जन्म लेनेके हेतु वह पुत्र करण कहा गया है) ॥ ३६ ॥

एवं पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
महारथानां वीराणां कन्या चैकाथ दुःशला ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ३८७३ ॥

इस प्रकार धीमान् धृतराष्ट्रसे महारथी वीर सौ पुत्र और एक कन्या दुःशला उत्पन्न हुई ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥ ३८७३ ॥

: १०८ :

जनमेजय उवाच

ज्येष्ठानुज्येष्ठतां तेषां नामधेयानि चाभिभो ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्येण कीर्तय ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– धृतराष्ट्रके बडे छोटेके क्रमसे सब लडकोंके और हरेकका अलग नाम आद्योपांत कहिये ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन्दुःशासनस्तथा ।
दुःसहो दुःशलश्चैव जलसन्धः समः सहः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे महाराज ! दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन तथा दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह ॥ २ ॥

विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ॥ ३ ॥

विंद, अनुविंद, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण और दुर्मुख, दुष्कर्ण और कर्ण ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १०९ :

जनमेजय उवाच

कथितो धार्तराष्ट्राणामार्षः संभव उत्तमः।
अमानुषो मानुषाणां भवता ब्रह्मवित्तम ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! मनुष्य धृतराष्ट्रके पुत्रोंके श्रेष्ठ अमानुष अर्थात् अलौकिक आर्ष जन्मकी कथा आप कह चुके ॥ १ ॥

नामधेयानि चाप्येषां कथ्यमानानि भागशः।
त्वत्तः श्रुतानि मे ब्रह्मन्पाण्डवानां तु कीर्तय ॥ २ ॥

और उनके अलग अलग नाम भी कह चुके हैं। हे ब्राह्मण ! वह सब आपसे सुन लिया है, अब पांडवोंके चरित्रकी कथा कहिये ॥ २ ॥

ते हि सर्वे महात्मानो देवराजपराक्रमाः।
त्वयैवांशावतरणे देवभागाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

आपने वंशोंके अवतरणमें कहा है, कि पांडवगण सब महात्मा तथा इन्द्रके समान पराक्रमी थे और उन्होंने देवोंके अंशोंसे जन्म लिया था ॥ ३ ॥

तस्मादिच्छाम्यहं श्रोतुमतिमानुषकर्मणाम्।
तेषामाजननं सर्वं वैशम्पायन कीर्तय ॥ ४ ॥

इसलिये मैं उन अलौकिक कर्म करनेवाले पांडवोंकी जन्मसे लेकर आद्योपांत संपूर्ण कथा सुनना चाहता हूं, हे वैशम्पायन ! आप कहिये ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

राजा पाण्डुर्महारण्ये मृगव्यालनिषेविते।
वने मैथुनकालस्थं ददर्श मृगयूथपम् ॥ ५ ॥

वैशम्पायन बोले– महाराज ! राजा पांडुने मृगव्यालोंसे भरे एक बडे वनमें मैथुनकालमें आसक्त एक यूथपति मृगको देखा ॥ ५ ॥

ततस्तां च मृगीं तं च रुक्मपुङ्खैः सुपत्रिभिः।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः पाण्डुः पञ्चभिराशुगैः ॥ ६ ॥

तब उन्होंने सोनेकी पूंछसे सुशोभित सुंदर पंखवाले नोकदार और तेज चलनेवाले पांच बाणोंसे उस मृग और मृगीको विद्ध किया ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स च राजन्महातेजा ऋषिपुत्रस्तपोधनः ।
भार्यया सह तेजस्वी मृगरूपेण संगतः ॥ ७ ॥

हे महाराज ! कोई बडे तेजस्वी तपोधन ऋषिकुमार मृगका स्वरूप लेकर स्त्रीके साथ उस प्रकारसे समागम कर रहे थे ॥ ७ ॥

संसक्तस्तु तया मृग्या मानुषीमीरयन्गिरम् ।
क्षणेन पतितो भूमौ विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ८ ॥

वह उस मृगीसे लिपटे हुए थे कि उसी समय बाणाघातसे क्षण भरमें धरतीपर गिरकर विकल-चित्तसे मनुष्यकी वाणीमें पांडुसे बोले ॥ ८ ॥

मृग उवाच

कामक्रोधपरीतापि बुद्ध्यङ्गरहितापि च ।
वर्जयन्ति नृशंसानि पापेष्वभिरता नराः ॥ ९ ॥

काम क्रोधयुक्त, हीनबुद्धि और सदा पापमें रत जन भी ऐसा निष्ठुर कार्य नहीं करते ॥९॥

न विधिं ग्रसते प्रज्ञा प्रज्ञां तु ग्रसते विधिः ।
विधिपर्यागतानर्थान्प्रज्ञा न प्रतिपद्यते ॥ १० ॥

पर मानवी बुद्धि दैवका पार नहीं पा सकती, दैव ही मानवी बुद्धिसे बढा चढा होता है, इसलिये दैवी विषयको बुद्धिमान् जन भी समझ नहीं सकते ॥ १० ॥

शश्वद्धर्मात्मनां मुख्ये कुले जातस्य भारत ।
कामलोभाभिभूतस्य कथं ते चलिता मतिः ॥ ११ ॥

हे भारत ! तुम सदासे धर्मयुक्त प्रधान वंशमें जन्म लेकर क्यों काम लोभसे अभिभूत हुए, और क्यों तुम्हारा चित्त ऐसा डगमगाया ? ॥ ११ ॥

पाण्डुरुवाच

शत्रूणां या वधे वृत्तिः सा मृगाणां वधे स्मृता ।
राज्ञां मृग न मां मोहात्त्वं गर्हयितुमर्हसि ॥ १२ ॥

पाण्डु बोले– हे मृग ! राजालोगोंकी शत्रुनाशनमें जैसी वृत्ति होती है, मृग वेधनेमें भी वैसी ही वृत्ति होती है, इसलिये तुम्हें मोहसे मुझ पर ऐसा लाञ्छन नहीं लगाना चाहिये ॥१२॥

अच्छद्मनामायया च मृगाणां वध इष्यते ।
स एव धर्मो राज्ञां तु तद्विद्वान्किं नु गर्हसे ॥ १३ ॥

छिपकर और कौशलसे मृगका वध करना चाहिए, यही राजाओंका धर्म है; तुम फिर विद्वान् होते हुए भी इस विषयमें मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो ? ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विविंशतिर्विकर्णश्च जलसंधः सुलोचनः।
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ ४ ॥

विविंशति, विकर्ण, जलसंध, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन ॥४॥

दुर्मदो दुष्प्रगाहश्च विवित्सुर्विकटः समः।
ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ५ ॥

दुर्मद, दुष्प्रगाह, विवित्सु, विकट, सम, ऊर्णनाभ, सुनाभ तथा नंद, उपनन्द ॥ ५ ॥

सेनापतिः सुषेणश्च कुण्डोदरमहोदरौ।
चित्रबाणश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ६ ॥

सेनापति, सुषेण, कुण्डोदर महोदर, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन ॥ ६ ॥

अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः।
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्धनः ॥ ७ ॥

अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्धन ॥ ७ ॥

उग्रायुधो भीमकर्मा कनकायुर्दृढायुधः।
दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥ ८ ॥

उग्रायुध, भीमकर्मा, कनकायुः, दृढायुध, दृढवर्मा, दृढक्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर ॥ ८ ॥

दृढसन्धो जरासन्धः सत्यसन्धः सदःसुवाक्।
उग्रश्रवा अश्वसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः ॥ ९ ॥

दृढसन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक्, उग्रश्रवा, अश्वसेन, सेनानी, दुष्पराजय ॥९॥

अपराजितः पण्डितको विशालाक्षो दुरावरः।
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥ १० ॥

अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष, दुरावर, दृढहस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्च ॥ १० ॥

आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदन्तोग्रयायिनौ।
कवची निषङ्गी पाशी च दण्डधारो धनुर्ग्रहः ॥ ११ ॥

आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदन्त, उग्रयायी, कवची, निषंगी, पाशी, दण्डधार, धनुग्रह ॥११॥

उग्रो भीमरथो वीरो वीरबाहुरलोलुपः।
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथस्त्रयः ॥ १२ ॥

उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा और दृढरथ ये तीन ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी दीर्घलोचनः ।
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरुः कनकध्वजः ॥ १३ ॥

अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरु, कनकध्वज ॥१३॥

कुण्डाशी विरजाश्चैव दुःशला च शताधिका ।
एतदेकशतं राजन्कन्या चैका प्रकीर्तिता ॥ १४ ॥

कुण्डाशी, विरजा, यह सौ पुत्र और एकसौ एकवीं कन्या दुःशला है। महाराज ! धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके और सौके अतिरिक्त कन्या दुःशलाका नाम यह कह चुका ॥ १४ ॥

नामधेयानुपूर्व्येण विद्धि जन्मक्रमं नृप ।
सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १५ ॥
सर्वे वेदविदश्चैव राजशास्त्रेषु कोविदाः ।
सर्वे संसर्गविद्यासु विद्याभिजनशोभिनः ॥ १६ ॥

हे महाराज ! इन नामोंके क्रमके अनुसार इनके जन्मका क्रम भी जानना । वे सबके सब महारथी शूर, युद्धमें दक्ष, वेदमें पंडित और सब राजशास्त्रमें निपुण थे सभी संसर्ग अर्थात् सृष्टि विषयक जो ज्ञान विज्ञान था, सभीमें कुशल थे ॥ १५-१६ ॥

सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते ।
धृतराष्ट्रेण समये समीक्ष्य विधिवत्तदा ॥ १७ ॥

हे महीपाल ! धृतराष्ट्रने परीक्षा द्वारा योग्य कन्याओंका निश्चयकर उचित समयमें यथारीति उन सबोंका विवाह कर दिया ॥ १७ ॥

दुःशलां समये राजा सिन्धुराजाय भारत ।
जयद्रथाय प्रददौ सौबलानुमते तदा ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ३८९१ ॥

हे भरतकुल प्रदीप ! अनन्तर धृतराष्ट्रने योग्य कालमें सौबलकी अनुमतिसे सिन्धुराज जयद्रथको दुःशला नामकी कन्या सम्प्रदान कर दी ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एक सौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ ३८९१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अगस्त्यः सत्रमासीनश्चचार मृगयामृषिः।
आरण्यान्सर्वदैवत्यान्मृगान्प्रोक्ष्य महावने ॥ १४ ॥

ऋषि अगस्त्यने यज्ञकर सम्पूर्ण वनमें सब देवोंके लिए सम्पूर्ण मृगोंका प्रोक्षण कर मृगया की थी ॥ १४ ॥

प्रमाणदृष्टधर्मेण कथमस्मान्विगर्हसे।
अगस्त्यस्याभिचारेण युष्माकं वै वपा हुता ॥ १५ ॥

उन्होंने अभिचार कर्मके लिये तुम्हारी वपा-चर्बीसे हवन किया था; अतः प्रमाणित धर्मके अनुसार तुम मुझसे मारे गये हो, फिर क्यों हमारी निन्दा कर रहे हो? ॥ १५ ॥

मृग उवाच

न रिपून्वै समुद्दिश्य विमुञ्चन्ति पुरा शरान्।
रन्ध्र एषां विशेषेण वधकालः प्रशस्यते ॥ १६ ॥

मृग बोला— मनुष्यलोग शत्रुको भलीभांति न देखकर पहले ही बाण नहीं चलाते, विशेष जिस समय शत्रुसे अपराध होता है, वही समय शत्रुको मारनेका सुन्दर अवसर होताहै ॥ १६ ॥

पाण्डुरुवाच

प्रमत्तमप्रमत्तं वा विवृतं घ्नन्ति चौजसा।
उपायैरिषुभिस्तीक्ष्णैः कस्मान्मृग विगर्हसे ॥ १७ ॥

पाण्डु बोले— हे मृग! मृग प्रमत्त हों वा अप्रमत्त ही हों, लोग नाना तीक्ष्ण बाणोंसे खुले रूपमें उनका वध करते हैं, अतएव तुम फिर मेरी क्यों निन्दा करते हो? ॥ १७ ॥

मृग उवाच

नाहं घ्नन्तं मृगान्राजन्विगर्हे आत्मकारणात्।
मैथुनं तु प्रतीक्ष्यं मे स्यात्त्वयेहानृशंसतः ॥ १८ ॥

मृग बोला— महाराज! तुमने अपने लिए मृग मारा है, इसलिये तुम्हारी निन्दा नहीं करता! पर तुमको इस समय निष्ठुर व्यवहार न कर मेरे मैथुनकालतक ठहरे रहना चाहिये था ॥ १८ ॥

सर्वभूतहिते काले सर्वभूतेप्सिते तथा।
को हि विद्वान्मृगं हन्याच्चरन्तं मैथुनं वने।
पुरुषार्थफलं कान्तं तु यत्त्वया वितथं कृतम् ॥ १९ ॥

सर्वभूतोंके प्रिय और सर्वभूतोंके हितयुक्त ऐसे समयमें क्या कोई भी विद्वान् जन वनमें मैथुन करते हुए मृगका वध कर सकता है? तुमने मेरे पुरुषार्थके सुन्दर फलको व्यर्थ कर दिया ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पौरवाणामृषीणां च तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
वंशे जातस्य कौरव्य नानुरूपमिदं तव ॥ २० ॥

हे कुरुवंशमें उत्पन्न राजन् ! तुमने शुद्ध कर्म करनेवाले पौरव ऋषियोंके वंशमें जन्म लिया है, इसलिये यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ २० ॥

नृशंसं कर्म सुमहत्सर्वलोकविगर्हितम् ।
अस्वर्ग्यमयशस्यं च अधर्मिष्ठं च भारत ॥ २१ ॥

हे भारत ! यह बडा निष्ठुर कर्म स्वर्गनाशी, यशनाशी, धर्मनाशी और सब लोकोंके द्वारा निन्दनीय है ॥ २१ ॥

स्त्रीभोगानां विशेषज्ञः शास्त्रधर्मार्थतत्त्ववित् ।
नार्हस्त्वं सुरसंकाश कर्तुमस्वर्ग्यमीदृशम् ॥ २२ ॥

हे देवोपम ! स्त्री भोगोंके विषयमें जाननेवाले, धर्मार्थ तत्त्वोंके जाननेवाले और स्त्रीसे मिलनके सुखको अनुभव करनेवाले होकरके भी तुमने जो यह स्वर्गनाशी कार्य किया है, वह तुम्हारे योग्य नहीं हुआ है ॥ २२ ॥

त्वया नृशंसकर्तारः पापाचाराश्च मानवाः ।
निग्राह्याः पार्थिवश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिवर्जिताः ॥ २३ ॥

हे नरेशोंमें श्रेष्ठजन ! जो सब लोग निष्ठुर कार्य करनेवाले पापाचारी और धर्मार्थ कामसे रहित होते हैं, तुम्हें उनको दण्ड देना चाहिये ॥ २३ ॥

किं कृतं ते नरश्रेष्ठ निघ्नतो मामनागसम् ।
मुनिं मूलफलाहारं मृगवेषधरं नृप ।
वसमानमरण्येषु नित्यं शमपरायणम् ॥ २४ ॥
त्वयाहं हिंसितो यस्मात्तस्मात्त्वामप्यसंशयम् ।
द्वयोर्नृशंसकर्तारमवशं काममोहितम् ।
जीवितान्तकरो भाव एवमेवागमिष्यति ॥ २५ ॥

हे महाप्राज्ञ ! मृगके स्वरूपमें फल मूल पर जीनेवाले, जंगलमें रहनेवाले, सदा शमपरायण निरपराध मुझ मुनिको मार कर तुमने कौनसा बडा लाभ उठाया ? चूंकि तुमने मुझे मारा है, अतः तुमने जिस प्रकार हम स्त्री पुरुषको मार दिया है उसी प्रकार जब स्वयं कामयुक्त होकर विवश होओगे, तब तुम भी ऐसी ही जीवनाशी दशा प्राप्त करोगे ॥ २४–२५ ॥

अहं हि किंदमो नाम तपसाप्रतिमो मुनिः ।
व्यपत्रपन्मनुष्याणां मृग्यां मैथुनमाचरम् ॥ २६ ॥

मैं किन्दम नामका तपस्वी मुनि हूं, मनुष्योंकी लज्जासे बचनेके लिये मृगीसे मैथुन कर रहा था ॥ २६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मृगो भूत्वा मृगैः सार्धं चरामि गहने वने।
न तु ते ब्रह्महत्येयं भविष्यत्यविजानतः।
मृगरूपधरं हत्वा मामेवं काममोहितम् ॥ २७ ॥
अस्य तु त्वं फलं मूढ प्राप्स्यसीदृशमेव हि।
प्रियया सह संवासं प्राप्य कामविमोहितः।
त्वमप्यस्यामवस्थायां प्रेतलोकं गमिष्यसि ॥ २८ ॥

मैं मृगका रूप धारण कर मृगोंके साथ वनमें संचार करता हूँ, पर तुम इस बातको नहीं जानते थे; अतः तुम पर ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा। तुमने मृग रूपधारी काममोहित मुझको इस प्रकार मार डाला। अतः, हे मूर्ख! तुम भी इसका फल इसी प्रकार प्राप्त करोगे। तुम कामवश प्रियासे समागम करते ही इसी दशामें प्रेतलोकको सिधारोगे ॥२७-२८॥

अन्तकाले च संवासं यया गन्तासि कान्तया।
प्रेतराजवशं प्राप्तं सर्वभूतदुरत्ययम्।
भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठ सैव त्वामनुयास्यति ॥ २९ ॥

हे मतिमन्! तुम अन्तकालमें जिस स्त्रीसे मिलोगे, वह प्यारी भी सब लोकोंके द्वारा जानेके अयोग्य प्रेतलोकोंमें भक्तिपूर्वक तुम्हारे साथ जायगी ॥ २९ ॥

वर्तमानः सुखे दुःखं यथाहं प्रापितस्त्वया।
तथा सुखं त्वां संप्राप्तं दुःखमभ्यागमिष्यति ॥ ३० ॥

मुझको जिस प्रकार सुखके समय तुमसे दुःख मिला, वैसे ही तुम भी सुख पानेके समय दुःख प्राप्त करोगे ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो जीवितात्स व्ययुज्यत।
मृगः पाण्डुश्च शोकार्तः क्षणेन समपद्यत ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ३९२२ ॥

वैशम्पायन बोले— मृगने यह बात कहकर अति दुःखी होकर प्राण छोडा। राजा पाण्डु भी उसी क्षण बहुत शोकाकुल हो गए ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ नौवां अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥ ३९२२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ११० :

वैशम्पायन उवाच

तं व्यतीतमतिक्रम्य राजा स्वमिव बान्धवम् ।
सभार्यः शोकदुःखार्तः पर्यदेवयदातुरः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– राजा पांडु अपने मित्र समान उस ऋषिको छोडकर स्त्रियोंके सहित शोक दुःखसे पीडित और विकल होकर बहुत पछताने लगे ॥ १ ॥

पाण्डुरुवाच

सतामपि कुले जाताः कर्मणा बत दुर्गतिम् ।
प्राप्नुवन्त्यकृतात्मानः कामजालविमोहिताः ॥ २ ॥

पांडु कहने लगे– हाय ! बुरी आत्मा युक्त जन अच्छे वंशमें जन्म लेनेपर भी कामके फन्देमें फंसकर अपने कर्मके दोषसे कुगति प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

शश्वद्धर्मात्मना जातो बाल एव पिता मम ।
जीवितान्तमनुप्राप्तः कामात्मैवेति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥

मैंने सुना है, कि मेरे पिता विचित्रवीर्य धर्मात्मा शंतनुसे जन्म लेकरके केवल कामयुक्त आत्मा होनेहीसे बालकपनहीमें परलोकको सिधारे गए ॥ ३ ॥

तस्य कामात्मनः क्षेत्रे राज्ञः संयतवागृषिः ।
कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्भगवान्मामजीजनत् ॥ ४ ॥

उन कामयुक्त राजाके क्षेत्रमें साक्षात् भगवान् ऋषि संयतवादी श्रीकृष्णद्वैपायनने मुझे उत्पन्न किया था ॥ ४ ॥

तस्याद्य व्यसने बुद्धिः संजातेयं ममाधमा ।
त्यक्तस्य देवैरनयान्मृगयायां दुरात्मनः ॥ ५ ॥

इस मृगयामें रत रहनेवाले मेरी बुरी बुद्धि आज व्यसनके विषयमें लिप्त हुई है, तो देवोंने मुझको त्याग दिया है ॥ ५ ॥

मोक्षमेव व्यवस्यामि बन्धो हि व्यसनं महत् ।
सुवृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ।
अतीव तपसात्मानं योजयिष्याम्यसंशयम् ॥ ६ ॥

अब मैं मोक्षमार्गका पथिक बनूंगा, पुत्र उत्पादन आदि सांसारिक बंधन ही अति दुःखका कारण है, इसलिये मैं ब्रह्मचारी बनकर जन्मदाता व्यासके द्वारा किये जाते हुए कार्यमें नियुक्त होऊंगा । मैं अपने चित्तको बिना संदेह कठोर तपमें नियुक्त करूंगा ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मादेकोऽहमेकाहमेकैकस्मिन्वनस्पतौ।
चरन्भैक्षं मुनिर्मुण्डश्चरिष्यामि महीमिमाम् ॥ ७ ॥

उससे भार्यादि त्याग कर अकेले सिर मुंडाकर मुनि हो इन सब वृक्षोंमेंसे एक एकसे भीख मांग मांग जीवनको बचाऊंगा और इस प्रकार सारी पृथ्वीपर विचरूंगा ॥ ७ ॥

पांसुना समवच्छन्नः शून्यागारप्रतिश्रयः।
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ॥ ८ ॥

सब प्रिय और अप्रियको छोडकर धूल देहमें लगाकर खाली घरमें वा पेडकी जडमें रहूंगा ॥ ८ ॥

न शोचन्न प्रहृष्यंश्च तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।
निराशीर्निर्नमस्कारो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ ९ ॥

किसी प्रकारसे न तो हर्षित होऊंगा और न शोक करूंगा, अपनी निंदा और प्रशंसाको समान समझूंगा, अशीस वा प्रणामकी इच्छा न करूंगा; और द्वन्द्व रहित होकर तथा किसीसे दान न लेकर दिन काटूंगा ॥ ९ ॥

न चाप्यवहसन्कंचिन्न कुर्वन्भ्रुकुटीं क्वचित्।
प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वभूतहिते रतः ॥ १० ॥

मैं किसीपर न तो हँसूंगा और न भौंहें चढाऊंगा; सदा प्रसन्नमुख होकर सब भूतोंके हितमें नियुक्त रहूंगा ॥ १० ॥

जङ्गमाजङ्गमं सर्वमविहिंसंश्चतुर्विधम्।
स्वासु प्रजास्विव सदा समः प्राणभृतां प्रति ॥ ११ ॥

अण्ड, स्वेद, जरायु और उद्भिजसे जन्म लिये हुए इन चार प्रकारके स्थावर जंगम प्राणियों-की हिंसा नहीं करूंगा; अपनी प्रजावत् सब भूतों पर तुल्य दृष्टि रखूंगा ॥ ११ ॥

एककालं चरन्भैक्षं कुलानि द्वे च पञ्च च।
असंभवे वा भैक्षस्य चरन्नशनान्यपि ॥ १२ ॥

नित्य दो वा पांच घरोंमें एक ही बार भीख मागूंगा; उनमे भीख न मिले तो विना भोजनके भी दिन बिताऊंगा ॥ १२ ॥

अल्पमल्पं यथाभोज्यं पूर्वलाभेन जातुचित्।
नित्यं नातिचरल्लाँभे अलाभे सप्त पूरयन् ॥ १३ ॥

स्वल्प भोजन किया करूंगा, पर तो भी एक बारमें न मिले, तो फिर कभी भीख न मागूंगा; लोभसे दूसरे घरमें फिर नहीं जाऊंगा ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः ।
नाकल्याणं न कल्याणं प्रध्यायन्नुभयोस्तयोः ॥ १४ ॥

मेरे कोई यदि एक हाथको काटे और दूसरा चंदनसे दूसरे हाथको सुगंध युक्त कर दे तो भी दोनोंमेंसे किसीका न तो अकल्याण करूंगा, न दूसरेका कल्याण ॥ १४ ॥

न जिजीविषुवत्किंचिन्न मुमूर्षुवदाचरन् ।
मरणं जीवितं चैव नाभिनन्दन्न च द्विषन् ॥ १५ ॥

मैं जीवनसे प्रेम और मृत्युसे द्वेष प्रगट करके न तो कभी प्रसन्न होऊंगा और न कभी मुरझाऊंगा ॥ १५ ॥

याः काश्चिज्जीवता शक्याः कर्तुमभ्युदयक्रियाः ।
ताः सर्वाः समतिक्रम्य निमेषादिष्ववस्थितः ॥ १६ ॥

चेतनयुक्त जन निमेषादि कालके नियमसे जो सब स्वर्गादि फलदायी मङ्गलयुक्त कार्य कर सकते हैं, मैं संपूर्ण रूपसे चित्तके पापको धोकर उन सब क्रियादिको करूंगा ॥ १६ ॥

तासु सर्वास्ववस्थासु त्यक्तसर्वेन्द्रियक्रियः ।
संपरित्यक्तधर्मात्मा सुनिर्णिक्तात्मकल्मषः ॥ १७ ॥

उन सब अवस्थाओंमें त्याग और अनित्य फल देनेवाली सब इंद्रियोंकी क्रियाओंको त्याग दूंगा, अपने अन्तःकरणका सब मल धोकर शुद्ध कर दूंगा ॥ १७ ॥

निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो व्यतीतः सर्ववागुराः ।
न वशे कस्यचित्तिष्ठन्सधर्मा मातरिश्वनः ॥ १८ ॥

और अविद्यादि सब प्रकारके जालको तोडकर सब पापोंसे साफ होकर वायुका गुण लिये रहूंगा, किसीके वशमें नहीं जाऊंगा ॥ १८ ॥

एतया सततं वृत्त्या चरन्नेवंप्रकारया ।
देहं संधारयिष्यामि निर्भयं मार्गमास्थितः ॥ १९ ॥

सदा ऐसी रीतिसे चलकर निर्भय पथका आश्रय करके देह धारण करूंगा ॥ १९ ॥

नाहं श्वाचरिते मार्गे अवीर्यकृपणोचिते ।
स्वधर्मात्सततापेते रमेयं वीर्यवर्जितः ॥ २० ॥

वीर्य वर्जित होकर आत्मतत्त्वरूपी धर्मसे सदा च्युत निजवीर्यनाशी कुमार्ग पर कभी पांवको न रखूंगा ॥ २० ॥

सत्कृतोऽसत्कृतो वापि योऽन्यां कृपणचक्षुषा ।
उपैति वृत्तिं कामात्मा स शुनां वर्तते पथि ॥ २१ ॥

काम रहित होने पर भी जो कामयुक्त होकर दीनके समान फिर काम–क्रियामें फंसता है, वह सुकार्य करे वा कुकार्य करे अवश्य ही कुत्तेके पथमें चलता है अर्थात् जूठा चाटनेवाला है ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निःश्वासपरमो नृपः।
अवेक्ष्यमाणः कुन्तीं च माद्रीं च समभाषत ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले– राजा अति दुःखी चित्तसे यह सब बातें कह कर लम्बी सांस छोडकर कुन्ती और माद्रीकी ओर देख कर बोले ॥ २२ ॥

कौशल्या विदुरः क्षत्ता राजा च सह बन्धुभिः।
आर्या सत्यवती भीष्मस्ते च राजपुरोहिताः ॥ २३ ॥

कौशल्या, विदुर, बन्धु सहित राजा धृतराष्ट्र, आर्या सत्यवती, भीष्म, राजपुरोहित लोग ॥ २३ ॥

ब्राह्मणाश्च महात्मानः सोमपाः संशितव्रताः।
पौरवृद्धाश्च ये तत्र निवसन्त्यस्मदाश्रयाः।
प्रसाद्य सर्वे वक्तव्याः पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् ॥ २४ ॥

व्रतशील सोम पीनेवाले महात्मा ब्राह्मणगण और जितने नगरके वृद्धजन मेरे आश्रयमें हैं, उन सबोंसे प्रसन्न कर कहना, कि पाण्डु प्रव्रज्या लेकर वनमें चला गया है ! ॥ २४ ॥

निशम्य वचनं भर्तुर्वनवासे धृतात्मनः।
तत्समं वचनं कुन्ती माद्री च समभाषताम् ॥ २५ ॥

कुन्ती और माद्री वनवासका संकल्प किए हुए पतिके वचन सुनकर यथायोग्य वाक्य बोलीं ॥ २५ ॥

अन्येऽपि ह्याश्रमाः सन्ति ये शक्या भरतर्षभ।
आवाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां सह तप्त्वा तपो महत्।
त्वमेव भविता सार्थः स्वर्गस्यापि न संशयः ॥ २६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! दूसरे बहुत आश्रम हैं, जिनमें रहकर आप इन दो धर्मपत्नियोंके साथ कठोर तपस्या कर सकेंगे और इसमें सन्देह नहीं है कि इस प्रकार आप स्वर्गके स्वामी भी हो सकेंगे ॥ २६ ॥

प्रणिधायेन्द्रियग्रामं भर्तृलोकपरायणे।
त्यक्तकामसुखे ह्यावां तप्स्यावो विपुलं तपः ॥ २७ ॥

हम दोनों भी पतिलोकयुक्त होकर अब इन्द्रियोंको रोककर कामना और सुखको तजकर कडी तपस्या करेंगी ॥ २७ ॥

यदि आवां महाप्राज्ञ त्यक्ष्यसि त्वं विशां पते।
अद्यैवावां प्रहास्यावो जीवितं नात्र संशयः ॥ २८ ॥

हे महाप्राज्ञ पृथ्वीनाथ ! यदि आप हमको छोड देंगे तो विना सन्देह हम आज ही प्राण छोडेंगी ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाण्डुरुवाच

यदि व्यवसितं ह्येतद्युवयोर्धर्मसंहितम् ।
स्ववृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥ २९ ॥

पाण्डु बोले– तुम दोनोंका यह निश्चय यदि धर्मके अनुसार होवे, तो मैं अपने पिता (वेद-व्यास) की अव्ययवृत्ति अर्थात् वानप्रस्थाश्रमका आश्रय कर लूंगा ॥ २९ ॥

त्यक्तग्राम्यसुखाचारस्तप्यमानो महत्तपः ।
वल्कली फलमूलाशी चरिष्यामि महावने ॥ ३० ॥

ग्रामके भोजन और ग्रामके सुखको छोडकर वल्कल पहिन कर और फल मूल खाता हुआ भारी तपकर घने वनमें घूमूंगा ॥ ३० ॥

अग्निं जुह्वन्नुभौ कालावुभौ कालावुपस्पृशन् ।
कृशः परिमिताहारश्चीरचर्मजटाधरः ॥ ३१ ॥
शीतवातातपसहः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः ।
तपसा दुश्चरेणेदं शरीरमुपशोषयन् ॥ ३२ ॥

चीर, चर्म और जटा धारण कर नियमित भोजन कर दोनों समय स्नान कर एवं अग्नि प्रज्वलित करता हुआ, भूख प्यास पर ध्यान न रखकर ठण्डी हवा और धूपको सहकर कठोर तपस्यासे इस शरीरको सुखा डालूंगा ॥ ३१–३२ ॥

एकान्तशीली विशुद्धान्पक्वापक्वेन वर्तयन् ।
पितॄन्देवांश्च वन्येन वारिभिरद्भिश्च तर्पयन् ॥ ३३ ॥

एकान्तमें रहकर कच्चा और पक्का और वानप्रस्थके योग्य शास्त्रकी चर्चा करता हुआ, वनके फल, जल और बातोंसे पितर और देवोंका तर्पण करूंगा ॥ ३३ ॥

वानप्रस्थजनस्यापि दर्शनं कुलवासिनाम् ।
नाप्रियाण्याचरञ्जातु किं पुनर्ग्रामवासिनाम् ॥ ३४ ॥

ग्रामवासियोंकी बात तो दूर रही, एक ही घरमें टिके हुए, वानप्रस्थोंका भी कभी अप्रिय कार्य नहीं करूंगा ॥ ३४ ॥

एवमारण्यशास्त्राणामुग्रमुग्रतरं विधिम् ।
काङ्क्षमाणोऽहमासिष्ये देहस्यास्य समापनात् ॥ ३५ ॥

जबतक यह देह न छूटेगी तबतक मैं योंही इन सब वनके शास्त्रोंकी कठोर विधियोंको पालन करता हुआ जीवित रहूंगा ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्त्वा भार्ये ते राजा कौरववंशजः।
ततश्चूडामणिं निष्कमङ्गदे कुण्डलानि च।
वासांसि च महार्हाणि स्त्रीणामाभरणानि च ॥ ३६ ॥
प्रदाय सर्वं विप्रेभ्यः पाण्डुः पुनरभाषत।
गत्वा नागपुरं वाच्यं पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन बोले– कौरवनन्दन राजा पाण्डु दोनों स्त्रियोंसे यह बात कह कर चूडामणि, निष्क, अङ्गद, कुण्डल, मूल्यवान् वस्त्र और स्त्रियोंके आभूषण आदि सब वस्तु ब्राह्मणोंको देकर साथियोंसे बोले– तुम हस्तिनापुरमें जाकर कहना, कि कुरुनन्दन पाण्डु वनमें चले गए हैं ॥ ३६–३७ ॥

अर्थं कामं सुखं चैव रतिं च परमात्मिकाम्।
प्रतस्थे सर्वमुत्सृज्य सभार्यः कुरुपुंगवः ॥ ३८ ॥

अर्थ, काम, सुख और परम प्रिय स्त्रीसे मिलनेके सुख सबको तज प्रव्रज्याश्रम लेकरके स्त्रियोंके संग वनको चले गए हैं ॥ ३८ ॥

ततस्तस्यानुयात्राणि ते चैव परिचारकाः।
श्रुत्वा भरतसिंहस्य विविधाः करुणा गिरः।
भीममार्तस्वरं कृत्वा हाहेति परिचुक्रुशुः ॥ ३९ ॥

अनन्तर उनके साथी और नौकर उन भरतवंशके सिंहरूपी नरेशकी नाना करुणाकी बातें सुनकर अति दुःखयुक्त होकर हाहाकार करते हुए रोने लगे ॥ ३९ ॥

उष्णमश्रु विमुञ्चन्तस्तं विहाय महीपतिम्।
ययुर्नागपुरं तूर्णं सर्वमादाय तद्वचः ॥ ४० ॥

आगे राजाको छोड कर शोकके आंसू गिराते हुए उनके उस कथनको स्वीकार कर विना विलम्ब हस्तिनापुरमें जा पहुंचे ॥ ४० ॥

श्रुत्वा च तेभ्यस्तत्सर्वं यथावृत्तं महावने।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठः पाण्डुमेवान्वशोचत ॥ ४१ ॥

नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र उनके मुखसे उनकी सब घटनाओंको सुनकर पाण्डुके लिये बडा शोक करने लगे ॥ ४१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राजपुत्रस्तु कौरव्यः पाण्डुर्मूलफलाशनः ।
जगाम सह भार्याभ्यां ततो नागसभं गिरिम् ॥ ४२ ॥

इधर कौरववंशी राजकुमार पाण्डु फल मूल खाते हुए दोनों स्त्रियोंके साथ नागसभ पर्वतको पधारे ॥ ४२ ॥

स चैत्ररथमासाद्य वारिषेणमतीत्य च ।
हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गन्धमादनम् ॥ ४३ ॥

वे उस चैत्ररथ पर चढकर वारिषेण पर्वतको पीछे छोडकर हिमाचलसे होते हुए गन्धमादनपर जा पहुंचे ॥ ४३ ॥

रक्ष्यमाणो महाभूतैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
उवास स तदा राजा समेषु विषमेषु च ॥ ४४ ॥

हे महाराज ! वह राजा महाभूत, सिद्ध और परम ऋषियोंसे रक्षित होकर समभूमि और ऊबड, खाबड स्थानोंमें रहने लगे ॥ ४४ ॥

इन्द्रद्युम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्य च ।
शतशृङ्गे महाराज तापसः समपद्यत ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ३९६७ ॥

अन्तमें इन्द्रद्युम्न तालको प्राप्तकरके हंसकूटको पीछे छोड कर शतशृङ्ग नामक पहाड पर तपस्वी राजा पहुंचे ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ दसवां अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥ ३९६७ ॥

: १११ :

वैशम्पायन उवाच

तत्रापि तपसि श्रेष्ठे वर्तमानः स वीर्यवान् ।
सिद्धचारणसङ्घानां बभूव प्रियदर्शनः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! वीर्यवान् पाण्डु उस स्थानमें भी बडी तपस्यामें सदा नियुक्त रहकर सिद्धचारणोंके अति प्रिय बने ॥ १ ॥

शुश्रूषुरनहंवादी संयतात्मा जितेन्द्रियः ।
स्वर्गं गन्तुं पराक्रान्तः स्वेन वीर्येण भारत ॥ २ ॥

वह गुरुसेवक, अहङ्कारवर्जित, संयतात्मा और जितेन्द्रिय होकर निज वीर्यसे स्वर्गको प्राप्त करनेके योग्य पराक्रमी बने ॥ २ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

केषांचिदभवद्भ्राता केषांचिदभवत्सखा।
ऋषयस्त्वपरे चैनं पुत्रवत्पर्यपालयन् ॥ ३ ॥

कोई कोई ऋषि उनको भाई, दूसरे मित्र समझने लगे और सब अन्यऋषि उनको पुत्रवत् पालने लगे ॥ ३ ॥

स तु कालेन महता प्राप्य निष्कल्मषं तपः।
ब्रह्मर्षिसदृशः पाण्डुर्बभूव भरतर्षभ ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर पाण्डु बहुत दिनों तक विना कलङ्क तपोबल बटोरकर ब्रह्मर्षिके समान बन गए ॥ ४ ॥

स्वर्गपारं तितीर्षन्स शतशृङ्गादुदङ्मुखः।
प्रतस्थे सह पत्नीभ्यामब्रुवंस्तत्र तापसाः।
उपर्युपरि गच्छन्तः शैलराजमुदङ्मुखाः ॥ ५ ॥
दृष्टवन्तो गिरेरस्य दुर्गान्देशान्बहून्वयम्।
आक्रीडभूतान्देवानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ ६ ॥

स्वर्गको पार करनेके लिये यकायक उठकर दोनों स्त्रियोंके साथ शतशृङ्गसे उत्तरकी ओर चले। तब तपस्वियोंने उनसे कहा, कि हमने उत्तरकी ओर शैलराजसे क्रमशः ऊपरको चलते हुए इस सुन्दर पर्वतके अगणित अगम्य देश देखे हैं, जो देव, गंधर्व और अप्सराओंकी क्रीडा भूमि हैं ॥ ५–६ ॥

उद्यानानि कुबेरस्य समानि विषमाणि च।
महानदीनितम्बांश्च दुर्गांश्च गिरिगह्वरान् ॥ ७ ॥

कहीं कहीं, कुबेरकी सम और विषम फुलवाडी बडी बडी नदी और दुर्गम कन्दरायें हैं ॥७॥

सन्ति नित्यहिमा देशा निर्वृक्षमृगपक्षिणः।
सन्ति केचिन्महावर्षा दुर्गाः केचिद्दुरासदाः ॥ ८ ॥

कोई कोई स्थान सदा हिमसे ढके रहते हैं; वहां न तो वृक्ष, मृग अथवा पक्षी हैं न और कुछ है; कहीं कहीं ऐसी भारी वर्षा होती है, कि वह स्थान दुर्गम फिसलनेवाले हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अतिक्रामेन्न पक्षी यान्कुत एवेतरे मृगाः।
वायुरेकोऽतिगाद्यत्र सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ९ ॥

किसी पशुकी बात तो दूर रही, पखेरू भी वहां पहुंच नहीं सकते, केवल अकेला वायु और सिद्ध तथा परम ऋषि लोग वहां जा सकते हैं ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गच्छन्त्यौ शैलराजेऽस्मिन्राजपुत्र्यौ कथं त्विमे ।
न सीदेतामदुःखार्हे मा गमो भरतर्षभ ॥ १० ॥

इन राज-कन्याओंने कभी दुःख सहन नहीं किया है, अतः दुर्गम शैलराज पर चलनेमें क्यों नहीं कष्ट होंगे, अतएव हे भरतश्रेष्ठ ! तुम मत आओ ॥ १० ॥

पाण्डुरुवाच

अप्रजस्य महाभागा न द्वारं परिचक्षते ।
स्वर्गे तेनाभितप्तोऽहमप्रजस्तद्ब्रवीमि वः ॥ ११ ॥

पांडु बोले– हे महाभागवृन्द ! कहा है, कि जिसके सन्तान नहीं है, उसके स्वर्गमें घुसनेके द्वार नहीं हैं, मेरी सन्तान नहीं है, अतः अति दुःखसे जलकर आपसे ऐसा कहता हूं ॥ ११ ॥

ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायन्ते मनुजा भुवि ।
पितृदेवर्षिमनुजदेयैः शतसहस्रशः ॥ १२ ॥

मनुष्यलोग पितरोंके, देवोंके, ऋषियोंके और मनुष्योंसे सम्बन्धित सैंकडों हजारों ऋणोंको ले कर इस धरतीमें जन्म लेते हैं ॥ १२ ॥

एतानि तु यथाकालं यो न बुध्यति मानवः ।
न तस्य लोकाः सन्तीति धर्मविद्भिः प्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥

धर्म जाननेवाले कहते हैं, कि जो मनुष्य इन स्वाभाविक ऋणोंसे उऋण होनेके लिये उचित समयमें प्रयत्न नहीं करता है, उसको सुगति प्राप्त नहीं होती है ॥ १३ ॥

यज्ञैश्च देवान्प्रीणाति स्वाध्यायतपसा मुनीन् ।
पुत्रैः श्राद्धैः पितॄंश्चापि आनृशंस्येन मानवान् ॥ १४ ॥

मानव लोग यागसे देवोंको, पठन तथा तपसे मुनियोंको, पुत्रोत्पादन तथा पिण्ड दानसे पितरोंको और निष्ठुरतासे रहित होकर मनुष्योंको तुष्टकर उनके ऋणोंसे मुक्त होते हैं ॥ १४ ॥

ऋषिदेवमनुष्याणां परिमुक्तोऽस्मि धर्मतः ।
पित्र्याद्दृणादनिर्मुक्तस्तेन तप्ये तपोधनाः ॥ १५ ॥

मैं देव, ऋषि और मनुष्य, इनके ऋणसे धर्मानुसार मुक्त हुआ हूं, पर पितृऋणसे मैं अभी मुक्त नहीं हो पाया हूँ, इसीलिए, हे तपोधनो ! मैं तप कर रहा हूँ ॥ १५ ॥

देहनाशे ध्रुवो नाशः पितॄणामेष निश्चयः ।
इह तस्मात्प्रजाहेतोः प्रजायन्ते नरोत्तमाः ॥ १६ ॥

मेरे मर जानेपर मेरे पितरोंका नाश भी निश्चित ही है । हे तपस्वीगण ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ लोगमें पितरोंके ऋणको भरनेको सन्तान पैदा करनेके निमित्त पृथ्वीमें जन्म लेते हैं ॥ १६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यथैवाहं पितुः क्षेत्रे सृष्टस्तेन महात्मना ।
तथैवास्मिन्मम क्षेत्रे कथं वै संभवेत्प्रजा ॥ १७ ॥

इसलिये पूछता हूं, कि मैंने जिस प्रकार पिता विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें महात्मा व्याससे जन्म लिया है, क्या वैसे ही मेरे इस क्षेत्रमें सन्तान उत्पन्न हो सकेगी ? ॥ १७ ॥

तापसा ऊचुः

अस्ति वै तव धर्मात्मन्विद्म देवोपमं शुभम् ।
अपत्यमनघं राजन्वयं दिव्येन चक्षुषा ॥ १८ ॥

तपस्वीगण लोग बोले– हे धार्मिक नरेश ! हम दिव्य नेत्रोंसे देखते हैं, कि तुम्हारे पाप रहित देववत् शुभ पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ १८ ॥

दैवदिष्टं नरव्याघ्र कर्मणेहोपपादय ।
अक्लिष्टं फलमव्यग्रो विन्दते बुद्धिमान्नरः ॥ १९ ॥

अतः, हे नरव्याघ्र ! तुम कर्मसे देवोंका अभिप्राय पूरा करो, क्योंकि बुद्धिमान् जन न घबराकर सुन्दर फल प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

तस्मिन्दृष्टे फले तात प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ।
अपत्यं गुणसंपन्नं लब्ध्वा प्रीतिमवाप्स्यसि ॥ २० ॥

हे तात ! तुम्हारा फल दीख पडता है, तुम सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो, उससे अवश्य ही आनन्द देनेवाले सर्व गुणोंसे सजे हुए पुत्र पा सकोगे ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा तापसवचः पाण्डुश्चिन्तापरोऽभवत् ।
आत्मनो मृगशापेन जानन्नुपहतां क्रियाम् ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले– राजा पाण्डु तपस्वियोंकी वह बात सुनकर और मृगके शापसे उनकी पुत्र पैदा करनेकी शक्ति नष्ट हो गयी है यह सोचकर चिन्तायुक्त हुए ॥ २१ ॥

सोऽब्रवीद्विजने कुन्तीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ।
अपत्योत्पादने योगमापदि प्रसमर्थयन् ॥ २२ ॥

वह यशस्विनी धर्मपत्नी कुन्तीसे एकान्तमें बोले– हे कुन्ती ! तुम इस विपत्कालमें पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो ॥ २२ ॥

अपत्यं नाम लोकेषु प्रतिष्ठा धर्मसंहिता ।
इति कुन्ति विदुर्धीराः शाश्वतं धर्ममादितः ॥ २३ ॥

हे कुन्ती ! धर्म कहनेवाले सदा कहते हैं, कि सन्तान इन तीनों लोकोंमें धर्मसे भरी हुई प्रतिष्ठा है ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इष्टं दत्तं तपस्तप्तं नियमश्च स्वनुष्ठितः।
सर्वमेवानपत्यस्य न पावनमिहोच्यते ॥ २४ ॥

याग, दान की गई, तपस्या और भले प्रकार अनुष्ठान किया नियम, यह सब उनको पवित्र नहीं करते हैं, जिनके कि सन्तान नहीं होती ॥ २४ ॥

सोऽहमेवं विदित्वैतत्प्रपश्यामि शुचिस्मिते।
अनपत्यः शुभाँल्लोकान्नावाप्स्यामीति चिन्तयन् ॥ २५ ॥

हे सुन्दर मुस्कानवाली! यह जाननेके ही कारण मैं देखता हूं, कि मेरे पुत्र पैदा न होनेसे मैं शुभलोकको नहीं प्राप्त कर सकूंगा ॥ २५ ॥

मृगाभिशापान्नष्टं मे प्रजनं ह्यकृतात्मनः।
नृशंसकारिणो भीरु यथैवोपहतं तथा ॥ २६ ॥

हे भीरु! पहिले जैसे मैं बुरे आत्मयुक्त और निष्ठुर कार्यमें दत्तचित्त था, वैसे ही मृगके शापसे मेरी सन्तान पैदा करनेकी शक्ति जाती रही है ॥ २६ ॥

इमे वै बन्धुदायादाः षट् पुत्रा धर्मदर्शने।
षडेवाबन्धुदायादाः पुत्रास्ताञ्शृणु मे पृथे ॥ २७ ॥

धर्मशास्त्रोंमें कहा है, कि छः प्रकारके पुत्र बन्धुके धनके अधिकारी होते हैं, और छः प्रकार के पुत्र उसके अधिकारी नहीं होते। हे पृथे! मैं उन बारह प्रकारके पुत्रोंकी बात कहता हूं, सुनो ॥ २७ ॥

स्वयंजातः प्रणीतश्च परिक्रीतश्च यः सुतः।
पौनर्भवश्च कानीनः स्वैरिण्यां यश्च जायते ॥ २८ ॥

(पहिला) औरस अर्थात् जो व्याही स्त्रीसे स्वयंसे पैदा हो, (दूसरा) प्रणीत, अर्थात् जो अच्छे पुरुषके द्वारा अपनी पत्नीसे पैदा हुआ हो, (तीसरा) परिक्रीत, अर्थात् जो मोल लिये हुए वीर्यके द्वारा निज क्षेत्रसे पैदा हुआ हो, (चौथा) पौनर्भव अर्थात् जो विधवाके गर्भसे अन्यके द्वारा पैदा हुआ हो, (पांचवा) कानीन अर्थात् जो कन्यावस्थामें पैदा हुआ हो, (छठवां) स्वैरिणीके गर्भसे पैदा हुआ, अर्थात् जो गूढ वा कुण्ड नामसे प्रसिद्ध है ॥ २८ ॥

दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत्स्वयं च यः।
सहोढो जातरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः ॥ २९ ॥

(सातवां) दत्त अर्थात् जो पिता मातासे दे दिया जाय, (आठवां) क्रीत, अर्थात् जो धन देकर ले लिया गया हो, (नवां) उपक्रीत, अर्थात् जो कृत्रिम हो, (दशवां) स्वयं उपागत अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र बना, यह कहके जो स्वयं आवे, (ग्यारहवां) जात रेता सहोढ अर्थात् जो भाई आदिसे गर्भवती स्त्रीसे विवाह करने पर उसके गर्भसे पैदा हो, (बारहवां) हीनयोनिधृत, अर्थात् जो हीन जातिकी स्त्रीसे पैदा हो ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पूर्वपूर्वतमाभावे मत्वा लिप्सेत वै सुतम्।
उत्तमादवराः पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्रमापदि ॥ ३० ॥

इन बारह प्रकारके पुत्रोंमें पहिला न बन पडे, तो उससे पिछला, फिर उससे पिछला; फिर वह भी न हो तो उससे पिछला, इस प्रकारसे माताको पुत्रकी इच्छा करनी चाहिये। लोग आपत्कालमें उत्तम छोटेसे पुत्रकी कामना किया करते हैं ॥ ३० ॥

अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति साधवः
आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ३१ ॥

स्वायंभुव मनुने कहा है, कि मनुष्यगण अपने वीर्यके बिना भी धर्म–फल देनेवाले श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

तस्मात्प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात्स्वयम्।
सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि ॥ ३२ ॥

अतएव, यशस्विनी हे कुन्ती! मैं इस समय सन्तान पैदा करनेकी शक्तिसे रहित हुआ हूं, इसलिये तुम्हें नियोग करता हूं, तुम सत्य वा श्रेष्ठजनसे यशस्वी पुत्रका प्रसव करो ॥३२॥

शृणु कुन्ति कथां चेमां शारदण्डायनीं प्रति।
या वीरपत्नी गुरुभिर्नियुक्तापत्यजन्मनि ॥ ३३ ॥

हे पृथे! शारदण्डायनकी कन्याकी कथा कहता हूं, सुनो। वह वीरकी स्त्री पतिसे पुत्र पैदा करनेके लिए नियुक्त होकर ॥ ३३ ॥

पुष्पेण प्रयता स्नाता निशि कुन्ति चतुष्पथे।
वरयित्वा द्विजं सिद्धं हुत्वा पुंसवनेऽनलम् ॥ ३४ ॥

ऋतु–स्नान करके रात्रिको चौराहे पर खडी हुई। तब एक सिद्ध ब्राह्मणको वरण कर पुंसवन यज्ञमें अग्निकी आहुति डालकर ॥ ३४ ॥

धर्मप्रसवयोगे तमियेष नैव सहाचरम्।
तत्र श्रीजनयामास युधिष्ठिरमिति प्रजाम् ॥ ३५ ॥

उस कर्मको पूरा करनेके बाद उसने [illegible]। इससे दुर्जय आदि तीन महारथियोंको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥

तथा त्वमपि कल्याणि ब्राह्मणात्तपसाधिकात्।
मन्नियोगाद्यत क्षिप्रमपत्योत्पादनं प्रति ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ४००३ ॥

हे कल्याणि! उस प्रकार तुम भी मेरे नियोगसे किसी ब्राह्मणसे, जो तुमसे तपमें श्रेष्ठ हो, शीघ्र सन्तान पैदा करनेकी चेष्टा करो ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ ४००३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ११२ :

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता महाराज कुन्ती पाण्डुमभाषत ।
कुरूणामृषभं वीरं तदा भूमिपतिं पतिम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे महाराज ! कुन्ती यह बात सुनकर कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीर भूपति अपने पति पाण्डुसे बोली ॥ १ ॥

न मामर्हसि धर्मज्ञ वक्तुमेवं कथंचन ।
धर्मपत्नीमभिरतां त्वयि राजीवलोचन ॥ २ ॥

हे धर्मज्ञ राजीवनेत्र ! मैं आपकी धर्मपत्नी और आपहीके प्रेममें फंसी हुई हूं; अतः आपको मुझसे ऐसा कहना कभी उचित नहीं है ॥ २ ॥

त्वमेव तु महाबाहो मय्यपत्यानि भारत ।
वीर वीर्योपपन्नानि धर्मतो जनयिष्यसि ॥ ३ ॥

हे वीर महाभुज ! धर्मानुसार आपहीको मुझसे अपने वीर्यके द्वारा सन्तान पैदा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

स्वर्गं मनुजशार्दूल गच्छेयं सहिता त्वया ।
अपत्याय च मां गच्छ त्वमेव कुरुनन्दन ॥ ४ ॥

हे मानवोंमें व्याघ्ररूपी पुरुष ! ऐसा ही होनेसे मैं आपके साथ स्वर्गमें जा सकूंगी; अतएव हे कुरुनन्दन ! आप ही सन्तानके लिये मुझसे समागम कीजिए ॥ ४ ॥

न ह्यहं मनसाप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम् ।
त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः ॥ ५ ॥

क्योंकि मैं मनसे भी तुम्हें छोडकर किसी दूसरे पुरुषसे मिलना नहीं चाहती; इस भूमण्डलमें ऐसा कौन है, जो आपसे श्रेष्ठ हो सके ? ॥ ५ ॥

इमां च तावद्धर्म्यां त्वं पौराणीं शृणु मे कथाम् ।
परिश्रुतां विशालाक्ष कीर्तयिष्यामि यामहम् ॥ ६ ॥

हे विशालाक्ष ! पहिले मैंने एक पौराणिक धर्मकथा सुनी थी, उसको आपसे कहती हूं सुनिये ॥ ६ ॥

व्युषिताश्व इति ख्यातो बभूव किल पार्थिवः ।
पुरा परमधर्मिष्ठः पूरोर्वंशविवर्धनः ॥ ७ ॥

पूर्वकालमें कुरुवंश बढानेवाले परम धार्मिक व्युषिताश्व नामक एक प्रसिद्ध राजा थे ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिंश्च यजमाने वै धर्मात्मनि महात्मनि।
उपागमंस्ततो देवाः सेन्द्राः सह महर्षिभिः ॥ ८ ॥

उन धर्मात्मा महात्मा नरेशके याग आरम्भ कर देने पर इन्द्र सहित देवता और महर्षि लोग वहां आ पहुंचे ॥ ८ ॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
व्युषिताश्वस्य राजर्षेस्ततो यज्ञे महात्मनः ॥ ९ ॥

तब उन महात्मा राजर्षि व्युषिताश्वके यज्ञमें देवराज सोमरस पीकर और ब्राह्मणलोग दक्षिणा पाकर आनन्दित हो गये ॥ ९ ॥

व्युषिताश्वस्ततो राजन्नति मर्त्यान्व्यरोचत।
सर्वभूतान्यति यथा तपनः शिशिरात्यये ॥ १० ॥

हे राजन्! जिस प्रकार हिमके अन्त होनेपर भगवान् आदित्य सम्पूर्ण भूतोंको पीछे रखकर आगे बढकर प्रकाशमान होते हैं, वैसे ही व्युषिताश्व सब लोकोंको पीछे रखकर सोहने लगे ॥ १० ॥

स विजित्य गृहीत्वा च नृपतीन्राजसत्तमः।
प्राच्यानुदीच्यान्मध्यांश्च दक्षिणात्यानकालयत् ॥ ११ ॥
अश्वमेधे महायज्ञे व्युषिताश्वः प्रतापवान्।
बभूव स हि राजेन्द्रो दशनागबलान्वितः ॥ १२ ॥

हे श्रेष्ठभूप! पूर्व, मध्य, उत्तर और दक्षिण, उन चारों ओरके राजाओंको हराके पकड पकड कर दस हाथियोंके बलवाला वह राजाओंमें श्रेष्ठ व्युषिताश्व अश्वमेध महायज्ञमें बहुत प्रतापवान् हुआ ॥ ११-१२ ॥

अप्यत्र गाथां गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
व्युषिताश्वः समुद्रान्तां विजित्येमां वसुन्धराम्।
अपालयत्सर्ववर्णान्पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १३ ॥

पुराण कहनेवाले लोग यह कथा कहा करते हैं, कि उन्होंने समुद्रतक इस धरतीको जीतकर सब वर्णोंका उसी प्रकार पालन किया था, कि जैसे पिता औरस पुत्रको पालते हैं ॥ १३ ॥

यजमानो महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्।
अनन्तरत्नान्यादाय आजहार महाक्रतून्।
सुषाव च बहून्सोमान्सोमसंस्थास्ततान च ॥ १४ ॥

उन्होंने अनन्त रत्न बटोरकर सोमसंस्था अर्थात् ज्योतिष्टोमादि महायज्ञोंको बढाकर अगणित सोमलता निचोडी और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया था ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आसीत्काक्षीवती चास्य भार्या परमसंमता ।
भद्रा नाम मनुष्येन्द्र रूपेणासदृशी भुवि ॥ १५ ॥

राजा काक्षीवान् की कन्या भद्रा उनकी परम प्यारी स्त्री थी । हे मनुष्योंमें इंद्ररूपी ! भूमण्डलभरमें उन भद्राके समान अनुपम रूपवती नारी कोई दूसरी नहीं थी ॥ १५ ॥

कामयामासतुस्तौ च परस्परमिति श्रुतिः ।
स तस्यां कामसंमत्तो यक्ष्माणं समपद्यत ॥ १६ ॥

उस दम्पतिमें भद्रा जिस प्रकार पतिकी कामना करती थी, उसी प्रकार पति भी उस भद्राके प्रेमी थे । अनन्तर भद्राके साथ काम संभोगमें ही लगे रहनेसे व्युषिताश्वको क्षयने आ घेरा ॥ १६ ॥

तेनाचिरेण कालेन जगामास्तमिवांशुमान् ।
तस्मिन्प्रेते मनुष्येन्द्रे भार्यास्य भृशदुःखिता ॥ १७ ॥

इससे वह सूर्यकी भांति स्वल्प कालके बीचमें अस्त हो गये । उस भूपालके परलोकको सिधारने पर उनकी स्त्री शोकसे बडी विह्वल हुई ॥ १७ ॥

अपुत्रा पुरुषव्याघ्र विललापेति नः श्रुतम् ।
भद्रा परमदुःखार्ता तन्निबोध नराधिप ॥ १८ ॥

हे पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी नरेश ! पुत्रहीन भद्राने अति दुःखी होकर बहुत विलाप किया, ऐसा हमने सुना है, वह मैं कहती हूं, सुनिये ॥ १८ ॥

नारी परमधर्मज्ञ सर्वा पुत्रविनाकृता ।
पतिं विना जीवति या न सा जीवति दुःखिता ॥ १९ ॥

भद्रा भर्ताको लक्ष्यकर बोली, कि हे परम धर्मज्ञ ! पुत्रके बिना नारी अति निष्फला होती है । जो नारी पतिके बिना जीवनको धारण किये रहती है, वह सदा दुःखी होकर मरीसी बनी रहती है ॥ १९ ॥

पतिं विना मृतं श्रेयो नार्याः क्षत्रियपुङ्गव ।
त्वद्गतिं गन्तुमिच्छामि प्रसीदस्व नयस्व माम् ॥ २० ॥

हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! पतिके विना स्त्रियोंकी मृत्यु ही मङ्गलदायी होती है, अतएव मैं तुम्हारे साथ आना चाहती हूं, प्रसन्न होकर मुझको साथ ही ले चलो ॥ २० ॥

त्वया हीना क्षणमपि नाहं जीवितुमुत्सहे ।
प्रसादं कुरु मे राजन्नितस्तूर्णं नयस्व माम् ॥ २१ ॥

हे महाराज ! तुम्हारे विना क्षणभर भी जीनेकी मेरी इच्छा नहीं है, अतएव प्रसन्न होओ, मुझको विना विलम्ब यहांसे ले जाओ ॥ २१ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि समेषु विषमेषु च।
त्वामहं नरशार्दूल गच्छन्तमनिवर्तिनम् ॥ २२ ॥

हे राजओंमें व्याघ्ररूपी पुरुष ! चाहे सुख हो या दुःख हो, हर स्थानमें मैं अब कभी वापस न आनेवाले तुम्हारे सङ्ग पीछे पीछे चलूंगी, पीछे नहीं लौटूंगी ॥ २२ ॥

छायेवानपगा राजन्सततं वशवर्तिनी।
भविष्यामि नरव्याघ्र नित्यं प्रियहिते रता ॥ २३ ॥

हे नरव्याघ्र ! मैं तुम्हारी प्रिय और हित करनेमें सन्नद्ध, परछाहींके समान पीछे चलती हुई और सदा आज्ञा माननेवाली बनी रहूंगी ! ॥ २३ ॥

अद्य प्रभृति मां राजन्कष्टा हृदयशोषणाः।
आधयोऽभिभविष्यन्ति त्वदृते पुष्करेक्षण ॥ २४ ॥

हे पुष्करेक्षण ! तुम्हारे विना आजसे कष्टदायी हृदय सोखने-हारी चित्तपीडा मुझको जकड लेगी ॥ २४ ॥

अभाग्यया मया नूनं वियुक्ताः सहचारिणः।
संयोगा विप्रयुक्ता वा पूर्वदेहेषु पार्थिव ॥ २५ ॥

दुर्भाग्यशाली मैंने पूर्वजन्ममें इकट्ठे विराजते हुए दम्पतियोंको एक दूसरेसे अलग कर दिया था ॥ २५ ॥

तदिदं कर्मभिः पापैः पूर्वदेहेषु संचितम्।
दुःखं मामनुसंप्राप्तं राजंस्त्वद्विप्रयोगजम् ॥ २६ ॥

उस पापकर्मसे बटोरा हुआ दुःख इस समय आपके विरहका स्वरूप लेकर मुझे प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥

अद्य प्रभृत्यहं राजन्कुशप्रस्तरशायिनी।
भविष्याम्यसुखाविष्टा त्वद्दर्शनपरायणा ॥ २७ ॥

हे भूपाल ! मैं आजसे तुमको आंखोंके सामने रखकर कुशाके बिस्तरपर लेटूंगी। किसी सुखसे सुखी न होऊंगी ॥ २७ ॥

दर्शयस्व नरव्याघ्र साधु मामसुखान्विताम्।
दीनामनाथां कृपणां विलपन्तीं नरेश्वर ॥ २८ ॥

हे नरव्याघ्र ! दर्शन दीजिये। हे नाथ ! हे नरनाथ ! कातर होकर विलपती हुई, असुखी इस दीना अधीनाको सुख दो ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवं बहुविधं तस्यां विलपन्त्यां पुनः पुनः ।
तं शवं संपरिष्वज्य वाक्किलान्तर्हिताब्रवीत् ॥ २९ ॥

इस प्रकारसे वह व्युषिताश्वकी स्त्री उस मुर्देसे लिपटकर बार बार भांति भांतिके विलाप कर रही थी, कि ऐसे समयमें यह आकाशवाणी हुई ॥ २९ ॥

उत्तिष्ठ भद्रे गच्छ त्वं ददानीह वरं तव ।
जनयिष्याम्यपत्यानि त्वय्यहं चारुहासिनि ॥ ३० ॥

"भद्रे ! उठो, जाओ; हे मधुरहासिनी ! तुमको वर देता हूं, मैं तुममें संतान पैदा करूंगा ॥ ३० ॥

आत्मीये च वरारोहे शयनीये चतुर्दशीम् ।
अष्टमीं वा ऋतुस्नाता संविशेथा मया सह ॥ ३१ ॥

हे सुन्दर आंखोंवाली सुन्दरी ! अष्टमी अथवा चतुर्दशीमें तुम ऋतुस्नान कर मेरे साथ अपने बिस्तर पर लेटना" ॥ ३१ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी तथा चक्रे पतिव्रता ।
यथोक्तमेव तद्वाक्यं भद्रा पुत्रार्थिनी तदा ॥ ३२ ॥

यह आकाशवाणी होनेपर पुत्र चाहती हुई देवी पतिव्रता भद्राने उस बातके अनुसार उसी प्रकार किया ॥ ३२ ॥

सा तेन सुषुवे देवी शवेन मनुजाधिप ।
त्रीञ्शाल्वांश्चतुरो मद्रान्सुतान्भरतसत्तम ॥ ३३ ॥

हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उस देवीने उस शवके वीर्यसे तीन शाल्व और चार मद्र इस प्रकार सात सन्तानें प्रसूत कीं ॥ ३३ ॥

तथा त्वमपि मय्येव मनसा भरतर्षभ ।
शक्तो जनयितुं पुत्रांस्तपोयोगबलान्वयात् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ ४०३७॥

हे भरतश्रेष्ठ ! उसी प्रकार आप भी तप और योगके बलसे मानसके द्वारा मुझसे सन्तान पैदा कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥ ४०३७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ११३ :

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तया राजा तां देवीं पुनरब्रवीत्।
धर्मविद्धर्मसंयुक्तमिदं वचनमुत्तमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– धर्मज्ञ राजा पाण्डु देवीसे यह बात सुनकर फिर उससे अच्छा धर्मयुक्त यह वाक्य बोले ॥ १ ॥

एवमेतत्पुरा कुन्ति व्युषिताश्वश्चकार ह।
यथा त्वयोक्तं कल्याणि स ह्यासीदमरोपमः ॥ २ ॥

हे कुन्ति ! तुमने जो कहा, वह ठीक ही है। व्युषिताश्वने ऐसा ही किया था, क्योंकि वह देववत् थे ॥ २ ॥

अथ त्विमं प्रवक्ष्यामि धर्मं त्वेतं निबोध मे।
पुराणमृषिभिर्दृष्टं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ॥ ३ ॥

पर धर्मज्ञ महात्मा महर्षियोंने पुराणोंमें धर्मका जो तत्त्व दिखाया है, उस धर्मके तत्त्वको मैं तुमसे कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन्वरानने।
कामचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुलोचने ॥ ४ ॥

हे सुन्दरि ! पूर्वकालमें स्त्रियोंको कुछ मनाई नहीं थी; हे मधुरहासिनी ! वे उन दिनों स्वतन्त्र अर्थात् पति आदियोंसे न रोकी जाकर भोगके सुखकी आशामें घूमा करती थीं ॥४॥

तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगे पतीन्।
नाधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मः पुराभवत् ॥ ५ ॥

हे सुन्दरी ! वे कुमारी–दशा हीमें व्यभिचार करती थीं, इससे उनके लिए वह अधर्म नहीं होता था, क्योंकि वही पूर्वकालका धर्म था ॥ ५ ॥

तं चैव धर्मं पौराणं तिर्यग्योनिगताः प्रजाः।
अद्याप्यनुविधीयन्ते कामद्वेषविवर्जिताः।
पुराणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः ॥ ६ ॥

हे सुन्दरि ! आजतक तिर्यग् योनिकी प्रजा काम द्वेषसे रहित होकर उस पुराने धर्मके अनुसार चलती है। महर्षिलोग भी पुराणसे दर्शाये हुए इस धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं ॥६॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्यापि वर्तते ।
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः । ॥ ७ ॥

हे सुन्दरि ! उत्तरकुरुओंमें आजतक इस धर्मकी पूजा हो रही है, क्योंकि वह सनातन धर्म स्त्रियोंपर कृपा करनेवाला है ॥ ७ ॥

अस्मिंस्तु लोके नचिरान्मर्यादेयं शुचिस्मिते ।
स्थापिता येन यस्माच्च तन्मे विस्तरतः शृणु ॥ ८ ॥

पर थोडे कालसे इस विषयमें वर्तमान नियम निश्चित हो गया है; जिस कारण तथा जिनके द्वारा यह स्थापित हुआ है, विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो ॥ ८ ॥

बभूवोद्दालको नाम महर्षिरिति नः श्रुतम् ।
श्वेतकेतुरिति ख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः ॥ ९ ॥

हमने सुना है, कि उद्दालक नामक एक महर्षि थे । उनके श्वेतकेतुके नामसे एक मुनि पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

मर्यादेयं कृता तेन मानुषेष्विति नः श्रुतम् ।
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोध मे ॥ १० ॥

हे पद्मनेत्रवती ! उन्होंने क्रोधित होकर मनुष्योंमें एक मर्यादा बांध दी थी, ऐसा हमने सुना है, जिस कारण उन्होंने यह मर्यादा बांध दी थी, मैं उसे कहता हूँ, सुनो ॥ १० ॥

श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः ।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

एक समय एक ब्राह्मण श्वेतकेतुके सामने ही उसकी माताका हाथ थामकर बोला, कि आओ हम चलें ॥ ११ ॥

ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षितस्तदा ।
मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव ॥ १२ ॥

अनन्तर ऋषिकुमार श्वेतकेतु अन्य पुरुषसे माताको जबर्दस्ती लिवाये जाते देखकर दुःखी और क्रोधित हुए ॥ १२ ॥

क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाच ह ।
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः ॥ १३ ॥

श्वेतकेतुके पिता उद्दालक उनको क्रोधसे कांपते हुए देखकर बोले, कि बेटा ! तुम क्रोधित मत होओ, सनातन धर्म ऐसा ही है ॥ १३ ॥

अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामङ्गना भुवि ।
यथा गावः स्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजाः ॥ १४ ॥

इस भूमण्डलमें सब वर्णोंकी ही स्त्रियां विना रोक टोक सबोंसे मिल सकती हैं । हे बेटा ! गौके समान सब वर्णोंकी प्रजा भी निज निज वर्णोंसे व्यवहार किया करती हैं ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऋषिपुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे।
चकार चैव मर्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि ॥ १५ ॥

आगे ऋषिकुमार उस धर्मको सह न सके और भूमण्डलमें स्त्रीपुरुषोंकी यह मर्यादा ठहरायी ॥ १५ ॥

मानुषेषु महाभागे न त्वेवान्येषु जन्तुषु।
तदा प्रभृति मर्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम् ॥ १६ ॥

हे महाभागे ! हमने सुना है, कि तबसे मनुष्य समाजमें यह नियम निश्चित हो गया है; यह दूसरे प्राणियों पर नहीं लागू होता है ॥ १६ ॥

व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्य प्रभृति पातकम्।
भ्रूणहत्याकृतं पापं भविष्यत्यसुखावहम् ॥ १७ ॥

श्वेतकेतुने यह नियम बनाया, कि आजसे जो नारी पतिको तजकर व्यभिचार करेगी, उसको दुःखदायी भ्रूणहत्याका पाप लगेगा ॥ १७ ॥

भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारीं ब्रह्मचारिणीम्।
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि ॥ १८ ॥

तथा इस भूमण्डलमें जो पुरुष कुमारी ब्रह्मचारिणी तथा पतिव्रता प्यारी स्त्रीको तजकर परायी नारीसे मिलेगा उसके भी वैसा ही पाप लगेगा ॥ १८ ॥

पत्या नियुक्ता या चैव पत्न्यपत्यार्थमेव च।
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यत्येतदेव हि ॥ १९ ॥

जो स्त्री पुत्र पैदा करनेके लिये पतिसे नियुक्त होकर भी उनकी बात नहीं मानेगी, उसको भी वैसा ही पाप लगेगा ॥ १९ ॥

इति तेन भीरु मर्यादा स्थापिता बलात्।
उद्दालकस्य पुत्रेण धर्म्या वै श्वेतकेतुना ॥ २० ॥

हे भीरु ! उन उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतुने बलपूर्वक धर्मके अनुसार यह मर्यादा ठहरायी थी ॥ २० ॥

सौदासेन च रम्भोरु नियुक्तापत्यजन्मनि।
मदयन्ती जगामर्षिं वसिष्ठमिति नः श्रुतम् ॥ २१ ॥

हे सुन्दरी ! हमने सुना है, कि सौदासकी स्त्री मदयन्ती पतिसे पुत्र पैदा करनेके लिए नियुक्त होकर महर्षि वसिष्ठके निकट गयी थी ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्माल्लेभे च सा पुत्रमश्मकं नाम भामिनी ।
भार्या कल्माषपादस्य भर्तुः प्रियचिकीर्षया ॥ २२ ॥

और उनसे अश्मक नामक पुत्र प्राप्त किया था । कल्माषपादकी स्त्री उस भामिनीने भर्ताका प्रिय कार्य करने हीके लिये ऐसा किया था ॥ २२ ॥

अस्माकमपि ते जन्म विदितं कमलेक्षणे ।
कृष्णद्वैपायनाद्वीरु कुरूणां वंशवृद्धये ॥ २३ ॥

हे पद्मनेत्रे ! तुम यह भी जानती हो, कि कुरुओंका वंश बढानेके लिये भगवान् कृष्णद्वैपायनसे हम लोगोंका जन्म हुआ ॥ २३ ॥

अत एतानि सर्वाणि कारणानि समीक्ष्य वै ।
ममैतद्वचनं धर्म्यं कर्तुमर्हस्यनिन्दिते ॥ २४ ॥

अतएव, हे सुन्दरी ! इन सब विषयोंकी भलीभांति आलोचना करके मेरी इस धर्मानुसारी बातको तुम्हें मानना चाहिए ॥ २४ ॥

ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता यतव्रते ।
नातिवर्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः ॥ २५ ॥

हे व्रतशीले राजपुत्रि ! धर्म जाननेवाले पुरातन धर्मकी यह व्याख्या करते हैं, कि ऋतुकालमें स्त्रीको पतिकी बातका उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥ २५ ॥

शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातन्त्र्यं स्त्री किलार्हति ।
धर्ममेतं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ॥ २६ ॥

शेष अन्य समयमें वह स्वतन्त्र हो सकती हैं, विद्वान् जन इसे ही प्राचीन धर्म कहते हैं ॥२६॥

भर्ता भार्यां राजपुत्रि धर्म्यं वाधर्म्यमेव वा ।
यद्ब्रूयात्तत्तथा कार्यमिति धर्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

हे राजपुत्रि ! चाहे धर्म वा अधर्म होवे, पति भार्यासे जो कहे, भार्याको वह अवश्य मानना चाहिये । यह धर्म जाननेवाले कहते हैं ॥ २७ ॥

विशेषतः पुत्रगृद्धी हीनः प्रजननात्स्वयम् ।
यथाहमनवद्याङ्गि पुत्रदर्शनलालसः ॥ २८ ॥

हे सुन्दरी ! विशेष मैं पैदा करनेकी शक्तिसे हाथ धो चुका हूं, पर पुत्र पानेकी इच्छा भी रखता हूं, इसलिये हे शुभे ! मैं पुत्र देखनेकी इच्छासे ॥ २८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथा रक्ताङ्गुलितलः पद्मपत्रनिभः शुभे।
प्रसादार्थं मया तेऽयं शिरस्यभ्युद्यतोऽञ्जलिः ॥ २९ ॥

तुमको प्रसन्न करनेके लिये लाल उंगलियोंसे सुशोभित इस पद्मपत्र समानके हथेलीको तेरे सिर पर उठाता हूं ॥ २९ ॥

मन्नियोगात्सुकेशान्ते द्विजातेस्तपसाधिकात्।
पुत्रान्गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि।
त्वत्कृतेऽहं पृथुश्रोणि गच्छेयं पुत्रिणां गतिम् ॥ ३० ॥

हे सुकेशिनी! तुम मेरे नियोगके अनुसार किसी अच्छे तपस्यायुक्त ब्राह्मणसे गुणवान् पुत्रोंको उत्पन्न करो। हे पृथुश्रोणि! तुमसे मैं पुत्रवान् जनोंकी गति लाभ करूंगा ॥ ३० ॥

एवमुक्ता ततः कुन्ती पाण्डुं परपुरञ्जयम्।
प्रत्युवाच वरारोहा भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ३१ ॥

पतिके प्रिय कार्य और हित चाहनेवाली सुन्दरी कुन्ती, शत्रुके नगरोंको तोडनेहारे पति पाण्डुकी यह बात सुन कर बोली ॥ ३१ ॥

पितृवेश्मन्यहं बाला नियुक्तातिथिपूजने।
उग्रं पर्यचरं तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ३२ ॥

बालपनमें मैं पिताके घरमें अतिथियोंकी सेवामें नियुक्त थी। उन दिनों एक प्रशंसित व्रतयुक्त एक क्रोधी ब्राह्मणकी भली प्रकार सेवा की थी ॥ ३२ ॥

निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः।
तमहं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयम् ॥ ३३ ॥

एक समय धर्मके गूढ तत्त्व जाननेवाले दुर्वासा नामक प्रसिद्ध जितेन्द्रिय महर्षि वहां आये। मैंने उन संयतात्मा महर्षिको सब प्रकारके प्रयत्नसे सन्तुष्ट किया ॥ ३३ ॥

स मेऽभिचारसंयुक्तमाचष्ट भगवान्वरम्।
मन्त्रग्रामं च मे प्रादादब्रवीच्चैव मामिदम् ॥ ३४ ॥

उन भगवान्ने मुझको अभिचारयुक्त वर देकर एक मंत्र दे दिया और मुझसे यह कहा ॥ ३४ ॥

यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि।
अकामो वा सकामो वा स ते वशमुपैष्यति ॥ ३५ ॥

कि तुम इस मन्त्रसे जिन जिन देवोंको बुलाओगी, वह सकाम हों वा निष्काम हों उसी क्षण तुम्हारे वशमें हो जायंगे ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इत्युक्ताहं तदा तेन पितृवेश्मनि भारत ।
ब्राह्मणेन वचस्तथ्यं तस्य कालोऽयमागतः ॥ ३६ ॥

हे भारत ! पिताके घरमें उन दुर्वासाने मुझसे ऐसा कहा था । हे भूपाल ! ब्राह्मणकी बात झूठी नहीं होती । अब उसका समय आ पहुंचा है ॥ ३६ ॥

अनुज्ञाता त्वया देवानाह्वयेयमहं नृप ।
तेन मन्त्रेण राजर्षे यथा स्यान्नौ प्रजा विभो ॥ ३७ ॥

अतएव, हे राजर्षि ! आपकी आज्ञा होवे, तो उस मन्त्रसे देवोंको बुला सकती हूं, इससे हमें हित करनेवाला पुत्र प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥

आवाहयामि कं देवं ब्रूहि तत्त्वविदां वर ।
त्वत्तोऽनुज्ञाप्रतीक्षां मां विद्ध्यस्मिन्कर्मणि स्थिताम् ॥ ३८ ॥

हे तत्त्वज्ञोंमें श्रेष्ठ ! कहिये, किस देवको बुलाऊं आपहीकी आज्ञासे मैं इस कार्यमें दत्तचित्त होती हूं । यह आप जान लीजिए ॥ ३८ ॥

पाण्डुरुवाच

अद्यैव त्वं वरारोहे प्रयतस्व यथाविधि ।
धर्ममावाहय शुभे स हि देवेषु पुण्यभाक् ॥ ३९ ॥

पाण्डु बोले– हे सुन्दरि ! तुम आज ही इस बातके लिए यथाविधि प्रयत्न करो । हे शुभे ! धर्मको बुलाओ, क्योंकि वह देवोंमें पुण्यात्मा है ॥ ३९ ॥

अधर्मेण न नो धर्मः संयुज्येत कथंचन ।
लोकश्चायं वरारोहे धर्मोऽयमिति मंस्यते ॥ ४० ॥

हे सुन्दरि ! धर्म हमको किसी प्रकारसे अधर्ममें डाल नहीं सकेंगे और लोक भी समझेंगे, यह काम धर्मयुक्त ही हुआ है ॥ ४० ॥

धार्मिकश्च कुरूणां स भविष्यति न संशयः ।
दत्तस्यापि च धर्मेण नाधर्मे रंस्यते मनः ॥ ४१ ॥

इसमें सन्देह नहीं है, कि धर्मका दिया हुआ वह पुत्र कुरुओंमें धार्मिक होगा और धर्मके द्वारा दिया हुआ होनेके कारण उसका मन कभी अधर्ममें नहीं रमेगा ॥ ४१ ॥

तस्माद्धर्मं पुरस्कृत्य नियता त्वं शुचिस्मिते ।
उपचाराभिचाराभ्यां धर्ममाराधयस्व वै ॥ ४२ ॥

अतः, हे सुन्दरि ! तुम संयत होकर और धर्मका आश्रय कर अभिचार तथा उपचारसे धर्म-हीको बुलाओ ॥ ४२ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

सा तथोक्ता तथेत्युक्त्वा तेन भर्त्रा वराङ्गना।
अभिवाद्याभ्यनुज्ञाता प्रदक्षिणमवर्तत ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ४०८० ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर वह श्रेष्ठ नारी कुन्ती भर्ताकी वह बात सुन उसको मान, पांव छू करके दायीं ओर जाकर खडी हो गई ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ ४०८० ॥

: ११४ :

वैशम्पायन उवाच

संवत्सराहिते गर्भे गान्धार्या जनमेजय।
आह्वयामास वै कुन्ती गर्भार्थं धर्ममच्युतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे जनमेजय! जब गान्धारीने वर्ष भर गर्भ धारण किया था, तब कुन्तीने गर्भके निमित्त अक्षर धर्मको बुलाया ॥ १ ॥

सा बलिं त्वरिता देवी धर्मायोपजहार ह।
जजाप जप्यं विधिवद्दत्तं दुर्वाससा पुरा ॥ २ ॥

और शीघ्र उनके लिए पूजा सामग्री ले आई और पहिले दुर्वासाने जो मन्त्र दिया था, उसको यथाविधि जपने लगी ॥ २ ॥

संगम्य सा तु धर्मेण योगमूर्तिधरेण वै।
लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां वरम् ॥ ३ ॥

अनन्तर सुन्दरी कुन्तीने योगीका स्वरूप लिये हुए धर्मसे मिलकर सब जीवोंमें श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया ॥ ३ ॥

ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे।
दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पुण्येऽभिपूजिते ॥ ४ ॥

इसके पश्चात् कार्तिक महीनेकी अति प्रशंसित पूज्यतिथि अर्थात् शुक्ला अष्टमीकी चन्द्रयुक्त ज्येष्ठा नक्षत्रमें अभिजित् नामक आठवें मुहूर्तमें दिन दोपहरके समय ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समृद्धयशसं कुन्ती सुषाव समये सुतम् ।
जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥ ५ ॥

कुन्तीने अति यशस्वी एक श्रेष्ठ पुत्र प्रसूत किया । उस पुत्रके जन्म लेते ही आकाशवाणी हुई ॥ ५ ॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो भविष्यति न संशयः ।
युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजः सुतः ॥ ६ ॥

" पाण्डुका यह पहिला पुत्र धर्मशील जनोंमें श्रेष्ठ और युधिष्ठिरके नामसे प्रसिद्ध होगा ॥६॥

भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
यशसा तेजसा चैव वृत्तेन च समन्वितः ॥ ७ ॥

यह तीनों लोकोंमें प्रशंसित, यशस्वी, तेजस्वी और चरित्रशील होगा " ॥ ७ ॥

धार्मिकं तं सुतं लब्ध्वा पाण्डुस्तां पुनरब्रवीत् ।
प्राहुः क्षत्रं बलज्येष्ठं बलज्येष्ठं सुतं वृणु ॥ ८ ॥

पाण्डु वह धार्मिक पुत्र पाकर फिर कुन्तीसे बोले, कि पण्डित लोग क्षत्रियको बलमें श्रेष्ठ कहते हैं, अतः तुम एक बलमें प्रधान पुत्रके लिए प्रार्थना करो ॥ ८ ॥

ततस्तथोक्ता पत्या तु वायुमेवाजुहाव सा ।
तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ९ ॥

अनन्तर कुन्तीने पतिकी यह बात सुनकर पवनदेवको बुलाया । तब पवनदेवसे महाभुज भीमपराक्रमी भीमका जन्म हुआ ॥ ९ ॥

तमप्यतिबलं जातं वागभ्यवददच्युतम् ।
सर्वेषां बलिनां श्रेष्ठो जातोऽयमिति भारत ॥ १० ॥

हे भारत ! उस महाबली पुत्रके जन्म लेते ही आकाशवाणी हुई, " यह जन्म लिया हुआ बालक सम्पूर्ण बलियोंमें श्रेष्ठ होगा । " ॥ १० ॥

इदमत्यद्भुतं चासीज्जातमात्रे वृकोदरे ।
यदङ्कात्पतितो मातुः शिलां गात्रैरचूर्णयत् ॥ ११ ॥

वृकोदरके जन्म लेते ही यह एक आश्चर्यजनक घटना हुई, कि उसने माताकी गोदसे गिरकर देहसे पत्थर तोड डाला ॥ ११ ॥

कुन्ती व्याघ्रभयोद्विग्ना सहसोत्पतिता किल ।
नान्वबुध्यत संसुप्तमुत्सङ्गे स्वे वृकोदरम् ॥ १२ ॥

कुन्ती बाघके भयसे भयभीत होकर एकायक उठ खडी हुई, उसे यह ध्यान नहीं रहा कि उसकी गोदमें वृकोदर सोया हुआ है ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततः स वज्रसंघातः कुमारोऽभ्यपतद्गिरौ।
पतता तेन शतधा शिला गात्रैर्विचूर्णिता।
तां शिलां चूर्णितां दृष्ट्वा पाण्डुर्विस्मयमागमत् ॥ १३ ॥

तब वह वज्रसमान शरीरधारी कुमार पहाड पर गिर पडा, गिरनेपर उसकी देहकी चोटसे पत्थर सैंकडों भागोंमें चूर चूर हो गया। उस चट्टानको टूटा हुआ देखकर पाण्डुको बडा आश्चर्य हुआ ॥ १३ ॥

यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भरतसत्तम।
दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप ॥ १४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजन्! जिस दिन भीमने जन्म लिया, उसी दिन दुर्योधनका जन्म हुआ ॥१४॥

जाते वृकोदरे पाण्डुरिदं भूयोऽन्वचिन्तयत्।
कथं नु मे वरः पुत्रो लोकश्रेष्ठो भवेदिति ॥ १५ ॥

वृकोदरका जन्म होनेपर पाण्डु फिर सोचने लगे, कि मेरे एक प्रधान लोकश्रेष्ठ पुत्र कैसे पैदा हो ॥ १५ ॥

दैवे पुरुषकारे च लोकोऽयं हि प्रतिष्ठितः।
तत्र दैवं तु विधिना कालयुक्तेन लभ्यते ॥ १६ ॥

यह भूमण्डल दैव और पुरुषकारसे पूरा प्रतिष्ठित है; उनमेंसे दैव कालके अनुसार विधि वश प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

इन्द्रो हि राजा देवानां प्रधान इति नः श्रुतम्।
अप्रमेयबलोत्साहो वीर्यवानमितद्युतिः ॥ १७ ॥

सुनता हूं, कि इन्द्र देवोंके राजा तथा प्रधान हैं; वह अपरिमित बल और उत्साहयुक्त हैं, और उनका वीर्य तथा प्रकाश भी अपरिमित है ॥ १७ ॥

तं तोषयित्वा तपसा पुत्रं लप्स्ये महाबलम्।
यं दास्यति स मे पुत्रं स वरीयान्भविष्यति।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्तप्स्ये महत्तपः ॥ १८ ॥

तपस्यासे उनको प्रसन्न कर महाबली पुत्र पा सकूंगा; वह मुझको जो पुत्र देंगे, इसलिये मैं कर्म, मन और वाक्यसे कठोर तप करूंगा ॥ १८ ॥

ततः पाण्डुर्महातेजा मन्त्रयित्वा महर्षिभिः।
दिदेश कुन्त्याः कौरव्यो व्रतं सांवत्सरं शुभम् ॥ १९ ॥

अनन्तर कौरवनन्दन महाराज पाण्डुने, महर्षियोंसे परामर्श कर कुन्तीको यह आज्ञा दी, कि वर्षभरमें पूर्ण होवे, ऐसा कोई शुभ व्रत करो ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आत्मना च महाबाहुरेकपादस्थितोऽभवत्।
उग्रं स तप आतस्थे परमेण समाधिना ॥ २० ॥

और स्वयं भी परम समाधिसे कठोर तपस्याको आश्रयकर एक पांवसे खडे हो तप करने लगे ॥ २० ॥

आरिराधयिषुर्देवं त्रिदशानां तमीश्वरम्।
सूर्येण सह धर्मात्मा पर्यवर्तत भारत ॥ २१ ॥

देवोंके राजा इन्द्र देवको प्रसन्न करनेकी इच्छावाले धर्मात्मा पाण्डु सूर्यकी धूपमें उदयके कालसे अस्तकालतक तपने लगे ॥ २१ ॥

तं तु कालेन महता वासवः प्रत्यभाषत।
पुत्रं तव प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २२ ॥

बहुतकाल बीतने पर देवराज उनके पास आकर बोले, कि "मैं तुमको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ पुत्र दूंगा ॥ २२ ॥

देवानां ब्राह्मणानां च सुहृदां चार्थसाधकम्।
सुतं तेऽग्र्यं प्रदास्यामि सर्वामित्रविनाशनम् ॥ २३ ॥

ब्राह्मण, देव और मित्रोंके हित करनेवाले और सम्पूर्ण शत्रुकुलका नाश करनेवाले एक पुत्रको तुम्हें दूंगा" ॥ २३ ॥

इत्युक्तः कौरवो राजा वासवेन महात्मना।
उवाच कुन्तीं धर्मात्मा देवराजवचः स्मरन् ॥ २४ ॥

महात्मा इंद्रके यह बात कहनेपर, धर्मात्मा कौरव देवराजकी उस बातको स्मरण कर कुन्तीसे बोले ॥ २४ ॥

नीतिमन्तं महात्मानमादित्यसमतेजसम्।
दुराधर्षं क्रियावन्तमतीवाद्भुतदर्शनम् ॥ २५ ॥

नीतियुक्त, महात्मा, सूर्यके समान तेजपूर्ण, न हारनेवाला, क्रियावान्, देखनेमें अद्भुत ॥२५॥

पुत्रं जनय सुश्रोणि धाम क्षत्रियतेजसाम्।
लब्धः प्रसादो देवेन्द्रात्तमाह्वय शुचिस्मिते ॥ २६ ॥

क्षत्रियतेजसे पूरित ऐसे कीर्त्तियुक्त पुत्र उत्पन्न करो। हे सुन्दरी! मैंने देवराजको प्रसन्न कर लिया है, तुम उनको बुलाओ ॥ २६ ॥

एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी।
अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥ २७ ॥

यशस्विनी कुन्तीने यह सुनकर इन्द्रको बुलाया। अनन्तर देवराजने आकर अर्जुनको जन्म दिया ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जातमात्रे कुमारे तु वागुवाचाशरीरिणी।
महागम्भीरनिर्घोषा नभो नादयती तदा ॥ २८ ॥

कुमारके जन्म लेते ही बडे गंभीर शब्दसे आकाश गुंजाती आकाशवाणी बोली ॥ २८ ॥

कार्तवीर्यसमः कुन्ति शिबितुल्यपराक्रमः।
एष शक्र इवाजेयो यशस्ते प्रथयिष्यति ॥ २९ ॥

" हे कुन्ति! कार्तवीर्य सदृश वीर्यवान्, शिबि समान पराक्रमी, इन्द्रवत् अजेय यह कुमार सर्वत्र तुम्हारा यश फैलावेगा ॥ २९ ॥

अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाभूदभिवर्धिता।
तथा विष्णुसमः प्रीतिं वर्धयिष्यति तेऽर्जुनः ॥ ३० ॥

विष्णुसे जिस प्रकार अदितिकी प्रीति बढी थी, वैसे ही उपेन्द्रवत् यह पुत्र तुम्हारी प्रीति और भी बढावेगा ॥ ३० ॥

एष मद्रान्वशे कृत्वा कुरूंश्च सह केकयैः।
चेदिकाशिकरूषांश्च कुरुलक्ष्म सुधास्यति ॥ ३१ ॥

यह कुमार मद्र, कुरु, कैकय, चेदि, काशी, करुष आदि देशोंको वशमें लाकर कौरव वंशकी राजलक्ष्मी धारण करेगा ॥ ३१ ॥

एतस्य भुजवीर्येण खाण्डवे हव्यवाहनः।
मेदसा सर्वभूतानां तृप्तिं यास्यति वै पराम् ॥ ३२ ॥

और इस पुत्रके भुजवीर्यसे अग्निदेव खाण्डवप्रस्थमें सर्वभूतोंके मेदसे बडा सन्तोष प्राप्त करेंगे ॥ ३२ ॥

ग्रामणीश्च महीपालानेष जित्वा महाबलः।
भ्रातृभिः सहितो वीरस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥ ३३ ॥

यह महाबली वीर पुरुष भाइयोंके सहित सम्पूर्ण महीपालोंको जीतकर तीन बार अश्वमेध यज्ञ करेगा ॥ ३३ ॥

जामदग्न्यसमः कुन्ति विष्णुतुल्यपराक्रमः।
एष वीर्यवतां श्रेष्ठो भविष्यत्यपराजितः ॥ ३४ ॥

हे कुन्ति! यह पुत्र जामदग्न्य और विष्णु समान पराक्रमी और वीर्यवान् जनोंमें श्रेष्ठ और अपराजित होगा ॥ ३४ ॥

तथा दिव्यानि चास्त्राणि निखिलान्याहरिष्यति।
विप्रनष्टां श्रियं चायमाहर्ता पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥

यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ जन, सम्पूर्ण दिव्यास्त्र सीख कर नष्ट हुई हुई राजलक्ष्मीको फिर सुधारेगा " ॥ ३५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एतामत्यद्भुतां वाचं कुन्तीपुत्रस्य सूतके ।
उक्तवान्वायुराकाशे कुन्ती शुश्राव चास्य ताम् ॥ ३६ ॥

कुन्तीने पुत्रके जन्मपर यह आश्चर्यमयी वाणी सुनी, आकाशमें यह बात वायुने कही और उसे कुन्तीने सुना ॥ ३६ ॥

वाचमुच्चारितामुच्चैस्तां निशम्य तपस्विनाम् ।
बभूव परमो हर्षः शतशृङ्गनिवासिनाम् ॥ ३७ ॥

बडे जोरसे उच्चारी हुई उस वाणीको सुनकर शतशृङ्ग पर विराजते हुए तपस्वियोंको बडा आनन्द हुआ ॥ ३७ ॥

तथा देवऋषीणां च सेन्द्राणां च दिवौकसाम् ।
आकाशे दुन्दुभीनां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥ ३८ ॥

और विमानपर आरूढ देवगण भी बडे प्रसन्न हुए । आकाशमें बडे घोर कोलाहलसे नगाडे बजने लगे ॥ ३८ ॥

उदतिष्ठन्महाघोषः पुष्पवृष्टिभिरावृतः ।
समवेत्य च देवानां गणाः पार्थमपूजयन् ॥ ३९ ॥

महान् शब्द होने लगा, विना रोक टोक फूल वर्षने लगे और सब देव मिलकर पार्थकी पूजा करने लगे ॥ ३९ ॥

काद्रवेया वैनतेया गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
प्रजानां पतयः सर्वे सप्त चैव महर्षयः ॥ ४० ॥

कद्रु और विनताके पुत्रगण, गन्धर्वगण, अप्सरागण और प्रजापतिगण तथा सभी सात महर्षि गण ॥ ४० ॥

भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः ।
यश्चोदितो भास्करेऽभूत्प्रनष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥ ४१ ॥

अर्थात् भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ और सूर्यके नष्ट होने पर जो उदित हुए थे, वह भगवान् अत्रि इस प्रकार यह सात महर्षि वहां आये ॥ ४१ ॥

मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षः प्रजापतिश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ४२ ॥

मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रजापति दक्ष, गन्धर्व और अप्सरागण यह भी वहां आये ॥ ४२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वालङ्कारभूषिताः।
उपगायन्ति बीभत्सुमुपनृत्यन्ति चाप्सराः।
गन्धर्वैः सहितः श्रीमान्प्रागायत च तुम्बुरुः ॥ ४३ ॥

अप्सरावृन्द दिव्यमाला और दिव्यवस्त्र पहिनकर सब आभूषणोंसे बन ठन कर अर्जुनकी प्रशंसाके गीत गाने और नाचने लगी। श्रीमान् तुम्बुरुने गन्धर्वोंके साथ गीत आरंभ किया ॥ ४३ ॥

भीमसेनोग्रसेनौ च ऊर्णायुरनघस्तथा।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च सप्तमः ॥ ४४ ॥

हे नरेश ! भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु और अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र और सातवां सूर्यवर्चा ॥ ४४ ॥

युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्चित्ररथस्तथा।
त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ॥ ४५ ॥

युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि और चित्ररथ, तेरहवां शालिशिरा और चौदहवां पर्जन्य ॥४५॥

कलिः पञ्चदशश्चात्र नारदश्चैव षोडशः।
सद्वा बृहद्वा बृहकः करालश्च महायशाः ॥ ४६ ॥

पन्द्रहवां कलि, सोलहवां नारद, सद्वा, बृहद्वा, बृहक, महायशस्वी कराल ॥ ४६ ॥

ब्रह्मचारी बहुगुणः सुपर्णश्चेति विश्रुतः।
विश्वावसुर्भुमन्युश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा ॥ ४७ ॥

ब्रह्मचारी, बहुगुण, विख्यात सुपर्ण, विश्वावसु, भुमन्यु, सुचन्द्र, दशम ॥ ४७ ॥

गीतमाधुर्यसंपन्नौ विख्यातौ च हहाहुहू।
इत्येते देवगन्धर्वा जगुस्तत्र नरर्षभम् ॥ ४८ ॥

और ललित गीत गानेवाले प्रख्यात हाहा और हूहू यह देव और गन्धर्व वह उस मनुष्य श्रेष्ठके लिए गीत गाने लगे ॥ ४८ ॥

तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालङ्कारभूषिताः।
ननृतुर्वै महाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥ ४९ ॥

प्रशस्तलोचना, महाभागा अप्सरायें सब आभूषणोंसे सज धजकर प्रसन्न चित्तसे नाचने और गाने लगीं ॥ ४९ ॥

अनूना चानवद्या च प्रियमुख्या गुणावरा।
अद्रिका च तथा साची मिश्रकेशी अलम्बुसा ॥ ५० ॥

अनूना, अनवद्या, प्रियमुख्या, गुणावरा, अद्रिका, साची, मिश्रकेशी, अलम्बुसा ॥ ५० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मरीचिः शुचिका चैव विद्युत्पर्णा तिलोत्तमा ।
अम्बिका लक्षणा क्षेमा देवी रम्भा मनोरमा ॥ ५१ ॥

मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी रंभा, मनोरमा ॥ ५१ ॥

असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया सुवपुस्तथा ।
पुण्डरीका सुगन्धा च सुरथा च प्रमाथिनी ॥ ५२ ॥

असिता, सुबाहु, सुप्रिया और सुवपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरथा और प्रमाथिनी ॥ ५२ ॥

काम्या शारद्वती चैव ननृतुस्तत्र सङ्घशः ।
मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला ॥ ५३ ॥

काम्या और शारद्वती यह सब अप्सरायें आपसमें मिलकर नाचने लगीं और मेनका, सहजन्या, पर्णिका, पुंजिकस्थला ॥ ५३ ॥

क्रतुस्थला घृताची च विश्वाची पूर्वचित्त्यपि ।
उम्लोचेत्यभिविख्याता प्रम्लोचेति च ता दश ।
उर्वश्येकादशीत्येता जगुरायतलोचनाः ॥ ५४ ॥

क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ती, उम्लोचा, विख्यात प्रम्लोचा आदि दस और उर्वशी यह ग्यारह स्वर्गकी विशालनेत्रा अप्सरायें एकत्र होकर गीत गाने लगीं ॥ ५४ ॥

धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ।
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ॥ ५५ ॥

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश और भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा और सविता ॥ ५५ ॥

पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्याः पावकार्चिषः ।
महिमानं पाण्डवस्य वर्धयन्तोऽम्बरे स्थिताः ॥ ५६ ॥

और पर्जन्य, विष्णु, आदित्य तथा पावकगण आकाशमें विराजते हुए पाण्डुपुत्रकी महिमा बढाने लगे ॥ ५६ ॥

मृगव्याधश्च शर्वश्च निर्ऋतिश्च महायशाः
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परन्तपः ॥ ५७ ॥

हे शत्रुनाशी ! मृग–व्याध, शर्व, अति यशस्वी निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य और शत्रुनाशक पिनाकी ॥ ५७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशां पते।
स्थाणुर्भवश्च भगवान्रुद्रास्तत्रावतस्थिरे ॥ ५८ ॥

हे राजन्! दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भगवान् भव यह ग्यारह रुद्र वहां आये ॥५८॥

अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः।
विश्वेदेवास्तथा साध्यास्तत्रासन्परिसंस्थिताः ॥ ५९ ॥

दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वदेवगण और साध्यगण आकर वहां विराजने लगे ॥ ५९ ॥

कर्कोटकोऽथ शेषश्च वासुकिश्च भुजङ्गमः।
कच्छपश्चापकुण्डश्च तक्षकश्च महोरगः ॥ ६० ॥

कर्कोटक, शेष तथा भुजगश्रेष्ठ वासुकी, कच्छप, कुण्ड और महोरग तक्षक ॥ ६० ॥

आययुस्तेजसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः।
एते चान्ये च बहवस्तत्र नागा व्यवस्थिताः ॥ ६१ ॥

वह सब तेज युक्त बडे क्रोधी महाबली सर्प और दूसरे बहुत सारे नाग वहां आपहुंचे ॥६१॥

तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्चासितध्वजः।
अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया व्यवस्थिताः ॥ ६२ ॥

तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड, असितध्वज, अरुण और आरुणि यह सब विनताके पुत्र भी वहां आ गये ॥ ६२ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मिता मुनिसत्तमाः।
अधिकां स्म ततो वृत्तिमवर्तन्पाण्डवान्प्रति ॥ ६३ ॥

मुनियोंने वह सब अति आश्चर्य लीला देखकर अचरज माना और पाण्डवोंके प्रति उनकी श्रद्धा और अधिक हो गई ॥ ६३ ॥

पाण्डुस्तु पुनरेवैनां पुत्रलोभान्महायशाः।
प्राहिणोद्दर्शनीयाङ्गीं कुन्तीं त्वेनमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥

अति यशस्वी पाण्डुने पुत्रके लोभसे फिर सुन्दर अंगोंवाली कुन्तीको भेजना चाहा। उसपर कुन्ती उनसे बोली ॥ ६४ ॥

नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत।
अतः परं चारिणी स्यात्पञ्चमे बन्धकी भवेत् ॥ ६५ ॥

धर्म जाननेवाले लोग आपत्कालमें भी चौथे प्रसवकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि चौथे पुरुषसे नारी स्वैरिणी होती है और पांचवें पुरुषसे मिलनेसे वेश्या होती है ॥ ६५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स त्वं विद्वन्धर्ममिमं बुद्धिगम्यं कथं नु माम् ।
अपत्यार्थं समुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ४१४६ ॥

हे विद्वन् ! आप यह बुद्धि द्वारा जानने योग्य धर्म जानने पर भी क्यों बावलेके समान फिर सन्तानके लिये मुझसे कहते हैं ? ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ ११४ ॥ ४१४६ ॥

: ११५ :

वैशंपायन उवाच

कुन्तीपुत्रेषु जातेषु धृतराष्ट्रात्मजेषु च ।
मद्रराजसुता पाण्डुं रहो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर कुन्ती और गान्धारीके पुत्रोंके पैदा होने पर मद्रराजकी पुत्री माद्री एकान्तमें पाण्डुसे यह वचन बोली ॥ १ ॥

न मेऽस्ति त्वयि संतापो विगुणेऽपि परन्तप ।
नावरत्वे वरार्हायाः स्थित्वा चानघ नित्यदा ॥ २ ॥

हे शत्रुनाशिन् ! आपके मुझपर कृपायुक्त न रहनेके कारण भी मुझे कोई विशेष दुःख नहीं है, हे अनघ ! कुन्तीसे सदा अश्रेष्ठ बनी रहने पर भी मुझे दुःख नहीं है ॥ २ ॥

गान्धार्याश्चैव नृपते जातं पुत्रशतं तथा ।
श्रुत्वा न मे तथा दुःखमभवत्कुरुनन्दन ॥ ३ ॥

हे नरनाथ कुरुनन्दन ! गान्धारीके सौ पुत्र सुनकरके भी मुझे कोई बडा क्लेश नहीं हुआ ॥ ३ ॥

इदं तु मे महद्दुःखं तुल्यतायामपुत्रता ।
दिष्ट्या त्विदानीं भर्तुर्मे कुन्त्यामप्यस्ति सन्ततिः ॥ ४ ॥

पर इसका मुझे बडा दुःख है कि हम दोनों सौत समान हैं, पर तौ भी मेरे सन्तान नहीं हुई, भाग्यवश कुन्तीसे आपके सन्तानें हुई हैं ॥ ४ ॥

यदि त्वपत्यसंतानं कुन्तिराजसुता मयि ।
कुर्यादनुग्रहो मे स्यात्तव चापि हितं भवेत् ॥ ५ ॥

इस समय यदि कुन्तिराजपुत्री मेरे सन्तान होनेका उपाय कर दे, तो मुझपर बडी दया होवे और उससे आपका भी हित हो सकता है ॥ ५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्तम्भो हि मे सपत्नीत्वाद्वक्तुं कुन्तिसुतां प्रति।
यदि तु त्वं प्रसन्नो मे स्वयमेनां प्रचोदय ॥ ६ ॥

कुन्तिपुत्री मेरी सौत है, अतः उससे स्वयं कहनेका साहस नहीं होता, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों, तो आप ही उनको आज्ञा दीजिये ॥ ६ ॥

पाण्डुरुवाच

ममाप्येष सदा माद्रि हृद्यर्थः परिवर्तते।
न तु त्वां प्रसहे वक्तुमिष्टानिष्टविवक्षया ॥ ७ ॥

पाण्डु बोले– हे माद्रि ! इस विषयमें मैं सदा मन ही मनमें विचार किया करता हूं, पर यह तुम्हें इष्ट है, वा नहीं, यह न जाननेके कारण तुमसे कहनेका साहस नहीं हुआ था ॥७॥

तव त्विदं मतं ज्ञात्वा प्रयतिष्याम्यतः परम्।
मन्ये ध्रुवं मयोक्ता सा वचो मे प्रतिपत्स्यते ॥ ८ ॥

अब तुम्हारा मत जान लिया, अतः अब उस विषयमें प्रयत्न भी करूंगा, मुझे आशा है कि मेरे कहनेसे कुन्ती मान लेगी ॥ ८ ॥

वैशंपायन उवाच

ततः कुन्तीं पुनः पाण्डुर्विविक्त इदमब्रवीत्।
कुलस्य मम सन्तानं लोकस्य च कुरु प्रियम् ॥ ९ ॥

वैशम्पायन बोले– एक दिन पाण्डु फिर एकान्तमें कुन्तीसे बोले– हे कल्याणि ! मेरी प्रीतिके लिये लोकोंके लिए प्रिय कल्याणयुक्त ऐसा काम करो ॥ ९ ॥

मम चापिण्डनाशाय पूर्वेषामपि चात्मनः।
मत्प्रियार्थं च कल्याणि कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ १० ॥

जिससे मेरा वंश न उखडे और मेरे, पितरोंके और तुम्हारे भी पिण्डलोप होनेकी संभावना न रहे। अतः हे कल्याणि ! मेरी प्रीतिके लिए तुम उत्तम कल्याण करो ॥१०॥

यशसोऽर्थाय चैव त्वं कुरु कर्म सुदुष्करम्।
प्राप्याधिपत्यमिन्द्रेण यज्ञैरिष्टं यशोऽर्थिना ॥ ११ ॥

हे भामिनि ! तुम यश प्राप्त करनेके लिये इस कठिन कार्यको करो, देवोंके अधिकारी होने पर भी केवल यश प्राप्त करनेके लिये देवराजने यज्ञ किया था ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथा मन्त्रविदो विप्रास्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ।
गुरूनभ्युपगच्छन्ति यशसोऽर्थाय भामिनि ॥ १२ ॥

हे भामिनि ! मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणलोग यशहीके लिये कठोर तप कर गुरुकी उपासना किया करते हैं ॥ १२ ॥

तथा राजर्षयः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपोधनाः ।
चक्रुरुच्चावचं कर्म यशसोऽर्थाय दुष्करम् ॥ १३ ॥

और राजर्षि तथा तपोधन ब्राह्मण लोगोंने केवल यशहीके लिये नाना कठिन कर्म किये हैं ॥ १३ ॥

सा त्वं माद्रीं प्लवेनेव तारयेमामनिन्दिते ।
अपत्यसंविभागेन परां कीर्तिमवाप्नुहि ॥ १४ ॥

अतएव, हे अनिन्दित प्रिये ! तुम सन्तानरूप बेडेसे माद्रीका उद्धार करो। उसको पुत्रवती बना कर परम कीर्ति प्राप्त करो ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वाब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम् ।
तस्मात्ते भवितापत्यमनुरूपमसंशयम् ॥ १५ ॥

कुन्ती यह सुनकर माद्रीसे बोली– तुम एकबार किसी देवका स्मरण करो, इसमें सन्देह नहीं, कि उनसे तुम्हारे उन्हींके अनुरूप पुत्र होगा ॥ १५ ॥

ततो माद्री विचार्यैव जगाम मनसाश्विनौ ।
तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ ॥ १६ ॥
नकुलं सहदेवं च रूपेणाप्रतिमौ भुवि ।
तथैव तावपि यमौ वागुवाचाशरीरिणी ॥ १७ ॥

माद्रीने मन ही मनमें विचार कर दोनों अश्विनीकुमारोंको स्मरण किया । दोनों अश्विनी कुमारोंने वहां आकर नकुल और सहदेव नामक संसारमें अद्वितीय रूपवाले दो जुडवें पुत्र उत्पन्न किए । तब उसी प्रकार उन जुडवोंके लिए आकाशवाणी हुई ॥ १६–१७ ॥

रूपसत्त्वगुणोपेतावेतावन्याञ्जनानति ।
भासतस्तेजसात्यर्थं रूपद्रविणसम्पदा ॥ १८ ॥

" सत्यरूपी गुणसे युक्त यह दो कुमार रूपसंपद् और तेजसे सभी लोगोंसे श्रेष्ठ होंगे " ॥१८॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नामानि चक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः ।
भक्त्या च कर्मणा चैव तथाशीर्भिर्विशां पते ॥ १९ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! अनन्तर शतशृंग पर रहनेवाले ब्राह्मणोंने कुमारोंके कर्म और भक्ति देखकर अशीस देकर नाम रख दिये ॥ १९ ॥

ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्याहुर्भीमसेनेति मध्यमम् ।
अर्जुनेति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकल्पयन् ॥ २० ॥

उन्होंने कुन्तीके पुत्रोंमें बडेका नाम युधिष्ठिर, मंझलेका नाम भीमसेन, तीसरेका नाम अर्जुन रखा ॥ २० ॥

पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चापरम् ।
माद्रीपुत्रावकथयंस्ते विप्राः प्रीतमानसाः ।
अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः ॥ २१ ॥

और प्रसन्न मनसे वे ब्राह्मण माद्रीके दो पुत्रोंमेंसे पहिले पुत्रको नकुल और दूसरेको सहदेव पुकारने लगे । कुरु-वंशमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्रगणकी आयु वर्ष भरकी हुई ॥ २१ ॥

कुन्तीमथ पुनः पाण्डुर्माद्र्यर्थे समचोदयत् ।
तमुवाच पृथा राजन्रहस्युक्ता सती सदा ॥ २२ ॥

अनन्तर पाण्डुने फिर एकान्तमें माद्रीके लिये कुन्तीसे विनय की, तब, हे राजन् ! इस प्रकार कही जानेपर कुन्तीने उन्हें उत्तर दिया ॥ २२ ॥

उक्ता सकृद्द्वन्द्वमेषा लेभे तेनास्मि वञ्चिता ।
बिभेम्यस्याः परिभवान्नारीणां गतिरीदृशी ॥ २३ ॥

कि मेरे एक बार कहनेसे माद्रीने दो पुत्र प्राप्त किये इससे मैं ठगी गयी हूं, अतः अब उससे मुझे हारनेका भय है क्योंकि नारियोंका स्वभाव ऐसा ही होता है ॥ २३ ॥

नाज्ञासिषमहं मूढा द्वन्द्वाह्वाने फलद्वयम् ।
तस्मान्नाहं नियोक्तव्या त्वयैषोऽस्तु वरो मम ॥ २४ ॥

मैं मूर्ख हूं, पहिले नहीं जानती थी, कि एक ही बार दो देवोंको बुलानेसे दो पुत्र पैदा होते हैं, अतः अब आपसे यह वर मांगती हूं, कि आप इस विषयमें मुझे आज्ञा न दें ॥ २४ ॥

एवं पाण्डोः सुताः पञ्च देवदत्ता महाबलाः ।
संभूताः कीर्तिमन्तस्ते कुरुवंशविवर्धनाः ॥ २५ ॥

महाराज ! इस प्रकारसे पाण्डुके देवों द्वारा दिये हुए महाबली कीर्त्तिशाली, कुरुवंश बढानेवाले पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शुभलक्षणसंपन्नाः सोमवत्प्रियदर्शनाः ।
सिंहदर्पा महेष्वासाः सिंहविक्रान्तगामिनः ।
सिंहग्रीवा मनुष्येन्द्रा ववृधुर्देवविक्रमाः ॥ २६ ॥

वे मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डवलोग शुभलक्षणयुक्त, चन्द्रमाके समान देखनेमें प्रिय, बडे धनुर्धारी, सिंहके समान सत्वयुक्त, सिंहकी भांति विक्रमी, सिंहकी भांति गर्दन युक्त, मनुष्योंमें इन्द्रके समान और देवोंके समान विक्रमयुक्त होकर दिनपर दिन बढने लगे ॥ २६ ॥

विवर्धमानास्ते तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ।
विस्मयं जनयामासुर्महर्षीणां समेयुषाम् ॥ २७ ॥

पवित्र हिमालयपर बढते हुए उन्होंने एकत्रित महर्षि लोगोंमें अचरज पैदा किया ॥ २७ ॥

ते च पञ्च शतं चैव कुरुवंशविवर्धनाः ।
सर्वे ववृधुरल्पेन कालेनाप्स्विव नीरजाः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ ४१७४ ॥

जिस प्रकार जलमें थोडे कालमें पद्मवन खिल उठता है, वैसे ही वे एक सौ पांच कौरव स्वल्प कालमें ही बढे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ ४१७४ ॥

: ११६ :

वैशम्पायन उवाच

दर्शनीयांस्ततः पुत्रान्पाण्डुः पञ्च महावने ।
तान्पश्यन्पर्वते रेमे स्वबाहुबलपालितान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनंतर पाण्डु देखनेके योग्य तथा अपने बाहुबलसे पालित उन पांच पुत्रोंको देखकर उस पहाडपर भारी वनमें सुखसे काल काटने लगे ॥ १ ॥

सुपुष्पितवने काले कदाचिन्मधुमाधवे ।
भूतसंमोहने राजा सभार्यो व्यचरद्वनम् ॥ २ ॥

एक समय प्राणियोंके मोहनेवाले वसंतके आने पर नाना फूलोंसे सजे सजाये वनमें राजा पाण्डु स्त्रीके साथ घूमने लगे ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पलाशैस्तिलकैश्चूतैश्चम्पकैः पारिभद्रकैः।
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः फलपुष्पसमृद्धिभिः ॥ ३ ॥

पलाश, तिल, आम, चम्पा, पारिभद्रक तथा फलफूलोंसे समृद्ध अन्य बहुतसे वृक्षोंसे समृद्ध ॥ ३ ॥

जलस्थानैश्च विविधैः पद्मिनीभिश्च शोभितम्।
पाण्डोर्वनं तु संप्रेक्ष्य प्रजज्ञे हृदि मन्मथः ॥ ४ ॥

कमलोंसे सुशोभित, अनेक तरहके तालाबोंसे युक्त उस वनको देखकर राजाके हृदयमें कामदेव जाग्रत हो गए ॥ ४ ॥

प्रहृष्टमनसं तत्र विहरन्तं यथामरम्।
तं माद्र्यनुजगामैका वसनं बिभ्रती शुभम् ॥ ५ ॥

उत्तम वस्त्र पहिने हुई माद्री अकेली प्रफुल्लितचित्त और देवताके समान घूमते हुए उन राजाके पीछे पीछे चलने लगी ॥ ५ ॥

समीक्षमाणः स तु तां वयःस्थां तनुवाससम्।
तस्य कामः प्रववृधे गहनेऽग्निरिवोत्थितः ॥ ६ ॥

तब पतला वस्त्र पहिने हुई युवती माद्रीको देखकर राजाके हृदयमें उसी प्रकार मदनकी आग सुलग उठी, कि जैसे वनमें आग जल उठती है ॥ ६ ॥

रहस्यात्मसमां दृष्ट्वा राजा राजीवलोचनाम्।
न शशाक नियन्तुं तं कामं कामबलात्कृतः ॥ ७ ॥

वह एकान्तमें उस पद्मनेत्रा बालाको देखते ही एकदम कामके वशमें हो गये और किसी प्रकार कामको रोक नहीं सके ॥ ७ ॥

तत एनां बलाद्राजा निजग्राह रहोगताम्।
वार्यमाणस्तया देव्या विस्फुरन्त्या यथाबलम् ॥ ८ ॥

तब एकान्तमें आई हुई अपनी धर्मपत्नीको उन्होंने जबर्दस्ती पकड लिया। तब देवी माद्री अपने पूरे बल और शक्तिसे उन्हें रोकने लगी ॥ ८ ॥

स तु कामपरीतात्मा तं शापं नान्वबुध्यत।
माद्रीं मैथुनधर्मेण गच्छमानो बलादिव ॥ ९ ॥

पर राजा तब कामसे बावले बन गए थे, अतः प्राणनाशी पूर्व कथित शापको उन्होंने स्मरण नहीं किया और मैथुनके लिए माद्रीको उन्होंने जबर्दस्ती पकड लिया ॥ ९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जीवितान्ताय कौरव्यो मन्मथस्य वशं गतः ।
शापजं भयमुत्सृज्य जगामैव बलात्प्रियाम् ॥ १० ॥

हे कौरव ! उस कालमें मदनकी आज्ञासे चलते हुए पाण्डुने विधिवश शापके भयको भूलकर मानो जीवन छोडनेहीके लिये बलसे माद्रीसे समागम किया ॥ १० ॥

तस्य कामात्मनो बुद्धिः साक्षात्कालेन मोहिता ।
संप्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रनष्टा सह चेतसा ॥ ११ ॥

उस कामयुक्त पुरुषकी बुद्धि साक्षात् कालसे मोहित होकर इन्द्रियोंको मंथनकर चेतनासहित जाती रही थी ॥ ११ ॥

स तया सह संगम्य भार्यया कुरुनन्दन ।
पाण्डुः परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥ १२ ॥

इसलिए वह परम धार्मिक कुरुनन्दन पाण्डु स्त्रीसे मिलकर कालके धर्मके साथ मिल गए अर्थात् मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

ततो माद्री समालिङ्ग्य राजानं गतचेतसम् ।
मुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव ह ॥ १३ ॥

तब माद्री चेतना रहित भूपालसे लिपट कर बार बार दुःखसे विलाप करने लगी ॥ १३ ॥

सह पुत्रैस्ततः कुन्ती माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
आजग्मुः सहितास्तत्र यत्र राजा तथागतः ॥ १४ ॥

तब पुत्रोंके साथ कुन्ती और माद्रीके दोनों पुत्र उस शोकयुक्त शब्दको सुनकर एकत्र हो करके वहां आए, जहां राजाकी वह दशा हुई थी ॥ १४ ॥

ततो माद्र्यब्रवीद्राजन्नार्ता कुन्तीमिदं वचः ।
एकैव त्वमिहागच्छ तिष्ठन्त्वत्रैव दारकाः ॥ १५ ॥

हे महाराज ! तब माद्री कातर स्वरमे कुन्तीसे बोली, कि तुम अकेली ही यहां आओ, लडके वहीं रहें ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यास्तत्रैवावार्य दारकान् ।
हताहमिति विक्रुश्य सहसोपजगाम ह ॥ १६ ॥

कुन्ती यह सुनकर लडकोंको वहीं छोडकर यह कहके रोती हुई कि 'मैं मारी गयी' उसी क्षण वहां आ पहुंची ॥ १६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दृष्ट्वा पाण्डुं च माद्रीं च शयानौ धरणीतले।
कुन्ती शोकपरीताङ्गी विललाप सुदुःखिता ॥ १७ ॥

वह माद्रीके साथ पाण्डुको धरतीपर लेटे हुए देखकर शोकसे विह्वल हुई और अति दुःखसे विलपती हुई बोली ॥ १७ ॥

रक्ष्यमाणो मया नित्यं वीरः सततमात्मवान्।
कथं त्वमभ्यतिक्रान्तः शापं जानन्वनौकसः ॥ १८ ॥

इस जितेन्द्रिय वीरको मैं सदा बचाती फिरती थी, इन्होंने ऋषिके शापको जान करके भी क्योंकर तुझसे समागम किया ? ॥ १८ ॥

ननु नाम त्वया माद्रि रक्षितव्यो जनाधिपः।
सा कथं लोभितवती विजने त्वं नराधिपम् ॥ १९ ॥

हे माद्रि ! इस भूपालको तुझे बचाना चाहिए था, वह न करके तूने क्यों इस राजाको एकान्तमें लुभाया ? ॥ १९ ॥

कथं दीनस्य सततं त्वामासाद्य रहोगताम्।
तं विचिन्तयतः शापं प्रहर्षः समजायत ॥ २० ॥

वह शापसे ग्रसित होनेके कालसे सदा दुःखी चित्तसे उस शापके सोचमें रहते थे, फिर एकान्तमें तुझे पाकर क्योंकर इनके चित्तमें हर्ष पैदा हुआ ? ॥ २० ॥

धन्या त्वमसि वाह्लीकि मत्तो भाग्यतरा तथा।
दृष्टवत्यसि यद्वक्त्रं प्रहृष्टस्य महीपतेः ॥ २१ ॥

हे वाह्लीकि ! तू मुझसे धन्य और भाग्यवती है, क्योंकि तूने कामयुक्त भूपालका प्रफुल्ल मुख देखा है ! ॥ २१ ॥

माद्र्युवाच

विलोभ्यमानेन मया वार्यमाणेन चासकृत्।
आत्मा न वारितोऽनेन सत्यं दिष्टं चिकीर्षुणा ॥ २२ ॥

माद्री बोली– हे देवि ! मैं विलपती हुई बार बार रोकने लगी, पर राजा शापके कारण दुर्भाग्यको सफल करनेहीके लिये अपनेको नहीं रोक सके ॥ २२ ॥

कुन्त्युवाच

अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम।
अवश्यं भाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्तय ॥ २३ ॥

अनन्तर कुन्ती बोली– मैं बडी धर्मपत्नी हूं, प्रधान धर्मफल मुझको ही मिलना चाहिए, इसलिए, हे माद्री ! अवश्यमेव होनेवाले विषयसे मुझे मत रोक ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अन्वेष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम् ।
उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमान्रक्षस्व दारकान् ॥ २४ ॥

मैं परलोकको सिधारे हुए पतिके साथ ही जाऊंगी, उठ, तू इनको छोडकर इन लडकोंको पाल ॥ २४ ॥

माद्र्युवाच

अहमेवानुयास्यामि भर्तारमपलायिनम् ।
न हि तृप्तास्मि कामानां तज्ज्येष्ठा अनुमन्यताम् ॥ २५ ॥

माद्री बोली– न भागनेवाले इन अपने पतिके साथ मैं ही जाऊंगी, क्योंकि मैं काम रससे भली प्रकार तृप्त नहीं हुई हूं; तुम बडी हो इसलिए मुझे आज्ञा दो ॥ २५ ॥

मां चाभिगम्य क्षीणोऽयं कामाद्भरतसत्तमः ।
तमुच्छिन्द्यामस्य कामं कथं नु यमसादने ॥ २६ ॥

यह भरत कुलके प्रदीप्त पाण्डु कामवश होकर मुझसे मिल करके ही गतप्राण हुए हैं, इसलिए मैं यमराजके घरमें क्यों इनके उस कामको नष्ट करूं ? ॥ २६ ॥

न चाप्यहं वर्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते ।
वृत्तिमार्ये चरिष्यामि स्पृशेदेनस्तथा हि माम् ॥ २७ ॥

हे आर्ये ! ऐसा जान नहीं पडता है, कि मैं जीती रहकर तुम्हारे पुत्रोंको अपने पुत्रोंकी भांति पाल सकूंगी, अतः उस हेतु मुझको पाप लग सकता है ॥ २७ ॥

तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्तितव्यं स्वपुत्रवत् ।
मां हि कामयमानोऽयं राजा प्रेतवशं गतः ॥ २८ ॥

अतएव, हे कुन्ति ! तुम मेरे इन दोनों पुत्रोंसे अपने पुत्रकी भांति बर्ताव करना, यह राजा मेरी ही कामना करके परलोकको सिधारे हैं ॥ २८ ॥

राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं कलेवरम् ।
दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु ॥ २९ ॥

इसलिए इनके शरीरसे मेरे इस शरीरको ढककर फूंकना। हे आर्ये ! मेरे इस प्रिय कार्यको करो ॥ २९ ॥

दारकेष्वप्रमत्ता च भवेथाश्च हिता मम ।
अतोऽन्यन्न प्रपश्यामि संदेष्टव्यं हि किंचन ॥ ३० ॥

तुम मेरे हित चाहनेवाली होकर लडकोंपर ध्यान रखना, इसके अतिरिक्त मैं नहीं समझती हूं, कि मुझे और कुछ कहनेको है ॥ ३० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं चिताग्निस्थं धर्मपत्नी नरर्षभम्।
मद्रराजात्मजा तूर्णमन्वारोहद्यशस्विनी ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ४२०५ ॥

वैशम्पायन बोले– धर्मपत्नी यशस्विनी मद्रराजकन्या यह कहकर बिना विलम्ब चिताकी आगमें स्थित पाण्डुके साथ बैठ गयी ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥ ४२०५ ॥

: ११७ :

वैशंपायन उवाच

पाण्डोरवभृथं कृत्वा देवकल्पा महर्षयः।
ततो मन्त्रमकुर्वन्त ते समेत्य तपस्विनः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– देवोंके सदृश महर्षि तपस्वीगण पाण्डुकी मृत्युको देखकर आपसमें कहने लगे ॥ १ ॥

हित्वा राज्यं च राष्ट्रं च स महात्मा महातपाः।
अस्मिन्स्थाने तपस्तप्तुं तापसाञ्शरणं गतः ॥ २ ॥

कि अति तपस्वी महात्मा पाण्डुने राज्य और राष्ट्रको छोडके इस स्थानमें तप करनेके लिए तपस्वियोंकी शरण ली थी ॥ २ ॥

स जातमात्रान्पुत्रांश्च दारांश्च भवतामिह।
प्रदायोपनिधिं राजा पाण्डुः स्वर्गमितो गतः ॥ ३ ॥

वह राजा पाण्डु स्त्री और बालकपुत्रोंको इस स्थानमें तुम्हारे पास निधिकी भांति रखकर यहींसे स्वर्गको पधारे हैं ॥ ३ ॥

ते परस्परमामन्त्र्य सर्वभूतहिते रताः।
पाण्डोः पुत्रान्पुरस्कृत्य नगरं नागसाह्वयम् ॥ ४ ॥

सब प्राणियोंके हितमें रत वे महर्षि आपसमें विचार कर पाण्डुके पुत्रोंको आगे करके हस्तिनापुर नगरको चले ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उदारमनसः सिद्धा गमने चक्रिरे मनः ।
भीष्माय पाण्डवान्दातुं धृतराष्ट्राय चैव हि ॥ ५ ॥
तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे ।
पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरं चैव तापसाः ॥ ६ ॥

वे उदार चित्तवाले सिद्ध महर्षि उन पाण्डुके पुत्रोंको भीष्म और धृतराष्ट्रके निकट सौंप देनेके लिये वें तपस्वी उसी क्षण उन पाण्डुकी स्त्री, पुत्र और मृत शरीरको लेकर चले ॥५-६॥

सुखिनी सा पुरा भूत्वा सततं पुत्रवत्सला ।
प्रपन्ना दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तदमन्यत ॥ ७ ॥

पुत्रप्रेमयुक्त कुन्तीको पहिले सदा सुखी रहनेपर भी अब निज देशमें जानेके कौतूहलसे वह दूरी भी निकट ही जान पडी ॥ ७ ॥

सा नदीर्घेण कालेन संप्राप्ता कुरुजाङ्गलम् ।
वर्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्विनी ॥ ८ ॥

वह यशस्विनी स्वल्पकालमें कुरुजाङ्गलमें पहुंचकर नगरके प्रधान द्वार पर पहुंची ॥ ८ ॥

तं चारणसहस्राणां मुनीनामागमं तदा ।
श्रुत्वा नागपुरे नृणां विस्मयः समजायत ॥ ९ ॥

हस्तिनापुरमें सहस्रों गुह्यक और मुनियोंके आनेका समाचार सुनकर पुरवासी प्रजाओंको बडा आश्चर्य हुआ ॥ ९ ॥

मुहूर्तोदित आदित्ये सर्वे धर्मपुरस्कृताः ।
सदारास्तापसान्द्रष्टुं निर्ययुः पुरवासिनः ॥ १० ॥

अनन्तर सूर्य उगनेके क्षणभर बाद पुरवासी लोग तपस्वियोंके दर्शनके निमित्त स्त्री पुत्रादिके साथ पहुंचने लगे ॥ १० ॥

स्त्रीसङ्घाः क्षत्रसङ्घाश्च यानसंघान्समास्थिताः ।
ब्राह्मणैः सह निर्जग्मुर्ब्राह्मणानां च योषितः ॥ ११ ॥

यानोंपर चढे स्त्री सहित क्षत्रियगण और ब्राह्मणोंके साथ ब्राह्मणियां चलीं ॥ ११ ॥

तथा विट्शूद्रसङ्घानां महान्व्यतिकरोऽभवत् ।
न कश्चिदकरोदीर्ष्यामभवन्धर्मबुद्धयः ॥ १२ ॥

वैश्य तथा शूद्रोंकी भी बडी भीड लग गई। उस समय किसीने किसी पर द्वेष प्रगट नहीं किया, सबोंकी बुद्धि धर्ममार्गमें बनी रही ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथा भीष्मः शान्तनवः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः
प्रज्ञाचक्षुश्च राजर्षिः क्षत्ता च विदुरः स्वयम् ॥ १३ ॥

शन्तनुपुत्र भीष्म, बाह्लीक, सोमदत्त, प्राज्ञनेत्र राजर्षि धृतराष्ट्र तथा स्वयं विदुर ॥ १३ ॥

सा च सत्यवती देवी कौसल्या च यशस्विनी।
राजदारैः परिवृता गान्धारी च विनिर्ययौ ॥ १४ ॥

देवी सत्यवती, यशस्विनी काशीराजकन्या और राजरानियोंसे घिरी हुई गन्धारी भी निकली ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्रस्य दायादा दुर्योधनपुरोगमाः।
भूषिता भूषणैश्चित्रैः शतसङ्ख्या विनिर्ययुः ॥ १५ ॥

दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके सौ पुत्र भी नाना सुन्दर गहनोंसे सजकर आये ॥ १५ ॥

तान्महर्षिगणान्सर्वाञ्शिरोभिरभिवाद्य च।
उपोपविविशुः सर्वे कौरव्याः सपुरोहिताः ॥ १६ ॥

पुरोहितके साथ कौरवलोग उन सब महर्षियोंको देखकर सिर नवाकर प्रणाम करके सामने बैठ गए ॥ १६ ॥

तथैव शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च।
उपोपविविशुः सर्वे पौरजानपदा अपि ॥ १७ ॥

उसी प्रकार नागरिक और ग्रामवासी सभी अभिवादन कर तथा सिर नवा करके प्रणाम पूर्वक भूमिपर उनके सामने जा बैठे ॥ १७ ॥

तमकूजमिवाज्ञाय जनौघं सर्वशस्तदा।
भीष्मो राज्यं च राष्ट्रं च महर्षिभ्यो न्यवेदयत् ॥ १८ ॥

हे प्रभो! अनन्तर भीष्मने चारों ओर सब लोगोंको चुपचाप देखकर राज्य और राजाका हाल उन महर्षियोंको कह सुनाया ॥ १८ ॥

तेषामथो वृद्धतमः प्रत्युत्थाय जटाजिनी।
महर्षिमतमाज्ञाय महर्षिरिदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

इसके पश्चात् उनमें सबसे बूढ़े, जटा अजिन धरे हुए एक महर्षि उठे और साथी ऋषियों-की सम्मति लेकर यह बात बोले ॥ १९ ॥

यः स कौरव्यदायादः पाण्डुर्नाम नराधिपः।
कामभोगान्परित्यज्य शतशृङ्गमितो गतः ॥ २० ॥

कौरव-राज्यके अधीश पाण्डु नामक जो भूपाल कामके भोगको तजकर यहांसे शतशृङ्ग पर गये थे ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्मचर्यव्रतस्थस्य तस्य दिव्येन हेतुना ।
साक्षाद्धर्मादयं पुत्रस्तस्य जातो युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥

उनके ब्रह्मचर्य व्रतके लेनेपर किसी दिव्य कारणसे उस शतशृङ्ग पर साक्षात् धर्मसे इस पुत्रका जन्म हुआ है, इनका नाम युधिष्ठिर है ॥ २१ ॥

तथेमं बलिनां श्रेष्ठं तस्य राज्ञो महात्मनः ।
मातरिश्वा ददौ पुत्रं भीमं नाम महाबलम् ॥ २२ ॥

उस महात्मा राजाको पवनने बलवानोंमें श्रेष्ठ भीम नामक यह महाबली पुत्र दिया है ॥ २२ ॥

पुरुहूतादयं जज्ञे कुन्त्यां सत्यपराक्रमः ।
यस्य कीर्तिर्महेष्वासान्सर्वानभिभविष्यति ॥ २३ ॥

सत्य पराक्रमी इस बालकने देवराजसे कुन्तीके गर्भसे जन्म लिया है, जिसकी कीर्त्ति संपूर्ण धनुर्धारियोंको पराजित करेगी ॥ २३ ॥

यौ तु माद्री महेष्वासावसूत कुरुसत्तमौ ।
अश्विभ्यां मनुजव्याघ्राविमौ तावपि तिष्ठतः ॥ २४ ॥

अन्य दोनों अश्विनी कुमारोंसे माद्रीने जो दो महा धनुर्धारी कुरुश्रेष्ठोंको प्रसूत किया है, वे दोनों पुरुषव्याघ्र भी यहां उपस्थित हैं ॥ २४ ॥

चरता धर्मनित्येन वनवासं यशस्विना ।
एष पैतामहो वंशः पाण्डुना पुनरुद्धृतः ॥ २५ ॥

यशस्वी पाण्डुने धार्मिक और वनचारी होकरके इस पितामह-वंशका फिर उद्धार किया है ॥ २५ ॥

पुत्राणां जन्म वृद्धिं च वैदिकाध्ययनानि च ।
पश्यतः सततं पाण्डोः शश्वत्प्रीतिरवर्धत ॥ २६ ॥

पुत्रोंके जन्म, वृद्धि और वेद पठनको भली प्रकार हमेशा देखते हुए पाण्डुकी प्रसन्नता भी बढी ॥ २६ ॥

वर्तमानः सतां वृत्ते पुत्रलाभमवाप्य च ।
पितृलोकं गतः पाण्डुरितः सप्तदशेऽहनि ॥ २७ ॥

पाण्डु साधुओंका आचरण कर और पुत्र प्राप्त कर आज सत्रह दिन हुए पितृलोकको सिधारे हैं ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तं चितागतमाज्ञाय वैश्वानरमुखे हुतम्।
प्रविष्टा पावकं माद्री हित्वा जीवितमात्मनः ॥ २८ ॥

पतिव्रता माद्रीने भी उनको चितापर स्थित और अग्निके मुखमें आहुति रूप होते देखकर अपना जीवन छोडकर उस अग्निमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥

सा गता सह तेनैव पतिलोकमनुव्रता।
तस्यास्तस्य च यत्कार्यं क्रियतां तदनन्तरम् ॥ २९ ॥

और वह भी पतिके पीछे चलकर पतिके साथ पतिलोकमें गयी है। अब उन पाण्डु और माद्रीकी परलोककी जो कुछ क्रिया करनी हो, करो ! ॥ २९ ॥

इमे तयोः शरीरे द्वे सुताश्चेमे तयोर्वराः।
क्रियाभिरनुगृह्यन्तां सह मात्रा परन्तपाः ॥ ३० ॥

उनके यह दो शरीर उनके परन्तप ये श्रेष्ठ पुत्रगण माताके साथ क्रियासे शुद्ध होवें ॥ ३० ॥

प्रेतकार्ये च निर्वृत्ते पितृमेधं महायशाः।
लभतां सर्वधर्मज्ञः पाण्डुः कुरुकुलोद्वहः ॥ ३१ ॥

प्रेतक्रिया हो जानेपर अति यशस्वी सब-धर्म जाननेवाले कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ पुरुष पाण्डु पितृ-यज्ञको प्राप्त करें ॥ ३१ ॥

एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान्कुरूणामेव पश्यताम्।
क्षणेनान्तर्हिताः सर्वे चारणा गुह्यकैः सह ॥ ३२ ॥

चारण लोग सब कुरुओंसे यह कहकर कुरुओंके देखते देखते गुह्यकोंके साथ क्षण भरमें अन्तर्हित हो गए ॥ ३२ ॥

गन्धर्वनगराकारं तत्रैवान्तर्हितं पुनः।
ऋषिसिद्धगणं दृष्ट्वा विस्मयं ते परं ययुः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ ४२३८ ॥

उन ऋषि और सिद्धोंको गन्धर्वके नगरकी भांति उपस्थित होते और फिर अन्तर्हित होते देखकर सबको अचरज हुआ ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११७ ॥ ॥ ४२३८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: ११८ :

धृतराष्ट्र उवाच

पाण्डोर्विदुर सर्वाणि प्रेतकार्याणि कारय।
राजवद्राजसिंहस्य माद्र्याश्चैव विशेषतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे विदुर ! राजविधिके अनुसार राजाओंमें सिंहरूपी पाण्डु और माद्रीकी सम्पूर्ण प्रेतक्रिया भली प्रकार करो ॥ १ ॥

पशून्वासांसि रत्नानि धनानि विविधानि च।
पाण्डोः प्रयच्छ माद्र्याश्च येभ्यो यावच्च वाञ्छितम् ॥ २ ॥

पाण्डु और माद्रीके नामसे पशु, वस्त्र, रत्न और नाना धन, जिनकी जितनी इच्छा हो, उतना उनको दान कर दो ॥ २ ॥

यथा च कुन्ती सत्कारं कुर्यान्माद्र्यास्तथा कुरु।
यथा न वायुर्नादित्यः पश्येतां तां सुसंवृताम् ॥ ३ ॥

ऐसा करो, कि जिससे कुन्ती माद्रीका सत्कार करे और माद्रीको इस प्रकार ढक दो कि उसे पवन और सूर्य भी न देख सकें ॥ ३ ॥

नः शोच्यः पाण्डुरनघः प्रशस्यः स नराधिपः।
यस्य पञ्च सुता वीरा जाताः सुरसुतोपमाः ॥ ४ ॥

निष्पाप पाण्डुकी दशा बुरी नहीं है, अपितु प्रशंसनीय है क्योंकि उसके देवकुमारके समान पांच वीर पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्तं तथेत्युक्त्वा भीष्मेण सह भारत।
पाण्डुं संस्कारयामास देशे परमसंवृते ॥ ५ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत ! विदुर उनसे "जो आज्ञा" कह कर भीष्मके साथ परम पवित्र स्थानमें पाण्डुके संस्कारमें प्रवृत्त हुए ॥ ५ ॥

ततस्तु नगरात्तूर्णमाज्यहोमपुरस्कृताः।
निर्हृताः पावका दीप्ताः पाण्डो राजन्पुरोहितैः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! राजपुरोहितलोग शीघ्रतापूर्वक राजपुरोंसे राजा पाण्डुके दाहके लिये आज्य और होमसे सुगन्धित प्रज्ज्वलित अग्निको ले आये ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथैनमार्तवैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैर्वरैः।
शिबिकां समलंचक्रुर्वाससाच्छाद्य सर्वशः ॥ ७ ॥

वस्त्रसे पाण्डुके शरीरको ढककर और भांति भांतिके ऋतुके अनुसार अच्छी गंधयुक्त माला आदिसे पालकीको सुशोभित किया ॥ ७ ॥

तां तथा शोभितां माल्यैर्वासोभिश्च महाधनैः।
अमात्या ज्ञातयश्चैव सुहृदश्चोपतस्थिरे ॥ ८ ॥

तब मालाओं और बहुमूल्य वस्त्रोंसे सुशोभित उस पालकीके पास, मंत्रीगण, जातिके लोग और मित्रगण उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

नृसिंहं नरयुक्तेन परमालंकृतेन तम्।
अवहन्यानमुख्येन सह माद्र्या सुसंवृतम् ॥ ९ ॥

उसके पीछे उस सजे सजाये यानमें नरोंको जोतकर उसपर माद्रीसे लिपटे हुए भलीभांति ढंके हुए नरश्रेष्ठ पाण्डुको ले जाने लगे ॥ ९ ॥

पाण्डुरेणातपत्रेण चामरव्यजनेन च।
सर्ववादित्रनादैश्च समलंचक्रिरे ततः ॥ १० ॥

और सफेद छत्र रख कर चंवर हिला कर और अनेक बाजे बजा कर उनको बहुत सजाया ॥ १० ॥

रत्नानि चाप्युपादाय बहूनि शतशो नराः।
प्रददुः काङ्क्षमाणेभ्यः पाण्डोस्तत्रौर्ध्वदेहिकम् ॥ ११ ॥

पाण्डुकी और्ध्वदेहिक क्रियाके समय सैंकडों मनुष्य बहुत रत्न लेकर मांगनेवालोंको बांटने लगे ॥ ११ ॥

अथ छत्राणि शुभ्राणि पाण्डुराणि बृहन्ति च।
आजह्रुः कौरवस्यार्थे वासांसि रुचिराणि च ॥ १२ ॥

और पाण्डुके लिये सफेद छत्र, बडा चंवर और मनोहर वस्त्र ले आए ॥ १२ ॥

याजकैः शुक्लवासोभिर्हूयमाना हुताशनाः।
अगच्छन्नग्रतस्तस्य दीप्यमानाः स्वलंकृताः ॥ १३ ॥

सफेद वस्त्र पहने हुए याजकोंके द्वारा अलंकृत तथा आहुतियां डाली जानेके कारण प्रदीप्त हुई हुई अग्नियां उस पाण्डुके आगे चलने लगीं ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ।
रुदन्तः शोकसंतप्ता अनुजग्मुर्नराधिपम् ॥ १४ ॥
अयमस्मानपाहाय दुःखे चाधाय शाश्वते ।
कृत्वानाथान्परो नाथः क्व यास्यति नराधिपः ॥ १५ ॥

सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शोकयुक्त होकर रो रो कर यह कहते हुए राजाके पीछे चलने लगे, कि यह नराधिप हमको कठोर और शाश्वत दुःखमें डालकर तथा अनाथ कर कहां चले ? ॥ १४–१५ ॥

क्रोशन्तः पाण्डवाः सर्वे भीष्मो विदुर एव च ।
रमणीये वनोद्देशे गङ्गातीरे समे शुभे ॥ १६ ॥
न्यासयामासुरथ तां शिबिकां सत्यवादिनः ।
सभार्यस्य नृसिंहस्य पाण्डोरक्लिष्टकर्मणः ॥ १७ ॥

इसके बाद पाण्डवगण, भीष्म और विदुरने रोते हुए मङ्गलमय गङ्गातटके सुन्दर वनयुक्त खण्डमें समभूमि पर सत्यवादी उत्तम कर्म करनेवाले स्त्रीसहित नरसिंह पाण्डुकी पालकी रखी ॥ १६–१७ ॥

ततस्तस्य शरीरं तत्सर्वगन्धनिषेवितम् ।
शुचिकालीयकादिग्धं मुख्यस्नानाधिवासितम् ।
पर्यषिञ्चञ्जलेनाशु शातकुम्भमयैर्घटैः ॥ १८ ॥

उसके बाद उन्होंने कृष्णअगुरूसे लिप्त, मुख्य स्नानके सुगन्धसे सुगन्धित पाण्डुकी देहको सुवर्णके घडेमें लाये हुए जलसे शीघ्र नहलाया ॥ १८ ॥

चन्दनेन च मुख्येन शुक्लेन समलेपयन् ।
कालागुरुविमिश्रेण तथा तुङ्गरसेन च ॥ १९ ॥

और चारों ओर श्वेत–चन्दन लगा दिया और कृष्णअगुरूसे मिले हुए तुङ्गरस नामक सुगन्धि पदार्थका लेप किया ॥ १९ ॥

अथैनं देशजैः शुक्लैर्वासोभिः समयोजयन् ।
आच्छन्नः स तु वासोभिर्जीवन्निव नरर्षभः ।
शुशुभे पुरुषव्याघ्रो महार्हशयनोचितः ॥ २० ॥

उनको उसी देशमें बने हुए शुक्लवस्त्रसे ढक दिया । मूल्यवान् बिस्तर पर नरश्रेष्ठ पुरुष-व्याघ्र पांडु वस्त्रसे ढके जाकर जीवितके समान शोभा पाने लगे ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

याजकैरभ्यनुज्ञातं प्रेतकर्मणि निष्ठितैः।
घृतावसिक्तं राजानं सह माद्र्या स्वलंकृतम् ॥ २१ ॥
तुङ्गपद्मकमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना।
अन्यैश्च विविधैर्गन्धैरनल्पैः समदाहयन् ॥ २२ ॥

तब ऋत्विकोंकी आज्ञाके अनुसार प्रेतक्रिया होजाने पर उन्होंने घृतसे नहलाए गए और अलंकृत माद्री-सहित राजाको तुङ्ग और पद्मनामक सुगन्धि पदार्थोंसे मिली हुई सुगन्धित चन्दनकी लकडी तथा दूसरे भांति भांतिके अच्छे गन्धयुक्त पदार्थोंसे विधिपूर्वक जला दिया ॥ २१-२२ ॥

ततस्तयोः शरीरे ते दृष्ट्वा मोहवशं गता।
हा हा पुत्रेति कौसल्या पपात सहसा भुवि ॥ २३ ॥

तब उन दोनोंके उन शरीरोंको देखकर काशीराजकी पुत्री कौसल्या मोहसे 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहती हुई एकायक धरती पर गिर गयी ॥ २३ ॥

तां प्रेक्ष्य पतितामार्तां पौरजानपदो जनः।
रुरोद सस्वनं सर्वो राजभक्त्या कृपान्वितः ॥ २४ ॥

नगर-वाले तथा जनपदवासी उसको शोकसे युक्त और गिरते देखकर राजभक्तिसे शोक-युक्त हो रोने लगे ॥ २४ ॥

क्लान्तानीवार्तनादेन सर्वाणि च विचुक्रुशुः।
मानुषैः सह भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ २५ ॥

वहांके तिर्यग्योनिसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणी भी उस आर्तनादसे मानों कातर होकर मनुष्य के साथ रोने लगे ॥ २५ ॥

तथा भीष्मः शान्तनवो विदुरश्च महामतिः।
सर्वशः कौरवाश्चैव प्राणदन्भृशदुःखिताः ॥ २६ ॥

अनन्तर दाहकी क्रिया समाप्त होने पर शन्तनु पुत्र भीष्म, महाबुद्धिमान् विदुर तथा सभी कौरव बहुत दुःखी होकर रोने लगे ॥ २६ ॥

ततो भीष्मोऽथ विदुरो राजा च सह बन्धुभिः।
उदकं चक्रिरे तस्य सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥ २७ ॥

इसके बाद भीष्म, विदुर, राजा धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण कौरवी स्त्रियोंने पाण्डुकी जलक्रिया की ॥ २७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कृतोदकांस्तानादाय पाण्डवाञ्शोककर्शितान् ।
सर्वाः प्रकृतयो राजञ्शोचन्त्यः पर्यवारयन् ॥ २८ ॥

हे महाराज ! सभी प्रजा, मन्त्रीगण जल क्रिया किये हुए और शोकसे व्याकुल उन पाण्डवोंको लेकर शोक करती हुई घरको लौट आयी ॥ २८ ॥

यथैव पाण्डवा भूमौ सुषुपुः सह बान्धवैः ।
तथैव नागरा राजञ्शिश्यिरे ब्राह्मणादयः ॥ २९ ॥

हे महाराज ! पाण्डवोंने जिस प्रकार बन्धुओंके साथ जमीन पर सो सो कर रात काटी, वैसे ही ब्राह्मण आदि नगरवाले भी धरती पर सोये ॥ २९ ॥

तदनानन्दमस्वस्थमाकुमारमहृष्टवत् ।
बभूव पाण्डवैः सार्धं नगरं द्वादश क्षपाः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ४२६८ ॥

सम्पूर्ण प्रजाओंने भी पाण्डवोंके साथ साथ बिना हर्ष, बिना आनन्द, बिना स्वास्थ्यके बारह रातें काटीं ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अट्ठारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥ ४२६८ ॥

: ११९ :

वैशम्पायन उवाच

ततः क्षत्ता च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभिः ।
ददुः श्राद्धं तदा पाण्डोः स्वधामृतमयं तदा ॥ १ ॥
कुरूंश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयित्वा सहस्रशः ।
रत्नौघान्द्विजमुख्येभ्यो दत्वा ग्रामवरानपि ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर विदुर, धृतराष्ट्र और भीष्मने बन्धुओंके साथ सम्पूर्ण कौरवों और सहस्रों अच्छे अच्छे विप्रोंको भोजन कराके और अच्छे अच्छे विप्रोंको रत्न और सुन्दर सुन्दर ग्राम देकर पाण्डुका स्वधा और अमृत से युक्त श्राद्ध किया ॥ १–२ ॥

कृतशौचांस्ततस्तांस्तु पाण्डवान्भरतर्षभान् ।
आदाय विविशुः पौराः पुरं वारणसाह्वयम् ॥ ३ ॥

तब शुद्ध हुए हुए और भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ उन पाण्डवोंको लेकर पुरवासी हस्तिनापुरमें प्रविष्ट हुए ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सततं स्मान्वतप्यन्त तमेव भरतर्षभम्।
पौरजानपदाः सर्वे मृतं स्वमिव बान्धवम् ॥ ४ ॥

नगर और जनपदवासी अपने मृत मित्रकी भांति उन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुके लिये सदा शोक करने लगे ॥ ४ ॥

श्राद्धावसाने तु तदा दृष्ट्वा तं दुःखितं जनम्।
संमूढां दुःखशोकार्तां व्यासो मातरमब्रवीत् ॥ ५ ॥

अनन्तर श्राद्ध क्रियाके अन्तमें सब जनोंको दुःखी देख कर मोहयुक्त और दुःख शोकसे विह्वल माता सत्यवतीसे व्यास बोले ॥ ५ ॥

अतिक्रान्तसुखाः कालाः प्रत्युपस्थितदारुणाः।
श्वः श्वः पापीयदिवसाः पृथिवी गतयौवना ॥ ६ ॥

मा! सुखका दिन जाता रहा है, अब कठोर काल आ पहुंचा है, आगे आनेवाले दिन पाप-पूर्ण हो रहे हैं, पृथ्वीकी यौवनदशा समाप्त हो गई है ॥ ६ ॥

बहुमायासमाकीर्णो नानादोषसमाकुलः।
लुप्तधर्मक्रियाचारो घोरः कालो भविष्यति ॥ ७ ॥

भारी मायासे पूरित, धर्मक्रिया और आचारसे रहित, नाना दोषोंसे युक्त कठोर काल आएगा ॥ ७ ॥

गच्छ त्वं त्यागमास्थाय युक्ता वस तपोवने।
मा द्रक्ष्यसि कुलस्यास्य घोरं संक्षयमात्मनः ॥ ८ ॥

आप त्यागका आसरा लेकर तपोवनमें जाकर चित्तकी वृत्तियोंको रोककर बैठिये! अपने इस वंशका और अपना भी घोर सर्वनाश न देखिये ॥ ८ ॥

तथेति समनुज्ञाय सा प्रविश्याब्रवीत्स्नुषाम्।
अम्बिके तव पुत्रस्य दुर्नयात्किल भारताः।
सानुबन्धा विनङ्क्ष्यन्ति पौत्राश्चैवेति नः श्रुतम् ॥ ९ ॥

सत्यवती "तथास्तु" कहकर अन्तःपुरमें जाकर पुत्रवधूसे बोली– हे अम्बिके! मैंने सुना है, कि तुम्हारे पुत्रकी बुरी नीतिके कारण आत्मजनोंके साथ भरतवंशी और पौत्र नष्ट हो जायंगे ऐसा हमने सुना है ॥ ९ ॥

तत्कौसल्यामिमामार्तां पुत्रशोकाभिपीडिताम्।
वनमादाय भद्रं ते गच्छावो यदि मन्यसे ॥ १० ॥

अतः यदि तुम चाहो, तो तुम्हारा मङ्गल होवे, चलो हम इस पुत्रशोकसे विह्वल अम्बालिकाको लेकर वनमें चलें ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तथेत्युक्ते अम्बिकया भीष्ममामन्त्र्य सुव्रता ।
वनं ययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारत ॥ ११ ॥

हे भारत ! "ठीक है" इस प्रकार अम्बिकाके कहनेपर सुव्रतयुक्त सत्यवती अम्बिकाके साथ विचार करके दोनों पुत्रवधुओंके साथ वनको चली गई ॥ ११ ॥

ताः सुघोरं तपः कृत्वा देव्यो भरतसत्तम ।
देहं त्यक्त्वा महाराज गतिमिष्टां ययुस्तदा ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उन देवियोंने वहां कठोर तप करके देह छोडकरके यथेच्छ सुगति प्राप्त की ॥ १२ ॥

अवाप्नुवन्त वेदोक्तान्संस्कारान्पाण्डवास्तदा ।
अवर्धन्त च भोगांस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि ॥ १३ ॥

तब इसके बाद पाण्डव वेदानुसार संस्कारोंको पाकर नाना भोगके पदार्थोंका भोग करते हुए पिताके घरमें बढने लगे ॥ १३ ॥

धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तः पितृवेश्मनि ।
बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टाः पाण्डवाभवन् ॥ १४ ॥

वे पाण्डव पिताके घरमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ खेलते कूदते हुए सब लडकपनके खेलोंमें बढ चढकर निकले ॥ १४ ॥

जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ।
धार्तराष्ट्रान्भीमसेनः सर्वान्स परिमर्दति ॥ १५ ॥

वेगमें, निशानेबाजीमें, सबोंसे पहिले भोजनकी सामग्री लेनेमें और धूल फेंकने इत्यादि लडकपनके खेलोंमें भीमसेन सम्पूर्ण धृतराष्ट्रकुमारोंको हरा कर सताया करते थे ॥ १५ ॥

हर्षादेतान्क्रीडमानान्गृह्य काकनिलीयने ।
शिरःसु च निगृह्यैनान्योधयामास पाण्डवः ॥ १६ ॥

हे महाराज ! जब धृतराष्ट्रके लडके आनन्दसे खेलते थे, तब उक्त पाण्डव भीम उनके बालोंको पकडकर एकसे दूसरेको अलग कर देते थे और उनके सिरोंको पकड पकड कर एक दूसरेसे लडा देते थे ॥ १६ ॥

शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महौजसाम् ।
एक एव विमृद्नाति नातिकृच्छ्राद्वृकोदरः ॥ १७ ॥

उन बडे तेजस्वी एकसौ एक कुमारोंको वृकोदर भीम अकेले ही सहजहीमें सताया करते थे ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पादेषु च निगृह्यैनान्विनिहत्य बलाद्बली।
चकर्ष क्रोशतो भूमौ घृष्टजानुशिरोक्षिकान् ॥ १८ ॥

महाबली भीम बलसे उनके पैर पकडकर मारते पीटते थे और घुटने, सिर और आंखोंके छिल जानेके कारण चिल्लाते हुए उन कौरवोंको जमीन पर घसीटते थे ॥ १८ ॥

दश बालाञ्जले क्रीडन्भुजाभ्यां परिगृह्य सः।
आस्ते स्म सलिले मग्नः प्रमृतांश्च विमुञ्चति ॥ १९ ॥

वह जलमें खेलते हुए दोनों भुजाओंसे दस लडकोंको पकड कर जलमें डुबाये रहते थे, और उनके मरनेके समान होनेपर छोड देते थे ॥ १९ ॥

फलानि वृक्षमारुह्य प्रचिन्वन्ति च ते यदा।
तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते द्रुमम् ॥ २० ॥

जब धृतराष्ट्रके पुत्र पेडोंपर चढकर फल तोडते थे, तब भीम उन पेडोंको लात मार मार हिलाते थे ॥ २० ॥

प्रहारवेगाभिहताद्द्रुमाद्व्याघूर्णितास्ततः।
सफलाः प्रपतन्ति स्म द्रुतं स्रस्ताः कुमारकाः ॥ २१ ॥

उन लातोंके प्रहारसे हिलने और डगमगाने पर लडके उसीक्षण पेडोंसे छूटकर फलके साथ गिर जाते थे ॥ २१ ॥

न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन।
कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम् ॥ २२ ॥

वास्तवमें वे लडके स्पर्धा करते हुए बाहुयुद्धमें या वेगमें या शिक्षामें अर्थात् किसी बातमें भी वृकोदरसे आगे बढ नहीं पाते थे ॥ २२ ॥

एवं स धार्तराष्ट्राणां स्पर्धमानो वृकोदरः।
अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥ २३ ॥

बढता हुआ वह वृकोदर धृतराष्ट्रके पुत्रोंका केवल लडकपनके कारण ही अप्रिय करता था, किसी द्वेषभावसे नहीं ॥ २३ ॥

ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान्।
भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत् ॥ २४ ॥

तब प्रतापी धृतराष्ट्र कुमार दुर्योधन भीमसेनके उस अति प्रख्यात बलको देखकर दुष्टभाव दिखाने लगा ॥ २४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः ।
मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा मतिरजायत ॥ २५ ॥

धर्महीन और पापकर्मको देखनेवाले उस दुर्योधनकी बुद्धि अज्ञानता और ऐश्वर्यके लोभसे पापी हो गई ॥ २५ ॥

अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ।
मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या संनिहन्यताम् ॥ २६ ॥

उसने विचार किया कि पाण्डवोंमें मंझला यह कुन्तीपुत्र वृकोदर सब बलवानोंमें श्रेष्ठ है, अतः उसको कौशलसे मार डालना चाहिये ॥ २६ ॥

अथ तस्मादवरजं ज्येष्ठं चैव युधिष्ठिरम् ।
प्रसह्य बन्धने बद्ध्वा प्रशासिष्ये वसुन्धराम् ॥ २७ ॥

उसके बाद उसके छोटे भाईयों और बडे भाई युधिष्ठिरको बलसे बांधकर मैं अकेला ही पृथ्वीपर शासन करूंगा ॥ २७ ॥

एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा ।
नित्यमेवान्तरप्रेक्षी भीमस्यासीन्महात्मनः ॥ २८ ॥

पापात्मा दुर्योधन यह निश्चय कर महात्मा भीमसेनको सदा अकेलेमें ढूंढने लगा ॥ २८ ॥

ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत ।
चेलकम्बलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति च ॥ २९ ॥

हे भारत ! तब उस पापात्माने जलक्रीडार्थ गंगाके तटपर प्रमाणकोटि नामक स्थानमें वस्त्र और कम्बलके सुन्दर और बडे बडे भवन बनवाए ॥ २९ ॥

प्रमाणकोट्यामुद्देशं स्थलं किंचिदुपेत्य च ।
क्रीडावसाने सर्वे ते शुचिवस्त्राः स्वलंकृताः ।
सर्वकामसमृद्धं तदन्नं बुभुजिरे शनैः ॥ ३० ॥

और प्रमाणकोटिमें किसी निश्चित स्थानपर जाकर जलमें खेलनेके बाद कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीरगण पवित्र वस्त्र पहिनकर अलंकृत हुए और सब कामनाओंसे समृद्ध उस अन्नको धीरे धीरे खाने लगे ॥ ३० ॥

दिवसान्ते परिश्रान्ता विहृत्य च कुरूद्वहाः ।
विहारावसथेष्वेव वीरा वासमरोचयन् ॥ ३१ ॥

खेलसे थककर दिन बीतनेपर कुरुकुलके वंशोद्धारक उन वीरोंने उस विहारके घरोंमें ही रहना पसन्द किया ॥ ३१ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खिन्नस्तु बलवान्भीमो व्यायामाभ्यधिकस्तदा ।
वाहयित्वा कुमारांस्ताञ्जलक्रीडागतान्विभुः ।
प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापारुह्य तत्स्थलम् ॥ ३२ ॥

महाबली भीम जलमें खेलते हुए कुमारोंको बहुत तंग करके थककर आराम करनेकी इच्छासे उस प्रमाणकोटिके स्थलभागपर आकरके सो गये ॥ ३२ ॥

शीतं वासं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः ।
निश्चेष्टः पाण्डवो राजन्सुष्वाप मृतकल्पवत् ॥ ३३ ॥

थके और विषके नशेमें अचेतन हुए हुए पाण्डुपुत्र भीम ठंडी हवा पाकर मरे हुएके समान बेहोश होकर सो गए ॥ ३३ ॥

ततो बद्ध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः शनैः ।
गम्भीरं भीमवेगं च स्थलाज्जलमपातयत् ॥ ३४ ॥

तब दुर्योधनने भीमको लताजालोंसे बांधकर धीरेसे स्थलसे गहरे और भयंकर वेगवाले जलमें फेंक दिया ॥ ३४ ॥

ततः प्रबुद्धः कौन्तेयः सर्वं संछिद्य बन्धनम् ।
उदतिष्ठज्जलाद्भूयो भीमः प्रहरतां वरः ॥ ३५ ॥

तब प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र भीम होशमें आकर बन्धनोंको काटकर जलसे बाहर निकल आए ॥ ३५ ॥

सुप्तं चापि पुनः सर्पैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ।
कुपितैर्दशयामास सर्वेष्वेवाङ्गमर्मसु ॥ ३६ ॥

इस भीमके पुनः सो जानेपर महाविषवाले, तीक्ष्ण दाढोंवाले तथा क्रोधित सांपोंने इसके सभी मर्मोंको काटा ॥ ३६ ॥

दंष्ट्राश्च दंष्ट्रिणां तेषां मर्मस्वपि निपातिताः ।
त्वचं नैवास्य बिभिदुः सारत्वात्पृथुवक्षसः ॥ ३७ ॥

उन तीखी दाढवाले सांपोंकी दाढें भीमके मर्मों पर भी पडीं, पर उस विशाल सीनेके बलवान् होनेके कारण वहांकी चमडी भी नहीं उखडी ॥ ३७ ॥

प्रतिबुद्धस्तु भीमस्तान्सर्वान्सर्पानपोथयत् ।
सारथिं चास्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान् ॥ ३८ ॥

जागकर भीम उन सब नागोंका संहार करने लगा । उसके प्रिय सारथीको बायें हाथसे मार डाला ॥ ३८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भोजने भीमसेनस्य पुनः प्राक्षेपयद्विषम् ।
कालकूटं नवं तीक्ष्णं संभृतं लोमहर्षणम् ॥ ३९ ॥

उसके अनन्तर दुर्योधनने भीमसेनके भोजनके पदार्थमें फिर नया, तेज और रोंगटे खडे कर देनेवाला साक्षात् कालकूटके समान भयंकर विष मिलाया ॥ ३९ ॥

वैश्यापुत्रस्तदाचष्ट पार्थानां हितकाम्यया ।
तच्चापि भुक्त्वाजरयदविकारो वृकोदरः ॥ ४० ॥

वैश्याकुमार युयुत्सुने पाण्डवोंके हितके लिये वह बता भी दिया, पर तो भी विना विकारके वृकोदरने उसे खाकर पचा लिया ॥ ४० ॥

विकारं न ह्यजनयत्सुतीक्ष्णमपि तद्विषम् ।
भीमसंहननो भीमस्तदप्यजरयत्ततः ॥ ४१ ॥

वह विष तेज होने पर भी कोई विकार उपजा नहीं सका, और संहार करनेमें भयंकर भीमने उसको भी पचा डाला ॥ ४१ ॥

एवं दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अनेकैरभ्युपायैस्ताञ्जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार दुर्योधन, कर्ण और सुबल पुत्र शकुनिने नाना उपायोंसे पाण्डवोंको नष्ट करनेकी चेष्टा की ॥ ४२ ॥

पाण्डवाश्चापि तत्सर्वं प्रत्यजानन्नरिंदमाः ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ४३११ ॥

शत्रुको नष्ट करनेवाले पाण्डवगण उन सब बातोंको जानते हुए भी विदुरकी सलाहके अनुसार उस बातपर क्रोध प्रगट नहीं करते थे ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥ ४३११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२० :

जनमेजय उवाच

कृपस्यापि महाब्रह्मन्संभवं वक्तुमर्हसि।
शरस्तम्बात्कथं जज्ञे कथं चास्त्राण्यवाप्तवान् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे महा ब्रह्मन्! कृपके जन्मकी भी कथा कहिये। उन्होंने सरकण्डेसे कैसे जन्म लिया था और अस्त्रोंको कैसे प्राप्त किया था? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

महर्षेर्गौतमस्यासीच्छरद्वान्नाम नामतः।
पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभो ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– महाराज! महर्षि गौतमके शरद्वान् नामक एक पुत्र थे; उन शरद्वान्ने सरकण्डेसे जन्म लिया था ॥ २ ॥

न तस्य वेदाध्ययने तथा बुद्धिरजायत।
यथास्य बुद्धिरभवद्धनुर्वेदे परंतप ॥ ३ ॥

हे शत्रुनाशिन्! धनुर्वेदमें उनकी जैसी बुद्धि चलती थी, वेदपठनमें वैसी बुद्धि नहीं चलती थी ॥ ३ ॥

अधिजग्मुर्यथा वेदांस्तपसा ब्रह्मवादिनः।
तथा स तपसोपेतः सर्वाण्यस्त्राण्यवाप ह ॥ ४ ॥

जिस प्रकार ब्रह्मवादी लोग तपसे वेदका ज्ञान प्राप्त करते हैं, वैसे ही उन्होंने तपहीसे सब अस्त्रोंको प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

धनुर्वेदपरत्वाच्च तपसा विपुलेन च।
भृशं संतापयामास देवराजं स गौतमः ॥ ५ ॥

उन गौतमने धनुर्वेदमें अपने अपरिमित ज्ञान और अनन्त तपस्यासे देवराजको भी बहुत संतप्त किया ॥ ५ ॥

ततो जालपदीं नाम देवकन्यां सुरेश्वरः।
प्राहिणोत्तपसो विघ्नं कुरु तस्येति कौरव ॥ ६ ॥

हे कौरव! तब देवेन्द्रने जालपदी नामकी एक देवबालाको यह आज्ञा देकर उनके पास भेजा, कि तुम गौतमकी तपस्यामें विघ्न डालो ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साभिगम्याश्रमपदं रमणीयं शरद्वतः ।
धनुर्बाणधरं बाला लोभयामास गौतमम् ॥ ७ ॥

बाला जालपदी शरद्वान्के सुन्दर आश्रममें जाकर धनुषबाण धारी उन गौतमको लुभाने लगी ॥ ७ ॥

तामेकवसनां दृष्ट्वा गौतमोऽप्सरसं वने ।
लोकेऽप्रतिमसंस्थानामुत्फुल्लनयनोऽभवत् ॥ ८ ॥

उस वनमें लोकमें अनुपम सुन्दरी और एक वस्त्र पहिने हुए उस अप्सराको देखकर गौतमके नेत्रोंमें प्रफुल्लता छा गयी ॥ ८ ॥

धनुश्च हि शराश्चास्य कराभ्यां प्रापतन्भुवि ।
वेपथुश्चास्य तां दृष्ट्वा शरीरे समजायत ॥ ९ ॥

उस अप्सराको देखकर उस ऋषिके हाथोंसे धनुषबाण धरती पर गिर पडे और देहमें कम्पन पैदा हो गई ॥ ९ ॥

स तु ज्ञानगरीयस्त्वात्तपसश्च समन्वयात् ।
अवतस्थे महाप्राज्ञो धैर्येण परमेण ह ॥ १० ॥

पर वह महाप्राज्ञ ऋषि कुमार अपने उत्तम ज्ञान और तपस्यामें दृढ होनेके कारण परम धीरज धारण किए रहे ॥ १० ॥

यस्त्वस्य सहसा राजन्विकारः समपद्यत ।
तेन सुस्राव रेतोऽस्य स च तन्नावबुध्यत ॥ ११ ॥

महाराज ! पर उनमें एकाएक जो विकार पैदा हुआ, उसीसे उनका वीर्य गिर गया । पर वह उस बातको नहीं जान सके ॥ ११ ॥

स विहायाश्रमं तं च तां चैवाप्सरसं मुनिः ।
जगाम रेतस्तत्तस्य शरस्तम्बे पपात ह ॥ १२ ॥

तब वे मुनि उस आश्रम और अप्सराको छोडकर अन्य स्थानमें चले गये । उनका वीर्य सरकण्डे पर जा गिरा ॥ १२ ॥

शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप ।
तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वतः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! सरकण्डे पर गिरनेसे वह दो भागोंमे हो गया और इस प्रकार शरद्वान्के पुत्र गौतमसे एक कन्या और एक पुत्रका जन्म हुआ ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२० :

जनमेजय उवाच

कृपस्यापि महाब्रह्मन्संभवं वक्तुमर्हसि।
शरस्तम्बात्कथं जज्ञे कथं चास्त्राण्यवाप्तवान् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे महा ब्रह्मन्! कृपके जन्मकी भी कथा कहिये। उन्होंने सरकण्डेसे कैसे जन्म लिया था और अस्त्रोंको कैसे प्राप्त किया था? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

महर्षेर्गौतमस्यासीच्छरद्वान्नाम नामतः।
पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभो ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– महाराज! महर्षि गौतमके शरद्वान् नामक एक पुत्र थे; उन शरद्वान्ने सरकण्डेसे जन्म लिया था ॥ २ ॥

न तस्य वेदाध्ययने तथा बुद्धिरजायत।
यथास्य बुद्धिरभवद्धनुर्वेदे परंतप ॥ ३ ॥

हे शत्रुनाशिन्! धनुर्वेदमें उनकी जैसी बुद्धि चलती थी, वेदपठनमें वैसी बुद्धि नहीं चलती थी ॥ ३ ॥

अधिजग्मुर्यथा वेदांस्तपसा ब्रह्मवादिनः।
तथा स तपसोपेतः सर्वाण्यस्त्राण्यवाप ह ॥ ४ ॥

जिस प्रकार ब्रह्मवादी लोग तपसे वेदका ज्ञान प्राप्त करते हैं, वैसे ही उन्होंने तपहीसे सब अस्त्रोंको प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

धनुर्वेदपरत्वाच्च तपसा विपुलेन च।
भृशं संतापयामास देवराजं स गौतमः ॥ ५ ॥

उन गौतमने धनुर्वेदमें अपने अपरिमित ज्ञान और अनन्त तपस्यासे देवराजको भी बहुत संतप्त किया ॥ ५ ॥

ततो जालपदीं नाम देवकन्यां सुरेश्वरः।
प्राहिणोत्तपसो विघ्नं कुरु तस्येति कौरव ॥ ६ ॥

हे कौरव! तब देवेन्द्रने जालपदी नामकी एक देवबालाको यह आज्ञा देकर उनके पास भेजा, कि तुम गौतमकी तपस्यामें विघ्न डालो ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साभिगम्याश्रमपदं रमणीयं शरद्वतः ।
धनुर्बाणधरं बाला लोभयामास गौतमम् ॥ ७ ॥

बाला जालपदी शरद्वान्के सुन्दर आश्रममें जाकर धनुषबाण धारी उन गौतमको लुभाने लगी ॥ ७ ॥

तामेकवसनां दृष्ट्वा गौतमोऽप्सरसं वने ।
लोकेऽप्रतिमसंस्थानामुत्फुल्लनयनोऽभवत् ॥ ८ ॥

उस वनमें लोकमें अनुपम सुन्दरी और एक वस्त्र पहिने हुए उस अप्सराको देखकर गौतमके नेत्रोंमें प्रफुल्लता छा गयी ॥ ८ ॥

धनुश्च हि शराश्चास्य कराभ्यां प्रापतन्भुवि ।
वेपथुश्चास्य तां दृष्ट्वा शरीरे समजायत ॥ ९ ॥

उस अप्सराको देखकर उस ऋषिके हाथोंसे धनुषबाण धरती पर गिर पडे और देहमें कम्पन पैदा हो गई ॥ ९ ॥

स तु ज्ञानगरीयस्त्वात्तपसश्च समन्वयात् ।
अवतस्थे महाप्राज्ञो धैर्येण परमेण ह ॥ १० ॥

पर वह महाप्राज्ञ ऋषि कुमार अपने उत्तम ज्ञान और तपस्यामें दृढ होनेके कारण परम धीरज धारण किए रहे ॥ १० ॥

यस्त्वस्य सहसा राजन्विकारः समपद्यत ।
तेन सुस्राव रेतोऽस्य स च तन्नावबुध्यत ॥ ११ ॥

महाराज ! पर उनमें एकाएक जो विकार पैदा हुआ, उसीसे उनका वीर्य गिर गया । पर वह उस बातको नहीं जान सके ॥ ११ ॥

स विहायाश्रमं तं च तां चैवाप्सरसं मुनिः ।
जगाम रेतस्तत्तस्य शरस्तम्बे पपात ह ॥ १२ ॥

तब वे मुनि उस आश्रम और अप्सराको छोडकर अन्य स्थानमें चले गये । उनका वीर्य सरकण्डे पर जा गिरा ॥ १२ ॥

शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप ।
तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वतः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! सरकण्डे पर गिरनेसे वह दो भागोंमे हो गया और इस प्रकार शरद्वान्के पुत्र गौतमसे एक कन्या और एक पुत्रका जन्म हुआ ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मृगयां चरतो राज्ञः शंतनोस्तु यदृच्छया।
कश्चित्सेनाचरोऽरण्ये मिथुनं तदपश्यत ॥ १४ ॥

तब मृगयाके लिये अपनी इच्छानुसार घूमनेवाले, राजा शन्तनुके एक सैनिकने वनमें उस पुत्र और कन्याको देखा ॥ १४ ॥

धनुश्च सशरं दृष्ट्वा तथा कृष्णाजिनानि च।
व्यवस्य ब्राह्मणापत्यं धनुर्वेदान्तगस्य तत्।
स राज्ञे दर्शयामास मिथुनं सशरं तदा ॥ १५ ॥

और वहां धनुर्बाण और मृगका चर्म देखकर समझा, कि यह दोनों धनुर्वेदमें दक्ष किसी ब्राह्मणकी सन्तान होंगी, तब उस सैनिकने धनुर्बाण और दोनों बच्चोंको लेजाकर राजाको दिखाया ॥ १५ ॥

स तदादाय मिथुनं राजाथ कृपयान्वितः।
आजगाम गृहानेव मम पुत्राविति ब्रुवन् ॥ १६ ॥

राजाने दयायुक्त होकर उन बच्चोंको ले लिया और यह कह कर, कि "यह मेरी सन्तानें हैं" अपने घर ले आए ॥ १६ ॥

ततः संवर्धयामास संस्कारैश्चाप्ययोजयत्।
गौतमोऽपि तदापेत्य धनुर्वेदपरोऽभवत्। ॥ १७ ॥

शन्तनुने गौतमके उस पुत्र और कन्याको सम्पूर्ण संस्कारसे सुधार और पाल पोषकर बढाया और गौतम भी उस आश्रमसे आकर धनुर्वेदमें रत रहने लगे ॥ १७ ॥

कृपया यन्मया बालाविमौ संवर्धिताविति।
तस्मात्तयोर्नाम चक्रे तदेव स महीपतिः ॥ १८ ॥

महीपाल शन्तनुने यह समझ कर, कि "मैंने कृपापूर्वक इन बच्चोंको जिलाया है" उनके कृप और कृपी ये नाम रख दिये ॥ १८ ॥

निहितौ गौतमस्तत्र तपसा तावविन्दत।
आगम्य चास्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवांस्तदा ॥ १९ ॥

गौतमने तपके द्वारा यह जानकर कि उस स्थानमें दोनों सन्तानें हुई हैं, वहां आकर अपने गोत्रादि सब बताये ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चतुर्विधं धनुर्वेदमस्त्राणि विविधानि च ।
निखिलेनास्य तत्सर्वं गुह्यमाख्यातवांस्तदा ।
सोऽचिरेणैव कालेन परमाचार्यतां गतः ॥ २० ॥

उन्होंने कृपको चार प्रकारके धनुर्वेद, नाना तरहकी अस्त्र-विद्या और दूसरे गुप्त विषयोंकी शिक्षा दी । कृप स्वल्प कालमें ही परम आचार्य बन गए ॥ २० ॥

ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महारथाः ।
धृतराष्ट्रात्मजाश्चैव पाण्डवाश्च महाबलाः ।
वृष्णयश्च नृपाश्चान्ये नानादेशसमागताः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ ४३३२ ॥

महारथी धृतराष्ट्रके पुत्रगण, महाबली पाण्डवगण, वृष्णि और नानादेशोंसे आये हुए दूसरे भूपाल उनसे धनुर्वेद सीखने लगे ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२० ॥ ४३३२ ॥

: १२१ :

वैशम्पायन उवाच

विशेषार्थी ततो भीष्मः पौत्राणां विनयेप्सया ।
इष्वस्त्रज्ञान्पर्यपृच्छदाचार्यान्वीर्यसंमतान् ॥ १ ॥
नाल्पधीर्नामहाभागस्तथानानास्त्रकोविदः ।
नादेवसत्त्वो विनयेत्कुरूनस्त्रे महाबलान् ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद जो अच्छे बुद्धिमान् नहीं, महाभाग नहीं, नाना अस्त्रोंके चलानेमें पण्डित नहीं और देव समान महात्मा न हों, वह कौरवोंको अस्त्रविद्या न सिखावें यह विचार कर भीष्म पौत्रोंको विशेष रूपसे विद्या पढाने और विनय सिखानेके लिये बाण चलानेमें दक्ष, अस्त्रविद्यामें पण्डित, वीर्यवान् आचार्य ढूंढने लगे ॥ १–२ ॥

महर्षिस्तु भरद्वाजो हविर्धाने चरन्पुरा ।
ददर्शाप्सरसं साक्षाद्घृताचीमाप्लुतामृषिः ॥ ३ ॥

एक समय भरद्वाजने अग्निहोत्र करनेके अभिप्रायसे विचरते हुए नहाती हुई साक्षात् घृताची नामकी एक अप्सराको देखा ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्या वायुः समुद्धूतो वसनं व्यपकर्षत।
ततोऽस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥ ४ ॥

वायुके बहनेसे उसका वस्त्र गिर गया। उससे ऋषिका वीर्य गिर गया। ऋषिने तब द्रोण-नामक यज्ञके बर्तनमें उस वीर्यको रखा ॥ ४ ॥

तस्मिन्समभवद्द्रोणः कलशे तस्य धीमतः।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ५ ॥

धीमान् भरद्वाजके द्रोणमें रखे हुए उस वीर्यसे द्रोणका जन्म हुआ। उन्होंने वेद और वेदाङ्ग सब पढे ॥ ५ ॥

अग्निवेश्यं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान्।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रं धर्मभृतां वरः ॥ ६ ॥

धर्मको धारण करनेवालोंमें प्रधान प्रतापी भरद्वाजने पहिले अग्निवेश्य नामक महाभाग महर्षिको अग्न्यस्त्र दिया था ॥ ६ ॥

अग्निष्टुज्जातः स मुनिस्ततो भरतसत्तम।
भारद्वाजं तदाग्नेयं महास्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ! अग्निसे जन्म लिये हुए उन ऋषि अग्निवेश्यने अपने गुरुपुत्र द्रोणको वह महा अग्न्यस्त्र दे दिया ॥ ७ ॥

भरद्वाजसखा चासीत्पृषतो नाम पार्थिवः।
तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥ ८ ॥

पृषत नामक एक राजा ऋषि भरद्वाजके मित्र थे, उनके भी द्रुपद नामक एक पुत्र पैदा हुआ ॥ ८ ॥

स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्षतः।
चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥ ९ ॥

क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ वह पृषत्पुत्र द्रुपद नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलते थे और साथ साथ पढते भी थे ॥ ९ ॥

ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत्।
पाञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः ॥ १० ॥

बादमें राजा पृषतके परलोक सिधार जानेपर महाभुज द्रुपद उत्तर पाञ्चाल देशके राजा हुए ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा ।
ततः पितृनियुक्तात्मा पुत्रलोभान्महायशाः ।
शारद्वतीं ततो द्रोणः कृपीं भार्यामविन्दत ॥ ११ ॥

उसी समय भगवान् ऋषि भरद्वाज भी स्वर्ग सिधार गए और उन अतियशस्वी द्रोणने पिताकी पहिलेकी आज्ञाके अनुसार पुत्रके लोभसे शारद्वतकी कन्या कृपीसे विवाह किया ॥ ११ ॥

अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रता ।
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च ॥ १२ ॥

उसके बाद अग्निहोत्रमें, इन्द्रियोंके रोकनेमें और धर्ममें सदा रत रहनेवाली उस गौतमकी पुत्री कृपीने अश्वत्थामा नामक पुत्र प्राप्त किया ॥ १२ ॥

स जातमात्रो व्यनदद्यथैवोच्चैःश्रवा हयः ।
तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतमन्तरिक्षस्थमब्रवीत् ॥ १३ ॥

पुत्रने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा अश्वकी भांति शब्द किया, वह सुनकर उस समय आकाशमें स्थित किसी अदृश्य प्राणीने कहा ॥ १३ ॥

अश्वस्येवास्य यत्स्थाम नदतः प्रदिशो गतम् ।
अश्वत्थामैव बालोऽयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति ॥ १४ ॥

कि घोडेके समान शब्द करनेवाले इस बालकका स्थाम (शब्द) नाना दिशाओंमें पहुंचा है, इस कारण यह बालक अश्वत्थामाके नामसे ही प्रसिद्ध होगा ॥ १४ ॥

सुतेन तेन सुप्रीतो भारद्वाजस्ततोऽभवत् ।
तत्रैव च वसन्धीमान्धनुर्वेदपरोऽभवत् ॥ १५ ॥
स शुश्राव महात्मानं जामदग्न्यं परंतपम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तदा राजन्दित्सन्तं वसु सर्वशः ॥ १६ ॥

उससे भरद्वाजपुत्र धीमान् द्रोण उस पुत्रसे बडे प्रसन्न हुए और उसी स्थानमें रहकर वे धनुर्वेदमें संलग्न रहे । हे महाराज ! उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिए हर तरहके धन देनेकी इच्छा करनेवाले तथा शत्रुओंको संताप देनेवाले महात्मा जमदग्निके पुत्र परशुरामके बारेमें सुना ॥ १५–१६ ॥

वनं तु प्रस्थितं रामं भारद्वाजस्तदाब्रवीत् ।
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजर्षभम् ॥ १७ ॥

तब द्रोण वनको जानेके लिए उद्यत महात्मा जामदग्न्य परशुरामसे यह बोले– हे महामते ! धनकी लालसासे यहां आये हुए मुझे द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोण जानो ॥ १७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम उवाच

हिरण्यं मम यच्चान्यद्वसु किंचन विद्यते।
ब्राह्मणेभ्यो मया दत्तं सर्वमेव तपोधन ॥ १८ ॥

राम बोले– हे तपोधन ! मेरा सुवर्ण और दूसरा धन जो कुछ था, सब ब्राह्मणोंको दे चुका हूं, अतः अब मेरे पास कुछ नहीं बचा है ॥ १८ ॥

तथैवेयं धरा देवी सागरान्ता सपत्तना।
कश्यपाय मया दत्ता कृत्स्ना नगरमालिनी ॥ १९ ॥

उसी तरह ग्राम और नगरोंकी मालासे सजी हुई, सागर तक चली गयी यह पृथ्वी भी मैंने कश्यपको दे दी है ॥ १९ ॥

शरीरमात्रमेवाद्य मयेदमवशेषितम्।
अस्त्राणि च महार्हाणि शस्त्राणि विविधानि च।
वृणीष्व किं प्रयच्छामि तुभ्यं द्रोण वदाशु तत् ॥ २० ॥

अब मेरे पास केवल बडे बडे मूल्यवान् नाना तरहके अस्त्र शस्त्र और मेरा यह शरीर ही शेष रह गया है। हे द्रोण ! शीघ्र कहो, कि इन दोनोंमेंसे क्या चाहते हो, मैं तुमको क्या दूँ ? ॥ २० ॥

द्रोण उवाच

अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव।
सप्रयोगरहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः ॥ २१ ॥

द्रोण बोले– हे भार्गव ! प्रयोग, उपसंहार और रहस्योंके साथ सम्पूर्ण अस्त्रोंको भली प्रकार मुझको दीजिये ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रादादस्त्राणि भार्गवः।
सरहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले– भार्गवने 'तथास्तु' कहकर उनको सम्पूर्ण अस्त्र और रहस्य और नियमोंके साथ धनुर्वेदको संपूर्ण रूपसे दे दिया ॥ २२ ॥

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं कृतास्त्रो द्विजसत्तमः।
प्रियं सखायं सुप्रीतो जगाम द्रुपदं प्रति ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ ४३५५ ॥

द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोण सब अस्त्र शस्त्रोंको लेकर कृतार्थ होकरके प्रसन्नचित्तसे प्रिय मित्र द्रुपदके पास गये ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥ ४३५५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२२ :

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत्पार्षतं राजन्सखायं विद्धि मामिति ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उसके बाद प्रतापी भरद्वाजके पुत्र द्रोण पृषत्पुत्र द्रुपदके यहां जाकर बोले– हे महाराज ! मुझको अपना मित्र समझो ॥ १ ॥

द्रुपद उवाच

अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नातिसमञ्जसी ।
यन्मां ब्रवीषि प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥ २ ॥

द्रुपद बोले– हे विप्र ! तुम्हारी बुद्धि नहीं सुधरी और पक्की नहीं हुई है, क्योंकि तुमने एकाएक मुझसे कहा, कि मैं तुम्हारा मित्र हूं ॥ २ ॥

न हि राज्ञामुदीर्णानामेवंभूतैर्नरैः क्वचित् ।
सख्यं भवति मन्दात्मञ्श्रिया हीनैर्धनच्युतैः ॥ ३ ॥

हे स्वल्पबुद्धे ! अनन्त ऐश्वर्ययुक्त भूपालोंकी कभी ऐसे श्रीवर्जित और निर्धनजनोंसे मित्रता नहीं होती ॥ ३ ॥

सौहृदान्यपि जीर्यन्ते कालेन परिजीर्यताम् ।
सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् ॥ ४ ॥

काल सब वस्तुओंको नष्ट कर देता है, उससे मित्रता भी टूट जाती है; पहिले समान सामर्थ्य होनेके कारण तुमसे मेरी मित्रता हुई थी ॥ ४ ॥

न सख्यमजरं लोके जातु दृश्येत कर्हिचित् ।
कामो वैनं विहरति क्रोधश्चैनं प्रवृश्चति ॥ ५ ॥

पर भूमण्डलमें मित्रता कभी या कहीं अजर नहीं होती, क्योंकि कामसे वह दूर हो जाती है, अथवा क्रोध उसे काट डालता है ॥ ५ ॥

मैवं जीर्णमुपासिष्ठाः सख्यं नवमुपाकुरु ।
आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् ॥ ६ ॥

अतः तुम उस पुरानी मित्रताकी पूजा मत करो, इसलिए अब नई मित्रता प्राप्त करो । हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमसे मेरी अर्थके कारण मित्रता थी ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान्विदुषः सखा।
शूरस्य न सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ७ ॥

दरिद्र कभी धनीका मित्र नहीं होता; मूर्ख कभी पण्डितसे मित्रता नहीं कर सकता, वीर्यरहित जन कभी वीरका मित्र नहीं हो सकता, फिर तुम क्यों पहिलेकी मित्रता चाहते हो ? ॥ ७ ॥

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोः सख्यं विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ ८ ॥

जिनका धन समान है, जिनका कुल समान है, उन्हींमें मित्रता और शादी हो सकती है, पुष्ट और अपुष्ट जनोंमें कभी मित्रता नहीं हो सकती ॥ ८ ॥

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।
नाराज्ञा संगतं राज्ञः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ९ ॥

जो श्रोत्रिय नहीं है, वह कभी श्रोत्रियका मित्र नहीं हो सकता; रथवालेसे रथ रहित जन कभी मित्रता नहीं कर सकता; राजा न होनेसे राजाके साथ मित्रता नहीं कर सकता, अतः अब क्यों पहिलेकी मित्रता चाहते हो ? ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

द्रुपदेनैवमुक्तस्तु भारद्वाजः प्रतापवान्।
मुहूर्तं चिन्तयामास मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ १० ॥

वैशम्पायन बोले– द्रुपदसे इस प्रकार कहे जानेपर प्रतापी भारद्वाजने क्रोधसे जलकर क्षण-भर सोचा ॥ १० ॥

स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चालं प्रति बुद्धिमान्।
जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥ ११ ॥

वह बुद्धिमान् मन ही मनमें पाञ्चाल राजकी पराजयका उपाय सोचकर हस्तिनापुर नामक कौरवोंके नगरको चले गये ॥ ११ ॥

कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात्।
क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन्मुदा ॥ १२ ॥

एक बार युधिष्ठिर आदि वीर कुमार मिलकर हस्तिनापुरसे निकल कर "वीटा" अर्थात् गेंदका खेल खेलते हुए प्रसन्न चित्तसे घूमने लगे ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पपात कूपे सा वीटा तेषां वै क्रीडतां तदा ।
न च ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये ॥ १३ ॥

तब खेलते हुए उनकी वह गेंद कुंएमें गिर गयी । पर उन्हें उस गेंदको पानेका कोई उपाय नहीं सूझा ॥ १३ ॥

अथ द्रोणः कुमारांस्तान्दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा ।
प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ १४ ॥
अहो नु धिग्बलं क्षात्रं धिगेतां वः कृतास्त्रताम् ।
भरतस्यान्वये जाता ये वीटां नाधिगच्छत ॥ १५ ॥

वीर्यवान् द्रोण लडकोंको विफल मनोरथवाला देखकर चतुरतासे कुछ हंसकर बोले– तुम्हारे क्षत्रिय बलपर धिक्कार है, तुम्हारे अस्त्र शिक्षापर भी धिक्कार है ! क्योंकि तुम भरतकुलमें जन्म लेकरके भी इस गेंदको निकाल नहीं सके ॥ १४–१५ ॥

एष मुष्टिरिषीकाणां मयास्त्रेणाभिमन्त्रितः ।
अस्य वीर्यं निरीक्षध्वं यदन्यस्य न विद्यते ॥ १६ ॥

इन मुट्ठी भर इषीका अर्थात् सरकण्डेपर मैं अस्त्रका मन्त्र फूंक देता हूं, दूसरे अस्त्रमें जो वीर्य नहीं है, वही इसमें देखोगे ॥ १६ ॥

वेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकामथान्यया ।
तामन्यया समायोगो वीटाया ग्रहणे मम ॥ १७ ॥

इस इषीकासे वह गेंद बींधकर दूसरी इषीकासे इस इषीकाको बींधूंगा फिर और इषीकासे उस दूसरेको भी विद्ध करूंगा, इस प्रकार क्रमसे इषीकाके योगसे उस गेंदको निकाल दूँगा ॥ १७ ॥

तदपश्यन्कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ।
अवेक्ष्य चोद्धृतां वीटां वीटावेद्धारमब्रुवन् ॥ १८ ॥

लडकोंने अचरजसे आंखें फैलाकर वह लीला देखी और गेंदको निकाला हुआ देखकर वे गेंदको निकालनेवालेसे बोले ॥ १८ ॥

अभिवादयामहे ब्रह्मन्नैतदन्येषु विद्यते ।
कोऽसि कं त्वाभिजानीमो वयं किं करवामहे ॥ १९ ॥

ब्रह्मन् ! हम आपको प्रणाम करते हैं, यह विद्या दूसरोंमें दीख नहीं पडती, अतः जानना चाहते हैं, कि आप कौन और किसके पुत्र हैं और यह भी कहिये कि हम आपके लिए क्या करें ? ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्रोण उवाच

आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्च माम्।
स एव सुमहाबुद्धिः सांप्रतं प्रतिपत्स्यते ॥ २० ॥

द्रोण बोले– तुम भीष्मके पास जाकर मेरे रूप और गुणकी बात ठीक ठीक कहो। इससे वह महाबुद्धि भीष्म मुझको पहिचान लेंगे ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे भीष्ममूचुः पितामहम्।
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तच्च कर्म विशेषवत् ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले– तब लडकोंने वह मानकर पितामह भीष्मके पास जाकर उन ब्राह्मणका ठीक ठीक हाल और विशेषकर आश्चर्य कार्यकी बात कह सुनायी ॥ २१ ॥

भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं तं प्रत्यजानत।
युक्तरूपः स हि गुरुरित्येवमनुचिन्त्य च ॥ २२ ॥

भीष्म कुमारोंके मुखसे सब सुनकर समझ गए कि वे ब्राह्मण द्रोण हैं। और सोचा, कि यही आचार्य कार्यके योग्य हैं ॥ २२ ॥

अथैनमानीय तदा स्वयमेव सुसत्कृतम्।
परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्रभृतां वरः।
हेतुमागमने तस्य द्रोणः सर्वं न्यवेदयत् ॥ २३ ॥

तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने स्वयं उसी क्षण वहां जाकर उनको आदरपूर्वक लिवा लाकर आनेका कारण योग्य रूपसे पूछा, तब द्रोणने आद्योपान्त सब कह सुनाया ॥ २३ ॥

महर्षेरग्निवेश्यस्य सकाशमहमच्युत।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदजिघृक्षया ॥ २४ ॥

हे आयुष्मन्! मैं पहिले धनुर्वेद और अस्त्रकी शिक्षा लेनेकी इच्छासे महर्षि अग्निवेशके यहां गया था ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो बहुलाः समाः।
अवसं तत्र सुचिरं धनुर्वेदचिकीर्षया ॥ २५ ॥

वहां धनुर्वेद सीखनेकी इच्छासे ब्रह्मचारी, नम्र, जटाधारी और उत्साहित होकर अनेक वर्ष तक रहा ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाञ्चालराजपुत्रस्तु यज्ञसेनो महाबलः ।
मया सहाकरोद्विद्यां गुरोः श्राम्यन्समाहितः ॥ २६ ॥

उन दिनों पाञ्चाल राजकुमार महाबली प्रभावी यज्ञसेन उन गुरुके निकट अस्त्रविद्या और धनुर्विद्या सीखनेके लिये मेरे साथ ही रहते थे ॥ २६ ॥

स मे तत्र सखा चासीदुपकारी प्रियश्च मे ।
तेनाहं सह संगम्य रतवान्सुचिरं बत ।
बाल्यात्प्रभृति कौरव्य सहाध्ययनमेव च ॥ २७ ॥

हे प्रभो ! वहां वह मेरे उपकारी, मित्र और प्रिय थे, उनके साथ एकत्र रहकर मैं बहुत दिन सुखसे वहां रहा, हे कौरव ! बालपनसे उनके साथ एकत्र मैंने पढा था ॥ २७ ॥

स समासाद्य मां तत्र प्रियवादी प्रियंवदः ।
अब्रवीदिति मां भीष्म वचनं प्रीतिवर्धनम् ॥ २८ ॥

इसलिये वह सदा मेरे साथ प्रिय बोलनेवाले और प्रिय कहनेवाले थे । हे भीष्म ! वे मुझे पाकर मेरी प्रीतिके लिये सदा मुझसे यह कहा करते थे ॥ २८ ॥

अहं प्रियतमः पुत्रः पितुर्द्रोण महात्मनः ।
अभिषेक्ष्यति मां राज्ये स पाञ्चाल्यो यदा तदा ॥ २९ ॥
त्वद्भोज्यं भविता राज्यं सखे सत्येन ते शपे ।
मम भोगाश्च वित्तं च त्वदधीनं सुखानि च ॥ ३० ॥

"हे द्रोण ! मैं महानुभाव पिताका बडा प्यारा पुत्र हूं, जब पाञ्चालराज मुझको राज्यपर बैठावेंगे, तब उस राज्यका भोग तुम करोगे, हे मित्र ! मेरा भोग, ऐश्वर्य और सुख सब तुम्हारे अधीन रहेंगे, यह मैं सत्यकी शपथ लेकर कहता हूं" ॥ २९-३० ॥

एवमुक्तः प्रवव्राज कृतास्त्रोऽहं धनेप्सया ।
अभिषिक्तं च श्रुत्वैनं कृतार्थोऽस्मीति चिन्तयन् ॥ ३१ ॥

जब मेरी शस्त्रास्त्रशिक्षा समाप्त हो गई और मैंने यह सुना कि द्रुपद राजा बन गया है, तब यह सोचकर कि अब मैं कृतार्थ हो गया हूँ, धनकी इच्छासे उसके पास गया ॥ ३१ ॥

प्रियं सखायं सुप्रीतो राज्यस्थं पुनराव्रजम् ।
संस्मरन्संगमं चैव वचनं चैव तस्य तत् ॥ ३२ ॥

मैं खुश होकर राज्यपर बैठे हुए अपने प्रिय मित्रके उन वचनोंको और उसके साथ रहनेकी बात याद करके उसके पास गया ॥ ३२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो द्रुपदमागम्य सखिपूर्वमहं प्रभो।
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र सखायं विद्धि मामिति ॥ ३३ ॥

मैंने उनके साथ हुई हुई पहलेकी मित्रताको याद कर उनके पास जाकर मित्रतासे कहा, कि, हे पुरुषव्याघ्र ! मुझे अपना मित्र समझो ॥ ३३ ॥

उपस्थितं तु द्रुपदः सखिवच्चाभिसंगतम्।
स मां निराकारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

वह द्रुपद अपने मित्रके रूपमें उपस्थित हुए मुझे देखकर नीच मनुष्यकी भांति मुझपर हंसकर बोला ॥ ३४ ॥

अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नातिसमञ्जसी।
यदात्थ मां त्वं प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥ ३५ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी यह बात बुद्धिमानोंकीसी और सुधरी हुई नहीं है। हे द्विज ! क्योंकि तुमने सहसा मुझसे कहा, कि "मैं तुम्हारा मित्र हूं" ॥ ३५ ॥

न हि राज्ञामुदीर्णानामेवंभूतैर्नरैः क्वचित्।
सख्यं भवति मन्दात्मञ्श्रिया हीनैर्धनच्युतैः ॥ ३६ ॥

स्वल्पबुद्धे ! जो अनन्त ऐश्वर्यसे युक्त भूपाल हैं, उनकी कभी इस प्रकारके श्रीसे रहित तथा धनसे हीन लोगोंसे मित्रता नहीं हो सकती ॥ ३६ ॥

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ३७ ॥

बुद्धिमानोंकी मूर्खोंके साथ, रथरहितकी रथीके साथ, जो राजा नहीं है उसकी राजाके साथ कभी मित्रता नहीं होती, फिर क्यों तुम पहलेकी मित्रता चाहते हो ? ॥ ३७ ॥

द्रुपदेनैवमुक्तोऽहं मन्युनाभिपरिप्लुतः।
अभ्यागच्छं कुरून्भीष्म शिष्यैरर्थी गुणान्वितैः ॥ ३८ ॥

हे भीष्म ! राजा द्रुपदसे इस प्रकार कहे जाकर मैं क्रोधित होकर गुणवान् शिष्योंकी खोजमें कुरुराज्यमें उपस्थित हुआ हूँ ॥ ३८ ॥

प्रतिजग्राह तं भीष्मो गुरुं पाण्डुसुतैः सह।
पौत्रानादाय तान्सर्वान्वसूनि विविधानि च ॥ ३९ ॥

पाण्डवों सहित अपने पौत्रोंको तथा विविध धनोंको देकर भीष्मने उन्हें गुरुके रूपमें स्वीकार कर लिया ॥ ३९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शिष्या इति ददौ राजन्द्रोणाय विधिपूर्वकम् ।
स च शिष्यान्महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान् ॥ ४० ॥

हे राजन् ! भीष्मने कौरवों और पाण्डवोंको शिष्यके रूपमें द्रोणके हाथोंमें विधिपूर्वक सौंप दिया और बडे धनुषधारी द्रोणने भी प्रसन्न चित्तसे उन्हें शिष्य बना लिया ॥ ४० ॥

प्रतिगृह्य च तान्सर्वान्द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
रहस्येकः प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तदा ॥ ४१ ॥

इसके बाद प्रसन्न मनवाले द्रोण अकेलेमें उन सबको ले जाकर कौरवोंसे एकान्तमें विश्वासपूर्वक बोले ॥ ४१ ॥

कार्यं मे काङ्क्षितं किंचिद्धृदि संपरिवर्तते ।
कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं मे तदृतं वदतानघाः ॥ ४२ ॥

हे निष्पाप शिष्यो ! कोई एक कामना मेरे हृदयमें विद्यमान है। प्रतिज्ञा करो कि जब तुम लोग अस्त्रविद्यामें दक्ष बन जाओगे तब मेरी वह इच्छा अवश्य पूरी करोगे ॥ ४२ ॥

तच्छ्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन्विशां पते ।
अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे परंतपः ॥ ४३ ॥

हे परंतप पृथ्वीनाथ ! कौरवलोग यह सुनकर चुप हो गए। पर अर्जुनने उनकी सब कामनाओंको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ४३ ॥

ततोऽर्जुनं मूर्ध्नि तदा समाघ्राय पुनः पुनः ।
प्रीतिपूर्वं परिष्वज्य प्ररुरोद मुदा तदा ॥ ४४ ॥

तब द्रोणने बार बार अर्जुनका सिर चूमकर प्रसन्नतासे उनको गलेसे लगाया और हर्षके मारे उनकी आंखोंसे आंसू गिरने लगे ॥ ४४ ॥

ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च ।
ग्राहयामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्यवान् ॥ ४५ ॥

इसके बाद वह वीर्यवान् द्रोण पाण्डुनन्दनोंको दिव्य और मानवी नाना प्रकारके अस्त्रोंकी शिक्षा देने लगे ॥ ४५ ॥

राजपुत्रास्तथैवान्ये समेत्य भरतर्षभ ।
अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ।
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नानादेश्याश्च पार्थिवाः ॥ ४६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तब वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी और अनेक देशोंके दूसरे अनेक राजकुमार भी आकरके अस्त्रशिक्षाके लिये द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पास एकत्रित होने लगे ॥ ४६ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात्तदा।
स्पर्धमानस्तु पार्थेन सूतपुत्रोऽत्यमर्षणः।
दुर्योधनमुपाश्रित्य पाण्डवानत्यमन्यत ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ ४४०२ ॥

तब राधाकुमार सूतपुत्र कर्ण भी द्रोणाचार्यके शिष्य बने। सूतपुत्र कर्ण अति द्वेषयुक्त होकर अर्जुनसे स्पर्धा करता हुआ दुर्योधनका सहारा लेकर पाण्डवोंका अनादर करने लगे ॥४७॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बाइसवां अध्याय समाप्त ॥ १२२ ॥ ४४०२ ॥

: १२३ :

वैशम्पायन उवाच

अर्जुनस्तु परं यत्नमातस्थे गुरुपूजने।
अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुन गुरुकी सेवामें बडा यत्न और अस्त्रोंके सीखनेमें बडा ध्यान देने लगे, इसलिए वह द्रोणाचार्यके बडे प्रिय बन गए ॥ १ ॥

द्रोणेन तु तदाहूय रहस्युक्तोऽन्नसाधकः
अन्धकारेऽर्जुनायान्नं न देयं ते कथंचन ॥ २ ॥

एक बार द्रोण रसोईएको एकान्तमें बुला कर बोले, कि तुम कभी भी अंधेरेमें अर्जुनको खानेके लिये अन्न मत देना ॥ २ ॥

ततः कदाचिद्भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने।
तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो निवापितः ॥ ३ ॥

इसके बाद एक बार अर्जुनके भोजन करते हुए हवा चलने लगी और उसने जलते हुए प्रदीपको बुझा दिया ॥ ३ ॥

भुङ्क्त एवार्जुनो भक्तं न चास्यास्याद्व्यमुह्यत।
हस्तस्तेजस्विनो नित्यमन्नग्रहणकारणात्।
तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावभ्यस्त पाण्डवः ॥ ४ ॥

तेजस्वी अर्जुन तब अंधेरेमें ही भोजन करने लगे; अभ्यासके कारण उनका हाथ मुखके अलावा किसी और स्थानमें नहीं गया; इससे महाभुज पाण्डुनन्दन अर्जुन यह समझ कर कि अभ्याससे ही ऐसा होता है, रातमें भी शस्त्राभ्यास करने लगे ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत ।
उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

हे भारत ! आचार्य द्रोणने रात्रिके समय उनके धनुषकी डोरीका और बाणोंके छूटनेका शब्द सुना और उठ करके वहां गये और गले लगाकर अर्जुनसे बोले ॥ ५ ॥

प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः ।
त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥

तुमसे सत्य कहता हूं, कि ऐसा प्रयत्न करूंगा, कि मर्त्यलोकभरमें तुम्हारे जैसा धनुर्धारी कोई दूसरा न होगा ॥ ६ ॥

ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो रथेषु च गजेषु च ।
अश्वेषु भूमावपि च रणशिक्षामशिक्षयत् ॥ ७ ॥

इसके बादसे वीर्यवान् द्रोणाचार्यने अर्जुनको रथ पर, हाथी पर, घोडे पर और भूमिपर युद्ध करनेकी शिक्षा दी ॥ ७ ॥

गदायुद्धेऽसिचर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु ।
द्रोणः संकीर्णयुद्धेषु शिक्षयामास पाण्डवम् ॥ ८ ॥

और गदायुद्धमें, खड्ग चलानेमें, तोमर, प्रास, शक्ति आदि विशेष अस्त्र फेंकनेमें और संकीर्ण युद्धमें अर्थात् एक ही समय अनेक बाण चलाने अथवा एकबार ही अनेक जनोंके साथ युद्ध करनेमें अर्जुनको सुशिक्षित किया ॥ ८ ॥

तस्य तत्कौशलं दृष्ट्वा धनुर्वेदजिघृक्षवः ।
राजानो राजपुत्राश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ९ ॥

धनुर्वेदको सीखनेकी इच्छावाले सहस्रों राजा और राजकुमार उनके उस कौशलको देखकर वहां आए ॥ ९ ॥

ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः ।
एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम ह ॥ १० ॥

हे महाराज ! हिरण्यधनु नामक निषादराजाका कुमार एकलव्य द्रोणके पास आया ॥ १० ॥

न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन् ।
शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवान्ववेक्षया ॥ ११ ॥

यह व्याधका पुत्र है और राजकुमारोंसे कहीं आगे न बढ जाए इस विचारसे धर्मज्ञ द्रोणने उसे शिष्य रूपमें स्वीकार नहीं किया ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतपः ।
अरण्यमनुसंप्राप्तः कृत्वा द्रोणं महीमयम् ॥ १२ ॥

उस शत्रुनाशी एकलव्यने द्रोणाचार्यके पांवों पर सिर झुकाकर वनमें जाकर मिट्टीसे द्रोणकी एक प्रतिमा गढी ॥ १२ ॥

तस्मिन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा ।
इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियममास्थितः ॥ १३ ॥

और उस प्रतिमूर्तिमें आचार्यकी महती श्रद्धा रखकर एकचित्त होकर धनुर्वेद सीखने लगा ॥ १३ ॥

परया श्रद्धया युक्तो योगेन परमेण च ।
विमोक्षादानसंधाने लघुत्वं परमाप सः ॥ १४ ॥

अपनी बडी श्रद्धा और एकचित्तताके कारण अस्त्रोंके विमोचन, आदान और सन्धानमें उसने बडी निपुणता प्राप्त करली ॥ १४ ॥

अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाताः कदाचित्कुरुपाण्डवाः ।
रथैर्विनिर्ययुः सर्वे मृगयामरिमर्दनाः ॥ १५ ॥

किसी समय शत्रुनाशी कौरव पाण्डव द्रोणाचार्यकी आज्ञासे रथ पर आरूढ होकर मृगयाके लिये गये ॥ १५ ॥

तत्रोपकरणं गृह्य नरः कश्चिद्यदृच्छया ।
राजन्ननुजगामैकः श्वानमादाय पाण्डवान् ॥ १६ ॥

हे राजन् ! तब कोई एक मनुष्य मृगयाके योग्य जालादि लेकर, एक कुत्तेको साथमें लेकर, अपनी इच्छानुसार पाण्डवोंके सङ्ग चलने लगा ॥ १६ ॥

तेषां विचरतां तत्र तत्तत्कर्म चिकीर्षताम् ।
श्वा चरन्स वने मूढो नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥ १७ ॥
स कृष्णं मलदिग्धाङ्गं कृष्णाजिनधरं वने ।
नैषादिं श्वा समालक्ष्य भषंस्तस्थौ तदन्तिके ॥ १८ ॥

तब उस वनमें जब सब अपना अपना काम पूरा करनेके लिये घूमघाम रहे थे, तब उनका साथी वह कुत्ता इधर उधर घूमता हुआ उस निषाद पुत्र एकलव्यकी ओर निकल गया और वनमें काले, मलिन अंगोंवाले तथा कृष्णाजिन पहिने हुए उस निषादपुत्रको देखकर उसके सामने खडा होकर भोंकने लगा ॥ १७-१८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तदा तस्याथ भषतः शुनः सप्त शरान्मुखे ।
लाघवं दर्शयन्नस्त्रे मुमोच युगपद्यथा ॥ १९ ॥

तब व्याधपुत्रने अस्त्र चलानेमें शीघ्रता दिखाकर उस भोंकते हुए कुत्तेके मुंहमें एक ही बारमें सात बाण चलाये ॥ १९ ॥

स तु श्वा शरपूर्णास्यः पाण्डवानाजगाम ह ।
तं दृष्ट्वा पाण्डवा वीरा विस्मयं परमं ययुः ॥ २० ॥

बाणोंसे मुंह भर जानेपर कुत्ता पाण्डवोंके पास आया । वीर पाण्डवोंको उसे उस दशामें देखकर बडा अचरज हुआ ॥ २० ॥

लाघवं शब्दवेधित्वं दृष्ट्वा तत्परमं तदा ।
प्रेक्ष्य तं व्रीडिताश्चासन्प्रशशंसुश्च सर्वशः ॥ २१ ॥

तब सब लोग अस्त्र चलानेवालेकी बडी फुर्ती तथा शब्दवेधनेका सामर्थ्य देखकर बडे लज्जित हुए और सब प्रकारसे उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ २१ ॥

तं ततोऽन्वेषमाणास्ते वने वननिवासिनम् ।
ददृशुः पाण्डवा राजन्नस्यन्तमनिशं शरान् ॥ २२ ॥

हे राजन् ! तब पाण्डवोंने उस वनमें रहनेवाले तथा अस्त्र चलानेवालेको वनमें ढूंढते हुए रातदिन बाण चलाते हुए एक वनवासीको देखा ॥ २२ ॥

न चैनमभिजानंस्ते तदा विकृतदर्शनम् ।
अथैनं परिपप्रच्छुः को भवान्कस्य वेत्युत ॥ २३ ॥

तब उन्होंने उस स्वरूप बिगाडे हुए व्याधको नहीं पहिचाना और अन्तमें उन्होंने पूछा, कि आप कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? ॥ २३ ॥

एकलव्य उवाच

निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम् ।
द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥ २४ ॥

एकलव्य बोला– हे वीरगण ! मैं निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र हूं और धनुर्वेदमें परिश्रम करनेवाले मुझे द्रोणाचार्यका शिष्य जानो ॥ २४ ॥

वैशंपायन उवाच

ते तमाज्ञाय तत्त्वेन पुनरागम्य पाण्डवाः ।
यथावृत्तं च ते सर्वं द्रोणायाचख्युरद्भुतम् ॥ २५ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद पाण्डवोंने उसको ठीक ठीक पहिचानकर लौट कर वनमें जो कुछ हुआ था वह सब आश्चर्यजनक वृत्तान्त द्रोणाचार्यको कह सुनाया ॥ २५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कौन्तेयस्त्वर्जुनो राजन्नेकलव्यमनुस्मरन्।
रहो द्रोणं समागम्य प्रणयादिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

हे राजन्! कुन्तीपुत्र अर्जुन एकलव्यको स्मरण करते हुए द्रोणके पास पहुंच कर प्रेमसे एकान्तमें बोले ॥ २६ ॥

नन्वहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः।
भवतोक्तो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति ॥ २७ ॥

हे आचार्य! पहिले आपने अकेले मुझको गलेसे लगाकर प्रेमसे यह कहा था, कि मेरा कोई शिष्य तुमसे श्रेष्ठ न होगा ॥ २७ ॥

अथ कस्मान्मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान्।
अस्त्यन्यो भवतः शिष्यो निषादाधिपतेः सुतः ॥ २८ ॥

फिर तो वीर्यवान् निषादराजाका पुत्र आपका दूसरा शिष्य होकर मुझसे ही नहीं वरन् सम्पूर्ण लोगोंसे श्रेष्ठ क्यों हुआ? ॥ २८ ॥

मुहूर्तमिव तं द्रोणश्चिन्तयित्वा विनिश्चयम्।
सव्यसाचिनमादाय नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥ २९ ॥

तब द्रोण उस बातपर क्षणभर सोच विचार और कुछ निश्चय करके सव्यसाची अर्जुनको साथ लेकर उस निषादराजपुत्रके यहां गये ॥ २९ ॥

ददर्श मलदिग्धाङ्गं जटिलं चीरवाससम्।
एकलव्यं धनुष्पाणिमस्यन्तमनिशं शरान् ॥ ३० ॥

वहां मलसे युक्त शरीरवाले हुए जटाधारी, चीर पहिने, हाथोंसे धनुषको थामकर रातदिन बाण चलाते हुए एकलव्यको देखा ॥ ३० ॥

एकलव्यस्तु तं दृष्ट्वा द्रोणमायान्तमन्तिकात्।
अभिगम्योपसंगृह्य जगाम शिरसा महीम् ॥ ३१ ॥

एकलव्यने निकट आते हुए द्रोणाचार्यको देखकर निकट आकर पांव छूकर प्रणाम किया ॥ ३१ ॥

पूजयित्वा ततो द्रोणं विधिवत्स निषादजः।
निवेद्य शिष्यमात्मानं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ३२ ॥

विधिपूर्वक पूजकर तथा यह कहकर, कि मैं आपका शिष्य हूं, वह निषादराजका पुत्र दोनों हाथ जोडकर सामने खडा हो गया ॥ ३२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो द्रोणोऽब्रवीद्राजन्नेकलव्यमिदं वचः ।
यदि शिष्योऽसि मे तूर्णं वेतनं संप्रदीयताम् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! तब द्रोणने एकलव्यसे यह बात कही, कि हे वीर ! यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मुझको शीघ्र ही दक्षिणा दो ॥ ३३ ॥

एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणोऽब्रवीदिदम् ।
किं प्रयच्छामि भगवन्नाज्ञापयतु मां गुरुः ॥ ३४ ॥

एकलव्यने यह सुनकर प्रसन्न चित्तसे यह कहा, कि भगवन् ! गुरु आप मुझे आज्ञा कीजिये, कि क्या दूं ? ॥ ३४ ॥

न हि किंचिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम ।
तमब्रवीत्त्वयाङ्गुष्ठो दक्षिणो दीयतां मम ॥ ३५ ॥

हे ब्रह्मज्ञोंमें उत्तम ! मेरे द्वारा गुरुको कुछ भी अदेय नहीं है । द्रोणाचार्य उससे बोले– तुम मुझको दाहिने हाथका अंगूठा दक्षिणामें दे दो ॥ ३५ ॥

एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा वचो द्रोणस्य दारुणम् ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्ये च निरतः सदा ॥ ३६ ॥

तथैव हृष्टवदनस्तथैवादीनमानसः ।
छित्त्वाविचार्य तं प्रादाद्द्रोणायाङ्गुष्ठमात्मनः ॥ ३७ ॥

सदा सत्यपर अटल रहनेवाले एकलव्यने अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण कर आचार्य द्रोणकी वह कठोरवाणी सुननेपर भी चित्तमें दुःख न मानकर और मुखको प्रसन्न कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके विना विचारे अपने दाहिने अंगूठेको काटकर द्रोणाचार्यको दे दिया ॥ ३६-३७॥

ततः परं तु नैषादिरङ्गुलीभिर्व्यकर्षत ।
न तथा स तु शीघ्रोऽभूद्यथा पूर्वं नराधिप ॥ ३८ ॥

हे नरेश ! उसके बादसे निषादराज–कुमार शेष उङ्गलियोंसे ही बाण चलाने लगा, पर वह पहिलेके समान शीघ्रतासे काम न कर सका ॥ ३८ ॥

ततोऽर्जुनः प्रीतमना बभूव विगतज्वरः ।
द्रोणश्च सत्यवागासीन्नान्योऽभ्यभवदर्जुनम् ॥ ३९ ॥

तब अर्जुन प्रसन्न चित्त हुए, उनकी मनःपीडा जाती रही और आचार्य द्रोणने पहिले जैसे कहा था, कि कोई भी अर्जुनको परास्त नहीं कर सकेगा, वह बात सच्ची ठहरी ॥ ३९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यां विशेषतः।
दुर्योधनश्च भीमश्च कुरूणामभ्यगच्छताम् ॥ ४० ॥

दुर्योधन और भीम द्रोणके यह दो शिष्य गदायुद्धमें दक्ष बने, दोनों एक दूसरेसे सदा स्पर्धा करते रहते थे ॥ ४० ॥

अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत्।
तथाति पुरुषानन्यान्त्सारुकौ यमजावुभौ।
युधिष्ठिरो रथश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनञ्जयः ॥ ४१ ॥

अस्त्र चलानेके सब रहस्योंके जाननेमें अश्वत्थामा सबसे अच्छे निकले। नकुल और सहदेव ये दोनों खड्ग युद्धमें सबोंको लांघ गये। युधिष्ठिर रथियोंमें प्रधान हुए। धनञ्जय हर बातमें ही श्रेष्ठ निकले ॥ ४१ ॥

प्रथितः सागरान्तायां रथयूथपयूथपः।
बुद्धियोगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च पाण्डवः ॥ ४२ ॥

वह अर्जुन बुद्धि, उपाय, बल और उत्साहसे सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष रथीदलके स्वामियोंके भी स्वामी होकर समुद्रसे लेकर सम्पूर्ण धरतीमें प्रसिद्ध हुए ॥ ४२ ॥

अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुनः।
तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सौष्ठवेन च वीर्यवान्।
एकः सर्वकुमाराणां बभूवातिरथोऽर्जुनः ॥ ४३ ॥

विशेष अस्त्रोंके चलाने और गुरुकी भक्ति करनेमें उनके समान कोई दूसरा नहीं था। सबोंको बराबर अस्त्रोपदेश देने पर भी वीर्यवान् अर्जुन अपने सौष्ठवके कारण सब कुमारोंमें अद्वितीय अतिरथी माने जाते थे ॥ ४३ ॥

प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम्।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानो नाऽमृष्यन्त नराधिप ॥ ४४ ॥

हे राजन्! दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्र बडे बली भीमसेन और अस्त्रविद्या सीखे हुए अर्जुनको सहन न कर सके ॥ ४४ ॥

तांस्तु सर्वान्समानीय सर्वविद्यासु निष्ठितान्।
द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभ ॥ ४५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! एक समय द्रोणने अस्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण विद्याओंमें शिक्षित उन सब शिष्योंको एकत्रकर यह जानना चाहा कि किसने कैसी शिक्षा ली है ॥ ४५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् ।
अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यभूतमुपादिशत् ॥ ४६ ॥

इससे पहिले उन्होंने कुमारोंसे अज्ञात एक शिल्पकारसे एक कृत्रिम गिद्ध पक्षी बनवाकर उसे निशानेके लिए एक वृक्ष पर रखवा दिया ॥ ४६ ॥

द्रोण उवाच

शीघ्रं भवन्तः सर्वे वै धनूंष्यादाय सत्वराः ।
भासमेतं समुद्दिश्य तिष्ठन्तां संहितेषवः ॥ ४७ ॥

फिर द्रोण शिष्योंसे बोले– कुमारो ! तुम सब शीघ्र ही धनुष लेकर उसमें बाण जोड करके उस गिद्ध पर निशाना लगाए रहो ॥ ४७ ॥

मद्वाक्यसमकालं च शिरोऽस्य विनिपात्यताम् ।
एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः ॥ ४८ ॥

मेरे कहनेके साथ ही उस पक्षीके सिरको काट डालो । हे पुत्रो ! मैं एक एक करके तुम सबोंमें जब जिसे आज्ञा दूंगा, वह उसी क्षण वैसा ही करे ॥ ४८ ॥

वैशंपायन उवाच

ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाङ्गिरसां वरः ।
संधत्स्व बाणं दुर्धर्ष मद्वाक्यान्ते विमुञ्च च ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर अङ्गिरावंशियोंमें श्रेष्ठ द्रोण सबसे पहिले युधिष्ठिरसे बोले, कि हे दुर्द्धर्ष ! बाणसे निशाना ठीक करलो, मेरी बात पूरी होते ही उसको छोड देना ॥४९॥

ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृह्य महारवम् ।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥ ५० ॥

तब युधिष्ठिर गुरुकी आज्ञासे पहिले महान् शब्द करनेवाला धनुष लेकर पक्षी पर निशाना बांधकर खडे हो गए ॥ ५० ॥

ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् ।
स मुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥ ५१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! द्रोणने धनुष पर डोरी चढाये हुए उस कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे क्षण भर बाद यह बात कही ॥ ५१ ॥

पश्यस्येनं द्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज ।
पश्यामीत्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥

राजकुमार ! उस वृक्षपरके गिद्धको देखते हो ? युधिष्ठिर तब आचार्यसे बोले, कि हां देखता हूं ॥ ५२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स मुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत।
अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातॄन्वापि प्रपश्यसि ॥ ५३ ॥

द्रोणने एकक्षण बाद फिर उन युधिष्ठिरसे पूछा, कि तुम इस वृक्षको, मुझको अथवा अपने भाईयोंको भी देखते हो या नहीं ? ॥ ५३ ॥

तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम्।
भवन्तं च तथा भ्रातॄन्भासं चेति पुनः पुनः ॥ ५४ ॥

तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उन द्रोणसे बोले– हां, मैं इस वृक्षको, आपको, भाइयोंको और उस पक्षीको देखता हूं। आचार्यके द्वारा बार बार पूछे जानेपर भी उन्होंने बार बार वैसा ही कहा ॥ ५४ ॥

तमुवाचापसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव।
नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ॥ ५५ ॥

इससे द्रोण उन पर अप्रसन्नचित्त होकर क्रोधित होकर बोले– तुम चले जाओ, यह लक्ष्य विद्ध करना तुम्हारे द्वारा संभव नहीं है ॥ ५५ ॥

ततो दुर्योधनादींस्तान्धार्तराष्ट्रान्महायशाः।
तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥ ५६ ॥

इसके बाद उन राजकुमारोंकी शक्ति जाननेकी इच्छा करनेवाले महायशस्वी द्रोणने दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे उसी क्रमसे पूछा ॥ ५६ ॥

अन्यांश्च शिष्यान्भीमादीन्राज्ञश्चैवान्यदेशजान्।
तथा च सर्वे सर्वं तत्पश्याम इति कुत्सिताः ॥ ५७ ॥

और भीम, नकुल, सहदेव तथा अन्य देशोंके राजकुमारोंसे भी उसी प्रकार पूछा, पर सब 'मैं वृक्षादि सब देखता हूं,' इस प्रकारका उत्तर देनेके कारण आचार्यसे निन्दित हुए ॥ ५७ ॥

ततो धनञ्जयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत।
त्वयेदानीं प्रहर्तव्यमेतल्लक्ष्यं निशम्यताम् ॥ ५८ ॥

तब द्रोण कुछ हंसकर धनञ्जयसे बोले– अब तुमको यह लक्ष्य विद्ध करना है, अतः मेरी बात सुनो ॥ ५८ ॥

मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः।
वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ ५९ ॥

मेरी बातके साथ ही तुम्हें बाण छोडना है, अतः, हे पुत्र ! धनुषको फैलाकर थोडी देरतक खडे रहो ॥ ५९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः ।
तस्थौ लक्ष्यं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥ ६० ॥

इस प्रकार कहे जानेपर सव्यसाची अर्जुन गुरुकी आज्ञासे धनुषको गोल बनाकर शरासनमें बाण जोडकर लक्ष्यपर निशाना लगाकर खडे हो गए ॥ ६० ॥

मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत ।
पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि वेत्युत ॥ ६१ ॥

क्षणभर बाद द्रोणने पहिलेके समान ही कहा, कि अर्जुन ! तुम उस वृक्षपरके पक्षीको, वृक्षको और मुझको देखते हो, या नहीं ? ॥ ६१ ॥

पश्याम्येनं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत ।
न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥ ६२ ॥

हे भारत ! पार्थने द्रोणसे कहा कि मैं केवल पक्षीहीको देखता हूं, वृक्षको वा आपको नहीं देखता ॥ ६२ ॥

ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां रथर्षभम् ॥ ६३ ॥

तब दुर्द्धर्ष द्रोण प्रसन्नचित्त होकर मुहूर्तभर बाद पाण्डवोंमें महारथी उन अर्जुनसे बोले ॥६३॥

भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः ।
शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत् ॥ ६४ ॥

कि यदि तुम पक्षीहीको देखते हो तो बताओ कि तुम उसके किस अंगको देखते हो । अर्जुनने उत्तर दिया, कि मैं उस पक्षीका सिरमात्र देखता हूं, शरीर नहीं देखता ॥ ६४ ॥

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः ।
मुञ्चस्वेत्यब्रवीत्पार्थं स मुमोचाविचारयन् ॥ ६५ ॥

अर्जुनकी यह बात सुनकर हर्षके मारे द्रोणकी देहके रोयें खडे हो गये और उनसे बोले, कि अब बाण छोडो । तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने कोई विचार न करके बाणको छोड दिया ॥६५॥

ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन ह ।
शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥ ६६ ॥

तब उसी क्षण अर्जुनने तेज उस्तुरेके समान तीक्ष्ण बाणसे वृक्षपरके पक्षीका सिर काटकर नीचे गिरा दिया ॥ ६६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तस्मिन्कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत फल्गुनम् ।
मेने च द्रुपदं सङ्ख्ये सानुबन्धं पराजितम् ॥ ६७ ॥

द्रोणाचार्यने वह काम पूरा होते देखकर प्रसन्नचित्तसे अर्जुनको गलेसे लगाया और मनही-मनमें यह निश्चय किया, कि राजा द्रुपद अपने सहायकोंके साथ युद्धमें निश्चित रूपसे हार जायेगा ॥ ६७ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य सशिष्योऽङ्गिरसां वरः ।
जगाम गङ्गामभितो मज्जितुं भरतर्षभ ॥ ६८ ॥

हे भरतकुलमें श्रेष्ठ पुरुष ! उसके कुछ दिन बाद अंगिराओंमें श्रेष्ठ द्रोण शिष्योंके साथ गंगामें नहाने गए ॥ ६८ ॥

अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः ।
ग्राहो जग्राह बलवाञ्जङ्घान्ते कालचोदितः ॥ ६९ ॥

वहां जलचारी एक बलवान् मगरने कालसे प्रेरित होकर पानीके अन्दर प्रविष्ट द्रोणकी जांघ पकड ली ॥ ६९ ॥

स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान्सर्वानचोदयत् ।
ग्राहं हत्वा मोक्षयध्वं मामिति त्वरयन्निव ॥ ७० ॥

द्रोण स्वयं उससे बचनेमें समर्थ होने पर भी सब शिष्योंसे उनकी शीघ्रता देखनेके लिये बोले, कि तुम तुरन्त इस जलचरको नष्ट करके मेरी रक्षा करो ॥ ७० ॥

तद्वाक्यसमकालं तु बीभत्सुर्निशितैः शरैः ।
आवापैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत् ।
इतरे तु विसंमूढास्तत्र तत्र प्रपेदिरे ॥ ७१ ॥

गुरु द्रोणके यह बात कहते ही अर्जुनने पांच तीक्ष्ण बाणोंसे जलमें डूबे हुए जलचरको विद्ध किया । दूसरे शिष्य जो जहां थे, वह वहीं मूढवत् खडे रहे ॥ ७१ ॥

तं च दृष्ट्वा क्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम् ।
विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमांश्चाभवत्तदा ॥ ७२ ॥

तब आचार्य द्रोणने अर्जुनको काममें उद्योगी देखकर सब शिष्योंसे उसको श्रेष्ठ समझा और उसपर बडे प्रसन्न हुए ॥ ७२ ॥

स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः परिकल्पितः ।
ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घां त्यक्त्वा महात्मनः ॥ ७३ ॥

वह घडियाल महात्मा द्रोणकी जांघको छोडकर पार्थके बाणोंसे टुकडे टुकडे होकर परलोकको सिधारा ॥ ७३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम् ।
गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम् ॥ ७४ ॥

तब भरद्वाजपुत्र द्रोण महात्मा और महारथी अर्जुनसे बोले– हे महाभुज ! ब्रह्मशिर नामक यह अति दुर्द्धर्ष श्रेष्ठ अस्त्र तुमको प्रयोग और उपसंहार सहित देता हूं, इसे लो ॥ ७४ ॥

न च ते मानुषेष्वेतत्प्रयोक्तव्यं कथंचन ।
जगद्विनिर्दहेदेतदल्पतेजसि पातितम् ॥ ७५ ॥

मनुष्यों पर कभी भी इसका प्रयोग मत करना, क्योंकि यह स्वल्पतेजस्वी मानवपर चलाये जानेसे जगन्मण्डलको भी जला देगा ॥ ७५ ॥

असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते ।
तद्धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचो मम ॥ ७६ ॥

हे तात ! तीनों लोकोंमें यह अस्त्र असाधारण कहा जाता है; अतः तुम इसे यत्नसे सुरक्षित रखो और मेरे इस वचनको सुनो ॥ ७६ ॥

बाधेतामानुषः शत्रुर्यदा त्वां वीर कश्चन ।
तद्वधाय प्रयुञ्जीथास्तदास्त्रमिदमाहवे ॥ ७७ ॥

हे वीर ! यदि कभी मनुष्यके सिवा कोई और शत्रु तुमसे युद्ध करे, तो युद्धस्थलमें उसका वध करनेके लिये यह अस्त्र चलाना ॥ ७७ ॥

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य बीभत्सुः स कृताञ्जलिः ।
जग्राह परमास्त्रं तदाह चैनं पुनर्गुरुः ।
भविता त्वत्समो नान्यः पुमाँल्लोके धनुर्धरः ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ समाप्तं संभवपर्व ॥ ४४८० ॥

बीभत्सुने दोनों हाथ जोडके " ऐसा ही होगा " कहकर उस बातको मानकर उस परमास्त्रको ले लिया । तब गुरुने फिर उनसे कहा, कि इस भूमण्डल भरमें कोई भी तुम्हारे समान धनुर्धारी नहीं होगा ॥ ७८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ संभवपर्व समाप्त ॥ ४४८० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२४ :

वैशम्पायन उवाच

कृतास्त्रान्धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्राजन्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ १ ॥
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः।
गाङ्गेयस्य च सांनिध्ये व्यासस्य विदुरस्य च ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन्! द्रोणाचार्य धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवोंको अस्त्रशिक्षामें दक्ष देखकर कृप, सोमदत्त, बाह्लीक, व्यास, विदुर और धीमान् भीष्मके सामने राजा धृतराष्ट्रसे बोले ॥ १–२ ॥

राजन्संप्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम।
ते दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव ॥ ३ ॥

हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ महाराज! आपके कुमारोंने विद्या पढ ली है, हे राजन्! अब यदि आपकी आज्ञा हो, तो वे अपनी शिक्षाका परिचय दें? ॥ ३ ॥

ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
भारद्वाज महत्कर्म कृतं ते द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

तब महाराज धृतराष्ट्र उनसे प्रसन्न चित्तवाले होकर बोले– हे ब्राह्मण कुलमें श्रेष्ठ भारद्वाज! आपने अति महान् कार्य किया है ॥ ४ ॥

यदा तु मन्यसे कालं यस्मिन्देशे यथा यथा।
तथा तथा विधानाय स्वयमाज्ञापयस्व माम् ॥ ५ ॥

आप अस्त्र परीक्षाके लिये जो समय और जो स्थान निश्चित करना चाहें अथवा जिस प्रकार भी उसकी व्यवस्था करना चाहें वैसा वैसा प्रबन्ध करनेकी आज्ञा मुझे दीजिये ॥ ५ ॥

स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात्पुरुषाणां सचक्षुषाम्।
अस्त्रहेतोः पराक्रान्तान्ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान् ॥ ६ ॥

जो लोग अस्त्र चलानेमें पराक्रमी मेरे इन पुत्रोंको देखेंगे, आज मुझे आंखोंके बिना, देखनेकी अक्षमता होनेके कारण उन लोगोंके सौभाग्यकी लालसा हो रही है ॥ ६ ॥

क्षत्तर्यद्गुरुराचार्यो ब्रवीति कुरु तत्तथा।
न हीदृशं प्रियं मन्ये भविता धर्मवत्सल ॥ ७ ॥

हे विदुर! पूजनीय आचार्य जैसा कहें, वह सब करो। हे धर्मप्रेमी! मैं समझता हूं, कि इससे बढकर प्रिय कार्य मेरे लिये और कोई नहीं होगा ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो राजानमामन्त्र्य विदुरानुगतो बहिः ।
भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम्
समामवृक्षां निर्गुल्मामुदक्प्रवणसंस्थिताम् ॥ ८ ॥

अनन्तर राजासे सम्भाषण करके विदुरके पीछे पीछे बाहर आनेपर भरद्वाजके पुत्र महाप्राज्ञ द्रोणने वृक्ष गुल्मादियोंसे रहित, जलके सोते-सहित समभूमि देखकर उसको मापा ॥ ८ ॥

तस्यां भूमौ बलिं चक्रे तिथौ नक्षत्रपूजिते ।
अवघुष्टं पुरे चापि तदर्थं वदतां वर ॥ ९ ॥

तब समाजके सब लोगोंको सूचनाके द्वारा बुलाये जानेपर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ आचार्यने अच्छे नक्षत्रयुक्त शुभ तिथिमें देवताके नामसे विधिपूर्वक उस स्थानपर बलि दी ॥ ९ ॥

रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि ।
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्तत्र च शिल्पिनः ।
राज्ञः सर्वायुधोपेतं स्त्रीणां चैव नरर्षभ ॥ १० ॥

हे नराधिप ! उनके द्वारा नियुक्त किये हुए शिल्पियोंने उस अखाडेमें राजाके और नारियोंके लिये शास्त्रानुसार अच्छे और सब प्रकारके अस्त्रोंसे सजे सजाये और लम्बे चौडे देखनेके घर बनाये ॥ १० ॥

मञ्चांश्च कारयामासुस्तत्र जानपदा जनाः ।
विपुलानुच्छ्रयोपेताञ्शिबिकाश्च महाधनाः ॥ ११ ॥

और नगरवासी धनियोंने भी वहां ऊंची और बडी बडी वेदियां तथा मचान बनवाये ॥ ११ ॥

तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा कृपं चाचार्यसत्तमम् ॥ १२ ॥

इसके बाद कुमारोंके विक्रम दिखानेके लिए निश्चय किये हुए दिनके आनेपर राजा धृतराष्ट्र मन्त्रियोंके साथ और भीष्म तथा आचार्यश्रेष्ठ कृपको आगे करके चले ॥ १२ ॥

मुक्ताजालपरिक्षिप्तं वैडूर्यमणिभूषितम् ।
शातकुम्भमयं दिव्यं प्रेक्षागारमुपागमत् ॥ १३ ॥

और स्थानस्थानमें मोतियोंकी लडी लटकाये और वैडूर्य मणियोंसे सजे सजाये सुवर्णके घडोंसे युक्त सुन्दर दर्शनभवनमें गये ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतां वर।
स्त्रियश्च सर्वा या राज्ञः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः।
हर्षादारुरुहुर्मञ्चान्मेरुं देवस्त्रियो यथा ॥ १४ ॥

और हे विजयियोंमें श्रेष्ठ ! बडी भाग्यवती गान्धारी और कुन्ती भी दर्शन-गृहमें गयीं। दूसरी राजरानियां दासियोंके साथ अपूर्व वस्त्र पहिने आनन्दकी उमंगमें वेदियोंपर जा बैठीं, उस समय ऐसा जान पडने लगा, कि मानों देवोंकी स्त्रियां सुमेरुकी चोटीपर चढी हों ॥१४॥

ब्राह्मणक्षत्रियाद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद्द्रुतम्।
दर्शनेप्सु समभ्यागात्कुमाराणां कृतास्त्रताम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णके लोग कुमारोंकी अस्त्रविद्याकी योग्यता देखनेके लिये नगरसे निकल कर बडे वेगसे वहां देखनेकी बडी चाहसे एकत्र हुए ॥ १५ ॥

प्रवादितैश्च वादित्रैर्जनकौतूहलेन च।
महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत्तदा ॥ १६ ॥

तब सम्पूर्ण रूपसे बजते हुए बाजोंके शब्द और लोगोंके आश्चर्यपूरित कलरवसे समाज महासमुद्रके समान लहराने लगा ॥ १६ ॥

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ १७ ॥
रङ्गमध्यं तदाचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह।
नभो जलधरैर्हीनं साङ्गारक इवांशुमान् ॥ १८ ॥

इसके बाद सफेद वस्त्र, सफेद यज्ञोपवीत, सफेद केश, सफेद दाढी, सफेद माला और चंदन श्वेत होनेसे शोभायमान, तेजस्वी आचार्य द्रोण अपने पुत्रके साथ रंगमंचपर आये। उस समय ऐसा जान पडा, कि मानो मङ्गल ग्रहके साथ प्रकाशमान चंद्रदेव बादलरहित आकाशमें उदय हो रहे हों ॥ १७-१८ ॥

स यथासमयं चक्रे बलिं बलवतां वरः।
ब्राह्मणांश्चात्र मन्त्रज्ञान्वाचयामास मङ्गलम् ॥ १९ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ आचार्यने उस स्थानमें उचित समयमें देवपूजन किया और मन्त्र जानने-वाले ब्राह्मणोंसे मङ्गलाचरण करवाया ॥ १९ ॥

अथ पुण्याहघोषस्य पुण्यस्य तदनन्तरम्।
विविशुर्विविधं गृह्य शस्त्रोपकरणं नराः ॥ २० ॥

अनन्तर पवित्र-पुण्य दिनकी कथाके बाद नियुक्त किये हुए लोग नाना अस्त्रों और उनके उपकरण ले लेकर अखाडेमें प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो बद्धतनुत्राणा बद्धकक्ष्या महाबलाः ।
बद्धतूणाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥ २१ ॥

तब कवच बांधकर, कमर कसकर, तरकश बांधकर, धनुष सहित भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ बलशाली कुमार ॥ २१ ॥

अनुज्येष्ठं च ते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥ २२ ॥

अपने बडे युधिष्ठिरको आगे करके वहां प्रविष्ट हुए, वे बडे छोटेके क्रमसे अति आश्चर्यकारक अस्त्रविद्याका प्रदर्शन करने लगे ॥ २२ ॥

केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे ।
मनुजा धृष्टमपरे वीक्षांचक्रुः सविस्मयाः ॥ २३ ॥

तब देखनेवालोंमें कोई तो बाणोंके गिरनेके भयसे सिर नीचे किये बैठे रहे और कोई कोई बिना भयके आश्चर्यसे देखने लगे ॥ २३ ॥

ते स्म लक्ष्याणि विविधुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितैः ।
विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम् ॥ २४ ॥

कुमारगण शीघ्र लेजानेवाले घोडोंपर नामाङ्कसे शोभायमान नाना बाणोंको शीघ्रतापूर्वक चलाके लक्ष्य वेधने लगे ॥ २४ ॥

तत्कुमारबलं तत्र गृहीतशरकार्मुकम् ।
गन्धर्वनगराकारं प्रेक्ष्य ते विस्मिताभवन् ॥ २५ ॥

तब देखनेवालोंने धनुषबाण लिये हुए कुमारोंकी गन्धर्व नगरके समान वह आश्चर्य लीला देखकर अचरज माना ॥ २५ ॥

सहसा चुक्रुशुस्तत्र नराः शतसहस्रशः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधु साध्विति भारत ॥ २६ ॥

हे भारत ! वहांके सैंकडों सहस्रों मनुष्य विस्मयसे प्रसन्न नेत्रवाले होकर एकाएक " साधु, साधु " कहकर चिल्ला उठे ॥ २६ ॥

कृत्वा धनुषि ते मार्गान्रथचर्यासु चासकृत् ।
गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलाः ॥ २७ ॥

महाबली कुमारगण शरासन और रथ चलानेमें, हाथीपर, घोडेपर चढने और मल्लयुद्धमें नाना कौशल बार बार दिखाकर ॥ २७ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः।
त्सरुमार्गान्यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु ॥ २८ ॥

अन्तमें ढाल और तलवार लेकर फिर युद्धकर निशानेके अनुसार नाना प्रकारसे अस्त्रोंका चलाना दिखा करके, अखाडेमें घूमने लगे ॥ २८ ॥

लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं दृढमुष्टिताम्।
ददृशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगे खड्गचर्मणाम् ॥ २९ ॥

दर्शकगण उन वीर कुमारोंके ढाल और तलवारके प्रयोगमें तेजस्विता, कौशल, धीरज, मूठोंकी दृढता और अपूर्व शोभा देखने लगे ॥ २९ ॥

अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ।
अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाचलौ ॥ ३० ॥

इसके बाद सदाके अहङ्कारी सुयोधन और वृकोदर भीम गदा हाथमें लेकर एक ही चोटीवाले पहाडोंके समान अखाडेमें उतरे! ॥ ३० ॥

बद्धकक्षौ महाबाहू पौरुषे पर्यवस्थितौ।
बृंहन्तौ वाशिताहेतोः समदाविव कुञ्जरौ ॥ ३१ ॥

एक हाथिनीके लोभसे दो उन्मत्त हाथी जिस प्रकार चिल्लाते रहते हैं उसीके समान बडाई चाहनेवाले वे दो महाभुज वीर कमर कसकर अपना पौरुष दिखाने लग गए ॥ ३१ ॥

तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ।
चेरतुर्निर्मलगदौ समदाविव गोवृषौ ॥ ३२ ॥

चमचमाती गदाओंको लिये हुए और मदमत्त बैलोंके समान महाबली सुयोधन और भीम दाहिनी और बांयी बाजूके अनुसार गोलाकार होकर अखाडेमें घूमने लगे ॥ ३२ ॥

विदुरो धृतराष्ट्राय गान्धार्यै पाण्डवारणिः।
न्यवेदयेतां तत्सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ ४५१३ ॥

तब विदुरने धृतराष्ट्रसे और कुन्तीने गान्धारीको कुमारोंसे किये जाते हुए उन सब वृत्तान्तोंको कह सुनाया ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥ ४५१३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२५ :

वैशम्पायन उवाच

कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे ।
पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाभवज्जनः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– कुरुराज दुर्योधन और बलशालियोंमें श्रेष्ठ भीमके अखाडेमें उतरने पर देखनेवाले पक्षपातयुक्त स्नेहके कारण दो दलोंमें बंट गये ॥ १ ॥

हा वीर कुरुराजेति हा भीमेति च नर्दताम् ।
पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः ॥ २ ॥

कोई कोई तो कहने लगे, कि कुरुराज कैसे अच्छे वीर हैं। और दूसरे कहने लगे, कि भीम कैसे अच्छे वीर हैं ! चारों ओरसे पुरुषोंका इसी बातका बडा भारी कोलाहल मच गया ॥२॥

ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान् ।
भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ३ ॥

उसके बाद बुद्धिमान् भारद्वाज द्रोण क्षुब्ध हुए हुए समुद्रकी भांति उस अखाडेको देखकर प्रिय पुत्र अश्वत्थामासे बोले ॥ ३ ॥

वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि ।
मा भूद्रङ्गप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥ ४ ॥

यह भीम और दुर्योधन दोनों बडे वीर्यवान् और युद्धविद्यामें तेज हैं; अतः इनको दूर दूर कर दो । ताकि भीम और दुर्योधनसे उत्पन्न क्रोधके कारण यह रंगमंच क्रोधका स्थान न बन जाए ॥ ४ ॥

ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ ।
युगान्तानिलसंक्षुब्धौ महावेगाविवार्णवौ ॥ ५ ॥

तब प्रलयकालकी हवाके समान क्षुब्ध हुए हुए, महान् वेगवाले समुद्रके समान उन्मत्त, गदा उठाये हुए भीम और सुयोधन गुरुकुमारसे रोक दिए गये ॥ ५ ॥

ततो रङ्गाङ्गणगतो द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
निवार्य वादित्रगणं महामेघसमस्वनम् ॥ ६ ॥

तब आचार्य द्रोण अखाडेमें जाकर घने बादलकी गडगडाहटके समान बाजोंकी ध्वनिको रोककर यह वाक्य बोले ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यो मे पुत्रात्प्रियतरः सर्वास्त्रविदुषां वरः।
ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥ ७ ॥

जो उपेन्द्रके सदृश सभी अस्त्रविद्याको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ और मेरे पुत्रसे भी अधिक प्यारे इन्द्रके पुत्र हैं, वे पृथापुत्र अर्जुन अब अपनी कुशलता दिखावें ॥ ७ ॥

आचार्यवचनेनाथ कृतस्वस्त्ययनो युवा।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पूर्णतूणः सकार्मुकः ॥ ८ ॥
काञ्चनं कवचं बिभ्रत्प्रत्यदृश्यत फल्गुनः।
सार्कः सेन्द्रायुधतडित्ससंध्य इव तोयदः ॥ ९ ॥

तब आचार्यकी आज्ञासे तरुण अवस्थाके अर्जुन मङ्गलाचरण करनेके पश्चात् डोरीकी चोट रोकनेवाली चमडेकी पट्टी और उंगली रक्षक कसके बाणसे पूरित तूण, धनुष लेकर और सोनेके कवच पहनकर मानों सूर्यप्रकाशके समान जलते हुए और इन्द्रधनुष तथा बिजलीकी चमककी भांति सुहाते हुए तथा सन्ध्याकालके बादलके सदृश दीख पडे ॥ ८–९ ॥

ततः सर्वस्य रङ्गस्य समुत्पिञ्जोऽभवन्महान्।
प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशङ्खानि समन्ततः ॥ १० ॥

तब अखाडेके चारों ओरसे आनन्दकी ध्वनि गूंजने लगी और चारों ओर शंख तथा अनेक बाजे बजने लगे ॥ १० ॥

एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष पाण्डवमध्यमः।
एष पुत्रो महेन्द्रस्य कुरूणामेष रक्षिता ॥ ११ ॥

यह श्रीमान् पुरुष कुन्तीके पुत्र हैं, यह मंझले पाण्डव हैं, ये ही महेन्द्रके पुत्र हैं, यही कुरुओंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ ११ ॥

एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतां वरः।
एष शीलवतां चापि शीलज्ञाननिधिः परः ॥ १२ ॥

यही अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, यही धार्मिकोंमें प्रधान हैं, यही सुशीलोंकी शीलता और ज्ञानके मानों दूसरे समुद्र हैं ॥ १२ ॥

इत्येवमतुला वाचः शृण्वन्त्याः प्रेक्षकेरिताः।
कुन्त्याः प्रस्नवसंमिश्रैरस्त्रैः क्लिन्नमुरोऽभवत् ॥ १३ ॥

दर्शकोंके द्वारा कही जाती हुई ऐसी अनेक बातें सुनकर कुन्तीकी छाती स्तनदुग्ध तथा आंसूसे भीग गयी ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेन शब्देन महता पूर्णश्रुतिरथाब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानसः ॥ १४ ॥
क्षत्तः क्षुब्धार्णवनिभः किमेष सुमहास्वनः ।
सहसैवोत्थितो रङ्गे भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥ १५ ॥

उन सब बडे भारी शब्दोंसे नरोंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्रके कानोंके भर जानेसे उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर विदुरसे पूछा, हे क्षत्त ! अखाडेमें हिलोडे हुए समुद्रकी ध्वनिकी भांति मानों आकाश-को फाडता हुआ सा अचानक ही उठा हुआ यह शोर क्या है ? ॥ १४-१५ ॥

विदुर उवाच

एष पार्थो महाराज फल्गुनः पाण्डुनन्दनः ।
अवतीर्णः सकवचस्तत्रैष सुमहास्वनः ॥ १६ ॥

विदुर बोले– महाराज ! यह पाण्डुनन्दन पार्थ अर्जुन कवच पहनकर अखाडेमें उतरे हैं, उसके कारण ऐसा घोर कोलाहल मच रहा है ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रक्षितोऽस्मि महामते ।
पृथारणिसमुद्भूतैस्त्रिभिः पाण्डववह्निभिः ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे महामते ! कुन्तीरूपी अरणिसे उपजे हुए पाण्डवरूपी तीन अग्नियोंसे मैं रक्षित हो गया हूँ, इसीलिए मैं धन्य हूँ और अनुग्रहीत भी हूँ ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्समुदिते रङ्गे कथंचित्पर्यवस्थिते ।
दर्शयामास बीभत्सुराचार्यादस्त्रलाघवम् ॥ १८ ॥

वैशम्पायन बोले– अखाडेके उन हर्षयुक्त लोगोंके उत्साहित होकर कुछ शान्त हो जानेपर अर्जुन आचार्यसे सीखे गए अस्त्र चलानेकी दक्षता दिखाने लगे ॥ १८ ॥

आग्नेयेनासृजद्वह्निं वारुणेनासृजत्पयः ।
वायव्येनासृजद्वायुं पार्जन्येनासृजद्घनान् ॥ १९ ॥

उन्होंने अग्न्यस्त्रसे अग्नि उत्पन्न की, वारुणास्त्रसे जल प्रकट किया, वायव्यास्त्रसे वायु पैदा किया और पर्जन्यास्त्रसे मेघोंको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥

भौमेन प्राविशद्भूमिं पार्वतेनासृजद्गिरीन् ।
अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ २० ॥

तथा भूम्यस्त्रसे भूमिमें प्रवेश किया, पर्वतास्त्रसे पर्वत प्रकट किए और अन्तर्द्धान अस्त्रसे फिर अन्तर्हित हो गये ॥ २० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्षणात्प्रांशुः क्षणाद्ध्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः।
क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावापतन्महीम् ॥ २१ ॥

वह क्षणभरमें दीर्घ, क्षणभरमें ह्रस्व, क्षणभरमें रथकी धुराके निकट स्थित, फिर, क्षणभरमें रथके भीतर और क्षणभरमें धरती पर उतर गए ॥ २१ ॥

सुकुमारं च सूक्ष्मं च गुरुं चापि गुरुप्रियः।
सौष्ठवेनाभिसंयुक्तः सोऽविध्यद्विविधैः शरैः ॥ २२ ॥

गुरुके प्रिय तथा कुशलतासे युक्त अर्जुन बाणोंसे फूल आदि कोमल वस्तु, गुञ्जा और बाणाग्र आदि सूक्ष्म वस्तु और धातु पत्थर आदि भारी वस्तु कौशलसे विद्ध करने लगे ॥ २२ ॥

भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्।
पञ्च बाणानसंसक्तान्स मुमोचैकबाणवत् ॥ २३ ॥

उन्होंने चलते हुए लोहेके बने सुअरके मुखमें मानों एक बाणकी भांति पांच बाणोंको जोड़कर एक ही कालमें उनको चलाया ॥ २३ ॥

गव्ये विषाणकोशे च चले रज्ज्ववलम्बिते।
निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम् ॥ २४ ॥

उन महावीरने रस्सी पर लटके और हिलते हुए गौके सींगके कोषको इक्कीस बाण चला कर विद्ध किया ॥ २४ ॥

इत्येवमादि सुमहत्खड्गे धनुषि चाभवत्।
गदायां शस्त्रकुशलो दर्शनानि व्यदर्शयत् ॥ २५ ॥

हे अनघ ! शस्त्रमें पण्डित कुन्तीपुत्र इस प्रकारसे धनुर्विद्यामें, असि चलानेमें और गदा फेरनेमें नाना योग्यता दिखाने लगे ॥ २५ ॥

ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन्कर्मणि भारत।
मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निस्वने ॥ २६ ॥
द्वारदेशात्समुद्भूतो माहात्म्यबलसूचकः।
वज्रनिष्पेषसदृशः शुश्रुवे भुजनिस्वनः ॥ २७ ॥

हे भारत ! वह कृत्रिम युद्ध समाप्त होनेपर था और लोगोंका कोलाहल और बाजोंकी ध्वनि घट गयी थी, ऐसे समयमें द्वारदेशसे उठती हुई शूरता और वीरतासूचक वज्रके गर्जनके समान एक ललकार सुनाई दी ॥ २६–२७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दीर्यन्ते किं नु गिरयः किं स्विद् भूमिर्विदीर्यते ।
किं स्विदापूर्यते व्योम जलभारघनैर्घनैः ॥ २८ ॥
रङ्गस्यैवं मतिरभूत्क्षणेन वसुधाधिप ।
द्वारं चाभिमुखाः सर्वे बभूवुः प्रेक्षकास्तदा ॥ २९ ॥

यह क्या है ! कहीं पहाड तो नहीं टूट रहे हैं ? या धरती तो नहीं फटी जा रही है ! अथवा घने जलभरे बादल समूह तो आकाशमें नहीं छा रहे हैं ! हे राजन् ! इस प्रकार अखाडेमें बैठनेवाले लोग सोचने लगे और सब दर्शक इसी सन्देहसे द्वारकी ओर मुंह फेरकर देखने लगे ॥ २८–२९ ॥

पञ्चभिर्भ्रातृभिः पार्थैर्द्रोणः परिवृतो बभौ ।
पञ्चतारेण संयुक्तः सावित्रेणेव चन्द्रमाः ॥ ३० ॥

तब पञ्च तारासे संयुक्त हस्त नक्षत्रयुक्त चंद्रमाकी भांति आचार्य द्रोण युधिष्ठिर आदि पांच भाईयोंके बीचमें खडे होकर सुहाने लगे ॥ ३० ॥

अश्वत्थाम्ना च सहितं भ्रातॄणां शतमूर्जितम् ।
दुर्योधनममित्रघ्नमुत्थितं पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

शत्रुनाशी दुर्योधनके उठ खडे होनेपर उनके उत्साही सौ भाई अश्वत्थामाके साथ उनको घेर कर खडे हो गए ॥ ३१ ॥

स तैस्तदा भ्रातृभिरुद्यतायुधैर्वृतो गदापाणिरवस्थितैः स्थितः ।
बभौ यथा दानवसंक्षये पुरा पुरन्दरो देवगणैः समावृतः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ४५४५ ॥

पूर्वकालमें दानवोंको नष्ट करनेके लिये जिस प्रकार देवराज देवोंसे घेरे गये थे, वैसे ही उस कालमें गदाधारी दुर्योधन अस्त्र शस्त्रोंसे सुशोभित भाइयोंसे घेरे जाकर शोभा पाने लगे ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥ ४५४५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२६ :

वैशम्पायन उवाच

दत्तेऽवकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः।
विवेश रङ्गं विस्तीर्णं कर्णः परपुरंजयः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद आश्चर्यसे फटी हुई आंखोंवाले दर्शकोंके प्रवेशके लिए रास्ता देनेपर शत्रुओंके नगरको जीतनेवाले कर्ण बडे भारी अखाडेमें प्रविष्ट हुए ॥ १ ॥

सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्द्योतिताननः।
सधनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः ॥ २ ॥

वह जन्मके साथमें मिले हुए कवचको पहिने हुए थे; उनका मुख स्वाभाविक कुण्डलोंसे तेजस्वी हो रहा था, वे धनुष और तलवार बांधे हुए थे तथा पैरोंसे चलते हुए पर्वतके समान प्रतीत होते थे ॥ २ ॥

कन्यागर्भः पृथुयशाः पृथायाः पृथुलोचनः।
तीक्ष्णांशोर्भास्करस्यांशः कर्णोऽरिगणसूदनः ॥ ३ ॥

उन्होंने बडे प्रकाशयुक्त भास्करके अंशसे पृथाके गर्भसे कन्याकालमें जन्म लिया था; वे बडी बडी आंखोंवाले तथा महायशस्वी थे। वे कर्ण शत्रुदलोंके विनाशक थे ॥ ३ ॥

सिंहर्षभगजेन्द्राणां तुल्यवीर्यपराक्रमः।
दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपमः ॥ ४ ॥

उनका वीर्य और पराक्रम सिंह, बैल और गजेन्द्रके समान थे; उनकी दीप्ति सूर्यके समान, क्रान्ति चन्द्रमाकी भांति और तेज अग्निके सदृश था ॥ ४ ॥

प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा।
असंख्येयगुणः श्रीमान्भास्करस्यात्मसंभवः ॥ ५ ॥

वे सुवर्णके ताडके समान लम्बे थे, वे सूर्यके कुमार अनेकों गुणोंसे युक्त सिंहके सदृश शरीरधारी और युवा थे ॥ ५ ॥

स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम्।
प्रणामं द्रोणकृपयोर्नात्यादृतमिवाकरोत् ॥ ६ ॥

श्रीमान् महाभुज कर्णने अखाडेमें घुस करके चारों ओर आंखें दौडाकर आचार्य द्रोण और कृपको बहुत आदर प्रदर्शित न करते हुए प्रणाम किया ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः ।
कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ७ ॥

तब अखाडे भरके सब लोग यह जाननेके लिये, कि यह कौन है, चुप हो और टकटकी लगाकर अप्रसन्न और आश्चर्ययुक्त हुए ॥ ७ ॥

सोऽब्रवीन्मेघधीरेण स्वरेण वदतां वरः ।
भ्राता भ्रातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासनिम् ॥ ८ ॥

सूर्यके पुत्र सुन्दर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भ्राता कर्णने इन्द्रके पुत्र अर्जुनको अपना सगा भाई न जानकर बादलके सदृश गंभीर शब्दसे उनसे कहा ॥ ८ ॥

पार्थ यत्ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः ।
करिष्ये पश्यतां नृणां मात्मना विस्मयं गमः ॥ ९ ॥

हे पार्थ ! तुमने जो कार्य किया है, मैं देखनेवालोंके सामने उससे भी विशेष कार्य करके दिखा सकता हूँ, अतः तुम अपने कामको आश्चर्यकारक मत समझो ॥ ९ ॥

असमाप्ते ततस्तस्य वचने वदतां वर ।
यन्त्रोत्क्षिप्त इव क्षिप्रमुत्तस्थौ सर्वतो जनः ॥ १० ॥

हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ राजन् ! सूर्यके पुत्र कर्णकी इस बातके पूरी होते न होते सब मानो यंत्रसे फेंके गयेकी भांति उसी समय अपने अपने स्थानोंपर उठकर खडे हो गए ॥ १० ॥

प्रीतिश्च पुरुषव्याघ्र दुर्योधनमथास्पृशत् ।
ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेनान्वविशच्च ह ॥ ११ ॥

हे मानवश्रेष्ठ ! तब दुर्योधनके हृदयमें प्रीति उत्पन्न हुई और लज्जा और क्रोध बीभत्सु अर्जुनके हृदयमें प्रविष्ट हो गए अर्थात् अर्जुनका चित्त क्रोध और लज्जासे अधीर हो गया ॥ ११ ॥

ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा ।
यत्कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ॥ १२ ॥

तब पार्थने उस अखाडेमें जो जो कर्म किया था, सदा युद्ध चाहनेवाले महाबली कर्णने द्रोणकी आज्ञासे वह सब कर दिखाया ॥ १२ ॥

अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत ।
कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

हे भारत ! तब दुर्योधन भाईयोंके साथ कर्णको गले लगाकर प्रसन्न होकर यह बात बोले ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद।
अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम् ॥ १४ ॥

हे महाभुज ! आपका स्वागत हो, हे मान देनेवाले ! मेरे सौभाग्यसे ही आप आये हैं; अब मैं आपके अधीन हूं, आप मुझे और इस कुरुराज्यको मनमाना भोगिये ॥ १४ ॥

कर्ण उवाच

कृतं सर्वेण मेऽन्येन सखित्वं च त्वया वृणे।
द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छामि भारत ॥ १५ ॥

कर्ण बोले– हे भारत ! मुझे और किसी बातकी आवश्यकता नहीं है, मैं तो तुमसे केवल मित्रताका प्रार्थी हूं, और पार्थसे एकबार द्वन्द्वयुद्ध करना चाहता हूं ॥ १५ ॥

दुर्योधन उवाच

भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद्भव।
दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिन्दम ॥ १६ ॥

दुर्योधन बोले– हे शत्रुनाशन्! आप मेरे साथ नाना भोगकी वस्तु भोगते रहिये और बन्धुओंके हित करनेवाले होइए तथा सभी शत्रुओंके सिरपर अपने पैर रखिए अर्थात् सभी शत्रुओंपर शासन कीजिए ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः क्षिप्तमिवात्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत।
कर्णं भ्रातृसमूहस्य मध्येऽचलमिव स्थितम् ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर पार्थ अपनेको अपमानितसा जानकर भाइयोंमें पर्वतके समान खडे हुए कर्णसे बोले ॥ १७ ॥

अनाहूतोपसृप्तानामनाहूतोपजल्पिनाम्।
ये लोकास्तान्हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥ १८ ॥

हे कर्ण ! जो बिना बुलाये निकट आते हैं और न बुलाये जाकर बात करते हैं, उनकी जो गति होती है, मुझसे प्राण खोकर तुम उसको प्राप्त करोगे ॥ १८ ॥

कर्ण उवाच

रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फल्गुन।
वीर्यश्रेष्ठाश्च राजन्या बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥ १९ ॥

कर्ण बोले– अर्जुन ! यह अखाडा सबके लिये समान है, अतः मेरे आनेसे तुम्हारी क्या हानि हुई ? क्षत्रिय लोग बलहीसे प्रधान होते हैं, अतः क्षत्रियोंका धर्म बलहीकी शरण लेता है ॥ १९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

किं क्षेपैर्दुर्बलाश्वासैः शरैः कथय भारत ।
गुरोः समक्षं यावत्ते हराम्यद्य शिरः शरैः ॥ २० ॥

हे भारत ! दुर्बलकी चेष्टाके समान लाञ्छन लगानेकी क्या आवश्यकता है ? जबतक इन गुरुके सम्मुख तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारा सिर नहीं काटता हूं, तबतक जो कुछ कहना हो, बाणहीसे प्रगट करो ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः ।
भ्रातृभिस्त्वरयाश्लिष्टो रणायोपजगाम तम् ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर शत्रुके नगरको जीतनेवाले धनञ्जय द्रोणाचार्यकी आज्ञा पाकर और भाइयोंके गलेसे लगकर युद्धके लिए कर्णके सामने गये ॥ २१ ॥

ततो दुर्योधनेनापि सभ्रात्रा समरोद्यतः ।
परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ २२ ॥

इधर कर्ण दुर्योधन और उनके भाइयोंसे मिलकर बाणसहित शरासन लेकरके युद्धके लिये तैय्यार हो गए ॥ २२ ॥

ततः सविद्युत्स्तनितैः सेन्द्रायुधपुरोजवैः ।
आवृतं गगनं मेघैर्बलाकापङ्क्तिहासिभिः ॥ २३ ॥

इससे इन्द्रधनुसे सोहते हुए, बिजली तथा गर्जनसे भरे और हंसते हुए बगुलोंके समान बादलदलसे आकाशमण्डल ढक गया ॥ २३ ॥

ततः स्नेहाद्धरिहयं दृष्ट्वा रङ्गावलोकिनम् ।
भास्करोऽप्यनयन्नाशं समीपोपगतान्घनान् ॥ २४ ॥

अनन्तर इन्द्रको अपने पुत्र अर्जुनपर स्नेहवश अखाडेकी ओर ताकते देखकर सूर्यने अपने पुत्र कर्णके निकटके जलधरनेवाले बादलोंको नष्ट किया ॥ २४ ॥

मेघच्छायोपगूढस्तु ततोऽदृश्यत पाण्डवः ।
सूर्यातपपरिक्षिप्तः कर्णोऽपि समदृश्यत ॥ २५ ॥

तब अर्जुन मेघकी छांहसे ढके हुए दिखाई दिए और कर्ण सूर्यकी किरणोंसे घिरे दीख पडने लगे ॥ २५ ॥

धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः ।
भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन् ॥ २६ ॥

जिधर कर्ण थे, उधर धृतराष्ट्रके पुत्र जाकर खडे हो गए और जिधर अर्जुन थे, उधर द्रोण, कृप और भीष्म खडे हो गए ॥ २६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्विधा रङ्गः समभवत्स्त्रीणां द्वैधमजायत ।
कुन्तिभोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगाम ह ॥ २७ ॥

अखाडा दो भागोंमें बंट गया और स्त्रियां भी दो दलमें बंट गयीं । कुन्तीभोजकन्या पृथा अपने पुत्र कर्ण और अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त जानकर मूर्च्छित हो गई ॥ २७ ॥

तां तथा मोहसंपन्नां विदुरः सर्वधर्मवित् ।
कुन्तीमाश्वासयामास प्रोक्ष्याद्भिश्चन्दनोक्षितैः ॥ २८ ॥

सर्वधर्मज्ञ विदुरने दासियोंकी सहायतासे चन्दनके जलसे उस मूर्च्छित हुई कुन्तीको चेतन-युक्त किया ॥ २८ ॥

ततः प्रत्यागतप्राणा तावुभावपि दंशितौ ।
पुत्रौ दृष्ट्वा सुसंतप्ता नान्वपद्यत किंचन ॥ २९ ॥

कुन्ती चेतन पाकर युद्धके लिये सजे हुए दोनों पुत्रोंको देखकर भयभीत बनी रही, कुछ कर नहीं सकी ॥ २९ ॥

तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित् ॥ ३० ॥

इसके बाद सब धर्म जाननेवाले विशेष द्वन्द्वयुद्धकी रीतिको भले प्रकार जाननेवाले शारद्वत कृप उन दोनों वीरोंको बडे बडे शरासन उठाते देखकर कर्णसे बोले ॥ ३० ॥

अयं पृथायास्तनयः कनीयान्पाण्डुनन्दनः ।
कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति ॥ ३१ ॥

यह अर्जुन कुरुवंशी राजा पाण्डके पुत्र हैं, इन्होंने कुन्तीके गर्भसे जन्म लिया है, यह तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करेंगे ॥ ३१ ॥

त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् ।
कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलवर्धनः ।
ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा न वा ॥ ३२ ॥

हे महाभुज ! तुम भी जिस राजवंशको बढानेवाले हो, उस कुलका वृत्तान्त और पिता माताके नाम कहो, उसके जान लेनेसे पार्थ यह निश्चय करेंगे, कि तुमसे लडेंगे वा नहीं ॥ ३२ ॥

एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम् ।
बभौ वर्षाम्बुभिः क्लिन्नं पद्ममागलितं यथा ॥ ३३ ॥

आचार्य कृपके इसप्रकार कहनेपर कर्णका मुंह लज्जासे नीचा होकर वर्षाजलसे धोये हुए पद्मके समान मलिन हो गया ॥ ३३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुर्योधन उवाच

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये ।
तत्कुलीनश्च शूरश्च सेनां यश्च प्रकर्षति ॥ ३४ ॥

तब दुर्योधन बोले– हे आचार्य ! शास्त्रोंमें यह निश्चित किया गया है, कि राजकुलमें जन्म लिये हुए, शूर और सेनापति यह तीन भूपाल हो सकते हैं ॥ ३४ ॥

यद्ययं फल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति ।
तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥ ३५ ॥

अतः यदि अर्जुन भूपालके सिवा किसी अन्यसे न लडना चाहें, तो मैं अभी इन कर्णको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त कर देता हूं ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्तस्मिन्क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः ।
काञ्चनैः काञ्चने पीठे मन्त्रविद्भिर्महारथः ।
अभिषिक्तोऽङ्गराज्ये स श्रिया युक्तो महाबलः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर महाबलवान् महारथी श्रीमान् कर्ण उसी क्षण सुवर्ण पीठपर स्थित होकर मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा लाज, फूल और सुवर्ण घटसे अङ्गराज्यमें अभिषिक्त हुए ॥ ३६ ॥

सच्छत्रबालव्यजनो जयशब्दान्तरेण च ।
उवाच कौरवं राजा राजानं तं वृषस्तदा ॥ ३७ ॥

महाराज ! अनन्तर कर्ण जय जयकारके साथ अच्छे छत्र और चंवरयुक्त होकर कुरुनन्दन दुर्योधनसे बोले ॥ ३७ ॥

अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददानि ते ।
प्रब्रूहि राजशार्दूल कर्ता ह्यस्मि तथा नृप ।
अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः ॥ ३८ ॥

हे राजाओंमें व्याघ्र समान महाराज ! आपने जो मुझको राज्य दिया, कहिये, मैं आपको इसके योग्य क्या दूं ? आप जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही करनेको तैय्यार हूं । सुयोधन बोले, मैं आपसे अच्छी मित्रताकी प्रार्थना करता हूं ॥ ३८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्तस्ततः कर्णस्तथेति प्रत्यभाषत।
हर्षाच्चोभौ समाश्लिष्य परां मुदमवापतुः ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ४५८४ ॥

ऐसा कहे जाकर कर्णने प्रतिज्ञाके साथ उसको मान लिया और दोनों हर्षसे एक दूसरेको गले लगाकर बडे प्रसन्न हुए ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥ ४५८४ ॥

: १२७ :

वैशम्पायन उवाच

ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः।
विवेशाधिरथो रङ्गं यष्टिप्राणो ह्ययन्निव ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर कांपता, पसीनेसे नहाया, लाठी थामकर लटकते हुए चादरको पहनकर बूढा अधिरथ कर्णको बुलाता हुआ अखाडेमें आ पहुंचा ॥ १ ॥

तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरवयन्त्रितः।
कर्णोऽभिषेकार्द्रशिराः शिरसा समवन्दत ॥ २ ॥

कर्णने उसको देखते ही पितृगौरव वश धनुषबाणको छोडकर अभिषेकके जलसे भीगे हुए सिरसे प्रणाम किया ॥ २ ॥

ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससंभ्रमः।
पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद्रथसारथिः ॥ ३ ॥

रथके सारथि अधिरथने सम्मानके साथ वस्त्रके अन्त भागसे अपने पावोंको ढांप कर राज्य पानेसे सफल मनोरथ कर्णको पुत्र कहके पुकारा ॥ ३ ॥

परिष्वज्य च तस्याथ मूर्धानं स्नेहविक्लवः।
अङ्गराज्याभिषेकार्द्रमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥ ४ ॥

और स्नेहसे व्याकुल होकर गले लगाकरके अङ्गराज्यमें अभिषिक्त कर्णके भीगे सिरको आनन्दके आंसूसे फिर भिगोया ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति निश्चित्य पाण्डवः।
भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥ ५ ॥

उसको देखकरके कर्णको सूतका पुत्र जानकर पाण्डुके पुत्र भीम मानो हंसीसे यह बात बोले ॥ ५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम् ।
कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥ ६ ॥

हे सूतपुत्र ! तुम रणभूमिमें अर्जुनसे मारे जानेके योग्य नहीं हो; तुम शीघ्र घोडा चलानेके निमित्त अपने कुलके योग्य लगामको पकडो ॥ ६ ॥

अङ्गराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम ।
श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥ ७ ॥

रे नराधम ! कुत्ता जैसे यज्ञीय अग्निके सामने स्थित घृतको पीनेके योग्य नहीं है, वैसे ही तू भी अङ्गराज्यको भोगनेके योग्य नहीं है ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्ततः कर्णः किंचित्प्रस्फुरिताधरः ।
गगनस्थं विनिःश्वस्य दिवाकरमुदैक्षत ॥ ८ ॥

भीमकी इस बातको सुनकर कर्णके होंठ कांपने लगे। उन्होंने ऊंची सांस लेकर आकाशमें स्थित दिननाथको देखा ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः ।
भ्रातृपद्मवनात्तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः ॥ ९ ॥

अनन्तर महाबली दुर्योधन क्रोधित होकर मदसे उन्मत्त हस्तीके समान भ्रातृवर्गरूपी पद्म-वनसे उसीक्षण कूद कर बाहर आ गए ॥ ९ ॥

सोऽब्रवीद्भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितम् ।
वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥ १० ॥

और निकट खडे हुए, भीमकर्म करनेवाले भीमसेनसे बोले, कि वृकोदर ! तुमको ऐसा कहना न चाहिये था ॥ १० ॥

क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ।
शूराणां च नदीनां च प्रभवा दुर्विदाः किल ॥ ११ ॥

क्षत्रियोंका बल ही श्रेष्ठ है, क्षत्रियसे लडना चाहिये। ऐसा कहा है, कि नदी और वीरोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त जानना बडा कठिन होता है ॥ ११ ॥

सलिलादुत्थितो वह्निर्येन व्याप्तं चराचरम् ।
दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम् ॥ १२ ॥

जिसने इस चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है, वह अग्नि जलसे उत्पन्न हुई और जिस वज्रसे दानव-वंश नष्ट हुआ है, वह वज्र मुनिवर दधीचिकी हड्डीसे बना है ॥ १२ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आग्नेयः कृत्तिकापुत्रो रौद्रो गाङ्गेय इत्यपि।
श्रूयते भगवान्देवः सर्वगुह्यमयो गुहः ॥ १३ ॥

जो भगवान् देवकार्तिक हैं, उनकी उत्पत्ति भी जानने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अग्निके पुत्र, कृत्तिकाके पुत्र, रुद्रके पुत्र और गङ्गाके पुत्रके नामसे भी प्रसिद्ध होते हैं ॥ १३ ॥

क्षत्रियाभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च विश्रुताः।
आचार्यः कलशाज्जातः शरस्तम्बाद्गुरुः कृपः।
भवतां च यथा जन्म तदप्यागमितं नृपैः ॥ १४ ॥

फिर यह भी तुमने सुना होगा, कि जिन्होंने पहिले क्षत्रियोंकी स्त्रियोंसे जन्म लिया था, वे भी ब्राह्मण हुए हैं। आचार्य द्रोण यज्ञके कलसेसे उत्पन्न हुए थे और सरकण्डेसे गुरु कृप पैदा हुए, औरोंकी कथा कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम्हारा ही जन्म जिस प्रकारसे हुआ था, वह भी सब राजा जानते हैं ॥ १४ ॥

सकुण्डलं सकवचं दिव्यलक्षणलक्षितम्।
कथमादित्यसंकाशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ॥ १५ ॥

कुण्डल कवच सहित जन्म लिये हुए सर्व लक्षणयुक्त सूर्यवत् इस पुरुषव्याघ्रको कोई मृगी कैसे उत्पन्न कर सकती है ॥ १५ ॥

पृथिवीराज्यमर्होऽयं नाङ्गराज्यं नरेश्वरः।
अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्तिना ॥ १६ ॥

इन कर्णके भुजबल और आज्ञानुसारी मेरे विद्यमान रहते ये नरेश्वर केवल अंगराज्यके ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भूमण्डल भरके भी अधिकारी होने योग्य हैं ॥ १६ ॥

यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम्।
रथमारुह्य पद्भ्यां वा विनामयतु कार्मुकम् ॥ १७ ॥

पर यदि मेरा यह कार्य किसीको असह्य जान पडा हो, तो वह रथपर चढकर दोनों पांवोंके सहारे धनुष झुकावे ॥ १७ ॥

ततः सर्वस्य रङ्गस्य हाहाकारो महानभूत्।
साधुवादानुसंबद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत् ॥ १८ ॥

तब अखाडे भरमें साधुवादयुक्त बडा कोलाहल उठा, ऐसे समयमें दिननाथ सूर्य भी अस्ताचलको सिधारे ॥ १८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ततो दुर्योधनः कर्णमालम्ब्याथ करे नृप ।
दीपिकाग्निकृतालोकस्तस्माद्रङ्गाद्विनिर्ययौ ॥ १९ ॥

अनन्तर भूपाल दुर्योधन कर्णका हाथ पकड कर दीपकके उजालेमें उस अखाडेसे निकले ॥ १९ ॥

पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशां पते ।
भीष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥ २० ॥

पृथ्वीनाथ ! पाण्डवगण आचार्य द्रोण, कृप और भीष्मके साथ तब अपने अपने घरको चले गये ॥ २० ॥

अर्जुनेति जनः कश्चित्कश्चित्कर्णेति भारत ।
कश्चिद्दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥ २१ ॥

तब देखनेवालोंमें कोई अर्जुनकी, कोई कर्णकी तथा कोई दुर्योधनकी बात करता हुआ चला गया ॥ २१ ॥

कुन्त्याश्च प्रत्यभिज्ञाय दिव्यलक्षणसूचितम् ।
पुत्रमङ्गेश्वरं स्नेहाच्छन्ना प्रीतिरवर्धत ॥ २२ ॥

कुन्ती दिव्यलक्षणयुक्त पुत्रको पहिचानकर और उसको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त देखकर स्नेहके कारण गुप्तभावसे प्रसन्न हुई ॥ २२ ॥

दुर्योधनस्यापि तदा कर्णमासाद्य पार्थिव ।
भयमर्जुनसंजातं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ २३ ॥

हे पृथ्वीपते ! तब कर्णको पाकर दुर्योधनके हृदयसे अर्जुनके कारण पैदा हुआ हुआ भय जल्दी ही विलीन हो गया ॥ २३ ॥

स चापि वीरः कृतशस्त्रनिश्रमः परेण साम्नाभ्यवदत्सुयोधनम् ।
युधिष्ठिरस्याप्यभवत्तदा मतिर्न कर्णतुल्योऽस्ति धनुर्धरः क्षितौ ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ४६०८ ॥

शस्त्रविद्यामें परिश्रमी वीर कर्ण मीठी मीठी बातोंसे सुयोधनको प्रसन्न करने लगे और युधिष्ठिर भी समझ गए कि भूमण्डल भरमें कर्णके समान धनुष्यधारी दूसरा कोई नहीं है ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सत्ताइसवां अध्याय समाप्त ॥ १२७ ॥ ॥ ४६०८ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२८ :

वैशम्पायन उवाच

ततः शिष्यान्समानीय आचार्यार्थमचोदयत् ।
द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब एक दिन सभी शिष्योंको बुलवा लाकर गुरु दक्षिणाके योग्य वस्तुको लानेकी आज्ञा कर आचार्य द्रोण बोले ॥ १ ॥

पाञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात्परमदक्षिणा ॥ २ ॥

तुम लड करके पाञ्चालराज द्रुपदको पराजित कर मेरे पास ले आओ । तुम्हारा मङ्गल होवे, यह ही मेरे लिए सबसे श्रेष्ठ दक्षिणा है ॥ २ ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः ।
आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥ ३ ॥

शिष्यगण सब " अच्छा ऐसा ही करेंगे " यह कहकर गुरु दक्षिणाके लिये अस्त्र शस्त्र लेकर रथपर चढके गुरु द्रोणके साथ वेगसे चले ॥ ३ ॥

ततोऽभिजग्मुः पाञ्चालान्निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः ।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः ॥ ४ ॥

वे नरश्रेष्ठगण सब पाञ्चाल देशमें मारते पीटते हुए चले, और बडे तेजस्वी द्रुपदके नगरको नष्ट भ्रष्ट करते हुए चले ॥ ४ ॥

ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
उपाजग्मुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभाः ॥ ५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! कुमारलोग रणभूमिसे यज्ञसेन द्रुपदको मन्त्रीके साथ पकड कर आचार्य द्रोणके पास ले आए ॥ ५ ॥

भग्नदर्पं हृतधनं तथा च वशमागतम् ।
स वैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

द्रोण उस प्रकार वशमें आये हुए, नष्ट हुए अहंकारवाले और नष्ट हुए धनवाले द्रुपदको देखकर पहिलेकी शत्रुताको मनसे स्मरणकर द्रुपदसे बोले, ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया ।
प्राप्य जीवन्रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ७ ॥

मैंने बलसे तुम्हारे राज्यको नष्ट कर तुम्हारी पुरीको मथ डाला है, क्या अपने जीवनको पाकर, जो अब इस विप्रके वशमें आ गया है, पहिली मित्रताको चाहते हो ? ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा प्रहस्यैनं निश्चित्य पुनरब्रवीत् ।
मा भैः प्राणभयाद्राजन्क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥ ८ ॥

यह कह करके हंसकर फिर वह मन ही मनमें निश्चय कर उनसे बोले, कि हे वीर ! तुम अपने प्राणोंका भय मत करो, हम ब्राह्मण क्षमायुक्त हैं ॥ ८ ॥

आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह ।
तेन संवर्धितः स्नेहस्त्वया मे क्षत्रियर्षभ ॥ ९ ॥

हे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ ! बालपनमें आश्रममें मुझसे खेलने कूदनेहीके कारण तुम पर मेरा स्नेह और प्रेम बढा था ॥ ९ ॥

प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव नरर्षभ ।
वरं ददामि ते राजन्राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ॥ १० ॥

इसलिए, हे नरश्रेष्ठ ! मैं फिर तुमसे मित्रताकी प्रार्थना करता हूं । हे राजन् ! तुमको वर देता हूं, कि तुम इस राज्यका आधा भाग पावोगे ॥ १० ॥

अराजा किल नो राज्ञां सखा भवितुमर्हति ।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥ ११ ॥

हे यज्ञसेन ! राज्यहीन कोई पुरुष राजाका मित्र नहीं हो सकता है, इसीलिये मैंने तुम्हारा राज्य पानेके लिए ऐसा प्रयत्न किया ॥ ११ ॥

राजास्मि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥ १२ ॥

हे पाञ्चाल ! तुम भागीरथीके दक्षिण किनारेके राजा होगे और मैं उत्तर किनारेका राजा होऊंगा, अब तुम चाहो तो मुझको मित्र समझो ॥ १२ ॥

द्रुपद उवाच

अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन्विक्रान्तेषु महात्मसु ।
प्रीये त्वयाहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम् ॥ १३ ॥

द्रुपद बोले– हे ब्रह्मन् ! विक्रमी महात्मा पुरुषोंके विषयमें यह आश्चर्य नहीं है । मैं आपसे प्यार किया जाता हूं, और यह चाहता हूं, कि आप भी मुझसे सदा–स्थायी प्रीति लाभ कर सकें ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२८ :

वैशम्पायन उवाच

ततः शिष्यान्समानीय आचार्यार्थमचोदयत् ।
द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब एक दिन सभी शिष्योंको बुलवा लाकर गुरु दक्षिणाके योग्य वस्तुको लानेकी आज्ञा कर आचार्य द्रोण बोले ॥ १ ॥

पाञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात्परमदक्षिणा ॥ २ ॥

तुम लड करके पाञ्चालराज द्रुपदको पराजित कर मेरे पास ले आओ । तुम्हारा मङ्गल होवे, यह ही मेरे लिए सबसे श्रेष्ठ दक्षिणा है ॥ २ ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः ।
आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥ ३ ॥

शिष्यगण सब " अच्छा ऐसा ही करेंगे " यह कहकर गुरु दक्षिणाके लिये अस्त्र शस्त्र लेकर रथपर चढके गुरु द्रोणके साथ वेगसे चले ॥ ३ ॥

ततोऽभिजग्मुः पाञ्चालान्निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः ।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः ॥ ४ ॥

वे नरश्रेष्ठगण सब पाञ्चाल देशमें मारते पीटते हुए चले, और बडे तेजस्वी द्रुपदके नगरको नष्ट भ्रष्ट करते हुए चले ॥ ४ ॥

ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
उपाजह्रुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभाः ॥ ५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! कुमारलोग रणभूमिसे यज्ञसेन द्रुपदको मन्त्रीके साथ पकड कर आचार्य द्रोण-के पास ले आए ॥ ५ ॥

भग्नदर्पं हृतधनं तथा च वशमागतम् ।
स वैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

द्रोण उस प्रकार वशमें आये हुए, नष्ट हुए अहंकारवाले और नष्ट हुए धनवाले द्रुपदको देखकर पहिलेकी शत्रुताको मनसे स्मरणकर द्रुपदसे बोले, ॥ ६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया ।
प्राप्य जीवन्रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ७ ॥

मैंने बलसे तुम्हारे राज्यको नष्ट कर तुम्हारी पुरीको मथ डाला है, क्या अपने जीवनको पाकर, जो अब इस विप्रके वशमें आ गया है, पहिली मित्रताको चाहते हो ? ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा प्रहस्यैनं निश्चित्य पुनरब्रवीत् ।
मा भैः प्राणभयाद्राजन्क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥ ८ ॥

यह कह करके हंसकर फिर वह मन ही मनमें निश्चय कर उनसे बोले, कि हे वीर ! तुम अपने प्राणोंका भय मत करो, हम ब्राह्मण क्षमायुक्त हैं ॥ ८ ॥

आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह ।
तेन संवर्धितः स्नेहस्त्वया मे क्षत्रियर्षभ ॥ ९ ॥

हे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ ! बालपनमें आश्रममें मुझसे खेलने कूदनेहीके कारण तुम पर मेरा स्नेह और प्रेम बढा था ॥ ९ ॥

प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव नरर्षभ ।
वरं ददामि ते राजन्राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ॥ १० ॥

इसलिए, हे नरश्रेष्ठ ! मैं फिर तुमसे मित्रताकी प्रार्थना करता हूं । हे राजन् ! तुमको वर देता हूं, कि तुम इस राज्यका आधा भाग पावोगे ॥ १० ॥

अराजा किल नो राज्ञां सखा भवितुमर्हति ।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥ ११ ॥

हे यज्ञसेन ! राज्यहीन कोई पुरुष राजाका मित्र नहीं हो सकता है, इसीलिये मैंने तुम्हारा राज्य पानेके लिए ऐसा प्रयत्न किया ॥ ११ ॥

राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥ १२ ॥

हे पाञ्चाल ! तुम भागीरथीके दक्षिण किनारेके राजा होगे और मैं उत्तर किनारेका राजा होऊंगा, अब तुम चाहो तो मुझको मित्र समझो ॥ १२ ॥

द्रुपद उवाच

अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन्विक्रान्तेषु महात्मसु ।
प्रीये त्वयाहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम् ॥ १३ ॥

द्रुपद बोले– हे ब्रह्मन् ! विक्रमी महात्मा पुरुषोंके विषयमें यह आश्चर्य नहीं है । मैं आपसे प्यार किया जाता हूं, और यह चाहता हूं, कि आप भी मुझसे सदा–स्थायी प्रीति लाभ कर सकें ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु तं द्रोणो मोक्षयामास भारत।
सत्कृत्य चैनं प्रीतात्मा राज्यार्धं प्रत्यपादयत् ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत! द्रुपदके ऐसा कहनेपर द्रोणने उनको बन्धनसे मुक्तकर प्रसन्नचित्तसे सत्कार करके राज्यका आधा भाग दे दिया ॥ १४ ॥

माकन्दीमथ गङ्गायास्तीरे जनपदायुताम्।
सोऽध्यावसद्दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्।
दक्षिणांश्चैव पाञ्चालान्यावच्चर्मण्वती नदी ॥ १५ ॥

द्रुपद गङ्गातटके जनपदोंके सहित माकन्दी देश और चर्मण्वती नदीतक दक्षिण पाञ्चाल-पर अधिकार पाकर सुन्दर काम्पिल्य नगरमें मलिन चित्तसे रहने लगे ॥ १५ ॥

द्रोणेन वैरं द्रुपदः संस्मरन्न शशाम ह।
क्षात्रेण च बलेनास्य नापश्यत्स पराजयम् ॥ १६ ॥

अनन्तर द्रोणकी शत्रुताको याद करके द्रुपद शान्त नहीं हुए, उन्हें क्षत्रियबलसे द्रोणका पराजय असंभव प्रतीत हुआ ॥ १६ ॥

हीनं विदित्वा चात्मानं ब्राह्मणेन बलेन च।
पुत्रजन्म परीप्सन्वै स राजा तदधारयत्।
अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ॥ १७ ॥

अतः ब्राह्मणके बलसे अपनेको हीन जानकर पुत्र उत्पत्तिकी इच्छासे उस राजाने निश्चय कर लिया। इधर द्रोणको अहिच्छत्र नामक राज्य मिल गया ॥ १७ ॥

एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता।
युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ४६२६ ॥

हे राजन्! इस प्रकार धनञ्जयने जनपद समेत अहिच्छत्रा पुरीको लडाईमें जीतकर आचार्य द्रोणको सौंप दिया ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ अट्ठाइसवां अध्याय समाप्त ॥ १२८ ॥ ४६२६ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १२९ :

वैशंपायन उवाच

प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् ।
दुर्योधनो लक्षयित्वा पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– दुष्ट बुद्धिवाला दुर्योधन भीमको अति बलवान् और धनञ्जयको विद्यामें निपुण देखकर अपार सन्तापसे जलने लगा ॥ १ ॥

ततो वैकर्तनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अनेकैरभ्युपायैस्तांञ्जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ॥ २ ॥

तब सूर्यपुत्र कर्ण और सुबलकुमार शकुनि नाना उपायोंसे पाण्डवोंके प्राण लेनेकी चेष्टा करने लगे ॥ २ ॥

पाण्डवाश्चापि तत्सर्वं प्रत्यजानन्नरिंदमाः ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥ ३ ॥

शत्रुनाशक पाण्डव भी उस सबको जानते हुए विदुरकी सलाहके अनुसार उसको प्रकट नहीं करते थे ॥ ३ ॥

गुणैः समुदितान्दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा ।
कथयन्ति स्म संभूय चत्वरेषु सभासु च ॥ ४ ॥

हे भारत ! पुरवासी लोग पाण्डवोंको नाना गुणोंसे अलंकृत देख कर सभाओंमें और चौराहों पर आपसमें कहते थे ॥ ४ ॥

प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
राज्यमप्राप्तवान्पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

कि प्रज्ञाचक्षु, जनराजा धृतराष्ट्रने अन्धे होनेसे पहिले राज्य प्राप्त नहीं किया था, अब वह राजा कैसे हो सकते हैं ? ॥ ५ ॥

तथा भीष्मः शान्तनवः सत्यसन्धो महाव्रतः
प्रत्याख्याय पुरा राज्यं नाद्य जातु ग्रहीष्यति ॥ ६ ॥

सत्यशील महाव्रत शान्तनुकुमार भीष्मने पहिले राज्य त्याग दिया था; वह फिर उसको नहीं लेंगे, ॥ ६ ॥

ते वयं पाण्डवं ज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।
अभिषिञ्चाम साध्वद्य सत्यं करुणवेदिनम् ॥ ७ ॥

अतएव आज हम लोग तरुण वयवाले, वृद्धोंका सन्मान करनेवाले और सत्यनिष्ठ दयालु पाण्डुके श्रेष्ठपुत्र युधिष्ठिरको भली प्रकार राज्यपर अभिषिक्त करेंगे ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित्।
सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥ ८ ॥

वह धर्मात्मा युधिष्ठिर शान्तनुनन्दन भीष्म और पुत्रोंके सहित धृतराष्ट्रकी अवश्य पूजाकर उन्हें भोगनेकी नाना वस्तु देंगे ॥ ८ ॥

तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि भाषताम्।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥ ९ ॥

तब युधिष्ठिरके बारेमें प्रजाओंकी यह सब प्रेमपूर्ण बात सुनकर दुष्टबुद्धि दुर्योधन बडा सन्तप्त हुआ ॥ ९ ॥

स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे।
ईर्ष्यया चाभिसंतप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥ १० ॥

वह दुष्टात्मा सन्तापयुक्त होकर उन प्रजाओंकी बात सह नहीं सका और द्वेषके मारे जल भुनकर धृतराष्ट्रके पास गया ॥ १० ॥

ततो विरहितं दृष्ट्वा पितरं प्रतिपूज्य सः।
पौरानुरागसंतप्तः पश्चादिदमभाषत ॥ ११ ॥

तब पिताको एकान्तमें पाकर और प्रणामकर युधिष्ठिर पर पुरवासियोंके प्रेमके कारण दुःखी होकर बादमें यह कहने लगा ॥ ११ ॥

श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः।
त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ॥ १२ ॥

हे पिता ! मैंने आपसमें बातचीत करते हुए पुरवासियोंकी अशुभ बातें सुनी हैं ! प्रजाएं आपका और भीष्मका अनादर करके पाण्डव युधिष्ठिरको राजा बनाना चाहती हैं ॥ १२ ॥

मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभूषति।
अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः ॥ १३ ॥

इसमें भीष्मकी भी अनुमति होगी, क्योंकि वह स्वयं राज्यभोगकी इच्छा नहीं रखते; पर पुरवासी लोग केवल हमींको अत्यन्त पीडा देना चाहते हैं ॥ १३ ॥

पितृतः प्राप्तवान्राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा।
त्वमप्यगुणसंयोगात्प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥ १४ ॥

पहिले राजा पाण्डुने अपने गुणहीसे पिताके राज्यको प्राप्त किया था, यद्यपि आप ज्येष्ठतासे राज्याधिकारी होनेके योग्य थे, पर अन्धतारूपी अगुणके कारण राज्य नहीं पा सके ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः ।
तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्येति चापरः ॥ १५ ॥

अब यदि उन पाण्डुका पुत्र उत्तराधिकारी होकर पाण्डुका राज्य प्राप्त करेगा तो भविष्यमें उसका पुत्र अवश्य ही अधिकारी होगा और उसी प्रकार परम्परया उनके वंशवाले राजा हुआ करेंगे ॥ १५ ॥

ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि ।
अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते ॥ १६ ॥

हे जगत्पते ! ऐसा होनेसे राजवंशियोंमें न गिने जाकर हम सबको अपने पुत्रोंके साथ लोगोंसे अनादृत होकर जीना पडेगा ॥ १६ ॥

सततं निरयं प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः ।
न भवेम यथा राजंस्तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥ १७ ॥

अतएव, हे महाराज ! जल्दीसे कुछ ऐसा कीजिए कि दूसरेकी कृपापर पेट पालते हुए हम सबको दुःखी न होना पडे ॥ १७ ॥

अभविष्यः स्थिरो राज्ये यदि हि त्वं पुरा नृप ।
ध्रुवं प्राप्स्याम च वयं राज्यमप्यवशे जने ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ ४६४४ ॥

हे नरनाथ ! पहिले यदि आप राज्यपर स्थिर हो जाते तो प्रजाओंके वशमें न रहनेसे भी हम निश्चयसे राज्य प्राप्त कर लेते ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२९ ॥ ४६४४ ॥

: १३० :

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्रस्तु पुत्रस्य श्रुत्वा वचनमीदृशम् ।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– पुत्रकी इस प्रकारकी बात सुनकर धृतराष्ट्र क्षणभर सोचकर फिर दुर्योधनसे बोले ॥ १ ॥

धर्मनित्यः सदा पाण्डुर्ममासीत्प्रियकृद्धितः ।
सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद्विशेषतः ॥ २ ॥

धर्मशील पांडु मेरा प्रिय और हित करनेवाले थे और सम्पूर्ण ज्ञातियोंसे और विशेष कर मुझसे सदा धर्मके अनुसार व्यवहार किया करते थे ॥ २ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नास्य किंचिन्न जानामि भोजनादि चिकीर्षितम्।
निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतव्रतः ॥ ३ ॥

मैं जानता हूँ कि उनको भोजन वस्त्र किसी विषयमें चाह नहीं थी। सदा व्रतधारी होकर उन्होंने मेरे हाथमें सब राज्य सौंप दिया था ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः।
गुणवाँल्लोकविख्यातः पौराणां च सुसंमतः ॥ ४ ॥

अब उनके पुत्र भी उनके समान धर्मशील, गुणवान्, भूमण्डलमें प्रसिद्ध और पुरवासियोंके प्यारे हैं ॥ ४ ॥

स कथं शक्यमस्माभिरपक्रष्टुं बलादितः।
पितृपैतामहाद्राज्यात्ससहायो विशेषतः ॥ ५ ॥

अतः उन पाण्डुनन्दनको हम उनके बापदादाओंके राज्यसे जबर्दस्ती कैसे खदेड सकते हैं? विशेष यह कि वह सहायवर्जित भी नहीं हैं ॥ ५ ॥

भृता हि पाण्डुनामात्या बलं च सततं भृतम्।
भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः ॥ ६ ॥

महाराजा पाण्डुने मन्त्रियोंका पालन किया, सेनाका पालन किया और उनके बेटे पोतोंको सदा पाला पोषा ॥ ६ ॥

ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डुना पौरवा जनाः।
कथं युधिष्ठिरस्यार्थे न नो हन्युः सबान्धवान् ॥ ७ ॥

हे पुत्र! जब नगरके सब लोग पाण्डुसे सत्कृत हुए हैं, तब उनके पुत्र युधिष्ठिरके लिये वे क्यों न हमको और हमारे बान्धवोंको मार डालेंगे ॥ ७ ॥

दुर्योधन उवाच

एवमेतन्मया तात भावितं दोषमात्मनि।
दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन योजिताः ॥ ८ ॥
ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः।
अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥ ९ ॥

दुर्योधन बोले– हे पिता! आपकी बात ठीक तो है, पर मेरे आपके वर्तमान अहितको सोचकर सब प्रजाओंको धनमानसे पूजित करनेसे वे हमारे अवश्य ही सहायक होंगी, क्योंकि इस समय धनकोष और मन्त्रवर्ग हमारे ही हाथमें हैं ॥ ८–९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स भवान्पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हति ।
मृदुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥ १० ॥

अतएव, हे पृथ्वीनाथ ! आप किसी कोमल उपायहीसे शीघ्र पाण्डवोंको वारणावतमें भेज दीजिये ॥ १० ॥

यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मयि राजन्भविष्यति ।
तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत ॥ ११ ॥

हे राजन् ! जब कुछ कालके बाद राज्य मेरे हाथमें पूरी तरह आजाएगा तब कुन्ती पाण्डवगणके साथ फिर यहां लौट आएगी ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि संपरिवर्तते ।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैतत्तु विवृणोम्यहम् ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे दुर्योधन ! तुमने जो बात कही मैं भी चित्तमें उसका विचार किया करता हूं, पर इसे पापका अभिप्राय जानकर इच्छा प्रकट नहीं करता ॥ १२ ॥

न च भीष्मो न च द्रोणो न क्षत्ता न च गौतमः ।
विवास्यमानान्कौन्तेयाननुमंस्यन्ति कर्हिचित् ॥ १३ ॥

कुन्तीपुत्रोंको बाहर निकालनेके विचारसे न भीष्म, न द्रोण, न कृप और न विदुर ही कदापि सम्मत होंगे ॥ १३ ॥

समा हि कौरवेयाणां वयमेते च पुत्रक ।
नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥ १४ ॥

हे पुत्र ! कुरुवंशियोंमें हम और पाण्डव दोनों समान हैं, इसमें सन्देह नहीं है, अतः वे धर्मशील महानुभाव लोग कभी दोनों पक्षोंमें किसीका पक्षपात नहीं करेंगे ॥ १४ ॥

ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम् ।
कथं न वध्यतां तात गच्छेम जगतस्तथा ॥ १५ ॥

अतः पाण्डवोंको भगाकर हम कौरवोंसे, उन महात्माओंसे यहां तक कि निःसन्देह पृथ्वी भरके लोगोंसे वध किये जानेके योग्य कैसे न होंगे ? ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुर्योधन उवाच

मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः।
यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः ॥ १६ ॥

दुर्योधन बोले– भीष्म हम दोनों पक्षोंसे समान स्नेह करते हैं। द्रोणके पुत्र अश्वत्थामा मेरे ही पक्षमें हैं, अतः इसमें सन्देह नहीं है कि जिस पक्षमें उनके पुत्र हैं, आचार्य द्रोण भी उसी पक्षमें रहेंगे ॥ १६ ॥

कृपः शारद्वतश्चैव यत एते त्रयस्ततः।
द्रोणं च भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥ १७ ॥

शारद्वत कृप भी अवश्य उसी पक्षमें रहेंगे, जिसमें भीष्म, द्रोण और अश्वत्थामा ये तीनों रहेंगे क्योंकि वह कभी भाञ्जा और द्रोणको नहीं छोड सकेंगे ॥ १७ ॥

क्षत्तार्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं तु यतः परे।
न चैकः स समर्थोऽस्मान्पाण्डवार्थे प्रबाधितुम् ॥ १८ ॥

विदुर हमारे अर्थसे आबद्ध हैं और छिपकर पाण्डवोंसे मिल भी जावें, तो वह अकेले पाण्डवोंके पक्षमें होकर हमारी कोई हानि नहीं कर सकेंगे ॥ १८ ॥

स विश्रब्धः पाण्डुपुत्रान्सह मात्रा विवासय।
वारणावतमद्यैव नात्र दोषो भविष्यति ॥ १९ ॥

अतएव आप निःशङ्क चित्तसे पाण्डवोंको उनकी माताके सहित वारणावत भेज दीजिए, इसमें कोई दोष नहीं होगा ॥ १९ ॥

विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम्।
शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ ४६६४ ॥

निद्रानाशी शोकाग्नि मानों कठोर शूलोंकी भांति मेरे हृदयमें गड रही है, आप यह काम करके उस अग्निको शान्त कर दीजिए ॥ २० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३० ॥ ४६६४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १३१ :

वैशम्पायन उवाच

ततो दुर्योधनो राजा सर्वास्ताः प्रकृतीः शनैः ।
अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंके साथ मिल सम्मान और धन द्वारा सब प्रजाओंको अपने वशमें कर लिया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्तु केचित्कुशलमन्त्रिणः ।
कथयाञ्चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रसे प्रेरित होकर कुछ कुशल मंत्री सुन्दर नगर वारणावतका वर्णन करने लगे ॥२॥

अयं समाजः सुमहान्रमणीयतमो भुवि ।
उपस्थितः पशुपतेर्नगरे वारणावते ॥ ३ ॥

इस पशुपतिके नगर वारणावतमें संसारमें अत्यधिक सुन्दर और महान् मनुष्योंकी भीड जुडेगी ॥ ३ ॥

सर्वरत्नसमाकीर्णे पुंसां देशे मनोरमे ।
इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः ॥ ४ ॥

वह नगर सभी तरहके रत्नोंसे युक्त और मनोरम है। इस प्रकारका वर्णन वे मंत्री धृतराष्ट्रकी आज्ञासे करने लगे ॥ ४ ॥

कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते ।
गमने पाण्डुपुत्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥ ५ ॥

हे नरनाथ ! वारणावत नगरकी सुन्दरता इस प्रकार कही जानेपर वहां जानेके लिये पाण्डव लोगोंकी इच्छा हुई ॥ ५ ॥

यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति ।
उवाचैनानथ तदा पाण्डवानम्बिकासुतः ॥ ६ ॥
ममेमे पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः ।
रमणीयतरं लोके नगरं वारणावतम् ॥ ७ ॥

अंबिकापुत्र राजा धृतराष्ट्रने जब समझा, कि वारणावत नगरको देखनेके लिए पाण्डवोंकी इच्छा है, तब उनसे बोले– पुत्रो ! यह सब मेरे लोग मुझसे बार बार कहा करते हैं, कि भूमण्डलमें वारणावत नगर बडा सुन्दर है ॥ ६–७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ते तात यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते।
सगणाः सानुयात्राश्च विहरध्वं यथामराः ॥ ८ ॥

इसलिए, हे तात! यदि तुम वहां उत्सव देखना चाहो, तो परिवार और साथियों समेत वहां जाकर देवोंकी भांति विहार करो ॥ ८ ॥

ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि गायनेभ्यश्च सर्वशः।
प्रयच्छध्वं यथाकामं देवा इव सुवर्चसः ॥ ९ ॥

और तेजस्वी देवोंके समान गवैयों और ब्राह्मणोंको यथेच्छ धन और रत्नादि दो ॥ ९ ॥

कंचित्कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदम्।
इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥ १० ॥

इस प्रकारसे कुछ काल विहारकर अच्छा आनन्द प्राप्त करके कुशलतापूर्वक इस हस्तिनापुरमें लौट आओ ॥ १० ॥

धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुद्ध्वा युधिष्ठिरः।
आत्मनश्चासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रका अभिप्राय समझकर और अपनेको असहाय जानकर उनको यह उत्तर दिया, कि आप जैसी आज्ञा देते हैं, वही होगा ॥ ११ ॥

ततो भीष्मं महाप्राज्ञं विदुरं च महामतिम्।
द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम् ॥ १२ ॥

अनन्तर महाबुद्धिमान् भीष्म, महामति विदुर, द्रोण, बाह्लीक, कौरव सोमदत्त ॥ १२ ॥

कृपमाचार्यपुत्रं च गान्धारीं च यशस्विनीम्।
युधिष्ठिरः शनैर्दीनमुवाचेदं वचस्तदा ॥ १३ ॥

कृप, आचार्यके पुत्र अश्वत्थामा और यशस्विनी गान्धारीसे युधिष्ठिरने तब दीनतापूर्वक कोमल भावसे यह बात कही ॥ १३ ॥

रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते।
सगणास्तात वत्स्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १४ ॥

कि हम राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे साथियों समेत जनोंसे भरे हुए अति सुन्दर वारणावत नगरमें रहेंगे ॥ १४ ॥

प्रसन्नमनसः सर्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत।
आशीर्भिर्वर्धितानस्मान्न पापं प्रसहिष्यति ॥ १५ ॥

आप प्रसन्न चित्तसे पुण्य वचन कहिये, ताकि आपके अशीससे वृद्धिको प्राप्त हुए हुए हमें पाप पराजित नहीं कर पाए ॥ १५ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः ।
प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽभ्यवर्तन्त पाण्डवान् ॥ १६ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर सभी कौरव पाण्डवोंसे प्रसन्न मनसे यह बोले ॥ १६ ॥

स्वस्त्यस्तु वः पथि सदा भूतेभ्यश्चैव सर्वशः ।
मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित्सर्वतः पाण्डुनन्दनाः ॥ १७ ॥

पथमें सब भूतोंसे सदा तुम लोगोंका मंगल होवे । हे पाण्डवो ! तुम्हारा कोई अहित न हो ॥ १७ ॥

ततः कृतस्वस्त्ययना राज्यलाभाय पाण्डवाः ।
कृत्वा सर्वाणि कार्याणि प्रययुर्वारणावतम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ ४६८२ ॥

अनन्तर पाण्डव स्वस्त्ययन करके राज्यलाभके लिये सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको पूराकर वारणावत नगरकी यात्राके लिये चले ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३१ ॥ ४६८२ ॥

: १३२ :

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डवेषु महात्मसु ।
दुर्योधनः परं हर्षमाजगाम दुरात्मवान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– राजा धृतराष्ट्रके महात्मा पाण्डवोंको ऐसी आज्ञा देनेपर दुरात्मा दुर्योधनको बडा हर्ष हुआ ॥ १ ॥

स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! तब वह दुर्योधन पुरोचन नामक मन्त्रीको एकान्तमें बुलाकर उसका दहिना हाथ थाम करके यह वाक्य बोला ॥ २ ॥

ममेयं वसुसंपूर्णा पुरोचन वसुन्धरा ।
यथेयं मम तद्वत्ते स तां रक्षितुमर्हसि ॥ ३ ॥

हे पुरोचन ! यह धनसे भरी हुई धरती मेरे वशमें है, इसपर मेरा जितना अधिकार है, तुम्हारा भी उतना ही अधिकार है, अतः तुमको उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

न हि मे कश्चिदन्योऽस्ति वैश्वासिकतरस्त्वया।
सहायो येन संधाय मन्त्रयेयं यथा त्वया ॥ ४ ॥

तुमसे अधिक विश्वासी सहायक मेरा कोई दूसरा नहीं है, कि जिससे मिलकर ऐसा परामर्श करूं, जैसा तुमसे कर सकता हूं ॥ ४ ॥

संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर।
निपुणेनाभ्युपायेन यद्ब्रवीमि तथा कुरु ॥ ५ ॥

अतः तुम इस परामर्शको भली प्रकार छुपाकर मेरे शत्रुओंको नष्ट कर डालो, मैं जो कुछ कहता हूं, कुशलता और अच्छे उपायोंसे उसे पूरा करो ॥ ५ ॥

पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम्।
उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥

राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको वारणावत नगरमें जानेकी आज्ञा दी है, वे धृतराष्ट्रकी आज्ञासे पाशुपत उत्सवमें वहां विहार करेंगे ॥ ६ ॥

स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना।
वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु ॥ ७ ॥

अतएव तुम आज ही खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर वारणावतको जिस प्रकार जा सको, वैसा करो ॥ ७ ॥

तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम्।
आयुधागारमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥ ८ ॥

वहां जाकर अपार धन खर्च करके भली प्रकारसे घिरा हुआ एक शस्त्रोंसे भरा हुआ चौपाल-युक्त घर बनवाओ ॥ ८ ॥

शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्।
आग्नेयान्युत सन्तीह तानि सर्वाणि दापय ॥ ९ ॥

सन, धूपआदि जितनी आग लगानेवाली वस्तुयें हैं, उनसे ही वह घर बनवाना ॥ ९ ॥

सर्पिषा च सतैलेन लाक्षया चाप्यनल्पया।
मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापयेः ॥ १० ॥

और घृत, तैल, चर्बी और अधिक लाखमें कुछ मिट्टी मिलाकर उससे उसकी भीतोंको पोत दो ॥ १० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शणान्वंशं घृतं दारु यन्त्राणि विविधानि च ।
तस्मिन्वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः ॥ ११ ॥

और सन, बांस, घृत और नाना तरहके बारूदके यंत्र यह सब वस्तु उस घरमें चारों ओर बिखेर दो ॥ ११ ॥

यथा च त्वां न शङ्केरन्परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः ।
आग्नेयमिति तत्कार्यमिति चान्ये च मानवाः ॥ १२ ॥

पर ऐसा करना, कि पाण्डवलोग वा कोई दूसरे विशेष परीक्षासे भी तुम्हारे इस कार्यपर शंका न कर सके, कि यह गृह आगसे जलनेवाला है ॥ १२ ॥

वेश्मन्येवं कृते तत्र कृत्वा तान्परमार्चितान् ।
वासयेः पाण्डवेयांश्च कुन्तीं च ससुहृज्जनाम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार गृह बनवा करके वहां जाकर पाण्डवों और मित्रोंके साथ कुन्तीको आदरपूर्वक वहां ठहराओ ॥ १३ ॥

तत्रासनानि मुख्यानि यानानि शयनानि च ।
विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत मे पिता ॥ १४ ॥

पाण्डवोंके लिये सुन्दर शय्या, आसन और यान इस प्रकार बनवा रखना, कि मेरे पिता सन्तुष्ट होजायें ॥ १४ ॥

यथा रमेरन्विश्रब्धा नगरे वारणावते ।
तथा सर्वं विधातव्यं यावत्कालस्य पर्ययः ॥ १५ ॥

और ऐसा करना कि वारणावत नगरमें वे सब बिना किसी डरके तब तक घूमते रहें, जबतक समय न आजाए ॥ १५ ॥

ज्ञात्वा तु तान्सुविश्वस्ताञ्शयानानकुतोभयान् ।
अग्निस्ततस्त्वया देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः ॥ १६ ॥

आगे ठीक समय आनेपर अर्थात् पाण्डवोंको उस गृहमें अच्छे विश्वासपूर्वक सोते और निःशङ्क होते देखनेपर उस गृहके द्वारमें आग लगा देना ॥ १६ ॥

दग्धानेवं स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः ।
ज्ञातयो वा वदिष्यन्ति पाण्डवार्थाय कर्हिचित् ॥ १७ ॥

तब प्रजा समझेगी, कि पाण्डव अपने घरमें आग लगनेहीसे जल मरे हैं, अतः पाण्डवोंके लिये हमारे जातिके लोग हमारी निन्दा नहीं कर सकेंगे ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्तथेति प्रतिज्ञाय कौरवाय पुरोचनः।
प्रायाद्रासभयुक्तेन नगरं वारणावतम् ॥ १८ ॥

पुरोचन दुर्योधनसे "ऐसा ही होगा" ऐसी प्रतिज्ञा कर अच्छे अच्छे खच्चरयुक्त रथसे वारणावत नगरको गया ॥ १८ ॥

स गत्वा त्वरितो राजन्दुर्योधनमते स्थितः।
यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ ४७०१ ॥

हे राजन्! पुरोचन दुर्योधनकी आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक वारणावतमें पहुंचकर राजकुमार दुर्योधनके कहे हुएके अनुसार सब काम पूरा करने लगा ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥ ४७०१ ॥

: १३३ :

वैशंपायन उवाच

पाण्डवास्तु रथान्युक्त्वा सदश्वैरनिलोपमैः।
आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरार्तवत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उसके बाद व्रतशील पाण्डव लोगोंने रथोंमें पवनके समान वेगवान् अच्छे घोडे जुतवाकर चढनेके समय कातर होकर भीष्मके पैर छुए ॥ १ ॥

राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः।
अन्येषां चैव वृद्धानां विदुरस्य कृपस्य च ॥ २ ॥

राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोण, विदुर, कृप तथा दूसरे भी वृद्धोंके पांव छूए ॥ २ ॥

एवं सर्वान्कुरून्वृद्धानभिवाद्य यतव्रताः।
समालिङ्ग्य समानांश्च बालैश्चाप्यभिवादिताः ॥ ३ ॥
सर्वा मातॄस्तथापृष्ट्वा कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्।
सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम् ॥ ४ ॥

इस प्रकार अपनेसे बडे सब कौरवोंको प्रणाम किया और अपने साथियोंको गलेसे लगाया और बालकोंके द्वारा अभिवादित होकर सब माताओंकी आज्ञा लेकर और उनकी प्रदक्षिणा करके, सभी प्रजाओंके साथ वारणावत नगरको चले ॥ ३–४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथान्ये कुरुपुङ्गवाः ।
पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वयुः शोककर्शिताः ॥ ५ ॥

महाप्राज्ञ विदुर तथा दूसरे कौरवोंमें प्रधान लोग और पुरवासीवृन्द शोकाकुल होकर पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी पाण्डवोंके पीछे पीछे चले ॥ ५ ॥

तत्र केचिद्ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा ।
शोचमानाः पाण्डुपुत्रानतीव भरतर्षभ ॥ ६ ॥

हे भरतोंमें श्रेष्ठ ! उनमेंसे कुछ दुःखी पर निर्भय ब्राह्मण पाण्डवोंको देखकर अति दुःखसे कहने लगे ॥ ६ ॥

विषमं पश्यते राजा सर्वथा तमसावृतः ।
धृतराष्ट्रः सुदुर्बुद्धिर्न च धर्मं प्रपश्यति ॥ ७ ॥

दुर्बुद्धि राजा धृतराष्ट्र तमसे घिरकर सब प्रकारसे पक्षपात कर रहे हैं, वह एकबार भी धर्मकी ओर दृष्टि नहीं देते हैं ॥ ७ ॥

न हि पापमपापात्मा रोचयिष्यति पाण्डवः ।
भीमो वा बलिनां श्रेष्ठः कौन्तेयो वा धनञ्जयः ।
कुत एव महाप्राज्ञौ माद्रीपुत्रौ करिष्यतः । ॥ ८ ॥

पापरहित पाण्डुपुत्र कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर, महाबली भीम और धनञ्जय, कभी विद्रोह रूपी पाप कर्मकी इच्छा नहीं करते, अतः महा बुद्धिमान् माद्रीकुमार भी यह काम कैसे करेंगे ? ॥ ८ ॥

तद्राज्यं पितृतः प्राप्तं धृतराष्ट्रो न मृष्यते ।
अधर्ममखिलं किं नु भीष्मोऽयमनुमन्यते ।
विवास्यमानानस्थाने कौन्तेयान्भरतर्षभान् ॥ ९ ॥

पाण्डवोंका पितृराज्यका पाना भी धृतराष्ट्रसे सहा नहीं जाता । भरतोंमें श्रेष्ठ कुन्तीके पुत्रोंको उनके निवासके लिए अयोग्य स्थानपर भेजने रूप इस अधर्म कार्यमें भीष्मने अपनी सम्मति कैसे दे दी ? ॥ ९ ॥

पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा ।
विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः ॥ १० ॥

पहिले शान्तनुनन्दन, राजर्षि विचित्रवीर्य और कुरुपुत्र पाण्डुने हमको समान पाला था ॥ १० ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स तस्मिन्पुरुषव्याघ्रे दिष्टभावं गते सति।
राजपुत्रानिमान्बालान्धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥ ११ ॥

उन पुरुषव्याघ्र पाण्डुके स्वर्गको सिधार जाने पर अब धृतराष्ट्र इन बालक राजकुमारोंको सहता नहीं है ॥ ११ ॥

वयमेतदमृष्यन्तः सर्व एव पुरोत्तमात्।
गृहान्विहाय गच्छामो यत्र याति युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥

हम यह नहीं सह सकते। अतः चाहे जो कुछ हो, युधिष्ठिर जहां जायेंगे, हम सब गृहको तज कर इस नगरसे वहीं जायेंगे ॥ १२ ॥

तांस्तथावादिनः पौरान्दुःखितान्दुःखकर्शितः।
उवाच परमप्रीतो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥

इस प्रकारके वचनोंको बोलनेवाले दुःखी पुरवासियोंसे दुःखसे पीडित धर्मराज युधिष्ठिर प्रसन्न होकर बोले ॥ १३ ॥

पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः।
अशङ्कमानैस्तत्कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम् ॥ १४ ॥

पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्र हमारे पिता, माननीय तथा गुरु हैं और वही प्रधान हैं; हमारा व्रत यह है, कि उन्होंने जो कहा है, उसे हम बिना शङ्का पूरा करें ॥ १४ ॥

भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान्कृत्वा प्रदक्षिणम्।
आशीर्भिरभिनन्द्यास्मान्निवर्तध्वं यथागृहम् ॥ १५ ॥

आप हमारे हितकारी हैं, हमारी प्रदक्षिणा करके हमपर कृपा करके अशीस दे दे कर अपने अपने घरोंको लौट जावें ॥ १५ ॥

यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भिरुपपत्स्यते।
तदा करिष्यथ मम प्रियाणि च हितानि च ॥ १६ ॥

जब आप लोगोंसे हम लोगोंका कोई आवश्यकीय काम आ पडेगा, तब आप मेरे उस कामको प्रिय और हितयुक्त जानकर करियेगा ॥ १६ ॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय कृत्वा चैतान्प्रदक्षिणम्।
आशीर्भिरभिनन्द्यैनाञ्जग्मुर्नगरमेव हि ॥ १७ ॥

पुरवासी लोग युधिष्ठिरकी यह बात मानकर प्रदक्षिणापूर्वक आशीर्वादोंके द्वारा उनका अभिनन्दन करके कातरभावसे नगरको लौट गए ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पौरेषु तु निवृत्तेषु विदुरः सर्वधर्मवित् ।
बोधयन्पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ।
प्राज्ञः प्राज्ञं प्रलापज्ञः सम्यग्धर्मार्थदर्शिवान् ॥ १८ ॥

उन पुरवासियोंके लौट जानेपर सब नीतियोंको जाननेवाले धर्म और अर्थका दर्शन करनेवाले बुद्धिमान् तथा म्लेच्छ भाषाको जाननेवाले विदुरने पाण्डवोंमें श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् युधिष्ठिरसे सावधान करते हुए म्लेच्छभाषामें यह वाक्य कहे ॥ १८ ॥

विज्ञायेदं तथा कुर्यादापदं निस्तरेद्यथा ।
अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम् ।
यो वेत्ति न तमाघ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥ १९ ॥

कि सोच समझकर ऐसा कार्य करना चाहिये, कि जिससे विपत्तिसे बचा सके । जो लोग विना लोहेके भी शरीरको नष्ट कर देनेवाले शस्त्रसे बचनेके उपायको जाननेमें समर्थ हैं, उनका शत्रु कुछ बिगाड नहीं सकते ॥ १९ ॥

कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥ २० ॥

कक्षघ्न अर्थात् तृणनाशी और हिमनाशी अग्नि महाकक्षमें अर्थात् बडे वनके भीतर बिलमें रहनेवाले चूहे आदि जीवोंको जला नहीं सकती, इस नियमको जानकर जो अपनी रक्षा करते हैं, वही जीते रहते हैं ॥ २० ॥

नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः ।
नाधृतिर्भूतिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः ॥ २१ ॥

जो आंखोंसे नहीं देखते हैं, वह पथको नहीं जान सकते और जिनके पास धीरज नहीं है, वह ऐश्वर्य नहीं प्राप्त कर सकते, इस प्रकार मेरे बतानेपर तुम समझ लो ॥ २१ ॥

अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम् ।
श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥ २२ ॥

जो पुरुष शत्रुओंके दिए गए विना लोहेके बने शस्त्रको ले लेते हैं, वह साहीके घरकी भांति दोनों ओरसे निकलनेके रास्तोंसे युक्त बिलोंके द्वारा आगसे बच सकते हैं ॥ २२ ॥

चरन्मार्गान्विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः ।
आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन्नानुपीडयते ॥ २३ ॥

घूमने घामनेहीसे मार्गोंके बारेमें जाना जा सकता है, नक्षत्रसे भी दिशाओंका निश्चय हो सकता है, और जो मनुष्य अपनी पांच इन्द्रियोंका दमन करते हैं वह शत्रुओंसे पीसे नहीं जाते ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनुशिष्ट्वानुगत्वा च कृत्वा चैनान्प्रदक्षिणम् ।
पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान् ॥ २४ ॥

विदुर पाण्डवोंको इस प्रकार उपदेश देकर दूरतक उनके पीछे जाकर उनकी प्रदक्षिणा करके गृहको लौट आये ॥ २४ ॥

निवृत्ते विदुरे चैव भीष्मे पौरजने तथा ।
अजातशत्रुमामन्त्र्य कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

भीष्म, विदुर और पुरवासिओंके लौट जानेपर कुन्ती अजातशत्रु युधिष्ठिरको निकट बुलाकर यह बात बोली ॥ २५ ॥

क्षत्ता यदब्रवीद्वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव ।
त्वया च तत्तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् ॥ २३ ॥

विदुरने सबोंके सामने अप्रकाशित अर्थयुक्त जो बात कही और तुमने भी उनसे जैसी बात कही मैं उसे समझ नहीं सकी ॥ २६ ॥

यदि तच्छक्यमस्माभिः श्रोतुं न च सदोषवत् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं संवादं तव तस्य च ॥ २७ ॥

यदि वह मेरे जानने योग्य हो और यदि उसे जाननेसे हानि न होनेवाली हो, तो तुम दोनोंमें जो बात हुई, उसका अभिप्राय मैं जानना चाहती हूं ॥ २७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

विषादग्नेश्च बोद्धव्यमिति मां विदुरोऽब्रवीत् ।
पन्थाश्च वो नाविदितः कश्चित्स्यादिति चाब्रवीत् ॥ २८ ॥

युधिष्ठिर बोले– विदुरने मुझसे कहा है, कि आगसे पैदा होनेवाली आपत्तिको जानकर पहिलेसे सावधान हो जाओ; कोई पथ तुम्हारा अनजाना नहीं है ऐसा उन्होंने कहा है ॥ २८ ॥

जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यसीति च माब्रवीत् ।
विज्ञातमिति तत्सर्वमित्युक्तो विदुरो मया ॥ २९ ॥

जो जितेन्द्रिय होंगे, वही भूमण्डल भरका अधिकार पायेंगे । धर्मशील विदुरसे इतना कहने पर मैंने उनसे कहा है, कि मैं सब समझ गया ॥ २९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फल्गुनस्य ते ।
वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ ४७३१ ॥

वैशम्पायन बोले– उसके बाद पाण्डवोंने फल्गुनके महीनेके आठवें दिनको रोहिणी नक्षत्रमें वारणावतकी यात्रा की और वहां पहुंचे हुए पाण्डवोंने नगरवाले जनोंको देखा ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥ ४७३१ ॥

: १३४ :

वैशम्पायन उवाच

ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद्वारणावतात् ।
सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतन्द्रिताः ॥ १ ॥
श्रुत्वागतान्पाण्डुपुत्रान्नानायानैः सहस्रशः ।
अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठाञ्श्रुत्वैव परया मुदा ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद पाण्डवोंके आगमनको सुनकर वारणावत नगरीकी सब प्रजा प्रसन्न होकर सुस्तीको छोडकर शास्त्रके अनुसार माङ्गल्य पदार्थ लेकर नाना प्रकारके अगणित यानों पर चढ उन नरश्रेष्ठके निकट जा पहुंची ॥ १–२ ॥

ते समासाद्य कौन्तेयान्वारणावतका जनाः ।
कृत्वा जयाशिषः सर्वे परिवार्योपतस्थिरे ॥ ३ ॥

वे वारणावतके मनुष्य पाण्डवोंके निकट जाकर जय जयकारके साथ अशीस देते हुए उनके चारों ओर खडे हो गए ॥ ३ ॥

तैर्वृतः पुरुषव्याघ्रो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विबभौ देवसङ्काशो वज्रपाणिरिवामरैः ॥ ४ ॥

देवके सदृश पुरुषव्याघ्र धर्मराज युधिष्ठिर तब नगरके जनोंसे घिरे जाकर देवोंसे घिरे हुए सुरनाथके समान शोभा पाने लगे ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्कृतास्ते तु पौरैश्च पौरान्सत्कृत्य चानघाः।
अलंकृतं जनाकीर्णं विविशुर्वारणावतम् ॥ ५ ॥

निष्पाप पाण्डवलोग पुरवासियोंसे सत्कार पाकर उनकी यथायोग्य अभ्यर्थना और सत्कार कर नाना अलङ्कारोंसे अलंकृत जनोंसे भरे वारणावत नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ ५ ॥

ते प्रविश्य पुरं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान्।
ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥ ६ ॥

हे राजन्! वीर पाण्डवनन्दन पुरमें प्रवेश कर पहिले वेद पठन आदि स्वकर्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंके घरोंमें गये ॥ ६ ॥

नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तथा।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहानपि ॥ ७ ॥

उसके बाद क्रमसे वे नरश्रेष्ठ पाण्डव नगरपाल, रथी, वैश्य और शूद्रोंके घरोंमें भी गये ॥ ७ ॥

अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभाः।
जग्मुरावसथं पश्चात्पुरोचनपुरस्कृताः ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ पाण्डुपुत्रगण पुरवासियोंसे पूजे जाकर बादमें आगे आगे चलनेवाले पुरोचनके साथ घरमें गये ॥ ८ ॥

तेभ्यो भक्ष्यान्नपानानि शयनानि शुभानि च।
आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥ ९ ॥

पुरोचनने उनको अच्छा अच्छा भोजन और पीनेकी वस्तु, शय्या, उत्तम आसनादि दिए ॥ ९ ॥

तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः।
उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥ १० ॥

बहुत मूल्ययुक्त पोशाक पहिने हुए पाण्डवगण पुरोचनकी सेवा और पुरवासियोंकी उपासना पाकर वहां रहने लगे ॥ १० ॥

दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः।
निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥ ११ ॥

इस प्रकार दस दिनोंके व्यतीत होनेपर पुरोचनने उनको शिव नामक उस अशिव गृहकी बात सुनायी ॥ ११ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः ।
पुरोचनस्य वचनात्कैलासमिव गुह्यकाः ॥ १२ ॥

गुह्यक लोग जिस प्रकार कैलासकी चोटी पर चढते हैं, वैसेही पुरुषव्याघ्र पाण्डव–लोग पोषाकसे सुशोभित होकर पुरोचनके वचन सुनकर उस गृहमें प्रविष्ट हुए ॥ १२ ॥

तत्त्वगारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मविशारदः ।
उवाचाग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः ।
जिघ्रन्सोम्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम् ॥ १३ ॥
कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परंतप ।
शणसर्जरसं व्यक्तमानीतं गृहकर्मणि ।
मुञ्जबल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वं घृतोक्षितम् ॥ १४ ॥

परम धार्मिक युधिष्ठिर गृहको भली प्रकार देखकर भीमसेनसे बोले, कि यही गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना हुआ है । हे शत्रुनाशि ! घृत और लाहसे मिली हुई चर्बीकी गन्धको सूंघनेसे स्पष्ट व्यक्त होता है, कि यह गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना हुआ है । सन, धूप, सरकण्डा, तृण और बांस आदिको बटोर करके घृतमें डुबा कर उनसे यह घर बनाया गया है ॥ १३–१४ ॥

शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि ।
विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः ॥ १५ ॥

घर बनानेके काममें निपुण और विनीत शिल्पियों द्वारा बनाये इस घरमें यह पापी पुरोचन हमें विश्वस्त देखकर हमको जलाना चाहता है ॥ १५ ॥

इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तदा ।
आपदं तेन मां पार्थ स संबोधितवान्पुरा ॥ १६ ॥

हे पार्थ ! इस आनेवाली आपत्तिको महाबुद्धिमान् विदुरने पहलेसे ही देख लिया था, इसलिये उन्होंने पहिले ही मुझको सावधान कर दिया था ॥ १६ ॥

ते वयं बोधितास्तेन बुद्ध्वन्तोऽशिवं गृहम् ।
आचार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः ॥ १७ ॥

उन विदुरके द्वारा बता दिए जानेके कारण ही वे हम सब दुर्योधनके वशमें रहनेवाले आचार्योंके द्वारा गुप्त रीतिसे बनाये गए इस अशुभ गृहको जान सके ॥ १७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भीम उवाच

यदिदं गृहमाग्नेयं विहितं मन्यते भवान्।
तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥ १८ ॥

भीम बोले– जब कि आपने जान लिया है, कि यह गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना हुआ है, तब हम पहिले जहां बसे थे, वहीं जायें तो हमारा मङ्गल हो सकता है ॥१८॥

युधिष्ठिर उवाच

इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये।
नष्टैरिव विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर बोले– हम यत्नसे सावधानीसे यहीं रहकर बाहरसे दीखनेमें कोई चेष्टा न करके बाहर निकलनेका पथ ढूंढेंगे ॥ १९ ॥

यदि विन्देत चाकारमस्माकं हि पुरोचनः।
शीघ्रकारी ततो भूत्वा प्रसह्यापि दहेत नः ॥ २० ॥

पुरोचन हमारे आकार वा किसी भावको जान जायेगा, तो वह उसी क्षण शीघ्रतापूर्वक एकाएक हमको जला मारेगा ॥ २० ॥

नायं बिभेत्युपक्रोशादधर्माद्वा पुरोचनः।
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनमते स्थितः ॥ २१ ॥

क्योंकि यह पुरोचन लोकनिन्दा वा अधर्मसे डरनेवाला नहीं है, दुष्ट बुद्धिवाला यह पुरोचन दुर्योधनकी आज्ञासे ऐसा अनिष्ट करनेको प्रवृत्त हुआ है ॥ २१ ॥

अपि चेह प्रदग्धेषु भीष्मोऽस्मासु पितामहः।
कोपं कुर्यात्किमर्थं वा कौरवान्कोपयेत सः।
धर्म इत्येव कुप्येत तथान्ये कुरुपुङ्गवाः ॥ २२ ॥

फिर हमारे यहां जल जाने पर पितामह भीष्म क्यों क्रोध करेंगे? वह क्रोधित होकर कौरवोंको क्रुद्ध क्यों करना चाहेंगे, हां ऐसा हो सकता है, कि जितने दूसरे कौरवोंमें श्रेष्ठ हैं, वे और हमारे पितामह भीष्म धर्मके नाम पर क्रोध प्रगट कर सकते हैं अर्थात् केवल लोगोंको दिखानेके लिए क्रोध प्रकट कर सकते हैं सच्चे हृदयसे नहीं ॥ २२ ॥

वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेम हि।
स्पशैर्नो घातयेत्सर्वान्राज्यलुब्धः सुयोधनः ॥ २३ ॥

यदि हम जलनेके भयसे डरकर भाग जावें, तो वह राज्यलोभी सुयोधन दूतोंके द्वारा हम सबोंको मरवा सकता है ॥ २३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपदस्थान्पदे तिष्ठन्नपक्षान्पक्षसंस्थितः ।
हीनकोशान्महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद्ध्रुवम् ॥ २४ ॥

क्योंकि वह दुरात्मा राजपदपर स्थित हुआ, सहाययुक्त और बडे ऐश्वर्यका अधिकारी है और हम पदसे च्युत, सहाय रहित और ऐश्वर्य वर्जित हैं; अतः इसमें सन्देह नहीं है, कि वह हमको नाना उपायोंसे नष्ट कर सकता है ॥ २४ ॥

तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् ।
वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्नवासं क्वचित्क्वचित् ॥ २५ ॥

अतएव हमें इस पापात्मा पुरोचन और सुयोधनको ठगते हुए अनेक स्थानोंमें छिपकर वास करना चाहिए ॥ २५ ॥

ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम् ।
तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् ॥ २६ ॥

वे हम मृगया करते हुए पृथ्वीपर भ्रमण करेंगे जिससे, कि भागनेके समय हमें सभी पथ ज्ञात रहेंगे ॥ २६ ॥

भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम् ।
गूढोच्छ्वासान्न नस्तत्र हुताशः संप्रधक्ष्यति ॥ २७ ॥

बडे ही गुप्त भावसे आज ही धरतीके नीचे एक बिल खोदेंगे। गुप्त रूपसे ऐसा करनेसे हमें अग्नि नहीं जला सकेगी ॥ २७ ॥

वसतोऽत्र यथा चास्मान्न बुध्येत पुरोचनः ।
पौरो वापि जनः कश्चित्तथा कार्यमतन्द्रितैः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ ४७५९ ॥

अतएव हम सजग होकर ऐसा करेंगे, कि पुरोचन वा कोई दूसरे पुरवासी हमारा अभिप्राय न जान सके ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ चौतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३४ ॥ ४७५९ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १३५ :

वैशंपायन उवाच

विदुरस्य सुहृत्कश्चित्खनकः कुशलः क्वचित्।
विविक्ते पाण्डवान्राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे महीपाल ! एक मनुष्य, जो विदुरका मित्र और मिट्टी खोदनेमें दक्ष था, आकर एकान्तमें पाण्डवोंसे यह बचन बोला ॥ १ ॥

प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो भृशम्।
पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः ॥ २ ॥

मैं एक कुशल खनिक हूं, भूमि भलीभांतिसे खोद सकता हूं, विदुरने मुझको यह कह कर भेजा है, कि तुम जाकर पाण्डवोंका प्रिय कार्य करो; अतः पूछता हूं, कि आपका कौनसा काम करूं ? ॥ २ ॥

प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तः श्रेयस्त्वमिह पाण्डवान्।
प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः ॥ ३ ॥

गुप्त रूपसे विदुरने मुझसे मेरा विश्वास कर कहा है, कि तुम पाण्डवोंका हित करो, अब आज्ञा कीजिये, कि क्या करना है ॥ ३ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्य पुरोचनः।
भवनस्य तव द्वारि प्रदास्यति हुताशनम् ॥ ४ ॥

हे पाण्डव ! पुरोचन आपके इस गृहके द्वारपर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिको आग लगा देगा ॥ ४ ॥

मात्रा सह प्रदग्धव्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः।
इति व्यवसितं पार्थ धार्तराष्ट्रस्य मे श्रुतम् ॥ ५ ॥

मैंने सुना है कि उस धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने निश्चय किया है, कि पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंको माताके साथ जला मारेंगे ॥ ५ ॥

किंचिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि पाण्डव।
त्वया च तत्तथेत्युक्तमेतद्विश्वासकारणम् ॥ ६ ॥

विदुरने म्लेच्छ भाषामें आपसे कुछ कहा था, उससे आपने भी उनको वैसा ही उत्तर दिया था; यह बात ही मुझपर आपके विश्वास करनेका प्रमाण है ॥ ६ ॥

उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै ॥ ७ ॥

सत्यशील कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर उससे बोले– हे सौम्य ! मैं विदुरके प्रिय मित्र तुम्हें जानता हूँ ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च दृढभक्तिकम् ।
न विद्यते कवेः किंचिदभिज्ञानप्रयोजनम् ॥ ८ ॥

तुम शुद्ध, उत्तम स्वभावके और विश्वासी हो, और उनपर सदा तुम्हारी बडी भक्ति है; वह सब जानते हैं, कोई काम उनका अनजाना नहीं है ॥ ८ ॥

यथा नः स तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्वयि ।
भवतः स्म यथा तस्य पालयास्मान्यथा कविः ॥ ९ ॥

जैसे विदुर हमें प्यारे हैं वैसे ही तुम भी हमारे लिए प्रिय हो, इसमें कुछ विशेष नहीं है । अतएव तुम उनको जैसा समझते हो, हमको भी वैसा ही समझकर हमारी रक्षा इस प्रकारसे करो, कि जैसे वह करते हैं ॥ ९ ॥

इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः ।
पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १० ॥

मैं समझ गया हूं कि दुर्योधनके मतसे पुरोचनने हमारे लिये ही यह अग्निका घर बनवाया है ॥ १० ॥

स पापः कोशवांश्चैव ससहायश्च दुर्मतिः ।
अस्मानपि च दुष्टात्मा नित्यकालं प्रबाधते ॥ ११ ॥

वह दुष्टात्मा, पापी, कुमति दुर्योधन धनयुक्त और सहाय सहित है, अतः सदा हमको नष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है ॥ ११ ॥

स भवान्मोक्षयत्वस्मान्यत्नेनास्माद्धुताशनात् ।
अस्मास्विह हि दग्धेषु सकामः स्यात्सुयोधनः ॥ १२ ॥

अब तुम यत्नपूर्वक हमको इस अग्निसे बचाओ। इसमें सन्देह नहीं है, कि यदि हम यहां जल मरेंगे तो सुयोधनकी आशा पूरी हो जाएगी ॥ १२ ॥

समृद्धमायुधागारमिदं तस्य दुरात्मनः ।
वप्रान्ते निष्प्रतीकारमाश्लिष्येदं कृतं महत् ॥ १३ ॥

देखो, यह उस दुरात्माकी बडी भारी अस्त्रशाला है । इस कारण यह बडा गृह ऐसा बना हुआ है, कि दीवारकी जडसे अन्ततक बाहर निकलनेका कोई रास्ता नहीं है ॥ १३ ॥

इदं तदशुभं नूनं तस्य कर्म चिकीर्षितम् ।
प्रागेव विदुरो वेद तेनास्मानन्वबोधयत् ॥ १४ ॥

विदुरने दुर्योधनके इस सङ्कल्पित अनुचित कर्मको पहिलेसे ही निश्चय रूपसे जानकर हमको सावधान किया था ॥ १४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्ता यां दृष्टवान्पुरा ।
पुरोचनस्याविदितानस्मांस्त्वं विप्रमोचय ॥ १५ ॥

जिसको विदुरने पहले ही जान लिया था, अब वही विपत्ति आ पडी है; अतएव हमें इस रीतिसे यहांसे छुडाओ कि पुरोचन भी न जान सके ॥ १५ ॥

स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः ।
परिखामुत्किरन्नाम चकार सुमहद्बिलम् ॥ १६ ॥

खनकने वैसी प्रतिज्ञा कर यत्न करना शुरु किया, और खंदक खोदनेके बहानेसे बिल खोदना आरम्भ किया ॥ १६ ॥

चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्ये नातिमहन्मुखम् ।
कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्या च भारत ॥ १७ ॥

हे भारत ! उस गृहके भीतर औरोंसे अनजाना एक छोटासा बिल खोदकर उसमें ऐसा द्वार लगाया, कि वह भूमिसे समान हो गया ॥ १७ ॥

पुरोचनभयाच्चैव व्यदधात्संवृतं मुखम् ।
स तत्र च गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा ॥ १८ ॥

पुरोचनके भयसे उस बिलका मुंह ढक दिया । हे भूपाल ! अशुभ बुद्धिवाला पुरोचन उस गृहके द्वारपर सदा रहा करता था ॥ १८ ॥

तत्र ते सायुधाः सर्वे वसन्ति स्म क्षपां नृप ।
दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद्वनम् ॥ १९ ॥

हे राजन् ! पाण्डव गण भी रात्रिको अस्त्र शस्त्र लेकर उस गृहके भीतर रहते और दिनको वनमें घूम घाम कर मृगया करते फिरते थे ॥ १९ ॥

विश्वस्तवदविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम् ।
अतुष्टास्तुष्टवद्राजन्नूषुः परमदुःखिताः ॥ २० ॥

हे राजन् ! वे पुरोचनको ठगनेके लिये विश्वास न रख करके भी विश्वासीके समान, सदा असन्तुष्ट हो करके भी सन्तुष्टकी भांति और अति दुःखित होकर वहां रहने लगे ॥ २० ॥

न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः ।
अन्यत्र विदुरामात्यात्तस्मात्खनकसत्तमात् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ ४७८० ॥

पर विदुरके मन्त्री उस श्रेष्ठ खनिकके बिना किसी नगरवासी जनने उनका अभिप्राय नहीं जाना ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३५ ॥ ॥ ४७८० ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuyan Vani Trust Donations

: १३६ :

वैशम्पायन उवाच

तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान् ।
विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद उनके उसप्रकार वर्षभर वहां रहनेपर पुरोचन उनको विश्वास रखनेवालोंके समान निःशङ्क हुआ हुआ जानकर मन ही मनमें बडा खुश हुआ ॥ १ ॥

पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव यमौ चोवाच धर्मवित् ॥ २ ॥
अस्मानयं सुविश्वस्तान्वेत्ति पापः पुरोचनः ।
वञ्चितोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने ॥ ३ ॥

कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर उसको प्रसन्न देखकर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे बोले, कि इस पापात्मा पुरोचनने समझ लिया है, कि हम पूरे विश्वस्त हो गये हैं, अतः इस कुटिलको हमने ठग लिया है; अब हमारे भागनेका समय आ गया है ॥ २–३ ॥

आयुधागारमादीप्य दग्ध्वा चैव पुरोचनम् ।
षट् प्राणिनो निधायेह द्रवामोऽनभिलक्षिताः ॥ ४ ॥

हम अस्त्रशालामें आग लगा करके पुरोचनको जलाके यहां छः मनुष्योंको छोडकर लोगोंसे छुपकर भाग जायेंगे ॥ ४ ॥

अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम् ।
चक्रे निशि महद्राजन्नाजग्मुस्तत्र योषितः ॥ ५ ॥

वैशम्पायन बोले– महाराज ! इसके बाद कुन्तीने एक दिन दान देनेके बहाने रात्रिको ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इस कामके लिये वहांकी बहुत स्त्रियां वहां आईं ॥ ५ ॥

ता विहृत्य यथाकामं भुक्त्वा पीत्वा च भारत ।
जग्मुर्निशि गृहानेव समनुज्ञाप्य माधवीम् ॥ ६ ॥

हे भारत ! स्त्रियां रात्रिको वहां पूरे सुखसे खा पीकर आनन्दपूर्वक कुन्तीकी आज्ञासे अपने अपने घरको पधारीं ॥ ६ ॥

निषादी पञ्चपुत्रा तु तस्मिन्भोज्ये यदृच्छया ।
अन्नार्थिनी समभ्यागात्सपुत्रा कालचोदिता ॥ ७ ॥

कालकी प्रेरणासे एक बहेलिन पांच पुत्रोंके साथ अपनी इच्छासे उस भोजमें खानेकी इच्छासे आई थी ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदविह्वला।
सह सर्वैः सुतै राजंस्तस्मिन्नेव निवेशने।
सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ॥ ८ ॥

हे पृथ्वीनाथ! वह बहेलिन अपने बेटोंके साथ मदिरा पीकर उन्मत्त और नशेसे विह्वल होकर ज्ञान रहित होकर मृतके समान होकर उस घरहीमें सो गयी ॥ ८ ॥

अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने विभो।
तदुपादीपयद्भीमः शेते यत्र पुरोचनः ॥ ९ ॥

हे विभो! अनन्तर रात्रिको बडी हवा बह रही थी और नगरके लोग सोगये थे, कि ऐसे समयमें भीमसेनने उस गृहमें, जहां पुरोचन सोता था, आग लगा दी ॥ ९ ॥

ततः प्रतापः सुमहाञ्शब्दश्चैव विभावसोः।
प्रादुरासीत्तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः ॥ १० ॥

तब जलती हुई आगका बहुत तेज और घोर शब्द फैलने लगा, उसके कारण वहांका सारा जनसमूह जाग गया ॥ १० ॥

पौरा ऊचुः

दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना।
गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥ ११ ॥

नगरवासी बोले– दुर्योधनके द्वारा भेजे हुए कुमति पापात्मा पुरोचनने अपनेको नष्ट करनेके लिये ही यह गृह बनवाया था, अब उसमें आग लगा दी है ॥ ११ ॥

अहो धिग्धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसी।
यः शुचीन्पाण्डवान्बालान्दाहयामास मन्त्रिणा ॥ १२ ॥

हाय! धृतराष्ट्रकी बुद्धि पूर्ण नहीं है! उनकी उस बुद्धिपर धिक्कार है, जिन्होंने निष्पापी पाण्डुपुत्रोंको मन्त्रीके द्वारा जलवा डाला ॥ १२ ॥

दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः।
अनागसः सुविश्वस्तान्यो ददाह नरोत्तमान् ॥ १३ ॥

पर जिस पापी पुरोचनने विश्वासयुक्त और निर्दोषी नरोत्तम पाण्डवोंको जलाया, अब वही दुरात्मा स्वयं भी अपने कर्मफलसे ही जल मरा है ॥ १३ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वैशम्पायन उवाच

एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः ।
परिवार्य गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले– वारणावतके निवासी इस प्रकार विलाप करते करते हुए उस रात्रिको गृहको चारों ओरसे घेरकर खडे हो गए ॥ १४ ॥

पाण्डवाश्चापि ते राजन्मात्रा सह सुदुःखिताः ।
बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुगूढमलक्षिताः ॥ १५ ॥

इधर शत्रुनाशी पाण्डवलोग माताके साथ बहुत दुःखी होकर लोगोंसे छिपकर उस बिलसे निकलकर शीघ्र चलने लगे ॥ १५ ॥

तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः ।
न शेकुः सहसा गन्तुं सह मात्रा परंतपाः ॥ १६ ॥

पर वे शत्रुको तपानेवाले पाण्डव सब निद्राके झोकों और भयके कारण माताके साथ एकदम शीघ्र नहीं चल सके ॥ १६ ॥

भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः ।
जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥ १७ ॥

हे राजेन्द्र ! तब भयंकर वेग और पराक्रमवाले भीमसेन माता और सम्पूर्ण भाईयोंको लेकर चलने लगे ॥ १७ ॥

स्कन्धमारोप्य जननीं यमावङ्केन वीर्यवान् ।
पार्थौ गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरौ सुमहाबलौ ॥ १८ ॥
तरसा पादपान्भञ्जन्महीं पद्भ्यां विदारयन् ।
स जगामाशु तेजस्वी वातरंहा वृकोदरः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ४७९९ ॥

वीर्यशाली वृकोदर माताको कन्धेपर, नकुल और सहदेवको गोदमें और महाबली युधिष्ठिर तथा अर्जुनके हाथ पकडकर, वेगसे पेडोंको तोडते और पांवोंसे धरतीको फोडते हुए हवाकी गतिसे अतिशीघ्र चले ॥ १८–१९ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ ४७९९ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

: १३७ :

वैशम्पायन उवाच

अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः।
तत्राजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इसके बाद रात्रि बीत जाने पर संपूर्ण नगरवाले पाण्डवोंको देखनेके लिये शीघ्रतासे वहां आये ॥ १ ॥

निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना ददृशुस्ततः।
जातुषं तद्गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥ २ ॥

आग बुझानेके बाद उन मनुष्योंने मंत्री पुरोचनको और जतुगृहको जला हुआ पाया ॥२॥

नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा।
पाण्डवानां विनाशाय इत्येवं चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३ ॥

यह देखकर रोते हुए चिल्लाकर कहने लगे, कि निश्चयसे जान पडता है, कि पापात्मा दुर्योधनने केवल पाण्डवोंको नष्ट करनेके लिये ही ऐसा किया है ॥ ३ ॥

विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः।
दग्धवान्पाण्डुदायादान्न ह्येनं प्रतिषिद्धवान् ॥ ४ ॥

इसमें संदेह नहीं है, कि धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने धृतराष्ट्रके जानते बूझते पाण्डुके पुत्रोंको जलाया है और उसपर भी धृतराष्ट्रने उसे मना नहीं किया (इससे ज्ञात होता है कि इस कार्यमें धृतराष्ट्रकी भी संमति थी) ॥ ४ ॥

नूनं शान्तनवो भीष्मो न धर्ममनुवर्तते।
द्रोणश्च विदुरश्चैव कृपश्चान्ये च कौरवाः ॥ ५ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप और दूसरे कौरव भी इस विषयमें धर्मपर नहीं चल रहे हैं ॥ ५ ॥

ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः।
संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥ ६ ॥

अब हम दुरात्मा धृतराष्ट्रके पास यह सन्देश भेजते हैं, कि तुम्हारी आशा अब पूरी हो गई है, तुमने पाण्डवोंको जला मारा है ॥ ६ ॥

ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम्।
निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसम् ॥ ७ ॥

तब उन्होंने पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये अग्निको उठा कर बुझाते हुए, पांचों पुत्रोंके सहित जलीभूनी निरपराधी बहेलिनको देखा ॥ ७ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम् ।
पांसुभिः प्रत्यपिहितं पुरुषैस्तैरलक्षितम् ॥ ८ ॥

उस समय विदुरके भेजे हुए उस पूर्वोक्त खनिकने उस गृहके साफ करनेके बहाने दूसरोंके अनजानेमें उस बिलका द्वार धूलसे ढक दिया ॥ ८ ॥

ततस्ते प्रेषयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः ।
पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥ ९ ॥

इसके बाद नगरवालोंने धृतराष्ट्रके पास जले हुए पाण्डवगण और मंत्री पुरोचनके सन्देशको भेज दिया ॥ ९ ॥

श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद्राजा सुमहदप्रियम् ।
विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥ १० ॥

तब राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंके विनाश रूपी उस अति अप्रिय समाचारको सुनकर दुःखी-चित्तसे विलाप करते हुए कहने लगे ॥ १० ॥

अद्य पाण्डुर्मृतो राजा भ्राता मम सुदुर्लभः ।
तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥ ११ ॥

हाय ! आज उन सब वीरोंके माता समेत जल जानेसे मेरे बडे भाई तथा कठिनाईसे प्राप्त होनेवाले पाण्डु आज सचमुच मर गए ॥ ११ ॥

गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् ।
सत्कारयन्तु तान्वीरान्कुन्तिराजसुतां च ताम् ॥ १२ ॥

कौरवलोग वारणावतमें शीघ्र ही जावें और वीरों और कुंतीराजपुत्रीका अग्निसंस्कार करें ॥ १२ ॥

कारयन्तु च कुल्यानि शुभानि च महान्ति च ।
ये च तत्र मृतास्तेषां सुहृदोऽर्चन्तु तानपि ॥ १३ ॥

मेरे कुलकी प्रथाके अनुसार जितने शुभ तथा बडे बडे कर्म हैं, उनको भी भलीप्रकार करें और भी जो जो लोग वहां पर मर गए हैं, उनके बांधव भी उनकी पूजा करें ॥ १३ ॥

एवं गते मया शक्यं यद्यत्कारयितुं हितम् ।
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च तत्सर्वं क्रियतां धनैः ॥ १४ ॥

इस दशामें पांण्डवों और कुन्तीके लिये जितने भी हितके कार्य मेरे द्वारा किए जाने योग्य हैं, वे सब धनके सहारे कर डालें जाएं ॥ १४ ॥

×

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एवमुक्त्वा ततश्चक्रे ज्ञातिभिः परिवारितः।
उदकं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ १५ ॥

अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रने ऐसा कहकर ज्ञातियोंसे घिरकर पाण्डवोंकी जलक्रिया की ॥१५॥

चुक्रुशुः कौरवः सर्वे भृशं शोकपरायणाः।
विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः ॥ १६ ॥

सब कौरव एकत्र मिलकर बहुत शोकसे युक्त होकर चिल्ला चिल्लाकर रोने लगे। विदुरने भी थोडासा शोक दिखाया क्योंकि वह सच्चे समाचारको जानते थे ॥ १६ ॥

पाण्डवाश्चापि निर्गत्य नगराद्वारणावतात्।
जवेन प्रययू राजन्दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥ १७ ॥

इधर महाबली पाण्डवगण वारणावत नगरसे निकल करके दक्षिण दिशाकी तरफ शीघ्रतासे चलने लगे ॥ १७ ॥

विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रैर्दक्षिणामुखाः।
यतमाना वनं राजन्गहनं प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥

हे राजन्! दक्षिण दिशामें जाते हुए वे नक्षत्रोंके सहारे मार्गका पता लगाते हुए बडे प्रयत्नोंके बाद अन्तमें एक गहन वनमें गए ॥ १८ ॥

ततः श्रान्ताः पिपासार्ता निद्रान्धाः पाण्डुनन्दनाः।
पुनरूचुर्महावीर्यं भीमसेनमिदं वचः ॥ १९ ॥

इतः कष्टतरं किं नु यद्वयं गहने वने।
दिशश्च न प्रजानीमो गन्तुं चैव न शक्नुमः ॥ २० ॥

तब नींदसे अन्धे हुए हुए, थके और प्याससे व्याकुल पाण्डवोंने महाबली भीमसेनसे यह वचन कहा, कि देखो, इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है, कि हम इस सघन वनमें आ पडे हैं, अब न तो दिशाका पता है और नाही हम और ज्यादा चल सकते हैं ॥ १९–२० ॥

तं च पापं न जानीमो यदि दग्धः पुरोचनः।
कथं नु विप्रमुच्येम भयादस्मादलक्षिताः ॥ २१ ॥

हम यह भी नहीं जानते कि वह पापात्मा पुरोचन जला वा नहीं; वह जल भी गया हो, तो हम औरोंके अनजाने इस गहरी विपत्तिसे कैसे पार होंगे? ॥ २१ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुनरस्मानुपादाय तथैव व्रज भारत ।
त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा ॥ २२ ॥

हे भारत ! अकेले तुम्हीं हम सबसे अधिक बलवान् और पवनके समान वेगवान् हो, अतः फिर हम सबको लेकर पहलेके समान चलो ॥ २२ ॥

इत्युक्तो धर्मराजेन भीमसेनो महाबलः ।
आदाय कुन्तीं भ्रातॄंश्च जगामाशु महाबलः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ ४८२२ ॥

धर्मराजके ऐसा कहनेपर महाबली भीमसेन कुंती और भाइयोंको लेकर शीघ्र चलने लगे ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके आदिपर्वमें एकसौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥ ४८२२ ॥

: १३८ :

वैशम्पायन उवाच

तेन विक्रमता तूर्णमूरुवेगसमीरितम् ।
प्रववावनिलो राजञ्शुचिशुक्रागमे यथा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– महाबली भीमसेनके चलते समय जिस प्रकार जेष्ठ और आषाढ महीनोंमें प्रबल हवा बहती रहती है, वैसे ही उन महाबलीकी जांघकी चोटसे पवन सनसनाने लगा ॥ १ ॥

स मृद्नन्पुष्पितांश्चैव फलितांश्च वनस्पतीन् ।
आरुजन्दारुगुल्मांश्च पथस्तस्य समीपजान् ॥ २ ॥

वह उस रास्तेके निकटके फूल और फलवाले वनस्पति और लताओंको खूंदते हुए चलने लगे ॥ २ ॥

तथा वृक्षान्भञ्जमानो जगामामितविक्रमः ।
तस्य वेगेन पाण्डूनां मूर्च्छेव समजायत ॥ ३ ॥

वह अत्यन्त बलशाली भीम बडे बडे पेडोंको तोडते हुए चलने लगे। उस भीमसेनकी गतिके वेगसे युधिष्ठिर आदि अचेतनकी भांति हो गये ॥ ३ ॥

असकृच्चापि संतीर्य दूरपारं भुजप्लवैः ।
पथि प्रच्छन्नमासेदुर्धार्तराष्ट्रभयात्तदा ॥ ४ ॥

वह सब अपनी दोनों भुजरूपी पतवारोंसे रास्तेमें गंगाकी बहती धारको बार बार पार कर दुर्योधनके भयसे छिपकर गये ॥ ४ ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. An eGangotri Initiative